संस्कृत काव्यधारा

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल
इलाहाबाद बम्बई दिल्ली
१९५८

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्राक्कथन

सस्कृत के अनेक काव्य हिन्दी कलेवर धारण कर चुके है, पर विशाल सस्कृत काव्यभडार को सुपरिचित करानेवाला कोई एक ग्रथ नही है। यह खटकनेवाली बात थी। दो दशको पहिले यह विचार मेरे मन मे आया था। मैने अधिकारी मित्रो से करने केलिये कहा। किसी-किसी ने करने की बात भी कही, पर वह पूरी नही हो सकी। अतमे निराश ही मुझे ही यह अनधिकार चेष्टा करनी पडी। यही इस पुस्तक का इतिहास है। मैने अपने दो मित्रो से "पालि काव्यधारा" और "प्राकृत काव्य धारा" लिखने के लिये साग्रह प्रार्थना की है। देखे वह अपना वचन पूरा करते है। अपभ्रशकाव्यधारा को मै "हिंदीकाव्यधारा" के नाम से लिख चुका हूँ। यदि मेरे रहते उसके दूसरे मस्करण की नौबत आई, तो उसका नाम "अपभ्रशकाव्यधारा" रखना होगा। मै चाहता हूँ, भारत की और विश्व की अन्य भापाओ की भी ऐसी द्विभाषीय काव्यधाराये बननी चाहिये। हिन्दी को मान्यभाषा बनाने केलिये इनकी अवश्यकता है।

इस ग्रथ मे यह ध्यान रक्खा गया है, कि हरेक कवि की इतनी सामग्री दी जाये, जिससे हम कवि का मूल्याकन कर सके, उसकी कृतिका आस्वाद ले सके, साथ ही ग्रथका बहुत विस्तार भी न होने पाये। मै इसमे कितना सफल हुआ, इसे विज्ञ पाठक ही बतला सकते है। मै नही कह सकता, कि सस्कृत की सभी काव्यकलानिधियो को मै यहाँ ला सका हूँ, या जिनकी कविताये यहाँ उद्धृत हुई है, उनसे उत्कृष्ट कोई कवि छूटा नही है। कालमे मै ईसाकी सत्रहवी सदीके मध्यमे रुक गया हूँ, पर सस्कृत मे कवि-कर्म अब भी होता है। पिछली तीन सदियोमे कितने ही सूरियो ने सस्कृत

में काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इस सस्करण मे जिनको नही लाया जा सका, उनको दूसरे सस्करण मे लानेकी मै आशा भी नही दिला सकता, क्योकि मैं ६५ वे सालके अत पर पहुच रहा हूँ।

कवियो की कृतियो को दूसरे क्रम में भी रक्खा जा सकता था, पर मैंने ऐतिहासिक क्रम को ही पसद किया। इस तरह सस्कृत कविता के विकास को समझने का बहुत सुभीता है, यह इस धाराके पाठको को मालूम होगा। मेरे उल्लिखित कालमे मतभेद हो सकता है, पर काल न देनेसे उसके देनेमें पाठको को विकास के समझने मे अधिक आसानी होगी, सस्कृत कविता के कालविभाजन मे भी मैंने स्वच्छन्दता से काम लिया है। सस्कृत मातृभाषा के तौर पर बुद्धके समय (ईसा-पूर्व पाचवी-छठी सदीमे) भी नही रह गई थी। उससे सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व उसके मातृभाषा होनेकी सभावना है। लेकिन उस समय की सस्कृत वैदिक (छान्दस) भाषा ही हो सकती है। बुद्धवाणी को छान्दस भाषामे कर डालने का सुझाव दो विशेषज्ञ शिष्यो ने रक्खा था, जिसका तथागत ने निषेध कर दिया। बुद्ध और उनके बादकी चार पाच सदियाँ पालि की है। पालि यहा व्यापक अर्थ में लेते हुये भारत की वह सभी भाषायें अभिप्रेत है, जो कि प्राकृत के उदय से पहिले बोली जाती थी। इसी प्रकार आगे के कालो को प्राकृत और अपभ्रश कालमें बाटा गया। आधुनिक भाषाओ के कालकी होने से पाचवा काल "आधुनिक काल" कहा गया। तत्कालीन लोकभाषा की पृष्ठभूमि में जो सस्कृत कवितायें रची गईं, उन पर उनका ऋण है, यही नही बल्कि अप्रत्यक्ष रूपेण उन्होने प्रभाव भी डाला है।

मूलभाषा को भी सम्मिलित करने से ग्रथ का कलेवर दूना हो गया। पर मैं समझता हूँ, इतने कवियो की मूलकृतियो को पढने का एकत्र जो अवसर यहा मिलेगा, वह अच्छा ही समझा जायेगा, क्योकि कितनी ही कृतियाँ बहुतो के लिये सुलभ नही है। हो सकता है, इससे अनुवाद के साथ मूल पढने की भी लालसा किसी को हो जाये।

अनुवाद मे मैने मूल के समीप रहते हुये उसे सुगम बनाने की भरसक कोशिश की है। जल्दी, अल्पज्ञता और दूसरे कारणो से त्रुटि होने की भी सभावना है, जिसके प्रतीकारका मेरे पास कोई उपाय नही है।

काल के अनुसार देखने पर मालूम होगा, कि वैदिक काल मे वैसी कविताओ का अभाव सा है, जिसे आजकल काव्य कहा जाता है। पालिकाल के अतिम भागमे वाल्मीकि रामायण का प्रादुर्भाव हुआ जिसे वस्तुत काव्य या महाकाव्य कह सकते है। सर्व पुरातन होने से इसका "आदिकाव्य" नाम सार्थक है। "महाभारत" मे भी काव्यमय स्थल है, पर कम ही। प्राकृतकाल (१–५५० ई०) सस्कृत कविता का स्वर्णयुग है। कविता ही नही कला, दर्शन, पुराने विज्ञान का भी यह स्वर्णयुग है। अपभ्रश (५५०–१२०० ई०) कविता के ह्रास का समय है।

सारे ग्रथ की एक विस्तृत भूमिका लिखना चाहता था, पर ग्रथ का कलेवर इतना बढ गया है कि उसे और बढाना अनुचित होगा। भिन्न-भिन्न कालो के ऊपर जो सक्षिप्त प्रस्तावनाये लिखी गई है, उन्हीसे पाठको को सतोष करना चाहिये।

प्रयाग
१९–१–५८

राहुल साकृत्यायन

समर्पण

जया और जेताको, जो कभी
अपने पिताकी इस कृतिको पढेगे

विषय-सूची

१. वैदिक काल

(१२००—१००० ई० पू०)

१. वैदिक काल

सस्कृत की सबसे प्राचीन कविता का नमूना हमे ऋग्वेद मे मिलता है। इसमे सदेह है, कि ऋग्वेद के ऋषियो की भाषा ऋचाओ के सग्रह मे पूरी तौर से सुरक्षित है। आखिर, उन्हे लिपिवद्ध करने मे बहुत शताब्दिया बीती, और इस बीच लोगो की भाषा बदलती रही। यद्यपि, मूलभाषा और उच्चारण को सुरक्षित रखने की पूरी कोशिश की गई, तो भी कुछ परिवर्तन तो स्पष्ट दिखाई देते है। ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वश की जिस शतम्शाखा के अन्तर्गत थे, उसमे ट वर्ग का उच्चारण बिल्कुल नही होता, यह उनके आधुनिक वशजो स्लावो (रूसी, चेक आदि) और ईरानियो के उच्चारण मे देखा जा सकता है। तो भी वह भाषा और उच्चारण में ऋग्वेद के समय वोली जानेवाली भाषा के बहुत नजदीक है।

यद्यपि उषा, नदी-स्तुति जैसे सूक्त काव्य की दृष्टि से भी सुन्दर है, किन्तु ऋग्वेद के ऋषियो को कवि होने का अभिमान होते भी आज के अर्थो मे काव्य करने की इच्छा नही थी। वह अपनी ऋचाओ (स्तुतियो)-पद्यो द्वारा अपने देवताओ को रिझाना चाहते थे। विश्वामित्र, भरद्वाज या वसिष्ठ मे सरस कविता करने की क्षमता नही थी, यह नही कहा जा सकता। ऋग्वेद काल मे क्या, हरेक काल मे कविता होती रही, लेकिन दूसरी तरह की कविताओ के सग्रह करने के लिये ऋग्वेद के सग्राहक तैयार नही हुए। पुरूरवा-उर्वशी और यम-यमी जैसे प्रेम-काव्य बतलाते है, कि उस काल मे प्रेम की कविताओ की कमी नही थी। लेकिन, इस तरह के काव्य लोक-काव्य रहे होगे, जिन्हे अपने भीतर जीर्ण होने के लिये छोड दिया गया। बहुत कम ऐसे लोक-काव्य है, जिनको आल्हा आदि की तरह शताब्दियो तक भाषा-भाव मे परिवर्तन करते मुख्य कथानक को अक्षुण्ण रखते जीवित

रखा गया। हिमालय के लोकगीतो के देखने से पता लगता है, कि वहा सौ वर्ष की आयु भी बहुत कम ही को मिलती है। ऋग्वेदकालीन आर्य बहुत कुछ उसी तरह का जीवन बिताते थे, जैसा कि हिमालय की कितनी ही जातिया।

ऋग्वेद से जो कवितायें यहा उद्धृत की गई है, उनमे सबका कविता के तौर पर अधिक मूल्य नही है, तो भी उनसे उस समय के जीवन को जानने मे सहायता मिलती है, जब कि ताम्र-युग मे अर्ध-घुमन्तू गो-अश्व-अजा-अवि-पाल आर्य जमुना से खैबर, हिमालय की तराई से राजस्थान की मरु-भूमि तक फैले देश (सप्तसिन्धु) के अपने ग्रामो और अरण्यो मे रहते थे।

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

ऋग्वेदिक कालके सबसे पुराने और प्रभावमें सबमे बड़े ऋषि थे। ऋषि उस समय उसी अर्थमें प्रयुक्त होता था, जिसमें सिद्धोंके कालमें सिद्ध शब्दका प्रयोग होता था। ऋषि और कवि पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे, और साथ ही ऋषि कोरे कवि नही होते थे। वह देवता का साक्षात्कार करनेवाले तथा कितनी ही बार देवता भी उनके ऊपर आविष्ट होता था। ऋषियोंमें सबसे पहले भरद्वाज का नाम हमारे सामने आता है। इनके पिता बृहस्पति, पितामह लोक और प्रपितामह अंगिरा थे। आंगिरस और बार्हस्पत्य होते भी यह अपने नामसे गोत्रके संस्थापक हैं। वह सप्तसिन्धु (जमुनासे पश्चिम खैंबर तककी) भूमिके

छंद—गायत्री, (१-४५), त्रिष्टुप् (४६), अनुष्टुप् (४७-४८)

१ देवता—अग्नि

१ त्वमग्ने यज्ञाना होता विश्वेषा हित ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥

२ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजामह ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥

३ वेत्था हि वेधो अध्वन पथ च देवाजसा।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥

४ त्वामीळे अध द्विता **भरतो** वाजिभि शुन।
ईजे यज्ञेषु यज्ञिय ॥४॥

५ त्वमिमा वार्या पुरु **दिवोदासाय** सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

६ त्व दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्य जन।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिं ॥६॥

७ त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये।
यज्ञेषु देवमीळते ॥७॥

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

रहनेवाले थे, जिन्हे जबर्दस्ती पीछे प्रयागमे लाकर बैठानेकी कोशिश की गई। इनके पुत्र गर्ग भी प्रतापी और एक गोत्रके प्रवर्तक ऋषि है। भरद्वाज सप्तसिन्धुके महान् विजेता भरतजन के नायक दिवोदासके पुरोहित (गुरु और प्रधान-मन्त्री) थे। शबर आदि पहाडी शत्रुओ पर विजय प्राप्त करनेमे भरद्वाजका बडा हाथ था। ऋग्वेदका छठा मडल भरद्वाजका मडल कहा जाता है, जिसके ५७ सूक्त (१-१४, १६-३०, ३७-४३ और ५३-७४) इनके रचे है। दसवे और नवे मडलमे भी इनकी रचित आधा दर्जन ऋचाये सगृहीत है।

१. अग्निकी प्रशंसा—

१ हे अग्नि, तुम यज्ञोके होता,[१] सबके हित हो,
देवोके साथ मानुष लोकमे ।।१।।
२ सो तुम हमारे यज्ञमे अपनी मादक ज्वालाओ द्वारा यजन करो।
देवताओको लाओ और हव्य दो ।।२।।
३ हे विधाता, तुम कालको और शीघ्रताके पथको जानते हो।
यज्ञोमे सुकर्मा हो हे अग्नि ।।३।।
४ सुखदायक तुम्हे भरत (जन) (और) मै दो बार स्तुति करता हू।
यज्ञोमे यज्ञीय (तुम्हे) मै पूजता हू ।।४।।
५ तुम बहुत (सोम) छाननेवाले दिवोदास के
इन श्रेष्ठ धनोको भरद्वाजके लिये दो ।।५।।
६ तुम अमर दूत (हो) दिव्य जनको लाओ,
विप्र भरद्वाजकी सुदर स्तुतियोको सुनते ।।६।।
७ हे अग्निदेव, देवताओकी तृप्तिके लिये यज्ञोमे सुचिन्तक
(मनुष्य) तुम्हारी स्तुति करते है ।।७।।

---

[१] आह्वानकर्त्ता

८ तव प्र यक्षि मदृगमुत ऋतु सुदानव
विश्वे जुषन्त कामिन ॥८॥

९ त्व होता मर्नुहितो वह्निरासा विदुष्टर।
अग्ने यक्षि दिवो विश ॥९॥

१० अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥

११ त त्वा समिद्भिरगिरो घृतेन बर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥

१२ स न पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
बृहदग्ने सुवीर्य ॥१२॥

१३ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमथत।
मूर्द्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥१३॥

१४ तमु त्वा **दध्यड्** ऋषि पुत्र ईंधे अथर्वण ।
वृत्रहण पुरन्दर ॥१४॥

१५ तमु त्वा **पाथ्यो** वृषा समीधे दस्युहन्तम ।
धनजय रणे रणे ॥१५॥

१६ एह्यूषु ब्रवाणि ते ग्न इत्थेतरा गिर ।
एभिर्वर्धास इन्दुभि ॥१६॥

१७ यत्र क्व च ते मनो दक्ष दधस उत्तर।
तत्रा सद कृणवसे ॥१७॥

१८. नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमाना वसो।
अथा दुवो वनवसे ॥१८॥

१९. आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतन ।
दिवोदासस्य सत्पति ॥१९॥

८ तुम्हारे सुदर्शन और कार्य के लिए सुदर दानवाले सारे कामनावाले
(तुम्हारी) सेवा करते है ॥८॥

९ हे अग्नि, तुम होता मननकर्ता हितू वाहक अत्यत ज्ञानवान् (हो)।
द्यौ लोककी प्रजाओका यजन करो ॥९॥

१० हे अग्नि, स्तुति किये जाते हव्यदान (और) प्रीतिके लिये आओ।
हे होता, तुम यज्ञमे बैठो ॥१०॥

११ हे अगार, तुम्हे उस घृत समिधासे हम बढाते है ।
हे अतितरुण बडी ज्वालावाले ॥११॥

१२ हे देव अग्नि, सो हमे बडे प्रशसनीय अच्छे घनको,
वृहत् सुदर पराक्रम को (प्रदान करो) ॥१२॥

१३ हे अग्नि, सबके शिर पुष्करसे अरनी द्वारा,
तुम्हे अथर्वाने मथा ॥१३॥

१४ वृत्रमारक पुरध्वसक उस तुम्हे अथर्वाके पुत्र
दधीचि ऋषिने बढाया ॥१४॥

१५ उस भारी दस्युहन्ता हरेक रणमे धन जीतनेवाले तुम्हे
पथ-सन्तान वृषाने अच्छी तरह बढाया ॥१५॥

१६ हे अग्नि, आओ सुनो, तुम्हारे लिये ऐसी अन्य वाणिया मै कहता हू।
इन सोमरसो द्वारा बढो ॥१६॥

१७ और जहा-कही तुम्हारा मन रहे, यजमानको उत्तम बनाते हो ।
वहा स्थान बनाते हो ॥१७॥

१८ हे बसानेवाले, तुम्हारा तेज मानवकी भूमिको न फेंके,
और सेवाको स्वीकार करो ॥१८॥

१९ वृत्रहन्ता बहुत चेतनावान् भरतोका अग्नि आ पहुचा
(जो कि) दिवोदासका सच्चा स्वामी है ॥१९॥

२० स हि विश्वानि पार्थिवा रयि दाशन्महित्वना।
वन्वन्नवातो अस्तृत ॥२०॥

२१. स प्रत्नवन्नवीसाग्ने द्युम्नेन सयता।
बृहत्ततथ भानुना ॥२१॥

२२ प्र व सखायो अग्नये स्तोम यज्ञ च धृष्णुया।
अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥

२३ स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतु ।
दूतश्च हव्यवाहन ॥२३॥

२४ ता राजाना शुचिव्रतादित्यान् मारुत गण।
वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥

२५ वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥

२६ क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णा ।
मर्त आनाश सुवृक्ति ॥२६॥

२७ ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायु ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अराती ॥२७॥

२८ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्व न्यत्रिण।
अग्निर्नो वनते रयि ॥२८॥

२९ सुवीर रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षासि सुक्रतो ॥२९॥

३० त्व न पाह्यहसो जातवेदो अघायत ।
रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥

३१. यो नो अग्ने दुरेव आ मर्त्तो वधाय दाशति।
तस्मान्न पाह्यहस ॥३१॥

२० वह (अपनी) महिमासे सारी पार्थिव बडी सपत्तिको देवे,
अबाधित अहिंसित, (शत्रुओका) नाश करते ॥२०॥

२१ हे अग्नि, पहिले समान नवीन तेजसे तैयार,
प्रकाशसे वृहत् विस्तारित ॥२१॥

२२ हे सखाओ, तुम खूब स्तुति और यज्ञको करो,
विधाताके लिये अर्चन गायन करो ॥२२॥

२३ वह जो कि मनुष्य युगमे होता कवि-कर्ता होकर बेठता है,
और जो हव्य वहन करनेवाला दूत है ॥२३॥

२४ हे बसनेवाले, शुद्ध व्रतवाले उन आदित्य राजाओको मरुतोके गणको
द्यौ-पृथिवी के लिये यहा यजन करो ॥२४॥

२५ हे अग्नि, तुम्हारी वसुवाली सम्यक् दृष्टि मनुष्यको अन्न देती है,
(और) न गिरनेवाले अमृतके तेजको (भी) ॥२५॥

२६ क्रिया दानसे श्रेष्ठ हो जो आज तुम्हे सुदाता चाहते है, वह
मर्द सदा सुन्दर स्तुति (करे) ॥२६॥

२७ हे अग्नि, तुम्हे सारी आयु इच्छा करते वे-वे रक्षित है।
अर्य[१] हो शत्रुओसे पार पाते, अर्य हो शत्रुओको मारते ॥२७॥

२८ अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सारे शत्रुओको भक्षण करता है।
अग्नि हमे धन देता है ॥२८॥

२९ हे जातवेद,[२] विचरणशील, सुन्दर वीरोयुक्त धन लाओ।
हे सुकर्मा, राक्षसोको मारो ॥२९॥

३० हे जातवेद, अघवाले अपराधोसे हमे बचाओ। हे मत्रके कवि, हमारी
रक्षा करो ॥३०॥

३१ हे अग्नि, जो मनुष्य हमारे बधके लिये हथियार चलाता है।
उस पापसे हमे बचाओ ॥३१॥

---

[१] स्वामी, [२] धनवान्,

३२ त्व न देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृत।
मर्तो यो नो जिघामति ॥३२॥
३३ **भरद्वाजाय** सप्रथ शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्य वसु ॥३३॥
३४ अग्निर्वृत्राणि जघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्ध शुत्र आहुत ॥३४॥
३५ गर्भे मातु पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥
३६ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।
अग्ने यद् दीदयद्दिवि ॥३६॥
३७ उप त्वा रण्वसन्दृश प्रयस्वन्त सहस्कृत।
अग्ने ससृज्महे गिर ॥३७॥
३८ उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वय।
अग्ने हिरण्यसन्दृश ॥३८॥
३९ य उग्र इव शर्यहा तिग्मश्टृगो न वसग ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥
४० आ य हस्ते न खादिन शिशु जात न बिभ्रति।
विशामग्नि स्वध्वर ॥४०॥
४१ प्र देव देववीतये भरता वसुवित्तम।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥४१॥
४२ आ जात जातवेदसि प्रिय शिशीतातिथि।
स्योन आ गृहपति ॥४२॥
४३ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधव ।
अर वहन्ति मन्यवे ॥४३॥

३२ हे देव, तुम उस दुष्कर्मा मनुष्य को (अपनी) ज्वालामे बाधित करो ।
जो हमे मारना चाहता है ।।३२।।

३३ हे दमनकर्त्ता अग्नि, भरद्वाजको विपुल सुख
श्रेष्ठ धन दो ।।३३।।

३४ प्रज्वलित आहुत धनेच्छुक, स्तुति द्वारा उज्वल समृद्ध अग्नि,
शत्रुओ को मारे ।।३४।।

३५ (अग्नि) माता[1] के गर्भ मे पिता[2] के अक्षय स्थानमे चमकते हुए
सत्यके मूल-स्थानमे आ बैठे ।।३५।।

३६ हे विश्वदर्शक, जातवेद अग्नि प्रजा-सहित धनको लाओ,
जो (अग्नि) द्युलोकको प्रकाशित करता है ।।३६।।

३७ हे अग्नि, बलकारी रमणीय-दर्शन तुम्हे सेवन करते,
हम स्तुतिया सृजन करते है ।।३७।।

३८ हे अग्नि, धूपसे मानो छायामे हम तुम्हारी शरणमे आये ।
तुम सुवर्ण सदृश हो ।।३८।।

३९ हे अग्नि, बाणोंसे मारनेवाले योद्धाकी तरह, तीखे सीगवाले
साडकी तरह, तुमने दुर्गोको भग्न किया ।।३९।।

४० हाथमे ककणकी तरह, उत्पन्न शिशुकी तरह, सुन्दर यज्ञवाले
प्रजाओकी अग्निको (ऋत्विक्) धारण करते है ।।४०।।

४१ देवोकी तृप्तिके लिये अत्यत धनज्ञ देव अग्निको खूब धारण करो ।
वह अपने स्थानमे आकर बैठे ।।४१।।

४२ यज्ञमे प्रादुर्भूत प्रिय अतिथि अग्निको ला बैठाओ ।
वह गृहके स्वामीको सुख (दे) ।।४२।।

४३ हे देव अग्नि, जो तुम्हारे अच्छे अश्व है, उन्हे जोडो,
(जो कि) क्रोध के लिये वहन करते है ।।४३।।

---

[1] पृथिवी, [2] द्यौलोक

४४. अच्छा नो याहृया वहामि प्रयासि वीतये।
आ देवान्त्सोमपीनये ॥४४॥
४५ उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
शोचा वि भाहृय जर॥४५॥
४६ वीती यो देव मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतार सत्ययज रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६॥
(त्रिष्टुप्)
४७ आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तप्ट भरामसि।
ते ते भवन्तूक्षण ऋपभासो वशा उत ॥४७॥ (अनुष्टुप्)
४८ अग्नि देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तम।
येना वसून्याभृता तृह्ळा रक्षासि वाजिना ॥४८॥त्रि
—ऋक् ६।१६

त्रिष्टुप् छन्द

२. देवता—उषा

४९ उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपा नोर्मयो रुशत ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनो॥१॥
५० भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्ष कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभि ॥२॥
५१ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गाव सुभगामुर्विया प्रथाना।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो नवो-
ह्ळा ॥३॥
५२ सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयि दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४॥
५३ सा वह योक्षभिरवातोषो वर वहसि जोषमनु।
त्व दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ महना दर्शता भू ॥५॥

४४ हमारे पास अच्छी तरह आओ, तृप्तिके लिये अभीष्ट वस्तुओंको लाओ। सोम-पानके लिये देवताओंको लाओ ।।४४।।

४५ हे भारतोंके अग्नि, तुम निरन्तर द्युनिमान् हो प्रकाशित हो। हे अजर, अपने तेजसे प्रकाशित होओ ।।४५।।

४६ हविवाला यज्ञमें स्तुति करता तृप्तिकारक जो मर्द अग्निदेवकी सेवा करे। (उस) सत्यपूजक होता (अग्नि) को द्यौलोक और पृथिवी उतान हाथ हो नमस्कारसे सेवे ।।४६।।

४७ हे अग्नि, तुम्हारे लिये ऋचाके साथ हृदयसे बनाये हवि हम ला रहे है। वे जैसे गौको साड (वैसे) तुम्हे तृप्तिकारक हो ।।४७।।

४८ शत्रुके अत्यत हन्ता जिस अग्रणी अग्निको देवलोग प्रज्वलित करते हैं, जो बलसे राक्षसोंको वध कर धन ला ।।४८।।

—ऋक् ६।१६

२. उषाका वर्णन

४९ शोभासे रोचमान उषायें पानीकी लहरोंकी तरह चमकती, चतुर, वसु और धनवाली सबके लिये सुपथ सुगम करती वर्तमान है ।।१।

५० कल्याणी दिखाई देती विस्तृत भासती, तुम्हारी चमकनेवाली किरणे आकाश में प्राप्त हैं। हे उषादेवी, तेजसे चमकती शोभित रूपको प्रकाशित करती हो ।।२।।

५१ फैलती सुभगा (उषा)को चमकती अरुण किरणे वहन करती हैं। जैसे फेके शस्त्रसे शूर शत्रुओंको पीडित करता है, वैसे नवागत उषा अधकार को नाश करती है ।।३।।

५२ पर्वत और निर्वातमे तुम्हारा सुपथ सुगम है, स्वय तेजस्वी, तुम लोक को पार कर जाती हो। बडी रथवाली हे द्योलोककी कन्या, तुम हमे इच्छित धन दो ।।४।।

५३ हे उषा, सो तुम जो अनिरुद्ध हो अक्षो द्वारा चुपचाप वर (धन) वहन करती हो। हे द्युलोककी दुहिता, देवी तुम प्रथम आह्वानमे पूजनीय दर्शनीय हो ।।५।।

५४ उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते विहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥

—ऋक् ६।६४

त्रिष्टुप् छन्द

देवता—उषा,

५५ एषा स्या नो दुहिता दिवोजा क्षितीरुच्छती मानुषी-
रजीग ॥
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चि-
दक्तून् ॥१॥

५६. वितद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्र भात्युपसश्चद्ररथा ।
अग्र यज्ञस्य बृहतो नयतीर्वि ता बाधते तम ऊर्म्याया ॥२॥

५७ श्रवो वाजमिषमूर्ज वहती नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनोर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३॥

५८ इदाहि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषास
इदा विप्राय जरते यदुक्था निष्म मावते वहथा पुरा
चित् ॥४॥

५९. इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामगिरसो गृणति ।
व्यर्केणबिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूति ॥५॥

६०. उच्छा दिवो दुहित प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीर रयि गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो न ॥६॥

—ऋक् ६।६५

५४ तुम्हारे उठने पर पक्षी घोंसलोंमे निकलने, जो अन्न-इच्छुक नर (वे) जाग उठने हैं। हे देवि दाता नरका तुम बहुत कमनीय धन देती हो ।।६।।

—ऋक् ६।६४

२. उषा का वर्णन,

५५ सो हमारी द्यौमे उत्पन्न पुत्री इस उषाने अन्धकारको हटाते मानुषी (जनता) को जगाया। (वह) जो कि चमकती किरणों द्वारा रातमें अधकार को दूर कर दीप्तिमानोको बतलाती है ।।१।।

५६ लाल घोडो के साथ उषाके विस्तृत, अद्भुत सुवर्ण-रथ आ गये। वह बृहत् यज्ञको आगे ले जाती रातके तमको हटाती है ।।२।।

५७ हे उषाओ, तुम दाता मनुष्यके लिये यश, बल, अन्न, रस लाती हो। धनवती यात्रिणी, तुम आज दाता वीरको सतान और रत्न दो ।।३।।

५८ हे उषाओ, अब तुम्हारे सेवकको, अब वीर दाताको रत्न है। अब मुझ स्तुतिकारक विप्रके लिये—जिसके पास उक्थ है—पहलेकी तरह धन लाओ।।४।।

५९ हे अद्रि-शिखरोवाली उषा, अब अगिरा[1] गायोके गोष्ठमे तुम्हारी स्तुति करते है। तेजस्वी मत्रोने तुमको स्फुटित किया और मनुष्योका यज्ञ सत्य हुआ ।।५।।

६० हे द्यौकी दुहिता, प्राचीनोकी तरह धनवती भरद्वाज जैसे स्तोताका अन्धकार हटाओ। सुदर वीरो युक्त धन (उस) स्तुतिकर्ताको दो, हमे बहु व्यापक यश दो ।।६।।

—ऋक् ६।६५

---

[1] पुरोहित, ब्राह्मण

२ वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

यह भरद्वाज के तरुण-समकालीन तथा दिवोदास-पुत्र सुदास के पुरोहित थे। इनके पिता मित्रावरुण और माता उर्वशी अप्सरा बतलाई जाती है, जिनका अर्थ यही है, कि इनके पूर्वजो के नाम आदि के सुरक्षित रखने की कोशिश नही की गई। इनके पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर थे। शक्ति बहुत गरम-मिजाजके थे। वसिष्ठका सुदास के अभ्युदय मे सबसे बडा हाथ था। दाशराज्ञयुद्धमे इनके वशजो और इनकी बुद्धि ने बहुत भारी काम किया था। सुदास इतने अधिक प्रभावशाली व्यक्ति को सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि वसिष्ठ के प्रताप के सामने वह धूमिल पड जाता था, इसीलिए उस समय के दूसरे प्रभावशाली ऋषि

१. दाशराज्ञ—

१ श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमदु ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे **वसिष्ठा.**॥१॥

२ दूरादिद्रमनयन्नासुतेन तिरो वैशतमतिपातमुग्र।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिद्रा वृणीता **वसिष्ठान्**॥२॥

३ एवेन्नु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु क **भेद**मेभिर्ज्जघान।
एवेन्नु क **दाशराज्ञे सुदासं** प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो **वसिष्ठा**॥३॥

४ जुष्टी नरो ब्रह्मणा व पितॄणामक्षमव्यय न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेद्रे शुष्ममदधाता **वसिष्ठा.**॥४॥

२. वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

विश्वामित्र को उसने अपना पुरोहित बनाया, जिनके प्रधान मन्त्रित्व में सुदास ने दिग्विजय और अश्वमेध-यज्ञ करके अपने प्रभाव को यमुना के पूर्ववाले अनार्य राजाओ पर बढ़ाया। सुदास के इस कार्य से वसिष्ठ और विश्वामित्र के घरो मे वैमनस्य हो गया। शक्ति ने खुलकर विरोध करना चाहा, जिसके कारण सुदास के हाथो अपने प्राणो को खोने के सिवा और कोई लाभ उसे नहीं हुआ। शक्ति के पुत्र पराशर का व्यास के पिता पराशर से कोई सम्बन्ध नहीं है। वसिष्ठ ने सबसे अधिक अर्थात् १०४ सूक्त रचे है, जिनसे ऋग्वेद का सातवां मडल बना है, इसीलिए इस मडल को वसिष्ठ-मडल भी कहते है। नवें मडल में एक दर्जन से ऊपर और दसवें मडल में भी आधा दर्जन इनकी ऋचायें *सगृहीत है। (ऋग्वेद में दस मडल है, हरेक मडल में बहुत से सूक्त और हरेक सूक्त में बहुत सी ऋचाये है।)

१. दाशराज्ञयुद्ध—

१ बुद्धि जीतनेवाले दाहिने जूडा रखनेवाले मेरी वसिष्ठ-सन्तानें प्रसन्न है। यज्ञसे उठते मै मनुष्योको कहता हू, मेरी वसिष्ठ-सन्तानें दूर न जाये ॥१॥

२ वायत-सतान पाशद्युम्नसे अलगकर, चमसमें स्थित बहुतसा सोम पिये उग्र इन्द्रको छाने (सोम) से दूर ले गये, इन्द्रने वसिष्ठोको वरण किया ॥२॥

३ इस प्रकार इनके द्वारा इन्द्रने सिन्धुको पार कराया, ऐसे ही इनके द्वारा भेदको मारा। ऐसे ही वसिष्ठो, तुम्हारे मत्र द्वारा दाशराज्ञ-युद्धमे इन्द्रने सुदासकी रक्षा की ॥३॥

४ हे नरो, तुम्हारे मत्रसे पितरोकी तृप्ति होती है, अक्षीण धुरीको तुम नष्ट नही करते। हे वसिष्ठो, जो कि तुमने शक्वरी ऋचाओमें बृहत् शब्द द्वारा इन्द्रके बलको धारा ॥४॥

५ उद्द्ययामिवेत्तृष्णजो नाथितासो दीधयु**र्दाशराज्ञे** वृतास ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरु **तृत्सुभ्यो** अकृणोदु
लोक ॥५॥

६ दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिछिन्ना भरता
अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता **वसिष्ठ** आदिन् तृत्सूना विशो
अप्रथत ॥६॥

७ त्रय कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्र प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा ।
त्रयो घर्मास उषस सचन्ते सर्वा इत्ता अनु
विदुर्व**सिष्ठा**: ॥७॥

८ सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषा समुद्रस्येव महिमा गभीर ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो **वसिष्ठा** अन्वेतवे व ॥८॥

९ त इन्निण्य हृदयस्य प्रकेतै सहस्रवल्शमभि सचरति ।
यमेन तत परिधि वयतोऽप्सरस उपसेदुर्व**सिष्ठाः** ॥९॥

१० विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रावरुणा यदपश्यता त्वा।
तत्ते जन्मोतैक **वसिष्ठागस्त्यो** यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥

११ उतासि मैत्रावरुणो **वसिष्ठोर्वश्या** ब्रह्मन्मनसोधि जात ।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवा पुष्करे
त्वाददत ॥११॥

१२ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदान ।
यमेन तत परिधि वयिष्यन्नप्सरस परिजज्ञे **वसिष्ठः**॥१२॥

१३ सत्रे ह जाता विषिता नमोभि कुम्भे रेत सिषिचतु समान।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहु**र्वसिष्ठं** ॥१३।

१४ उकथभृत सामभृत विभर्ति ग्रावाण विभ्रत् प्रवदात्यग्र
उपैनमाध्व सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो
वसिष्ठः ॥१४॥

—ऋक् ७।३३

५ **दाशराज्ञ** युद्धमे घिरे हुए (उन्हे), वृष्टि चाहनेवाले उगते (सूर्य) की तरह ऊपर उठाया। स्तुति करते वसिष्ठकी (बात) इन्द्रने सुनी और तृत्सुओके लिये विशाल लोक बनाया ॥५॥

६ दडकी (मारी) गौकी तरह **भरत** छिन्न-भिन्न अल्पजन (तथा) बच्चे (से) थे। **वसिष्ठ** (जैसे ही) इनको अगुवा हुए, तृत्सुओकी प्रजाये विशाल हो गई ॥६॥

७ तीन (अग्नि-वायु-सूर्य) भुवनमे जल बनाते है, आर्य प्रजा तीन अग्र-ज्योति है। तीन प्रकाशमान उषाका सेवन करते है, उन सबको वसिष्ठ-सतान जानती है ॥७॥

८. हे वसिष्ठो, इनकी ज्योति सूर्य के समान, महिमा समुद्रके समान गभीर है, वेग वायुकी तरह। तुम्हारे स्तोमोके पास दूसरा नही आ सकता ॥८॥

९ उन्होने तो हृदयके ज्ञान द्वारा छिपे सहस्र शाखाओवाले (लोक) मे सचार किया। यम द्वारा फैलाये परिधिको बुनते वसिष्ठ लोग अप्सराओके पास पहुचे ॥९॥

१०. हे वसिष्ठ, मित्र और वरुणने ज्योति जगाते जो तुम्हे देखा था, सो तुम्हारा एक जन्म है, अगस्त्यने जो प्रजाये तुम्हे ला दी ॥१०॥

११. हे ब्रह्मन् वसिष्ठ, तुम **मित्र** और वरुणके हो, तुम **उर्वशी**के मनसे जन्मे। जो विन्दु गिरा, उस तुम्हे विश्वदेवोने दिव्य मत्र द्वारा पुष्करमे धारण किया ॥११॥

१२ वह प्राज्ञ दोनोके महाविद्वान् सहस्र दान अथवा दानसहित, यम द्वारा विस्तृत परिधि बुननेके इच्छुक वसिष्ठ अप्सरासे उत्पन्न हुये ॥१२॥

१३ सत्रमे विद्यमान नमस्कारो द्वारा प्रार्थित मित्र-वरुणने एक साथ कुभमे वीर्य सिचन किया। उसीके मध्यसे मान उत्पन्न हुआ, वसिष्ठ ऋषिको उसीसे जन्मा कहते है ॥१३॥

१४. उक्थ-धारक सोम-धारक सिलबट्टा लिये (वह) अच्छा उपदेश देते है। तृत्सुओ, वसिष्ठ तुम्हारे पास आ रहे है, प्रसन्नचित्तसे इनकी पूजा करो ॥१४॥

—ऋक् ७।३३

२. देवतागृह—

१५ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि न ॥१॥

१६ यदर्जुनसारमेय दत यच्छसे।
वीव भ्राजत ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२॥

१७ स्तेन राय सारमेय तस्कर वा पुन सर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप॥३॥

१८. त्व सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप ॥४॥

१९. सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पति।
ससन्तु सर्वे ज्ञातय सस्त्वयमभितो जन ॥५॥

२०. य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जन।
तेषा स हन्मो अक्षाणि यथेद हर्म्यं तथा ॥६॥

२१. सहस्रशृगो वृषभो य समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वय नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७॥

२२ प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरी।
स्त्रियो या पुण्यगधास्ता. सर्वा स्वापयामसी ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषा—

२३ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात्।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ॥१॥

२४. महे नो अद्य सुविताय बोध्युषा महे सौभगाय प्रयधि।
चित्र रयि यशस धेह्यास्मेदवि मर्तेषुमानुषि श्रवस्यु ॥२॥

२. गृहदेवता—

(गृह-देवता और इन्द्र का वर्णन, छन्द गायत्री अनुष्टुप् वृहती)

१५ हे रोगनाशक गृहरक्षक, सारे रूपोमे प्रविष्ठ सखा, हमारे सुखको बढाओ ॥१॥

१६ हे श्वेत सरमा-पुत्र, जब तुम भूरे दातोको दिखलाते हो, तब वह भोजनके समय ओठके पास अस्त्रसे चमकते है। सुखसे सो जाओ ॥२॥

१७ हे सारमेय, चोर या डकैतके पास घूम जाओ। इन्द्रके स्तोता हमें क्यो बाधते हो ? सुखसे सो जाओ ॥३॥

१८ तुम सूअरको दर्दराओ और सूकर तुझे दर्दराये। इन्द्रके स्तोता हमें क्यो बाधते हो ? सुखसे सो जाओ ॥४॥

१९ माता सोवे, पिता सोवे, श्वान सोवे, विश्वति सोवे। सारे जातिवाले सोवे। यह जन (भी) चारो ओर सोवे ॥५॥

२०. जो स्थित है और जो चलता है और जो जन हमे देखता है। उनकी आखोको हम हनन करते है, जैसे यह हर्म्य वैसे वह ॥६॥

२१. सहस्र श्रृगो (किरणो) वाला वृषभ जो समुद्रसे उठा। उस बलिष्ठ द्वारा हम जनोको सुला देंगे ॥७॥

२२. आगनमे सोनेवाले बाहर सोनेवाले जो शय्यापर सोनेवाली नारियाँ हैं, जो पुण्य गधवाली स्त्रिया है, उन सबको हम सुला देंगे ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषाका वर्णन—

२३ द्योलोकमे उत्पन्न उषाये प्रादुर्भूत हुईं, सत्य द्वारा महिमा प्रकट करती आई। अगिरस्तमाने अप्रिय अन्धकारको हटाया पथोको प्रकाशित किया ॥१॥

२४ हे उषा, आज हमारे सुखके उत्पादनके लिये जागो, महासौभाग्य दो। हे मानुषि देवि, हम मर्त्यों को अद्‌भुत धन यश पुत्र दो ॥२॥

२५ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगु ।
जनयतो दैव्या ने व्रतान्या पृणतो अन्तरिक्षा व्यस्थु ॥३॥

२६ एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यति वयुना जनाना दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

२७ वाजिनीवती सूर्यस्य योपा चित्रामघा राय ईशे वसूना ।
ऋषिष्टुता जरयन्ति मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणानं ॥५॥

२८. प्रति द्युतानामरुपासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषस वहत ।
यानि शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधते जनाय ॥६॥

२९ सत्त्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।
रुजद्दृह्ळानि ददद्रुस्त्रियाणाप्रति गाव उषस वावशत॥७॥

३० नू नो गोमद्वी रवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो वर्हि पुरुषता निदे कर्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥८॥

—ऋक्७।७५

४. इन्द्र-वरुण—

३१ युवा नरापश्यमानास आप्य प्राचा गव्यत **पृथुपर्शवो** ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च **सुदास**मिन्द्रावरुणावसावत ॥१॥

३२ यत्रा नर समयते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति कि चन प्रिय ।
यत्रा भयते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

२५ दर्शनीय उषाकी वे ये अद्भुत अमृत किरणे आई। दिव्य व्रतोको जन्माती अतरिक्षको भरती फैली ॥३॥

२६ वह यह उद्योगपरायणा दूरसे तुरन्त पाचो जनोके पास आती है। द्यौकी दुहिता भुवनकी रक्षिका ज्ञान द्वारा जनोको देखती ॥४॥

२७ अन्नवाली अद्भुत धनवाली हे वसुओके धनकी स्वामिनी, ऋषियो द्वारा स्तुत जरा करनेवाली धनी यजमानो द्वारा प्रशसित उषा उगती है ॥५॥

२८ अरुण अद्भुत घोडे चमकती उषाको वहन करते दिखाई देते है। सेवकजनको रत्न देती वह शुभ्र नाना वर्णके रथ द्वारा जाती है ॥६॥

२९ सत्या महती पूज्य देवी सत्य बडे पूजनीय देवोके साथ तमको भेदन करती गोचर प्रदान करती है। गाये उषाकी चाहना करती है ॥७॥

३० हे उषा, गायो और वीरो से युक्त रत्न-अश्वसहित बहुत भोग हमें दो। पुरुषोमे हमारे यज्ञकी निदा न करो। तुम हमारी सदा स्वस्तिके साथ रक्षा करो ॥८॥

—ऋक् ७।७५

४. इन्द्र और वरुणका वर्णन—

३१ हे नेताओ, प्राप्य तुम दोनोको देखते गौ-उच्छुक **पृथु** और **पर्शु** पूर्वकी ओर गये। दास शत्रुओ और आर्योको तुमने मारा और इन्द्र-वरुणने **सुदास**को रक्षासे रक्षित किया ॥१॥

३२ जहा नर ध्वज उठाये मिलते है, जिस युद्धमे कुछ भी प्रिय नही होता। जहा लोग स्वर्गदर्शी होते है। वहा हे इन्द्र-वरुण, हमारी बातें करना ॥२॥

३३ स भूम्या अता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो वार्गवसा हवनश्रुता गत ।।३।।

छन्द—जगती-त्रिष्टुप्

३४ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति **भेदं** वन्वता प्र **सुदास**मावत ।
ब्रह्माण्येषाशृणुत हवीमनि सत्या **तृत्सूनाम**भवत्पुरोहित ।।४।।

३५ इन्द्रावरुणावभ्यातपति माघान्यर्यो वनुषामरातय ।
युव हि वस्व उभयस्य राजथो घ स्मा नोवत पार्ये दिवि ।।५।।

३६ युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये ।
यत्र **राजभिर्दशभिर्**निवाधितप्र **सुदास**मावत **तृत्सुभिः** सह।।६।।

३७ दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु ।
सत्त्या नृणामद्म सदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।७।।

३८ **दाशराज्ञे** परियत्ताय विश्वत सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षत ।
श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवतो असपत **तृत्सवः** ।।८।।

३९ वृत्राण्यन्य समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वा वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छत ।।९।।

४० अस्मे इन्द्रा वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्न यच्छन्तु महि शर्म सप्रथ ।
अवध्रज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे।।१०।।

—ऋक्७।८३

३३ हे इन्द्र-वरुण, भूमिके अन्त ध्वस्त दिखाई देते है, द्योलोकमें कोलाहल उठा है। जनोके शत्रु मेरे पास खडे है, (मेरी) पुकार सुनकर तुम रक्षा के साथ पास आओ ॥३॥

३४ हे इन्द्र-वरुण, हथियारो द्वारा शत्रु भेद को मारते तुमने सुदासकी रक्षा की। इनके मत्र सुने, युद्धमे तृत्सुओका पुरोहित होना (हमारा) सत्य हुआ ॥४॥

३५ हे इन्द्रवरुण, चारो ओरसे मुझे हिंसक शत्रुओके हथियार सता रहे हैं। तुम दोनो प्रकारके धनोके स्वामी हो, हमारी युद्धके दिनोमे रक्षा करो ॥५॥

३६ युद्धमे इन्द्र और वरुण तुम दोनोको धनकी प्राप्तिके लिये पुकारते है। जहा दस राजाओ द्वारा पीडित सुदासको तृत्सुओके साथ तुमने रक्षा की ॥६॥

३७ हे इन्द्र-वरुण, एकत्रित हुये अभक्त दस राजा सुदाससे नही लड सके। अन्नवासी मनुष्योकी स्तुति सत्य हुई, इनके यज्ञोमे देव लोग आये ॥७॥

३८ इन्द्र और वरुण, तुमने दाशराज्ञमे चारो ओरसे घिरे सुदासको बल दिया। जहा श्वेतवर्ण जूडाधारी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तुति-से सेवा करते थे ॥८॥

३९ हे इन्द्र-वरुण, एक (इन्द्र) युद्धमे वृत्रको मारते हो, दूसरा (वरुण) सदा व्रतकी रक्षा करता है। हम तुम अभीष्टदाताओकी सुन्दर स्तुति करते है, हमें सुख प्रदान करो ॥९॥

४० इन्द्र-वरुण, मित्र, अर्यमा हमे महाधन, विस्तृत सुख प्रदान करें। सत्यवर्धक अदितिकी ज्योति (अहानिकर) हो, हम सविता देवताका श्लोक गा रहे हैं ॥१०॥

—८।७३

३ विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

यह् वसिष्ठ के समवयस्क, और भरद्वाज के तरुण-समकालीन थे। इनके समय में भरद्वाज राजकाज से अवसर-प्राप्त कर चुके थे। वसिष्ठ के प्रताप से जलकर सुदासने विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया था। दाशराज्ञयुद्ध में भी इनका कुछ हाथ था, पर उतना नही, जितना कि बतलाये जाने की कोशिश की जाती है। उदाहरणार्थ दुस्तर नदियों के पार करने की घटना दाशराज्ञयुद्ध मे हुई, और इस सफलता का श्रेय वसिष्ठ लेना चाहते है, जो ठीक भी है। पर, विश्वामित्र ने व्यास और सतलुजकी जो सुन्दर काव्यमय स्तुति की है, इसका यह अर्थ लगाया जाता है, कि नदियों के पार कराने का काम विश्वामित्र ने किया था। इसमें सन्देह नहीं, इन तीनो प्राचीन

१ नदी स्तुति—

१ प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे **विपाट्छुतुद्री** पयसा जवेते ॥१॥

२ "इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्र रथ्येव याथ ।
समाराणे उर्मिभि पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति
शुभ्रे ॥२॥

३ अच्छा सिन्धु मातृतमामयास विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा सरिहाणे समान योनिमनु सचरति" ॥३॥

४ "एना वय पयसा पिन्वमाना अनु योनि देवकृत चरति ।
न वर्तते प्रसव सर्गतक्त कियुर्विप्रो नद्यो जोहवीति" ॥४॥

५ "रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहुर्तमेवै ।
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे **कुशिकस्य** सूनु" ॥५॥

३. विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

महान् ऋषियों में सबसे अधिक काव्य-प्रतिभा विश्वामित्र को मिली थी।

विश्वामित्र के पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ थे। इनके पुत्र अष्टक यद्यपि ऋग्वेद मे अधिक प्रसिद्ध नही है, लेकिन बुद्ध ने इन्हे महान् ऋषियो में गिना है। विश्वामित्र के दूसरे पुत्र मधुच्छन्दा बडे प्रतापी थे, जिनके पुत्र जेताकी भी ऋचायें मिलती है। यह कहने की आवश्यकता नही, कि भरद्वाज, वसिष्ठ की तरह विश्वामित्र भी जमुना से पश्चिम सप्तसिन्धु के निवासी थे। सप्तसिन्धु में उनके लोग सबसे पूर्व सरस्वती की उपत्यका अर्थात् आजकल के हरियाना प्रदेश मे रहते थे।

ऋग्वेद का तीसरा मडल इनका है, जिसमें ४७ सूक्त (१–१२, २४–३०, ३२–५३, ५७–६२) इनके रचे है। नवें और दसवे मडलो में में भी एक दर्जन के करीब इनकी ऋचाये सगृहीत है।

व्यास और सतलुजकी प्रार्थना—

१ कामना करती मुक्त घोडियोकी तरह हिनहिनाती, चाटनेकी इच्छावाली दो शुभ्र माताओ (गौओ) सी पर्वतोकी गोदसे व्यास और सतलुज पय (जल) के साथ दौड रही है॥१॥

२ इन्द्र द्वारा प्रेरित, प्रार्थना सुनती तुम दोनो भले रथियोकी तरह समुद्रको जा रही हो। साथ बहती लहरोसे भरी हे शुभ्रो, तुम परस्पर साथ जा रही हो॥२॥

३ मै मातृतमा सिन्धु (सतलुज) के पास आया, सुभगा विशाल व्यासके पास पहुचा। बछडेको माताओकी तरह चाटती जो एक स्थानमें सचार करती है॥३॥

४ "हम ये दोनो पय (जल) भरी देव-निर्मित स्थानमे अनुचरण कर रही है। सृष्टिसे चली आज्ञा बन्द होनेकी नही, विप्र, किसलिये तू नदियोको पुकारता है?" ॥४॥

६ "इन्द्रो अस्मा अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्र परिधि नदीना।
देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी ।।६।।

७ प्रवाच्य शश्वधा वीर्य तदिन्द्रस्य कर्म यदहि विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमाना "।।७।।

८ "एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि क पुरुषत्रा
नमस्ते" ।।८।।

९ "ओषु स्वसार कारवे श्रृणोत वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्व भवता सुपारा अधो अक्षा सिन्धव
स्रोत्याभि " ।।९।।

१० "आ ते कारो श्रृणवामा वचासि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचैते"।।१०।।

छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्

११ "यदग त्वा **भरता** सतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूत ।
अर्षादह प्रसव सर्गतक्त आ वो वृणे सुमति यज्ञियाना ।।११।।

१२ अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात
शीभ ।।१२।।

१३. उद्व ऊर्मि शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुचत।
मादुष्कृन्तौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारता ।।१३।।

—ऋक् ३।३३

५ "हे सत्यवतियो, मेरे सोम्य वचनके लिए क्षण भर गमनसे रुक जाओ। रक्षाका इच्छुक मैं कुशिकका पुत्र बडी स्तुतिसे सिन्धुको बुलाता हूं" ॥५॥

६ "वज्रवाहु इन्द्रने वृत्रको मारा और हमारे लिये नदियोकी परिधि खोदी। सुपाणि सविता देव हमे ले जाता है, उसकी आज्ञामे हम फूली जा रही है॥६॥

७ सदा उस पराक्रमका बखान करना चाहिए, इन्द्रका कर्म अहि (मेघ) को मारना है। उसने वज्रसे (शत्रु-) परिषदोको मारा, तब स्थान की इच्छा करते जल आये ॥७॥

८ हे स्तुतिकारक, इस वचनको न भूलना। आगे युगोमे तुम्हारा उत्तम घोष (होगा)। हे कवि, उक्थो (स्तुतियो) से हमारी सेवा करो, हमे पुरुष (-अधीन)का न करना, तुम्हें नमस्कार" ॥८॥

९ "हे बहिनो, कविकी सुनो, वह बैलके रथसे तुम्हारे पास दूरसे आया है। नदियो, नीची हो धाराओसे धुरेके नीचे हो सुपारा हो जाओ" ॥९॥

१०. "हे कवि, तेरे वचनोको हम सुनती है, तू दूरसे बैलके रथसे आया है। दूध पिलानेकी इच्छुक स्त्री (या) पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिये नीची हो जाती है" ॥१०॥

११. "हे प्रियो, जो गो-इच्छुक इन्द्र-प्रेरित ग्राम इच्छित भारत लोग तुम्हे पार कर जाये, (तो) सृष्टिसे चली आज्ञा पानेसे मै तुम पूजनीयो की स्तुति करूंगा" ॥११॥

१२ गौ-इच्छुक भरत पार हो गये, विप्रने नदियोकी सुदर स्तुति की। "अन्न देती सुधनवाली तुम बढती पूरी करती जल्दी जाओ" ॥१२॥

१३ "हे नदियो, तुम्हारी शान्त लहरे बहे, पानी जूयेकी रस्सीको छोड दे। निष्पाप निष्कलुष अनिंदनीय (तुम) दोनो मोटी न होओ" ॥१३॥

—३।३३

२. उषा—

१४　उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे ।।१।।
१५　उषो देवमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो
ये ।।२।।
१६　उष प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
समानमर्थ चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ।।३।।
१७　अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदसा आन्ताद्दिव पप्रथ आ पृथिव्या
।।४।।
१,　अच्छा वो देवीमुषस विभाती प्र वो भरध्व नमसा सुवृक्ति
ऊर्ध्व मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे
रण्वसन्दृक् ।।५।।
१९　ऋतावरी दिवो अर्कैरवोध्या रेवति रोदसि चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषस विभाती वाममेषि द्रविण भिक्षमाण
।।६।।
२०　ऋतस्य बुध्न उषसाभिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानु विदधे पुरुत्रा ।।७।।

—ऋक् ३।६१

छन्द—त्रिष्टुप

२. उषाका वर्णन—

१४ अन्नसे अन्नवाली, धनवाली प्रचेतनावाली हे उषा, गायकके स्तोत्रको ग्रहण करो। विश्वको पसन्द युवती महिला हे पुरानी देवी, तुम व्रत-अनुसार प्रिय चलती हो ॥१॥

१५ अमर सुभाषित को प्रेरणा करती सुवर्ण-रथवाली हे देवि उषा, चमको। सुनियत्रित सुनहले रगके बडे शक्तिशाली जो घोडे है, (वह) तुम्हे वहन करे ॥२॥

१६ हे उषा, तुम भुवनोके सामने, विश्वके ऊपर अमृतके ध्वजके समान रहती हो। एक ही अर्थके लिए विचरण करती (सूर्यके) चक्र सी हे अतिनवीना, तुम चलो ॥३॥

१७ सूर्यकी पत्नी धनवन्ती उषा अधकारको नष्ट करती हुई सी जा रही है। वह सुभगा सुदर्शना द्योलोकके अतसे पृथिवी तक प्रकाश उत्पादन करती फैली ॥४॥

१८ "हे (स्तोताओ), अपने सामने चमकती उषाको नमस्कार द्वारा सुन्दर स्तुति अर्पित करो। ऊपर द्यौमे मधुधारिणी तेजको स्थापित करती, रोचना, रमणीय-दर्शना वह (उषा) दीप्त हो रही है ॥५॥

१९ सत्यवती द्योलोककी किरणोसे जाती, वह धनवती द्योलोक और पृथिवीमे विचित्र रूपसे स्थित है। हे अग्नि, चमकती आती उषासे प्रार्थना करते तुम प्रिय धन पाते हो ॥६॥

२० उषाको प्रेरणा करते सत्य शरीर वृषा (सूर्य) महान् द्यौ-पृथिवीमे प्रवेश करते है। मित्र (स्वरूप) वरुणकी माया उषाने (अपनी) सोने सी किरणोको सर्वत्र फैलाया ॥७॥

—३।६१

४. वामदेव (१२०० ई० पू०)

यह गौतम के पुत्र और रहूगण के पौत्र थे। वामदेव यद्यपि आदिम तीन ऋषियों के समान राजनीतिक प्रभाव नही रखते थे, लेकिन शुद्ध ऋषि के तौर पर इनका भारी महत्व है। ऋग्वेदका चौथा मडल प्राय सारा इन्हीकी कृति है, जिसके ५८ सूक्तो में तीन (४२-४४) छोडकर सभी इनके हैं। यदि राजनीतिक प्रभाव में ये औरों से पिछडे हुये थे, तो

१. उषा—

१ इदमु त्यत् पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नून दिवो दुहितरो विभातीर्गातु कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥
२ अस्थुरु चित्रा उषस पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रन्छुचय पावका ॥२॥
३ उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधो देयायोषसो मघोनी।
अचित्रे अन्त **पणय** ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये॥३॥
४ कुवित् स देवी सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अगिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥
५ यूय हि देवी ऋतयुग्भिरश्वै परिप्रायाथ भुवनानि सद्य।
प्रबोधयन्तीरुषस ससन्त द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय जीव ॥५॥
६ क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणा।
शुभ यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥
छन्द—त्रिष्टुप्
७ ता घा ता भद्रा उषस पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्या।
यास्वीजान शशमान उक्थै स्तुवन्छसन्द्रविण सद्य आप ॥७॥

४. वामदेव

देवता के साक्षात्कार और देवता का आवेश लेने मे यह आगे थे। कितनी ही ऋचाओ मे देवताओ ने इनके मुख से "मै" कहकर बुलवाया है। इस प्रकार की स्तुति रचने वाले यही सर्वप्रथम (और शायद अन्तिम भी) ऋषि थे। अपना गोत्र इन्होने नहीं चलाया। इनके पिता के नाम से यह और इनकी सताने गौतम प्रसिद्ध हुईं। यह तीनो ऋषियो के समकालीन, किन्तु सबसे तरुण थे।

१. उषा—

१ अन्धकारको नष्ट करती पूर्वमे यह वह अति विशाल ज्योति उठी। निश्चय द्यौकी दुहिता उषाये जनोको गमनशील करती भासित होती है ॥१॥

२ यज्ञमे निर्मित यूपो सी विचित्र उषाये पूर्वमे अवस्थित हुई। वह अन्धकारके द्वारको खोलती पवित्र किरणोको प्रकाशित करती है ॥ २ ॥

३ आज धनवन्ती उषाये अन्न देनेके लिये भोजोको चेताती उग रही है। अधकार के बीच न जाग, भीतरसे अविचित्र पणि सो जाये॥ ३ ॥

४ हे उषा देवियो, जिस रथके द्वारा सप्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अगिराओको तुमने धनवान् किया, हे धनवती, वही तुम्हारा नया या पुरातन रथ आज यहा बहुबार आवे॥ ४॥

५ हे देवियो, तुम सत्य से जुडे घोडो द्वारा तुरत भुवनोमे व्याप्त हो जाती हो। सोते हुये दो पायो और चौपायोको जगाती तुम गमनके लिये जीवोको चलाती हो॥ ५॥

६ इनमे कौन पुरानी हका है, जिसके लिये ऋभुओ के पात्र बने। जो कि शुभ्र उषाये विचरण करती है, (इससे कभी) न पुरानी होनेवाली सुदरी उषाये नही पहचानी जाती॥ ६॥

७ वही सत्या भद्र उषाये प्राचीनकालसे ऋतुसे उत्पन्न इच्छित धन दे, जिनको यज्ञकर्ता उक्थो द्वारा प्रशसा करते स्तुति करते तुरन्त अच्छे धनको पाते है॥७॥

८ ता आचरन्ति समना पुरस्तात् समानत समना पप्रथाना ।
ऋतस्य देवी सदसो बुधाना गवा न सर्गा उषसो
जरन्ते ॥८॥

९ ता इन्नेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्ती रभ्वमसित रुशद्भि शुक्रास्तनूभि शुचयो
रुचाना ॥९॥

१० रयि दिवो दुहितरो विभाती प्रजावन्त यच्छतास्मासु देवी ।
स्योनादाव प्रतिबुध्यमाना सुवीर्यस्य पतय
स्याम ॥१०॥

११ तद्वो दिवो दुहितरो विभातिरुपब्रुव उषसो यज्ञकेतु ।
वय स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्ता पृथिवी च
देवी ॥११॥

—ऋक् ४।५१

२. क्षेत्रपति—

१२ क्षेत्रस्य पतिना वय हितेनेव जयामसि ।
गामश्व पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे ॥१॥

१३. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिँ धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुत घृतमिव सुपूतमृतस्य न पतयो मृळयन्तु ॥२॥

१४ मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्ष ।
क्षेत्रस्य पतिर्म्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेन चरेम ॥३॥

१५ शुन वाहा शुन नर शुन कृषतु लागल ।
शुन वरत्रा बध्यन्ता शुनमष्टामुदिगय ॥४॥

१६ शुनाषीराविमा वाच जुषथा यद्दिवि चक्रथु पय ।
तेनेमामुपसिचत ॥५॥

८ वह (उषाये) पूर्वसे एक समान सर्वत्र फैलती सर्वत्र विचरण करती है। ऋत की देवियाँ उषाये बुधोकी सभामे गायो सी मुक्ति से प्रार्थित होती है ।।८।।

९ वह उषाये सुन्दर वर्णोवाली नवीना सी विचरती है। (वह) चमकते शुक्ल शरीरो से अन्धकार को हटाती पवित्र रोचमान है ।।९।।

१० प्रकाश करती द्यौ लोक की पुत्री देवियाँ, उषाये हमे प्रजा-सहित धन प्रदान करे। सुखके लिए जागरूक हम सुवीर्यके पति हो ।।१०।।

११ हे द्यौलोककी पुत्रियो, प्रकाशमान उषाओ, यज्ञ याजक।'
हम जनोमे यशस्वी होवे, द्यौ और पृथिवी देवी उसे धारण करे ।।११।।

— ४।५१

२ क्षेत्रपति—

१२ हितैषीकी तरह क्षेत्रपतिके साथ हम जय करे।
वह देवता इस प्रकार गौ और अश्वोका पोषण करता हमें सुखी बनावे ।।१।।

१३. हे क्षेत्रके पति, धेनु जैसे हो वैसे मधुमान् विपुल दूधको हमे दो। अमृत के पति हमे घृतकी तरह तृप्तिकारक मधु स्रावी कर सुखी बनाये ।।२।।

१४ हमारे लिये औषधि, द्यौ और जल मधुर हो, आकाश मधुमान् हो। क्षेत्रपति हमारे लिए मधुमान् हो, हम अपीडित हो उसका अनुसरण करे ।।३।।

१५ हे शुनासीर देवता, बहनेवाले (बैल) मगलकारी हो, नर मगल-कारी हो, हल मगल जोतें। रस्सी मगलयुक्त, बधै कोडा मगल-युक्त प्रेरणा करे ।।४।।

१६ हे शना और सीर, इस मेरे वचनको सेवन करो, द्यौ-लोकमें जो जल बना, उससे मुझे सिंचित करो ।।५।।

१७ अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगाससि यथा न सुफलाससि ॥६॥
१८ इन्द्र सीता निगृह्णातु ता पूषानुयच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
१९ शुन न फाला वि कृषन्तु भूमि शुन कीनाशा अभियन्तु वाहै ।
शुन पर्जन्यो मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥

—ऋक् ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

बध्रयश्व का पौत्र और दिवोदास का पुत्र सुदास सप्तसिन्धु का सबसे बड़ा प्रतापी राजा था, जिसके महान् विजयो मे वसिष्ठ और

१. इन्द्र—

१ प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥
२ त्व सिन्धुरवासृजो धराचो अहन्नहि।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्व पुष्यसि वार्य त त्वा परिष्वजामहे।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥
३ विषु विश्वा अरातयो नशन्त नो धिय ।
अस्तासि शत्रवे वध यो न इन्द्र जिघासति या ते रातिर्ददिर्वसु।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

१७ हे सुभगा (हलवाली) सीता, तुम्हे हम वन्दना करते है, तुम हो।
जैसे हमारे लिए तुम सुभगा हो, जैसे हमारे लिए सुफला हो ॥६॥

१८ इन्द्र सीत (हराई) को धारण करै, उषा उसका नियमन करै।
वह जलवाली आगे-आगे आनेवाले वर्षोंमे हमे तृप्त करे ॥७॥

१९ हमारे लिए फाल भूमिको मगलपूर्वक जोते, रक्षक बैलोके साथ
मगलपूर्वक चले। मेघ मधु जलोके साथ मगल करे, शुनासीर
(कृषि देवता) हमारा मगल करे ॥८॥

— ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

विश्वामित्र ने हाथ बटाया था। इसे ऋषि बनने की जरूरत नहीं थी, तो भी इसके नाम से एक सूक्त ऋग्वेद के दसवें मंडल में (१३३) सगृहीत है, जिसमे हथियार की महिमा बतलाती है, कि यह उन्हीं का धनी था।

१. इन्द्रका वर्णन—

१ जिसकी सेना रथके सामने है, उस इन्द्रकी सुअर्चना करो।
युद्धमे (जो) लोककर्ता सगमे रहता है, वह प्रेरक वृत्र-हन्ता हमारा
ख्याल रक्खे। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जाये ॥१॥

२ अहिको तुमने मारा और नीचे जानेवाली नदीको मुक्त किया।
हे इन्द्र, तुम शत्रुहीन पैदा हुए, विश्वको पालते हो। उस तुम श्रेष्ठको
हम आलिंगन करते है। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जाये ॥२॥

३ सारे अदाता हमारी बुद्धिसे हट जाये।
हे इन्द्र, जो हमे मारना चाहता है, उस शत्रुका वध करो। जोकि तेरा
धनका देना है। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जायें ॥३॥

४ यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति।
अधस्पद तमी कृधि विबाधो असि सासहि ।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥
५ यो न इन्द्राभिदामति सनाभिर्यश्च निष्टय ।
अव तस्य बल तिर महीव द्यौरध त्मना ।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥
६ वयमिन्द्र त्वायव सखित्वमारभामहे।
ऋतस्य न पथा नयाति विश्वानि दुरिता।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥
७ अस्मभ्य सु त्वमिन्द्र ता शिक्ष या दोहते प्रति वर जरित्रे। ।
अच्छिद्रोघ्नी पीपयद्यथा न सहस्रधारा पयसा मही गौ ॥७।

—ऋक् १०।१३३

६. गर्ग भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

भरद्वाज के यह पुत्र और अपने पिता के कामो में सहायक थे। ऋग्वेद के छठे मडल में इनका सिर्फ एक सूक्त (४७) सुरक्षित है, जिसके अंशों को हमने यहा उद्धृत किया है। दिवोदास और साञ्जय के यह

छन्द-शक्वरी

१. सोमादि देवता—

१ स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय।
उता न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥
२ अय स्वादुरिह मदिष्ट आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्चोत्ना शबरस्य वि नवति नव च देह्यो
हन् ॥२॥

४ हे इन्द्र, भेडियेकी तरह जो जन हमारे चारो तरफ घूमते है, उन्हे नीचे स्थान पर करो। तुम बाधक और अत्यन्त पराक्रमी हो। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जाये ॥४॥

५ हे इन्द्र, अपनी जातिका और पराया जो (भी) हमे दास बनाना चाहता। उसके बलको महान् द्योकी तरह नीचा करो। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जाये ॥५॥

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे अनुगामी (तुमसे) मित्रता करते है। हमे सारी बुराइयोसे (हटा) सत्यके पथ पर ले चलो। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमे टूट जाये ॥६॥

७ हे इन्द्र, तुम हमे उसे सिखाओ, जो कि स्तुतिकर्ताके मनोरथको पूरा करते हो। महीरूपी गौ सहस्रधार वाले पयसे निश्छिद्र हो हमारे लिये दुहाये ॥७॥

६. गर्ग भारद्वाज (१२७५ ई० पू०)

विशेष कृपापात्र थे। दिवोदास के मरने के बाद भरद्वाज-वश की प्रभुता खतम हो गई, लेकिन गर्गने इसके लिये शक्ति की तरह कोई विरोध प्रदर्शित नही किया। हा, सुदास का नाम न लेकर मौन द्वारा अपने असतोषको प्रकट जरूर किया। यह गर्ग-गोत्र के प्रवर्तक है।

१. सोम, रथ, दुन्दुभी, इन्द्रका वर्णन—

१ यह सोम स्वादु और यह मधुर है, यह तीखा और यह रसवान् है। हे इन्द्र, जिसने इसे पिया, उसके सामने युद्धमे कोई नही ठहर सकता ॥

२ यह (सोम) यहाँ स्वादु बहुत मादक है, जिसे (पी) वृत्र-युद्धके समय इन्द्र मस्त हुआ। जिस इन्द्रने बहुत प्रसन्न हो शबर के ९९ पुरो (गढो) को नष्ट किया ॥२॥

३ अय मे पीत उदियती वाचमय मनीषामुशतीमजीग. ।
अय षळुर्वीरमिमीत धीरा न याभ्यो भुवन कच्चनारे॥३॥

४ अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माण दिवो अकृणोदय स ।
अय पीयूष तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्ष ॥४॥

५ अय विदच्चित्रदृशीकमर्ण शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अय महान्महता स्कम्भनेनोद्यामस्तभ्नाद् वृषभो
मरुत्वान् ॥५॥

६ रूप रूप प्रतिरूपो बभूव नदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय
शता दश ॥१८॥

७ युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषत पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

८ अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरहूरणाहूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र
पन्था ॥२०॥

९ दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्घ कृष्णा असेधदप सद्मनो जा ।
अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तो**दव्रजे वर्चिना शम्बर** च ॥२१

१० **प्रस्तोक** इन्नु राधसस्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध. शाबर वसु प्रत्यग्रभीष्म।२२।

११ दशाश्वान्दशकोशान्दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डा**न्दिवोदासा**दसानिष ॥२३॥

१२ दश रथान्प्रष्टिमत शत गा अथर्वभ्य ।
अश्वत्थः पायवे दात ॥२४॥

३ पीनेपर यह (सोम) मेरी वाणीको उठाता है, यह अभीप्ट बुद्धिको जगाता है। इस धीरने छओ पृथवियोको बनाया, (इसके) पास भुवनमे कोई नही रह सकता ॥३॥

४ यही वह है, जिसने कि पृथिवीकी श्रेष्ठता (बनाई), और द्योलोक के विस्तारको बनाया, वह यही है । इस सोमने तीनो आधारोमे विस्तृत अन्तरिक्षमे अमृतको धारण किया ॥४॥

५ इसने श्वेत गृहवाली उषाओके पास अद्भुत दर्शनवाले सूर्यको प्रकट किया। इस शक्तिशाली इच्छावर्षो ने महा स्तम्भ द्वारा स्वर्गको स्थिर किया ॥५॥

६ सो इस (यजमान)को रूप दिखलानेके लिए एक-एक रूपमे वह प्रतिरूप हुआ। मायाओ द्वारा **इन्द्र** अनेक रूप धारण करता है। इसके दस सौ घोडे जुडे होते है ॥१८॥

७ रथमे घोडोको जोडे, त्वष्टा यहाँ सुविराजते है।
बैठे स्तुतिकर्ताओके बीच कौन सब दिन जाकर शत्रुओके विरुद्ध पक्ष लेना है ॥१९॥

८ देवो, हम ऐसे विना गायवाले क्षेत्रमे आ गये, विस्तृत होते (भी जो) भूमि दस्युओकी है। हे **बृहस्पति**, गौ-लूट मे हमे सचालित करो, इस तरह हे इन्द्र, स्तुतिकर्ताको पथ प्रदान करो ॥२०॥

९ दिन-दिन समान दूसरे आधे (दिन)को प्रकाशित किया और रातको स्थानसे हटाया। उस वृषभने **उदव्रज**मे बसते दासोको वर्चिके साथ शम्बरको नष्ट किया ॥२१॥

१० हे इन्द्र, तेरे स्तुतिकर्ताओको **प्रस्तोकने** दस कोशोके साथ दस घोडे दिये। **शम्बर** के धनको **अतिथिग्व दिवोदास**से प्राप्त कर हमने ग्रहण किया ॥२२॥

११ दस घोडे दस कोश दस वस्त्रो सहित भोजन,
दस सोनेके डले **दिवोदास**से हमने पाये ॥२३॥

१२ **अश्वत्थ**ने घोडो सहति दस रथ और सौ गाये अथर्वोके लिए पायुको दी ॥२४॥

१३ महि राधो विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान् ।
सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥

१४ वनस्पते वीळ्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरण सुवीर ।
गोभि सन्नद्धो असि वीळ्यस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि
॥२६॥

१५ दिवस्पृथिव्या पर्योज उद्भृत वनस्पतिभ्य पर्याभृत सह ।
अपामोज्मान परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्र हविषा
रथ यज ॥२७॥

१६ इद्रस्य वज्रो मरुतामनीक मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभि ।
सेमा नो हव्यदाति जुषाणो देवरथ प्रति हव्या
गृभाय ॥२८॥

१७ उप श्वासय पृथिवीमुन द्या पुरुत्रा ते मनुता विष्ठित
जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीया अपसेध शत्रून्॥२९॥

१८ आ क्रदय बलमोजो न आ धा नि ष्टनि हि दुरिता बाधमान ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि
वीळयस्व ॥३०

१९ आमूरज प्रत्यावर्तयेमा केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णा श्चरति नरो स्माकमिन्द्र रथिनो
जयन्तु ॥३१॥

—ऋक् ६।४७

छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, गायत्री और जगती

१३ विश्वजनीन बडे धनको ग्रहण करते **भरद्वाजोको सजयपुत्रने** पूजा ॥२५॥

१४ हे वनस्पति (**रथ**), दृढ अगोवाले होओ, हमारे मित्र रक्षक सुवीर होवे। गोचर्मसे तुम बधे दृढ हो। तुमपर बैठनेवाला शत्रुओ को जीते ॥२६॥

१५ द्यौ और पृथिवीके ओजसे बना वनस्पतियोके बलसे परिधारित। पानीकी तरह वेगवान् गोचर्मसे आच्छादित इन्द्रके वज्र जैसे (इस) रथको हविसे पूजो ॥२७॥

१६ हे रथदेव, तुम इन्द्रके वज्र (हो) मरुतोके अग्रगामी मित्र (सूर्य) के गर्भ (हो) और वरुणकी नाभि हो। इस हमारे हव्यदान को सेवन करते हवि ग्रहण करो ॥२८॥

१७ हे **दुन्दुभि**, पृथिवी और द्यौमे सर्वत्र बजो, स्थावर-जगम तुझे जाने। इन्द्र और देवताओके साथ (हो) तुम शत्रुओको दूरसे दूर हटादो ॥२९॥

१८ हे दुन्दुभि, दुष्ट शत्रुओको पीडित करते चिल्लाओ, हमारेमे बल और ओज धारण कराओ। दुष्टोको यहाँसे दूर करो। तुम इन्द्रकी मुष्टि हो, हमें दृढ करो ॥३०॥

१९ हे इन्द्र, इन हमारी गायोको लौटाओ, ध्वजा-सहित दुन्दुभी खूब बजती रहे। हमारे नेता घोडोपर सचार करे हमारे रथी विजयी हो ॥३१॥

—६।४७

७. पायु भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

यह भरद्वाज के पुत्र और शायद गर्ग के छोटे भाई थे। इनका छठे मंडल में सिर्फ एक सूक्त (७५) और दसवें मंडलमें एक (८७) कुल

१. वर्म, धनु आदि—

१ जीमूतस्येव भवति प्रतीक यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व स त्वा वर्मणो महिमा
पिपर्तु॥१॥

२ धन्वना गा धन्वनाजि जयेम धन्वना तीव्रा समदो जयेम।
धनु शत्रोरपकाम कृणोति धन्वना सर्वा प्रदिशो
जयेम ॥२॥

३ वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्ण प्रिय सखाय परिषस्वजाना।
योषेव शिक्ते वितताधि धन्वन् ज्या इय समने
पारयती ॥३॥

४ ते आचरयती समनेव योषा मातेव पुत्र विभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यता सविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती
अमित्रान् ॥४॥

५ बह्वीना पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधि सका पृतनाश्च सर्वा पृष्ठे निनद्धो जयति
प्रसूत ॥५॥

६ रथे तिष्ठन्नयति वाजिन पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथि ।
अभीशूना महिमान पनायत मन पश्चादनु यच्छन्ति
रश्मय ॥६॥

७. पायु

दो सूक्त मिलते हैं। अतिथिग्व (दिवोदास) के दानकी प्रशसा इन्होने की हैं।

१ वर्म, २ धनुष, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ तूणीर, ६ सारथी, लगाम, ७ घोडा, ८ रथ, ९ रथ-रक्षक, १० स्तोता, ११,१२ वाण, १३ चाबुक, १४ हस्तत्राण, १५,१६ वाण, १७ युद्धभूमि, १८ कवच, १९ देवगणका वर्णन

१ मेघका प्रतीक होता है, जब वर्मधारी युद्ध-क्षेत्रमे जाता है। तुम अक्षत शरीरसे विजयी होओ, वर्मकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥१॥

२ धनुषसे गौओको, धनुषसे युद्धको हम जीते, धनुषसे तीव्र सेनाओको जीते। धनुष शत्रुकी कामनाओको बेकार करता है। हम धनुषसे सारी दिशाये जीते ॥२॥

३ प्रिय सखाको आलिगन करती स्त्रीसी यह ज्या कानमे मधुर बोलती-सी पास आती, युद्ध पार करती है। यह ज्या फैले धनुषमे वाणको आलिगन करती है ॥३॥

४ यह दोनो आर्त्नियाँ (चापके छोर), शत्रुके प्रति विरक्त स्त्रीकी तरह आचरण करती, पुत्रको माताकी तरह युद्धमे रक्षा करे। जानती हिलती शत्रुओको छिन्न करे ॥४॥

५ तूणीर बहुतोका पिता, इसके बहुत-से (वाण) पुत्र है। युद्धमें पहुँचकर, यह शब्द करता है। पीठपर बधा (वाण) प्रसव करता सारी सेनाको जीतता है ॥५॥

६ अच्छा सारथी रथपर बैठा जहाँ-जहाँ चाहता है, (वहाँ वहाँ) घोडोको आगे ले जाता है। लगामोकी महिमा बखानो। लगाम इच्छानुसार पीछे से नियन्त्रण करती है ॥६॥

७ तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोश्वा रथेभि सह
वाजयन्त ।
अवक्रामत प्रपदैरमित्रान् क्षिणति शत्रूँरनपव्ययत ॥७॥
८ रथवाहन हविरस्य नाम यत्रायुध निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्म सदेम विश्वाहा वय सुमनस्यमाना ॥८॥
९ स्वादुषसद पितरो वयोधा कृच्छ्रेश्रित शक्तिवतो गभीरा
चित्रसेना इषुबला अमृध्रा सतो वीरा उरसो
व्रातसाहा ॥९॥
१० ब्राह्मणास पितर सोम्यास शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा
पूषा न पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशस
ईशत ॥१०॥
११ सुपर्ण वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभि सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नर.स च वि च द्रवति तत्रास्मभ्यमिषव
शर्म यसन् ॥११॥
१२ ऋजीते परि वृग्धि नो'श्मा भवतु नस्तनू ।
सोमो अधिब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु ॥१२॥
१३ आ जघति सान्वेषा जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो' श्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥
१४ अहिरिव भोगै पर्येति बाहु ज्याया हेति परिबाधमान ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमास परि-
पातु विश्वत ॥१४॥
१५ आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयोमुख ।
इद पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नम ॥१५॥
१६ अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषा कचनोच्छिष ॥१६॥

७ धूल उडानेवाले वेग करते रथोके साथ दौडते घोडे तीव्र घोष करते है। (स्वय) न भागते पैरोसे शत्रुओको रौदने (उन्हे) नष्ट करते है ॥७॥

८ जहाॅ इसका आयुध और वर्म रक्खा है, सो रथपर चलती इसका हवि है। हम सब दिन प्रसन्न हो सुखद रथके पास वहाॅ जाते है ॥८॥

९ स्वादु अन्नवान् आयुष्मान् कठिनाईमे आश्रित् शक्तिमान् गम्भीर विचित्र सेनावाले वाणबलवाले अनाशक शत्रु विजेता महान् वीर पितर (है) ॥९॥

१० हे सौम्य पितर, ब्राह्मण, द्यौ और पृथिवी पाप-रहित हो हमारे कल्याणके लिए हो। सत्य बढाते पूषन् पापसे हमारी रक्षा करे, पापी हमारे ऊपर शासन न करै ॥१०॥

११ (वाण) सुन्दर पख धारता है, इसका मृगका दाॅत (फल) गोचर्मसे बधा फेकनेपर गिरता है। जहाॅ नेता साथ या अलग-अलग दौडते है, वहा सयत वाण हमे सुख दे ॥११॥

१२ हे वाण, हमे बढाओ, हमारा शरीर पत्थर-सा हो।
सोम हमारी ओर बोले, अदिति हमे सुख दे ॥१२॥

१३ तुमसे समझदार घोडोके पीठपर मारते है, जघनपर मारते है।
हे चाबुक, अश्वोको युद्धमे प्रेरित करो ॥१३॥

१४ सर्पकी तरह फणो द्वारा बाहुको लपेटते ज्यासे आघातको रोकते सारे ज्ञेयोको जानते पुरुषरूपी हस्तघ्न चारो ओरसे पुरुषकी रक्षा करे ॥१४॥

१५ जो विषाक्त और तीखी छोरवाली है, जिसका मुख ताबेका है। पर्जन्यसे उत्पन्न (उस) इषु (वाण) देवीको यह (हमारा) बडा नमस्कार है ॥१५॥

१६ छोडनेपर मन्त्र-द्वारा तीव्र किये हे वाण, तुम दूर गिरो।
जाओ अमित्रोको प्राप्त होओ, उनमे किसीको न छोडो ॥१६॥

१७ यत्र वाण सपतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदिति शर्म यच्छतु,
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

१८ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सामस्त्वा राजामृतेनानुवस्ता।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयत त्वानु देवा मदतु॥१८॥

१९ यो न स्वो अरणो निष्ट्यो जिघासति।
देवास्त सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममातर ॥१९॥

—ऋक् ६।७५

८ दिव्य आँगिरस (१००० ई० पू०)

अंगिरा-गोत्र के किन्तु ऋग्वेद के पीछेवाले ऋषियो मे है। दसवें मडल का एक सूक्त (१०७) इनका रचा है।

छन्द· अनुष्टुप्, पक्ति, त्रिष्टुप्—

१ आविरभून्महि माघोनमेषा विश्व जीव तमसो निरमोचि।
महि ज्योति पितृभिर्दत्तमागादुरु पन्था दक्षिणाया
अदर्शि ॥१॥

२ उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण।
हिरण्यदा अमृतत्व भजते वासोदा सोम प्रतिरत
आयु ॥२॥

३. दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणति।
अथा नर प्रयतदक्षिणासो' वद्याभिया बहव पृणति॥३॥

४ शतधार वायुमर्क स्वर्विद नृचक्षसस्ते अभिचक्षते हवि।
ये पृणति प्र च यच्छति सगमे ते दक्षिणा
दुहते सप्त-मातर॥४॥

१७ शिखाहीन कुमारोकी तरह जहाँ वाण एकत्र गिरते है।
वहाँ ब्रह्मणस्पति हमे सुख दे, अदिति सब दिन सुख दे।।१७।।

१८ तेरे मर्म-स्थानोको वर्मसे मै ढाकता हूँ, तुझे सोमराजा अमृतसे ढाके। वरुण तुझे श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ करे। तुझ विजयीके लिए देव हर्ष मनावे।।१८।।

१९ जो हमारे अपने और पराये अप्रिय हमारी हिसा करना चाहते है।
उन्हे सारे देवगण मारे, मेरा भीतरी वर्म वेद-मत्र है।।१९।।

—६।७५

८. दक्षिणाकी प्रशसा—

१ महान् तेज (सूर्य) इनके लिए प्रगट हुआ, सारे जीवोको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा प्रदत्त महान् ज्योति आई, दक्षिणाके विस्तृत पथको दिखलाया।।१।।

२ दक्षिणावाले उच्च द्यौलोकमे रहते है। जो अश्वदाता है, वे सूर्यके साथ रहते। सुवर्णके दाता अमरताको प्राप्त होते है, वस्त्रदाता दीर्घायु हो सोमके समीप पहुँचते है।।२।।

३ दक्षिणा देवार्चना दिव्य पूर्ति है। वे (देवता) कजूसोको नही पूर्ण करते। और दक्षिणारत बहुत-से नर निन्दाके भयसे पूरा करते है।।३।।

४ नर-हितैषी वे शतधार वायुको, सूर्यको आकाश को हवि देते है। जो तर्पण करते दान करते है, वे सगममें सात माताओसे दक्षिणाको दूहते है।।४।।

५ दक्षिणावान् प्रथमो हूत एधि दक्षिणावान् ग्रामणी-
रग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपति जनाना य प्रथमो दक्षिणामा-
विवाय ॥५॥
६ तमेव ऋषि तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्य सामगामुक्थशास ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो य प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥
७ दक्षिणाश्व दक्षिणा गा ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत
यद्धिरण्य ॥७॥
दक्षिणान्न वनुते यो न आत्मा दक्षिणा वर्म कृणुते
विजानन् ॥७॥
८ न भोजा ममुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यति न व्यथते ह भोजा ।
इद यद्विश्व भुवन स्वश्चैतत् सर्व दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥
९ भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्य अहूता ।
प्रयति ॥९॥
१० भोजायाश्व समृजत्याशुं भोजायास्ते कन्या शुभमाना ।
भोजस्येद पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृत देवमानेव
चित्र ॥१०॥
११ भोजमश्वा सुष्ठुवाहो वहति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणाया ।
भोज देवासो वता भरेषु भोज शत्रूनत्समनीकेषु
जेता ॥११॥
—ऋक् १०।१०७

५ दक्षिणा देनेवाला प्रथम निमन्त्रित होता है। दक्षिणावान् ग्रामणी मुखिया बनता है। जो पहले दक्षिणाको देते है, उसे ही मै जनोका नृपति मानता हूँ ॥५॥

६ उसे ही ऋषि उसीको ब्रह्मा यज्ञपति सामगायक उक्थके वक्ता कहते है। वह शुक्र (अग्नि) के तीनो तनुओको जानता, जिसने कि पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

७ दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा मनोहर सोनेको देती है। जो हमारी आत्मा है, उस अन्नको दक्षिणा देती है, जानते हुए दक्षिणा वर्म बनती है ॥७॥

८ भोज (देनेवाले) नही मरते न अर्थहीन होते, न हानि उठाते और न भोज लोग पीडित होते। यह जो सारा भुवन और यह सब स्वर्ग है, (इन) सबको दक्षिणा इन्हे देती है ॥८॥

९ भोज लोग सुरभिके मूल (गाय) को पहले पाते है। भोज सुन्दर वस्त्र-वाली वधूको पाते है। भोज सुराके आन्तरिक पेयको पाते है। भोज बिना बुलाये आक्रान्ताओको जीतते है ॥९॥

१० भोजको (लोग) शीघ्रगामी अश्व प्रदान करते है, भोजके लिए सुन्दरी कन्या है। भोजका यह घर पुष्करणी-सा परिष्कृत और देव-विमान-सा विचित्र है ॥१०॥

११ भोजको सुन्दर वाहक अश्व बहन करते है। दक्षिणासे सुघड रथ वर्तमान है। युद्धमें देवगण भोजकी रक्षा करते है। भोज युद्धोमे शत्रुओका जेता है ॥११॥

—१०।१०७

९. भिक्षु आँगिरस (१००० ई० पू०)

यह भी पीछे के ऋषियों में से है, जिनका एक सूक्त (११७) दसवें मण्डल में संगृहीत है। भिक्षु नाम आर्यों के लिये उस समय विचित्र लगा

१. छन्द जगति, त्रिष्टुप्—

१ न वा उ देवा क्षुधमिद्वध ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यव ।
उतो रयि पृणतो नोपदस्यत्युतापृणन्मर्डितार न विदते ।।१।।

२ य आध्राय चकमानाय पित्वोन्नवान्त्सन्नफितायोपजग्मुषे।
स्थिर मन कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितार न विदते ।।२।

३ स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीपु कृणुते सखाय ।।३।।

४ न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्व ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणतमन्य मरण चिदिच्छेत् ।।४।।

५ पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयासमनु पश्येत पन्था।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्युमुप तिष्ठन्ति राय ।।५।।

६. मोघमन्न विन्दते अप्रचेता सत्य ब्रवीमि बध इत् स तस्य।
नार्यमण पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी ।।६।।

७. कृषिन्नित् फाल आशति कृणोति यन्नध्वानमपवृक्ते चरित्रैः।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणतमभिष्यात् ।।७।।

९. भिक्षु आँगिरस (१००० ई० पू०)

होगा, यद्यपि पीछे यह बहुत सम्मानित परिव्राजको के लिये प्रयुक्त होने लगा।

१ दानकी महिमा—

१ क्षुधाको देवोने वध (बनाकर) नही दिया, खायेके पास भी मृत्यु जाते है। दाताका धन क्षीण नही होता और अदाताको सुखी नही पाता ॥१॥

२ जो खाता-पीता हो भूखे कामना लिये पास आये याचक के लिए, मन कडा करता है, (और) उसके सामने भोजन करता है, वह सुखी नही हो सकता ॥२॥

३ वही भोज (दाता) है, जो अन्न-इच्छुक, कृश, विचरण करते घर आयेको देता है। उसे पूरे यज्ञफल होते है, और परायोमे भी वह मित्र बनाता है ॥३॥

४ वह सखा नही जो खा-पीकर भी साथ होते सखाको नही देता। उससे दूर हट जाये, वह घर नही है, दूसरे अच्छे पूर्तिकर्तासे इच्छा करे ॥४॥

५ माँगनेवाले की पूर्ति करनी चाहिए, अत्यन्त लम्बे मार्गोको देखना चाहिए। रथके चक्र जैसे ऊपर-नीचे होते है, धन भी वैसे ही रहते है ॥५॥

६ उस नासमझने व्यर्थ ही अन्न को पाया। सच कहता हूँ, वह उसका वध है। जो न अर्यमा (देवता) को, न सखाको तृप्त करता है, अकेले भोजन करनेवाला केवल पापी है ॥६॥

७ जोतता फाल अन्न बनाता है, जो आचरणोसे मार्गको बनाता है। जैसे ब्रह्म बोलता न बोलनेवालेसे बढकर है, वैसे ही पूर्तिकर्ता अ-पूर्तिकर्तासे बढकर है ॥७॥

८ एकपाद् भूयो द्विपदो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पक्तीरुपतिष्ठमान ।८।

९ समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्ट संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीत ॥९॥

—ऋक् १०।११७

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

इन्द्र के पुत्र बतलाये जाते हैं, शायद इन्द्र किसी व्यक्ति का नाम हो, या इन्द्र का भक्त होने के कारण इनका यह नाम पड़ा हो। ऋग्वेद के नवें

१. छन्द: त्रिष्टुप्—

१ अमत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहता सत्यध्वृत वृजिनायतमाभु ॥१॥

२ यदीदहं युधये संनयान्यदेवयन् तन्वा शूशुजानान्।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पचदशं निषिंच ॥२॥

३ नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान्।
यदावाख्यत् समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥

४ यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन्।
जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

८ एक अशवाला पुन दो अशवाला होता है। दो अशवाला पीछे तीन अशवाला हो जाता है। चार अशवाला दो अशवालोसे आगेके पास जाता है, इन क्रमोको देखते सेवन करता है ॥८॥

९ समान भी दोनो हाथ एक समान शक्तिवाले नही है, (गाय) एक माँवाली भी एक समान दूधनही देती। जुडवॉके भी एक समान पराक्रम नही। एक कुल होते हुए भी एक समान दाता नही होते ॥९॥

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

मडल में इनकी तीन ऋचायें है (९७। २८-३०) और दसवें मडल में दो सूक्त (२७, २९) इनके रचे है। इनकी पत्नी भी ऋषि थी, जिन्होने उसी मडल के २८वें सूक्त को रचा।

१. इन्द्रकी महिमा—

१ "हे स्तोता, मेरा स्वभाव है, जो (सोम) छानते यजमानको अभीष्ट अप्राप्य फल देता हूँ। सत्य नाशक चारो ओर पाप करते अर्चना करनेवालेका मै प्रहन्ता हूँ" ॥१॥

२ "जब मै देवताओके न पूजनेवाली स्वार्थियोके साथ लडनेके लिए शरीरसे ले जाता हूँ। तो तुम्हारे लिए मै मोटे बैलको पकाता हूँ और छाने हुए तीव्र पन्द्रहवे (सोम) को तैयार करता हूँ" ॥२॥

३ "मै ऐसे (आदमी) को नही जानता, जो कहता है, कि देव-अपूजकोको रणमे मेने मारा। जब युद्धमे उनका महार करता हूँ, तो वे प्रशसा करते मुझे सॉड कहते है ॥३॥

४ अज्ञात युद्धोमे जब मै होता, तब सारे मुझ मघवाको घेर लेते है। चारो ओर क्षेमके लिए मे जीतता हूँ, पैर पकडकर उसे पर्वतपर फेंक देता हूँ ॥४॥

५ न वा उ मा वृजने वारयते न पर्वतासो यदह मनस्ये।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून् किरण समे-
जात् ॥५॥

६ दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिद्रान् बाहुक्षद शरवे पत्यमानान्।
घृषु वार्ये निनिदु सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्यु ॥६॥

७ अभूर्वोक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि त न भूतो यो अस्य पारे रजसा विवेष ॥७॥

८ गावो यव प्रयुता अर्यो अक्षन् ता अपश्य सहगोपाश्चरती।
हवा इदर्यो अभित समायन् कियदासु स्वपतिश्छदयाते ॥८

९ स यद्वय यवसादो जनानामह यवाद उर्वज्रे अत ।
अत्रा युक्तो वसातारमिच्छादथो अयुक्त युन जद्ववन्वान्।९।

१० अत्रेदु मे मससे सत्यमुक्त द्विपाच्च यच्चतुष्पात् ससृजानि।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषण पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि
वेद ॥१०॥

११ यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्ता विद्वा अभि मन्याते
अधा।
कतरो मेनि प्रति त मुचायते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात्
॥११॥

१२ कियती योषा मर्यतो वधूयो परिप्रीत पत्यसा-
वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशा स्वय सा मित्र वनुते जने
चित् ॥१२॥

१३ पत्तो जगार प्रत्यचमत्ति शीर्ष्णा शिर प्रति दधौ वरूथ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङङु त्तानामन्वेति
भूमि ॥१३॥

५ यदि मैं चाहूँ तो, मुझे युद्धमे कोई निवारित नही कर सकता, पर्वत भी नही। मेरी आवाजसे बहरे कानवाले भी भयभीत होते है, द्युलोक तक भी किरणे काँपती है ॥५॥

६ यहाँ देखते हुए मै इन्द्र को न माननेवालो छाने सोमको पीनेवालो, बाँह भाजनेवालो, हिसाके लिए आक्रमण करनेवालो, और मुझ जो महान् सखाकी निन्दा करते, उनके ऊपर मै वज्र गिराता हूँ" ॥६॥

७ "तुमने दर्शन दिया, वर्षा भी की, दीर्घायु प्राप्त कराई। पहले भी शत्रुका नाश किया, पीछे भी। विश्वके परे तक वह नही, जो इस लोकके पार को नाप सके" ?॥७॥

८. "गाये जौ खा रही हैं, स्वामीके पास गोपोके साथ चरती उन्हे मैं देखता हूँ, बुलाते ही स्वामीके चारो ओर वह आ जाती है, कितना निज स्वामीने उनसे प्राप्त किया ॥८॥"

९ सो जो कि यह जनोके जौ का खानेवाला विस्तृत आकाशके भीतर जौ भक्षक मै हूँ। युक्त (इन्द्र) यहाँ रक्षा चाहते है और अयुक्त पुरुषको मार बतलाते है ॥९॥"

१० "निश्चय जानो कि यहाँ मैंने सच कहा - दोपायो और चौपायो को मै सृजन करता हूँ। यहाँ स्त्रियोके साथ जो पुरुषको लडाता है, उसके धनको बिना युद्ध ही मै बाँट देता हूँ ॥१०॥

११ जिसकी बिना आँखकी दुहिता है, कौन जानते हुये उस अन्धीको अपनाता है। जो उसे विवाहता है या जो चुनता है, कौन उसको पीडा देगा ?॥११॥

१२ कितनी स्त्रियाँ केवल धनसे प्रसन्न हो पुरुषोकी बहुये होती हैं। भद्रा बहू वह है, जो कि सुन्दर सुरगवाली स्वय जनमेसे (अपने) मित्रको स्वीकार करती है ॥१२॥

१३ सूर्य किरण उगलते है, स्थित हो सामने भक्षण करते है, सिरपर किरणो को धारण करते है। ऊपर आसीन हो पासमे फेकते है, नीचे उतान भूमिका अनुगमन करते है ॥१३॥

१४. बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भ ।
अन्यस्या वत्स रिहती मिमाय कया भुवा निदधे धेनुरूध ॥१४॥

१५ सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्दश प्राक् सानु वि तिरत्यश्न ॥१५॥

१६ दशानामेक कपिल समान त हिन्वति क्रतवे पार्याय ।
गर्भ माता सुधित वक्षणास्ववेनन्त तुषयती विभर्ति ॥१६॥

१७ पीवानं मेषमपचत वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनु वृहतीमप्स्वन पवित्रवता चरत पुनता ॥१७॥

१८ वि क्रोशनासो विष्वच आयन् पचाति नेमो नहि पक्षदर्ध ।
अय मे देव सविता नदाह द्रवन्न इद्वनवत् सर्पिरन्न ॥१८॥

१९ अपश्य ग्राम वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमान ।
मिषक्त्यर्य प्र युगा जनाना सद्य शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

२० एतो मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मा षु प्र सेधीमुहुरिन्ममधि ।
आपश्चिदस्य विनशत्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०।

२१ अय यो वज्र पुरुधा विवृत्तौ व- सूर्यस्य वृहत पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

२२ वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद् गोस्ततो वय प्र पतान् पूरुषाद. ।
अथेद विश्व भुवन भयात इद्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२।

१४ बिना छायाका बिना पत्तेका बडा वृक्ष स्थित है। द्यौमाता बधी गर्भ भक्षण करती है। दूसरे बछडे को चाटती स्थित इस धेनुके किम स्थानमे स्तन पाया ॥१४॥

१५. उसके निचले शरीरसे सात वीर उत्पन्न हुए, उपरलेसे अन्तमें आठ जन्मे, पिछलेसे नौ स्थिरतावाले आये, आगे दस भक्षण करनेवाले ऊँचे बढते है ॥१५॥

१६ दसोमे कपिल वर्णवाले एकको यज्ञ पूरा करनेके लिए प्रेरित करते है। द्यौमाता सन्तुष्ट हो अच्छी तरह रक्खे इस गर्भको धारण करै ॥१६॥

१७ वीरोने मोटे भेडको पकाया, जूयेके स्थानमे पासे फेके थे। वह पवित्रवान् दो बडे धनुषोसे जलके भीतर पवित्र करते विचरते हैं ॥१७॥

१८ वे कोलाहल करते नाना प्रकारसे आये, आधोने पकाया और आधोने नही पकाया। 'मुझे इस सवितादेवने उसे कहा ईधन' घी और भोजनकी कामनावाला ॥१८॥

१९ मैने दूरसे बिना चक्रके अन्नसे वर्तमान वहनकर्ता ग्रामको देखा। स्वामी जनोमे दो-दोको जोडता हैं, शत्रुओको तुरन्त हनन करता नवीन बनाता है ॥१९॥

२० मुझ प्रभरके यह दो बैल जुडे है, इन्हे मत मारो, मुहूर्त भर सन्तुष्ट करो। इसके जल अर्थको नष्ट करते है, शोधक वीर ऊपर होता है ॥२०॥

२१ यह जो वज्र सूर्यके बडे लोकसे बहुत वेगसे नीचे गिरता है। इससे परे और भी यश है, उसे स्तुतिकर्ता बिना व्यथा पार हो जाते हैं ॥२१॥

२२ धनुषरूपी वृक्षपर गोचर्मरूपी ज्या शब्द करती है। उससे पक्षी-समान पुरुषभक्षी वाण गिरते हैं, और यह सारा भुवन डरता है। इन्द्रके लिए (सोम) छानता और ऋषिके लिए प्रदान करता ॥२२॥

२३ देवाना माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूक वहत पुरी-
पम् ॥२३॥
२४ सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगपगृह समर्ये ।
आवि स्व कृणुते गूहते वुस स पादुरस्य निर्णिजो न
मुच्यते ॥२४॥
—ऋक् १०।२७

११. दमन यामायन (१००० ई० पू०)

यम का पुत्र इन्हें बतलाया गया है, लेकिन इसमें सन्देह है। दसवें मडल के सोलहवें सूक्त के ये ऋषि हैं, और उसमे मृत्यु तथा अन्त्येष्टि-

१. छन्द· त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्—

१ मैनमग्ने विदहो माभिशोच मास्य त्वच चिक्षिपो मा
शरीर।
यदा श्रृत कृणवो जातवेदो,थेमेन प्र हिणुतात् पितृभ्य ॥१॥
२ शृत यदा करसि जातवेदो, थेमेन परिदत्तात् पितृभ्य ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवाना वशनीर्भवाति ॥२॥
३ सूर्य चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्या च गच्छ पृथिवी च
घर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्टा
शरीरै ॥३॥
४ अजो भागस्तपसा त तपस्व त ते शोचिस्तपतु त ते अर्चि ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैन सुकृतामु
लोक ॥४॥

२३ देवोके बनानेमे प्रथम रहे, इन्हे छेदनेसे जल निकले। तीन अनूप पृथिवीको तापित करते है, दो प्रिय जल वहन करते है ॥ २३॥

२४ वह तुम्हारे लिए जीवधारक है, उसे जानो, यज्ञमे ऐसेको मत छोडो। वह (सूर्य) स्वर्गको आविष्कृत करता अन्नको पालता है, शोधक-सी उसकी गति नही छूटती ॥२४॥

—१०।२७

११. दमन यामायन (१००० ई० पू०)

क्रिया का वर्णन है, जिसका सम्बन्ध मृत्यु के देवता यम से है। हो सकता है, यामायन उन्हें इसीलिये कहा गया। इनके इस सूक्त से आर्यों की अन्त्येष्टि-क्रिया और मृत्यु के सम्बन्ध के विश्वासो का पता लगता है।

१. अग्निकी महिमा—

१ हे अग्नि, इस (शव) को मत जलाओ मत भूनो। इसके चर्मको और न शरीरको फेको। हे जातवेदा, जब पका लो, तब इसे पितरोके पास भेज दो ॥१॥

२ हे जातवेद, जब परिपक्व करो, तब इसे पितरोको दे दो। जब यह प्राणयुक्त हो जाये, तब यह देवोके वशमे होगा ॥२॥

३ इसका नेत्र सूर्यको जावे, आत्मा वायुको, (यह) धर्मसे आकाश और पृथिवीपर जावे। यदि वहॉ तेरा हित है, तो पानीमे जाओ, शरीरोंसे औषधियोमे तुम प्रतिष्ठित हो ॥३॥

४ जो अजन्मा भाग है। उसे तुम तापसे तपाओ, उसे तेरा दहन तेरी ज्वाला तपाये। हे जातवेद (अग्नि), जो तुम्हारे शिव-शरीर है, उनसे इसे सुकर्माओके लोकमे ले जाओ ॥४॥

५ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभि ।
आयुर्वसान उपवेतु शेष सगच्छता तन्वा जातवेद ॥५॥
६ यत्ते कृष्ण शकुन आतुतोद पिपील सर्प उत वा श्वापद ।
अग्निष्टद्विश्वादगद कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणा आवि-
वेश ॥६॥
७ अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व स प्रोर्णुष्व पीवसा मदसा च ।
न त्वा घृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यखयाते॥७॥
८ इममग्ने चमस मा वि जिह्वर प्रियो देवानामुत सोम्याना
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयते ॥८॥
९ क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूर यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाह ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्य वहतु प्रजानन् ॥९॥
१० यो अग्नि क्रव्यात् प्रविवेश वौ गृहमिम पश्यन्नितर जात-
वेदस ।
त हरामि पितृयज्ञाय देव स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥१०॥
११ यो अग्नि क्रव्यवाहन पितृन्यक्षदृतावृध ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥
१२ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्त समिधीमहि ।
उशन्नुशत आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥१२॥
१३ य त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुन ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥
१४. शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मडूक्या सु सगम इम स्वग्नि हर्षय ॥१४॥

—ऋक् १०।१६

५ हे अग्नि, तेरे लिए आहुति दी, जो स्वधाओके साथ भोजन करता है, उसे पुन बनाओ। शेष (भाग) जीवन पाकर उठ जाये, हे जातवेद, शरीरके साथ सयुक्त हो जाये ॥५॥

६ तेरे जिस अगको काले पक्षीने, चीटी, साँप या श्वापदने छेदन किया, उसे अग्नि और ब्राह्मणोमे आविष्ट सोम सबसे निरोग करे ॥६॥

७ हे अग्नि, गोचर्मसे बने (वर्म) को पहनो, मोटाई और चर्बीसे आच्छादित होओ। बलसे अत्यन्त हर्षित दर्शन करनेके लिए तैयार दुर्धर्ष अग्नि तुम्हे चारो ओरसे नही पकडेगा ॥७॥

८ हे अग्नि, इस चमसको मत तोडना, यह सोमपायी देवोको प्रिय है। यह जो चमस (पात्र) देवोका पानपात्र है, उसमे अमरदेव आनन्दित होते है ॥८॥

९ मानुष-भक्षक अग्निको मै दूर भेजता हूँ, वह अप्रिय-वाहक यमराजके पास जाये। यही यह दूसरा अग्नि जानते हुए देवोके लिए हव्य ले जाये ॥९॥

१० जो अग्नि (श्मशानके) माससे तुम्हारे घरमे घुसा, इससे दूसरे अग्निको देखता। उस देवको पितृ-यज्ञके लिए लाता हूँ, यह परम लोकमे ले जायेगा ॥१०॥

११ जो क्रव्यवाहक अग्नि सत्यसे बढता पितरोका यजन करता है। पितरो और देवोके लिए वह हव्योको ले जाये ॥११॥

१२ हे अग्नि, कामना करते तुम्हे स्थापित करते है, कामना करते तुम्हे प्रज्वलित करते है। कामना करते तुम कामना करनेवाले पितरोके पास खानेके लिए हविष ले जाओ ॥१२॥

१३ हे अग्नि, जिसे तुमने जलाया, (उसे) फिर बुझाओ।
यहाँ पकी दूब शाखावाली होकर उगे ॥१३॥

१४ हे ठण्ढी, ठण्ढीवाली, हे आह्लादिके, आह्लादवाली,
मेढकियोंके सुन्दर सगमवाली इस सु-अग्निको प्रसन्न करो ॥१४॥

—१०।१६

१२ सूर्या (१००० इ० पू०)

दसवें मडलका ८५वा सूक्त इस महिलाका रचा हुआ बतलाया गया है। यह ऋग्वेद के सुन्दर सूक्तों में से है, जिसकी भाषा सरल होने पर भी आकर्षक और भावपूर्ण है।

छन्द —त्रिष्टुप्—

१ सत्येनोत्तभिता भूमि सूर्येणोत्तभिता द्यौ ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठति दिवि सोमो अधिश्रित ॥१॥

२ सोमेनादित्या बलिन सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित ॥२॥

३ सोम मन्यते पपिवान् यत् सपिषन्त्योषधि।
सोम य ब्रह्माणो विदुन तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥

४ आच्छद्विधानैर्गूपिता बाहृतै सोम रक्षित ।
ग्राव्णामिच्छण्वतिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिव ॥४॥

५ यत्वा देवा प्रपिबति तत आप्यायसे पुन ।
वायु सोमस्य रक्षिता समाना मास आकृति ॥५॥

६ रैभ्यासीदनुदेयी नाराशसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृत ॥६॥

७ चित्तिरा उपबर्हण चक्षुरा अभ्यजन।
द्यौर्भूमि कोश आसीद्यदयात् सूर्या पति ॥७॥

८ स्तोमा आसन् प्रतिधय कुरीर छन्द ओपश ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

९ सोमो बधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शसती मनसा सविता ददात् ॥९॥

१० मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदि ।
शुक्रावनड्वाहावास्ता यदयात् सूर्या गृह ॥१०॥

१ सोम आदिकी महिमा—

१ सत्यसे भूमि थमी है, सूयसे द्यौलोक थमा है।
ऋत (सत्य) से आदित्य स्थित है द्योलोकमे सोम अवस्थित है ॥१॥

२ सोमसे आदित्य बलि है सोमसे पथिवी बडी ह।
और इन नक्षत्रोके पास सोम रक्खा हुआ है ॥२॥

३ जब इस औषधिको पीसते है, तो सोमको पिया मानते है।
जिसे ब्राह्मण सोम जानते है, उसे कोई नही खाता ॥३॥

४ हे सोम, विधानोसे छिपाकर स्तुतिकता तुम्हे रखते है।
पत्थरोमे तुम रहते हो, पार्थिव (मनुष्य) तुम्हे नही खाता ॥४॥

५ हे देव, जो तुम्हें पीते है उससे तुम और भी बढते हो।
वायु सोमका रक्षक है मास वर्षोंकी आकृति है ॥५॥

६ उसके साथ दी जानेवाली रैभी (ऋचाये) थी, नाराशसी ऋचाये
दासी थी। सूर्याका भद्र वस्त्र गाथा द्वारा परिष्कृत था ॥६॥

७ जब सूर्या पतिके पास गई, तो चेतना (उसकी) चादर हुई।
नेत्र अभ्यजन हुआ, द्यौ और पथिवी कोश हुए ॥७॥

८ सूर्याके (चक्कीके) पाट स्तोम थे, ओपश (भूषण) कुरीर छन्द था।
सूर्याके वर थे (दोनो) अश्विनीकुमार और अग्नि पुरोगामी (घटक)
था ॥८॥

९ सोम उसका वधूयु (दुलहा) था, अश्विनीकुमार दोनो वर थे।
मनसे पतिकी प्रशसा करती सूर्याको सविताने प्रदान किया ॥९॥

१० मन इसकी गाडी थी, और द्योलोक छत।
दोनो शुक्र (रवि-शशि) बैल थे, जबकि सूर्या घर गई ॥१०॥

११ ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावित ।
श्रोत्र ते चक्रे आस्ता दिवि पथाश्चराचर ॥११॥

१२ शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति ॥१२॥

१३ सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासजत् ।
अघासु हन्यते गावोर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥

१४ यदश्विना पृच्छमानावयात त्रिचक्रेण वहतु सूर्याया ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्र पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

१५ यदयात शुभस्पती वरेय सूर्यामुप ।
क्वैक चक्र वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथु ॥१५॥

१६ द्वे ते चक्रे सूये ब्रह्माण ऋतुथा विदु ।
अथैक चक्र यद्गुहा तदद्धा तया इद्विदु ॥१६॥

१७ सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इद तेभ्यो कर नम ॥१७॥

१८ पूर्वापर चरतो माययैतो शिशू क्रीळन्तौ परियातो अध्वर ।
विश्वान्यन्या भुवनाभिचष्ट ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुन ॥१८॥

१९ नवो नवो भवति जायमानो ह्ना केतुरुषसामेत्यग्र ।
भाग देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चद्रमास्तिरते दीघमायु ॥१९॥

२० सुकिशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवण सुवृत सुचक्र ।
आरोह सूये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२०॥

११ ऋग् और साम द्वारा कथित दोनो बैल (रवि-शशि) तुझे यहा से ले जानेवाले थ। तेरे कान दो चक्के थे आने जानेका पथ द्योलोक मे था ॥११॥

१२ चक्के तेरे जाते समय शुचि खुले, अक्षमे लगे थे।
पतिके पास जाती सूर्या मनोमय शकटपर चढी। १२॥

१३ सूर्याको वह ले चला जिसे सविता (सूय) ने सजन किया था।
मघा नक्षत्रमे सफेद गाये हाकी गइ (उसे) ले गये ॥१३॥

१४ हे अश्विनो, जब त्रिचक्र रथ द्वारा सूर्याके विवाहके लिए पुछार करने तुम आये। तब सारे देवोन तुम्हारा अनुमोदन किया तुम्हारे पुत्र पूषन (सूय) ने दोनो पिताओको वरण किया ॥१४॥

१५ जब शुभपति तुम वर हो सूर्याके पास गये।
तो तुम्हारा एक चक्का कहा था कहा (माग) पूछनेके लिए तुम खडे हुए ॥१५॥

१६ हे सूर्या ब्राह्मण तेरे चक्कोको ऋतुके तौरपर जानते है।
और एक चक्का जो गुप्त है, उसे विद्वान् ही जानते ह ॥१६॥

१७ सूयाके लिये देवताओके लिये मित्रके लिये और वरुणके लिये, जो प्राणियोका ख्याल रखते हैं, उनके लिये " यह नमस्कार करता हू ॥१७॥

१८ यह दोनो शिशु (रवि-शशि) पूव-पश्चिम चलते क्रीडा करते यज्ञमें आते ह। इनमेंसे एक (च द्र) सारे भुवनोको बतलाता है, दूसरा (सूय) ऋतुओको बनाता फिर प्रकट होता है ॥१८॥

१९ उत्पन्न हो दिनको बतलानेवाला (सूय) नया-नया होता, उषाओंके आगे आता है। आकर देवोके लिये भाग देता है, च द्रमा दीघ आयु देता है ॥१९॥

२० हे सूर्ये, सुदर पलाश पुष्पसे, सेमलसे नाना रूप सुवण वणसे ढके सुदर चक्रवाले रथपर चढ। अमर सुखमय लोकमें पति से ब्याह कर ॥२०॥

२१ उदीर्ष्वात पतिवती ह्येषा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यमिच्छ पितृषद व्यक्ता सते भागो जनुषा तस्य पिद्धि
॥२१॥

२३ अनृक्षरा ऋजव सन्तु पन्था येभि सखायो यन्ति नो
वरेय।
समयमा स भगो नो निनीयात् स जास्पत्य सुयममस्तु
देवा ॥२३॥

२४ प्र त्वा मुँचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात् सविता
सुगेव ।
ऋतस्य योनो सुकृतस्य लोके रिष्टा त्वा सह पत्या
दधामि ॥२४॥

२५ प्रेतो मुचामि नामुत सुबद्धाममुतस्कर।
यथेयमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा सति ॥२५॥

२६ पूषा त्वेतो नयतु हस्तगह्याश्विना त्वा प्रवहता रथेन ।
गह्यान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्व विदथमा-
वदासि ॥२६॥

२७ इह प्रिय प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गाहपत्याय
जागहि ।
एना पत्या तन्व ससृजस्वाधा जिव्री विदथमा-
वदाथ ॥२७॥

२८ नीललोह्नि भवति कृत्यासक्तिव्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातय पतिर्बंधेषु बध्यते ॥२८॥

२९ परा देहि शामुल्य ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पति ॥२९॥

२१ यहासे उठो, यह पतिवाली है मै नम वाली वाणीसे विश्वावसुका स्तुति करता हू। पिताके यहा रहनेवाली दूसरी व्यक्त कन्याको चाहो, वह तुम्हारे भाग्यमे जमी है, उसका पता लगाओ ॥२१॥

२३ सरस अकटक हो वह माग जिनसे सखा हमारे बरातमे जाते ह। अयमा, भग अच्छी तरह हमें ले चले। देव, पति-पत्नी मिलकर रहे ॥२३॥

२४ तुझे वरुणके पाशसे बाधता हू, जिससे कि तुझे सविताने अच्छी तरह बाधा। सत्यके स्थानमें, सुकृतके लोकमे तुझे पतिके साथ निर्विघ्न रखता हू ॥२४॥

२५ यहासे म छुडाता हू, वहासे नही। वहा (पतिकुलमें) सुबद्ध करता हू। हे वषक इन्द्र, (वैसे) बरसो जैसे यह सुपुत्रा सुभगा होवे ॥२५॥

२६ पूषा यहासे तुझे हाथ पकडकर ले जाये, दोनो अश्विनीकुमार तुझे रथ द्वारा वहन करें। गहपत्नी हो घर जा, तू घरको ऐसे रख, जिसमें (सबको) वश करनेवाली हो ॥२६॥

२७ यहा सतानके साथ तेरी प्रसन्नता बढे। इस घरमें गाहपत्य (अग्नि) की सेवा कर। यह पतिके साथ शरीरसे एक रह वद्धा हो घरमें स्वामिनी रहे ॥२७॥

२८ नीलारुण होता है, (वह) कृत्या (भूत) की आसक्तिको प्रकट करता है। इसके बधु बढते है, पति बधनमे बधता है ॥२८॥

२९ मलिन वस्त्रको दूर हटा, ब्राह्मणोमे धन बाट। यह कृत्या चली गई, पत्नी पतिसे मिली ॥२९॥

३० अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमंगमभिधित्सते ॥३०॥

३१ ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगता ॥३१॥

३२ मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातय ॥३२॥

३३ सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

३४ तृष्टमेतत् कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

३५ आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥

३६ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय
देवा ॥३६॥

३७ तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्त प्रहराम
शेपम् ॥३७॥

३८ तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्यां वहतुना सह ।
पुन पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

३९ पुन पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या य पतिर्जीवाति शरद शतम् ॥३९॥

३० शरीर अशोभन हो जाता है वह पापिनी (कृत्या) उसपर आक्रमण करती है। जब कि पति वधूके वस्त्रोसे अपने अगको ढाकता है ॥३०॥

३१ वधूकी चादर लेनेको जनोके पीछे जो यक्ष्मा आये। उन्हे यज्ञीय देवता जहासे आये वहा फिर ले जाये ॥३१॥

३२ जो शत्रु दपतीके पास आते ह वह न आवे। (ये) सुविधासे दुगमका पार करे शत्रु भाग जाये ॥३२॥

३३ यह वधू सुमगली है आओ इसे देखो। इसको सौभाग्य देकर जहासे आये वहा जाओ ॥३३॥

३४ यह दूषित है यह कटुक है, यह न ग्रहण योग्य है, विषवाला यह खाने लायक नही है। जो ब्राह्मण सूर्याको जानता है, वही वधूके वस्त्रके पाने लायक है ॥३४॥

३५ कट फटे और बीचसे चिरे सूर्याके रूपोको देख उन्हे ब्रह्मा शोधित करता है ॥३५॥

३६ सौभाग्यके लिए तेरे हाथको मै ग्रहण करता हू मुझ पतिके साथ बुढापे तक रह। भग अयमा, सविता देवोने तुझे गहस्थीके लिए मुझे दिया ॥३६॥

३७ हे पूषा उसे तुम अत्यत कल्याणी बनाओ, जिसमे मनुष्य बीज बोते है। जो कामना करती हमारे लिये उरुओको फैलाती, जिसमें कामना करते हम शेपका प्रहार करते है ॥३७॥

३८ हे अग्नि, बहतुके साथ सूर्याको पहले तुम्हारे लिये ले जाते है। फिर हे अग्नि प्रजाके साथ जाया तुम पतियोको देते हो ॥३८॥

३९ अग्नि, आयु और वचसके साथ पत्नीको फिर देता है। इसका जो पति है, वह दीर्घायु (हो), सौ शरदो तक जीवे ॥३९॥

४० सोम प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तर ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा ॥४०॥

४१ सोमो ददद् गधर्वाय गधर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राश्चादादग्निमह्यमथो इमा ॥४१॥

४२ इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत ।
क्रीळन्ती पुत्रैर्नप्तभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

४३ आ न प्रजा जनयतु त्प्रजापतिराजरसायससमनक्त्व-
यमा ।
अदुमङ्गली पतिलोकमा विशश नो भव द्विपदे श
चतुष्पदे ॥४३॥

४४ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्य सुमना सुवर्चा ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे श
चतुष्पदे ॥४४॥

४५ इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु ।
दशास्या पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि ॥४५॥

४६ सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवषु ॥४६॥

४७ समजन्तु विश्वे देवा समापो हृदयानि नौ ।
स मातरिश्वा सधाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७।
—ऋक् १०।८५

४० सोमने पहले प्राप्त किया, बादमे ग न्धवने प्राप्त किया। तीसरा तेरा पति अग्नि है, चौथा (पति) तेरा मनुष्योमे उत्पन्न है ॥४०॥

४१ सोमने ग न्धवको दिया, ग न्धवने अग्निको दिया। अग्नि धन और पुत्रको दिया फिर इस पत्नीको (भी) ॥४१॥

४२ तुम दोनो (पति-पत्नी) यही रहो, मत वियुक्त होओ, सारे आयुको प्राप्त होओ। पुत्रो-नातियोके साथ खेलते आनद करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

४३ प्रजापति हमारी प्रजा पैदा करे, अयमा बुढापे तक हमे साथ रक्खे। मगलमयीको प्रदत्त, पति लोकमे प्रवेश करो हमारे दोपायो और चौपायोमे शातिदायिनी होओ ॥४३॥

४४ अघोर नेत्रा पतिको न हानि करनेवाली होओ, पशुओके लिए सुमना सुवर्चा, शिवा बनो। वीर प्रसवनी देवभक्त शुभकारिणी हो, हमारे दोपायो और चौपायोमें शातिदायिनी होओ ॥४४॥

४५ हे वषक इन्द्र, इसे तुम सुपुत्रा और सुभगा करो। इसमें दस पुत्रोको दो, पतिको ग्यारहवा करो ॥४५॥

४६ (वधू), तू श्वशुरपर सम्राज्ञी होओ, सासपर सम्राज्ञी होओ। ननदपर सम्राज्ञी होओ, देवरोपर सम्राज्ञी होओ ॥४६॥

४७ हमारे हृदयोको सारे देवता, जल देवता (भी) एक करै। वायु एक करे, धाता एक करे और उपदेशक हम दोनोको एक करे ॥४७॥

—ऋक १०।८५

१३ अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

अथर्वा (अथवण) का नाम ऋग्वेद के लिये भी अपरिचित नहीं है। उसके प्रथम मंडल में (८०। १६, ८३। ५) और दूसरी जगहों पर भी अथर्वा नाम आया है, लेकिन इनकी रची कोई ऋचा देखने में नहीं आती। शायद उस समय अथवण अधिकतर पुरोहित को कहा जाता हो, जैसा कि पारसी जदावस्था में भी इसे देखा जाता है। यदि इस नामका कोई व्यक्ति ऋग्वेदिक काल में रहा हो, तो उसका कोई महत्व नहीं था। अथर्वा अंगिरा के पुत्र या संतान थे। अंगिरा सबसे पुराने ऋषियोमें थे, लेकिन भरद्वाज वसिष्ठ-विश्वामित्र के प्रताप के सामने वह विस्मृत हो गये, तो भी ऋग्वेद

छंद —त्रिष्टुप, भूरिक

१ सत्य बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी न
कृणोतु ॥१॥

२ असबाधं मध्यतो मानवाना यस्या उद्वत प्रवत समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथता
राध्यता न ॥२॥

३ यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि पूवपेये
दधातु ॥३॥

४ यस्याश्चतस्र प्रदिश पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने
दधातु ॥४॥

५ विश्वभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानर विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो
दधातु ॥६॥

१३ अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

के प्रथम मडल में अगिराके वशजो के बहुत से सूक्त मिलते ह। उनमें कुत्स एक सम्माननीय ऋषि थे। लेकिन, अथर्वा को विशेषता यह ह, कि सारे अथव वेद को इ हींको रचना माना जाता ह। अथववेद चारो वेदो में सबसे पिछला वेद ह। बुद्धकाल में अभी इसे वेद मे नही गिना जाता था। इसमें मत्र तत्र, टोने-टोटके तथा दूसरी कितनी हो बातें ह, जो आय भिन्न जातियो के प्रभाव को बतलाती ह। आय और आयभिन्न के बीच प्रथम सम वय का प्रयास इसके द्वारा किया गया। ऋषि अथर्वा की वाणियो में पृथिवी सूक्त जसे सूक्त भी ह, जो भाव और भाषा में बहुत सु दर ह।

१ पृथिवी-महिमा—

१ वहृद और उग्र सत्य, दीक्षा, तप ब्रह्म, यज्ञ पथिवीको धारण करते है। वह भत और भविष्यकी रक्षिका हमारी पथिवी हमारे लिये विस्तत प्रदेश बनावे ॥१॥

२ मध्यमें जो मानवोकी भीडवाली नही है। जिसके साथ ही बहुतसे उदगमन और प्रगमन करते है। नाना शक्तिवाली औषधियोको जो धारण करती है वह पथिवी हमे बढाये और तप्त करे ॥२॥

३ जिसपर समुद्र , नदिया और जल है, जिसमे अन्न और प्रजाये उत्पन्न हुइ। जिनपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह भूमि हमें पूव पेय दे ॥३॥

४ जिस पथिवीकी चार दिशाये है। जिसमे अन्न और प्रजाये उत्पन्न हुइ। जिसपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह पथिवी हमें हमारे लिये गौ और अन्न धारण करे ॥४॥

५ विश्वभरा, धनधारिणी स्थिर, सुवण वक्षवाली जगतको अपने भीतर रखनेवाली। वैश्वानर अग्निको धारण करती भूमि, हमें अग्नि, इद्र, वषभ और धनको दे ॥६॥

६ गिरयस्ते पवना हिमवन्तोऽरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्र कृष्णा रोहिणी विश्वरूपा ध्रुवा भूमि पृथिवी-
मिन्द्रगुप्ता।
अजीतो हतो अक्षतो' ध्यष्ठा पथिवीमह ॥११॥

७ यत् ते मध्य पृथिवि यच्च नभ्य यास्त ऊजस्तन्व
सबभूवु ।
तासु नो धेह्यभि न पवस्व माता भूमि पुत्रो अह पृथिव्या ।
पजन्य पिता स उ न पिपर्तु ॥१२॥

८ त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्व बिभर्षि द्विपदस्त्व
चतुष्पद ।
तवेमे पृथिवि पच मानवा येभ्यो ज्योतिरमत मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

९ भूम्या देवेभ्यो ददति यज्ञ हव्यमग्कृत ।
भूम्या मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्या ।
सा नो भूमि प्राणमायुदधातु जरदष्टि मा पृथिवी
कृणोतु ॥२२॥

१० यस्ते गन्ध पुरुषेषु स्त्रीषु पुसु भर्गो रुचि ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु। कन्याया वर्चो यद्
भूमे तेनास्मा अपि ससृज, मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

११ शिला भूमिरश्मा पासु सा भूमि सघृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकर नम ॥२६॥

१२ यस्या वक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवी विश्वधायस धृतामच्छान्वदामसि ॥२७॥

६ ह पथिवि, तेरे गिरि हिमवान पवत अरण्य सुखमय हो। भूरी, काली, लाल नाना रूपकी ध्रुव फैली वढी इद्र द्वारा रक्षित भूमिको बिना पराजित अहत अक्षत हो म अधिष्ठित करू ।।११।।

७ ह पथिवी जा तेरा मध्य स्थान ह जो नाभिका ह जो तेरे बे तजस्वी शरीर हुये। उन्हे हमे सामने दो, हमारे लिये पवित्र करो। भूमि माता ह म पथिवीका पुत्र हू। पजन्य (मेघ) पिता ह और वह हमे तप्त करे।।१२।।

८ मत्य (मद) तेरे मे उत्पन्न हो तेरे ही ऊपर विचरण करते है। तुम दापायो और चापायोको पालती हा। ह पथिवी तेरे लिये पाचा जन हैं जिन मर्दोंके लिए अमत ज्योति उगता सूय रश्मियोसे विस्तार करता है।।१५।।

९ (जिस) भूमिपर देवोके लिये लोग यज्ञ आर सजी हवि देते है। भूमिपर मनुष्य मत्य स्वधा और अन्नसे जीत हैं। वह भूमि हमे प्राण और आयु दे, मुझे पथिवी जरदष्टि करे।।२२।।

१० जो तरा गध पुरुषामे स्त्रियामे नरोमे तेज और काति है। जो अश्वो, वीरा मगा और हाथियोमे। कायामे जा तेज है ह भूमि उनके साथ हम भी युक्त करो कोई हमसे द्वेष न करे।।२५।।

११ शिला, भूमि, पत्थर, धूलि वह अच्छी तरह धारण की हुई भूमि है। उस सुनहले वक्षवाली पृथिवीको हम नमस्कार करते है ।।२६।।

१२ जिसपर वनस्पतिवाले नाना प्रकारके ध्रुव वक्ष स्थित है। उस विश्वको धारण करनेवाली सुदढ पथिवीकी हम प्रशसा करते है ।।२७।।

१३ याम्ते प्राची प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्य चरते भवन्तु मा नि पप्त भुवने
शिश्रियाण ॥३१॥

१४ मा न पश्चा मा पुरस्तान्नुद्दिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया
वध ॥३२॥

१५ ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त शिशिरो वस त ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो
दुहाता ॥३६॥

१६ सा नो भूमिरा दिशतु यद्धन कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङक्तामिन्द्र एतु पुरोगव ॥४०॥

१७ यस्या गायन्ति नृत्यन्ति भूम्या मर्त्या व्यैलबा ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्या वदति दुन्दुभि ।
सा नो भूमि प्रणुदता सपत्नानमपत्न मा पृथिवी
कृणोतु ॥४१॥

१८ यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमा पच कृष्टय ।
भूम्यै पजन्यपत्न्यै नमो'स्तु वषमेदसे ॥४२॥

१९ निधि विभ्रती बहुधा गुहा वसु मणि हिरण्य पथिवी
ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्य-
माना ॥४४॥

२० यस्या कृष्णमरुण च सहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमि पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनि धामनि ॥५२॥

१३ हे भूमि, जो तेरी पूव दिशा है, जा उत्तर दिशा ह जो निचली और
जा पश्चिम दिशा है। विचरण करते मेरे लिए वह मगलमय हो
भवनम आश्रय लेते मुझपर न गिरे ॥३१॥

१४ न मुझे पीछेसे, न मुझे आगेसे न उत्तरसे, न नीचेसे पीडित करे।
हे भूमि, हमारे लिये स्वस्ति हो, शत्रु बडे वेगसे वध न कर सके ॥३२॥

१५ हे भूमि, तेरे ग्रीष्म, वर्षा, शरद हेमन्त, शिशिर, वसत ह। तेरे विहित
ऋतु, वष, रात दिन हे पथिवी हमारी कामना पूरी करे ॥३६॥

१६ जिस धनको हम चाहते हैं उसके बारेमें वह भूमि आदेश दे। भग-
वान इद्र गौओको सामने किये आवें ॥४०॥

१७ जिस भूमिसे ऐलव मद गाते नाचते हैं। जहा चिल्लाते लडते है,
जिसमें ददभि बोलती है। वह भूमि हमारे शत्रुओको हटावे, हमे
पृथिवी शत्रुहीन बनाये ॥४१॥

१८ जिसमे अन्न, धान, जौ होते है, जिसमें ये पाचो जन है। उस मेघ-
रक्षिता वर्षासे मोटी हुई भूमिके लिये नमस्कार ॥४२॥

१९ बहुत गुप्त निधिको धारण करती पथिवी धन मणि, सोनेको मुझ
दे। धन देनेवाली सुप्रसन्न दाता देवी, हमें धन दे ॥४४॥

२० जिस भूमिके ऊपर काले, लाल और एक दूसरेसे मिले रात दिन बनाये
गये। विस्तत भूमि जो वर्षासे आच्छादित अनाच्छादित है, वह हमे
प्रिय धाम धाममे मगलके साथ धारण करे ॥५२॥

२१ अहमस्मि महमान उत्तरो नाम भूम्या ।
अभीषाडस्मि विश्वापाडाशामाशा विषासहि ॥५४॥

२२ ये ग्रामा यदरण्य या सभा अधि भूम्या ।
ये सग्रामा समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

२३ यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधत ॥५७॥

२४ त्वमस्यावपनी जनानामदिति कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊन तत त आ पूरयति प्रजापति प्रथमजा
ऋतस्य ॥६१॥

२५ उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्य सन्तु पृथिविप्रसूता ।
दीघ न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्य बलिहृत स्याम ६२

२६ भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठित ।
सविदाना दिवा कवे श्रिया मा धेहि भूत्या ॥६३॥

—अथववेद का० १२, सू० १

२१ भूमिमे मैं उत्तर नामक तेजस्वी हो दमन करनेवाला हूँ। मैं दबाने वाला हू सबको दबानेवाला दिशा दिशामें विशेष दबानेवाला ॥५४॥

२२ भमि पर जो गाव है, जो अरण्य है, जो सभाये है जो सग्राम है, जो समितिया है, उनमे हम तेरे लिये सुन्दर बात करेंगे ॥५६॥

२३ जो बोलूगा, उसे मधुर बोलूगा, जो देखूगा, सो मुझे पसन्द करते हैं। मैं तेजवाला हू, वेगवाला हू, द्रोह लोभ करनेवाले दूसरोको मारता हू ॥५८॥

२४ तू जनोंके लिए बोनेवाली विस्तत कामधेनु है। जो तेरा कम है, उसको सत्य के प्रथम उत्पन्न प्रजापति पूरा करे ॥६१॥

२५ हे पथिवि, तेरे स्थल निरोग यक्ष्मा रहित प्रसवयुक्त हो। हमारी आयु दीघ हो, जगकर हम तेरे लिये बलि लानेवाले हो ॥६२॥

२६ हे माता भूमि, मुझे भद्र वस्तुओके साथ सुप्रतिष्ठित रख। हे कवि, दिनको जानते हुए मुझे श्री और वैभव दे ॥६३॥

—अथववेद १२।१

भाग २

पालिकाल

(६००—१ ई० पू०)

ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओं की रचना आर्यों के सप्तसिन्धु में आने के तीन सौ वर्ष बाद हुई। उसके दो सौ वष बाद तक ऋचायें बनती रहीं। फिर तीन शताब्दियो का वह काल ह, जब कि शतपथ, ऐतरेय, तत्तिरीय आदि ब्राह्मण रचे गये। इस समय के गद्य और कुछ गाथायें (श्लोक) भी सुरक्षित ह, किन्तु वह काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखतीं, यद्यपि दशन के सम्बन्ध मे उनके भीतर आई उपनिषदो का भारी महत्व है। उपनिषद-काल के समाप्त होने के बाद ही नई भाषायें अस्तित्व में आईं, जिनका सामूहिक नाम पालि कहा जा सकता ह। यद्यपि, पालि नाम मुख्यत बुद्ध के मुह से निकली पालियो (पक्तियो) के लिये ही उपयुक्त हुआ है, लेकिन आधुनिक विद्वानो ने भाषा का नाम पालि रख दिया है, जिसमें स्थविरवाद के त्रिपिटक ही नहीं, बल्कि अशोक और खार्वेल के शिलालेख लिखे गये ह। हमें यहा पालि-भाषा से कुछ नही लेना है। इस काल में सस्कृत की जो कवितायें हुईं, उनको समझने के लिए इस काल का जानना जरूरी है। अशोक के समय की ब्राह्मी लिपि ही हमारी सबसे पुरानी लिपि है, और वह इतनी पुष्ट और सुव्यवस्थित है, कि उसके विकसित होने में शताब्दिया लगी होगी। किन्तु, उस समय भी वदिक-कालकी तरह ही लिपि और लेखन-सामग्रीका बहुत कम प्रयोग किया जाता था, और जो प्रयोग हुआ भी, उसके लिये तालपत्र जसे भगुर साधन इस्तेमाल किये जाते थे, जिसके कारण ही उस समय के अभिलेख हमारे पास तक नहीं पहुच सके।

इस समय की कवितायें पालि में सुरक्षित ह। सस्कृत में उनके नमूने महभारत और रामायण में मिलते है, जो कि शताब्दियो तक मौखिक दोहराये जाते मौय-वश के उच्छेदके बाद शुग-काल में स्थायी रूप लेने लगे। हम महाभारत और रामायण ग्रथों पर विचार करते समय उनके भीतर आये कथानकों के काल पर निणय नहीं देना चाहते। कथानक शताब्दियो पहले के हो सकते ह। रामायण की मूल कथा "दशरथ" जातक के रूप में हमारे सामने मौजूद ह। दशरथ जातकमें दक्षिणापथके भूगोलका

कोई उल्लेख नहीं ह। निर्वासित राम-सीता लक्ष्मणने हिमालय में जाकर अपना निर्वासित जीवन बिताया। रामायण और महाभारतमें शुग-कालके बाद भी क्षेपक होते रहे। पर, उनके सबसे पुराने अश उसी कालके ह, जब कि महाभाष्यकार पतजलि शुग-वशके सस्थापक पुष्यमित्रसे यज्ञ करा रहे थे।

वेद-ब्राह्मण-कालके बाद लोगोकी मातभाषा सस्कृत नही रह गई। अब भिन्न भिन्न स्थानीय पालिया बोली जाती थी। लेकिन, ब्राह्मण अपन धम-ग्रथोको वेद और ब्राह्मणकी भाषामें पढते थे। अपने कम काण्डके लिये श्रौतसूत्र, धमसूत्र, गृह्यसूत्र बना रहे थे। इन ग्रथोको वह लोक-भाषामें नहीं बना सकते थे, क्योकि तब उनका उपयोग कुछ थोडे ही क्षेत्रोमें हो सकता था। इसके अध्ययन-अध्यापनके लिये उन्होने कुछ नियमोको स्थिर करके एक भाषा सस्कृत (निर्मित) की, जिसे आज "सस्कृत" कहा जाता ह। यद्यपि बुद्धसे एक शताब्दी बाद पदा हुए पाणिनि उसे "भाषा" कहते थे, जिसका अथ यही ह, कि वह सस्कृत उच्चारणोके अनरूप बनाई गई लोक भाषा थी।

इस सस्कृत भाषामें रचित महाभारत और रामायणमें भाषा, और शलीके विकासकी दृष्टि से देखनेपर महाभारत पुराना मालूम होता है। रामायणमें वह गुण विद्यमान ह, जिन्हें हम आज भी कविताके लिये अनि-वाय मानते ह।

१४ व्यास (२०० ई० पू०)

महाभारतके रूप में हमें उस समयकी संस्कृतकी विशाल सूक्तियोंका संग्रह मिलता है, जब कि संस्कृत मातृभाषा, नहीं रह गई थी। व्यास या पराशर-पुत्र कृष्णद्वैपायनको महाभारत या भारतका कर्ता माना जाता है। वसिष्ठके पौत्र पराशर की सन्तान होनेके लिये व्यासको ईसा पूर्व ग्यारहवीं शताब्दीमें होना चाहिये, जिसकी भाषा ऋग्वेदमें मिलती है। उसके बादकी शताब्दियोंमें शतपथ, ऐतरेय आदि ब्राह्मणोंकी भाषा आती है। उससे भी महाभारत की भाषा की कोई एकता नहीं है। महाभारतकी कथा पुरानी हो सकती है। इसके अनेक आख्यान बुद्धके समय (ई० पू० ६–५वीं सदी) में भी प्रचलित थे। लेकिन, जिस रूपमें महाभारत आज

१ पति-वरा—

१ स तर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च,
वादयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥२५॥
२ निःशब्दे तु कृते तस्मिन्, धृष्टद्युम्नो, विशांपते,
कृष्णा आदाय विधिवद्, मेघ-दुन्दुभि-निःस्वनः ॥२६।
३ रंग-मध्ये गतस्, तत्र मेघ-गम्भीरया गिरा
वाक्यमुच्चैर् जगादेदं, श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥२७॥
४ "इदं धनुर् लक्ष्यम्, इमे च बाणाः,
शृण्वन्तु मे भू-पतयः समेताः।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
लक्ष्ये शितैर् व्योम-चरैर् दशार्धैः।
५ एतद् महत् कर्म करोति यो वै,
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री, न मृषा ब्रवीमि।"

१४ व्यास (२०० ई० पू०)

हम मिलता ह, उसका सबसे प्राचीन अश ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीसे पहले नहीं जा सकता। इस प्रकार यह उस कालकी रचना है, जब कि अशोकके शिलालेखोकी भाषा तत्कालीन अनेक पालियोमेंसे एक थी। पालि सस्कृतके समीपतम भाषा ह, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। महाभारतमें बहुत पीछे तक क्षेपक डाले जाते रहे, किन्तु साथ ही उसमें बहुत से महत्वपूर्ण प्राचीन अश भी ह। द्रौपदी को जबरदस्ती दु शासन द्वारा खींच कर सभामें लानेका वर्णन यद्यपि बडा ही प्रभावपूर्ण ह, लेकिन वह असभव ह। सामन्त भला उसे कसे बर्दाश्त कर सकते थे, जब कि आजकी सबसे पिछडी जनजातियों के लोग भी स्त्रीपर ऐसे अत्याचारको आंखोंके सामने देख नहीं सकते। आज हमारा सारा देश एक गणराज्य ह। गणोंके बारेमें महाभारत में जो बातें कही गई ह, वह आज भी हमारे लिये शिक्षाप्रद ह।

१ द्रौपदीका स्वयबर—

१ उसने अग्निमे हवन और ब्राह्मणोसे स्वस्तिवाचन कराकर,
चारो ओर सारे बाजोको बजवाया।
२ हे प्रजाओके स्वामी, उसके चुप कर देनेपर,
द्रौपदीको लेकर विधिपूर्वक मेघ-दुदुभि जैसे स्वरवाले धष्टद्युम्नने,
३ रग (मच) के बीचमें जा वहा मेघ जैसी गभीर वाणी से,
सुन्दर अर्थयुक्त यह उत्तम वाक्य ऊचे स्वरसे कहा—
४ "यह धनुष, यह लक्ष्य और यह बाण है।
आये हुये भूपति मेरी सुनें—
यत्रके छिद्र द्वारा लक्ष्यपर
आकाशचारी पाच बाण समर्पित करो।
५ यह महान कर्म जो,
कुल, रूप और बलसे युक्त (पुरुष) करेगा।
आज उसकी भार्या यह मेरी बहिन।
कृष्णा होगी, मै झूठ नही बोलता।"

६ तान् एवमुक्त्वा, द्रुपदस्य पुत्र
पश्चाद् इद ता भगिनीमुवाच ।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च
सकीतयन् भूमि-पतीन् समेतान्,—
७ "त्वदर्थमागता, भद्रे, क्षत्रिया, प्रथिता भुवि ।
विध्येत य इद लक्ष्य, वरयेथा, शुभेऽद्य तम् ।" ॥३१॥
—आदि-पर्व (एकत्रिशोऽध्याय)

२ **लक्ष्यवेध—**

८ ते ऽलकृता कुण्डलिनो युवान,
परस्पर स्पर्धमाना नरेन्द्रा ।
अस्त्र बल चात्मनि मन्यमाना
सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥१॥
९ ते क्षत्रिया रग गता समेता,
जिगीषमाणा द्रुपदात्मजा ताम् ।
चकाशिरे, पर्वत-राज-कन्याम्,
उमा यथा देव-गणा समेता ।
१० अथाययुर् देव-गणा विमाने—
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस् तथैव,
यम पुरस्कृत्य धनेश्वर च ॥३॥
११ दैत्या सुपर्णाश्च महोरगाश्च,
देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर् नारद-पर्वतौ च,
गन्धर्व-मुख्या सह चाप्सरोभि ॥४॥

६ उन्हे यह कहकर द्रुपदके पुत्रने
पीछे नाम,
गोत्र और कमके साथ,
एकत्रित भूपतियोका बखान करते उस भगिनी से यह कहा—

७ "भद्रे, तेरे लिये ससारके प्रसिद्ध क्षत्रि आये है।
जो इस लक्ष्यको बेध दे, हे शुभे, आज तू उसे वरण करना।"
—आदिपव, अध्याय ३१

२ लक्ष्य-वेध—

८ वे अलकृत कुडलधारी सारे तरुण,
नरेन्द्र परस्पर स्पधा करते,
अपनेमे अस्त्र और बलका अभिमान करते,
हथियार उठाये आ पडे।

९ रगमे पहुचकर एकत्रित हुये
द्रुपद-कन्याके जीतनेके इच्छुक वे क्षत्रिय
वैसे प्रकाशित हुये, जैसे एकत्रित हुये देवगण,
पवतराज-कन्या उमाके (वरणके) लिये।

१० तब रुद्र, आदित्य, वसु और दोनो अश्विनीकुमार
देवगण विमानोसे
और सारे साध्य तथा मरुत देवता भी,
यम और कुबेरको सामने करके आये।

११ दैत्य, सुपण और महानाग,
देवर्षि गुह्यक और चारण,
विश्वावसु, नारद और पवत,
गधर्वों और गधर्वोके मुखिया अप्सराओके साथ (आये)।

१२ हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च,
वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथा-प्रधानम् ।
प्रेक्षा स्म चक्रुर् यदु-पुंगवास्ते,
स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्त । ।।५।।
१३ दृष्ट्वा तु तान् मत्त-गजेन्द्र-रूपान्,
पद्माभिपद्मान् इव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृतागान् इव हव्य-वाहान्,
कृष्ण प्रदध्यौ यदु-वीर-मुख्य ।।६।।
१४ शशंस रामाय युधिष्ठिर स,
भीम स-जिष्णु च यमौ च वीरौ ।
शनै शनैस् तान् प्रसमीक्ष्य रामो,
जनार्दन प्रीत-मना ददर्श ।।८।।
१५ अन्ये तु वीरा नृप-पुत्र-पौत्रा,
कृष्णा-गतैर् नेत्र-मन-स्वभावै ।
व्यायच्छमाना ददृशुर् न तान् वै,
सन्दष्ट-दन्तच्छद-ताम्र-नेत्रा ।।७।।
१६ तथैव पार्था पृथु-बाहवस् ते,
वीरौ यमौ चैव महानुभावौ ।
ता द्रौपदी प्रेक्ष्य, तदा स्म सर्वे,
कन्दर्प-बाणाभिहता बभूवु ।।९।।
१७ ततस्तु ते राज-गणा क्रमेण,
कृष्णा-निमित्त कृत-विक्रमाश्च ।
स-कर्ण-दुर्योधन-शाल्व-शल्या,
बलेन वीर्येण च नदमाना ।।१०।।

१२ वहा बलराम और कृष्ण,
बष्णि और अधक लोग भी अपने प्रधानोके अनुगामी
कृष्णके पक्षमें स्थित महान,
यदु कुलके वे मुखिया भी देखने लगे,

१३ मत्त गजेंद्रके से रूपवाले
पद्म शोभायुक्त, गजेंद्रसे भस्मसे ढके अग्नियोकी
तरह उन्हें देखकर,
यदुवीरोमें प्रधान कृष्णने सोचा।

१४ उन्होने बलराम से युधिष्ठिर,
अर्जुन सहित भीम और जमल दोनो वीरोंके बारे मे कहा।
उन्हें देखकर धीरे-धीरे बलरामने,
प्रसन्न मन हो कृष्णकी ओर देखा।

१५ दूसरे राजाओके पुत्र-पौत्र वीरो न।
द्रौपदीमें नेत्र-मन के कारण, से तन्मय होने।
देते ओठ कटे ओठ तथा लाल आखोवालोने,
उन्हें नही देखा।

१६ उसी तरह स्थूल बाहुवाले उन पृथा-पुत्र,
और जमुये दोनो सारे, (पाडव) महानुभाव वीर,
उस द्रौपदीको देखकर उस समय
कामदेव के वाणसे ताडित हुये।

१७ तब उन राजगणोने क्रमसे,
द्रौपदीके लिये पराक्रम किया।
कण, दुर्योधन, शल्यके साथ,
बल और पराक्रमपूवक नाद करते हुये।

१८ विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्रा,
गतौजस स्रस्त-किरीट-हारा,
विनिश्वसन्त शमया बभूवु ।
राज्ञा तदा मण्डलमातमासीत् ॥११॥
१९ यदा निवृत्ता राजानो धनुष सज्य-कमण ।
अथोदतिष्ठद् विप्राणा मध्याज् जिष्णुर् उदार-धी ॥१२॥
२० उदक्रोशन् विप्र-मुख्या विधुन्वतोऽजिनानि च ।
केचिद् आसन् वि-मनस , केचिद् आसन् मुदान्विता ॥१३॥
२१ आहु परस्पर केचिद्, निपुणा बुद्धि-जीविन ,—
"यत् कण-शल्य-प्रमुखै क्षत्रियैर् लोक-विश्रुतै ।
नानत वलवद्भिर् हि धनुर्वेद-परायणै ॥१४॥
२२ तत् कथ त्व-कृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
वटुमात्रेण शक्य हि सज्य कर्तु धनुर् द्विजा ॥१५॥
२३ यद्येष दर्पाद् धर्षाद् वाप्यथ ब्राह्मण-चापलात् ।
प्रस्थितो धनुरायन्तु, वीयता साधु मा गमत् ।" ॥१६॥
२४ केचिद्-आहुर्, "युवा श्रीमान् नाग-राज-करोपम ।
पीन-स्कन्धोरु-बाहुश्च, धैर्येण हिमवान् इव ॥१७॥
२५ सिह-खेल-गति श्रीमान् मत्त-नागेन्द्र-विक्रम ,
सम्भाव्यमस्मिन् कर्मेदम्, उत्साहाच्चानुमीयते ।" ॥१८॥
२६ एव तेषा वि-लपता विप्राणा विविधा गिर ।
अर्जुनो धनुषो ऽभ्यासे तस्थौ, गिरिरिवाचल ॥१९॥
२७ अर्जुन पाण्डव-श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नममाब्रवीत्,—
"एतद् धनुर् ब्राह्मणाना सज्य कर्तुमल नु किम् ?"
२८ तस्य तद् वचन श्रुत्वा, धष्टद्युम्नोऽब्रवीद् वच —
"ब्राह्मणो वाथ राजेन्द्रो वैश्यो वा शूद्र एव वा ॥२१॥

१८　धनुषसे विक्षिप्त होते
तेज रहित मुकुटहार-अस्त-व्यस्त हुये,
लम्बी सास लेते वे राजा शान्त हो गये।
तब राजमडल अभिमत था।

१९　धनुष तैयार करनेके कमसे जब राजा निवत्त हो गये
तब ब्राह्मणोके बीचसे उदार बुद्धिवाले अजुन खडे हुय।

२०　मगछालोको धुनते ब्राह्मणोके मुखिया चिल्ला उठे।
कोई उनमे अप्रसन्न थे, कोई प्रसन्नतायुक्त थे।

२१　कुछ निपुण बुद्धिजीवियोने एक दूसरेसे कहा—
कण शल्य आदि लोक प्रसिद्ध क्षत्रियो द्वारा,

२२　धनुर्वेद-परायण बलवानो द्वारा भी जो नही झुका।
कैसे बिना अस्त्रपर अधिकार किये शरीरसे भी अति दुबल,
(इस) ब्राह्मण पुत्र मात्र द्वारा हे ब्राह्मणो, वह धनुष लगाया जा सकता ह ?

२३　यदि यह दपसे, ढिठाईसे अथवा ब्राह्मण होनेकी चचलतासे,
धनुष ताननेके लिये चला है, तो रोके, अच्छा है (जो) न जाये।

२४　कुछने कहा—"तरुण है श्रीमान, नागराजके शुडके सदृश,
स्थूल कधा, जघा और बाहुवाला, और धैयमें हिमालय जैसा,

२५　सिंहकी खेलनेकी गतिवाला, श्रीयुक्त मत्त गजेद्रके सा परिक्रमवाला है
इससे यह कम सभव है, और उत्साहसे भी अनुमान होता है।"

२६　इस प्रकार उन ब्राह्मणोके नाना प्रकारकी बात करते समय,
अजुन धनुषके पास जा अचल पवतकी तरह खडे हुये।

२७　पाडवोमें श्रेष्ठ अर्जुनने तब धष्टद्युम्नसे कहा—
"यह धनुष ब्राह्मण खीच सकते है या नही ?"

२८　उनके उस वचनको सुनकर धृष्टद्युम्नने यह बात कही—
"ब्राह्मण हो अथवा राजेन्द्र, वैश्य हो या शूद्र,

२९ एतेषा यो धनु-श्रेष्ठ सज्य कुर्याद्, द्विजोत्तम ।
तस्मै प्रदेया भगिनी, सत्यमुक्त मया वच ।" ॥२२॥
३० तत पश्चाद् महातेजा पाण्डवो रण-दुर्जय ।
स तद् धनु परिक्रम्य, प्र-दक्षिणमथाकरोत् ॥२३॥
३१ प्रणम्य शिरसा देवमीशान वरद प्रभुम् ।
कृष्ण च मनसा कृत्वा, जगृहे चार्जुनो धनु ॥२४॥
३२ यत् पार्थिवै रुक्म-सुनीथ-वक्रै—
राधेय-दुर्योधन-शल्य-साल्वै ।
तथा धनुर्वेद-परैर् नृ-सिहै,
कृत न सज्य ,महतोऽपि यत्नात् ॥२५॥
३३ तद् अर्जुनो वीर्यवता सदर्पस्,
तद् ऐन्द्रिर्रिन्द्रावरज-प्रभाव ।
सज्य च चक्रे निमिषान्तरेण,
शराश् च जग्राह, दशार्ध सख्यान् ॥२६॥
३४ विव्याध लक्ष्य निपपात तच्च,
छिद्रेण भूमौ सहसाति-बिद्धम् ।
ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नाद,
समाज-मध्ये च महान् नि-नाद ॥२७॥
३५ चैलानि विव्यधुस् तत्र ब्राह्मणाश् च सहस्रश ।
न्यपतश्चात्र नभस समन्तात् पुष्प-वृष्टय ॥२८॥
३६ शताङ्गानि च तूर्याणि वादका समवादयन् ।
सूत-मागध-सघाश् चाप्यस्तुवस्तत्र सु-स्वरा ॥२९॥

३ राज-समागम —

३७ ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम् ।
नकुल हास्तिनपुर भीष्माय पुरुषर्षभ,

२९ इनमेंसे जो इस श्रेष्ठ धनुषको चढा दे, हे ब्राह्मणोत्तम,
उसे बहिन दी जायेगी, मैंने सत्य वचन कहा।"
३० उसके बाद महातेजस्वी रणमे दुजय उस पाडवने,
उस धनुषकी परिक्रमा करके तब प्रदक्षिणा की।
३१ सिरसे वरद प्रभु देव शकरको,
और मनसे कृष्णको प्रणाम कर, अर्जुनने धनुषको पकडा।
३२ रुक्म, सुनीथ, वक्र,
कण, दुर्योधन, शल्य, साल्व जैसे,
धनुर्वेद पारगत नरसिह राजाओने,
जो नही किया, बडे यत्नसे भी नही प्रत्यचायुक्त नही किया।
३३ वीर अजुन जवानोमें इद्र पुत्र,
विष्णुके समान प्रतापवाले अर्जुनने दपके साथ उसे,
पलक मारते ज्यासे युक्त कर दिया, और
गिनतीमे पाच वाणोको हाथमे पकड,
३४ वेध दिया और वह अत्यत वेधा हुआ, लक्ष्य
छिद्रके द्वारा तुरन्त धरतीपर गिर पडा।
तब आकाशमें नाद हुआ, और
समाजके मध्यमें महानिनाद हुआ।
३५ वहा सहस्रो ब्राह्मणोने वस्त्रोको टागकर फहराया,
और यहा आकाशसे चारो ओर पुष्पकी वृष्टि हुई।
३६ और बाजे वालोने सैकडो प्रकारके बाजे बजाये,
और सूत तथा मागध लोगोने भी सस्वरसे, वहा स्तुति की।

—आदिपव, अध्याय ३२

३ राजाओका समागम—

३७ तब पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने,
पाडव नकुलको हस्तिनापुर भेजा, भीष्म,

३७ द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च ।
भ्रातृणा चैव सर्वेषा, येऽनु-रक्ता युधिष्ठिर ॥
३९ स गत्वा हास्तिनपुर, नकुल समितिजय
भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रे धृतराष्ट्र च पाण्डव ।
४० सत्-कृत्यामन्त्रितास् तेन आचाय-प्रमुखास् तत
प्रत्ययु प्रीत-मनसो, यज्ञ, ब्रह्म-पुर सरा ॥
४१ धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामति ।
दुर्योधन-पुरोगाश् च भ्रातर सव एव ते ॥
४२ गान्धार-राज सुबल, शकुनिश् च महा-बल ।
अचलो वृषकश्चैव, कणश्च रथिना वर ॥
४३ तथा शल्यश्च बलवान्, वाह्लिकश्च महा-बल ।
सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर् भूरिश्रवा शल ॥
४४ अश्वत्थामा कृपो द्रोण सैन्धवश्च जयद्रथ ।
यज्ञसेन स-पुत्रश्च, सात्वश्च वसुधाधिप ॥
४५ प्राग्ज्योतिषश्च भूपतिर् भगदत्तो महारथ ।
स तु सर्वैं सह म्लेच्छै सागरानूपवासिभि ॥
४६ पर्वतीयाश्च राजानो राजा चैव वृहद्बल ।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च, वग कालिगकस्तथा ॥
४७ आकर्षा कुन्तलाश्चैव मालवाश्चान्ध्रकास्तथा ।
द्राविडा सिहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ॥
४८ कुन्तिभोजो महा-तेजा, पार्थिवो गौर-वाहन,
विराट सह पुत्राभ्या आवल्लश्च महाबल ॥
४९ शिशुपालो महावीर्यं सह पुत्रेण भारत ।
आगच्छत् पाण्डवेयस्य यज्ञ समर-दुर्मद ॥

३८ द्रोण, धनराष्ट, विदुर और कृपके लिये,
और सभी भ्राताओंके पास जो कि युधिष्ठिरके अनुरक्त थे।

३९ युद्ध विजेता उस नकुल पाडवने हस्तिनापुरमे जाकर
भी म और धतराष्ट्रसे मत्रणा की।

४० सत्कारपूवक नकुल द्वारा आमन्त्रित आचाय आदि तब,
प्रसन्न मनसे ब्राह्मणाके साथ यज्ञमे गये।

४१ धतराष्ट्र और भीष्म और महामति विदुर,
दुर्योधन आदि सारे ही वे भाई,

४२ गधारके राजा सबल और महाबली शकुनि,
अचल और वषक और रथियोमे श्रेष्ठ कण

४३ तथा बलवान शल्य और महाबली बाह्लीक (बलखवाल)
सोम और कुरुवशी सोमदत्त, भृरि भूरिश्रवा, शल्य

४४ अश्वत्थामा, कृप, द्रोण और सि धुराज जयद्रथ,
पुत्र-सहित यज्ञसेन और वसुधाधिप साल्व

४५ आसामके भपति महारथी भगदत्त,
—वह तो सागरके किनारे बसनेवाले सारे म्लेच्छाके साथ,

४६ और पहाडी राजा, तथा राजा वृहद्‌बल,
पुड्रराज वासुदेव और बग और कलिंगवाले,

४७ आकर, कुतल और मालव तथा आ ध्रवाले,
द्राविड, सिंहलवाला और कश्मीरवाला राजा

४८ महा तेजस्वी कुतिभोज और राजा गौरवाहन,
दोनो पुत्रोके साथ विराट् और महाबली आवल्ल,

४९ हे भारत, पुत्र-सहित महापराक्रमी समरमे दुमद,
शिशुपाल पाडवोके यज्ञमे आया।

७

५० रामश्चैवानिरुद्धश्च ककश्च सह-सारण ।
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर् महारथा ॥
५१ एते चान्ये च बहवो राजानो मध्यदेशजा ।
आजग्मु पाण्डु-पुत्रस्य राजसूय महाक्रतुम् ॥
५२ ददुस् तेषाम् आवसथान् धमराजस्य शासनात् ।
बहु-भक्ष्यान्वितान्, राजन् दीर्घिका-वृक्ष-शोभितान् ॥
५३ तथा धमात्मज पूजा चक्रे तेषा महात्मनाम् ।
सत्कृताश्च, यथोद्दिष्टान् जग्मुरावसथान् नपा ॥
५४ कैलास-शिखर-प्रख्यान् मनोज्ञान् द्रव्य-भूषितान् ।
सवत सवतान् उच्चै प्राकारै सुकृतै सितै ।
५५ सुवण-जाल-सवीतान्, मणि-कुट्टिम-भूषितान्,
सुखारोहण-सोपानान्, महासन-परिच्छदान् ॥
५६ स्रग्-दाम-समवच्छन्नान्, उत्तमागुरु-गन्धिन ।
हसेन्दु-वण-सदृशान्, आयोजन-सुदर्शनान् ॥
५७ अ-सबाधान् सम-द्वारान् युक्तान् उच्चावचैर् गुणै ।
बहुधातु-निबद्धागान् हिमवच्-छिखरान् इव ॥
५८ विश्रान्तास् ते ततोऽपश्यन् भूमिपा भूरि-दक्षिणम् ।
वत सदस्यैर् बहुभिर्, धमराज युधिष्ठिरम् ॥
५९ तत् सद पार्थिवै कीर्णं ब्राह्मणैश्च महर्षिभि ।
भ्राजते स्म तदा राजन्, नाक पृष्ठ यथामरै ॥

४ देवनम्—

वैशम्पायन उवाच—

६० उपोह्यमाने द्यूते तु, राजान सव एव ते ।
धतराष्ट्र पुरस्कृत्य, विविशुस्ता सभा तत ॥

५० बल्राम ओर अनुरुद्ध ओर सारणके सहित कक
और दूमरे सारे महारथी वष्णि आये।
५१ य और दूसरे बहुत से मध्यद ावाले राजा
पाडु पत्रके राजसूय महायज्ञम आये।
५२ हे राजन युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन्हे बहुत प्रकारके
भोजनोमे यक्त पुष्करिणी और वक्षसे शोभित निवास दिये गये।
५३ तथा युधिष्ठिरने उन महात्माओकी पूजा की,
सत्कार किये जानेके बाद वे राजा अपने निर्दिष्ट आवासोमें गये,
५४ जो कि (य) द्रव्योसे भषित मनोज्ञ कैलाश शिखरके समान,
चारो तरफ सुन्दर बनाये सफेद ऊचे प्राकारोसे घिरे
५५ सोनेके जाल से घिरे, मणिके चौतरोसे भषित,
सुखसे चढने लायक सीढियोवाले महाआसन और वस्त्रवाले,
५६ फलमालासे ढके उत्तम अगरकी गधवाले
हस और च द्रमाके रगसे, योजनो तक देखनेमे सुन्दर
५७ बिना भीडवाले समान द्वारवाले, नाना प्रकारके गुणोसे युक्त
बहुत प्रकारके धातुओसे बधे अगोवाले हिमालयके शिखरो जैसे।
५८ विश्राम करके उन राजाओने बहुत दक्षिणावाले,
बहुत सदस्योसे घिरे धमराज युधिष्ठिरका दशन किया।
५९ राजाओ, ब्राह्मणो और महर्षियोसे आकीण वह सभा,
हे राजन, तब ऐसी शोभती थी, जैसे अमरोसे स्वग।

—सभापव, अध्याय ७

४ जूआ खेलना—

वैशम्पायनने कहा—

६० जूयेके उपस्थापित होनपर वे सभी राजा,
धृतराष्ट्रको आगे करके उस सभामे प्रविष्ट हुये।

६१ भीष्मो द्रोण कृपश्चैव, विदुरश्च महामति ।
नीति-प्रीतेन मनसा तेऽववर्तत भारत ॥
६२ ते द्वन्द्वश पृथक् चैव सिंह-ग्रीवा महौजस ।
सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे ॥
६३ शुशुभे सा सभा राजन्, राजभिस्तै समागतै ।
देवैर् इव महाभागै समवतैस् त्रिविष्टम् ॥
६४ सर्वे वेद-विद शूरा, सर्वे भास्वर-मूर्तय ।
प्रावर्तत महाराज सुहृद् द्यूतमनन्तरम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

६५ अय बहु-धनो, राजन् सागरावर्त-सम्भव ।
मणिर् हारोत्तर श्रीमान् कनकोत्तम-भूषण ॥
६६ एतद, राजन् मम धन, प्रति-पणोऽस्ति कस्तव ।
येन मा त्व महाराज, धनेन प्रति-दीव्यसे ॥

दुर्योधन उवाच—

६७ सन्ति मे मणयश्चैव, धनानि सुबहूनि च ।
मत्सरश्च न मेऽर्थेषु, जयस्वैन दुरोदर ॥

वैशम्पायन उवाच—

६८ ततो जग्राह शकुनिस्तान् अक्षान् अक्ष-तत्त्व-वित्'
"जितम्" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

६९ मत्तकैतवकेनैव यज् जितोऽस्मि दुरोदरे ।
शकुने, हन्त दीव्यामो, ग्लहमाना परस्परम् ॥
७० सन्ति निष्क-सहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिता शुभा
कोषो हिरण्यमक्षय्य जातरूपम नेकश ॥
एतद् राजन्, मम धन तेन दीव्यामह त्वया ॥

६१ भीष्म द्रोण, कृप और महामति विदुरने
हे भारत, वे-मनसे (उनका)अनुगमन किया।

६२ सिह सी गदनवाले महापराक्रमियोने दो दो और अलग-अलग
विचित्र बहुतसे सिहासनोको शोभित किया।

६३ हे राजन, आये हुए उन राजाओसे वह सभा ऐसी शोभित हुई,
जसे एकत्रित हुये महाभाग देवो द्वारा स्वर्ग।

६४ सभी वेद जाननेवाले, शूर सभी प्रकाशमान मूर्तिवाले थे
हे महाराज, फिर मित्रोका जूआ आरभ हुआ।

युधिष्ठिरने कहा—

६५ हे राजन्, यह बहुत मूल्यका सागरकी धारामेसे उत्पन्न,
श्रीयुक्त सुवर्णका उत्तम भूषण हारयुक्त मणि ह।

६६ हे राजन, यह मेरा धन ह। तुम्हारा मुकाबिलेका दाव क्या है जिस
धनसे कि तुम, हे महाराज मुकाबिलेमे खेल रहे हो?

दुर्योधन बोला—

६७ मेरे पास मणिया ह, और बहुत अधिक धन हे,
धनके सम्बन्धमें मुझे कजूसी नही है, इस दावको जीतो।

वैशम्पायनने कहा—

६८ तब जयके तत्ववेत्ता शकुनिने उन पाशोको हाथमें लिया,
"जीत लिया" यह शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

६९ हे मतवाले शकुनि, धोखेसे ही मैं जूयेमें जीता गया हू, हन्त,
दाव लगाकर (आओ) आपसमें हम खेलें।

७० हजार अशर्फियोके भाडवाली सुन्दर मेरी पेटिकायें है,
कोश, अक्षय अनेक प्रकारका सोना,
हे राजन, यह मेरा धन है, उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हू।

वशम्पायन उवाच—

७२ कौरवाणा कुल-कर ज्येष्ठ पाण्डवम च्युतम् ।
इत्युक्त शकुनि प्राह "जित" इत्येव त नृपम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७३ अय सहस्रसमितो- वयाघ्र सु-प्रतिष्ठित ।
सु-चक्रोपस्कर श्रीमान् किंकिणी-जाल-मण्डित ।।

७४ सह्लादनो राज-रथो य इहास्मान् उपावहत् ।
अष्टौ य कुरर-च्छाया सदश्वा राष्ट्र-सम्मता ॥

७५ वहन्ति नैषा मुच्येत पदाद् भूमि उपस्पृशन् ।
एतद् राजन धन मह्य, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७६ एव श्रुत्वा व्यवमितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिर अभापत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७७ शत दासी-सहस्राणि -तरुण्यो हेम-भद्रिका ।
कम्बु-केयूर-धारिण्यो निष्क-कण्ठ्य स्वलकृता ॥

७८ महार्हमाल्याभरणा सुवस्त्राश्च दनोक्षिता ।
मणीन् हेम च विभ्रत्यश्चतु षष्टि विशारदा ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७९ एतच्छ्रुत्वा व्यवसिता, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिर अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८० एतावन्ति च दासाना सहस्राण्युत सन्ति मे ।
प्रदक्षिणानुलोमाश्च प्रावार-वसना सदा ॥

वैशम्पायन बोले—

७२ कौरवोके वशकर न चित्त हानेवाले पाडवको,
ऐसा कहनेपर शकुनिने "जीत लिया उस राजासे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७३ यह हजार मूल्यका बाघम्बरयुक्त सुप्रतिष्ठित
सुन्दर चक्कोसे युक्त श्रीसहित किंकिणीके जालोसे मडित,
७४ नाद करनेवाला राजरथ है जो हमे यहा लाया।
जिसको राष्ट्रमे सम्मानीय श्रेष्ठ कुरर जैसे आठ घोडे,
७५ वहन करते ह इनके चरणोसे भूमि स्पश करते नही छूटती,
हे राजन् यह मेरा धन है उसके साथ म तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

७६ यो सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने 'जीत लिया' यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७७ सुवण भूषित कम्बु-केयूर धारिणी तरुणिया,
कठमे मोहरवाली सुअलकृत एक सौ हजार दासिया
७८ (जो) महाघ माला-आभरणवाली सुवस्त्रा, चन्दन लिप्त, मणि
और सोनेको धारण करती चौसठ (कलाओ) मे विशारद (हैं)।
हे राजन यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

७९ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने जीत लिया' यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८० चतुर अनुगामी और सदा प्रावार पहननेवाले,
मेरे ये सौ-दस-हजार दास (ह)।

८१ प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता, युवानो मृष्ट-कुण्डला ।
एतद्, राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८२ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिर अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८३ सहस्र-सख्या नागा मे मत्तास् तिष्ठन्ति सौवल
हेम-कक्षा कृतापीडा, पद्मिनो हेम मालिन ॥
८४ सुदान्ता राज-वहना, सव-शब्द-क्षमा युधि ।
ईषदन्ता महाकाया सर्वे चाष्टकरेणव ॥
८५ सर्वे च पुर-भेत्तारो नव-मेघ-निभा गजा ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८६ इत्येव वादिन पार्थ, प्रहसिन्नव सौबल ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८७ रथास् तावन्त एव मे, हेम-दण्डा पताकिन ।
हयैर् विनीते सम्पन्ना रथिभिश् चित्र-योधिभि
८८ एकैको यत्र लभते सहस्रपरमा भृतिम् ।
युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतन मास-कालिकम् ॥
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८९ इत्येव उक्ते वचने, कृत-वैरो दुरात्मवान् ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

८१ (जो) प्राज्ञ, मेधावी, आनाकारी तरुण चमकते कुडलवाले है,
हे राजन, यह मेरा धन है उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८२ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील
शकुनिने "जीत लिया' यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८३ हे सुबल पुत्र, मेरे हजार मस्त गज ह (जो कि) सुवणके कमरबन्द
शिरोभूषण सहित सुवण मालाधारी पद्मलक्षणवाले,
८४ सुशिक्षित, राजाओके वहन करने योग्य युद्धमे सब तरहके शब्दो
को सहनेवाले, हरिण दात महाकाय और सभी आठ हथिनियोवाले,
८५ और सभी नगर तोडनेवाले नवीन मेघ जैसे ह।
हे राजन, यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८६ ऐसा कहते हुए पथा-पुत्रपर हसते से
"जीत लिया यही शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८७ उतने ही यह रथ ह, जो कि सुवण दड पताकावाले,
प्रशिक्षित घोडोसे जुते विचित्र युद्ध करनेवाले रथियोसे युक्त,
८८ जिन (रथियो) मेंसे एक एक सहस्र तक वेतन पाता है,
युद्ध करते या न युद्ध करते भी (उतना) मासिक वेतन।
हे राजन, यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८९ एसा वचन कहनेपर वैरबद्ध दुरात्मा शकुनिने,
"जीत लिया", यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर उवाच—

९० अश्वास् तित्तिरि-कल्मापान्, गान्धर्वान् हेम-मालिन ।
दद‍ौ चित्ररथस् तुष्टो यास्तान् गाण्डीव-धन्वने ॥

९१ युद्धे जित पराभूत, प्रीति-पूव अरिन्दम ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९२ एतच्छ्रुत्वा, व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९३ रथाना शकटाना च श्रेष्ठाना चायुतानि मे ।
युक्तान्येव हि तिष्ठन्ति वहिर् उच्चावचैस् तथा ॥

९४ स्व वर्णस्य वर्णस्य समुच्चीय सहस्रश ।
यथा समुदिता वीरा, सर्वे वीर-पराक्रमा ॥

९५ षष्टिस् तानि सहस्राणि, सर्वे विपुल-वक्षस ।
एतद राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९६ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९७ ताम्र-लोहै परिवृता निधयो ये चतु शता ।
पच द्रौणिक एकक सुवर्णस्याहतस्य वै ।

९८ जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत ।
एतद राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

युधिष्ठिर बोले—

९० तुष्ट होकर तीतरकी तरह कबरे सुवण मालावाले
जो गधर्वीय घोडे चित्ररथने अजुनको दिय।

९१ युद्धमें पराजित और पराभूत होकर शत्रुमदनने प्रीतिपूवक दिया,
हे राजन, यह मेरा धन है उसके साथ म तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

९२ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९३ मेरे एक हजार श्रेष्ठ रथ और शकट,
नाना प्रकारसे जुते हुय ही बाहर अवस्थित ह।

९४ इस प्रकार एक एक वणके चुनकर हजारो
इकटठा हुये सभी पराक्रमवाले वीर

९५ वे साठ हजार, जो कि सभी विपुल छातीवाले है,
हे राजन, यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

९६ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब लिये प्रयत्नशील शकुनिने,
'जीत लिया' यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९७ ताबेसे घिरी ढकी जो चारसौ निधिया ह,
जिनमे एक-एक शुद्ध सुवणके पाच द्रोणोवाली है,

९८ जो मुख्य अनघ सुवर्णोकी है, हे भारत
हे राजन यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन उवाच—

९९ एतच्छ्रुत्वा व्यवसिनो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभापत ॥

—सभापव, १८

५ बलात्कार —

वैशम्पायन उवाच—

१०० तत समुत्थाय स राजपुत्र,
श्रुत्वा भ्रातु शासन रक्त-दृष्टि ।
प्रविश्य तद् वेश्म महारथाना,
इत्यब्रवीद् द्रौपदी राज-पुत्रीम् ॥

१०१ "एह्येहि पाचालि, जितासि कृष्णे,
दुर्योधन पश्य विमुक्त-लज्जा,
कुरून् भजस्वायत् पद्म-नेत्रे,
धर्मेण लब्धासिसभा परेहि" ॥

१०२ तत समुत्थाय सुदुमना सा,
विवर्ण आमृज्य मुख करेण ।
आर्ता प्रदुद्राव यत स्त्रियस्ता,
वृद्धस्य राज्ञ कुरुपुगवस्य ॥

१०३ ततो जवेनाभिससार रोषाद्,
दु शानस्ता अभिगजमान ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु,
जग्राह केशेषु नरेन्द्र-पत्नीम् ॥

१०४ ये राजसूयावभथे जलेन, महाक्रतौ मन्त्र-पूतेन सिक्ता ।
ते पाण्डवाना परिभूय वीर्यं, बलात् प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन ॥

वैशम्पायन बोले—

९९ यह सुनकर शाखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

—सभा पर्व १८

५ द्रौपदीका लज्जाहरण—

वैशम्पायन बोले—

१०० तब उठकर लाल आखोवाले राजपुत्र दुःशासनने,
भाईकी आज्ञा सुनकर
महारथियोके उस गहमे प्रवेश करके
राजपुत्री द्रौपदीसे यह कहा—

१०१ "आ आ पाचालि कृष्णा, तुझे जीत लिया गया है।
लज्जा छोडकर दुर्योधनको देख।
पद्म जैसी बडी आखोवाली, तू कुरुओकी सेवा कर,
धर्मसे तुझे प्राप्त किया गया है सभामें चल।"

१०२ उठकर दुःखी हो वह अपने
मुरझाये मुखको हाथसे मलकर
आर्त हो वहा दौडी जहा कि वृद्ध
राजा कुरु-पुगवकी स्त्रिया थी।

१०३ तब रोषयुक्त दुःशासनने, वेगसे
गरजते हुए उसका अनुसरण किया।
और घुघराले नीले लम्बे
केशोसे नरेन्द्र-पत्नीको पकड लिया,

१०४ जो केश राजसूयके महायज्ञमे
अवभथ-मत्र द्वारा पवित्र जलसे अभिषिक्त हुये थे,
उन्हे पाडवोके पराक्रमको तिरस्कृत कर,
धृतराष्ट्र-पुत्रने जबदस्ती पकड लिया।

१०५ स ता पराकृष्य सभा-समीपम्,
आनीय कृष्णा अति-दीर्घ-केशीम्।
दु शासनो नाथवती अ-नाथवच,
चकर्ष वायु कदलीमिवाताम्॥

१०६ सा कृष्यमाणा नमिताग-यष्टि,
शनैरुवाचाथ—"रजस्वलास्मि,
एक च वासो मम मन्दबुद्धे,
नेतु सभा नार्हसि मा अनाय॥"

१०७ ततोऽब्रवीत् ता प्रसभ निगृह्य,
केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम्—
"रजस्वला वा भव याज्ञसेनि,
एकाम्बरा वाऽप्यथवा विवस्त्रा॥

१०८ द्यूते जिता चासि कृतासि दासी,
दासीषु वासश्च यथोपयोगम्।"
प्रकीर्णकेशी पतिताध-वस्त्रा,
दु शासनेन व्यव-धूयमाना॥

१०९ ह्रीमत्य-मर्षेण च दह्यमाना,
शनैरिद वाक्यमुवाच कृष्णा—
"इमे सभायामुपनीतशास्त्रा,
क्रियावन्तः सव एवेन्द्रकल्पा॥

११० गुरु-स्थाना गुरवश्चैव सर्वे,
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम्।
नृशस-कमस्वमनाय-वृत्त,
मा मा विवस्त्रा कुरु मा विकार्षी।

१०   वह अतिदीर्घ केशवाली द्रौपदीको
खींचकर सभाके समीप लाया,
नाथवालीको अनाथाकी तरह
वायुसे केलेकी तरह आर्तको दुःशासनने घसीटा।

१०६   शरीर झुकाये घसीटी जाती उसने
धीरेसे कहा— 'मैं रजस्वला हूं,
हे मन्दबुद्धि मैं एकवस्त्रा हूं,
अनार्य, मुझे सभामें मत ले चल।'

१०७   काले केशोंके साथ जबर्दस्ती उसे
पकडकर तब उसने द्रौपदीसे कहा—
"हे यज्ञसेन-पुत्रि, चाहे रजस्वला
एकवस्त्रा या बेवस्त्रवाली हो।

१०८   जूयेमें तू जीती, दासी बनाई गई है,
दासियोंका वस्त्र उपयोगके अनुसार होता है।'
बिखरे केशोंवाली आधे हटे वस्त्रवाली,
दुःशासनसे घसीटी जाती,

१०९   अमर्षसे जलती लज्जावती
कृष्णाने धीरेसे यह बात कही—
"सभामें शास्त्र जाननेवाले
कर्मनिष्ठ यह सभी इन्द्र समान

११०   और गुरु-स्थानीय सभी गुरुजन हैं,
उनके सामने इस प्रकार मैं खडी नहीं हो सकती।
तू नृशंस अनार्य आचरणवाला है,
मुझे नंगी मत कर, मुझे मत घसीट।

१११ न मर्षयेयुस् तव राजपुत्रा,
सेन्द्रापि देवा यदि ते सहाया ॥
धर्मे स्थितो धर्म-सुता महात्मा,
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्य ।
११२ वाचापि भर्तु परमाणुमात्र,
इच्छामि दोष न गुणान् विसज्य ।
इद त्व-काय कुरु-वीर-मध्ये,
रजस्वला यत् परिकर्षसे माम् ॥
११३ न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्साम्
ध्रुव तवेद मतम् अभ्युपेत ।
धिगस्तु, नष्ट खलु भारताना,
धर्मस्तथा क्षत्र विदा च वत्तम् ॥
११४ यत्र ह्यतीता कुरु-धर्म-वेला,
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरव सभायाम् ।
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्व,
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि ॥
११५ राज्ञस् तथाहीममधर्ममुग्र,
न लक्षयन्ते कुरु-वृद्ध-मुख्या ।"
तथा ब्रुवन्ती करुण सुमध्यमा,
भर्तॄन् कटाक्षै कुपितान् अपश्यत् ॥
११६ सा पाण्डवान् कोप-परीत-देहान्,
हृतेन राज्येन तथा धनेन ।
रत्नैश्च मुख्यैन तथा बभूव,
यथा त्रपा-कोप-समीरितेन ॥

१११ यदि इन्द्र-सहित देवता भी तेरे सहायक हो,
तो भी राजपुत्र तुझे क्षमा नही करेगे।
महात्मा धम-पुत्र धममे स्थित ह,
धम सूक्ष्म है, जिसे चतुर ही जान सकते है।

११२ वाणीसे भी, गुणोको छोडकर भी,
पतिका अणु मात्रदोष मै नही देखती
यह तो अयुक्त काय है, जो कि कुरु वीरोके मध्यमे
मुझ रजस्वलाको तू घसीट रहा है।

११३ यहा (सभामे) कोई निंदा नही कर रहा है
निश्चय वह तेरी रायको मानते है।
धिक्कार ह भारतोका धम और क्षत्रियो के धमके
जाननेवालोका आचार भी नष्ट हो गया,

११४ जहा कुरु धमकी मर्यादा उल्लघित होते
सभामे सारे कुरु देख रहे ह।
द्रोण और भीष्ममें सत नही है,
उसी तरह महात्मा राजाके इस क्षत्ता (विदुर) मे भी।

११५ उसी तरह इस उग्र अधमको
कुरुओके वद्ध मुखिया नही लखते।'
उस तरह करुण बोलती सुन्दर कटिवाली द्रौपदीने,
अपने कुपित पतियोको कटाक्षोसे देखा।

११६ पाडवोको उसने कोपसे व्याप्त देहवाले
(देखा), वैसा राज्य और धनके
और मुख्य रत्नोके हारनेसे नही हुआ था
दुख, जैसा कि लज्जा और कोपसे प्रेरित

११७ कृष्णा कटाक्षेण बभूव दुःखम्,
दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णाम्।
अवेक्षमाणा कृपणान् पतींस्तान्,
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पाम् ॥

११८ उवाच तद् वाक्यमतीव हृष्टः,
सम्पूजयामास हसन् स-शब्दम्।
गान्धार-राजः सुबलस्य पुत्रस,
तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत्।

११९ सभ्यास्तु ये तत्र बभूवरन्ये,
ताभ्यां ऋते धार्तराष्ट्रेण चैव।
तेषां अभूद् दुःखमतीव, कृष्णां
दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥

भीष्म उवाच—

१२० "न धर्म-सौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं,
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अ-स्वाम्य-शक्तः पणितुं पर-स्वं,
स्त्रियाश् च भर्तुर् वशतां समीक्ष्य।

१२१ त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां,
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन,
तस्माद् न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥

११७ कृष्णाके कटाक्षसे उन्हे हुआ।
दु शासन भी दीन पतियोकी ओर देखती कृष्णाको
वेगसे झकझोर कर बेहोश हुई सी

११८ अत्यत हर्षित होकर यह वाक्य बोला (था)
मानो शब्दके साथ हसते हुए (उसकी) पूजा की।
सुबलके पुत्र गधारराज शकुनिने भी,
वैसे ही दु शासनका अभिन दन किया।

११९ इन दोनोको और दुर्योधनको छोडकर
जो वहा दूसरे सभ्य थे उन्हें
सभामे कृष्णाको घसीटी जाती
देखकर अत्यत दु ख हुआ।

भीष्म बोले—

१२० "हे सुभगे, धमकी सूक्ष्मताके कारण
तेरे इस प्रश्नका ठीकसे मैं निणय नही कर सकता,
दास दूसरे धनको दाव पर नही रख सकता,
और स्त्री पतिके वश होती है, इसे भी देखना है।

१२१ युधिष्ठिर, समद्ध सारी पृथिवीको भी
छोड देंगे, पर धमको नही छोडेग,
युधिष्ठिरने कह दिया है कि मै "जीत लिया गया'
इसलिये इसका मै विवेक नही कर सकता।

१२२ द्यूतेऽद्वितीय शकुनिर् नरेषु,
कुन्ती-सुतस्तेन निसृष्ट-काम ।
न मन्यते ता निकृति युधिष्ठिर,
तस्माद् न ते प्रश्नमिम ब्रवीमि '॥

द्रौपदी उवाच—

१२३ "आहूय राजा कुशलैर् अनार्यै,
दुष्टात्मभिर् नैकृतिकै सभायाम् ।
द्यूत-प्रियै नाति-कृत-प्रयत्न
कस्माद् अय नाम निसृष्ट-काम ॥

१२४ अ-शुद्ध-भावै निकृति-प्रवृत्तैर्,
अ-बुध्यमाना कुरु-पाण्डवाग्र्य,
सभय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात्
पश्चादय कैतवमभ्युपेत ॥

१२५ तिष्ठन्ति चेमे कुरव सभाया,
ईशा सुताना च तथा स्नुषाणाम् ।
समीक्ष्य सर्वं मम चापि वाक्य,
विब्रूत मे प्रश्नमिम यथावत् ॥

१२६ न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा,
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्त्यमस्ति,
न तत् सत्य यच्छलेनानुविद्धम् ॥"

१२२ जूयेके बारेमे आदमियोमें शकुनि अद्वितीय है,
उसके साथ खेलनेकी इच्छा कुन्ती-पुत्र न प्रकट की।
युधिष्ठिर उसे धोखा नही मानते,
इसलिये तेरे इस प्रश्नके बारेमे म नही कह (सक)ता।

द्रौपदी बोली—

१२३ राजा अनार्यो, चालाको
दुष्टो धोखेबाजो, जूआ प्रेमियो द्वारा
सभामे बुलाकर नातिप्रयत्न कर (हार) गय
राजा, कैसे सम्मति देनके इच्छुक है ?

१२४ अशुद्ध भाववाले वचनामे प्रवत्त सबने
बिना जाने कुरु-पाडवोमें श्रेष्ठ (युधिष्ठिर) को
एक होकर जीता इसलिये
उन्होने यह धोखा खाया ?

१२५ सभामे पुत्रो और बहुओके स्वामी
ये कुरु लोग बैठ है,
(आप) सभी मेरे वचनपर विचार करके
मेरे इस प्रश्नका ठीकसे जवाब दे।

१२६ वह सभा नही, जहा वृद्ध नही है,
वह वृद्ध नही, जो धमकी बात नही करते,
वह धर्म नही, जिसमें सत्य नही,
वह सत्य नही, जो छललिप्त है।

वैशम्पायन उवाच—

१२७ तथा ब्रुवन्ती करुण रुदती,
अवेक्षमाणा कृपणान् पतीस्तान् ।
दु शासन परुषाण्यप्रियाणि,
वाक्यान्युवाचामधुराणि चैव ॥

१२८ ता कृष्यमाणा च रजस्वला च
स्रस्तोत्तरीयाम तदहमाणाम्,
वृकोदर प्रेक्ष्य युधिष्ठिर च,
चकार कोप परमात-रूप ।

भीम उवाच—

१२९ "भवन्ति गेहे बन्धक्य कितवाना युधिष्ठिर।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥

१३० वाहनानि धन चैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वय चैव कैतवेन हृत परै ।

१३१ न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान् ।
इम व्यतिक्रम मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥

१३२ एषा ह्यनहती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवै ।
त्वत्-कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्, नृशसैर-कृतात्मभि ॥

१३३ अस्या कृते मन्युरय त्वयि राजन् निपात्यते।
बाहू तेऽह प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय" ॥

अर्जुन उवाच—

१३४ "न पुरा, भीम-सेन, त्वमीदृशी वदिता गिर ।
परैस्ते नाशित नून नृ-शसै धर्म-गौरवम् ॥

१३५ न सकामा परे कार्या धममेवाचरोत्तमम ।
भ्रातर धार्मिक ज्येष्ठ कोऽति-वर्तितुमर्हति ॥

वैशम्पायन बोले—

१२७ उस तरह् कहती सकरुण रोती,
दीन पतियोको ओर देखती द्रौपदीको
दु शासन कठोर अप्रिय
अमधुर वाक्यो मे बोला।

१२८ और उस रजस्वलाको घसीटी जाती,
खिसकी चादरवाली उसके अयोग्य इस (बर्त्ताव) को
और युधिष्ठिरको देखकर
परम व्याकुल हो भीमने कोप किया।

भीम बोले—

१२९ हे युधिष्ठिर, जुआरियोके घरमें बधकिया होती है,
उनपर भी जूआ नही खेलते, उनपर भी दया होती है।

१३० वाह्न, धन, कवच और आयुध
राज्य और स्वय हमें भी दूसरोने धोखसे ह्र लिया,

१३१ पर उसके विषयमे मुझ कोप नही हुआ, आप हम सबके स्वामी हैं।
पर, इसे मै अनुचित मानता हू, कि जो द्रौपदी दावपर रक्खी गई।

१३२ इस (बर्त्ताव) की अपात्र वह् बाला पाडवोको पाकर तुम्हारे कारण,
क्षुद्र नशस अकृतज्ञ कौरवो द्वारा क्लेशित की जा रही हैं।

१३३ राजन, इसके लिए यह् मेरा क्रोध तेरे ऊपर गिरेगा,
मै तेरी बाहुओको जला दूगा। सह्देव, आग ले आओ।

अजुन बोले—

१३४ भीमसेन, तूने ऐसी बात पह्ले कभी नही कही,
जान पडता हैं, नृशस शत्रुओने धमके प्रति तेरे गौरवको नष्ट
कर दिया।

१३५ शत्रुओको सफल मत बना, उत्तम धम ही का आचरण कर,
धार्मिक जेठे भाईकी आज्ञा कौन उल्लघन कर सकता है ?

१३६ आहूता हि परै राजा क्षात्र व्रतमनुस्मरन् ।
दीव्यते पर-कामेण तद् न कीर्ति-कर महत्" ।

भीम उवाच—

१३७ "एवमस्मिन् कृत विद्या यदि नाह धनजय ।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निदहेय बलाद् इव" ॥

—सभापव

६ मध्यस्थ—

१३८ अथ दुर्योधन कृष्ण शकुनिश्चापि सौबल ।
सन्ध्या तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हम-पराजितम् ॥

१३९ आचक्षेता तु कृष्णस्य धतराष्ट्र सभागतम् ।
कुरूश्च भीष्म-प्रमुखान् राज्ञ सर्वांश्च पार्थिवान् ॥

१४० तत सभा समासाद्य केशवस्यानुयायिन ।
स-शखै वेणु-निर्घोषै दिश सर्वा व्यनादयन् ॥

१४१ तत सा समिति सर्वा राज्ञाममित-तेजसाम् ।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाक्षया ॥

१४२ अवतीर्य रथाच् छौरि कैलास-शिखरोपमात् ।
महेन्द्र-भवन-प्रख्या प्रविवेश सभा तत ॥

१४३ उत्तिष्ठति महा-राजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राज-सहस्राणि समुत्तस्थु समन्तत ॥

१४४ तत्र केशवमानर्चु सम्यगभ्यागत सभाम् ।
राजान पार्थिवा सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥

१४५ ततस्तूष्णी सवमासीद् गोविन्द-गत-मानसम् ।
न तत्र कश्चित् किंचिद् वा व्याजहार पुमान् क्वचित् ।

१३६ क्षत्रियोके व्रतका ख्याल करके दूसरो द्वारा बुलाये गये राजाने,
परायेकी कामनासे जूआ खेला वह हमारे लिये महाकीर्तिकारी है।

भीमसेन बोले—

१३७ हे अजुन, इस विषयमे ऐसे कियेको यदि म न जानता,
तो प्रज्ज्वलित अग्निमें जवदस्ती (इनकी) दोनो बाहो को जला डालता।

—सभा पव अध्याय २३

६ समझौतेकी बातचीत—

१३८ तब दुर्योधन और सुबल पुत्र शकुनिने भी
अजेय पूजनीय कृष्णके सध्या करते समय पास आकर,

१३९ कृष्णसे सभामें मौजूद धतराष्ट्रके बारेमे
भीष्म आदि कुरुओ, राजाओ और सभी पार्थिवोके बारेमें कहा।

१४० तब केशवके अनुयायियोने सभामे पहुचकर,
शख-सहित वशीके शब्दोंसे सारी दिशाओको व्याप्त कर दिया।

१४१ तब अनत तेजवाले राजाओकी वह सारी समिति,
कृष्णके आगमनकी इच्छासे हर्षित हो कपित हुई।

१४२ तब कैलाशके शिखर जैसे ऊचे रथसे कृष्ण
उतरकर, इद्र-भवनके समान सभामें प्रविष्ट हुये।

१४३ जनोके ईश्वर महाराज धृतराष्ट्रके उठनेपर,
चारो ओर हजारो राजा खडे हो गये।

१४४ सभामें आये केशवकी उन्होने अच्छी तरह पूजा की।
तब राजा पार्थिव और सारे कुरु जनादन

१४५ गोविन्दकी ओर मन लगाये सब चुप रहे,
कोई पुरुष कही कुछ भी नही बोला।

१४६ तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णीभूतेषु राजसु।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधव —
१४७ "कुरूणा पाण्डवाना च शम स्यादिति भारत।
अ-प्रणाशेन वीराणा, एतद् याचितुमागत ॥
१४८ इद ह्यद्य कुल श्रेष्ठ सव-राजसु पार्थिव।
श्रुत-वृत्तोपसम्पन्न सर्वै समुदित गुणै ॥
१४९ कृपानुकम्पा-कारुण्यमानृशस्य च भारत।
तथाजव क्षमा सत्त्य कुरुष्वेतद् विशिष्यते ॥
१५० तस्मिन्नेवविधे राजन् कुले महति तिष्ठति।
त्वन्-निमित्त विशेषेण नेह युक्तम-साम्प्रतम् ॥
१५१ त्व हि धारयिता श्रेष्ठ कुरूणा कुरु-सत्तम ॥
मिथ्या प्रचरता तात, बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।
१५२ ते पुत्रा तव कौरव्य, दुर्योधनपुरोगमा।
धर्मार्थौ पृष्ठत कृत्वा प्रचरन्ति नृशसवत् ॥
१५३ अ-शिष्टा गत-मर्यादा, लोभेन हृत-चेतस।
स्वेषु आपद् महा-घोरा, कुरुष्वेव समुत्थिता ॥
१५४ उपेक्ष्यमाणा कौरव्य, पथिवी घातयिष्यति।
शक्या चेय शमयितु त्व चेद् इच्छसि भारत ॥
१५५ पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्ह परान्।
आज्ञा तव हि, राजेन्द्र कार्या पुत्रै सहान्वयै ॥
१५६ हित बलवदप्येषा तिष्ठता तव शासने।
तव चैव हित, राजन् पाण्डवाना अथो हितम् ॥
१५७ शमे प्रयतमानस्य तव शासन-काङ्क्षिण।
सहाय-भूता भरतास् तवैव स्युजनेश्वर ॥

१४६ उन सभी राजाओके चुप होकर बैठनेपर,
धतराष्ट्रकी ओर देखकर माधवने कहा—

१४७ "हे भारत, कुरुओ और पाडवोमें
वीरोके नाशके बिना शान्ति हो, यह मागनेके लिये म आया हू।

१४८ हे पार्थिव, यह (कुरु) कुल आज सभी राजाओमे श्रेष्ठ है
विद्या और आचारसे सम्पन्न सभी गुणोंसे युक्त है।

१४९ हे भारत कृपा, अनुकम्पा, करुणा और उदारता,
तथा ऋजुता, क्षमा सत्य, यह (गुण) कुरुओमें विशेष कर ह।

१५० हे राजन, इस प्रकारके उस महाकुलके रहनेपर,
विशेषकर तुम्हारे कारण यहा अनुचित (होना) ठीक नही है।

१५१ हे कुरुओ में अत्य त सत्पुरुष, तुम कुरुओके श्रेष्ठ धारक हो,
हे तात, हे कौरव्य, बाह्य और आभ्यन्तर मिथ्याकारी

१५२ तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्र, धम की ओरसे
पीठ फेरकर कमीनेकी तरह आचरण करते,

१५३ अशिष्ट, मर्यादा रहित, लोभसे बुद्धि भ्रष्ट है, (जिसमे)
अपने कुरुओ पर महाघोर विपद उठ खडी हुई है।

१५४ जिसकी उपेक्षा करनेपर हे कौरव्य, वह पृथिवीको नष्ट कर देगी।
हे भारत, यदि तुम चाहो, तो शान्ति (स्थापित) की जा सकती है।

१५५ हे कौरव्य, अपने पुत्रोको तुम रोको, मै दूसरोको रोकूगा।
हे राजे द्र, तुम्हारे पुत्र अपने वशके साथ आज्ञाके अनुसार चलें।

१५६ तुम्हारी आज्ञामे रहनेपर उनकी भारी भलाई है,
हे राजन् (इसीमे) तुम्हारा और पाडवोका भी हित है।

१५७ तुम्हारी आज्ञा (पाने) के इच्छुक शान्तिके लिये प्रयत्न-शील,
सहायक जैसे भरत लोग तुम्हारे ही होगे, हे जनेश्वर।

१५८ धर्मार्थयो तिष्ठ राजन् पाण्डवै अभिरक्षित ।
न हि त्वा पाण्डवै जेतु रक्ष्यमाण महात्मभि ॥
१५९ इन्द्रोऽपि देवै सहित प्रसहेत कुतो नृपा ।
लोकेस्यश्वरता भूय शत्रुभि चाप्यधृष्यताम् ॥
१६० प्राप्स्यमि त्वममित्रघ्न सहित कुरु पाण्डवै ।
तस्य ते पथिवी-पालास् त्वत्-समा पथिवी-पते ॥
१६१ श्रेयासश्चैव राजान सधास्यते परन्तप ।
स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभि भ्रातभिस्तथा ॥
१६२ सुहृद्भि सवतो गुप्त सुख शक्ष्यसि जीवितुम् ।
एतैर्हि महित सर्वै पाण्डवै स्वैश्च भारत ।
१६३ अन्यान् विजेष्यसे शत्रून् एष स्वाथ तवाखिल ।
तैरेवोपार्जिता भूमि भोक्ष्यसे च परन्तप ॥
१६४ यदि सम्पत्स्यसे पुत्रै सहामात्यै नराधिप ।
सयुगे वै महाराज दृश्यसे सु-महान् क्षय ।
१६५ क्षये चोभयतो राजन् क धर्ममनुपश्यसि ।
पाण्डवै निहतै सँरये पुत्रैर्वापि महाबलै ॥
१६६ यद् विन्देथा सुख राजस्तद् ब्रूहि, भरतषभ ।
शूराश्चापि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकाक्षिण ॥
१६७ पाण्डवास् तावकाश् चैव तान् रक्ष महतो भयात् ।
न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवाश् चैव सयुगे ॥
१६८ क्षीणान् उभयत शूरान् रथिनो रथिभि हतात् ।
समवेता पृथिव्या हि राजानो राज-सत्तम ॥
१६९ अमर्ष-वशमापन्ना नाशयेयुरिमा प्रजा ।
त्राहि राजन्निम लोक न नश्येयु इमा प्रजा ॥

१५८ हे राजन, पाडवोसे रक्षित धम और अथमे तुम स्थित रहो,
महात्मा पाडवो द्वारा रक्षित हुए तुम्हे कोई नही जीत सकता।

१५९ देवताओ सहित इद्र भी (तुम्हें) दबा नही सकता, राजा (की)
तो (बात ही) क्या शत्रुओ से अजेयत्व को,
लोक के स्वामित्व को तुम और भी अधिक पाओगे।

१६० हे शत्रुहता कुरु पाडवोके साथ (और)
हे पथिवीपति, तुम्हारे साथ वे भूपाल,

१६१ हे परतप, वे बडे राजा भी तुमसे सधि करेगे
सो तुम पुत्रो और पौत्रो, पिताओ तथा भाइयो

१६२ और मित्रो द्वारा चारो ओरसे रक्षित सुखसे रह सकोगे।
हे भारत, इन सबके तथा अपने पाडवोके साथ (मिल कर)

१८३ तुम दूसरे शत्रुओको जीतोगे, यह सारा तुम्हारा स्वाथ है।
हे परतपी, उनके द्वारा उपार्जित भूमिका तुम भोग करोगे।

१६४ हे नराधिप, यदि अमात्यो सहित पुत्रोके साथ युद्धमें,
शामिल होगे, तो महाराज, (इसमें) अति महानाश दीखता है।

१६५ हे राजन, युद्धमे महाबली पुत्रो या निहत पाडवो,
दोनो ओरसे नाश होनेमें तुम कौन धम देखते हो ?

१६६ हे भरतोमे श्रेष्ठ राजन्, जो सुख पाओगे, उसे कहो।
शूर और हथियार मे चतुर सारे पाडव और तुम्हारे लोग

१६७ युद्ध इच्छुक है, उन्हे महाभयसे बचाओ।
युद्धमे दोनो ओरसे सारे कुरुओ और पाडवोका,

१६८ नष्ट शूरो, रथियो द्वारा रथियोका मरना हम न देखें।
हे राजश्रेष्ठ, पथिवीके राजा एकत्रित हुये,

१६९ अमषके वशमें पड इस प्रजाको नाश कर देंगे।
हे राजन्, इस लोककी रक्षा करो, जिसमें यह प्रजायें नष्ट न हो।

१७० त्वयि हि प्रकृतिमापन्ने शेष स्यात् कुरु-नन्दन ।
शुक्ला वदान्या ह्रीम त आर्या पुण्याभिजातय ॥

१७१ अन्योन्य-सचिवा राजन् तान् पाहि महतो भयात् ।
शिवेनेमे भूमि-पाला समागम्य परस्परम् ॥

१७२ सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथा-गहम् ।
सु-वासस स्रग्विणश् च सत्कृता, भरतषभ ॥

१७३ अ-मर्षं च निराकृत्य वैराणि च पर तप ।
हार्द यत् पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन् आयुष क्षये ॥

१७४ तदेव ते भवत्वद्य स धत्स्व भरतषभ ।
बाला विहीना पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिता ।

१७५ तान् पालय यथा-न्याय पुत्राश्च मनुजेश्वर ।
भवतैव हि रक्ष्यास् ते व्यसनेषु विशेषत ॥

१७६ मा ते धमस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ।
आहुस् त्वा पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।—

१७७ भवत शासनाद् दु खम् अनुभूत सहानुगै ।
द्वादशेमानि वर्षाणि वने निव्युषितानि न ॥

१७८ त्रयोदश तथाज्ञातै स-जने परि-वत्सरम् ।
स्थाता न समये तस्मिन् पितेति कृत-निश्चया ॥

१७९ नाहास्म समय तात तच्च नाम्राह्मणा विदु ।
तस्मिन् न समये तिष्ठ स्थितताना भरतषभ ॥

१८० नित्य सक्लेशिता राजन् स्व-राज्याश लभेमहि ॥
पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिता ॥

१७० तुम यदि ठीक रहो, तो हे कुरु-पुत्र, शेष भी (ठीक) हो जायेगा।
स्वच्छ, उदार, लज्जालू, पवित्र कुलवाले आय लोग,

१७१ एक दूसरेके सचिव हैं हे राजन उन्हें महान भय से बचाओ।
(एकत्रित) यह भूपाल शान्तिसे एक दूसरेसे मिलकर

१७२ साथ खान-पान करके सुन्दर वस्त्र माला पहने सत्कारपूवक
अपने-अपने घरोको जाये, हे भरत-श्रेष्ठ,

१७३ अमष और वैरको छोड कर हे परतपी,
प्राणोका क्षयकारी इस युद्धके होनेपर। जो पाडवोके हृदयकी बात है,

१७४ वही आज तुम्हारी भी हो, हे भरत-श्रेष्ठ, सधि कर लो।
वे (पाडव) पिताविहीन बालक थे, तुम्हीने उन्हे पाला पोसा,

१७५ हे मनुजेश्वर, न्यायपूवक उनका और पुत्रोका पालन करो।
तुम्हे ही, खास कर आफत पडनेपर उनकी रक्षा करनी हैं।

१७६ हे भरतश्रेष्ठ तुम्हारा धम और अथ नष्ट न हो,
हे राजन, अभिवादन करके और विनती करके पाडवोने तुमसे
कहा है—

१७७ "अपने अनुयायियोके साथ हमने आपकी आज्ञासे दु ख भोगा,
ये बारह वष हमारे वनमे बीते।

१७८ तेरहवे वष जनोमे अज्ञात रहे,
'उस समय पिता नही यह निश्चय किया।

१७९ हे तात, शत नही कही थी और उसे अब्राह्मण नही जाने,
हमारी उस शतपर हे भरतश्रेष्ठ, कायम रहो।

१८० हे राजन्, नित्य क्लेश पाते हमें अपने राज्यका अश मिले।
बुरे पथपर स्थित हमें (आप) पिता ठीक करें।

१८१ संस्थापय पथिष्वस्मास् तिष्ठ धर्मे स्व-वत्मनि।
आहुश् चेमा परिषद पुत्रास् ते भरतर्षभ—
१८२ धर्म-ज्ञेषु सभा-सत्सु नेह युक्तम-साम्प्रतम्।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्य यत्रानृतेन च ॥
१८३ हन्यते प्रेक्षमाणाना, हतास् तत्र सभा-सद ।
ये धममनुपश्यन्तस् तूष्णी ध्यायन्त आसते ॥
१८४ ते सत्यमाहुर् धर्म्य च न्याय च भरतषभ।
शक्य किमन्यद् वक्तु ते दानाद् अन्यज् जनेश्वर ॥
१८५ ब्रुवन्तु वा मही-पाला सभाया ये समासते।
धर्मार्थौ सम्प्रधार्येव यदि सत्य ब्रवीम्यहम् ॥
१८६ प्रमुचेमान् मृत्यु-पाशात् क्षत्रियान् पुरुषषभ।
पित्र्य तेभ्य प्रदायाश पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ।
१८७ तत स-पुत्र सिद्धार्थो भुक्ष्व भोगान् परन्तप।
अ-जात-शत्रु जानीषे स्थित धर्मे सता सदा ॥
१८८ स पुत्रे त्वयि वृत्ति च वतते या नराधिप।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वाम् एवोपाश्रित पुन ।
१८९ इन्द्रप्रस्थ त्वयैवासौ स-पुत्रेण विवासित ।
स तत्र निवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान् ॥
१९० त्वन्-मुखादकरोद् राजन् न च त्वामत्यवतत।
तस्यैव वतमानस्य सौबलेन जिहीषता ॥
१९१ राष्ट्राणि धन-धान्य च प्रयुक्त परमोपधि ।
स तामवस्था सप्राप्य कृष्णा प्रेक्ष्य सभा गताम् ॥
१९२ क्षत्र-धर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिर ॥
अह तु तव तेषा च श्रेय इच्छामि भारत ॥

१८१ हमे रास्तेपर स्थापित कर अपने धमपर तुम रहा।
और हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारे पुत्राने इस परिषदसे कहा ह,

१८२ 'धमज्ञ सभासदामे अनुचित (बात) ठीक नही ह।
जहा अधममे धम और जहा झूठसे सत्य

१८३ देखनेवालोके सामने मारा जाता है वहा (वह) सभासद मारे गये जो धमको देखते चुपचाप सोचते ह।

१८४ हे भरतश्रेष्ठ वे सत्य धमयुक्त और यायर्युक्त बातोको कहते है।
हे जनेश्वर दान छोड तुम्हारे सामने दूसरा क्या कहा जा सकता ह ?

१८५ सभामे बठे जो भूपाल ह, वे धम और अथका
समझकर बतावे कि मै सच कहता हू।

१८६ हे पुरुपश्रेष्ठ, इन क्षत्रियाको
पाडवोको यथोचित पैतक अश देकर मौतके फदेसे छुडाओ।

१८७ हे परतपी फिर पुत्र सहित सफल मनोरथ हो भोगोको भोगो।
सत्पुरुषोके धममे सदा स्थित अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को तुम जानते हो।

१८८ हे नराधिप, पुत्रसहित तुम्हारे ऊपर वह जो भाव रखते है उसे भी (जानते हो)। जलाये गये, निर्वासित हुए वह फिर तुम्हारे ही आश्रयमे (आये) है।

१८९ तुमने ही पुत्र सहित उन्हें इद्रप्रस्थमें बसाया
वहा बसते सारे राजाओको अपने वशमें करके उन्होने,

१९० हे राजन, तुम्हारी आज्ञा बजाई तुम्हारी बातका उल्लघन नही किया।
उनके इस तरहसे रहते सुबल पुत्रने हरण करनेकी इच्छासे,

१९१ राष्ट्र और धनधान्यकी कामनासे परम छल किया।
सभामे आई उस अवस्थामे कृष्णाको देखकर (भी),

१९२ अमित हिम्मतवाले युधिष्ठिर क्षत्रियोंके धमसे चलायमान नही हुये।
हे भरत-सन्तान, मै तुम्हारी और उनकी भलाई चाहता हू।

१९३ लाभेऽतिप्रसृतान पुत्रान् निगृह्णीष्व विशा पते।
स्थिता शुश्रूषित पार्था स्थिता योद्धुमरिन्दमा ॥
यत् ते पश्यतम राजस् तस्मिस् तिष्ठ परन्तप ॥
—उद्योगपर्व १३

७ **विदुला-सवाद —**

१९४ अत्राप्युदाहरतीममितिहास पुरातनम् ।
विदुलायाश् च सवाद पुत्रस्य च परन्तप ॥
१९५ क्षत्र-धम-रता दान्ता विदुला दीर्घ-दर्शिनी ।
विश्रुता राज-ससत्सु, श्रुत-वाक्या बहु-श्रुता ॥
१९६ विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ॥
निर्जित सिन्धुराजेन शयान दीन-चेतसम् ॥

विदुला उवाच—

१९७ "अ-नन्दन मम जात द्विषता हर्ष-वर्धन,
न मया त्व न पित्रा च जात काम्यगतोह्यसि ॥
१९८ उत्तिष्ठ हे का-पुरुष, मा शेष्वैव पराजित ।
अ-मित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धु-शोक-द ॥
१९९ अप्यहेरा-रुजन् दष्ट्रा मा श्वेव निधन व्रज।
अपि वा सशय प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमे ॥
२०० अप्यरे श्येनवच् छिद्र पश्येस् त्व वि-परिक्रमन् ।
विवदन् वाथ वा तूष्णी व्योम्नि वा परिशङ्कित ॥
२०१ त्वमेव प्रेतवच्छेषे कस्मान् वज्र-हतो यथा ।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष, मा स्वाप्सी शत्रु-निर्जित ॥

१९३ हे प्रजाओके स्वामी, लोभमे अत्यन्त बढे पुत्रोपर अनुशासन करो।
पृथाके पुत्र शुश्रूषा करनेके लिये तयार ह वे शत्रुदमन युद्ध करनेके
लिये तैयार है। हे राजन, हे परतपी, जो तुम्हे सबसे अधिक हितकर
जान पड, उसमे स्थित हो।

—उद्योग-पव अध्याय १३

७ विदुला-सवाद—

१९४ यहा (इस) पुरातन इतिहासको कहते है।
ह परतपी (यह) विदुला और उसके पुत्रका सवाद (है)।

१९५ विदुला क्षत्रियोके धममे निरत, सयमी, दीघदर्शिनी,
राजसभाओमे प्रसिद्ध बहुश्रुत थी, लोग उसका वचन सुनते थे।

१९६ विदुला नामकी राजकन्याने सिधुराजसे पराजित,
दीन चित्त हो लेटे अपने औरस पुत्रको धिक्कारा।

विदुला बोली—

१९७ ह अ-नन्दन, मेरी सतान, शत्रुओके हषको बढानेवाले,
मैने और न पिताने तुझे जना, तू अपने मनसे आ गया।

१९८ हे कायर, उठ, इस तरह पराजित होकर मत लेट,
सारे शत्रुओको आनदितकर्ता मान-रहित, बधुओका क्षोभक बन,

१९९ सापकी दाढ पर चोट करते कुत्तेकी तरह तू मत मर जा।
अथवा जीवनमे भी सशय जानकर, पराक्रम कर।

२०० क्या तूने शत्रुके छिद्रको बाजकी तरह आकाशमें घूमते देखा ?
विवाद करते या चुपचाप परिशकित होकर,

२०१ तू इस तरह वज्रसे मारासा क्यों मुर्देकी तरह सो रहा है ?
उठ हे कायर, शत्रुसे पराजित होकर मत सो।

२०२ मास्त गमस् न्व कृपणो विश्रयस्व म्व-कमणा।
मा मध्ये, मा जघन्ये त्व माधो भूस् तिष्ठ गर्जित ॥
२०३ अ गात तिन्दुकस्यव मुहूतमपि हि ज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर धूमायम्व जिजीविषु ।
२०४ मुहूर्तं ज्वल्ति श्रेयो न च धूमायित चिरम् ।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञ खरो मदु ।।
२०५ कृत्वा मानुष्यक कम सत्वाजि यावदुत्तमम् ।
धमस्यानृण्यमाप्नोतिन च ात्मान विगहते ।
२०६ अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डित ।
आन तयमारभते न प्राणाना धनायते ।।
२०७ इप्ठापूर्त हि ते क्लीव कीर्तिश् च सकला हृता।
विच्छिन्न भोग-मल ते कि निमित्त हि जीवसि।।
२०८ शत्रुर् निमज्जता ग्राह्यो जघाया प्रपतिष्यता ।
विपरिच्छन्न-मूलोऽपि न विषीदेत् कथचन।।
२०९ उद्यम्य धुरमुतकर्षेद् आजानेय-कृत स्मरन्।
उद्भावय कुल मग्न त्वत्-कृते स्वयमेव हि।।
२१० आयस हृदय कृत्वा मृगयस्व पुन स्वकम्।
पर विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते।।
२११ य आत्मन प्रिय-सुखे हित्वा मगयते श्रियम् ।
अमात्यानामथ हृषमादधात्यचिरेण स"।।

पुत्र उवाच--

२१२ "कि नु ते मामपश्यन्त्या पथिव्या अपि सवया ।
किमाभरण-कृत्य ते किम् भोगैर् जीवितेन वा ।।

२०२ तू दीन होकर मत अस्त हो अपने कर्मो द्वारा प्रसिद्ध हो ।
मत बीचमे मत जघन्यमें मत नीचे तू गरजता हुआ रह।

२०३ फुम्की लुकारीकी तरह क्षण भर भी तू जल
भसकी आगकी तरह जीनेकी इच्छासे विना ज्वाला मत धुधुआ।

२०४ क्षण भर जलना अच्छा है देर तक धुआ देना नही।
किसी राजाके घरमे कोमल गदहा (बन) न पदा हो।

२०५ मनुष्योचित कम करके उत्तम युद्धमे जाकर
आदमी धमसे उऋण हाता ह और अपनेको निंदित नही करता।

२०६ पडितजन लाभ या अलाभ की चिन्ता नही करता (वह)
प्राणो पर आफत का काम करता है, धनकी इच्छा नही करता।

२०७ हे नपुसक तेरे इष्ट और पूत,[1] सारी कीर्ति नष्ट हो गई।
तेरे भोगकी जड कट गई तू किसलिये जीता है ?

२०८ डूबते हुए कूदकर शत्रुको जघासे पकडना चाहिये,
छिन्नमूल हानेपर भी कभी विषाद नही करना चाहिए।

२०९ उत्तम घोडेके कामका स्मरण कर धुरेको उठाकर खीच,
अपन कारण डबे कुलको स्वय ही ऊपर उठा।

२१० लोहेका हृदय करके फिर अपनी वस्तुको ढूढ,
चूकि परका दबाता है, इसीलिये (वह) पुरुष कहा जाता है।

२११ जो अपने प्रिय सुखको छोडकर श्रीकी खोज करता है,
वह अमात्योमे जल्दी ही हष लाता है।

पुत्र बोला—

२१२ मर जानेपर मुझे न देख, सारी पृथिवीसे भी तुझे क्या लेना है ?
आभूषणसे भषित होनेसे भोग और जीवनसे (तुझ) क्या ?

---

[1]यज्ञ आदि इष्ट है, और कूयें तालाब आदि का बनाना पूत्त कम

माता उवाच—

२१३ "किमद्यकाना ये लोका द्विषतस् तान् अवाप्नुयु ।
ये त्वादृतात्मान लोका सुहृदस् तान् व्रजतु न ॥

२१४ भर्त्यैर् विहीयमानाना परपिण्डोपजीविनाम् ।
कृपणानाम सत्वाना मा वत्तिमनुवतथा ॥

२१५ यदा मा चैव भार्या च द्रष्टासि भृश-दुबलाम् ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सजय ॥

२१६ दास-कमकरान् भृत्यान् आचायृत्विक्-पुरोहितान् ।
अ-वृत्त्यास्मान् प्रजहता दृष्ट्वा कि जीवितेन ते ॥

२१७ यदि कृत्य न पश्यामि तवाद्याह यथा पुरा ।
श्लाघनीय यशस्य च का शान्तिर् हृदयस्य मे ॥

२१८ "वयमाश्रयणीया स्म न श्रेतार परस्य च ।"
सान्यमाश्रित्य जीवती परित्यक्षामि जीवितम् ॥

२१९ अ-पारे भव न पारम् अ प्लव भव न प्लव ।
कुरुष्व स्थानमास्थाने मृतान् सजीवयस्व न ॥

२२० एक-शत्रु-बधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ।
इन्द्रो वत्र-बधेनैव महेन्द्र समपद्यत ॥

२२१ यदेव लभते वीर सु-युद्धेन महद् यश ।
तदैव प्रव्यथ तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥

२२२ नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पष्ठत ।
न त्व परस्यानुचरस् तात जीवितु अहसि ॥

२२३ यो वै कश्चिदिहाजात क्षत्रिय क्षत्र-कम-वित् ।
भयाद् वृत्ति समीक्ष्यव न नमेदिह कस्यचित् ॥

माता बोली—

२१३ क्या खाद्यके जो लोग द्वेषी ह उन्हे वह प्राप्त करेंगे
जो कि आदरप्राप्त लोग ह हमारे (वह) मित्र वहा जाये।

२१४ नौकरोसे परित्यक्त दूसरेके दिये पिडपर जीनेवाले,
दीनो और पस्त हिम्मतोकी वत्तिका तू अनुसरण न कर।

२१५ जब मुझे और अपनी पत्नीको तू अत्यन्त दुबल देखेगा,
तब हे सजय, तुझे जीवनसे कोई प्रयोजन नही रह जायेगा।

२१६ दास कमकर भत्यो, आचाय-ऋत्विक पुरोहितोको
वत्ति न होनेसे हमे छोडते देख तेरे जीनेसे क्या ?

२१७ यदि आज मै पहले जैसे तेरे कृत्यको श्लाघनीय और यशस्कर
नही देखू, तो मेरे हृदयका क्या शान्ति होगी ?

२१८ 'हम दूसरोके आश्रित है, और दूसरोको आश्रय देनेवाले नही है,'
ऐसा सोच दूसरेका आश्रय लेकर जीनेपर मै प्राण छोड दूगी।

२१९ तू अपार (सागर) में हमारे लिये पार उतारनेवाला बन,
अनावमे हमारे लिये नाव बन,
बिना स्थानमे स्थान बन हम मतोको सजीवित कर।

२२० शूर पुरुष एक शत्रुके मारनेसे ही प्रसिद्ध हो जाता है।
इद्र वत्रके वधसे ही महाइद्र हो गया।

२२१ जब वीर सुन्दर युद्ध द्वारा महायशको प्राप्त करता है,
तब उसके शत्रु व्यथित और विनम्र होते है।

२२२ इस कुलमे उत्पन्न कोई (एसा) नही हुआ जो कि दूसरेके पीछे-पीछे
चले हे तात, दूसरेका अनुचर हो तुझे नही जीना चाहिए।

२२३ जो कोई इस कुलमें क्षत्रिय (कमका) जाननेवाला क्षत्रिय पैदा हुआ,
वह वृत्तिका ख्याल करके भयसे किसीके सामने नही झुका।

२२४ उद्-यच्छेद् एव न नमेद्, उद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वाणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित्"॥

पुत्र उवाच—

२२५ कृष्णायमम्येव च ते सहत्य हृदय कृतम्।
अहो क्षत्र-समाचारो यत्र मामितर यथा॥

२२६ नियोजयसि युद्धाय पर मातेव मा तथा।
इदश वचन ब्रूयाद् भवती पुत्रमेक-जम्॥

माता उवाच—

२२७ सर्वारम्भा हि विदुषा तात धर्मार्थ-कारणात्
तावेवाभिसमीक्ष्याह सजय त्वामचूचुदम्॥

२२८ अस्मिश् चेदागते काले कार्य न प्रतिपद्यसे।
असम्भावित-रूपस् त्वमानशस्य करिष्यसि॥

२२९ त त्वाम-यशसा स्पष्ट न ब्रूया यदि सजय।
खरी-वात्सल्यमाहुस् तद् नि सामर्थ्यमहेतुकम्।

२३० युद्धाय क्षत्रिय सृष्ट सजयेह जयाय च।
जयन् वा बध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्र सलोकताम्॥

२३१ न शक्र-भवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम्।
यद-मित्रान् रणे हत्वा क्षत्रिय सुखमेधते॥

२३२ आत्मा वापि परित्याज्यो निपात्या शत्रवोऽपि वा।
अतोन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत्॥

२३३ अथ त्वा पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्व-सैन्धवान्।
अह पश्यामि विजय कृच्छ्र-भावितमेव ते॥

२२४ (पुरुष) उद्यम करे झुके नही, उद्यम ही पौरुष है।
चाहे असमय टूट जाय, पर ससार म किसीके सामने न झुके।

पुत्र बोला—

२२५ जोड कर लोहेसा तेरा हृदय बना है
अहो, जहा क्षत्रियोका आचार मुझ जैसा दूसरेको (हो)।

२२६ जम दूसरेकी मा वैसे तू मुझे युद्धमे भेज रही है,
स्वय (अपने) इकलौते पुत्रको ऐसा वचन बोल रही हे।

माता बोली—

२२७ तात, विद्वानोके सारे काय धम और अथके लिये होते है,
हे सजय, उन्हीको अच्छी तरह देखकर, मैने तुझे प्रेरित किया।

२२८ ऐसा अवसर प्राप्त होनेपर यदि काम नही करेगा
तो तू अनादर पात्र नीच हो दया की भीख मागेगा।

२२९ हे सजय, अपयशसे कलकित तुझे यदि म न कहू, तो वह गदहीकी
वत्सलता है, जा कि अकारण और बिना सामथ्यकी होती है।

२३० हे सजय इस ससारमे क्षत्रिय युद्धके लिये और जयके लिये बनाया
गया है। विजयी होते या मारे जाते वह इ द्रलोकको प्राप्त होता है।

२३१ स्वगमें पवित्र इ द्र भवनमे वह सुख मौजूद नही है,
जो सुख कि रणमें शत्रुओको मार कर क्षत्रिय पाता है।

२३२ अपनेको नष्ट कर देना चाहिए, अथवा शत्रुओको मार डालना
चाहिये, इससे भिन्न उसको शान्ति कहा ?

२३३ सारे सिन्धवालोको मार डालने पर मै तुझे पूजूगी,
कठिनाईसे प्राप्त किये तेरे विजयको ही देखूगी।

पुत्र उवाच—

२३४ अ-कोषस्या-सहायस्य कुत सिद्धिर् जयो मम ।
इत्यवस्था विदित्वेमामात्मनात्मनि दारुणाम् ॥

२३५ राज्याद् भावो निवृत्तो मे विद्रवाद् इव दुष्कृत ।
इदृश भवती कच्चित् उपायमनुपश्यति ॥

२३६ त मे परिणतप्रज्ञे, सम्यग् प्र-ब्रूहि पृच्छते ।
करिष्यामि च तत सव यथावत् अनुशासनम् ॥

माता उवाच—

२३७ पुत्र, नात्मावमन्तव्य पूर्वाभिर्‍समृद्धिभि ।
अ-भूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ॥

२३८ क्रुद्धान् लुब्धान परिक्षीणान् अवलिप्तान् विमानितान् ।
स्पर्धिनश् चैव ये केचित् तान् युक्त उपधारय ॥

२३९ एतेन त्व प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ।
महा-वेग इवोद्धतो मातरिश्वा बलाहकान् ॥

२४० तेषामग्र-प्रदायी स्या कल्योत्थायी प्रिय वद ।
ते त्वा प्रिय करिष्यन्नि पुरो-धास्यन्ति च ध्रुवम् ॥

२४१ यदैव शत्रुर् जानीयात् सपत्न त्यक्त-जीवितम् ।
तदैवास्माद् उद्विजेत सर्पाद् वेश्म-गताद् इव ॥

२४२ त विदित्वा पराक्रान्त वशे न कुरुते यदि ।
निर्वादैर् निवदेदेनम्, अन्ततस् तद् भविष्यति ॥

२४३ निर्वादाद् आस्पद लब्ध्वा धन-वृद्धिर् भविष्यति ।
धनवन्त हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥

पुत्र बोला—

२३४ बिना कोश और बिना सहायकोके जय और सिद्धि मुझे कहासे
मिलेगी ? अपन विषयमे इस दारुण अवस्थाको जानकर,

२३५ राज्यसे मेरा भाव हट गया ह पापसे पलायनकी तरह
इसके बारेमे क्या आप कोई उपाय देखती है ?

२३६ हे परिपक्वप्रज्ञावाली,उसे पूछनेपर मेरे लिये अच्छी तरह बतलाओ।
(तुम्हारे) अनुशासनके अनुसार मै सब करूगा।

माता बोली—

२३७ हे पुत्र पूवके अभावोके कारण आत्म-अपमान नही करना चाहिए।
अथ न होकर होते है, और दूमरे (पदाथ) होकर नष्ट हो जाते हैं।

२३८ जो कोई क्रुद्ध, लोभी, क्षीण, अभिमानी, अपमानित, और स्पर्धा
करनेवाले (पुरष) है उन्हे तत्परतासे साथ ले कर।

२३९ इस प्रकारसे तू भारी (शत्रु) समूहको छिन्न भिन्न कर देगा।
जैसे मेघोको बडे वेगवाला हलचल करता वायु।

२४० उन्हें तू आगे देनेवाला बन, और समयके अनुसार (सम्मानाथ)
उत्थान करनेवाला प्रियवादी बन। वह तेरा प्रिय करेंगे, और
निश्चय (तुझे अपना) मुखिया बनायेगे।

२४१ जभी प्रतिद्वद्वी अपने शत्रुको मरा जानै,
तभी वह घरमें स्थित साप की तरह उद्विग्न होवे है।

२४२ उसे पराक्रम करते जानकर यदि वशमे नही करता
तो निर्वादो[१] से उसे निर्वादित करे, अन्तमें वही होगा।

२४३ निर्वाद से स्थान प्राप्त कर धनकी वद्धि होगी,
धनवान् मित्र की लोग सेवा करते और आश्रय लेते है।

---

[१]साम दाम आदि।

२४४ स्खलिताथ पुनस् तानि सत्यजन्ति च बान्धवा
अप्यस्मिन् नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम् ॥
२४५ नैव राजा दर कार्यो जातु कस्याचिदापदि ।
अथ चेदपि दीण स्याद्, नैव वर्तेत दीणवत् ॥
२४६ दीर्णं हि दृष्ट्वा राजान सवमेवानुदीयते ।
राष्ट बल्ममात्याश् च पथक् कुवन्ति ते मती ॥
२४७ शत्रून् एके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुन ।
अये तु प्रजिहीषन्ति ये पुरस्ताद् विमानिता ॥
२४८ य एवात्यन्त-सुहृदस् त एन पर्युपासते ।
अ-शक्तय स्वस्ति-कामा, बद्ध-वत्सा इला इव ॥
२४९ मा दीदरस् त्व सुहृदो मा त्वा दीण प्रहासिषु ॥
कृत्वा सौम्यमिवात्मान जयायोत्तिष्ठ सजय !
२५० अस्ति न कोष-निचयो महान-विदितस् तव ।
तमह वेद नान्यस् तमुपसम्पादयामि ते ॥
२५१ सन्ति नैकतमा भूय सुहृदस् तव सजय ।
सुख-दु ख-सहा वीर, सग्रामाद-निवर्तिन ॥
२५२ तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषत ।
इष्ट जिहीषत किंचित् सचिवा शत्रु-कषण ॥

पुत्र उवाच—

२५३ अह हि वचन त्वत्त शुश्रूषुरपरापरम् ।
किंचित् किंचित् प्रतिवदन् तूष्णीमासम् मुहुर् मुहु ॥
२५४ अ-तृप्यन्नमतस्येव कृच्छाल् लब्धस्य बान्धवात् ।
उद्यच्छाम्येष शत्रणा नियमाथ जयाय च ॥

—उद्योग-पव, १८

२४४ धनहीनको मित्र छोड देते है, और बाधव भी
उसपर विश्वास नही करते और वैसेसे घणा करत ह।

२४५ राजाको किमी भी आफतमे कभी डरना नहा चाहिए।
और यदि डरा हो भी, (तो)डरेकी तरह बतना नही चाहिए।

२४६ राजाको डरा देख कर सभी निडर हो जाते ह।
राष्ट्र बल आर अमात्य, सभी भिन्न मति बन जाते ह।

२४७ उनमे स कोई शत्रुओके पास चले जाते है, फिर दूसरे छोड
जाते है जा पहले अपमानित हुए है, वे तो छोडनेकी इच्छा
करते (ही) है।

२४८ जा अत्यन्त मित्र है वही (ऐसे समय) उसके माथ रहते ह।
जैसे असमथ कल्याणच्छुक बछडे मे बधी धेनु।

२४९ तू मित्रोमे मत डर, भयभीत तुझपर शत्रु मन हँसे
हे सजय अपनेको सौम्य सा बना विजयके लिए खडा हो जा।

२५० हमारे पास तुझे ना मालम महान कोश-सग्रह है।
उसे म जानती हूँ दूसरा नही मै उसे तुझे दिलाती हूँ।

२५१ बहुत-से तेरे सुहृद है, हे सजय हे वीर,
जो सुख दु ख सहनेवाले और सग्रामसे न हटनेवाले(है)।

२५२ विभव चाहनेवाले पुरुषके लिए वसे ही मित्र,
कुछ इष्टके त्याग इच्छुक पुरुषके सचिव होते ह।

पुत्र बोला—

२५३ तुमसे सुननेकी इच्छासे और-और बातें
कुछ-कुछ प्रतिवाद करता म बार-बार चुप हो जाता

२५४ कठिनाईसे बाधवोसे अमत पा मानो अमतसे अतप्त होता रहा,
शत्रुओके नियन्त्रण और विजयके लिए (अब)यह मै उद्युक्त हूँ।
—उद्योगपव अध्याय १८

८ सुभद्रा-विलाप —

२५५ सुभद्रा शोकदु खार्ता विललाप सु-दु खिता, ।
"हा पुत्र मम मन्दाया कथ सयुगमेत्य हि ॥
२५६ निधन प्राप्तवास् तात, पितुस् तुल्य-पराक्रम ।
कथमि दीवर-श्याम सु-दष्ट्र चारु-लोचनम् ॥
२५७ मुख ते दश्यते वत्स, गुण्डित रण-रेणुना ।
शयनीय पुराध्युष्य स्पर्ध्यास्तरण-सवृतम् ॥
२५८ भूमावद्य कथ शेपे विप्रविद्ध सुखोचित ।
योऽन्वास्यत पुरा वीरो वर-स्त्रीभिर् महा-भुज ॥
२५९ कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभि पतितो मधे ।
अ-तृप्त-दशना पुत्र, दशनस्य तवानघ ॥
२६० मन्द-भाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यम-क्षयम् ।
घिग् वल भीमसेनस्य धिक् पाथस्य धनुष्मताम् ॥
२६१ धिग् वीय वृष्णि-वीराणा, पाचालाना च धिग् बलम् ।
धिक् कैकयास् तथा चेदीन् मत्स्याश् चैवाथ सजयान् ॥
२६२ ये त्वा रण गत वीर न शेकुरभिवीक्षितुम् ।
अद्य पश्यामि पृथिवी शून्यामिव हत-श्रियम् ॥
२६३ अभिमन्युमपश्यन्ती शोक-व्याकुल-चेतना ।
इमा ते तरुणी भार्या त्वदाधिभिरभिप्लुताम् ॥
२६४ कथ सन्धारयिष्यामि वि-वत्सामिव धेनुकाम् ।
या गतिर् युध्यमानाना शूराणाम-निवर्तिनाम् ॥
२६५ हत्वारीन् निहताना च सग्रामे ता गति व्रज ।
ह्रीमन्त सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञान-तृप्ता जितेन्द्रिया ।
या गति साधवो यान्ति ता गति ब्रज पुत्रक ॥"

—द्रोण-पव, ८

८ सुभद्रा का विलाप—

२५५ सुभद्रा शोक और दु खसे आत अत्यन्त दु खित हो विलाप करने
लगी। "हाय मुझ म दभागिनीका पुत्र, युद्धमे पहुँचकर कैसे
२५६ मत्युको प्राप्त हुआ। हे तात पराक्रममे तू पिता तुल्य था।
नीलकमल जैसा श्यामल, सुन्दर दात, सुन्दर लोचनवाला,
२५७ तेरा मुह हे वत्स, रणकी धूलिसे धूसरित दिखाई दे रहा ह ?
पहले दुलभ बिछौनेसे ढके पलगपर सोता
२५८ आज सुखमे पला हत हो तू कैसे भूमिपर सो रहा है ?
जिस महाबाहु वीरकी श्रेष्ठ स्त्रिया सेवा करती थी।
२५९ आज युद्धमे गिरे उसे सियार कैसे सेवित कर रहा है ?
हे निष्पाप पुत्र, तेरे दशनसे मै अतप्त-दशना हूँ।
२६० निश्चय आज मै मन्दभागिनी मृत्युको प्राप्त होऊँगी।
भीमसेनके बलको धिक्कार है, अजुन और धनुर्धारियो को
धिक्कार है।
२६१ वष्णि वीरोके पराक्रमको धिक्कार, पाचालोके बलको धिक्कार,
कैकेयो और चेदियो, मत्स्यो और सजयोको भी धिक्कार है
२६२ जो कि रणमे आय तुझ वीरकी देखभाल नही कर सके।
आज पृथिवीको मै नष्टश्री सूनी-सी देख रही हूँ।
२६३ शोकसे व्याकुल चेतनावाली मै अभिमन्युको न देख,
सतापसे सतप्त इस तेरी तरुणी भार्या (उत्तरा) को,
२६४ बछडे बिना धेनुकी तरह कैसे धीरज धराऊँगी ?
युद्ध करते हुए पीठ न दिखलानेवाले शूरोकी जो गति है,
२६५ सग्राममें दुश्मनोको मारकर उन निहतोकी गतिको तू प्राप्त हो।
लज्जावान सवशास्त्र-ज्ञ ज्ञान-तप्त जितेद्रिय,
साधु लोग जिस गतिको प्राप्त होते ह, हे पुत्र, तू उस गतिको प्राप्त
हो।

—द्रोण-पव अध्याय ८

९ रणाजिर-परिदर्शनम—

२६६ समामाद्य कुरु-क्षेत्र, ता स्त्रियो निहतेश्वरा ।
अपश्यन्त हतास् तत्र पुत्रान् भ्रातन् पितन् पतीन् ॥
२६७ क्रव्यादैर् भक्ष्यमाणाश् च गोमायु-वल्-वायसै ।
भूतै पिशाचै रक्षोभिर् विविधश् च निशा-चरै ॥
२६८ रुद्राक्रीड निभ दप्टवा तदा शिवसन स्त्रिय ।
कुरय इव शोकाता विक्रोशत्यो निपेतिरे ॥
२६९ दु खोपहत-चित्ताभि समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वायोधनमत्युग्र धमज्ञा सुबलात्मजा ॥
२७० तत सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुपोत्तमम् ।
कुरूणा वैशस दप्ट्वा, इद वचनमब्रवीत्—
२७१ "पश्यता पुण्डरीकाक्ष, स्नुषा मे निहतेश्वरा ।
प्रकीर्ण-केशा क्रोशन्ती कुररीरिव माधव ॥
२७२ अमूस् त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भरतषभान् ।
पथगेवानुपद्यन्ते पुत्रान् भ्रातन् पितन् पतीन् ॥
२७३ वीर-सूभिर् महा-बाहो हत-पुत्राभिरावतम् ।
क्वचित् च वीर-पत्नीभिर् हत-वीराभिरावृतम् ॥
२७४ शोभित पुरुष-व्याघ्रैर् भीष्म-कर्णाभिमन्युभि ।
द्रोण-द्रुपद-शल्यैश् च ज्वलद्भिरिव पावकै ॥
२७५ काचनै कवचैर् दिव्यैर् मणिभिश् च महात्मनाम् ।
अगदैर् हस्त-केयूरै स्रग्भिश् च समलकृतम् ॥
२७६ वीर-बाहु-विसप्टाभि शक्तिभि परिघैरपि ।
खडगैश च विविधैस् तीक्ष्णै स-शरैश् च शरासनै ॥

९ रणक्षेत्रका परिदर्शन—

२६६ मतपतिका उन स्त्रियाने कुरुक्षेत्रमे पहुँचकर
वहा अपने पुत्रो भाइयो बापो और पतियोको निहत देखा।

२६७ मासभक्षी सियार गिद्ध और कौओ द्वारा खाये जाते
भूतो पिशाचो-राक्षमो और विविध निशाचरा द्वारा खाये जाते।

२६८ रुद्रके अखाडेकी तरह वहा के काटने-छेदनेको देखकर कुररियोकी
तरह चिल्लाती शोकात (वह) स्त्रिया गिर पडी।

२६९ दु खसे नष्ट चेतनावाली उन स्त्रिया द्वारा चारो ओर निनादित,
अति उग्र युद्धक्षेत्रको देखकर धमज्ञा सुबल पुत्री (गा धारी) बोली,

२७० तब पुरुषोत्तम कमलनयन कृष्णको सबोधित करती,
कुरुओके हननको देखकर वह यह वचन बोली—

२७१ हे कमलनयन, मत पतिका बिखरे केशोवाली,
कुररीकी तरह क्रन्दन करती मेरी इन बहुओको देखो। हे माधव

२७२ यह पास आकर भरतश्रेष्ठोका स्मरण करती,
पुत्रो, भाइयो, पिताओ और पतियोको पृथक (पथक) पा रही ह।

२७३ हे महाबाहु, (यह) युद्धक्षेत्र वीर माताओ निहत-पुत्राओ द्वारा
घिरा और कही निहत वीरोवाली वीर पत्नियो द्वारा घिरा,

२७४ भीष्म, कण अभिम यु (जैसे) पुरुषसिंहो द्वारा शोभित
प्रज्ज्वलित अग्नि समान द्रोण, द्रुपद और शल्यसे,

२७५ महात्माओके सोनेके कवचो दिव्य-मणियोके साथ,
अगद और हाथके ककणो और मालाओसे

२७६ वीर बाहुओसे छोडी शक्तियो, परिघोसे भी,
विविध तीक्ष्ण खडगो, वाण-सहित धनुषोसे अलकृत है।

२७७ क्रव्याद-सघै सहितैस् तिष्ठद्भिर् विविधै क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश् च शयानैरपरै क्वचित् ॥
२७८ एतदेव-विध वीर सपश्यायोधन विभो ।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाह जनादन ॥
२७९ पचालाना कुरूणा च विनाशे मधु-सूदन ।
पचानामिव भूतानामह वधमचिन्तयम् ॥
२८० तान् सु-पर्णाश् च गृध्राश् च विकर्षन्त्यसृगुक्षितान् ।
प्रगृह्य चरणैर् गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रश ॥
२८१ शयनान्युचिता सर्वे मदूनि विमलानि च ।
विपन्नास् तेऽद्य वसुधा विवृतामधिशेरते ॥
२८२ तेषामाभरणान्येते गृध्र गोमायु-वायसा ।
आक्षिपन्त्य-शिवा घोरा विनदन्त पुन पुन ॥
२८३ सुरूप-वर्णा बहव क्रव्यादैरवघट्टिता ।
ऋषभ-प्रतिरूपाक्षा शेरते च सहस्रश ॥
२८४ अपरे पुनरालिग्य गदा परिघ-बाहव ।
शेरतेऽभि-मुखा शूरा दयिता इव योषित ॥
२८५ बिभ्रत कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च ।
न धषयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥
२८६ एते गोमायवो भीमा निहताना महात्मनाम् ।
कण्ठान्तर-गतान् हारान् आक्षिपन्ति सहस्रश ॥
२८७ सर्वेष्वपर-रात्रेषु यान् अवन्दन्त वन्दिन ।
तान् इमा परिदेवन्ति दुखार्ता परमागना ॥
२८८ बह्वयो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विपलन्ति च ।
पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरासि मृदु-पाणय ॥

२७७ कही मासभक्षी विविध प्रकारके जन्तु-समूहोंसे
कहीपर खेलते हुये और कहीपर लेटे हुओसे,

२७८ हे वीर, हे प्रभु, इस युद्धक्षेत्रको हे जनादन,
इस प्रकार, देखती हुई मै शोकसे जल रही हूँ।

२७९ हे मधुसूदन, पचाला और कुरुओके विनाशको,
मैंने पाचो भूतोके बध सा माना।

२८० खूनसे लथपथ उन्हे गरुड और गिद्ध खीच रहे ह।
पैरोंसे पकडकर हजारो गिद्ध खा रहे है।

२८१ जो सब मदु निमल शय्याके योग्य थे,
वे आज मरकर नगी भूमिपर लेटे हुये है।

२८२ उनके आभूषणोको ये भयकर घोर गिद्ध, सियार और कौवे
चिल्लाते हुये फिर फिर घसीट रहे है।

२८३ सुन्दर रूप-वणवाले वषभके समान इद्रियोवाले बहुतेरे (वीर),
हजारो, मासभक्षी जन्तुओ द्वारा छिन्न भिन्न किये जाते लेटे है।

२८४ और कोई कोई परिघसे विशाल बाहुवाले प्रिय स्त्रियोकी तरह
गदाओको आलिंगन करते, सामने करके सो रहे है।

२८५ किसी किसी विमल कवच आयुध धारण करनेवालोको,
हे जनादन जीता समझकर मासभक्षी नही अपमानित करते।

२८६ ये भयकर सियार हजारोकी तादादमे निहत महात्माओंके
कठमें अवस्थित हारोको खीच रहे हैं।

२८७ पिछली सारी रातो बदी जिनकी स्तुति करते थें,
उनके लिये यह दु खार्त्ता श्रेष्ठ महिलायें रो रही है।

२८८ इनके शरीरोको देखकर बहुतेरी रोती और विलाप करती हैं।
दूसरी कोमल हाथोवाली (अपने) हाथोंसे सिरोको धुनती है।

२८९ शिरोभि पतितैर् हस्तै सर्वांगै खण्डश कृतै ।
इतरेतर-सपृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥
२९० वि-शिरस्कान् अथो कायान् दृष्ट्वा घोराभिनन्दिन ।
मुह्यन्ति सु-चिर नार्यो वि देहानि शिरासि च ॥
२९१ शिर कायेन सन्धाय प्रेक्षमाणा वि-चेतस ।
अपश्यन्त्योऽपर तत्र नेदमस्येति दु खिता ॥
२९२ बाहूरु-चरणान अन्यान् विशिखोन्मथितान् पथक् ।
सदधत्योऽसुखाविष्टा मूछन्त्येता पुन पुन ॥
२९३ उत्कृत्त-शिरसश् चान्यान् विजग्धान् मृग-पक्षिभि ।
दृष्ट्वा काचिद् न जानन्ति भत न् भरत-योषित ॥
२९४ पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरासि मधु-सूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातन् पितन् पुत्रान् पतीश् च निहतान् परै ॥
२९५ बाहुभिश् च स खड्गैर् हि शिरोभिश् च स कुण्डलै ।
अगम्य-कल्पा पथिवी मास-शोणित-कदमा ॥
२९६ यूथानीव किशोरीणा सु-केशीना जनादन ।
स्नुषाणा धृतराष्ट्रस्य पश्य वन्दान्यनेकश ॥
२९७ इतो दु खतर कि नु केशव, प्रतिभाति मे ।
यदिमा कुवते सर्वा रवमुच्चावच स्त्रिय ॥
२९८ नूनमाचरित पाप मया पूर्वेषु जन्मसु ।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातृश् च केशव ।"
२९९ एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनादनम् ।
गान्धारी पुत्र-शोकार्ता ददर्श निहत सुतम् ॥

—स्त्री-पव, ४

२८९ सिरो, गिरे हाथो खड-खड किये सारे अगो,
एक दूसरे से मिश्रित पथिवी पर आकीण दीख रही है।

२९० सिर रहित काया और बिना देहके सिरोको,
देखकर घोर-अभिनदन करनेवाली स्त्रिया देर तक मूर्छित हो जाती है।

२९१ सिरको धडसे जोड देख कर चेतनाशूय हो
दूसरेको न देख उसमे 'इसका यह नही ह कह दु खित होती है।

२९२ बाहु, जाघ और दूसरे चरणाको शिखा रहित उमथित सिरोको
सुखमे आविष्ट हो अलग, जोडती ये फिर फिर मूर्छित होती ह।

२९३ मगो और पक्षियो द्वारा खाये गये कटे सिरोवाले
पतियोको देखकर कोई-कोई भरत-स्त्रिया नही पहचानती।

२९४ दूसरी, हे मधुसूदन, शत्रुओ द्वारा भाइयो, पिताओ,
पुत्रो और पतियोको निहत देखकर (अपने) हाथोसे सिरोको पीटती है।

२९५ खडगयुक्त बाहुओ और कुडलयुक्त सिरोसे (ढकी),
मास और रक्तके कीचडवाली (यह) पथिवी अगम्य हो गई है।

२९६ हे जनादन, सुकेशी किशोरियोके समूहो सी
धतराष्ट्रकी बहुओके अनेक वन्दोको देखो।

२९७ हे केशव, मेरे लिए इससे बढकर दु ख क्या हो सकता है
कि ये सब स्त्रिया नाना प्रकारसे क्रन्दन कर रही है।

२९८ निश्चय पूव जन्ममे मने पाप किया,
जो कि हे केशव, पुत्रो, पौत्रो और भाइयोको निहत देख रही हूँ।"

२९९ इस प्रकार आत हो विलाप करती पुत्र-शोक-पीडिता,
गाधारीने कृष्णसे कहकर अपने निहत पुत्रको देखा।

—स्त्री-पव अध्याय ४

१० गण-तन्त्रम्—

युधिष्ठिर उवाच—

३०० गणाना वृत्तिमिच्छामि श्रोतु मतिमता वर।
यथा गणा प्रवधन्ते न भिद्यन्ते च भारत॥

३०१ अरीश् च विजिगीषन्ते सुहृद प्राप्नुवन्ति च।
भेद-मूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये॥
मन्त्र-सवरण दु ख बहूनाम् इति मे मति।

भीष्म उवाच—

३०२ गणाना च कुलाना च राज्ञा भरत-सत्तम।
वैर-सन्दीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप॥

३०३ लोभमेको हि वृणुते ततोऽमषमनन्तरम्।
तौ क्षय-व्यय-सयुक्तावन्योन्य च विनाशिनौ॥

३०४ चार-मन्त्र-बलादानै साम-दान-विभेदनै।
क्षय-व्यय-भयोपायै प्रकषन्तीतरेतरम्॥

३०५ तत्रादानेन भिद्यन्ते गणा सघात-वत्तय।
भिन्ना वि-मनस सर्वे गच्छन्त्यरि-वश भयात्॥

३०६ भेदे गणा विनश्येयुर् भिन्नास् तु सु-जया परै।
तस्मात् सघात-योगेन प्रयतेरन् गणा सदा॥

३०७ अर्थाश् चैवाधिगम्यन्ते सघात बल पौरुषै।
बाह्याश् च मैत्री कुर्वन्ति तेषु सघात-वृत्तिषु॥

३०८ ज्ञान-वृद्धा प्रशसन्ति शुश्रूषन्त परस्परम्।
विनिवृत्ताभिसन्धाना सुखमेधन्ति सवश॥

३०९ धर्मिष्ठान् व्यवहाराश् च स्थापयन्तश् च शास्त्रत।
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवधन्ते गणोत्तमा॥

१७ गणतन्त्र—

युधिष्ठिर बोले—

३०० हे मतिमानामें श्रेष्ठ, हे भारत, (राज्य) गणाकी उस वत्तिको मै सुनना चाहता हूँ, जिससे कि गण न छिन्न भिन्न हो बन्ते है।

३०१ वह शत्रुओको जीतने और मित्रोको प्राप्त करते है
गणोका विनाश फूटके कारण है, यह मै सनमझता हूँ।
बहुन (जनो) के भीतर मन्त्रणाको गुप्त रखना कठिन है, यह मेरी राय है।

भीष्म बोले—

३०२ हे भरतश्रेष्ठ, हे नराधिप, गणो और राजाओके कुलोके
वैर बढानेवाले है ये लोभ और ईर्ष्या।

३०३ कोई लोभको पसन्द करता है, उसके अनन्तर ईर्ष्या (अमष) को,
ये दोनो क्षय और हानिसे सयुक्त हो परस्पर विनाशक है।

३०४ गुप्तचर, गुप्तमन्त्रणा और सेनाके ग्रहण, साम-दाम और विभेदद्वारा,
क्षय, व्यय भयके उपायोसे (वह) एक दूसरेको खीचते है।

३०५ एकता स्वभाववाले गण आदान (रिश्वत)से फूटते है।
फूटे बिगडे मनवाले सभी (लोग) भयसे शत्रुके वशमें चले जाते है।

३०६ फूट होनेपर गण नष्ट होते है, फूटवाले (वह) शत्रुओ द्वारा आसानीसे जीते जाते है। इसलिए गणोको एकताबद्ध हो प्रयत्न करना चाहिए।

३०७ एकता, बल और पौरुषसे अथ (धन) प्राप्त होते है।
उन एकता वृत्तिवालोसे बाहरवाले (भी) मित्रता करते है।

३०८ (उनकी) ज्ञानमें वद्ध लोग प्रशसा करते है, परस्पर शुश्रूषा करते है। शत्रुओकी चालोसे निवृत्त हो सब तरह सुखसे बढते है।

३०९ शास्त्रानुसार धर्मिष्ठ व्यवहारोकी स्थापना करते,
यथोचित देखभाल करते श्रेष्ठ गण वद्धिको प्राप्त होते हैं।

३१० चार-मन्त्र-विधानेषु कोश-सनिचयेषु च।
नित्य-युक्ता महा-बाहो बिधन्ते सवतो गणा ॥
३११ प्राज्ञान् शूरान् महोत्साहान् कमसु स्थिर पौरुषान्
मानयन्त सदा युक्तान् विबधन्ते गणा नप ॥
३१२ द्रव्यवन्तश् च शूराश् च निर्लोभा शास्त्रपारगा
कृच्छास्वापत्सु समूढान् गणान् स तारयन्ति ते।'
३१३ क्रोधो भेदो भय दण्ड कषण निग्रहो बध ।
नयत्यरिवश सद्यो गणान्, भरत-सत्तम ॥
३१४ तस्माद् मानयितव्यास् ते गणमुख्या प्रधानत ।
लोक-यात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव ॥
३१५ मन्त्र-गुप्ति प्रधानेषु चारश् चामित्र-कषण।
न गणा कृत्स्नशो मन्त्र श्रोतुमर्हन्ति भारत ॥
३१६ गण-मुख्यैस् तु सभूय काय गण-हित मिथ ।
पृथग् गणस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा ॥
३१७ अर्था प्रत्यवसीदन्ति तथानर्था भवन्ति च।
तेषामन्योन्य-भिन्नाना स्व-शक्तिमनुतिष्ठताम् ॥
३१८ निग्रह पण्डितै काय क्षिप्रम् एव प्रधानत ।
गोत्रस्य नाश कुवन्ति गण-भेदस्य कारकम् ॥
३१९ आभ्यन्तर भय रक्ष्यम्, अ-सार बाह्यतो भयम्।
आभ्यन्तर भय राजन्, सद्यो मूलानि कृन्तति ॥
३२० अकस्मात् क्रोध-मोहाभ्या लोभाद् वापि स्व-भावजात्।
अन्योन्य नाभिभाषन्ते तत् पराभव-लक्षणम् ॥
३२१ जात्या च सदशा सर्वे कुलेन सदृशास् तथा।
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूप-द्रव्येण वा पुन ॥
३२२ भेदाच् चैव प्रदानाच् च नाम्यन्ते रिपुभिर् गणा ।
तस्मात् सघातमेवाहुर् गणाना शरण महत् ॥

—शान्ति-पव, ११

३१० गुप्तचर-मन्त्रके विधानोमे और कोशके सचयोमे,
हे महाबाहु नित्य तत्पर गण सब तरह बढत ह ।
३११ हे नप, बुद्धिमानो शूरो महासाहसियो, कामोमें दढ पौरुषवालो,
सदा तत्पर रहनेवालोका सम्मान करते गण वद्धिको प्राप्त
करते हैं।
३१२ द्रव्यवाले शूर और शास्त्र पारगत वे
कठिन आफतोमे फसे गणोको तारते है।
३१३ क्रोध, फट भय, दण्ड घसीटना निग्रह और बध
हे भरतश्रेष्ठ, ये तुरत गणोको शत्रुके वशमे कर देते ह।
३१४ इसलिए गणोके उन नेताओको प्रधानतया सम्मानित करना चाहिए।
हे पार्थिव लोक निर्वाह अधिकतर उन्हींके हाथमे है।
३१५ हे शत्रु-नाशक, नेताओमे मन्त्र और गुप्तचर को गुप्त रखना
हे भारत, गणोको पूरी तौरसे मन्त्र नही सुनना चाहिए।
३१६ गणके मुखियोको परस्पर इकटठा होनेसे गणका हित होना है,
फट पडे फैले भिन्न हुय गणका उससे उलटा अहित।
३१७ अथ (हित) कम होते है और अनथ उत्पन्न होते है।
परस्पर फूटकर अपनी शक्तिका उपयोग करनेवाले उन गणोके
३१८ पडितोको चाहिए, कि जल्दी और प्रधान द्वारा निग्रह करे।
गणोमे फूट डालनेवाले (लोग) गोत्रका नाश करते है।
३१९ (उन्हे) भीतरी भयसे बचाना चाहिए बाहरी भय निस्सार है।
हे राजन्, भीतरी भय तुरन्त मूलको काट देता है।
३२० अकस्मात क्रोध और मोह, स्वाभाविक लोभके कारण भी (जो)
परस्पर बात नही करते, सो पराजयका लक्षण है ।
३२१ जातिसे सभी एक समान और कुलसे एक समान होते है,
किन्तु उद्योग, बुद्धि या रूप धनमे (सभी) समान नही हाते।
३२२ शत्रु फटसे और रिश्वतसे गणोको दबाते है।
इसलिए गणोके लिए सबसे बडी सुरक्षा एकताको ही कहा गया है।
—शान्ति-पव ११

१५ वाल्मीकि (२०० इ० पू०)

यद्यपि महाभारतकी अनगढ़ कविता उस कालकी ह, जब कि सस्कृत नहीं पालिया बोल-चालकी भाषायें थी, किन्तु पीछेके अर्थोंमें जिसे काव्य या महाकाव्य कहा जा सकता ह, वह उसी कालकी रचना रामायणके रूपमें हमारे सामने ह, इसीलिये यदि उसे "आदि काव्य" (प्रथम काव्य) कहा गया, तो अनुचित नहीं ह। रामायणकी कथा भी महाभारतकी कथाकी तरह बहुत पुरानी ह ? बुद्धके समय भी वह प्रचलित थी। किन्तु उसको

१ अयोध्या—

१ कोसलो नाम मुदित स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्ट सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ।।५।।

२ अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ।।६।।

३ आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ।।७।।

४ राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यश ।।८।।

५ ता तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धन ।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ।।९।।

६ कपाटतोरणवती सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषिता सर्वशिल्पिभि ।।१०।।

७ सूतमागधसबाधा श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवती शतघ्नीशतसकुलाम् ।।११।।

१५ वाल्मीकि (२०० ई० पू०)

एक सुन्दर महाकाव्यका रूप इस कृतिके रूपमें दिया गया। जिस समाज और भौगोलिक विस्तारका वर्णन रामायणमें आता है, वह शुग-कालको सूचित करता है, इस प्रकार इसकी रचना ईसासे डेढ दो सौ वर्ष पहले हुई। रचयिताका नाम वाल्मीकि है, जो ठीक भी हो सकता है, किन्तु वाल्मीकिके साथ, जितनी बातें जोड दी गई है, वह आदि कविकी ऐतिहासिकतापर सन्देह पैदा कर देती है। "महाभारत" की तरह यह भी पालियोंके कालकी रचना है।

१ अयोध्या-वर्णन—

१ कोसल नामक सुखी समृद्ध महान जनपद (देश),
बहुत धनधान्यवाला सरयूके तीर अवस्थित था॥५॥

२ वहा लोक प्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी
जो पुरी स्वय मानवेन्द्र मनु द्वारा निर्मित हुई थी॥६॥

३ वह महापुरी थी दस और दो योजन विस्तृत।
सुविभक्त महापथोवाली श्रीवाली वह पुरी तीन योजन चौडी थी॥७॥

४ वह सुन्दर तौरसे विभक्त महान् राजमार्गोसे शोभित थी,
जो कि नित्य छोडे हुये फूलोसे आकीर्ण, जलसे सिक्त रहते थे॥८॥

५ महान् राष्ट्र-बर्धक राजा दशरथ ने उस पुरीको,
द्यौलोकमे इन्द्र जैसे आवासित किया था॥९॥

६ (वह पुरी थी) किवाड-तोरणवाली, भीतरी हाटोसे सुविभक्त।
सारे यन्त्रो-आयुधोवाली सारे शिल्पियो से बसी॥१०॥

७ सूतो-मागधोंसे भरी, अतुल प्रभावाली श्रीमती
ऊँची अटारियो ध्वजोवाली सैकडो शतघ्नियोंसे भरी॥११॥

८ वधूनाटकसघैश्च सयुक्ता सवत पुरीम् ।
उद्यानाम्रवणोपेता महती सालमेखलाम् ॥१२॥

९ दुगगभीरपरिखा दुर्गाम यैर्दुरासदाम् ।
वाजिवारणसपूर्णा गोभिरुष्टै खरैस्तथा ॥१३॥

१० सामतराजसघैश्च बलिकमभिरावृताम् ।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥

११ प्रासादै रत्नविकृतै पवतैरिव शोभिताम् ।
कूटागारैश्च सपूर्णामि द्रस्येवामरावतीम् ॥१५॥

१२ चित्रामष्टापदाकारा वरनारीगणैर्युताम् ।
सवरत्नसमाकीर्णा विमानगृहशोभिताम् ॥१६॥

१३ गहगाढामविच्छिद्रा समभूमौ निवेशिताम् ।
शालितडुलसपूर्णामिक्षुकाडरसोदकाम् ॥१७॥

१४ दुदुभीभिर्मृदगैश्च वीणाभि पणवैस्तथा ।
नादिता भृशमत्यर्थ पृथिव्या तामनुत्तमाम् ॥१८॥

१५ विमानमिव सिद्धाना तपसाधिगत दिवि ।
सुनिवेशितवेश्माता नरोत्तमसमावृताम् ॥१९॥

१६ ये च वाणैन विध्यति विविक्तमपरापरम् ।
शब्दवेध्य च वितत लघुहस्ता विशारदा ॥२०॥

१७ सिहव्याघ्रवराहाणा मत्ताना नदता वन ।
हतारौ निशितै शस्त्रैबलाद् बाहुबलैरपि ॥२१॥

१८ तादृशाना सहस्रैस्तामभिपूर्णा महारथै ।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥२२॥

८ और वधुओ-नाटकोकी जमातो चारो ओरसे सयुक्त।
उद्याना-आम्रवनोसे युक्त सालोकी मेखलावाली महती ॥१२॥

९ किलो, गहरी खाइयोसे दुगम शत्रुओ के हाथमे न आनेवाली।
घोडो हाथियासे भरी तथा गौवो-ऊँटो और गदहोसे खूब सपूण ॥१३॥

१० सामत राजाओके सघोसे, शुल्कवालोसे घिरी,
नाना देशके निवासियो बनियो द्वारा उपशोभित ॥१४॥

११ रत्नमय पवत समान प्रासादोसे शोभित,
और इद्रकी अमरावती सी कूटागारोसे सपूण ॥१५॥

१२ विचित्र सुनहली, श्रेष्ठ नारीगणोसे युक्त,
सारे रत्नोसे समाकीण विमानगृहोसे शोभित ॥१६॥

१३ गहोसे घनी अविरल समतल भूमिमे स्थापित,
धानके तडुलोसे सपूण, ऊखके रसके जलवाली ॥१७॥

१४ दुदुभियो, मदगो और वीणाओ तथा नगारोसे
बराबर निनादित पथिवीमे अत्यन्त अनुपम ॥१८॥

१५ द्यौलोकमे तपसे प्राप्त सिद्धोके विमानकी तरह
अच्छी तरह रक्खे घरोवाली उत्तम नरोसे घिरी ॥१९॥

१६ और जो (नरोत्तम) परस्पर, एकान्तमे वाणोसे नही वेधते, (जा)
शब्द वेध और विस्तत (लक्ष्यमें) कुशल फुर्तीले हाथवाले है ॥२०॥

१७ वनमें गरजते मस्त सिंह-बाघ-सूअरोको,
तीक्ष्ण शस्त्रो और बाहुबलसे भी मारनेवाले ॥२१॥

१८ ऐसे हजारो महारथियोसे परिपूण पुरीको
उस समय राजा दशरथने आवासित कर रक्खा था ॥२२॥

१९ तामग्निमद्भिगणवद्भिरावता, द्विजोत्तमैर्वेदषडग-
पारगै ।
सहस्रदै सत्यरतैर्महात्ममिर्हर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च
केवलै ॥२३॥
—बालकाण्डे सर्ग ५

२ दशरथ-विलाप —

२० तत श्रुत्वा महाराज कैकय्या दारुण वच ।
चितामभिसमापेदे मुहूर्त प्रतताप च ॥१॥
२१ "कि नु मेऽय दिवास्वप्नश्चित्तमोहोऽपि वा मम ।
अनुभूतोपसर्गो वा मनसो वाप्युपद्रव" ॥२॥
२२ इति सिचित्य तद्राजा नाध्यगच्छत्तदा सुखम् ।
प्रतिलभ्य तत सज्ञा कैकेयीवाक्यतापित ॥३॥
२३ व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्री दष्ट्वा यथा मृग ।
असवृतायामासीनो जगत्या दीर्घमुच्छ्वसन् ॥४॥
२४ मडले पन्नगो रुद्धो मत्रैरिव महाविष ।
"अहो धिगति" सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिप ॥५॥
२५ मोहमापेदिवान् भूय शोकोपहतचेतन ।
चिरेण तु नृप सज्ञा प्रतिलभ्य सुदु खित ॥६॥
२६ कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निदहन्निव तेजसा ।
"नशसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ॥७॥
२७ किं कृत तव रामेण पापे पाप मयापि वा ।
सदा ते जननीतुल्या वृति वहति राघव ॥८॥
२८ तस्यैव त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता ।
त्व मयात्मविनाशाय भवन एव निवेशिता ॥९॥

१९ अग्निसेवक गुणवान षडगवेद पारगत उत्तम ब्राह्मणोन,
सहस्रोके देनेवाले सत्यरत महर्षि समान महात्माओ और केवल
ऋषियोसे घिरी पुरीको (राजान) आवासित किया था॥२३॥

२ दशरथका विलाप—

२० तब महाराज कैकेयीके दारुण वचनको सुनकर।
चिन्ताको प्राप्त हो मुहूत भर सतप्त हुये॥१॥

२१ 'क्या यह मेरा दिवास्वप्न है या मेरा चित्त-मोह है।
अनुभव किया उपसग[1] है या मनका उपद्रव ही है॥२॥

२२ यह सोचते राजाने बादमे होशमे आकर,
कैकेयीके वचनसे सतापित सुख नही पाया, ॥३॥

२३ बाघिनको देखकर मगकी तरह विकलतासे पीडित,
नगी धरतीपर बैठे लम्बी सास लेते॥४॥

२४ मन्त्रो द्वारा महाविषैले सपकी तरह मण्डलमे रुधे
"अहो, धिक्कार", यह वचन अमषके साथ कह नराधिप॥५॥

२५ शोकसे चेतना लुप्त हुये, फिर मूर्छाको प्राप्त हुये।
देरसे होशमें आकर नप अति दुखित हो॥६॥

२६ क्रुद्ध होकर तेजसे जलाते हुये से कैकेयीसे बोले—
'कमीनी, दुष्टाचारिणी, इस कुलकी विनाशिका॥७॥

२७ पापिनी, रामने या मैंने ही तेरा क्या बिगाडा ?
राम तेरे प्रति सदा जननीके समान भाव रखते है॥८॥

२८ उनके अनथके लिए तू आज क्यो उद्यत है ?
न जाननके कारण मैंने अपने विनाशके लिये॥९॥

---

[1] प्रेतबाधा।

२९ अविज्ञानान्नृपसुता व्याला तीक्ष्णविषा यथा।
जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ॥१०॥
३० अपराध कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमह सुतम्।
कौसल्याच सुमित्र। च त्यजेयमपि वा श्रियम् ॥११॥
३१ जीवित चात्मनो राम नन्वेव पितवत्सलम्।
पराभवति मे प्रीतिदृष्ट्वा तनयमग्रजम् ॥१२॥
३२ अपश्यतस्तु मे राम नष्ट भवति चेतनम्।
तिष्ठेल्लोको विना सूय सस्य वा सलिल विना ॥१३॥
३३ नतु राम विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।
तदल त्यज्यतामेष निश्चय पापनिश्चय ॥१४॥
३४ अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पशाम्येष प्रसीद मे।
किमर्थ चिंतित पापे त्वया परमदारुणाम् ॥१५॥
३५ अथ जिज्ञाससे मा त्व भरतस्य प्रियाप्रिये।
अस्तु यत्तत्त्वया पूव व्याहृत राघव प्रति ॥१६॥
३६ स मे ज्येष्ठसुत श्रीमान्धर्मज्येष्ठ इतीव मे।
तत् त्वया प्रियवादिन्या सेवाथ कथित भवेत् ॥१७॥
३७ तच्छ्रुत्वा शोकसतप्ता सतापयसि मा भशम्।
आविष्टासि गहे शून्ये सा त्व परवशगता ॥१८॥
३८ इक्ष्वाकूणा कुले देवि, सप्राप्त सुमहानयम्।
अनयो नयसपन्ने यत्र ते विकृता मति ॥१९॥
३९ नहि किंचिदयुक्त वा विप्रिय वा पुरा मम।
अकरोस्त्व विशालाक्षि तेन न श्रद्दधामि ते ॥२०॥
४० ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।
बहुशो हि स्म बाले त्व कथा कथयते मम ॥२१॥

२९ तेज विषवाली सर्पिणीकी तरह नपकाया तुझे अपने भवनमे प्रवश
कराया। जब सारा जीवलोक रामके गुणकी प्रशमा करता है ॥१०॥

३० तो किस अपराधके लिये मै प्रिय सुतको प्रत्यागू ?
कौसल्या और सुमित्रा और लक्ष्मीको भी ॥११॥

३१ और अपने जीवनको भी छोड दू पर पितृभक्त राम का नही।
ज्येष्ठ पुत्रको देखकर मुझे परम प्रसन्नता होती है ॥१२॥

३२ रामको न देख मेरी चेतना नष्ट होजाती है।
बिना सूयके लोक, बिना सलिलके सस्य भल ही रहें ॥१३॥

३३ लेकिन रामके बिना मेरे देहमें जीवन नही रहगा।
इसलिए हे बुरे निश्चयवाली, बम कर, इस निश्चयको छोड
दे ॥१४॥

३४ बल्कि, मैं तेरे चरणोमे सिर डालता हूँ, मुझपर दया कर।
हे पापिन, किसलिए तूने इस परम दारुण कामकी सोची ॥१५॥

३५ यदि तू भरतके प्रिय या अप्रियकी बात मुझसे जानना चाहती है,
तो राघवके लिये जो तूने पहले कहा, वही होवे ॥१६॥

३६ वह मेरे श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र धममें भी ज्येष्ठ ही ह।
सो तुझ प्रियवादिनीने सेवाके लिए कहा होगा ॥१७॥

३७ सो सुनकर शोकसतप्त हो तू मुझ बहुत सता रही ह।
सो तू परके वश होकर शून्य घरमें प्रविष्ट हुई ॥१८॥

३८ हे देवि, इक्ष्वाकुओके कुलमे यह बहुत बडा अन्याय,
न्याय-सम्पन्न कुलमे अन्याय लगा, जब कि तेरी मति बिगडी ॥१९॥

३९ हे विशाल-नेत्रे, तूने पहले कुछभी मेरा अयुक्त या अप्रिय,
नही किया, उसीसे तुझपर विश्वास नही करता ॥२०॥

४० राम तेरे लिये निश्चय महात्मा भरतके तुल्य ही ह,
हे बाले, तूने बहुत बार यह बात मुझसे कही ॥२१॥

४१ तस्य धर्मात्मनो देवि, वने वास यशस्विन ।
कथ रोचयसे भीरु नव वर्षाणि पच च ॥२२॥
४२ अत्यतसुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मन ।
कथ रोचयसे वासमरण्ये भृशदारुणे ॥२३॥
४३ रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने।
तव शुश्रूषमाणस्य किमथ विप्रवासनम् ॥२४॥
४४ रामो हि भरताद् भूयस्तव शुश्रूषते सदा।
विशेष त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥२५॥
४५ शुश्रूषा गौरव चैव प्रमाण वचनक्रियाम्।
कस्तु भूयस्तर कुर्यादन्यत्र पुरुषषभात् ॥२६॥
४६ बहूना स्त्रीसहस्राणा बहूना चोपजीविनाम्।
परिवादोपवादो वा राघवेनोपपद्यते ॥२७॥
४७ सात्वय सवभूतानि राम शुद्धेन चेतसा।
गृह्णाति मनुजव्याघ्र प्रियैर्विषयवासिन ॥२८॥
४८ सत्त्वेन लोकान् जयति द्विजान्दानेन राघव ।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥२९॥
४९ सत्त्य दान तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥३०॥
५० तस्मिन्नार्जवसपन्ने देवि देवोपमे कथम्।
पापमाशससे रामे महर्षिसमतेजसि ॥३१॥
५१ न स्मराम्यप्रिय वाक्य लोकस्य प्रियवादिन ।
स कथ त्वत्कृते राम वक्ष्यामि प्रियमप्रियम् ॥३२॥
५२ क्षमा यस्मिस्तपस्त्याग सत्य धम कृतज्ञता।
अप्यहिंसा च भूताना तमृते का गतिर्मम ॥३३॥

४१ हे देवि, उस धमात्मा यशस्वीका नौ-पाच वष वनवास,
हे भीरु, तू क्यो पसन्द करती है॥२२॥

४२ हे अतिदारुणे, अत्यन्त सुकुमार धममें निष्णात उन रामका,
अरण्यमे वास तू कैसे पसन्द करती है॥२३॥

४३ हे शुभ लोचने, अपन तेरे शुश्रुषा करनेवाले,
सुन्दर रामका निर्वासन किसलिए चाहती है॥२४॥

४४ राम तो हमेशा भरतसे भी ज्यादा तेरी शुश्रूषा करते है।
तेरे विषयमे तो भरतका विशेष म नही लखता॥२५॥

४५ शुश्रूषा गौरव, प्रमाण और वचन मानना,
पुरुषश्रेष्ठ रामसे अधिक दूसरा कौन करेगा॥२६॥

४६ बहुत हजार स्त्रियो और बहुत नौकरोका राघवके विषयमे
निन्दा और चुगली करना सभव नही है॥२७॥

४७ पुरुष-व्याघ्र राम शुद्ध चित्तसे सारे प्राणियोको सान्त्वना देते,
प्रेमके साथ देशवासियोको ग्रहण करते है॥२८॥

४८ राघव हिम्मतसे लोगोको, दानसे द्विजोको जीतते हैं,
सुश्रूषासे गुरुओको, धनुषसे युद्धमें शत्रुओको जीतते है॥२९॥

४९ सत्य, दान तप, त्याग, मित्रता, शुचिता, अकुटिलता,
विद्या और गुरुओकी सुश्रूषा यह (गुण) राघवमे अचल है॥३०॥

५० हे देवि, उन सरल देवोपम महर्षि समान तेजस्वी,
रामके विषयमें, तू क्यो बुरा चाहती है॥३१॥

५१ प्रियवादी लोगोके लिये (रामका) अप्रिय बात कहना मुझे याद नही,
सो मैं तेरे लिये प्रिय रामको कैसे अप्रिय कहूँगा॥३२॥

५२ जिसमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धम, कृतज्ञता,
और प्राणियोके लिये अहिंसा भी है, उसके बिना मेरी क्या गति
होगी॥३३॥

५३ मम वृद्धस्य कैकेयि गतातस्य तपस्विनम् ।
दीन लालप्यमानस्य कारुण्य कर्तुमर्हसि ॥३४॥
५४ पृथिव्या सागराताया यत्किंचिदधिगम्यते ।
तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्व मृत्युमाविश ॥३५॥
५५ अजलि कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ।
शरण भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत्" ॥३६॥]
—अयोध्याकाडे सग १२

३ भरतयाञ्चा—

५६ उवाच भरतश्चित्र धार्मिको धार्मिक वच —
"कोहि स्यादीदृशो लोको यादशस्त्वमरिदम ॥२॥
५७ न त्वा प्रव्यथयेद् दुख प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ।
समतश्चापि वृद्धाना ताश्च पृच्छसि सशयान् ॥३॥
५८ यथा मृतस्तथा जीवन्यथा सति तथाऽसति ।
यस्यैष बुद्धिलाभ स्यात्परितप्येत केन स ॥४॥
५९ परावरज्ञो यश्च स्याद्यथा त्व मनुजाधिप ।
स एव व्यसन प्राप्य न विषीदितुमर्हति ॥५॥
६० अमरोपमसत्त्वस्त्व महात्मा सत्यसगर ।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च बुद्धिमाँश्चासि राघव ॥६॥
६१ न त्वामेवगुणैर्युक्त प्रभवाभवकोविदम् ।
अविषह्यतम दुखमासादयितुमर्हसि ॥७॥
६२ प्रोषिते मयि यत्पाप मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्ट मे प्रसीदतु भवान्मम ॥८॥
६३ धमबधेन बद्धोऽस्मि तेनेमा नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दडेन दडार्हा पापकारिणीम् ॥९॥

५३ हे कैंकेयि, (जीवन के) अन्तपर पहुँचे विलाप करते
बेचारे मुझ वद्ध दीनपर करुणा कर ॥३४॥"

५४ सागर पयन्त पथिवीमे जो कुछ प्राप्य हैं।
वह सब मैं तुझे दूगा, लेकिन तू मुझे मत्युमे न ढकेल ॥३५॥

५५ ह कैंकेयि, हाथ जोडता हूँ और तेरे परोको छूता हूँ तू रामके लिए
शरण बन, जिसमे यहाँ धम मेरी निदा न करे ॥३६॥"

—अयोध्याकाण्ड सग १२

३ भरतकी प्रार्थना—

५६ धार्मिक भरतने अदभुत धार्मिक वचन कहा।
"हे अरिमदन, जैसे तुम हो ऐसा दुनियामें कौन हो सकता है ॥२॥

५७ तुम्हे दुख नही पीडित करता, न ही प्रीति हर्षित करती।
वद्धोसे भी सम्मानित होत उनसे नशय पूछते हो ॥३॥

५८ जैसे मत तैसे जीते जैसे होते तसे न होते,
जिसको ऐसी बुद्धि प्राप्त हो, वह किससे परितप्त होगा ॥४॥

५९ वारपारका ज्ञाता जो हो, (वह वैसा ही हो) जैसे कि हे मनुजाधिप,
तुम हो। वही दुखको पाकर विषादयुक्त नही हो सकता ॥५॥

६० देवोपम सत्ववाले, तुम सत्यवादी महात्मा हो।
हे राघव, तुम सवज्ञ सवदर्शी और बुद्धिमान हो ॥६॥

६१ सष्टि उत्पत्तिके जानकार ऐसे गुणोसे युक्त तुम्हें,
असह्य दुख बसमें नही कर सकता ॥७॥

६२ मेरे प्रवासके समय क्रुद्ध माने मेरे लिए जो पाप किया,
वह मुझे पसन्द नही, मेरे ऊपर आप दया करे ॥८॥

६३ धमके बधनसे बधा हुआ हूँ, इसीसे यहाँ इस
दण्डनीय पापकारिणी माँको म तीव्र दण्डसे नही मारता ॥९॥

६४ कथ दशरथाज्जात शुभाभिजनकमण ।
जानन्धममधम च कुर्या कर्म जुगुप्सितम् ॥१०॥
६५ गुरु क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेत पितेति च ।
तात न परिगर्हेऽह दैवत चेति ससदि ॥११॥
६६ को हि धर्माथयोर्हीनमीदृश कम किल्विषम् ।
स्त्रिय प्रियचिकीर्षु सन्कुर्याद्धमज्ञ धमवित् ॥१२॥
६७ अतकाले हि भूतानि मुह्यतीति पुरा श्रुति ।
राज्ञैव कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुति कृता ॥१३॥
६८ साध्वथमभिसधाय क्रोधा मोहाच्च साहसात् ।
तातस्य तदतिक्रात प्रत्याहरतु तद् भवान् ॥१४॥
६९ पितुर्हि समतिक्रात पुत्रो य साधु मन्यते ।
तदपत्य मत लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥१५॥
७० तदपत्य भवानस्तु मा भवान्दुष्कृत पितु ।
अति यत्तत्कृत कम लोके धीरविगर्हितम् ॥१६॥
७१ कैकेयी मा च तात च सुहृदो बाधवाश्च न ।
पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातु सवमिद भवान् ॥१७॥
७२ क्व चारण्य क्व च क्षात्र क्व जटा क्व च पालनम् ।
ईदृश व्याहत कम न भवान्कर्तुमर्हति ॥१८॥
७३ एष हि प्रथमो धम क्षत्रियस्याभिषेचनम् ।
येन शक्य महाप्राज्ञ प्रजाना परिपालनम् ॥१९॥
७४ इद निखिलमप्यग्र्य राज्य पित्र्यमकटकम ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धमज्ञ सह बाधवै ॥२५॥
७५ इहैव त्वाभिषिंचतु सर्वा प्रकृतय सह ।
ऋत्विज सवसिष्ठाश्च मत्रविन्मत्रकोविदा ॥२६॥

शुभ-कुल-कमवाल दशरथसे उत्पन्न, (अय।)
धमको जानते निन्दनीय अधम कमको मैं करूँ॥१०॥

गुरु सुकर्मा वद्ध मत पिता और राजा तथा देवता भी ये
जन सभामे तातकी म नि दा नही करता॥११॥

धम और अथसे रहित ऐसा मलिन कम,
स्त्रीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे धमज्ञ और धमवित होते कौन करेगा॥१२॥
पुरानी कहावत ह—अन्तकालमे प्राणी मोहमे पड जाते ह।
ऐसा करके राजाने उसी बातको ससारमे प्रत्यक्ष कर दिया॥१३॥
अच्छी बात समझकर क्रोध मोह और साहससे,
तातने जो गलती की उसका आप हटा दे॥१४॥

पिताकी गलती जो पुत्र ठीक मानता है
वह ससारमे पुत्र माना जाता है, नही तो उलटा ह॥१५॥
सो आप पिताके अपत्य हो दुष्कृत नही
जो ससारमे धीरो द्वारा निन्दित अतिकम किय॥१६॥
कैकेयीको मुझे और तातको सुहृदोको और हमारे ब धुओको,
पुरवासियोको ग्रामवासियोका सबको त्राण करनेके लिये यह करो॥१७॥
कहा वन और कहा क्षत्रियत्व? कहा जटा और कहाँ प्रजापालन?
ऐसा उलटा काम आपको नही करना चाहिए॥१८॥
अभिषेक करना यही क्षत्रियका प्रथम धम है।
जिसके द्वारा हे महाबुद्धिमान प्रजाका परिपालन हो सकता है॥१९॥
धमज्ञ हो ब धुओके साथ इस श्रेष्ठ पैतक सार अकटक राज्य को स्वधमपूवक शासन करो॥२५॥
यही वसिष्ठ सहित सारी प्रजाये
म त्रज्ञ मन्त्र-पडित ऋत्विग तुम्हें अभिषिक्त करें॥२६॥

७६ अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्या पालने व्रज।
विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासव ॥२७॥
७७ ऋणानि त्रीण्यपाकुर्व द्विज द साधु निदहन्।
सुहृदस्तपयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् ॥२८॥
७८ अद्याय मुदिता सतु सुहृदस्तेऽभिषेचने।
अद्य भीता पलायतु दुष्प्रदास्ते दिशो दश ॥२९॥
७९ आक्रोश मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषषभ।
अद्य तत्र भवत च पितर रक्ष किल्विषात् ॥३०॥
८० शिरसा त्वाभियाचेऽह कुरुष्व करुणा मयि।
बाधवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वर ॥३१॥
८१ अथवा पृष्ठत कृत्वा वनमेव भवानित।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता साधमप्यहम्" ॥३२॥
८२ तथाभिरामौ भरतेन ताम्यता
प्रसाद्यमान शिरसा महीपति।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मति पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठित ॥३३॥
—अयोध्याकाडे सर्ग १०६

४ वियोगी राम —

८३ "सौमित्रै, शोभते पपा वैदूयविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमै ॥३॥
८४ सौमित्रे, पश्य पपाया कानन शुभदशनम्।
यत्र राजति शैला वा द्रुमा सशिखरा इव ॥४॥
८५ मा तु शोकाभिसतप्तमाधय पीडयति वै।
भरतस्य च दु खेन वैदेह्या हरणेन च ॥५॥

७६ हमारे द्वारा अभिषिक्त होकर प्रजापालनके लिये तुम अयोध्या जाओ। मरुतोके साथ इद्रकी तरह पराक्रमसे लोकोपर विजय करन के लिय ॥२७॥

७८ तीनो ऋणोको हटाते दुष्टोको अच्छी तरह दग्ध करते, सुहृदोकी कामनाआको पूरा करते, तुम्ही यहा मुझे शिक्षा दो ॥२८॥

७८ हे आय, आज तुम्हारे अभिषेकसे मित्र लोग मुदित हो।
तुम्हारे शत्रु आज भयभीत हो दसो दिशाओमे भागे ॥२९॥

८९ ह पुरुषश्रेष्ठ, मेरे और माके अपयशको मार्जित कर
आज पिताको भी पापसे बचाओ ॥३०॥

८० मै (अपना) सिर (पैरमे रख) याचना करता हूँ, मेरे ऊपर करुणा करो। और भूतोके ऊपर महेश्वरकी तरह सारे बाधवो पर करुणा करो ॥३१॥

८१ अथवा पीठ फेरकर यहासे यदि आप वन ही
जायेगे तो आपके साथ म भी जाऊँगा ॥३२॥

८२ उस प्रकार सतप्त भरत द्वारा सिर झुकाकर मनाये जाते सुन्दर महीपति, सत्ववान रामने पिताके उस वचनमें प्रतिष्ठित रह लौटनेका विचार नही किया ॥३३॥

—अयोध्याकाण्ड सग १०६

४ वियोगी राम—

८३ "हे सौमित्रि हीरे जैसे निमल जलवाली पपा सोह रही है।
फूले पदम उत्पलवाली, नाना प्रकारके वृक्षोसे शोभित ॥३॥

८४ सौमित्रि, पपाके शुभदशन वनको देखो।
जहाँ शिखर-सहित शैल जैसे द्रुम विराजते हैं ॥४॥

८५ शोकसे सतप्त मुझे तो चिन्तायें पीडित कर रही हैं,
भरतके दुख और वैदेहीके हरणके कारण ॥५॥

८६ शोक-पीडित भी मुझे विचित्र वनोवाली पपा सुन्दर लग रही है—
बहुत प्रकारके पुष्पासे आकीण शीतल जलवाली कल्याणी पपा ।।६।।

८७ कमलोसे भी आच्छादित अत्य त शुभदशना,
सप हिस्रजन्तुआकी विच ण भूमि मृगो और पक्षियोम
समाकीण ।।७।।

८८ यह नीली-पीली हरियाली अधिक प्रकाश रही है।
मानो वक्षोके नाना प्रकारके पुष्पोके गुच्छोसे अपित ।।८।।

८९ चारो ओर यहा पुष्पभारसे समद्ध पवत शिखर है,
जो चारो ओर फूली लताओसे ढके हुये ह ।।९।।

९० सौमित्रे, सुखद वायुवाला यह समय अधिक कामोत्तेजक है।
ग धवान सुग धित उत्पन्न पुष्प फलवाले वक्ष है ।।१०।।

९१ सौमित्रे, पुष्पशाली वनोके रूपोको देखो,
(जो) बादलोकी वर्षाकी तरह पुष्पोकी वर्षा करते है।।११।।

९२ और रमणीय पत्थरोपर नाना प्रकारके वनवक्ष,
वायुके वेगसे चालित पथिवीपर फूल बिखेरते है ।।।१२।।

९३ सौमित्रे, गिरे और गिर रहे तथा वक्षपर स्थित कुसुमोके साथ
मानो वायु चारो ओर क्रीडा सा कर रहा है ।।१३।।

९४ पवतोकी प्रफुल्लित नाना शाखाओको हिलाते,
स्थानसे चलित वायुका भ्रमर अनुगान कर रहे है ।।१४।।

९५ मत्त कोकिलोंके नादोंसे वृक्षोको नचाते हुये से,
पवत-कदरासे निकला वाय मानो गा रहा है।।१५।।

९६ चारो ओर जोरसे फेंकते उस पवन द्वारा,
शाखा लगे यह वक्ष गुथे से ह।।१६।।

९७ वहीं चदन सा शीतल सुख स्पशवाला पवित्र ग ध
वहन करता थकावट हटानेवाला अनिल बह रहा
है।।१७।।

९८ अमी पवनविक्षप्ता विनदतीव पादपा ।
षट्पदैरनुकूजद्भिवनेष मधुगंधिषु ॥१८॥
९९ गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिमनोरमैः ।
ससक्तशिखरा शैला विराजति महाद्रुमैः ॥१९॥
१०० पुष्पसछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचचला ।
अमी मधुकरोत्तसा प्रगीता इव पादपा ॥२०॥
१०१ सुपुष्पितास्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समतत
हाटकप्रतिसछन्नान्नरा पीताबरानिव ॥२१॥
१०२ अय वसत सौमित्रे, नानाविहगनादित ।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसदीपनो मम ॥२२॥
१०३ मा हि शोकसमाक्रात सतापयति मन्मथ ।
हृष्ट प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिल ॥२३॥
१०४ एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मा वननिर्झरे ।
प्रणदन्म मथाविष्ट शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥२४॥
१०५ श्रुत्वेतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया ।
मामाहूय प्रमुदिता परम प्रत्यनदत ॥२५॥
१०६ एव विचित्रा पतना नानारावविराविण ।
वृक्षगुल्मलता पश्य सम्पतन्ति समतत ॥२६॥
१०७ विमिश्रा विहगा पुभिरात्मव्यूहाभिनदिता ।
भृङ्गराजप्रमुदिता सौमित्रे मधुरस्वरा ॥२७॥
१०८ अस्या कूले प्रमुदिता सघश शकुनास्त्विह ।
दात्यूहरतिविक्रन्दै पुस्कोकिलरुतैरपि ॥२८॥
१०९ स्वनति पादपाश्चैमे ममानगप्रदीपका ।
अशोकस्तवकागार षट्पदस्वननिःस्वन ॥२९॥

९८ पवनसे झकोरे जाते यह वक्ष मधुर ग धवाले वनोमे कूजन करते
भ्रमरो द्वारा मानो हाव कर रहे है ॥१८॥

९९ रमणीय गिरिभमिमे पुष्पयुक्त मनोरम महावक्षोसे,
लगे शिखरवाले शैल विराज रहे है ॥१९॥

१०० पुष्पसे ढके शिखरदार, हवाके उठानेसे चचल
मधुकर-आभूपणवाले ये वृक्ष गाते से मालूम होते है ॥२०॥

१०१ इन सुपुष्पित कर्णिकारोको चारो ओर देखा
मानो सुवणस ढके पीत वस्त्रवाले नर है ॥२१॥

१०२ सौमित्रे, नाना पक्षियोसे निनादित यह वसन्त
सीतासे वियुक्त मेरे लिए शोक उत्तेजक है ॥२२॥

१०३ कामदेव शोकसे पीडित मुझे सतप्त कर रहा है।
बोलता कालकठ हर्षित हो पुकार रहा है ॥२३॥

१०४ हे लक्ष्मण रमणीय वन-निझरमें यह कोयल हर्षित हो,
नाद करती कामपीडित मुझे शोकाकुल करेगी ॥२४॥

१०५ पहले आश्रममें स्थित मेरी प्रिया इसके शब्दको सुनकर
मुझे पुकारकर प्रमुदित हो अत्यन्त प्रसन्न होती थी ॥२५॥

१०६ देखो, इस प्रकारके नाना कलरव करनेवाले विचित्र पक्षी,
वक्षो, झाडियो, लताओ पर चारो ओरसे आकर जमा है ॥२६॥

१०७ सौमित्रे, अपने समूहके नरोसे मिश्रित विहग आनंदित
मीठे स्वरस भङ्गराज प्रमुदित हैं ॥२७॥

१०८ इस (पम्पा) के तटपर यहाँ सघबद्ध पक्षी प्रमुदित ह,
कानकउ की रतिकी चिल्लाहटसे कोयलोके शब्दोसे भी ॥२८॥

१०९ यह वृक्ष मुझमें काम प्रज्वलित करते शब्द कर रहे हैं।
भ्रमरकी ध्वनिकी आवाज, अशोकके गुच्छोका अगार ॥२९॥

११० मा हि पल्लवताम्रार्चिवसताग्नि प्रधक्ष्यति।
नहि ता सूक्ष्मपद्माक्षी सुकेशी मृदुभाषिणीम् ॥३०॥
१११ अपश्यतो मे सौमित्रे, जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।
अय हि रुचिरस्तस्या काले रुचिरकानन ॥३१॥
११२ कोकिलाकुलसीमतो दयिताया ममानघ।
मन्मथायाससभूतो वसतगुणर्बाधत ॥३२॥
११३ अय मा धक्ष्यति क्षिप्र शोकाग्निन चिरादिव।
अपश्यतस्ता वनिता पश्यतो रुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥
११४ ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति।
अदृश्यमाना वैदेही शोक बधयतीह मे ॥३४॥
११५ दृश्यमानो वसतश्च स्वेदससगदूषक ।
मा हि सा मृगशावाक्षी चिताशोकबलात्कृतम् ॥३५॥
११६ सतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिल ।
अमी मयूरा शोभते प्रनत्यतस्ततस्तत ॥३६॥
११७ स्वै पक्षै पवनोद्धूतैगवाक्षै स्फाटिकैरिव।
शिखिनीभि परिवृतास्त एते मदमूर्छिता ॥३७॥
११८ मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथबधना ।
पश्य लक्ष्मण, नृत्यत मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥
११९ शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तार गिरिसानुनि।
तामेव मनसा रामा मयूरोऽप्यनुधावति ॥३९॥
१२० वितत्य रुचिरो पक्षौ रुतैरुपहसन्निव।
मयूरस्य वने नून रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥
१२१ तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कातया।
मम त्वय विना वास पुष्पमासे सुदु सह ॥४१॥

११० पल्लवकी लालज्वालावाली वसन्तकी आग, मुझे अवश्य जलायेगी।
उस सूक्ष्म पलकावाली सुकेशी मदुभाषिणीको, ॥३०॥

१११ बिना देखे हे सौमित्रे, जीवनका प्रयोजन नहा है,
उसके (रहते) समय मेरे लिये यह सुन्दर कानन रुचिर था ॥३१॥

११२ हे निष्पाप मेरी प्रियाका कोकिलाओके सीमन्त
कामदवके प्रयाससे उत्पन्न वसन्तके गुणोसे वर्धित ॥३२॥

११३ यह शोकाग्नि तुरत बिना देर किये ही मुझे जलायेगी।
उस वनिताको बिना देखे सुन्दर वक्षोको देखते ॥३३॥

११४ यह कामदेव मुझ अधिकताको प्राप्त होगा।
न दीखती वैदेही मेरे शोकको अब बढायेगी ॥३४॥

११५ और स्वेदके ससगसे दूषित करनेवाला दीखता वसन्त,
वह मृग छौनोसी आखोवाली

११६ चैतका क्रूर वन-पवन हे सौमित्र, चिन्ता शोकके शिकार मुझे सतप्त कर रहा है
जहा-तहाँ नाचते यह मोर शोभा दे रहे है ॥३५, ३६॥

११७ स्फटिकके गौखोकेसे पवनसे कपते अपने पखो द्वारा,
मयूरियोसे घिरे यह (मयूर) मदमे मूर्छित है ॥३७॥

११८ मनमथसे आविष्ट मेरे मन्मथको बढानेवाले,
लक्ष्मण, देखो, पवतके सानुपर नाचते पति मयरके पास ॥३८॥

११९ यह कामात मयूरी नाच रही है।
मयूर भी उसी सुन्दरीके पीछे-पीछे दौड रहा है ॥३९॥

१२० रुचिर पखोको फैलाकर शब्दोसे उपहाससे करते
मयूरके वनमे निश्चय राक्षसने प्रियाको नही हरा ॥४०॥

१२१ अतएव रमणीय वनोमें कान्ताके साथ यह नाच रहा है।
फूलोके महीनेमें उस (प्रिया) के बिना मेरा यह निवास अति-दुस्सह है ॥४१॥

१२२ पश्य लक्ष्मण, सरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि।
अधुना शिखिनी कामाद् भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥
१२३ ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसम्भ्रमा।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥
१२४ पश्य लक्ष्मण, पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे।
पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥
१२५ रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया।
निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥
१२६ नदन्ति कामं शकुना मुदिताः संघशः कलम्।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥
१२७ वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया।
नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥४७॥
१२८ नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥
१२९ अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया।
किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः ॥४९॥
१३० श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्" ॥५०॥
—किष्किन्धाकाण्डे सर्ग १

५ वर्षा—

१३१ स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च।
वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१॥

१२२ लक्ष्मण, हैवानोमे भी राग देखो।
अब मयूरी कामवश पतिका पीछा कर रही है ॥४२॥

१२३ विशालाक्षी मेरी जानकी भी जल्दी-जल्दी
मदन परवशा होती, यदि हरी न जाती ॥४३॥

१२४ लक्ष्मण, देखो मेरे लिये फूल निष्फल है।
शिशिरके अन्तमे पुष्पभारसे समृद्ध वनोके ॥४४॥

१२५ वक्षोके अतिशोभासे रुचिर पुष्प भी
मधुकराके समूह के साथ निष्फल हो पथिवीपर गिर जाते हैं ॥४५॥

१२६ मुदित पक्षी सघबद्ध हो भले ही मधुर नाद करे।
एक दूसरेको पुकारते मेरे लिये तो वह काम-उन्माद करनेवाले है ॥४६॥

१२७ यदि वसन्त वहा भी है, जहा मेरी प्रिया बसती है, तो
निश्चय परवशा वह सीता भी मेरी तरह शोकात होगी ॥४७॥

१२८ निश्चय जहा वह है उस स्थानको वसन्त नही छता।
पद्मो जसी काली आखोवाली वह मेरे बिना कैसे रहती होगी ॥४८॥

१२९ अथवा जहा मेरी प्रिया है, वहा वसन्त वतमान है।
पर दूसरोसे त्रासित वह सुजघी क्या करे ॥४९॥

१३० श्यामा पद्मपत्राक्षी और मदुभाषिणी मेरी प्रिया,
निश्चय वसन्तको प्राप्त कर वह जीवन छोड देगी" ॥५०॥

—किष्किधाकाण्ड सग १

५ वर्षा—

१३१ तब बालीको मारकर और सुग्रीवका अभिषेक कर,
माल्यवान् पवतकी पीठपर बसते उन (राम)ने लक्ष्मणसे कहा ॥१॥

१३२ "अय स काल सम्प्राप्त समयोऽद्य जलागम ।
सपश्य त्व नभो मेघै सवृत गिरिसनिभै ॥२॥
१३३ नवमासधृत गभ भास्करस्य गभस्तिभि ।
पीत्वा रस समुद्राणा द्यौ प्रसूते रसायनम् ॥३॥
१३४ शक्यमवरमारुह्य मेघसोपानपक्तिभि ।
कुटजार्जुनमालाभिरलकतु दिवाकर ॥४॥
१३५ सध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरंतेष्वपि च पाडुभि ।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैबद्धव्रणमिवावरम् ॥५॥
१३६ मदमारुतनि श्वास सध्याचदनरजितम् ।
आ पाडुजलद भाति कामातुरमिवाबरम् ॥६॥
१३७ एषा घमपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसतप्ता मही वाष्प विमुचति ॥७॥
१३८ मेघोदरविनिर्मुक्ता कर्पूरदलशीतला ।
शक्यमजलिभि पातु वाता केतकगधिन ॥८॥
१३९ एष फुल्लार्जुन शैल केतकैरभिवासित ।
सुग्रीव इव शातारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥९॥
१४० मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिन ।
मारुतापूरितगुहा प्राधीता इव पवता ॥१०॥
१४१ कशाभिरिय हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।
अतस्तनितनिर्घोष सवेदनमिवाबरम् ॥११॥
१४२ नालमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरती प्रतिभाति मे ।
स्फुरती रावणस्याके वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥
१४३ इमास्ता मन्मथवता हिता प्रतिहता दिश ।
अनुलिप्ता इव घनैनष्टग्रहनिशाकरा ॥१३॥

१३२ "यह वह काल आ गया, आज वर्षाका समय है।
देखो गिरि सदृश मेघोसे आकाश ढका है ॥२॥
१३३ समुद्रोके रसको पीकर भास्करकी किरणो द्वारा,
नौ मास गर्भमे धारण किये द्यौलोक रसायन प्रसव कर रहा
है ॥३॥
१३४ अम्बरपर चढकर मेघरूपी सीढीकी पंक्तिया द्वारा,
कुटज और अर्जुनकी मालाओसे दिवाकरका अलकृत करने
को ॥४॥
१३५ और इनमे भी सन्ध्या रागसे उठे लाल और पाण्डुर,
चिकने मेघपटोके टुकडोसे घाव-बधा अम्बर ॥५॥
१३६ मन्द वायुके नि श्वास द्वारा सन्ध्या रूपी चन्दनसे रगा,
थोडा पाण्डु मेघवाला अम्बर कामातुर सा मालूम होता है ॥६॥
१३७ घामसे क्लेशित नये जलसे लथपथ,
शोक-सतप्त सीता सी यह पृथिवी आसू बहा रही है ॥७॥
१३८ मेघके उदरसे निकले, कपूरके दलसे शीतल,
केवडेके गन्धवाले वायु अजलियोसे पिये जा सकते है ॥८॥
१३९ फले अर्जुनवाला केवडोसे वासित यह शैल,
शमित-शत्रुवाले सुग्रीवसे धाराओ द्वारा अभिषिक्त हो रहे है ॥९॥
१४० मेघरूपी काले मृगचर्मको धारण करनेवाले, धारारूपी यज्ञोपवीत
वाले मारुतसे भरी गुहाओवाले यह पर्वत मानो अध्ययन कर
रहे हैं ॥१०॥
१४१ सुनहले चाबुको जैसी बिजलियो द्वारा ताडित,
भीतर कडकके घोषवाला पीडित सा है अम्बर ॥११॥
१४२ नील मेघमें आश्रित कौंदती बिजली रावणकी गोदमे,
बेचारी वैदेही सी काँपती मुझे जान पडती है ॥१२॥
१४३ यह काम पीडितोकी हत-प्रतिहत दिशायें,
बादलोंसे अनुलिप्त मानो ग्रह-शून्य चन्द्रमावाली हैं ॥१३॥

१४४ क्वचिद्बाष्पाभिसरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान्पश्य सौमित्रे, पुष्पितान्गिरिसानुषु ।
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान्स्थितान् ॥१४॥

१४५ रज प्रशात सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसरा प्रशाता ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपाना
प्रवासिनो याति नरा स्वदेशान् ॥१५॥

१४६ सप्रस्थिता मानसवासलुब्धा
प्रियान्विता सप्रति चक्रवाका ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसपतति ॥१६॥

१४७ क्वचित्प्रकाश क्वचिदप्रकाश नभ प्रकीर्णाबुधर
विभाति । क्वचित्क्वचित्पर्वतसनिरुद्ध
रूप यथा शातमहार्णवस्य ॥१७॥

१४८ व्यामिश्रित सर्जकदबपुष्पैर्नव जल पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयात शैलापगा शीघ्रतर वहति ॥१८॥

१४९ रसाकुल षट्पदसनिकाश प्रभुज्यते जबुफल प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूत भूमौ पतत्याम्रफल विपक्वम् ॥१९॥

१५० विद्युत्पताका सबलाकमाला शैलेंद्रकूटाकृतिसनिकाशा ।
गर्जन्ति मेघा समुदीर्णनादा
मत्ता गजेंद्रा इव सयुगस्था ॥२०॥

१५१ वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हि-
णानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि
पश्यापराह्णेष्वधिक विभाति ॥२१॥

१४४ हे सौमित्रे, पत्रतोके सानआपर कही चारो ओर रुद्ध वषाके आनेमे उत्सुक फूले कुटजोको देखो, (जो)। गाक-पीडित मुझे कामोद्दीपन करते खडे है ॥१४॥

१४५ धूलिया दव गइ आज वह वायु शीतल ह, वषाके दोषका फैलाव प्रशान्त है। राजाओकी यात्रा थम गई प्रवासी नर अपने देशोको लौ रहे है ॥१५॥

१४६ अव मानसक निवासके लोभी चक्रवाक प्रियासहित प्रस्थान कर चुके। बराबर बरसते पानीसे टूटे मागा पर यान नही चलते ॥१६॥

१४७ कही सप्रकाश और कही अप्रकाश नभ मेघोसे भरा दीख रहा है। कही-कही वह पवतकी तरह रुका शान्त महासागर के रूप सा है ॥१७॥

१४८ सज-कदवके पुष्पोसे मिश्रित पवतके धातुओसा लाल नवीन जल है, मयूरोकी ध्वनियोसे अनुगमन की जाती पहाडी नदियाँ अधिक तेजीसे बहती है ॥१८॥

१४९ भ्रमर समान वणवाले रससे भरे जामुनके फलको खूब खा रहा है। पवनसे हिला अनेक रगोका पक्व आम्रफल भूमिपर गिर रहा है ॥१९

१५० विद्युतकी पताका बगुलोकी माला सहित महापवतके शिखरके आकारसे, ऊचे गरजते मस्त गजेन्द्रोसे युद्ध करते से मेघ गरज रहे ह ॥२०॥

१५१ वर्षाके जलसे तप्त तृणोवाले, नत्त्योत्सवमे लगे मोरोवाले, नवरसे मेघवाले वनोको देखो, यह अपराह्णमें अधिक शोभा दे रहा है ॥२१॥

१५२ बगुले वाले मेघ सलिलके भारी भारको ढोते, नाद करते, पवतोके बडे-बडे शिखरोपर विश्राम कर-करके फिर प्रयाण कर रहे है ॥२२॥

१५२ समुद्वहत सलिलातिभार बलाकिनो वारिधरा नदत ।
महत्सु शृगेषु महीधराणा
विश्रम्य विश्रम्य पुन प्रयाति ॥२२॥
१५३ मेघाभिकामा परिसपतती
समोदिता भाति बलाकपक्ति ।
वातावधूता वरपौडरीकी
लबेव माला रुचिराबरस्य ॥२३॥
१५४ बालेद्रगोपातरचित्रितेन विभाति भूमिनवशाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकबलेन ॥२४॥
१५५ निद्रा शनै केशवमभ्युपति द्रुत नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका धनमभ्युपैति
काता सकामा प्रियमभ्युपति ॥२५॥
१५६ जाता वनाता शिखिसुप्रनृत्ता
जाता कदबा सकदबशाखा
जाता वषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवना भिरामा ॥२६॥
१५७ वहति वष ति नदति भाति
ध्यायति नृत्यति समाश्वसति ॥
नद्या घना मत्तगजा वनाता
प्रियाविहीना शिखिन प्लवगमा ॥२७॥
१५८ प्रहर्षिता केतकिपुष्पगधमाघ्राय मत्ता वननिझरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेद्रा
साध मयूरै समदा नदति ॥२८॥
१५९ धारानिपातैरभिहन्यमाना कदबशाखासु विलबमाना ।
क्षणार्जित पुष्परसावगाढ शनैमद षट्चरणास्त्यजति ॥२९

१५३ मेघकी कामनावाली सम्मोदित बगलोकी पाती चारो ओरसे इकटठा हो शोभा देती हैं। मानो हवासे कम्पित श्रेष्ठ श्वेतकमलो की लटकती रुचिर अम्बरकी माला है ॥२३॥

१५४ शिशु वीरबहूटी द्वारा भीतर चित्रित नये तणोमे युक्त भूमि, मानो गात्रके लगे तोतेके रगवाले लाखसे रगे दुशाले युक्त नारी है ॥२४॥

१५५ विष्णके पास धीरे धीरे निद्रा आ रही है, नदी शीघ्र सागरके पास जा रही है। हर्षित बगले मेघके पास जा रहे ह, सतुष्ट कान्ता प्रियाके पास जा रही हैं ॥२५॥

१५६ वन, मयूरोके सुन्दर नत्यवाले हो गये, कदब शाखा-मुक्त हो गये। वृषभ गौओमे एक सी कामनावाले है, सस्यवाले वनोसे पृथिवी अभिराम हो गई है ॥२६॥

१५७ नदियाँ मेघ, मस्त गज, बनावली, प्रियावियुक्त मोर और बानर बहती, बरसते ह, नाद करते है, प्रकाशित होते है, ध्यान करते है, नाचते है, समाश्वास पाते है ॥२७॥

१५८ वनोके निझरोमें केतकीके फूलके ग धको सूघकर मतवाले प्रहर्षित, जल प्रपातके शब्दोसे व्याकुल गजे द्र मोरोके साथ नशेमें हो नाद कर रहे है ॥२८॥

१५९ धाराके गिरनेसे ताडित कदम्बकी शाखाओमें लटकते भ्रमर क्षणभरके लिये पुष्परससे गाढे मदको धीरे-धीरे छोड रहे हैं ॥२९॥

१६० अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।
जंबूद्रुमाणां प्रविभाति शाखा
निपीयमाना इव षट् पदौघैः ॥३०॥

१६१ तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगंभीरमहारवाणाम् ।
विभाति रूपाणि बलाहकानां
रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥३१॥

१६२ मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशंकी
मत्तो गजेंद्रः प्रति संनिवृत्तः ॥३२॥

१६३ क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकंठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेंद्रैः
विभात्यनेकाश्रयिणो वनांताः ॥३३॥

१६४ कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्या वनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तै
रापानभूमिप्रतिभा विभाति ॥३४॥

१६५ मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः
सुरेंद्रदत्तं तृषिता पिबंति ॥३५॥

१६६ षट्पादतंत्रीमधुराभिधानं
प्लवंगमोदीरितकंठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदंगनादै
वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३६॥

१६७ क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः
क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः ।
व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३७॥

१६० अगारके चूणके समूह जसे वहुत रसीले फलोसे समद्ध
भ्रमरा द्वारा पी जाती सी जामुनकी शाखाये सोह रही हैं॥३०॥

१६१ विद्युत्की पताकाओसे अलकृत, उठे गम्भीर महाशब्द सहित,
मेघाके रूप रणोत्सुक वानरोके रूप से दीख रहे हैं॥३१॥

१६२ माग-अनुगामी पवतीय वनका अनुसरण करनेवाला चल पडा
मेघके शब्दोको सुनकर युद्ध इच्छुक विरोधी नादकी शका युक्त
मस्त गजेन्द्र लौटा॥३२॥

१६३ कही भ्रमर समूहोमे गाती हुई, कही नीलकण्ठोसे नाचती हुई,
कही गजेन्द्रोसे मस्त सी अनेक आकारवाली बनावलिया दीख
रही है॥३३॥

१६४ कदम्ब-सज-अजुन-कन्दलसे घनी मधुर जलसे पूण वनान्त भूमि,
मोरोके मत्त गीत नत्योसे मदिरालय समान प्रतीत होती हैं॥३४॥

१६५ मुक्तासे चमकते सुनिमल सलिलको गिराते पत्रपुटोमें लगे,
इन्द्रके दिये जलको हर्षित हो खुले पखोवाले तषित पक्षी पी
रहे हैं॥३५॥

१६६ भ्रमरोकी वीणाके मधुर आलापवाला, वानरोके कथनरूपी कठ-
तालवाला, मेघरूपी मृदगोके नादोसे वनोमें सगीत सा होता प्रकट
हो रहा है॥३६॥

१६७ कही नृत्योसे, कही उन्माद करनेसे और कही वृक्षो के छोरपर
समूहसे बैठे लटकते पिच्छरूपी आभरणोवाले मोरोसे वनोमें सगीत
सा हो रहा है॥३७॥

१६८ स्वनैघनाना प्लवगा प्रबुद्धा
विहाय निद्रा चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा
नवाम्बुधाराभिहता नदति ॥३८॥

१६९ नद्य समुद्वाहितचक्रवाकास्,
तटानि शीर्णान्यि पवाहयित्वा ।
दृप्ता नवप्रावतपूर्णभोगा
द्रुत स्वभर्तारमु पोपयति ॥३९॥

१७० नीलेषु नीला नववारिपूर्णा
मेघेषु मेघा प्रतिभाति सक्ता ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धा
शैलेषु शैला इव बद्धमूला ॥४०॥

१७१ प्रमत्तसन्नादतिबर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरति नीपार्जुनवासितानि
गजा सुरम्याणि वनातराणि ॥४१॥

१७२ नवाबुधाराहतकेसराणि ध्रुव परिष्वज्य सरोरुहाणि ।
कदबपुष्पाणि सकेसराणि
नवानि हृष्टा भ्रमरा पिबति ॥४२॥

१७३ मत्ता गजेद्रा मुदिता गवेद्रा वनेषु विक्रातितरा मृगेन्द्रा ।
रम्या नगेद्रा विभृता नरेद्रा
प्रक्रीडिता वारिधरै सुरेद्र ॥४३॥

१७४ मेघा समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैगगनावलबा ।
नदीस्तटाकानि सरासि वापी
मही च कृत्स्नाम पवाहयति ॥४४॥

१७५ वर्षप्रवेगा विपुला पतति प्रवान्ति वाता समुदीर्णवेगा ।
प्रणष्टकूला प्रवहति शीघ्र
नद्यो जलैर्विप्रतिपन्न मार्गा ॥४५॥

१६८ मेघोके शब्दोंसे देरसे रोकी निद्राको छोडकर बानर जगे,
अनेक रूप, आकार, वण तथा नादवाले (वह) नयी जलधारासे
प्रताडित हो नाद कर रहे है ॥३८॥

१६९ चक्रवाकाको बहाती नदिया गिरे तटोको बहा ले जाती
नये वस्त्र तथा पूण भोगसे आदृत (पत्नी सी) अपने पतिके पास
जा रही हैं ॥३९॥

१७० नये जलसे भरे नीले मेघोमे ससक्त मेघ नीले से दीखते है।
वनाग्नि से जले पवतोमे वनाग्निसे दग्ध पवत जैसे जड बाधे
(खड) है ॥४०॥

१७१ मस्त उठाये पिच्छवाले मोर वीरबहुटीके समहसे युक्त, तणवाले,
नीम-अजुनसे सुवासित रमणीय वनोमे गज विचर रहे है ॥४१॥

१७२ ये भ्रमर हर्षित होकर नई जलधारासे ताडित केसरवाले कमलो
को आलिगन कर केसर-सहित कदम्बके नये पुष्पोको पी रहे
हैं ॥४२॥

१७३ मस्त गजेन्द्र, मुदित वषभ, वनमें अतिपराक्रमी सिंह,
रमणीय पवतराज, भरण किये नरेन्द्र, मेघोंसे खेलाये जाते सुरेन्द्र
(से है) ॥४३॥

१७४ उठते समुद्रसे नादवाले, महाजलसमूहोसे आकाश अवलम्बन
करत मेघ नदियोको तालाबोको, सरोको, बापियोको और सारी
पथिवीको बहाये लिये जा रहे है ॥४४॥

१७५ वर्षाका वेग विपुल हो गिर रहा है, वायु बडे वेगसे चल रहे हैं,
जलसे मागको तोडफोडकर नदियाँ तेजी से बह रही है ॥४५॥

१७६ नरैनरेंद्रा इव पवनेंद्रा सुरेंद्रनीतैं पवनोपनीतैं ।
घनाबुकुभैरभिषिच्यमाना
रूपश्रिय स्वामिव दशयति ।।४६।।

१७७ घनोपगुढ गगन न तारा न भास्करो दशनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैधरणी वितप्ता
तमोविलिप्ता न दिग प्रकाशा ।।४७।।

१७८ महाति कटानि महीधराणा
धाराविधौतायधिक विभाति ।
महाप्रमाणैर्विपुलै प्रपातै
र्मुक्ताकलापैरिव लबमानै ।।४८।।

१७९ शैलोपलप्रस्खलमानवेगा शलोत्तमाना विपुला प्रपाता ।
गुहासु सन्नादितबर्हिणासु
हारा विकीर्यन्ति इवाव-भाति ।।४९।।

१८० शीघ्रप्रवेगा विपुला प्रपाता निर्धौतश्रृगोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमा पततो महागुहोत्सगतलैधयते ।।५०।।
—किष्कि धाकाडे सग २८

६ मन्दोदरीविलाप —

१८१ दशग्रीव हृत दृष्ट्वा रामेणाचित्यकमणा ।
पति मदोदरी तत्र कृपणा पयदेवयत् ।।२।।

१८२ "ननु नाम महाबाहो, तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातु त्रस्यत्यपि पुरदर ।।३।।

१८३ ऋषयश्च महातोऽपि गधर्वाश्च यशस्विन ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गता ।।४।।

१८४ स त्व मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जित ।
न व्यपत्रपसे राजन्, किमिद राक्षसेश्वर ।।५।।

१७६ नरासे नरेन्द्रकी तरह इन्द्र द्वारा लाये पवन से पास लाये पर्वत-राज मेघके जलघटोंसे अभिषिक्त होते अपनी रूपशोभा दिखला रहे ह ॥४६॥

१७७ घनसे आकाश ढका हुआ है न तारा, न सूय दिखलाई देते हैं। नये जलसमूहसे धरणी तप्त है अन्धकारसे लिप्त दिशायें प्रकाशित नही ह ॥४७॥

१७८ धारासे धुले पवतोके बडे-बडे शिखर बहुत शोभा दे रहे ह। (वह) भारी आकारके विपुल जलपातोसे लटकते हुये मुक्तासमूहो जैसे दीखते हैं ॥४८॥

१७९ पत्थरोसे गिरनेके वेगवाले उच्च शैलोके विपुल प्रपात सुन्दर नाद करनेवाले मयूरोवाली गुहाओमें बिखरते हारसे प्रतीत होते हैं ॥४९॥

१८० शीघ्र वेगवाले विपुल जलप्रपात धुले पवतोके शिखर-तल, से मुक्ता-समूह से गिरते महागुहाओकी गोदोमें धारित होते है ॥५०॥

—किष्किन्धाकाण्ड सग २८

६ मन्दोदरी-विलाप—

१८१ अचिंतनीय कमवाले राम द्वारा (अपने) पति दशग्रीव को निहत देख कर, अभागिनी मदोदरी वहा विलाप करने लगी ॥२॥—

१८२ "हे महाबाहु, कुबेरके छोटे भाई, क्या क्रुद्ध होने पर,
तुम्हारे सामने इन्द्र भी खडा होनेमे डरता नही था ॥३॥

१८३ बडे ऋषि और यशस्वी गन्धव और
सिद्ध भी क्या तुम्हारे उद्वेगसे दिशाओमें नही भागे ॥४॥

१८४ सो तुम केवल मानुष रामसे युद्धमे हार गये।
हे राजन, राक्षसेश्वर, क्या इसके लिये तुम लज्जित नही होते ॥५॥

१८५ कथ त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्।
अविषह्य जघान त्वा मानुषो वनगोचर ॥६॥

१८६ मानुषाणामविषये चरत कामरूपिण ।
विनाशस्तव रामेण सयुगे नोपपद्यते ॥७॥

१८७ न चतत्कम रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे।
सवत समुपेतस्य तव तेनाभिमषणम् ॥८॥

१८८ अथवा रामरूपेण कृतात स्वयमागत ।
माया तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥९॥

१८९ अथवा वासवेन त्व धर्षितोऽसि महाबल।
वासवस्य तु का शक्तिस्त्वा द्रष्टुमपि सयुगे ॥१०॥

१९० यदैव नगरी लका दुष्प्रवेशा सुरैरपि ॥१७॥
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम्।
क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥१८॥

१९१ उच्यमान न गह्णासि तेस्येय व्युष्टिरागता ।
अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीता राक्षसपुगव ॥१९॥

१९२ ऐश्वयस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च।
अरुधत्या विशिष्टा ता रोहिण्याश्चापि दुमते ॥२०॥

१९३ सीता धर्षयता मान्या त्वया ह्यसदृश कृतम् ।
वसुधाया हि वसुधा श्रिया श्री भर्तृवत्सलाम् ॥२१॥

१९४ सीता सर्वानवद्यागीमरण्ये विजने शुभाम्।
आनयित्वा तु ता दीना छद्मनात्मस्वदूषणम् ॥२२॥

१९५ अप्राप्य त चैव काम मैथिलीसगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नून दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२३॥

१८५ त्रैलोक्यको आक्रान्त कर लक्ष्मी और बलके धनी
दुदम्य तुम्हे (इस) वन मानुषने मारा ॥६॥

१८६ मानुषोके अप्राप्य स्थानमें स्वेच्छापूवक विचरण करनेवाले
युद्धमे राम द्वारा तुम्हारा विनाश उचित नही ॥७॥

१८७ सेनाके सामने मै (कहती हू —) यह रामका काम है, इसपर मै
विश्वास नही करती (कि) सब तरहसे सपन्न तुम्हारा उनके
द्वारा दमन (हुआ) ॥८॥

१८८ अथवा रामके रूपमे स्वय मत्यु ही तुम्हारे विनाशके
लिये अतर्कित मायाको धारण कर आई ॥९॥

१८९ अथवा हे महाबल, इद्रने तुम्हे दबाया
लेकिन युद्धमें तुम्हारी ओर देखनेकी भी इद्रमे कहा शक्ति है॥१०॥

१९० सुरो द्वारा भी दुष्प्रवेशा लकानगरीमे जभी ॥१७॥
अपने पराक्रमसे हनूमान प्रविष्ट हुआ, तभी हम डर गये।
'राघवके साथ विरोध न करो मेरे इस ॥१८॥

१९१ कथनको नही माना, इसीका यह परिणाम हुआ।
और हे राक्षस-पुगव अकस्मात तुमने सीताकी कामना की ॥१९॥

१९२ यह तो ऐश्वय देह और स्वजनके विनाशके लिये हुआ।
अरुधती और रोहिणीसे भी बढकर उस ॥२०॥

१९३ माननीया सीताको बेइज्जत करते हे दुमति, तुमने अनुचित किया।
वसुधाकी वसुधा, श्रीकी भी श्री पतिभक्ता ॥२१॥

१९४ सारे निर्दोष अगोवाली शुभा दीना सीताको विजन वनमे।
धोखेसे लाकर (तुमने) अपनेको दूषित किया ॥२२॥

१९५ अपनेको दूषित करनेवाली उस कामनाको मैथिलीके समागम से अपना
कर मेरे प्रभु, तुम जरूर पतिव्रताकी तपस्यासे दग्ध हुए ॥२३॥

१९६ तदैव यन्न दग्धस्त्व धषयस्तनुमध्यमाम् ।
देवा विभ्यति ते सव सेद्रा साग्निपुरोगमा ॥२४॥
१९७ अवश्यमेव लभते फल पापस्य कमण ।
भतु पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र सशय ॥२५॥
१९८ शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ।
विभीषण सुख प्राप्तस्त्व प्राप्त पापमीदशम् ॥२६॥
१९९ सत्यन्या प्रमदास्तुभ्य रूपेणाभ्यधिकास्तत ।
अनगवशमापन्नस्त्व तु मोहान्न बुध्यसे ॥२७॥
२०० सवदा सवभूताना नास्ति मृत्युरलक्षण ।
तव तद्वदय मत्युर्मैथिलीकृतलक्षण ॥२९॥
२०१ सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृत ।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥३०॥
२०२ अल्पपुण्या त्वह घोरे पतिता शोकसागरे ।
कैलासे मदरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥३१॥
२०३ दवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ।
विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ॥३२॥
२०४ पश्यती विविधा देशास्तास्ताश्चित्रस्रगबरा ।
भ्रशिता कामभोगेभ्य सास्मि वीर, वधात्तव ॥३३॥
२०५ सैवान्येवास्मि सवृत्ता धिग्राज्ञा चचला श्रियम् ।
हा राजन, सुकुमार ते सुभ्रसुत्वक्समुन्नसम् ॥३४॥
२०६ कातिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरै ।
किरीटकूटोज्ज्वलित ताम्रास्य दीप्तकुडलम् ॥३५॥
२०७ मदव्याकुललोलाक्ष भूत्वा यत्पानभूमिषु ।
विविधस्रग्धर चारु वल्गुस्मितकथ शुभम् ॥३६॥

१९६ उसी समय पतली कमरवाली (सीता) को बेइज्जत करके तुम जा नहीं दग्ध हुये सो इसीलिए कि इन्द्र और अग्नि-सहित सारे देवता तुमसे डरते थे ॥२४॥

१९७ हे स्वामी पाप कर्मका फल समय आनेपर कर्ताको अवश्य ही मिलता है इसमे संशय नही ॥२५॥

१९८ शुभ करनेवाला शुभको पाता है, पाप करनेवाला पापको पाता है। विभीषणने सुख पाया और तुमने पाप पाया ॥२६॥

१९९ रूपमे अधिक (सुदरी) दूसरी स्त्रिया तुम्हारे लिये थी। किंतु कामदेवके वशमे पडे तुमने मोहके मारे नही समझा ॥२७॥

२०० सारे जीवोके लिए मृत्यु कभी बिना कारण नही आती। उसी तरह तुम्हारे लिये यह मृत्यु मैथिलीके कारण हुई ॥२९॥

२०१ सीताके कारण उत्पन्न मृत्युको तुम दूरसे लाये। अब वह मैथिली रामके साथ निर्द्वंद्व विहार करेगी ॥३०॥

२०२ मै पुण्यहीना तो घोर शोकसागरमें गिरी। कैलासपर मन्दरपर और चैत्ररथ वनमें ॥३१॥

२०३ देवताओके सारे उद्यानोमे तुम्हारे साथ विहार करने के लिय, जो म अतुलश्रीके साथ अनुकूल विमान द्वारा जाती थी ॥३२॥

२०४ विचित्र माला और वस्त्र धारे उन उन विविध देशोको देखती थी। हे वीर, सो म तुम्हारे वधके कारण काम-भोगोसे वचित हो गई॥३३॥

२०५ वही मै अब दूसरी हो गई। चचला राजलक्ष्मीको धिक्कार। हा राजन्, तुम्हारा शरीर सुकुमार, भौं चम-नासिका से सुदर था॥३४॥

२०६ कान्ति-शोभा-द्युतिमें चन्द्र-पद्म-सूर्यके तुल्य किरीट मुकुटके शिखरसे उज्ज्वल अरुण मुख, मुक्त कुडल सहित ॥३५॥

२०७ जो पानगोष्ठियोमें मदसे आकुल चचल आखोयुक्त, विविध मालाओको धारण करनेवाला चारु मधुर मुस्कान कथनयुक्त शुभ था ॥३६॥

२०८ तदेवाद्य तवैव हि वक्त्र न भ्राजते प्रभो।
रामसायकनिर्भिन्न रक्त रुधिरविस्रवै ॥३७॥
२०९ विशीणमेदोमस्तिष्क रुक्ष स्पदनरेणुभि ।
हा पश्चिमा मे मप्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी ॥३८॥
२१० या मयासीन्न सबुद्धा कदाचिदपि मदया।
पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वर ॥३९॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यह गर्विता भशम्।

—युद्धकाडे सग ११

२०८ हे प्रभु, वही तुम्हारा मुख आज नही चमक रहा है।
रामके वाणोमे क्षत विक्षत खूनके बहनेसे लाल ॥३७॥
२०९ चर्बी निकली मस्तिष्कवाला हो, रथकी धूलियासे रूखा है।
हा, वैधव्य देनेवाली मेरी अतिम दशा प्राप्त हो गई ॥३८॥
२१० जिसे मैं मन्दमतिने कभी नही सोचा था।
मेरा पिता दानवोका राजा, मेरा पति राक्षसोका ईश्वर ॥३९॥
मेरा पुत्र इन्द्रका जीतनेवाला, यह सोचकर मैं बहुत गव करती थी।
—युद्धकाड सग ११

भाग ३

प्राकृत-काल

(१–५५० ई०)

प्राय छ शताब्दियोंके धीरे-धीरे परिवतनके बाद ईसवी-सन के आरम्भ के साथ हमारी भाषायें एक नया रूप लेती ह, जिसे हम प्राकृत कहते ह। पालियो और पीछे अपभ्रशोका अनेक भाषाओ का सामूहिक नाम होना सभी नहीं स्वीकार करते, किन्तु प्राकृतके बारेमें यह बात नही ह। आधे दजन प्राकृतोका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रथकारोने भी किया ह, और वह उनसे भी अधिक रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। ग्रथकारोने सिफ उ हीं प्राकृतोका उल्लेख किया या उनके व्याकरण बनाये, जिनका साहित्य लिपिबद्ध हो गया था। यद्यपि शुग कालमें वदिक-युगके पुन लौटानेकी कोशिश की गई थी, जिसका सुफल "महाभारत" और "रामायण" ह, कि तु लोक भाषायें उपेक्षित नहीं की गई थीं। गुप्त कालके आनेसे पहले तक प्राकृतका अभिलेखोंमें उपयोग यही बतलाता ह, कि राजकाजमें प्राकृतोका काफी स्थान था। ब्राह्मण-भिन्नधम तो उसे अपनी धार्मिक भाषा भी मानते थे। इसी कारण जन आगम प्राकृतमें सुरक्षित हुये। कुछ बौद्ध निकाय (सम्प्रदाय) भी अपने पिटकोको प्राकृतमें पढते थे। दुर्भाग्य से उनका कोई अवशेष नहीं मिलता, कि तु चीनी पयटकोने उल्लेख किया ह।

प्राकृत-काल सस्कृत कविताका सुवण-युग ह। इस सुवण-युग के थोडे ही से प्राकृत छींटे "गाथासप्तशती", "सेतुबध" आदि के रूपमें हमारे ऊपर पडे। इस युगकी सस्कृत कविताका आरम्भ अश्वघोषसे, चरम उत्कष कालिदाससे और अन्त भारविसे होता ह। आरम्भिक कालके कवि अश्वघोष, भास, आयशूरकी वाणी कितनी ही जगहों पर अनगढ सी मालूम होती ह, लेकिन उसका स्वाभाविक सौंदय अपना अलग आकषण रखता है। इस अनगढपनको कालिदासने दूर किया, साथ ही उसकी स्वाभाविकताको बहुत हद तक कायम रक्खा। प्राकृत-कालके बाद के काव्योको जिस तरह अस्वाभाविक और जटिल होते हम देखते ह, उससे प्रश्न होता है, कि प्राकृत-कालमें वसा क्यो नहीं हुआ? इसका एक कारण लोक भाषा भी थी। प्राकृत अपने उच्चारणमें भारी भेद रखते हुये भी व्याकरणमें

संस्कृत से बहुत नजदीक थी। कोई प्राकृतभाषी यदि संस्कृत के उच्चारणोका बोध रखता, तो उसे संस्कृतके समझने में कोई दिक्कत नही थी। दोनोके सुबन्त तिङन्तके रूप एक तरह से चलते थे। इस कालके कवियोको यह ध्यान रखना था, कि हमारी कविता थोडे से वैयाकरणो या अपनी गोष्ठीवाले लोगो तक ही सीमित न रहे, बल्कि उनकी कदरदानी करनेवाले समाजके अधिकसे अधिक लोग हो। इसके लिये जरूरी था, कि व्याकरण और भाषाके अपरिचित नियमो और अप्रचलित प्रयोगोको लानेकी कोशिश न की जाये। प्राकृत कविता स्वय भी सातावहन कालमें ऊचा स्थान प्राप्त कर चुकी थी, इसलिये संस्कृत के कवि उसकी तरफ नाक भौं नही सिकोड सकते थे। दरबारी और कदर दान भी अभी अपरिचित और अप्रयुक्त शब्दोको देखकर वाह वाह नहीं करते थे, इसलिये भी कवियो पर अकुश था। लेकिन, इस कालके अतमें भारविने इस तरफ कदम बढा दिया था। एक बार कदम बढ जाने पर अकुश रखना मुश्किल था, और इसका अत श्रीहर्षके साथ होना ही था।

इस कालमें नाटक और पद्य काव्य रचे गये। भास और आर्यशूरके समकालीन रुद्रदामा के गिरनारवाले अभिलेखसे पता लगता ह, कि गद्य काव्यकी ओर भी अच्छी प्रवृत्ति हो चुकी थी। आर्यशूरकी कृति तो वस्तुत चम्पूकी तरह गद्य पद्य-मिश्रित है।

१६ अश्वघोष (५० इ० पू०)

पालियोंके बाद ईसवी सनके आरंभके साथ हम प्राकृतकालमें प्रवेश करते हैं। इसी समय हम इतिहासके अनिश्चित कालसे निश्चित कालमें प्रवेश करते हैं। संस्कृत (वैदिक) और पालियोंके बाद प्राकृत, भाषा-साहित्यमें समृद्ध सामग्रीके साथ ही अवतीर्ण नहीं होती, बल्कि इस समय अब लेखनके साधनों—स्याही, ताल पत्र या भोजपत्र— का अधिक इस्तेमाल होने लगा, तथा शताब्दियोंसे कंठस्थ करके लाये गये ग्रंथोंको लिपिबद्ध करनेके साथ नये ग्रंथोंको भी पत्रपर उतारनेका रवाज चल

१ सौन्दरनन्द—

(१) गमन प्रार्थना

१ स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्,
तया समेतः प्रियया प्रियार्हः।
नाचिन्तयद्वैश्रवणं न शक्रं
तत्स्थानहेतोः कुत एव धर्मम् ॥२॥

२ लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति
स्तम्भेन गर्वेण च मानिनीति।
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति
यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्ना ॥३॥

३ सा हासहंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नतपद्मकोशा।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण ॥४॥

४ रूपेण चात्यन्तमनोहरेण रूपानुरूपेण च चेष्टितेन।
मनुष्यलोके हि तदा बभूव
सा सुन्दरी स्त्रीषु नरेषु नन्दः ॥५॥

१६ अश्वघोष (५० ई० पू०)

पडा। इस युगके प्रथम कवि अश्वघोष है। वह दार्शनिक और कवि है। कवितामें भी वह महाकाव्य और नाटकोंके रचयिता है। उनका नाटक "राष्ट्रपाल", "सारिपुत्र प्रकरण" से भी अधिक सम्मानित था, यह "वाद-न्याय" में धर्मकीर्ति (६०० ई०) के उल्लेखसे ज्ञात है। अश्वघोष बौद्ध-जगतके लिए अतिसुपरिचित है। उनके कालके लिए भी कोई सन्देह नहीं। वह कनिष्कके समकालीन थे, जिनका चलाया शक संवत आज भी प्रचलित है। उनके "सौंदरनन्द" और "बुद्धचरित" से यहां कितने ही अंश दिये गए है।

१ सौन्दरनन्द—

(१) पत्नीसे अनुमति माँगना

१ चक्रवाकी सहित चक्रवाकी तरह उस प्रियासे युक्त प्रियतमाके योग्य नन्द न वैश्रवणको न इन्द्रको (न) उनके स्थानकी (प्राप्ति के) लिये सोचता, धर्मकी तो (बात ही) क्या ? ॥२॥

२ श्री और रूपके कारण सुंदरी, हठ और गर्वके कारण मानिनी। तेज और मानके कारण भामिनी, इस प्रकार तीन नामोंसे वह (नंदा) पुकारी जाती थी ॥३॥

३ वह हासमें हसिनी, नयनमें भ्रमरी, स्थूल स्तनों से उन्नत पद्मकोश-वाली, वह नारी रूपी पद्मिनी अपने कुलमें उगे नंदरूपी दिवाकरके साथ और अधिक भासित होती थी ॥४॥

४ तब अत्यंत मनोहर रूपके अनुसार चेष्टाके कारण, मनुष्य लोककी स्त्रियोंमें वह सुंदरी थी, नरोंमें नंद सुन्दर था ॥५॥

५ सा देवता नन्दनचारिणीव कुलस्य नन्दीजननश्च नन्द ।
अतीत्य मर्त्याननुपेत्य देवान्
सष्टावभूतामिव भूत-धात्रा ॥६॥
६ ता सुन्दरी चेन्न लभेत नन्द सा वा निषेवेत न त नतभ्रू ।
द्वन्द्व ध्रुव तद्विकल न शोभे
उतान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥७॥
७ कन्दपरत्योरिव ¬क्ष्यभूत प्रमोदनान्द्योरिव नीडभूतम् ।
प्रहषतुष्ट्योरिव पात्रभत
द्वन्द्व सहारस्त मदान्धभतम् ॥८॥
८ परस्परोद्वीक्षणतत्पराक्ष परस्परव्याहृतसक्तचित्तम् ।
परस्पराश्लेषहृतागराग परस्पर तन्मिथुन जहार ॥९॥
९ भावानुरक्तौ गिरिनिझरस्थौ
तौ किनरीकिपुरुषाविवोभौ ।
चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च
रूपश्रिन्योन्यायमिवाक्षिपन्तौ ॥१०॥
१० अन्योन्यसरागविवधनेन तद्द्वन्द्वमन्योन्यमरीरमच्च ।
क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन
सलीलमन्योन्यममीमदच्च ॥११॥
११ विभूषयामास तत प्रिया स
सिषेविषुस्ता न मृजावहथम् ।
स्वेनैव रूपेण विभूषिता हि
विभूषणानामपि भूषण सा ॥१२॥
१२ दत्वाथ सा दपणमस्य हस्ते "ममाग्रतो धारय तावदेनम् ।
विशेषक यावदह करोमी"
त्युवाच कान्त स च त बभार ॥१३॥

५ वह नदनवनमे विचरनेवाली देवता थी और आनदजनक कुलमें नद भूतोंके धाताने मनुष्योको अतिक्रमण कर देवताओको न प्राप्त कर दोनोको बनाया था ॥६॥

६ उस सुदरीका अगर नद न पाता, या वह तिरछी भौहोवाली उसे न सेवती, तो निश्चय एक दूसरेसे विहीन रात्रि और चद्रमाकी तरह दोनो विकल हो न शोभते ॥७॥

७ कामदेव और रतिकी तरह लभ्य हो प्रमोद और नादीसे नीड रूपी, हर्ष और तुष्टिके मानो पात्र, मदाध होकर दोनो साथ रमण करते ॥८॥

८ एक दूसरेके देखनेमे लगी आखोवाली, एक दूसरेसे बात करनेमे आसक्त चित्तवाली, एक दूसरेके आलिगनसे मिटे अगरागवाली, वह जोडी एक दूसरेको खीचती थी ॥९॥

९ पवतके झरने पर अवस्थित किन्नर-किन्नरीकी तरह भावसे अनुरक्त वे दोनो, रुप और श्रीसे एक दूसरेको चुनौती देते क्रीडा करते शोभा देते थे ॥१०॥

१० वह जोडी परस्पर प्रेमको बढाते रमण करती, थकावटमें परस्पर विनोद द्वारा लीलापूवक एक दूसरेको और मस्त करती थी ॥११॥

११ तब उसने सजानेके लिये नही बल्कि सेवा करनेकी इच्छासे उस प्रियाको विभूषित किया (जो) अपने रूपोंसे ही विभूषित वह विभूषणो का भी भूषण थी ॥१२॥

१२ तब इसके हाथमें दपण देकर वह कान्तसे बोली "मेरे सामने इसे पकडो, जब तक मैं तिलक लगा लू" और उसने उसे पकडा ॥१३॥

१३ पत्युस्ततो दर्पणसक्तपाणेर्मुहुर्मुहुर्वक्त्रमवेक्षमाणा।
तमालपत्रार्द्रतले कपोले समापयामास विशेषक तत् ।२०।

१४ तस्या मुखतत्सतमाल्पत्र ताम्राधराष्ठ चिकुरायताक्षम्।
रक्ताधिकाग्र पतितद्विरेफ
सशैवल पद्नमिवाव भासे ।।२१।।

१५ विमानकल्पे स विमानगर्भे ततस्तथा चैव ननन्द नन्द ।
तथागतश्चागतभैक्षकाला
भैक्षाय तस्य प्रविवेश वेश्म ।।२४।।

१६ कृत्वाजलि मूर्धनि पद्मकल्प
तत स कान्ता गमन ययाचे।
"कर्तु गमिष्यामि गुरौ प्रणाम
मामभ्यनुज्ञातुमिहा हसीति" ।।३२।।
—सग ४

(२) नन्द प्रव्रज्या

१७ ततो हृते भतरि गौरवेण प्रीतौ हृतायामरतौ कृतायाम्।
तत्रैव हर्म्योपरि वतमाना न सुन्दरी सैव तदा बभासे ।।१।।

१८ सा भर्तुरभ्यागमनप्रतीक्षा गवाक्षमाक्रम्य पयोधराभ्याम्।
द्वारोन्मुखी हर्म्यतलाल्ललम्बे
मुखेन तियङनतकुण्डलेन ।।२।।

१९ विलम्बहारा चलयोक्त्रका सा
तस्माद्विमानाद्विनता चकाशे।
तप क्षयादप्सरसा वरेव च्युत
विमानात्प्रियमीक्ष माणा ।।३।।

२० सा खेदसस्विन्नललाटकेन नि श्वासनिष्पीतविशेषकेण।
चिन्ताचलाक्षेण मुखेन तस्थौ भर्तारमन्यत्र विशकमाना ।।४।।

१३ नव दपणमे लगे हाथवाले पतिके मुखको बार-बार देखती हुई तमाल-पत्र जैसे गीले तलवाले कपोलपर उसने तिलक लगाया ॥२०॥

१४ उसका वह तमालपत्र सहित लाल ओष्ठ चचल विशाल आखे, अधिक लाल-अग्रभाग गिरते भ्रमरोवाला मुख शैवल-युक्त पद्म सा भासित हुआ ॥२१॥

१५ तब देव विमान समान प्रासादके भीतर उसके साथ नद आनद करने लगा। भिक्षाका काल आने पर (बुद्ध) उसके घरमें प्रविष्ट हुए ॥२४॥

१६ तब पद्म अजलिको सिरपर करके उसने पत्नीसे जानकी प्राथना की मैं गुरुको प्रणाम करनके लिये जाऊगा, मुझे आज्ञा दो" ॥३२॥

—सग ४

(२) नन्दका सन्यास

१७ तब पतिके हर लिये जानेपर गौरवके कारण प्रीतिके हर जाने तथा उदासीन होने पर वही महलके ऊपर विद्यमान वह सुदरी शोभित नही हुई ॥१॥

१८ वह पतिके आगमनकी प्रतीक्षिका हो दोनो स्तनोको जगलेपर रखकर, टेढे लटके कुडलोवाले वदनसे द्वारकी तरफ मुख किये महलपर झुकी ॥२॥

१९ लटकते हारो चचल जूडेवाली झुकी सी वह उस महलपर प्रकाशित हुई मानो श्रेष्ठ रमणी तपके क्षय होनेसे अप्सराओके विमानोंसे गिरे प्रियको देख रही है ॥३॥

२० स्वेदसे भीगे ललाट, स्वाससे मिटे तिलकवाले, चितासे चचल आखो वाले मुखसे वह पतिके अन्यत्र होनेकी शका करती खडी रही ॥४॥

२१ ततश्चिरस्थानपरिश्रमेण स्थितैव पर्यंडकतले पपात।
तिर्यक्च शिश्ये प्रविकीर्णहारा
सपादुकैकाधविलम्ब पादा ॥५॥

२२ अथात्र काचित्प्रमदा सबाष्पा
ता दु खिता द्रष्टुमनी प्समाना।
प्रासादसोपानतलप्रणाद
चकार पद्भ्या सहसा रुदती ॥६॥

२३ तस्याश्च सोपानतलप्रणाद श्रुत्वैव तूण पुनरुत्पपात।
प्रीत्या प्रसक्तैव च सजहृष
प्रियोपयान परिशकमाना ॥७॥

२४ तामगना प्रेक्ष्य च विप्रलब्धा नि श्वस्य भूय शयन प्रपेदे।
विवर्णवक्त्रा न रराज चाशु
विवर्णचन्द्रेव हिमागमे द्यौ ॥९॥

२५ तस्या मुख पद्मसपत्नभूत पाणौ स्थित पल्लवरागताम्रे।
छायामयस्याम्भसि पकजस्य
बभौ नत पद्ममिवो परिष्टात् ॥११॥

२६ सा स्त्रीस्वभावेन विचिन्त्य तत्तद्
दृष्टानुरागेऽभिमुखेऽपि पत्यौ।
धर्माश्रिते तत्त्वमविन्दमाना
सकल्प्य तत्तद्विललाप तत्तत् ॥१२॥

२७ "एष्याम्यनाश्यानविशेषकाया
त्वयीति कृत्वा मयि ता प्रतिज्ञाम्।
कस्मान्नु हेतोर्दयितप्रतिज्ञ
सोऽद्य प्रियो मे वितथ प्रतिज्ञ ॥१३॥

२८ रतिप्रियस्य प्रियवर्तिनो मे प्रियस्य नून हृदय विरक्तम्।
तथापि रागो यदि तस्य ही स्यान्
मच्चित्तरक्षी न स नागत स्यात ॥१५॥

२१ तब देर तक खडे रहने की थकावट से खडी खडी पलगके ऊपर गिर पडी। (और) बिखरे हारोवाली जूतियो सहित पैरका आधा लटकाये तिरछी लेट गई ॥५॥

२२ तब यहा आसू बहाती उस दु खिताको देखनेकी न इच्छा करती किसी स्त्रीने राते हुय एकाएक पैरोसे महलकी सीढियोके ऊपर आवाज की ॥६॥

२३ और उसके सीढीके ऊपर की आहट सुनते हा वह जल्दी फिर उठ गई, प्रियके आनेकी शका करती, खुशीमे विभोर-सी वह हर्षित हुई ॥७॥

२४ उस स्त्रीको देख, धोखा खा सास लेती वह फिर शयनपर जा पडी। फीके मुखवाली वह हिमकालके आकाशमे फीके चद्रकी तरह शीघ्र शोभित नही हुई ॥९॥

२५ पद्मकी ईर्ष्याका पात्र उसका मुख, पल्लवके रगसे लाल हाथमे स्थित, जलमे छायारूप ऊपरसे झुके हुये पद्मकी तरह नही शोभित हुआ ॥११॥

२६ स्त्री स्वभावसे उन उन देखे हुये अनुरागवाले सामने (स्थितसे) पतिके विषयमें सोचती हुई धम आश्रित तत्वको न जानकर उस उसकी कल्पना करती वह विलाप करने लगी ॥१२॥

२७ "तिलकके मलिन होनेसे पहले ही तेरे पास मैं आ जाऊगा" यह प्रतिज्ञा करके सो किस कारण प्रियप्रतिज्ञा करनेवाले तुम आज मुझसे झूठी प्रतिज्ञावाले हुयें ॥१३॥

२८ रति प्रिय प्रिय करनेवाले मेरे प्रियका हृदय निश्चय विरक्त हो गया। तो भी यदि उनको प्रेम होता, तो मेरा चित्त रखने के लिये वह आये बिना न रहते ॥१५॥

२९ सेवाथमादशनमन्यचित्तो विभूषयन्त्या मम धारयित्वा।
विभर्ति सोऽन्यस्य जनस्य त चे
न्नमोऽस्तु तस्मै चलसौ हृदाय ॥१८॥

३० नेच्छति या शोकमवाप्तुमेव
श्रद्धातुमर्हति न ता नराणाम" ॥१९॥

३१ स तु त्वदथ गहृवासमीप्सन्
जिजीविषुस्त्वत्परितो षहेतो ।
भ्रात्रा किलार्येण तथागतेन
प्रव्राजितो नेत्रजला द्रवक्त्र ॥२३॥

३२ श्रुत्वा ततो भतरि ना प्रवृत्ति सवेपथ सा सहसोत्पापात।
प्रगहृच बाहू विरुराव चोच्चै
हृ दीव दिग्धाभिहता करेण ॥२४॥

३३ सा रोदनारोषितरक्तदृष्टि
सतापसक्षोभितगात्र यष्टि ।
पपात शीर्णाकुलहारयष्टि
फलातिभारादिव चूत यष्टि ॥२५॥

३४ सचिन्त्य सचिन्त्य गुणाश्च भर्तुं
र्दीर्घं निशश्वास तताम चैव।
विभूषणश्रीनिहितप्रकोष्ठे ताम्रे
कराग्रे च विनिर्दुधाव ॥२७॥

३५ "न भूषणार्थो मम सप्रती"ति सा दिक्षु चिक्षेप विभूषणानि।
निर्भूषणा सा पतिता चकाशे
विशीर्णपुष्पस्तबका लतेव ॥२८॥

३६ "धृत प्रियेणायमभून्मम"ति रुक्मत्सरु दपणमालिलिगे।
यत्नाच्च विन्यस्ततमालपत्रौ
रुष्टेव धृष्ट प्रममाज गण्डौ ॥२९॥

२९ शृंगार करती अन्यत्र चित्त हूं मेरी सेवाके लिये दर्पण धारण करके, यदि वह अन्य जनके लिये धारण किये थे तो अस्थिर स्नेहवाले उन्हें नमस्कार है ॥१८॥

३० जो (नारी) ऐसे शोकको पानेकी इच्छा नहीं रखती वह पुरुषों पर विश्वास नहीं कर सकती। कहाँ मेरे प्रति उनकी वह पहलेकी अनुरक्ति और कहाँ यह क्षणभरमें साधारण जनकी तरह त्यागना ॥१९॥

३१ वे तो तेरे संतोषके लिये तेरे वास्ते गृहवासकी इच्छा करते जीना चाहते थे। पर (उनके) भाई आर्य तथागतने आँसू भीगे मुखवाले उन्हें साधु बना दिया ॥२३॥

३२ तब पतिके सम्बन्धमें इस समाचारको सुनकर वह काँपती हुई एकाएक उछल पड़ी, और हृदयमें विषाक्त बाणसे बिधी हथिनीकी तरह दोनों बाहोंको पकड़कर जोरसे रोने लगी ॥२४॥

३३ रोनेसे लाल हुई आँखोंवाली संतापसे क्षुब्ध शरीरवाली, बिखरे व्याकुल हारवाली वह फलके अत्यन्त भारके कारण आम्र वृक्षकी तरह गिर पड़ी ॥२५॥

३४ पतिके गुणोंको सोच-साचकर वह लम्बी साँस लेते मूर्छित हो, भूषणकी शोभाके आधार हाथों और लाल हथेलियोंको कँपाने लगी ॥२७॥

३५ "मुझे अब आभूषणोंसे प्रयोजन नहीं" यह सोच उसने आभूषणोंको चारों ओर फेंक दिया। बिना भूषणकी पड़ी हुई वह बिखरे फूलके गुच्छोंवाली लताकी तरह मालूम होने लगी ॥२८॥

३६ 'मेरे प्रियने इसे पकड़ा था" यह सोच सोनेके मियानवाले दर्पणको आलिंगन करने लगी और प्रयत्नसे लगाये तमालपत्रवाले कपोलको रुष्ट सी हो (उसने) जोरसे पोंछ दिया ॥२९॥

३७ मा चक्रवाकीव भृशं चुकूज श्येनाग्रपक्षक्षतचक्रवाका।
विस्पर्धमानेव विमानसस्थैः
पारावतैः कूजनलोलकण्ठैः ॥३०॥

३८ विचित्रमृद्वास्तरणेऽपि सुप्ता वैडूर्यवज्रप्रतिमण्डितेऽपि।
रुक्मांगपादे शयने महार्हे न शर्म लेभे परिचेष्टमाना ॥३१॥

३९ संदृश्य भर्तुश्च विभूषणानि
वासांसि वीणाप्रभृतीश्च लीलाः।
तमो विवेशाभिननाद चोच्चैः
पङ्कावतीर्णेव च संससाद ॥३२॥

४० सा सुन्दरी श्वासचलोदरी हि वज्राग्निसंभिन्नदरीगुहेव।
शोकाग्निनान्तर्हृदि दह्यमाना
विभ्रान्तचित्तेव तदा बभूव ॥३३॥

४१ रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ
बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोषं विचकार माल्यं
चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम् ॥३४॥
—सर्ग ६

२ बुद्धचरित—

(१) अन्तःपुर-विहार

४२ "किंचिन्मनःक्षोभकरं प्रतीपं
कथं न पश्येदि"ति सोऽनुचिन्त्य।
वासं नृपो व्यादिशति स्म तस्मै
हर्म्योदरेष्वेव न भू-प्रचारम् ॥२८॥

४३ ततः शरत्तोयदपाण्डुरेषु भूमौ विमानेष्विव रञ्जितेषु।
हर्म्येषु सर्वर्तुसुखाश्रयेषु
स्त्रीणामुदारैर्विजहार तूर्यैः ॥२९॥

३७ बाजके अगले पखोसे घायल चक्रवाकवाली चत्रवाकीकी तरह वह बहुत कूजने लगी। महलमें स्थित कूजनके लिये चचल कठवाले कबतरोसे मानो होड लगा रही थी॥३०॥

३८ हीरेसे प्रतिमडित विचित्र कोमल शय्यायुक्त सोनेके पावोवाले महाध शयनपर सोती भी छटपटाती उसने चैन नही पाया॥३१॥

३९ और पतिके आभूषणो-वस्त्रो-वीणा आदि लीला-वस्तुओको देखकर मूछामे प्रविष्ट हो और जोरसे चिल्लाती, तथा पकमें गिरी फस सी गई॥३२॥

४० वह साससे चचल उदरवाली सुदरी वज्र-अग्निसे फटे गुहावाली सी, शोकाग्निसे हृदयके भीतर जलती उदभ्रात चित्तवाली सी हो गई॥३३॥

४१ वह रोई, मलिन हुई, चिल्लाई, खिन्न हुई, घूमी, खडी विलाप करने लगी चिंतित हुई, रोषित हुई। मालाओको उसने बिगाडा, मुखको नोचा, वस्त्रको खीचा॥३४॥

—सग ६

२ बुद्धचरित—

(१) अ त पुर-विहार

४२ "मन्को क्षोभ करनेवाले किसी विरुद्ध (वस्तु) को क्यो नही देखता" यह सोचकर, उस राजाने उन्हें महलोके भीतरही वासकी आज्ञा दी, भूमिपर चलनेकी नही॥२८॥

४३ तब शरद्के बादलो सी, सफेद रगे विमानोकी सी भूमिपर, सारे ऋतुओके लिये सुखमय प्रासादोमें स्त्रियोके उत्तम वाद्योके साथ कुमारने विहार किया॥२९॥

४४ क्लैर्हि चामीकरवद्धकक्षैर्नारीकराग्राभिहतैर्मृदगै ।
वराप्सरानृत्यसमैश्च नृत्यै
कैलासवत्तद्भवन रराज ॥३०॥

४५ वाग्भि कलाभिलल्तिैश्च हावैर्मदै सखेलमधुरैश्च हासै
त तत्र नार्यो रमयाम्बभूवुर्भूवचितैरधनिरीक्षितैश्च ॥३१॥

४६ नृपस्तु तस्यैव विवृद्धिहेतोस्तद्भाविनार्थेन च चोद्यमान ।
शमेऽभिरेमे विरराम पापाद्
भेजे दम सविबभाज साधून् ॥३३॥

४७ नाधीरवत्कामसुखे ससजे न सररजे विषम जनन्याम् ।
धृत्येन्द्रियाश्वाश्चपलान्विजिग्ये
बन्धूश्च पौराश्च गुणैर्जिगाय ॥३४॥

४८ नाध्यैष्ट दु खाय परस्य विद्या
ज्ञान शिव यत्तु तदध्यगीष्ट ।
स्वाभ्य प्रजाभ्यो हि यथा तथैव
सवप्रजाभ्य शिवमाशशसे ॥३५॥

४९ सान्त्व बभाषे न च नार्थवद्यज्
जजल्प तत्त्व न च विप्रिय यत् ।
सान्त्व ह्यतत्त्व परुष च तत्त्व
ह्रिया शकन्नात्मन एव वक्तुम् ॥३८॥

५० आर्षण्यचारीत्परमव्रतानि
वैराण्यहासीच्चिर सभृतानि ।
यशासि चापद्गुणगन्धवन्ति
रजास्यहार्षीन्मलिनीकराणि ॥४३॥

४४ स्त्रियाके कर-पल्लवोसे बजते मधुर-स्वर सोनेसे मढे मदगो द्वारा, उत्तम अप्सराओके नृत्यके समान नाचो युक्त और कैलासके समान उस भवनमें कुमार विराजा ॥३०॥

४५ कलापूण वाणियो, ललित हाव भावो, मदजनक खेल और मधुर परिहासोके साथ, वहा नारियोने भ्रू-कुचनो और अधखुली दृष्टियोसे उससे रमण कराया ?॥३१॥

४६ राजाने तो उसकी ही वद्धिके लिये और उसके भावी अथसे प्रेरित हो, शान्तिमे रत, पापसे विरत, दमन-युक्त हो, साधुओको दान दिया ॥३३॥

४७ (वह) अधीरकी तरह काम-सुखमे लिप्त नही हुआ, न जननीमें विषम आचारमे सरक्त हुआ । उसने धैय चपल इन्द्रियरूपी घोडोको और गुणोसे बधुओ तथा पुरवासियोको जीता ॥३४॥

४८ उसने दूसरे के दु खके लिये विद्या नही पढी, जो मगलमय ज्ञान था, उसे (ही) जाना, जैसे अपनी प्रजाओमे वैसे ही वह सारी प्रजाओमें कल्याणकी कामना करता ॥३५॥

४९ सान्त्वनाकी बात करता, पर अनथयुक्त नही, तत्वकी बात करता, पर जो अप्रिय है उसे नही, तत्वहीन सान्त्वना और परुषत्वको लज्जासे अपने लिये भी न कह सकता ॥३८॥

५० उसने ऋषियोके श्रेष्ठ व्रतका पालन करते, चिरसचित बैरोको छोडा, आपदके गुण-लेशवाले यशोको, मलिन करनेवाले रजोको हटाया ॥४३॥

५१ न चाजिहीर्षीद् वलिमप्रवृत्त
न चाचिकीर्षीत्परवस्त्वभिध्याम् ।
न चाविवक्षीद् द्विपतामधर्मं
न चाविवक्षीद्धृदयेन मन्युम् ॥४८॥

५२ तस्मिस्तथा भूमिपतौ प्रवृत्ते
भत्याश्च पौराश्च तथैव चेरु ।
शमात्मके चेतसि विप्रसन्ने
प्रयुक्तयोगस्य यथेन्द्रियाणि ॥४५॥

५३ काले ततश्चारुपयोधराया
यशोधराया स्वयशोधरायाम् ।
शौद्धोदनो राहुसपत्नववक्त्रो
जज्ञे सुतो राहुल एव नाम्ना ॥४६॥

—सग २

(२) सवेगोत्पत्ति

५४ तत "कुमार खलु गच्छतीति
श्रुत्वा स्त्रिय प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम् ।
दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मु
जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञा ॥१३॥

५५ ता स्रस्तकाचीगुणविघ्निताश्च
सुप्तप्रबुद्धाकुल लोचनाश्च ।
वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च
कौतूहलेनानिभृता परीयु ॥१४॥

५६ प्रासादसोपानतलप्रणादै काचीरवैर्नूपुरनि स्वनैश्च ।
वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसघा-
नन्योन्यवेगाश्च समाक्षपन्त्य ॥१५॥

५१ अप्रचलित टक्स लेना दूसरेकी वस्तुमे लोभ करना नही चाहा, न शत्रुओको अधम कहना चाहा तथा न हृदयमे क्रोध रखना चाहा ।।४४।।

५२ उस भूमिपाल (शुद्धोधन) के ऐसा आचरण करते सेवक और पुरवासी भी वैसा ही आचरण करते जैसे शमयुक्त स्वच्छ चित्त योगी के होनेपर (उसकी) इद्रिया (होती है) ।।४५।।

५३ तब काल पाकर अपने यशको धारण करनेवाली सुस्तनी यशोधराने, सिद्धार्थको राहुल नामक चद्रमुख पुत्र जना ।।४६।।

—सग २

(२) वैराग्यकी उत्पत्ति

५४ तब "कुमार जा रहा है" यह समाचार सेवकोसे सुनकर देखनेकी इच्छासे स्त्रिया, मान्यजनो की अनुमतिसे महलके कोठोपर (चढ) गइ ।।१३।।

५५ खिसकी कधनीकी जजीरसे बाधित, सोकर जगे व्याकुल लोचन वाली कुतूहलके साथ चचल होकर वत्तान्त सुन आभूषण धारे गइ ।।१४।।

५६ (वह) प्रासादके सोपानतलके शब्दा, काचीके रवो और पाजेबकी ध्वनियोसे, गह पक्षियोके समूहोको त्रस्त करती एक दूसरेके जल्दी करनेपर आक्षेप करती (चली) ।।१५।।

५७ कासांचिदासां तु वराङ्गनानां
जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम्।
गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशाला
श्रोणीरथाः पीनपयोधराश्च ॥१६॥

५८ शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या
गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रिया प्रगल्भा विनिगूहमाना
रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥१७॥

९ परस्परोत्पीडनपिण्डितानां
समर्दसंक्षोभितकुण्डलानाम्
तासां तदा सस्वनभूषणानां
वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥१८॥

६० वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि
परस्परायासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि
सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ॥१९॥

६१ ततो विमानैर्युवतीकरालैः कौतूहलोद्घाटितवातयानैः।
श्रीमत्समन्तान्नगरं बभासे
वियद्विमानैरिव साप्सरोभिः ॥२०॥

६२ वातायनानामविशालभावाद-
न्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम्।
मुखानि रेजुः प्रमदोत्तमानां,
बद्धाः कलापा इव पङ्कजानाम् ॥२१॥

६३ तं ताः कुमारं पथि वीक्षमाणाः
स्त्रियो बभुर्गामिव गन्तुकामाः।
ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा
नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामाः ॥२२॥

५७ उत्सुकतायुक्त जल्दी करती इन सुदर स्त्रियोमेंसे किन्ही किन्ही की गतिको, भारी होनेसे विशाल नितम्बो और पीन पयोधरोने रोका ॥१६॥

५८ शीघ्र जानेमें समथ हुई किसा दूसरीन गतिको रोका लज्जासे (वह)सकुचित हो एकान्तमें पहने आभूषणोको छिपाती हुई जल्दी नही गई ॥१७॥

५९ तब परस्पर उत्पीडनके साथ एकत्रित हुई, धक्कासे चचल कुडलवाली, ध्वनियुक्त भूषणोवाली उन स्त्रियोको खिडकियोमे अशान्ति मालूम हुई ॥१८॥

६० स्त्रियोके मुख-कमल जगलोसे निकले परस्पर आदोलित कुडलोवाले महलोमे ससक्त कमला जैसे शोभा देते थे ॥१९॥

६१ तब युवतियोसे घिरे कौतूहलसे उघाडे वातायनोवाले महलो द्वारा, कपिलवस्तु नगर अप्सराओ-सहित आकाश विमानोकी तरह चारो ओर श्रीयुक्त(हा) चमकने लगा ॥२०॥

६२ वातायनोके विशाल न होनेसे एक दूसरेके कपोलोको छूते कुडलवाले उत्तम स्त्रियोके मुख, पकजोकी बधी मालाकी तरह विराजते थे ॥२१॥

६३ कुमारको पथमें देखती वह स्त्रिया मानो पृथिवी पर जानेकी इच्छुक थी, और उसे ऊपर मुह किये देखते पुरुष मानो स्वग जानेके इच्छुक थे ॥२२॥

६४ दष्ट्वा च त राजसुत स्त्रियस्ता जाज्वल्यमान वपुषा-
श्रिया च ।
"वन्यास्य भार्य" ति शनैरवोच शुद्धैमनोभि खलु
नान्यभावात् ॥२३॥
—सर्ग ३

(३) स्त्री निवारण

६५ स तस्मिन् कानने रम्ये जज्वाल स्त्रीपुर सर ।
आक्रीड इव विभ्राजे विवस्वानप्सरोवृत ॥२८॥
६६ मदेनावर्जिता नाम त काश्चित्तत्र योषित ।
कठिनै पस्पृशु पीनै सहतैवल्गुभि स्तनै ॥२९॥
६७ स्नस्तासकोमलालम्बमृदुवाहुलताबला ।
अनृत स्खलित काचित्कृत्वैन सस्वजे बलात् ॥३०॥
६८ काचित्ताम्राधरोष्ठेन मुखेनासवगन्धिना ।
विनिशश्वास कर्णेऽस्य "रहस्य श्रूयता"मिति ॥३१॥
६९ काचिदाज्ञापयन्तीव प्रोवाचार्द्रानुलेपना ।
"इह भक्ति कुरुष्वेति" हस्तसश्लेषलिप्सया ॥३२॥
७० मुहुर्मुहुमदव्याजस्रस्तनीलाशुकापरा ।
आलक्ष्यरशना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा ॥३३॥
७१ काश्चित्कनककाचीभिर्मुखराभिरितस्तत ।
बभ्रमुदर्शयन्त्योऽस्य श्रोणीस्तन्वशुकावृत्ता ॥३४॥
७२ चूतशाखा कुसुमिता प्रगृह्यान्या ललम्बिरे ।
सुवणकलशप्रख्यान्दशयन्त्य पयोधरान् ॥३५॥
७३ काचित्पद्मवनादेत्य सपद्मा पद्मलोचना ।
पद्मवक्त्रस्य पार्श्वऽस्य पद्मश्रीरिव तस्थुषी ॥३६॥

६४ शरीर और शाभासे जाज्वल्यमान राजकुमारको देखकर उन स्त्रियोने "इसकी भार्या धन्य है' यह धीरेसे शुद्ध मनसे कहा न कि दूसरे भावसे ॥२३॥

—सग ३

(३) स्त्रियोका रोकना

६५ वह (सिद्धाथ कुमार) स्त्रियो-सहित उस रम्य काननमें शोभायमान थे मानो प्रागणमे अप्सराओसे युक्त सूय शोभा दे रहा था ॥२८॥

६६ वहा मदके वशमे पड किन्ही स्त्रियोने, कठिन सश्लिष्ठ सुदर पीन स्तनोसे कुमारका स्पश किया ॥२९॥

६७ मदु बाहुलतासे शिथिल कधेका कोमल आलम्ब ले किसी अबलाने, झूठ ही गिरनेका बहाना करके हठपूवक आलिगन किया ॥३०॥

६८ 'रहस्य बात सुनिये' यह कह किसीने लाल अधरोष्ठयुक्त, मद्य-गधवाले मुखसे कुमारके कानमे सास छोडी ॥३१॥

६९ भीगे लेपनवाली किसीने हाथ मिलानेके लोभसे, "यहा भक्ति करो' यह आज्ञा देती सी कहा ॥३२॥

७० बार-बार मदके बहाने खिसके नील वस्त्रोवाली दूसरी युवती, कधनीको किंचित् दिखाती चमकती बिजलीवाली रात्रिकी तरह शोभायमान हुई ॥३३॥

७१ कोई सूक्ष्म वस्त्रसे ढके मुखर सुवण कधनियोके साथ नितम्बोको दिखलाती, दूसरी इधर उधर घमती थी ॥३४॥

७२ कोई फूली आम्र शाखाको पकडकर, सुवण-कलश समान स्तनोको दिखलाती लटक रही थी ॥३५॥

७३ पद्मवनसे पद्मसहित कोई पद्मलोचना इस पद्ममुखके पास आकर पद्म लक्ष्मीकी तरह खडी हुई ॥३६॥

७४ मधुर गीतमन्वथ काचित्साभिनय जगौ।
त स्वस्थ चोदयन्तीव "वचितोऽसी"त्यवेक्षितै ॥३७॥
७५ शुभेन वदनेनान्या भ्रूकार्मुकविकर्षिणा।
प्रावृत्यानुचकारास्य चेष्टित धीरलीलया ॥३८॥
७६ पीनवल्गुस्तनी काचिद्धासाघूर्णितकुण्डला।
उच्चैरवजहासैन "समाप्नोतु भवा"निति ॥३९॥
७७ अपयात तथैवान्या बबन्धुर्माल्यदामभि ।
काश्चित्साक्षेपमधुरैर्जगृहुर्वचनाकुशै ॥४०॥
७८ प्रतियोगार्थिनी काचिद् गृहीत्वा चूतवल्लरीम्।
"इद पुष्प तु कस्ये"ति पप्रच्छ मदविक्लवा ॥४१॥
७९ काचित्पुरुषवत्कृत्वा गति सस्थानमेव च।
उवाचैन "जित स्त्रीभिजय भो पृथिवीमिमाम्" ॥४२॥
८० अथ लोलेक्षणा काचिज्जिघ्रती नीलमुत्पलम्।
किंचिन्मदकलैर्वाक्यैर्नृपात्मजमभाषत ॥४३॥
८१ "पश्य भतश्चित चूत कुसुमैर्मधुगन्धिभि ।
हेमपजररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ॥४४॥
८२ अशोको दृश्यतामेष कामिशोकविवर्धन ।
रुवन्ति भ्रमरा यत्र दह्यमाना इवाग्निना ॥४५॥
८३ चूतयष्ट्या समाश्लिष्टो दृश्यता तिलकद्रुम ।
शुक्लवासा इव नर स्त्रिया पीताङ्गरागया ॥४६॥
८४ फुल्ल कुरबक पश्य निर्मुक्तालक्तकप्रभम्।
यो नखप्रभया स्त्रीणा निर्भर्त्सित इवानत ॥४७॥
८५ बालाशोकश्च निचितो दृश्यतामेष पल्लवै ।
योऽस्माक हस्तशोभाभिर्लज्जमान इव स्थित ॥४८॥

७ अभिनयपूर्वक अर्थसहित मधुर गीतको किसीने मानो सकेतोसे 'तू वचित है' यह प्रेरणा करते वीरक प्रिय गाया ॥३७॥

७५ किसीने खिंचे हुए भ्रू रूपी धनुषवाले शुभ मुखमे घूमकर धीर लीला द्वारा कुमारकी चेष्टाका अनुकरण किया ॥३८॥

७६ पीन कोमलस्तनी हाससे घूमते कुडलवाली, कोई "आप समाप्त करे" यह कहती उस पर ऊचे हसी ॥३९॥

७७ दूसरियोने हटते हुये कुमारको मालाकी रस्सियोसे बाधा, और कुछने आक्षेपयुक्त मधुर वचनरूपी अकुशोसे (उसे) पकडा ॥४०॥

७८ विरोधकी इच्छावाली किसीने आम्र वल्लरीको पकडकर, मदसे विकल हो "यह पुष्प किसका है" यह पूछा ॥४१॥

७९ किसीने पुरुषकी तरह गति और आकार करके, उससे कहा "स्त्रियो द्वारा जीते गये, तुम इस पथिवीको जीतो" ॥४२॥

८० तब कोई चचल नेत्रा नीलकमलको सूघती, कुछ मद से सुदर वाक्यो द्वारा राजपुत्रसे बोली ॥४३॥

८१ "हे स्वामी, मधुर गधवाले फूलोसे सचित (इस) आमको देखो, जहा सोनेके पिंजडेमे बधी कोयल कूक रही है ॥४४॥

८२ कामियोके शोकको बढानेवाले इस अशोकको देखो, जहा भ्रमर मानो अग्निसे जलते गुनगुना रहे है ॥४५॥

८३ आम्रके तनेसे समालिंगित तिलक-वृक्षको देखो, मानो पीत अग-रागवाली स्त्रीसे आलिंगित शुक्लाम्बर पुरुष है ॥४६॥

८४ निचोडे आलतेकी प्रभावाले फूले कुरवकको देखो, जो स्त्रियोंके नखकी प्रभासे तर्जित हो झुका हुआ सा है ॥४७॥

८५ और पल्लवोंसे सचित इस तरुण अशोकको देखो, जो हमारे हाथोकी शोभासे लजाता सा खडा है ॥४८॥

८६ दीर्घिका प्रावृता पश्य तीरजैः सिन्दुवारकैः ।
पाण्डुरांशुकसंवीता शयाना प्रमदामिव ॥४९॥
८७ दृश्यतां स्त्रीषु माहात्म्यं चक्रवाको ह्यसौ जले ।
पृष्ठतः प्रेष्यवद् भार्यामनुवर्त्यनुगच्छति ॥५०॥
८८ मत्तस्य परपुष्टस्य रुवतः श्रूयतां ध्वनिः ।
अपरः कोकिलोऽन्वक्षं प्रतिश्रुत्वेव कूजति ॥५१॥
८९ अपि नाम विहंगानां वसन्तेनाहृतो मदः ।
न तु चिन्तयतोऽचिन्त्यं जनस्य प्राज्ञमानिनः" ॥५२॥
९० इत्येवं ता युवतयो मन्मथोद्दामचेतसः ।
कुमारं विविधैस्तैस्तैरुपचक्रमिरे नयैः ॥५३॥

—सर्ग ४

(४) अन्तःपुर-विलाप

९१ ततस्तुरंगावचरः स दुर्मनास्तथा वनं भर्तरि निर्ममे गते ।
चकार यत्नं पथि शोकनिग्रहे
तथापि चैवाश्रु न तस्य चिक्षिये ॥१॥
९२ यमेकरात्रेण तु भर्तुराज्ञया जगाम मार्गं सह तेन वाजिना ।
इयाय भर्तुर्विरहं विचिन्तयं-
स्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः ॥२॥
९३ हयश्च मौजा विचचार कन्थकस्
तताम भावेन बभूव निर्मदः ।
अलंकृतश्चापि तथैव भूषणै-
रभूद् गतश्रीरिव तेन वर्जितः ॥३॥
९४ निवृत्य चैवाभिमुखस्तपोवनं भृशं जिहेषे करुणं मुहुर्मुहुः ।
क्षुधान्वितोऽप्यध्वनि शष्पमम्बु वा
यथा पुरा नाभिननन्द नाददे ॥४॥

८६ तीरके सिदुवारासे घिरी पुष्करणीको देखो, मानो पीत-अशुक पहने प्रमदा लेटी है ।।४९।।

८७ स्त्रियोके बडप्पनको देखो जलमे यह चकवा, सेवककी तरह पीछे पीछे भायाका अनुवतन करता जा रहा है ।।५०।।

८८ मस्त बोलती कोयलकी ध्वनि को सुनो, दूसरा कोयल (उसके) पीछे-पीछे प्रतिध्वनिकी तरह कूक रहा है ।।५१।।

८९ वसत विहगोमें भी मद ला सकता है, पर अचित्यकी चिन्ता करते प्राज्ञ अभिमानी आदमीमे नही ।।५२।।

९० इस प्रकार कामसे उद्दाम चित्तवाली युवतियोने उन उन नाना उपायोसे कुमारको खीचना चाहा ।।५३।।

—सग ४

(४) रनिवास का विलाप

९१ तब निमम स्वामीके वन जानेपर वैसे दु खी साईस (छदक) ने, रास्तेमे शोक रोकनेका यत्न किया, तो भी उसका आसू बन्द नही हुआ ।।१।।

९२ स्वामीकी आज्ञासे उसी घोडेके साथ जिस मागको वह एक रातमे गया था, उसी पथको स्वामीके विरहकी चिन्ता करते उसने आठ दिनमें पूरा किया ।।२।।

९३ और ओजस्वी घोडा (कथक) मनमे खिन्न और मद-रहित हो भूषणोंसे वसे अलकृत भी स्वामीके बिना शोभा-रहित सा था ।।३।।

९४ तपोवनकी ओर मुह करके मुडकर वह बार-बार करुणा-सहित हिनहिनाया, भूखा होते भी मागमें उसने तृण या जलको न पहलेकी तरह पसन्द किया, न ग्रहण किया ।।४।।

९५ ततो विहीनं कपिलाह्वयं पुरं महात्मना तेन जगद्धितात्मना
क्रमेण तौ शून्यमिवोपजग्मतुर्
दिवाकरेणेव विनाकृतं नभः ॥५॥
९६ मपुण्डरीकैरपि शोभितं जलै-
रलंकृतं तं पुष्पधरैर्नगैरपि
तदेव तस्योपवनं वनोपमं गतप्रहर्षैर्न रराज नागरैः ॥६॥
९७ ततो भ्रमद्भिर्दिशि दीनमानसैरनुज्ज्वलैर्बाष्पहतेक्षणैर्नरैः
निवार्यमाणाविव तावुभौ पुरं
शनैरपस्नातमिवाभिजग्मतुः ॥७॥
९८ निशाम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ
विनागतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ।
मुमोच बाष्पं पथि नागरो जनः
पुरा रथे दाशरथेरिवागते ॥८॥
९९ अथ ब्रुवन्तः समुपेतमन्यवो
जनाः पथि च्छन्दकमागताश्रवः ।
"क्व राजपुत्रः पुरराष्ट्रनन्दनो
हृतस्त्वयासा"विति पृष्ठतोऽन्वयुः ॥९॥
१०० ततः स तान् भक्तिमतोऽब्रवीज्जना-
न्नरेन्द्रपुत्रं न परित्यजाम्यहम्" ॥१०॥
१०१ इदं वचस्तस्य निशम्य ते जनाः
"सुदुष्करं खल्वि"ति निश्चयं ययुः ।
पतद्धि जह्रुः सलिलं न नेत्रजं
मनो निनिन्दुश्च फलोत्थमात्मनः ॥११॥
१०२ अथोचु"रद्यैव विशाम तद्वनं गतः स यत्र द्विपराजविक्रमः ।
जिजीविषा नास्ति हि तेन नौ विना
यथेन्द्रियाणां विगमे शरीरिणाम् ॥१२॥

९५ तब उस जगत हितैषी महात्मासे विहीन शून्य से कपिलवस्तु नगरमें, क्रमश वे दोनो माना सूयके बिना आकाशमे पहुचे, ॥५॥

९६ कमलयुक्त जलसे शाभित पुष्पधारी वक्षोसे अलकृत भी, राजकुमार का वह हषहीन उपवन वन-समान पुरवासियोसे शोभा नही दे रहा था ॥६॥

९७ तब दीन मन मलिन आसूसे उपहत नेत्रोवाले दिशाओमे घूमते मनष्यो द्वारा निवारित होते, वे दोनो मतक-स्नान किये से नगरमे धीरे धीरे पहुचे ॥७॥

९८ शाक्य-कुल ऋषभके बिना (ही) थके शरीरसे चलते आये उन दोनोको सुनकर, रास्तेमे पुरवासी जनोने वैसे ही आसू बहाया, जैसे पुरान समय मे रामके रथके आनेपर ॥८॥

९९ तब सतप्त आसू ला लोग मागमे छदकसे "पुर और राष्ट्रके आनद-दायक उस राजपुत्रको तू कहा ले गया" यह कहते पीछे-पीछे लगे ॥९॥

१०० तब उसने उन भक्तिमान जनोसे कहा—'मैंने नरेंद्र-पुत्रको नही छोडा। निजन वनमे रोते हुए मुझे और गहस्थ-वेषको उन्होने छोड दिया' ॥१०॥

१०१ उसके इस वचनको सुनकर उन लोगोने 'अतिदुष्कर निस्सदेह" यह निश्चय किया, और आसुओको गिरनेसे नही रोका और अपने स्वाथपरतावाले मनकी निंदा की ॥११॥

१०२ तब वह बोले "आज ही हम उस वनमें प्रवेश करेंगे जहा वह गजराज-पराक्रमी गया उसके बिना हमे जीनेकी इच्छा नही, जैसे इद्रियोंके चले जानेपर शरीरधारियोकी ॥१२॥

१०३ इद पुर तेन विवर्जित वन वन च तत्तेन समन्वित पुरम् ।
न शोभते तेन हि नो विना पुर
मरुत्वता वृत्रबधे यथा दिवम् ॥१३॥

१०४ पुन "कुमारो विनिवृत्त" इत्यथो
गवाक्षमाला प्रतिपेदिरेऽगना ।
विविक्तिपष्ठ च निशम्य वाजिन
पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रुशु ॥१४॥

१०५ प्रविष्टदीक्षस्तु सुतोपलब्धये व्रतेन शोकेन च खिन्नमानस
जजाप देवायतने नराधिप-
श्चकार तास्ताश्च यथाशया क्रिया ॥१५॥

१०६ तत स बाष्पप्रतिपूर्णलोचनस्तुरगमादाय तुरगमानुग ।
विवेश शोकाभिहतो नृपक्षय
युधापनीते रिपुणेवभर्तरि ॥१६॥

१०७ विगाहमानश्च नरेन्द्रमन्दिर विलोकयन्नश्रुवहेन चक्षुषा ।
स्वरेण पुष्टेन रुराव कन्थको
जनाय दु ख प्रतिवेदयन्निव॥१७

१०८ तत खगाश्च क्षयमध्यगोचरा
समीपबद्धास्तुरगाश्च सत्कृता ।
हयस्य तस्य प्रतिसस्वनु स्वन
नरेन्द्रसूनोरुपया नशङ्किन ॥१८॥

१०९ जनाश्च हर्षातिशयेन वचिता
जनाधिपान्त पुरमनिकर्षगा ।
"यथा हय कन्थक एष हेषते
ध्रुव कुमारो विशती"ति मेनिरे ॥१९॥

११० अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्छिता कुमारसन्दर्शनलोललोचना ।
गृहाद्विनिश्चक्रमुराशया स्त्रिय
शरत्पयोदादिव विद्युतश्चला ॥२०॥

१०३ उसके बिना यह पुर वन है और उससे युक्त वह वन पुर है। उसके बिना हमारा पुर शोभा नही देता, जैसे वत्रके वधके समय इन्द्रके बिना स्वर्ग' ॥१३॥

१०४ फिर "कुमार लौटा' यह सुन स्त्रिया वातायनोपर पहुची, घोडेको नगी पीठ देखकर फिर गवाक्षोको बन्द कर वह रोने लगी ॥१४॥

१०५ पुत्रकी प्राप्तिके लिए शोकसे खिन्न मन दीक्षा ले व्रतके साथ राजा देवमन्दिरोमे जप और अभिलाषानुरूप उन उन क्रिया-योको कर रहा था ॥१५॥

१०६ तब घोडेको ले उसके पीछे-पीछे चलत अश्रुनेत्र छन्दकने, शोकयुक्त हो नपगहमे प्रवेश किया, मानो युद्धमे रिपुने स्वामीको छीन लिया हो ॥१६॥

१०७ राजमन्दिरमे चलते आसू बहानेवाली आखोसे उसे देखते, लोगोके सामने दु ख प्रकट करते कथक ऊचे स्वरसे चिल्लाने लगा ॥१७॥

१०८ तब घरके पक्षियो और पास बधे उत्तम घोडोने,
उस घोडेकी आवाजपर राजपुत्रके आगमनकी आशकासे प्रतिशब्द किया ॥१८॥

१०९ राजाके अन्त पुरके पासवाले लोगोने अत्यन्त हर्षसे उछलते समझा—"यह कथक घोडा हिनहिना रहा है, तो अवश्य कुमार प्रवेश कर रहे ह" ॥१९॥

११० फिर कुमारके दशनकी अभिलाषा भरी नेत्रोवाली अत्यन्त हर्ष-शोकसे मूर्छित स्त्रियाँ घरसे शरद्के चचल बिजलियोकी तरह मेघसे निकली (वह कैसी थी) ॥२०॥

१११ विलम्बकेश्यो मलिनांशुकाम्बरा
निरञ्जनैर्बाष्पहतेक्षणैर्मुखैः।
स्त्रियो न रेजुर्मृजया विनाकृता
दिवीव तारा रजनीक्षयारुणा ॥२१॥

११२ अरक्तताम्रैश्चरणैरनूपुरैरकुण्डलैरार्जवकन्धरैर्मुखैः।
स्वभावपीनैर्जघनैरमेखलै-
रहारयोक्त्रैर्मुषितैरिव स्तनैः ॥२२॥

११३ निरीक्ष्य ता बाष्पपरीतलोचना
निराश्रयं छन्दकमश्वमेव च।
विषण्णवक्त्रा रुरुदुर्वराङ्गना
वनान्तरे गाव इवर्षभोज्झिताः ॥२३॥

११४ ततः सबाष्पा महिषी महीपतेः
प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी
विलोलपर्णा कदलीव काञ्चनी ॥२४॥

११५ हतत्विषोऽन्याः शिथिलांसबाहवः
स्त्रियो विषादेन विचेतना इव।
न चुक्रुशुर्नाश्रु जहुर्न शश्वसु-
र्न चेलुरासुर्लिखिता इव स्थिताः ॥२५॥

११६ अधीरमन्याः पतिशोकमूर्छिता
विलोचनप्रस्रवणैर्मुखैः स्त्रियः।
सिषिचिरे प्रोषितचन्दनान् स्तनान्धराधरः प्रस्रवणै-
रिवोपलान् ॥२६॥

११७ मुखैश्च तासां नयनाम्बुताडितै रराज तद्राजनिवेशनं तदा।
नवाम्बुकालेऽम्बुदवृष्टिताडितैः
स्रवज्जलैस्तामरसैर्यथा सरः ॥२७॥

१११ दीघ-केशी मलिन वस्त्र धरा अजनहीना अश्रु रुद्ध नेत्रो सहित मुखावाली, विना शृगार किये स्त्रिया रात बीतनेसे आकाशमे पीले पडे तारा जैसी ॥२१॥

११२ लालिमाहीन नूपुर बिना चरणोवाला कुडल रहित भूषित कधेवाले मुखासे मेखला-रहित स्वभावत पोन नितम्बोसे युक्त, हार बिना चुराये हुये से स्तनोके साथ ॥२२॥

११३ उन आसुओमे भरी आखोवालियोने छदक और अश्वको असहाय देखा तो विषादयुक्त मुखवाली वरागनाये वनातरमें वषभ परित्यक्त गायकी तरह रोने लगी ॥२३॥

११४ नष्ट बच्चेवाली वत्सला महिषीकी तरह राजाकी अश्रुयुक्त महिषी गौतमी दोनो बाहोको पकडकर चचल पत्तेवाले सोनेके केलेकी तरह गिर पडी ॥२४॥

११५ प्रभाहीन शिथिल कधा बाहुवाली विषादसे निश्चेतन सी दूसरी स्त्रिया न चिल्लाइ, न आसू बहाईं, न लम्बी सास ली, न हिली-डुली, मानो चित्रलिखितसी खडी रही ॥२५॥

११६ पति-शोकसे मूर्छित, नेत्र से अश्रु बहाते मुखोवाली दूसरी स्त्रियाँ अधीर होकर, चन्दन मिटे स्तनोको मानो पवत के झरनो द्वारा पाषाणोको सीचने लगी ॥२६॥

११७ अश्रु-ताडित उनके मुखोसे वह राजभवन उस समय वैसे शोभित था, जैसे नवीन मेघकालमे मेघकी वष्टिसे ताडित बहते जलयुक्त कमलोंसे सरोवर ॥२७॥

११८ सुवृत्तपीनांगुलिभिर्निरन्तरैरभूषणैर्गूढसिरैर्वरांगना ।
उरांसि जघ्नु कमलोपमैं करैं
स्वपल्लवैर्वातचला लता इव ।।२८।।

११९ करप्रहारप्रचलैश्च ता बभुस्तथापि नार्य सहितोन्नतैं स्तन
वनानिलाघूर्णितपद्मकम्पितैं
रथांगनाम्ना मिथुनैरिवापगा ।।२९।।

१२० यथा च वक्षांसि करैरपीडय-
स्तथैव वक्षोभिरपीडयन् करान् ।
अकारयंस्तत्र परस्पर व्यथा
कराग्रवक्षास्यबला दयालसा ।।३०।।

१२१ ततस्तु रोषप्रविरक्तलोचना
विषादसंबन्धिकषायगद्गदम् ।
उवाच नि श्वासचलत्पयोधरा
विगाढशोकाश्रुधरा यशोधरा ।।३१।।

१२२ "निशि प्रसुप्तामवशां विहाय मा
गत क्व सच्छन्दक मन्मनोरथ ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे
सम गतेषु त्रिषु कम्पते मन ।।३२।।

१२३ अनार्यमस्निग्धममित्रकर्म मे
नृशंस कृत्वा किमिहाद्य रोदिषि ।
नियच्छ बाष्प भव तुष्टमानसो
न संवदत्यश्रु च तच्च कर्म ते ।।३३।।

१२४ प्रियेण वश्येन हितेन साधुना
त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनर्निवृत्तये
रमस्व दिष्ट्या सफल श्रमस्तव।।३४।।

११८ वरागनाये भूषण रहित छिपी नसोवाली सुगोल घनी अगुलियोयुक्त कमल समान अपने हाथोसे छातीको वायुसे चालित पल्लवो युक्त लता सी पीटने लगी ।।२८।।

११९ हाथके प्रहारसे चचल एक साथ उन्नत स्तनोसे वह नारिया, वन-वायु द्वारा हिलाये पद्मोसे कम्पित चक्रवाको के जोडो युक्त नदीकी तरह जान पडती थी ।।२९।।

१२० उन्होने जैसे हाथोसे छातियोको वैसे ही छातियोसे हाथोको पीडित किया। दयासे अलस अबलाओने (अपने) करपल्लवो और छातियो को परस्पर उस समय व्यथित किया ।।३०।।

१२१ तब रोषसे अतिरक्त लोचनवाली, लम्बी साससे चलते स्तनोवाली भारी शोकसे अश्रु बहाती यशोधरा विषादकी कटुतासे गदगद हो बोली ।।३१।।—

१२२ "हे छदक, रातको सोई बेबस मुझे छोड वह मेरा मनोरथ कहाँ गया? तीनो साथ गये, तेरे और कथकके आनेपर मेरा मन काप रहा ह ।।३२।।

१२३ हे नीच, अनाय, स्नेहरहित शत्रुका काम करके अब तू क्यो रो रहा है? आँसू रोक, तुष्ट मन हो, तेरा आसू तेरे उस कमके अनुसार नही है ।।३३।।

१२४ प्रिय, वशवद, हित यथाथकारी आयपुत्र तुझ साधुमित्रके साथ, फिर न लौटनेके लिये चले गये। खुश हो, अहो तेरा श्रम सफल हुआ ।।३४।।

१२५ वर मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुन मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम् ।
सुहृद्ब्रुवेण ह्यविपश्चिता त्वया
कृत कुलस्यास्य महानुपप्लव ॥३५॥

१२६ इमा हि शोच्या व्यवमुक्तभूषणा
प्रसक्तबाष्पाविलरक्तलोचना ।
स्थितेऽपि पत्यौ हिमवन्महीसमे
प्रनष्टशोभा विधवा इव स्त्रिय ॥३६॥

१२७ इमाश्च विक्षिप्तविटकबाहव
प्रसक्तपारावतदीर्घनि स्वना ।
विनाकृतास्तेन सहावरोधनै
भृश रुदन्तीव विमानपक्तय ॥३७॥

१२८ अनर्थकामोऽस्य जनस्य सर्वथा
तुरगमोऽपि ध्रुवमेष कन्थक ।
जहार सर्वस्वमितस्तथा हि मे
जने प्रसुप्ते निशि रत्नचौरवत् ॥३८॥

१२९ यदा समर्थ खलु सोढुमागता-
निषुप्रहारानपि कि पुन कशा ।
गत कशापातभयात्कथ न्वय
श्रिय गृहीत्वा हृदय च मे समम् ॥३९॥

१३० अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्य प्रतिपूरयन्निव ।
यदा तु निर्वाहयति स्म मे प्रिय
तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥४०॥

१३१ यदि ह्यहेषिष्यत बोधयन् जन
खुरै क्षितौ वाप्यकरिष्यत ध्वनिम् ।
हनुस्वन वा जनयिष्यदुत्तम
न चाभविष्यन्मम दु खमीदृशम्" ॥४१॥

१२५ मनुष्यके लिये होशियार शत्रु अच्छा है, (पर) युक्तिमें अचतुर अप्राज्ञ मित्र नही। अपने को सुहृद कहनेवाले तुझ मूखने इस कुलका महान अहित किया ॥३५॥

१२६ भूषणरहित आसू बहाती मलिन लाल नेत्रोवाली यह स्त्रिया हिमालय पथिवीके समान पतिके रहते भी नष्ट शोभा विधवाओकी तरह शोचनीय ह ॥३६॥

१२७ और यह फली कपोत स्थानोरूपी बाहोवाली बैठे कबूतरोके लम्बे शब्दवाली प्रासाद पक्तिया अन्त पुरिकाओ के साथ प्रिय विहीन अत्यन्त रो सी रही हैं ॥३७॥

१२८ इस जनका सवथा निश्चय अनथ इच्छुक कथक तुरग है, जो कि रातको जनोके सोते समय रत्न चोरकी तरह मेरे सवस्वको यहासे हर ले गया ॥३८॥

१२९ जो पडते वाणोके प्रहारोको सहनेमे भी समथ था, (उस कथकके लिये) कोडा क्या था ? कोडे की मारके भयसे कैसे यह हृदयके साथ मेरी शोभा को लेकर चला गया ॥३९॥

१३० अनायकर्मा यह आज नरेन्द्र-भवनको भरता हुआ सा हिनहिना रहा है, (पर) जब मेरे प्रियको ले जा रहा था, तब यह अधम अश्व मूक रहा ॥४०॥

१३१ यदि लोगोको जगाते हुये हिनहिनाता या खुरोंसे पथिवीपर शब्द करता, अथवा हनुसे सुशब्द करता, तो आज मुझे ऐसा दु ख न होता" ॥४१॥

१३२ इतीह देव्या परिदेविताश्रय
निशम्य बाष्पग्रथिताक्षर वच ।
अधोमुख साश्रुकल कृताजलि
शनैरिद छन्दक उत्तर जगौ ॥४२॥

१३३ "विगर्हितु नार्हसि देवि, कन्थक
न चापि रोष मयि कर्तुमर्हसि ।
अनागसौ स्व समवेहि सवशो
गतो नदेव स हि देवि देववत्" ॥४३॥

१३४ इम प्रलाप करुण निशम्य ता
भुजै परिष्वज्य परस्पर स्त्रिय ।
विलोचनेभ्य सलिलानि तत्यजु-
र्मधूनि पुष्पेभ्य इवेरिता लता ॥५९॥

१३५ ततो धरायामपतद्यशोधरा विचक्रवाकेव रथागसाह्वया।
शनैश्च तत्तद्विललाप विक्लवा
मुहुर्मुहुगद्गदरुद्धया गिरा ॥६०॥

१३६ "स मामनाथा सहधर्मचारिणी-
मपास्य धर्म यदि कर्तुमिच्छति ।
कुतोऽस्य धर्म सहधर्मचारिणी
विना तपो य परिभोक्तुमिच्छति॥६१॥

१३७ श्रृणोति नून स न पूर्वपार्थिवा
न्महासुदर्शप्रभृतीन् पितामहान् ।
वनानि पत्नीसहितानुपेयुष-
स्तथा हि धर्म मदृते चिकीर्षति ॥६२॥

१३८ मखेषु वा वेदविधानसस्कृतौ
न दपती पश्यति दीक्षितावुभौ ।
सम बुभुक्षू परतोऽपि तत्फल
ततोऽस्य जातो मयि धर्ममत्सर ॥६३॥

१३२ इस प्रकार देवीके रोदनयुक्त अश्रु-बद्ध अक्षरोवाली वाणीको सुन आसू बहाते अधोमुख हो हाथ जोडकर छदकने धीरे से यह उत्तर दिया ॥४२॥

१३३ हे देवि कथककी निन्दा मत करो, और न मेरे ही ऊपर रोष करो। हम दोनोको निरपराध जानो सब तरहसे वह नरदेव देवोके समान गये ॥४३॥

१३४ इस करुण प्रलापको सुनकर उन स्त्रियोने बाहोसे एक-दूसरेको आलिगन कर, हिलाई लता जैसे पुष्पोसे मधुको, वैसे ही नेत्रोसे आसू बहाया ॥५९॥

१३५ तब चक्रवाकसे रहित चक्रवाकीकी तरह यशोधरा पृथिवीपर गिर पडी। और शनै गदगद रुद्ध स्वरसे विकल हो बार बार विलाप करने लगी ॥६०॥—

१३६ "मुझ अनाथा सहधमचारिणीको छोडकर यदि प्रिय धम करना चाहते है तो सहधमचारिणीके बिना उनको क्या धम होगा, जो कि तप भोगना चाहते है ॥६१॥

१३७ निश्चय उन्होने महासुदशन आदि पितामह पुराने राजाओके बारेमें सुना नही, जो कि पत्नी-सहित वन गये, तभी तो मेरे बिना वह धम करना चाहते हैं ॥६२॥

१३८ यज्ञोमें वेद-विहित सस्कारवाले दीक्षित दोनो दम्पतीको क्या नही देखते जो परलोकमे भी फलको एक साथ भोगनेकी इच्छा करते हैं, या कि उनकी मेरे प्रति धम ईर्ष्या हुई ॥६३॥

१३९ ध्रुव स जानन्मम धमवल्लभो
मन प्रियेर्प्याकलह मुहुर्मिथ ।
सुख विभीर्मामपहाय रोषणा
महेन्द्रलोकेऽप्मरसो जिघक्षति ॥६४॥

१४० इय तु चिता मम कीदश नु ता
वपुर्गुण विभ्रति तत्र योपित ।
वने यदर्थं स तपासि तप्यते
श्रिय च हित्वा मम भक्तिमेव च ॥६५॥

१४१ न खल्विय स्वगसुखाय मे स्पहा
न तज्जनस्यात्मवतोपि दुलभम ।
स तु प्रियो मामिह वा परत्र वा
कथ न जह्यादिति मे मनोरथ ॥६६॥

१४२ अभागिनी यद्यहमायतेक्षण
शुचिस्मित भर्तुरुदीक्षितु मुख ।
न मन्दभाग्योऽहति राहुलोऽप्यय
कदाचिदके परवर्तितु पितु ॥६७॥

१४३ अहो नशास सुकुमारवचम सुदारुण तस्य मनस्विनो मन ।
कलाप्रलाप द्विषतोऽपि हर्षण
शिशु सुत यस्त्यजतीदृश बत ॥६८॥

१४४ ममापि काम हृदय सुदारुण
शिलामय वाप्ययसोऽपि वा कृतम् ।
अनाथवच्छ्रीरहिते सुखोचिते
वन गते भर्तरि यन्न दीयते" ॥६९॥

१४५ इतीह देवी पतिशोकमूर्छिता
रुरोद दध्यौ विललाप चासकृत् ।
स्वभावधीरापि हि सा सती शुचा
धृति न सस्मार चकार नो ह्रियम् ॥७०॥

१३९ निश्चय मेरे धम-वल्लभ क्षण भरके पारस्परिक प्रिय ईर्ष्या-कलह युक्त मनको जानकर सुखसे डरके मुझ क्रोधनाको छोड इ द्रलोक की अप्सराआको प्र।प्न करना चाहते ह ॥६४॥

१४० मुझे तो यह चिन्ता ह, कि वहा की वह स्त्रिया कैसे शरीर और गुणोको धारण करती है जिनके लिये वह राजलक्ष्मी और मेरी भक्तिको भी छोडकर वनमे तप कर रह है ॥६५॥

१४१ स्वगके सुखके लिये मेरी इच्छा नही है, वह सयमीके लिये दुलभ (भी) नही है, प्रियतम मुझे यहा या परलोकमें कैसे भी न छोडे यही है मेरा मनोरथ ॥६६॥

१४२ दीघ नेत्र शुद्ध मुस्कानयुक्त स्वामीके मुखको देखनेकी यदि म अभागिनी हूँ। तो यह मन्दभाग्य राहुल भी क्या कभी पिताकी गोदमे पौढने योग्य नही है ॥६७॥

१४३ सुकुमार तेजवाले उन मनस्वीका मन अहो नशस और अतिदारुण है, जो कि हाय वह शत्रुको भी हर्षित करनेवाले मधुर-आलापी शिशुपुत्र को छोड गये ॥६८॥

१४४ मेरा भी यह अतिदारुण हृदय जरूर शिलामय या लोह निर्मित है जो कि अनाथकी तरह शोभारहित सुख-योग्य स्वामीके वन जाने पर भी विदीण नही होता' ॥६९॥

१४५ इस प्रकार वहा पतिके शोकसे मूर्छित देवी चिन्ता करती बार-बार विलाप करती स्वभावसे धीर भी सती शोकके कारण धैयको भूल सकोच छोड बैठी थी ॥७०॥

१४६ ततस्तथा शोकविलापविक्लवा
यशोधरा प्रेक्ष्य वसुधरागताम ।
महारविन्दैरिव वृष्टिताडितै
र्मुखै सबाष्पैवनिता विचुक्रुशु ॥७८॥
—सग ८

१७ मातृचेट (५० इ० पू०)

यह अश्वघोष और कनिष्कके समकालीन थे। कनिष्कके प्रयत्नसे जो बौद्ध महापरिषद कश्मीरमें बठी थी, उसमें इन्हें भी कनिष्कने निमन्त्रित किया था, लेकिन वृद्धावस्थाके कारण उसमें योग देनेसे असमथता प्रकट करते हुए इन्होने एक पत्र—"राजा कनिष्क लेख" लिखा था, जिसका अनुवाद तिब्बती भाषामें अब भी प्राप्य ह। कनिष्क जिस बौद्ध धमके

१ बुद्धकी महिमा—

१ स्वयभुवे नमस्तेऽस्तु प्रभूताद्भुतधमणे।
यस्य सख्याप्रभावाभ्यान्न गुणेष्वस्ति निश्चय ॥८॥
२ इयन्त इति नास्त्यन्त चेदृशा इति का कथा।
पुण्या इत्येव तु गुणान् प्रति ते मुखरा वयम् ॥९॥
३ विषह्यमविषह्य वेत्यवधूय विचारणाम्।
स्वयमभ्युपपन्नन्ते निराक्रन्द्रमिद जगत् ॥१॥
४ अव्यापारितसाधुस्त्व त्वमकारणवत्सल।
असस्तुतसखश्च त्वमनवस्कृतबान्धव ॥२॥
५ स्वमासान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा।
प्राणैरपि त्वया साधो मानित प्रणयी जन ॥३॥
६ स्वै शरीरै शरीराणि प्राणै प्राणा शरीरिणा।
जिघासुभिरुपात्ताना क्रीतानि शतशस्त्वया ॥४॥

१४६ तब शोक विलापसे विकल धरनीपर पडी यशोधराको उस तरह देखकर वर्षासे ताडित महाकमलोसी अश्रुपूर्णमुखी वनितायें क्रदन करने लगी ॥७१॥

—सर्ग ८

१७ मातृचेट (ईसवी प्रथम शताब्दी)

माननेवाले थे, वह "सर्वास्तिवाद" था। उस समय अन्त सलिला नदीकी तरह महायानके कितने ही विचार जहा तहा भले ही प्रचलित होने लगे हो, लेकिन अभी उसे यह नाम भी नहीं मिला था, न गधार-कश्मीरकी तरफ उसका पता था। अश्वघोष, मातचेट दोनो सर्वास्तिवादी थे। उनका महायानसे कोई सम्बध नहीं था, हा महायानियोंने भी उनका हमेशा सम्मान किया। मातृचेटका "अध्यघशतक" प्रसिद्ध ग्रथ है।

१ बुद्धकी महिमा—

१ बहुत अदभुत गुणोवाले हे स्वयभू नमस्ते।
जिसके कि गुणोकी गणना और प्रभावोका निश्चय नही है ॥८॥

२ "इतना'का तो अन्त नही है, ऐसा इसकी बात ही क्या?
पवित्र है, इतना ही तुम्हारे गुणोके बारे मे हम कह सकते है ॥९॥

३ सह्य असह्य इस कल्पनाको हटाकर
तुमने कष्टपूर्ण इस जगतको स्वय जाना ॥१॥

४ बिना उपकार-व्यापारके साधु, बिना कारणके तुम वत्सल हो।
बिना प्रशसाके मित्र और न छोडनेवाले बधु हो ॥२॥

५ तुमने अपने मासको भी दे डाला, दूसरी वस्तुओकी तो बात ही क्या? हे साधु तुमने अपने प्राणो से भी प्रेमीजनोका मान किया ॥३॥

६ अपने शरीरसे देहधारियोके शरीरोको, अपने प्राणोंसे प्राणोको, घातकोके हाथमें गायोको सैकडो बार तुमने खरीदा ॥४॥

७ न दुर्गतिभयान्नेष्टामभिप्रार्थयता गतिम्।
केवलाशयशुद्ध्यैव शील सात्मीकृत त्वया ॥५॥
८ जिह्मानां नित्यविक्षेपादजूनान्नित्यसेवनात् ॥
कम्मणा परिशुद्धाना त्वमेकायनता गत ॥६॥
९ पीड्यमानेन बहुशस्त्वया कल्याणचेतसा।
क्लेशेषु विवृतन्तेजो जन क्लिप्टोनुकम्पित ॥७॥
१० परार्थे त्यजत प्राणान् या प्रीतिरभवत्तव।
न सा नष्टोपलब्धेषु प्राणिषु प्राणिनाम्भवेत् ॥८॥
११ कदाचित् निरपेक्षस्य च्छिद्यमानस्य ते सकत्।
वधकेष्वपि सत्त्वेषु कारुण्यमभवत् प्रभो ॥९॥
१२ सम्यक्सम्बोधिबीजस्य चित्तरत्नस्य तस्य ते।
त्वमेव धीर, सारज्ञो दूरे तस्येतरो जन ॥१०॥
१३ नाकृत्वा दुष्कर कम्म दुलभ लभ्यते पद।
इत्यात्मनिरपेक्षेण वीर्यं सम्वर्द्धित त्वया ॥११॥
१४ विशेषोत्कषनियमो न कदाचिदभूत्तव।
अतस्त्वयि विशेषाणा च्छिन्नस्तरतमक्रम ॥१२॥
१५ सुसुखेष्वपि सगोभूत् सफलेषु समाधिषु।
न ते नित्यानुबद्धस्य महाकरुणया हृदि ॥१३॥
१६ त्वादृशान् पीडयत्येव नानुगृह्णाति तत्सुख।
प्रणीतमपि सद्वृत्त यदसाधारण परै ॥१४॥
१७ विमिश्रात् सारमादत्त सर्व्वं पीतमकल्मषम्।
त्वया भुक्त न भुक्त तु विषवत् परिवजितम् ॥१५॥
१८ क्रीणित रत्नसारज्ञ, प्राणैरपि सुभाषितम्।
पराक्रान्त त्वया बोधौ तासु तासूपपत्तिषु ॥१६॥

७ न दुर्गतिके भयस और न सुगतिकी इच्छासे
केवल हृदय शुद्धिके लिये ही तुमने शीलको आत्मसात किया ॥५॥
८ कुटिल कर्मोको नित्य छोडते सरल कर्मोको नित्य सेवन करते,
परिशुद्ध कर्मोके तुम एक आश्रय हुये ॥६॥
९ मगलचित्तवाले पीडित होते तुमने बहुत बार,
क्लेशा (मलो)के विषयमे अपने तेजको प्रकट किया और क्लेशयुक्त
जनपर अनुकम्पा की ॥७॥
१० दूसरेके लिये प्राणोको छोडते जो खशी तुम्हे हुई
वह नष्ट हो फिर मिले प्राणियोके विषयमें भी नही हो
सकती ॥८॥
११ हे प्रभो बिना स्वाथके काटे जाते तुम्हारे प्रति अनेक बार,
हिमक प्राणियोके हृदयमे भी करुणा हो आई ॥९॥
१२ हे धीर उस परम ज्ञानके बीजवाले तुम्हारे
चित्तरत्नके तुम ही सारज्ञ हो दूसरे जन उससे दूर ह ॥१०॥
१३ दुप्कर कम किये बिना दुलभ पद नही मिलता
यह सोच अपनी भी पर्वाह न कर तुमने पराक्रम बढाया ॥११॥
१४ विशेष(पुण्य)के उत्कषका नियम कभी भी तुम्हारे मनमे नही आया
इसलिए तुम्हारे भीतरसे विशेषोके कम-अधिकका ख्याल छिन्न हो
गया ॥१२॥
१५ सुदर सफल समाधियामे सुदर सुखोमे, नित्य तत्पर
हृदयमे महाकरुणाके कारण तुम्हे आसक्ति नही हुई ॥१३॥
१६ वह सुख (भी) तुम्हारे जैसोपर अनुग्रह नही पीडन ही करता है
सुन्दर उत्तम सदाचार भी जो कि दूसरोके लिये असाधारण
हैं ॥१४॥
१७ तुमने मिश्रित वस्तुओंमे से सारको ग्रहण किया, सारे निमल
सारको पिया। तुमने विषयुक्त भोगको छोड दिया ॥१५॥
१८ हे रत्नसारज्ञ प्राणोको देकर भी तुमने सुभाषितको खरीदा।
परमज्ञानके लिये तुमने नाना उपायोसे पराक्रम किया ॥१६॥

१८ भास (२०० ई० पू०)

भास संस्कृतके ख्यातनामा प्राचीन नाटककार है। यद्यपि इनका नाम अपरिचित नहीं था, लेकिन इनकी कृतियां—वर्तमान शताब्दी मे ही प्रकाश में आईं। इनके नाटको में कितने ही महाभारत और रामायण की कथाओ को लेकर लिखे गये है, कुछ वत्सराज उदयन से सम्बन्ध रखते है, और कुछ दूसरी कथाओ को लेकर।

१ महाभारत सम्बन्धी—(१) बाल चरित, (२) पचरात्र, (३) मध्यमव्यायोग, (४) दूतवाक्य, (५) दूतघटोत्कच, (६) कर्णभार, (७) उरुभग।

(तत प्रविशति पद्मिनिका)

१ पद्मिनिका—मधुकरिके, मधुकरिके, आगच्छ तावच्छीघ्रम्।

२ मधुकरिका—हला, इयमस्मि। कि क्रियताम्।
पद्मिनिका—हला, कि न जानासि त्व, भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दु खितेति।

३ मधुकरिका—हा धिक्।
पद्मिनिका—हला, गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिका शब्दय। केवल भर्तृदारिकाया शीर्षवेदनामेव निवेदय, तत स्वयमेवागमिष्यति।

४ मधुकरिका—हला, कि सा करिष्यति ?
पद्मिनिका—सा खल्विदानी मधुराभि कथाभि भर्तृदारिकाया शीर्षवेदना विनोदयति।

५ मधुकरिका—युज्यते। कुत्र शयनीय रचित भर्तृदारिकाया।
पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा। गच्छेदानी त्व। अहमपि भर्त्रे निवेदनाथमार्यवसन्तकमन्वेषे।

१८ भास (२०० ई० पू०)

२ रामायण—(८) प्रतिमा, (९) अभिषेक।

३ उदयन सम्बन्धी—(१०) स्वप्नवासवदत्ता, (११) प्रतिज्ञा यागधरायण।

४ अन्य—(१२) अविमारक, (१३) दरिद्रचारुदत्त।

इनके नाटकोमे स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगधरायण सबसे श्रेष्ठ है।

स्वप्नवासवदत्त

(तब पद्मिनिका प्रवेश करती है)

१ पद्मिनिका—मधुकरिके मधुकरिके, आ तो जल्दीसे।

(प्रवेश करके)

२ मधुकरिका—अरी यह हूँ मै क्या करना है?
पद्मिनिका—अरी क्या तू नही जानती, कि भर्तृदारिका (स्वामि पुत्री) पद्मावती सिरदर्दसे दुखी है।

३ मधुकरिका—हा धिक्कार।
पद्मिनिका—अरी, जल्दी आ, आर्या अवन्तिकाको बुला। केवल भर्तृदारिकाके सिरदर्दको ही अर्ज करना है, वह स्वयं ही आ जायेंगी।

४ मधुकरिका—अरी वह क्या करेगी?
पद्मिनिका—वह इस समय मधुर कथाओसे भर्तृदारिकाके सिरदर्दको भुलवायेगी।

५ मधुकरिका—ठीक है। भर्तृदारिकाकी शय्या कहाँ लगाई?
पद्मिनिका—समुद्रकुटीमें शय्या लगी है। जा इस समय तू। मै भी स्वामीको निवेदन करनेके लिये आर्य वसन्तकको ढूढती हूँ।

६ मधुकरिका—एव भवतु। (निष्क्रान्ता)
पद्मिनिका—कुत्रेदानीमायवसन्तक प्रेक्षे ?
७ विदूषक—(पद्मिनिका विलोक्य) अद्य खलु देवीवियोग-विधुरहृदयस्य तत्र भवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणि-ग्रहणममीहिनस्यात्यन्तसुखावहे मगलोत्सवे मदनाग्नि-दाहोऽधिकतर वधते। (तत प्रविशति विदूषक) अयि पद्मिनिके, पद्मिनिके, क्मिह वतसे ?
पद्मिनिका—आय, वसन्तक, कि न जानासि त्व, भर्तृदारिका पद्मावती शीपवेदनया दु खितेति।
८ विदूषक—भवति, सत्य, न जानामि ?
पद्मिनिका—तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीपानुलेपनार्थं त्वरयामि।
विदूषक—कुत्र शयनीय रचित पद्मावत्या ?
पद्मिनिका—समुद्रगहके किल शय्यास्तीर्णा।
९ विदूषक—गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्र भवते निवेदयिष्यामि।

(निष्क्रान्तौ)
(तत प्रविशति राजा।)

१० राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपते सदृशी तनूजा,
कालक्रमेण पुनरागतदारभार।
लावण्यके हुतवहेन हृतागयष्टि,
ता पद्मिनी हिमहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

(प्रविश्य)

६ मधुकरिका—ऐसा ही हो। (निकल गई)
पद्मिनिका—कहा इस समय आय वसन्तकको देखू ?

(तब विदूषक प्रवेश करता है)

७ विदूषक—आज देवीके वियोगसे दु खित हृदयवाले आप वत्सराज को पद्मावतीके पाणिग्रहणके अतिसुखद मगल्लोत्सवमे कामाग्निका दाह अत्यधिक बढ रहा ह। (पद्मिनिकाको देखकर) अरी पद्मिनिक अरी पद्मिनिके, तू कसे यहा है ?
पद्मिनिका—आय वसन्तक क्या तुम नही जानते भतदारिका पद्मावती सिरददसे दुखी है ?

८ विदूपक—भवति (आप) सचमुच म नही जानता।
पद्मिनिका—तो यह बात स्वामीसे अज करो। तब तक म भी सिर के लेपके लिये जल्दी कर रही हूँ।
विदूपक—पद्मावतीकी शय्या कहाँ लगाई ?
पद्मिनिका—समुद्रकुटीमें सेज बिछी है।

९ विदूषक—आप जाइये, म भी तब तक आप (महाराज) को निवेदन करूँ।

(दोनो बाहर चले गये)

(प्रवेशक समाप्त)

(तब राजा प्रवेश करता है)

१० राजा—
कालक्रमसे फिर पत्नीके भारवाला (मै) लावाणक (गाव) में आगसे छिने शरीरवाली अवन्तिराजकी श्लाघनीय समानरूपा पुत्री उस पद्मिनी (वासवदत्ता) के लिय मै हिमसे निहतपद्मिनीकी तरह सोचता हूँ॥१॥

(प्रवेश करके)

११ विदपक —त्वरता त्वरता तावन् भवान्।
राजा—किमथम् ?

१२ विदूषक —नत्र भवती पद्मावती शीषवेदनया दु खिता
राजा—कैवमाह ?

१३ विदूषक —पद्मिनिकया कथितम।
राजा—भो, कष्टम्—
रूपक्रियासमुदिता गुणतश्च युक्ता,
लब्ध्वा प्रिया मम तु मन्द इवाद्य शोक ।
पूर्वाभिघानसरुजोऽप्यनुभूतदु ख,
पद्मावतीमपि तथैव समथयामि ।।२।।
अथ कस्मिन प्रदेशे वतते पद्मावती ?

१४ विदूषक —समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।
राजा—तेन हि तस्य मागमादेशय।

१५ विदूपक —एत्वेतु भवान्।
(उभौ परिक्रामन)
विदूपक —इद समुद्रगहम्। प्रविशतु भवान्।
राजा—पूव प्रविश।

१६ विदूषक —भो, तथा। (प्रविश्य) अविहा तिष्ठतु
तिष्ठतु तावत् भवान्।
राजा—किमथम् ?
विदूषक —एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले
परिवर्तमान काकोदर ।

११ विदूपक—आप जल्दी करे जल्दी करे।

राजा—क्यो ?

१२ विदूषक—पद्मावती सिरददसे पीडित ‹

राजा—किसने यह कहा ?

१३ विदूषक—पद्मिनिकाने कहा।

राजा—हा कष्टम—

रूपकी शाभासे सपन्न और गुणसे सयुक्त प्रियाको पाकर आज तो मेरा शोक मन्द हुआ था।

पहलेके आघातसे रुग्ण दु ख अनुभव किये मै पद्मावतीको भी उसी तरह मानता हूँ ॥२॥

तो पद्मावती किस स्थानमे है ?

१४ विदूषक—समुद्रकुटीमे शय्या बिछी है।

राजा—तो उसका रास्ता बतलाओ।

१५ विदूषक—आइये, आइये आप।

(दोनो परिक्रमा करते ह)

विदूषक—यह समुद्रकुटी है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

१६ विदूषक—हे, अच्छा (प्रवेश करके)। हो-हो, ठहरे आप।

राजा—क्यो ?

विदूषक—यह दीपके प्रकाशसे सूचित होते शरीरवाला हिलता साप धरती पर है।

१७ राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) । अहो सपव्यक्ति-
वैधेयस्य ।

ऋज्वायता हि मुखतोरणलोलमाला,
भ्रष्टा क्षितौ त्वमवगच्छसि मूख , सपम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवतमाना,
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ।।३।।

१८ विदूषक—(निरूप्य) सुष्टु भवान् भणति । न खल्वय
काकोदर । (प्रविश्यावलोक्य) तत्र भवती पद्मावती
इहागत्य निगता भवेत् ।
राजा—वयस्य , अनागतया भवितव्यम् ।

१९ विदूषक—कथ भवान् जानाति ?
राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य—

शय्या नावनता तथाऽऽस्ततसमा न व्याकुलप्रच्छदा,
न क्लिष्ट हि शिरोपधानममल शीर्षाभिघातौषध ।
रोगे दृष्टिविलोभन जनयितु शोभा न काचित् कृता,
प्राणी प्राप्य रुजा पुनन शयन शीघ्र स्वय मुचति ।।४।।

२० विदूषक—तेन ह्यस्या शय्याया मुहुर्तकमुपविश्य तत्र
भवती प्रतिपालयतु भवान् ।
राजा—वाढम् । (उपविश्य) वयस्य, निद्रा मा बाधते ।
कथ्यता काचित् कथा ।
विदूषक—अह कथयिष्यामि । हुकृति करोतु अत्र
भवान् ।
राजा—बाढम् ।

१७ राजा—(प्रवेश कर देखकर मुस्कुराते हुये) अहो मूखकी सपकी पहचान !

प्रधान द्वारकी जमीनपर गिरी चचल सीधी
लम्बी मालाको मूख तू सप समझता है।
जो कि रातको मन्द वायुमे हिलती,
कुछ सापका अनुकरण करती है ॥३॥

१८ विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते ह। (प्रवेश करके देखकर) पद्मावती यहा आकर चली गई होगी।

राजा—मित्र, शायद अभी न आई हो।

१९ विदूषक—आप कैसे जानते है ?

राजा—यहाँ जान्नेको क्या है ? देखो—

शय्या झुकी नही है और बिछी चादर अस्तव्यस्त नही है
सिरके लेपकी औषधोसे निमल तकिया मलिन नही हुआ है।
रोगमे दृष्टि लोभ पैदा करनेके लिये कोई सजावट नही की गई,
शय्यापर पहुँचकर प्राणी रोगसे स्वय उसे शीघ्र नही छोडता ॥४॥

२० विदूषक—तो इस शय्यापर क्षणभर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा (बैठकर) मित्र नीद मुझे सता रहा है। कोई कथा कहो।

विदूषक—मैं कहूँगा, आप उसपर हुँकार भरे।

राजा—अच्छा।

२१ विदूषक —अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणी-
यान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।
राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

२२ विदूषक —यद्यनभिप्रैतेषा कथा, अन्या कथयिष्यामि।
राजा—वयस्य, खलु नानभिप्रैतेषा कथा। किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपते सुताया,
प्रस्थानकाले स्वजन स्मरन्त्या।
वाष्प प्रवृद्ध नयनान्तलग्न,
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्या ॥५॥

अपि च

बहुशोऽप्युपदेशेष यया मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

२- विदूषक —भवतु, अन्या कथयिष्यामि। अस्ति नगर ब्रह्मदत्त नाम। तत्र किल काम्पिल्यो नाम राजा।
राजा—किमिति ? किमिति ?

२४ विदूषक —(पुनस्तदेव पठति)

राजा—मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्यमित्यभिधी-
यताम्।

२५ विदूषक —किं राजा ब्रह्मदत्त नगर काम्पिल्यम् ?
राजा—एवमेतत्।

२६ विदूषक —राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्यम् (इति बहुश तदेव पठित्वा) इदानी श्रृणोतु भवान्। अयि सुप्तोऽत्र भवान। अतिशीतलेय वेला। आत्मन प्रावारक गृहीत्वागमिष्यामि। (निष्क्रान्त)

(तत प्रविशति वासवदत्ता अवन्तिकावेषेण चेटी च)
चेटी—एत्वेत्वार्या। दृढ खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दु खिता।

२१ विदूपक—उज्जयिनी नामक नगरी है। वहा अतिरमणीय पानीके स्नान है।
राजा—क्या उज्जयिनी ?

२२ विदूषक—यदि यह कथा पसन्द नही है तो दूसरी कहूँगा।
राजा—मित्र, यह कथा अप्रिय नही है किन्तु—
मै प्रस्थानके समय अवन्तिराजकी सुताको
स्वजनोका स्मरण करते याद करता हूँ।
आखके छोरमे बढे हुये आसुओको वह
स्नेहसे मानो मेरे ही हृदयपर गिरा रही थी ॥५॥
और भी
बहुत प्रकार के सगीत उपदेशोके समय मुझे देखती हुई जिसने मिजराब ग्क्त हाथोसे सूना वादन बजाया था ॥६॥

२३ विदूपक—रहने दो दूसरी कहूँगा। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहा काम्पिल्य नामक राजा है।
राजा—क्या क्या ?

२४ विदूपक—(फिर उसीको कहता है)
राजा—मूख राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य ऐसा कहो।

२५ विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त नगर काम्पिल्य ?
राजा—हा, ऐसा ही है यह।

२६ विदूषक—राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य (बहुत बार उसीको दोहराते) अब आप सुतिये। अरे आप यहा सो गये। यह बडी ठडकी बेला है। अपने दुशालेको लेकर आता हूँ। (निकल गया)।
(तब आवन्तिकाके भेसमे वासवदत्ता और दासी प्रवेश करती है)
चेटी (दासी)—आइये, आइये आर्या। भतदारिका सिरददसे बहुत पीडित है।

२७ वासवदत्ता—हा धिक् कुत्र शयनीय रचित पद्मावत्या।
चेटी—समुद्रगहके किल शय्यास्तीर्णा।
वासवदत्ता—तेन ह्यग्रतो याहि।

(उभे परिक्रामत)

चेटी—इद समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनार्थं त्वरयामि। (निष्क्रान्ता)

२८ वासवदत्ता–(शयन नाटयति)अहो अकरुणा खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत प्रविशामि। (प्रविश्यावलोक्य) अहो परिजनस्य प्रमाद। अस्वस्था पद्मावती केवल दीपसहाया कृत्वा परित्यजति। इय पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासन-परिग्रहेणाल्प इव स्नेह प्रतिभाति। तदस्या शय्याया-मुपविशामि। (उपविश्य) किनु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्? दिष्ट्या विच्छिन्नसुख-नि श्वासा। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेशस-विभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिगेति। यावच्छ-यिष्ये। (शयन नाटयति)
राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते!

२९ वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हम् आर्यपुत्र, न खलु पद्मावती। किन्नु खलु दृष्टास्मि! महान् खल्वार्ययौगन्ध-रायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फल सवृत्त।
राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि,

२७ वासवदत्ता—हा धिक। कहा बिछौना किया पद्मावतीके लिये।

चेटी—समुद्रकुटीमे शय्या लगाई है।

वासवदत्ता—ता आगे-आगे चल।

(दोनो परिक्रमा करती है)

चेटी—यह समुद्रकुटी है। आया प्रवेश करे। जब तक म भी सिरके लेपको जल्दी लाती हूँ। (निकल गई)

२८ वासवदत्ता—अहो मेरे देवता निष्ठुर ह। बिरह उत्सुक आय पुत्रके विश्राम स्थानसी यह पद्मावती भी एसी अवस्थाको प्राप्त हुई। (प्रवेश करके देखकर) अहो परिजनोकी भूल। अस्वस्था पद्मावतीको केवल दीपकको साथी बना छोड दिया है। यह पद्मावती सोई हुई है। तो म भी बैठती हूँ।

अथवा दूसरा आसन ग्रहण करनेसे थोडा ही स्नेह मालूम होता है इसलिये इसी शय्यापर बैठती हूँ। (बैठकर) इसके साथ बैठनेमे आज क्यो मेरा हृदय आह्लादित सा है। अहो (यह तो) निरन्तर तथा सुखपूवक साम ले रही है। तो रोग हट गया होगा। अथवा एक ओर की हुई शय्या 'मुझे आलिगन कर को सूचित कर रही है। तो सोती हूँ। (सोनेका अभिनय करती है)

राजा—(सपनाता है,) हा वासवदत्ते,

२९ वासवदत्ता—एकाएक उठकर हम्म आयपुत्र है पद्मावती नही। मैंने क्या देख लिया? आय यौगन्धरायण द्वारा मेरे ऊपर रक्खा प्रतिज्ञा का भारी भार मेरे (इस) देखने से निष्फल हो गया।

राजा—हा, अवन्तिराजपुत्री,

३० वासवदत्ता—दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्र। नात्र कश्चिज्जन यावन्मुहूर्तक स्थित्वा दष्टि हृदय च तोषयामि

राजा—हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये, देहि मे प्रतिवचनम्।

३१ वासवदत्ता—आलपामि भत आलपामि।

राजा—कि कुपितासि ?

३२ वासवदत्ता—नहि नहि, दु खितास्मि।

राजा—यद्यकुपिता, किमथ नालकृतासि ?

३३ वासवदत्ता—इत पर किम ?

राजा—कि विरहिका स्मरसि ?

३४ वासवदत्ता—आ अपेहि, इहापि विरहिका।

राजा—तेन हि विरहिकाथ भवती प्रसादयामि। (हस्तौ प्रसारयति)

३५ वासवदत्ता—चिर स्थितास्मि कोऽपि मा पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा, शय्यावलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्त शयनीये आरोप्य गमिष्यामि। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते, तिष्ठ तिष्ठ। हा धिक—

निष्क्रामन् सभ्रमेणाथ द्वारपक्षेण ताडिता।
ततो व्यक्त न जानामि भूतार्थोय मनोरथ ॥७॥

(प्रविश्य)

३६ विदूषक—अयि प्रतिबुद्धोऽत्र भवान्।

राजा—वयस्य, प्रियमावेदय, धारयते खलु वासवदत्ता।

३० वासवदत्ता—अहो आयपुत्र सपना रहे है। यहा कोइ आदमी नही है। तो क्षण भर ठहर कर नेत्र और हृदयको तुष्ट कर लू।

राजा—हा प्रिये शिष्ये मुझे उत्तर दो।

३१ वासवदत्ता—बोलती हूँ स्वामी, बोलती हूँ।

राजा—क्या कुपित हो?

३२ वासवदत्ता—नही, नही, दु खित हूँ।

राजा—यदि कुपित नही हो, तो क्यो आभूषण-अलकृत नही हो?

३३ वासवदत्ता—इसके बाद क्या (कहूँ)?

राजा—क्या विरहिका को याद करती हो?

३४ वासवदत्ता—(रोषके साथ) आह हटो, यहा भी विरहिका की बात?

राजा—तो विरहिकाके लिये आपसे क्षमा मागता हूँ। (दोनो हाथोको फैलाता है)

३५ वासवदत्ता—देरसे खडी हूँ। कोई मुझे देख लेगा। तो जाऊँगी, अथवा आयपुत्रके नीचे लटकते हाथको बिस्तरेपर रखकर जाऊँगी। (वैसा करके गई) राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ते, ठहर, ठहर। हा धिक्कार। जल्दी-जल्दी निकलते हुये द्वारकी किवाडसे ताडित हुई थी। उससे साफ नही जानता, कि यह मनोरथ सत्य है।।७।।

(प्रवेश करके)

३६ विदूषक—अरे आप जाग गये?

राजा—मित्र, खुशीकी बात तुझे बतलाता हूँ, वासवदत्ता जीती है।

३७ विदूषक—अविहा वासवदत्ता। कुत्र वासवदत्ता?
चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।
राजा—वयस्य? मा मैव
शय्यायामवसुप्त मा वोधयित्वा सखे गना।
दग्धेति ब्रुवता पूव वचिनाऽस्मि रुमण्वता॥८॥

३८ विदूषक—अविहा असभावनीयमेनत्। उदकस्नाना-
सकीतनेन तत्र भवती चिन्तयता सा स्वप्ने दष्टा भवेत्।
राजा—एवम—
यदि तावदय स्वप्नो धन्यमप्रतिबाधनम्।
अथाय विभ्रमो वा स्याद्विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्॥९॥

३९ विदूपक—भो वयस्य, अस्मिन राजकुलेऽवन्ति-
सुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति। सा त्वया दष्टा भवेत्।

४० राजा—न न,
स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोक्षिताजनम्।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दष्ट दीर्घालक मखम्॥१०॥
अपि च वयस्य, पश्य पश्य,
योऽय सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडित।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसस्पर्शो रोमहृष न मुञ्चति॥११॥

४१ विदूपक—मेदानी भवाननथ चिन्तयित्वा। एत्वेतु
भवान, चतुशाल प्रविशाव।

३७ विदूषक—अहो वासवदत्ता ! कहा वासवदत्ता ? चिर हुआ वासवदत्ता तो मर गइ।

राजा—मित्र नही ऐसा नही।

शय्यापर सोये हुये मुझे जगाकर गई, मित्र।

पहिले 'जल गई' यह कहकर रुमण्वानने मुझे धोखा दिया ॥८॥

३८ विदूषक—अविहा, यह असम्भव नही है। हाँ, उदकस्नानके कथन मे उनकी चिता करते आपको वह स्वप्नमे दिखी होगी।

राजा—ऐसा ?

यदि यह स्वप्न ह, ता न जागना ही धन्य होता।

अथवा यदि यह मतिभ्रम है, तो यह भ्रम चिरतक रहता ॥९॥

३९ विदूषक—हे मित्र, इस राजमहलमे अवतिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है उसे तुमने देखा होगा।

४० राजा—ना, ना,

स्वप्नके अन्तमे जाग नेत्रसे पुछे अजनवाली,

सदाचारकी रक्षा करती उसके लम्बे केशोवाले मुखको मने देखा ॥१०॥

और भी मित्र, देखो देखो,

उस सत्रस्त देवीने जो स्वप्नमे भी छुआ

यह बाहु रोमाच नही छोडता ॥११॥

४१ विदूषक—इस समय आप अनर्थ चितन न करें। आइये, आइये आप। चतुशालामे प्रवेश करें।

(प्रवेश करके)

४२ काचुकीय —जयत्वार्यपुत्र ।(प्रविश्य)अस्माक महाराजो दर्शको भवन्तमाह–एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयात खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयागानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्। अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो, भवद्गुणरता पौरा समाश्वासिता।
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधान कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजनन तत्तन्मयानुष्ठित,
तीर्णा चापि बलैनदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

४३ राजा–(उत्थाय) बाढम्। अयमिदानी —

उपेत्य नागेन्द्रतुरगकीर्णे,
तमारुणि दारुणकमदक्षम्।
विकीणबाणौघतरगभगे,
महाणवाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

(निष्क्रान्ता सर्वे)

(इति पचमोऽक)

४२ कचुकी—जय हो आयपुत्रकी। हमारे महाराज दशक आपसे कहत ह— 'आपके अमात्य रुमण्वान बडी सेना के साथ आरुणीको मारनके निये आय। वैसे ही मेरे हाथी-घोडे, रथ और पैदल की विजय-सेनाएँ तैयार ह। सो आप उठे। और भी—

तुम्हारे रिपु छिन्न-भिन्न हो गये आपके गुणमें अनुरक्त पुरवासी धैययुक्त हुये। आपके प्रयाणके समयके हरावलका भी विधान कर दिया। शत्रुके उच्छेदनके लिये जो-जो करणीय था, सो-सो मैंने कर दिया। सेनाये गगा नदी पार हो गईं और वत्सदेश तुम्हारे हाथमें है ॥१२॥

४३ राजा—उठकर अच्छा, अब यह,—
गजेद्रराजो और तुरगोसे आकीण
बिखरे हुये वाणोके उग्र तरग भगोवाले,
महासमुद्र जैसे युद्धमें पहुँचकर,
उस आरुणिका मै नाश करता हूँ ॥१३॥

(सब निकल गये)

(पचम अक समाप्त)

१९ आर्यशूर (२०० ई० पू०)

आयशूर ने जातकोकी कथाओ को लेकर संस्कृतम गद्य पद्यमय "जातकमाला" लिखी। इसम ३८ जातक सुदर काव्य शली तथा भव्य साहित्यिक भाषा म लिखे गये ह । इनकी एक दूसरी पुस्तक 'पारमितासमास'

जातकमाला

सुपारगजातकम्

१ बोधिसत्त्वभूत किल महासत्त्व परमनिपुणमतिनो सारथि- बभूव। धमता ह्येषा बोधिसत्वाना प्रकृतिमेधावित्वाद्यदुत य य शास्त्रातिशय जिज्ञासन्ते कलाविशेष वा, तस्मिस्तस्मिन्न- धिकतरा भवन्ति मेधाविनो जगत । अथ स महात्मा विदितज्योतिगतित्वाद्दिग्विभागेष्वसमूढमति , परिविदित- नियतागन्तुकौत्पातिकनिमित्त , कालाकालक्रमकुशलो, मीन- तोयवणभौमप्रकारशकुनिपवतादिभिश्चिह्नै सूपलक्षित- समुद्रदेश , स्मृतिमाविजितत द्रानिद्र , शीतोष्णवर्षादिपरि- खेदसहिष्णुरप्रमादी, धृतिमानाहरणापहरणकुशलत्वा- दीप्सित देश प्रापयिता वणिजामासीत्। तस्य परमसिद्ध- यात्रत्वात्**सुपारग** इत्येव नाम बभूव। तदध्युषित च पत्तन **सुपारग**मित्येवाख्यातमासीत्, यदेतर्हि **सुपारग**मिति ज्ञा- यते। सोऽपि मगलसम्मतत्वाद् वृद्धत्वेऽपि सायात्रिकैर्यात्रा- सिद्धिकामैवहनमभ्यथनसत्कारपुर सरमारोप्यते स्म।

२ अथ कदाचिद् भरुकच्छादभिप्रयाता **सुवर्णभूमि**वणिजो यात्रासिद्धिकामा सुपारग पत्तनमुपेत्य त महासत्व वहनारो- हणार्थमभ्यथयामासु ।

१९ आयशूर (२०० ई० पू०)

पारमिताओ पर छ सर्गों, ३६४ श्लोको में "सरल तथा सुबोध शली में" रची गई ह।

(१ हारवड प्राच्य ग्रथमालामें डा० कन द्वारा सम्पादित, २ रोमसे अनाली लनेरानसी, जिल्द १०, १९५० में प्रकाशित।)

जातकमाला

सुपारग जातक

१ उस समय महापुरुष बोधिसत्त्व हो अत्यत निपुणबुद्धिवाले नाविक साथवाह थे। स्वभावत मेधावी होनेसे बोधिसत्त्वोकी यह धमता (प्रकृति) है जो कि वह जिस-जिस विशेष शास्त्र या विशेष कलाको जानना चाहते ह उस-उसमे ससारमें अति मेधावी होते है। तब वह महात्मा ताराकी गतिके जानकार होनेसे दिशाओके पहचाननेमे न भ्रम करनेवाले नियमपूवक या आकस्मिक उत्पातके लक्षणोके जानकार, काल-अकालके क्रममे कुशल मछली जलके रग, भूमिके प्रकार, पक्षी पवत आदि चिन्हो द्वारा समुद्रके देशोको अच्छी तरह जानते याद रखनेवाले, तद्रा निद्रा जीते, शीत-उष्ण वर्षा आदिके खेदको सहनेवाले प्रमादरहित, धैयवान, लेने छोडनेमे चतुर होनेसे बनियोको इच्छित देशमें पहुँचानेवाले थे। यात्रामे परमसिद्ध होनेसे "सुपारग" यही उनका नाम पड गया था। उनके और उनके निवास वाले बन्दरगाहको सुपारग यही कहकर (पुकारा) जाता था, जोकि आजकल सुपारग (सुपारा) के नामसे ज्ञात है। मगल माने जानेके कारण उन्हें बुढापेमे भी यात्राकी सिद्धि चाहनेवाले पोत वणिक् प्राथना-सत्कार-सहित पोत-वहनके कायमें लगाते थे।

२ एक समय भडौंचसे प्रस्थान किये बमकि बनियोने यात्राकी सिद्धिकी कामनासे सुपारगपत्तनमें आकर उस महापुरुषसे पोतपर आरोहण करनेके लिए प्राथना की।

स तानुवाच—

३ "जराज्ञया सह्रियमाणदर्शने श्रमाभिपातै प्रतनूकृतस्मृतौ।
स्वदेहकृत्येऽप्यवसन्नविक्रमे सहायता का परिशक्यते
मयि" ॥१॥

४ वणिज ऊचु —"विदितेयस्माक युष्मच्छरीरावस्था।
सत्यपि च व पराक्रमासहत्वे नैव वय कर्मविनियोगेन
युष्मानायासयितुमिच्छाम । कि तर्हि

५ त्वत्पादपकजसमाश्रयसत्कृतेन,
मागल्यतामुपगता रजसा त्विय नौ ।
दुर्गे महत्यपि च तोयनिधावमुष्मिन्,
स्वस्ति व्रजेदिति भवन्तमुपागता स्म" ॥२॥

६ अथ स महात्मा तेषामनुकम्पया जराशिथिलशरीरोऽपि
तद्वहनमारुरोह। तदधिरोहणाच्च प्रमुदितमनस सर्व
एव ते वणिजो बभूवुर्- "नियतमस्माकमुत्तमा यात्रा
सिद्धिरि"ति। क्रमेण चावजगाहिरे विविधमीनकु-
लविचरितमनिभृतजलकलकलारावमनिलबलविलासप्रवि-
चलिततरग बहुविधरत्नैर्भूमिविशेषैरर्पितरग
फेनावलीकुसुमदामविचित्रमसुरबलभुजगभवन दुरा-
पपातालमप्रमेयतोय महासमुद्रम् ।

७ अथेन्द्रनीलप्रकराभिनील सूर्याशुतापादिव ख विलीनम्।
समन्ततो ऽन्तर्हिततीरलेखगाधमम्भोनिधिमध्यमीयु ॥३॥

८ तेषा तत्रानुप्राप्ताना सायाह्नसमये मृदुभूतकिरणचक्र
प्रभावे सवितरि महदौत्पातिक परमभीषण प्रादुरभूत्।

९ विभिद्यमानोर्मिविकीर्णफेनश्चण्डानिलास्फालनभीमनाद ।
नैभृत्यनिर्मुक्तसमग्रतोय क्षणेन रौद्र समभूत्समुद्र ॥४॥

सुपारगने उनसे कहा —

३ "बुढापेकी आज्ञासे दृष्टि क्षीण, थकावटके जोरसे स्मृति-क्षीण अपने देहकृत्यमें भी शक्तिहीन मुझसे तुम किस सहायताकी आशा रखते हो ॥१॥'

४ बनियोने कहा— तुम्हारी ऐसी शारीरिक अवस्था हमे विदित है। आपके परिश्रमके न सह सकने पर भी हम इस तरह काम में लगाकर तकलीफ देना नही चाहते। फिर क्यो—

५ तुम्हारे चरणकमलके आश्रयसे पूजित धूलिसे यह नौका मगलमय हो गई। इस दुगम महान सागरमे भी, मगलपूवक यात्रा हो, यह सोच हम आपके पास आये' ॥२॥

६ तब वह महात्मा बुढापेसे शिथिल शरीर भी उनपर कृपा करते उनके पोतपर आरूढ हुए। उनके चढनेसे यह सोचकर वे सभी बनिये मदित-मन हुए कि 'अवश्य हमारी यात्रा की सिद्धि उत्तम होगी।" क्रमश नाना मीनोके विचरणस्थान, निरन्तर जलके कलरवसे युक्त, वायुके बलके विलाससे चलित तरग सहित, बहुत प्रकारके रत्नो तथा विशेष भूमियोसे पाये रगवाले फेनोकी कुसुममालासे विचित्र, असुरा भुजगोके भवन तल रहित अपरिमित जलवाले महासमुद्रको उन्होने अवगाहन किया।

७ फिर वह नीलम-समूहसे अतिनील-सूय-किरणोके तापसे मानो आकाशमें विलीन, चारो ओर छिपी तीरलेखावाले अगाध समुद्रके मध्यमें पहुँचे ॥३॥

८ उनके वहा पहुँचनेपर शामके समय सूय किरणोके प्रभावके नरम होनेके समय अति भीषण महान उत्पात प्रकट हुआ।

९ फूटती तरगो द्वारा बिखेरे फेनोवाला, प्रचड वायुके हिलानेका भयकर नाद, बिल्कुल मुक्त, सारे जलवाला समुद्र एक क्षणमें ऐसा विकराल हो गया ॥४॥

१० उत्पातवाताकलितैमहद्भिस्तोयस्थलैर्भीमरयैभ्रमद्भि
युगान्तकालप्रचलाचलेव भूमिबभूवोग्रवपु समुद्र ॥५॥
११ विद्युल्लतोद्भासुरलोलजिह्वा नीला भुजगा इव नैकशीर्षा
आवव्रुरादित्यपथ पयोदा प्रसक्तभीमस्तनितानुनादा ॥६॥
१२ घनैघनैरावृतरश्मिजाल सय क्रमेणास्तमुपारुरोह ।
दिनान्तलब्धप्रसर समन्तात्तमो घनीभावमिवाजगाम ॥७॥
१३ धाराशरैराच्छुरितोर्मिचक्रे महोदधावुत्पततीव रोषात ।
भीतेव नारभ्यधिक चकम्पे विपादयन्ती हृदयानि
तेषाम् ॥८॥
१४ ते त्रासदीनाश्च विषादमूका धीरा प्रतीकारससम्भ्रमाश्च ।
स्वदेवतायाचनतत्पराश्च भावा यथासत्त्वगुण विवव्रु ॥९॥
१५ अथ ते सायात्रिका पवनबलचलितसलिलवेगवशगया
नावा परिभ्रम्यमाणा बहुभिरप्यहोभिनव कुतश्चित्तीर
ददृशुन च यथेप्सितानि समुद्रचिह्नानि। अपूर्वैरेव
तु समुद्रचिह्नैरभिवधमानवैमनस्या भयविषादव्या-
कुलतामुपजग्मु । अथैतान्सुपारगोबोधिसत्वो व्यव-
स्थापयन्नुवाच—"आश्चर्यं खलु महासमुद्रमध्यम-
वगाढानामौत्पातिकक्षोभपरिक्लेश । तदलमत्र भवता
विषादानुवृत्या। कुत —
१६ नापत्प्रतीकारविधिर्विषादस्तस्मादल दैन्यपरिग्रहेण ।
धैर्यात्तु कार्यप्रतिपत्तिदक्षा कृच्छ्राण्यकृच्छ्रेण समु-
त्तरन्ति ॥१०॥
विषाददैन्य व्यवधूय तस्मात्कार्यावकाश क्रियया भजध्वम् ।
प्राज्ञस्य धैर्यज्वलित हि तेज सर्वार्थसिद्धिग्रहणा-
ग्रहस्त ॥११॥

१० उत्पातके वायुसे युक्त महान जलस्थान भीषण वेगसे चक्कर खाना प्रलयके समय तेज चलते पर्वतोवाली पृथिवीकी तरह समुद्र उग्र-शरीर हो गया ॥५॥

११ बिजलीका लतासे भासुर चचल जिह्वावाले अनेक सिरवाले नील भुजगोकी तरह भयकर कडककी आवाजसे युक्त मेघोने सूर्यके पथको ढाक दिया ॥६॥

१२ घने मेघोमे टके किरणोवाला सूर्य क्रमश अस्त हो गया सन्ध्याके अवकाश पानेपर चारो ओर अन्धकार घना हो गया ॥७॥

१३ धाराके वाणोसे उछलती तरगोवाले रोषसे मानो ऊपर कूदते समुद्रमे उनके हृदयोको विपादित करती भयभीत सी नौका अधिक कापने लगी ॥८॥

१४ वे धीर वनिये त्राससे दीन विषादसे मूक हो, उपायके लिये उद्विग्न अपने देवताओकी प्रार्थनामे तत्पर, भावोसे भिन्न गुणको प्रकट करने लगे ॥९॥

१५ तब उन जहाजी व्यापारियोने पवनके बलसे चचल जलके वेगमे पडी नावपर घूमते बहुत दिनोतक कही भी न तीरको और न अभिलषित सामुद्रिक चिन्होको देखा। अपरिचित समुद्र चिन्होंसे बढी चिन्तासे युक्त वह भय और विषादमे व्याकुल हो गये। तब उन्हे बोधिसत्व सुपारगने सान्त्वना देते कहा—"महासमुद्रके मध्यमें पडे (तुम्हारा), उत्पातसे क्षुब्ध और क्लेशित होना आश्चर्य (की बात) नही है। पर आपका विषाद करना बेकार है। क्योकि—

१६ विषाद करना आफतके प्रतिकारका उपाय नही है, इसलिये दीनता दिखलाना व्यर्थ है। धैर्यसे कार्य करनेमे दक्ष (पुरुष) कठिनाइयोको आसानीसे पार होते है ॥१०॥

इसलिये विषाद और दीनता को छोडकर कार्यके समय क्रियामें तत्पर होओ। बुद्धिमानका धैर्य द्वारा प्रज्ज्वलित तेज सारी अर्थ-सिद्धिके पानेका करपल्लव है ॥११॥

१७ तद्यथाधिकारावहिता भवन्तु भवन्त" इति। ते सायात्रिकास्तेन महात्मना धीरीकृतमनस कूलदर्शनोत्सुकमतय समुद्रमवलोकयन्तो ददृशु पुरुषविग्रहानामुक्तरूप्यकवचानिवोन्मज्जतो निमज्जतश्च। सम्यक् चैषामाकृतिनिमित्तमुपधाय सविस्मया सुपारगाय "अपूर्व खल्विदमिह समुद्रे चिह्नमुपलभ्यते—महात्मन्यवेदयन्त। एते खलु—

१८ आमुक्तरूप्यकवचा इव दैत्ययोधा,
घोरेक्षणा खुरनिकाशविरूपघोणा।
उन्मज्जनावतरणस्फुरणप्रसंगात्,
क्रीडामिवार्णवजलेऽनुभवन्ति केपि॥१२॥

१९ **सुपारग** उवाच—"नैते मानुषा अमानुषा वा मीना खल्वेते। अतो न भेतव्यमेभ्य, किन्तु—

२० सुदूरमपकृष्टा स्म पत्तनद्वितयादपि।
खुरमाली समुद्रोऽय तद्यतध्व निर्वर्तितुम्"॥१३॥

२१ चण्डवेगवाहिना सलिलनिवहेनैकान्तहरेण च पाश्चात्येन वायुना समाक्षिप्ततया न ते सायात्रिका शेकुर्विनिवर्तितुम्।

अथावगाहमाना क्रमेण रूप्यप्रभावभासितमनीलफेनततनिचयपाण्डुरमपर समुद्रमालोक्य सविस्मया
सुपारगमूचु —

२२ "स्वफेनमग्नैरिव कोऽयमम्बुभिमहार्णव शुक्लदुकूलवानिव।
द्रवानिवेन्दो किरणान्समुद्वह समन्ततो हास इव प्रसर्पति"॥१४॥

१७ सो अपने अधिकारके अनुसार आप लोग सावधान हो जायें। महात्माके ऐसा कहनेपर उन पोतारोहियोके मनमे धीरज बधा। किनारा देखनेको उत्सुक मनवाले उन्होंने समुद्रको देखते चादीकी कवच धारे पुरुष शरीरोको डूबते-उतराते देखा। उनके आकार-चिन्होको अच्छी तरह समझ कर विस्मयके साथ उन्होंने सुपारगसे निवदन किया— यहाँ महासमुद्रमे अपूर्वचिह्न मिल रहा है। ये तो—

१८ चाँदीकी कवच धारण किये दैत्य योद्धाओसे, घोर-नेत्र, खुर समान कुरूप नाकोवाले, डूबते उतराते अपनी गतिके प्रसग द्वारा समुद्र जलमे खेल रहे है" ॥१२॥

१९ सुपारग बोले—"ये मनुष्य या अमनुष्य नही है बल्कि ये मछलियाँ है। अत इनसे डरना नही चाहिए, बल्कि (अब)—

२० हम दुहरे पत्तनसे अति दूर आ गये है। यह खुरमाली समुद्र है सो लौटनेकी कोशिश करो'॥१३॥

२१ (पर) तीव्र वेगसे बहनेवाले जलसे एक ओर खिचते, पछुआँ हवाके खिचावके कारण (बढते) पोतारोही नही लौट सके।

सब अवगाहन करते क्रमश रुपहले प्रभावसे भासित अनील फेनो युक्त दूसरे श्वेत समुद्रको देखकर विस्मयके साथ उन्होंने सुपारगसे कहा—

२२ अपने फेनमें डूबे जलोके सफेद दुकूलवाला यह कौन सा महासागर है, जो चद्रमाकी पिघली किरणोको वहन करते हासकी तरह चारो ओर फैला है" ॥१४॥

---

१ देवता राक्षस।

२३ "क्षीरार्णव इति ख्यात उदधिदधिमाल्यसौ ।
क्षम नात पर गन्तु शक्यते चेन्निवर्तितुम" ॥१५॥

२४ वणिज ऊचु —"न खलु शक्यते विलम्बयितुमपि वहन कुत एव सन्निवर्तयितुमतिशीघ्रवाहित्वाद्वहनस्य प्रतिकूलत्वाच्च मारुतस्येति"।

अथ व्यतीत्य तमपि समुद्र सुवणप्रभानुरजितमचलोर्मिमालमग्निज्वालाकपिलसलिलमपर समुद्रमालोक्य विस्मयकौतूहलास्ते वणिज **सुपारग** पप्रच्छु —

२५ "बालाकलक्ष्म्येव कृतागरागै समुन्नमद्भि सलिलैरनीलै ।
ज्वल महानग्निरिवावभाति को नाम तस्माच्च महार्णवोऽयम्" ॥१६॥

२६ **सुपारग** उवाच—
"अग्निमालीति विख्यात समुद्रोऽय प्रकाशते ।
अतीव खलु साधु स्यान्निवर्तेमहि यद्यत" ॥१७॥

२७ इति स महात्मा नाममात्रमकथयत्तस्य सरित्पतेन तोयवैवर्ण्यकारण दीर्घदर्शित्वात् ।

अथ ते सायात्रिकास्तमपि समुद्रमतीत्य पुष्परागेन्द्रनीलप्रभोद्योतितसलिल परिपक्वकुशवननिकाशवर्ण समुद्रमालोक्य कौतूहलजाता **सुपारग** पप्रच्छु —

२८ "परिणतकुशपर्णवर्णतोय सलिलनिधि कतमोन्वय विभाति ।
सकुसुम इव फेनभक्तिविचित्रैरनिलजवाकलितैस्तरगभगै" ॥१८॥

२९ **सुपारग** उवाच—"भो सार्थवाहा, निवर्तन प्रति यत्न क्रियताम् । न खल्वत क्षमते पर गन्तुम् ।

२३ यह क्षीरसागर नामसे प्रसिद्ध दधिमाली सागर है। इससे आगे नहा जाना चाहिये, यदि हो सके तो लौटाआ' ॥१५॥

२४ बनियोने कहा— 'पोतका धीमा भी नही किया जा सकता, लौटने की तो बात ही क्या, क्योकि पोत बडी तेजीसे बह रहा है और वायु प्रतिकूल है।"

तब उस समुद्रको भी पारकर सुवणकी प्रभा से अनुरजित निश्चल तरग मालावाले अग्निकी ज्वाला समान भूरे जलवाले दूसरे समुद्र को देखकर कौतूहलयुक्त उन बनियोने सुपारगसे पूछा—

२५ 'बालसूयकी शोभासे मानो अगराग लगाये, उठते अनील जलोसे प्रज्ज्वलित, महान अग्निकी तरह भासित होता यह कौन नामवाला महासागर है' ॥१६॥

२६ सुपारग बोले—

'अग्निमाली नामसे विख्यात यह समुद्र भास रहा है। बहुत अच्छा हो, यदि यहाँसे हम लौट चले" ॥१७॥

२७ इस प्रकार उस महापुरुषने उस सागरका नाम मात्र बतलाया, दीघ दर्शिताके कारण जलके भिन्न वणके होनेकी वजह नही बतलाई। तब उन पोतारोहियाने उस समुद्रको भी पार कर पोखराज इद्रनील की प्रभा जैसे चमकते जलवाले पके कुशके जगलके समान वणवाले समुद्रको देखकर कौतूहलवश सुपारगसे पूछा—

२८ "पके कुशके पत्तेके रग जैसे जलवाला यह कौन सा सागर भास रहा है, (जो) फेनकी किनारीसे विचित्र वायुके वेगसे बनी तरग भगो द्वारा सुन्दर कुसुम जैसा है' ॥१८॥

२९ सुपारग बोले— हे साथबाहो, लौटनेके लिये प्रयत्न करो। इससे आगे जाना ठीक नही।

३० कुशमाली समुद्रोऽयमत्यकुश इव द्विप ।
प्रसह्यासह्यसलिलो हरन् हरति नो रतिम्" ॥१९॥
३१ अथ ते वाणिजका परेणापि यत्नेन निवर्तयितुमशक्नुवन्त-
स्तमपि समुद्रमतीत्य वशरागवैडूर्यप्रभाव्यतिकरहरितस-
लिलमपर समुद्रमालोक्य सुपारगमपृच्छन्--
३२ "मरकतहरितप्रभैर्जर्वहति नवामिव शाद्वलश्रियम् ।
कुमुदरुचिफेनभूषण सलिलनिधि कतमोऽयमीक्ष्यते" ॥२०॥
३३ अथ स महात्मा तेन वणिग्जनस्य व्यसनोपनिपातेन दह्य-
मानहृदयो दीर्घमुष्णमभिनिश्वस्य शनैरुवाच--
३४ "अतिदूरमुपेता स्थ दु खमस्मान्निवर्तितुम् ।
पर्यन्त इव लोकस्य नलमाल्येष सागर" ॥२१॥
३५ अथ ते वाणिजका विषादोपरुध्यमानमनसो विस्रस्यमान-
गात्रोत्साहा निश्वसितमात्रपरायणास्तत्रैव निषेदु । व्यतीत्य
च तमपि समुद्र सायाह्नसमये विलम्बमानरश्मिमण्डले
सलिलनिधिमिव प्रवेष्टुकामे दिवसकरे समुद्धतनस्येव
सलिलनिधेरशनीनामिव च सम्पतता वेणुवनानामिव
चाग्निपरिगताना विस्फुटता तुमुलमतिभीषण श्रुति-
हृदयविदारण समुद्रध्वनिमश्रोषु । श्रुत्वा च सन्त्रासवशगा
स्फुरन्मनस सहसैवोत्थाय समन्ततोऽनुविलोकयन्तो ददृशु
प्रपात इव श्वभ्र इव च महति तमुल्कौघ निपतन्त
दृष्ट्वा च परमभयविषादविह्वला सुपारगमुपेत्योचु
३६ "निर्भिन्दन्निव न श्रुती प्रतिभयश्चेतासि मथ्नन्निव
क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरय दूरादपि श्रूयते ।
भीमे श्वभ्र इवार्णवस्य निपतत्येतत्समग्र जल,
तत्कोऽसावुदधि किमत्र च पर कृत्य भवान्मन्यते" ॥२२॥

३० अकुशसे न रुकनेवाले गज-सा यह कुसुमाली समुद्र है, जबदस्त असह्य जलवाला (यह) खीचते हमारी प्रसन्नताको खीच रहा है' ॥१९॥

३१ तब उन बनियोने जबदस्त प्रयत्न द्वारा भी लौटनेमें असमथ हो उस समुद्र को पार कर बास के रग के हीरे की प्रभा युक्त हरे जलवाले दूसरे समुद्रको देखकर सुपारगसे पूछा—

३२ 'पन्ना जसी हरी प्रभावाले जलके साथ, नवीन हरीतिमा शोभा-धारक, कुमुद जैसा रुचिर फेन भषणधारी, यह कौन सा जलनिधि दिखाई देता है" ॥२०॥

३३ तब बनियोके उस आफतसे दग्ध हृदय हो महात्माने लम्बी साँस ले धीरेसे कहा—

३४ 'दु खमें हम वहुत दूर आ गये, यहाँसे लौटना चाहिये। दुनियाके अन्त सा यह नलमाली सागर है" ॥२१॥

३५ तब वे बनिये विषादसे रुद्ध मन हो शरीरके उत्साहको छोड सास भर लेते वही बैठ गये। उस समुद्रको भी पार कर शामको समुद्रमें प्रवेश करनेके इच्छुक होते, समुद्रके उठानेको ही मानो गिरती बिजलियो जैसी सूय किरणोके लटकते समय आगकी लपटमें आकर फूटते बाँसके जगलोके तुमुल भीषण कान फाडनेवाली समुद्र ध्वनि सुनी। चारो ओर देखते पवत प्रभातकी तरह, खड्डकी तरह भारी तुमुल प्रवाहसे गिरते चारो ओर देखकर अत्यन्त भय और विषादसे विह्वल हो त्राससे होश उडते हो एकाएक उठकर सुपारगके पास आकर उन्होने कहा—

३६ "हमारे कानोको फाडती सी, मनोको मथन करती सी भयद, मानो क्रुद्ध सागर ही की यह ध्वनि दूरसे सुनाई दे रही है। मानो समुद्रका यह सारा जल भयकर खडडमे गिर रहा है। सो यह कौन सा समुद्र है और यहाँ आप क्या करना अच्छा मानते हैं" ॥२२॥

३७ अथ स महात्मा ससम्भ्रम कष्ट "कष्टमि"त्युक्त्वा
समुद्रमालोकयन्नुवाच—

३८ यत्प्राप्य न निवर्तन्ते मृत्यामुर्खमिवामुखम्।
अशिव समुपेता स्थत तदेवद्वडवामुखम् ॥२३॥

३९ तदुपश्रुत्य ते वाणिजका "वडवामुखमुपेता वयमिति"
त्यक्तजीविताशा मरणभयविक्लवीभूतमनस —

४० सस्वर रुरुदु केचिद्विलेपुरथ चुक्रुशु ।
न किंचित्प्रत्यपद्यन्त केचित्त्रासविचेतस ॥२४॥

४१ विशेपत केचिदभिप्रणेमुर्देवेन्द्रमार्तिप्रहतमनोभि ।
आदित्यरुद्राश्च मरुद्वसूश्च प्रपेदिरे सागरमेव चान्ये ॥२५॥

४२ जेपुश्च मन्त्रानपरे विचित्रान ये तु देवी विधिवत्प्रणेमु ।
सुपारग केचिदुपेत्य तत्तद्विचेष्टमाना करुण विलेपु ॥२६॥

४३ "आपद्गतत्रासहरस्य नित्य परानुकम्पागुणसम्भृतस्य।
अथ प्रभावातिशयस्य तस्य तवाभ्युपेतो विनियोगकाल
॥२७॥

४४ आर्ताननाथाच्छरणागतान्नस्त्व त्रातुमावर्जय धीर चेत ।
अय हि कोपाद्वडवामुखेन चिकीर्षति ग्रासमिवार्णवोऽ
स्मान् ॥२८॥

४५ नोपेक्षितु युक्त मय जनस्ते विपद्यमान सलिलौघमध्ये।
नाशा तवात्येति महासमुद्रस्तद्वायतामप्रशमोऽ
यमस्य"॥२९॥

४६ अथ स महात्मा महत्या करुणया समापीड्यमान-
हृदयस्तान् वाणिजकान् व्यवस्थापयन्नुवाच—"अस्त्यत्रापि
न कश्चित्प्रतीकारविधि प्रतिभाति। तत्तावत्प्रयोक्ष्ये।
यतो मुहूर्त धीरास्तावद् भवन्तु भवन्त" इति।

३७ तब वह महात्मा "कष्ट-कष्ट' यह कहते समुद्रको देखकर बोले—

३८ खुले मत्युके मुखकी तरह जहा पहुँचकर लौटा नही जा सकता। सो इस अमगल बडवामुखमे तुम पहुँच गये ।।२३।।

३९ यह सुनकर वे बनिये 'हम बडवामुखमे पहुच गये' यह सोच जीवनकी आशा छोड मरणके भयसे विकल हो गये—

४० कुछ स्वर के साथ रोने विलाप और चिल्लाहट करने लगे। कोई त्रासके मारे बेहोश हो कुछ नही समझ पाते थे ।।२४।।

४१ किसीने विशेषत आत मनसे इद्रको प्रणाम किया। दूसरोने सूय, रुद्र और मरुतो वसुओ और सागरकी ही प्राथना की ।।२५।।

४२ औरोने विचित्र मत्रोको जपा। अन्योने देवीको विधिपूवक प्रणाम किया। कुछने नाना प्रकारकी चेष्टा करते सुपारगके पास आकर करुण विलाप किया ।।२६।।

४३ आपदमे पडोके त्रासको नित्य हरनेवाले परानुकम्पासे युक्त अतिशय प्रभाववाले तुम्हारे उस विनियोगका काल आ गया ।।२७।।

४४ हे धीर, हम आर्तों-अनाथो शरणागतोकी रक्षाके लिये मन लगाओ। कोपसे यह समुद्र बडवामुखका हमे ग्रास बनाना चाहता है ।।२८।।

४५ अपार जलके बीच मारे जाते इन लोगोकी उपेक्षा करना ठीक नही। समुद्र तुम्हारी आज्ञा का अतिक्रमण नही करेगा, सो इसकी इस अशान्ति को रोको" ।।२९।।

४६ तब उस महात्माने महती करुणासे मनमे पीडित हो उन बनियोको सान्त्वना देते कहा—"यहा प्रतिकार का एक उपाय है, यह मुझे मालूम पडता है। सो मै उसका प्रयोग करूँगा। इसके लिये क्षणभर आप लोग धीरज धरें"।

४७ अथ ते वाणिजका "अस्त्यत्रापि किल प्रतीकारविधि"-
रित्याशया समुपस्तम्भितधैर्यास्तदवहितमनसस्तूष्णी
बभूवु । अथ सुपारगो बोधिसत्व एकासमुत्तरासग कृत्वा
दक्षिणेन जानुमण्डलेनाधिष्ठाय नाव समावर्जितसवभाव
प्रणम्य तथागतेभ्यस्तान्सायात्रिकानाम त्रयते स्म—
"शृण्वन्त्वत्र भवन्त सायात्रिका सलिलनिधिव्योमाश्रयाश्च देवविशेषा —

४८ स्मरामि यत आत्मान यत प्राप्तोऽस्मि विज्ञताम् ।
नाभिजानामि सचिन्त्य प्राणिन हिसितु क्वचित् ॥३०॥

४९ अनेन सत्यवाक्येन मम पुण्यबलेन च ।
वडवामुखमप्राप्य स्वस्ति नौर्विनिवतताम्" ॥३१॥

५० अथ तस्य महात्मन सत्याधिष्ठानबलात् पुण्यतेजसा सह
सलिलजवेन स मारुतो व्यावतमानस्ता नाव निवत-
यामास । निवृत्ता तु ता नावमभिसमीक्ष्य ते वाणिजका
परमविस्मयप्रहर्षोद्धतमानसा "निवृत्ता नौरिति"
प्रणामसभाजनपुरस्सर सुपारगाय न्यवदयन्त । अथ स
महात्मा तान्वाणिजकानुवाच—"स्थिरीभवन्तु भवन्त
शीघ्रमारोप्यन्ता शीतानि ।" इति च तेन समादिष्टा
प्रमोदादुद्भूतबलोत्साहास्ते तदधिकृतास्तथा चक्रु ।

५१ अथ मुदितजनप्रहासनादा प्रविततपाण्डुरशीतचारुपक्षा ।
सलिलनिधिगता रराज सा नौगतजलदे नभसीव राज-
हसी ॥३२॥

४७ तब वे बनिये 'यहा प्रतिकार का उपाय है' यह मनमे कर धैय धर उनकी ओर ध्यान लगाये चुप हो गये।

तब सुपारग बोधिसत्वने चादरको एक कधेपर कर दाहिने घुटनेपर बैठ नावपर सारे मनको एकत्रित कर तथा बुद्धोको प्रणाम कर उन पोतारोहियो को सम्बोधित किया—'आप पोतारोही तथा समुद्र आकाशमे रहनेवाले देवता लोग (मेरी) सुने।

४८ चूकि मै अपनेको याद करता हूँ, चूकि मैने विज्ञता प्राप्त की ह। सोचने पर भी मुझे याद नही कि मने कभी प्राणियोकी हिंसा की हो ॥३०॥

४९ सो इस सत्यवचन और मेरे पुण्यबलसे, यह नाव बडवामुख मे न जा स्वस्ति म लौट जाये' ॥३१॥

५० तब उस महात्माके सत्य-सकल्पके बलसे पुण्य तेजके साथ जलके वेग से लौटाये वायुने उस नावको लौटा दिया। नावको लौटी देखकर बनियो ने अत्यन्त विस्मय और हषसे उद्धत मन हो प्रणामपूवक सुपारगसे निवेदन किया "नाव लौट चली"। तब उस महात्माने उन बनियोसे कहा—"आप स्थिर हो जायें, जल्दी पाल चढावें।" ऐसा कहके आदेश देनेपर प्रमोद से बलोत्साहयक्त हो अधिकारियोने वैसा ही किया।

५१ तब मुदित जनोके हास-नादवाली, फैले श्वेत पालरूपी सुन्दर पक्ष वाली, वह नाव समुद्रमें मेघ-रहित आकाशमे राजहसीकी तरह शोभा दे रही थी ॥३२॥

५२ निवृत्ताया तु तस्या नाव्यनुकूलसलिलमारुताया विमानलीलया स्वेच्छयैव चाभिप्रयाताया नातिश्यामीभूत-सन्ध्यागरागासु प्रवितयमानतमोवितानास्वालक्षितनक्षत्र-भूषणासु दिक्षु किंचिदवशेषप्रभे दिवसकरमार्गे प्रवत्तक्षण-दाधिकारे सुपारगस्तान्वाणिजकानुवाच—"भो साथवाहा नलमालिप्रभृतिभ्यो यथादृष्टेभ्य समुद्रेभ्यो बालुका पाषाणश्च वहनमारोप्यन्ता यावत्सहते एवमिद यानपात्र निर्घातभराक्रान्त न च पार्श्वानि दास्यति, मगलसम्मताश्चैते बालुका पाषाणा नियत लाभसिद्धये वो भविष्यतीति।"

अथ ते सायात्रिका सुपारगप्रेमबहुमानावर्जितमतिभि-र्देवताभिरनुप्रदर्शितेभ्य स्थलेभ्य आदाय बालुकापाषाण-बुद्धया वैडूर्यादीनि रत्नानि वहनमारोपयामासु । तेनैव चैकरात्रेण सा नौ **भरुकच्छ**मुपजगाम।

५३ अथ प्रभाते रजतेन्द्रनीलवैडूर्यहेमप्रतिपूर्णनौका ।
स्वदेशतीरान्तमुपागतास्ते प्रीत्या तमानचरु-
दीर्णहर्षा ॥३३॥

५४ तदेव धर्माश्रय सत्यवचनमप्यापद नुदति प्रागेव तत्फल-मिति धर्मानुवर्तिना भवितव्यम्। कल्याणमित्राश्रयवर्णेऽपि वाच्यमेव कल्याणमित्राश्रिता श्रेय प्राप्नुवन्तीति।

५२ जब अनुकल जलवायुयुक्त हो वह नाव स्वेच्छासे लौट विमान लीलाके साथ चली तो दिशाये अतिश्यामल न हो सध्याके अग रागयुक्त फैलते अधकारके वितानवाली जब थोडा दिखाई देते तारोकी भूपण वाली थी, आकाशमे थोडी प्रभा बची थी जब रातका अधिकार जारी हो गया था तब सुपारगने उन बनियोंसे कहा— हे माथवाहो नलमाली आदि देखे हुये समुद्रोंसे बालू और पत्थर लेकर पोतपर रख लो जिसमे कि इस प्रकार चपेटेके बलसे आक्रात हो पोत एक करवट न हो जाये। ये बालू और पत्थर मगल माने जाते हैं यह तुम्हारी लाभसिद्धिके लिये निश्चय कायकारी होगे।'

तब सुपारगके प्रति प्रेम और बहुमानयुक्त पोतारोहियोने मत फेरे देवताओ द्वारा प्रदर्शित स्थलोसे बालू और पत्थरके विचारसे हीरा आदि रत्नोको पोतपर रख लिया। उसी रातमे वह जहाज भडौच आ पहुँचा।

५३ तब प्रभातके समय चादी, नीलम हीरा, सोनासे भरी नौकावाले (बनियोने) अतिहर्षित हो स्वदेशके तटपर आ महात्माकी पूजा की ॥३३॥

५४ सो इस प्रकार धमयुक्त सत्यवचन अपने फलसे पहले ही आपत को हटाता है, (यह) सोचकर धर्मानुवर्ती होना चाहिये। भले मित्रके आश्रयकी प्रशसामें भी कहना है, कि कल्याण मित्रका अवलम्ब लेनेवाले इस प्रकार श्रेय प्राप्त करते है।

भाग ३

प्राकृत काल (२)

(उत्तरकाल ३००–५५० ई० पू०)

२० कालिदास (४०० ई०)
२१ कुमारदास (५०० ई०)
२२ शूद्रक (५४० ई०)
२३ भारवि (५५० ई०)
२४ विशाखदत्त (५५० ई०)

२० कालिदास (४०० ई०)

यह संस्कृतके सर्वश्रेष्ठ महाकवि संभवत उज्जयिनी (अवन्ती) के रहने वाले थे। संस्कृतकी कविताओके लिये प्राकृतकाल सबसे समृद्ध काल है, और उसमें भी संस्कृत काव्यकी उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुचानेवाली कालिदासकी निम्न कृतिया है—

१ ऋतुसंहार, २ मेघदूत, ३ कुमारसंभव, ४ रघुवंश, ५ मालविकाग्निमित्र (नाटक), ६ विक्रमोवशीय (नाटक), ७ अभिज्ञानशाकुन्तल (नाटक)।

१ मेघदूतम्

(१) मेघयाञ्चा

१ कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्त,
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्तु ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

२ तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श ॥२॥

३ तस्य स्थित्वा कथमपि पुर कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरा राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

२० कालिदास (४०० ई०)

कालिदास गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३७५-४१४ ई०) के सम्मानित महाकवि थे। प्राकृतका "सेतुबंध" महाकाव्य यद्यपि वाकाटक राजा प्रवरसेनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध है, किन्तु इस किंवदन्तीमें सत्यका अंश है, कि उसके वास्तविक रचयिता कालिदास थे। चन्द्रगुप्तकी पुत्री प्रभावतीका ब्याह वाकाटक-वंशमें होना भी कालिदासके साथ उस वंशके सम्पर्कको बतलाता है, और अवन्ती देश वाकाटकोंकी भूमि (विदर्भ) के समीप भी था।

१ मेघदूत

(१) मेघसे प्रार्थना

१ कान्ताके विरहके भारसे युक्त अपने अधिकारसे मस्त, स्वामीके वर्ष भर भोगे जानेवाले शापसे अस्त हुई महिमावाले किसी यक्षने जानकीके स्नानके पवित्र जल सहित स्निग्ध छाया युक्त वृक्षोंवाले रामगिरि-आश्रममें वास किया ॥१॥

२ उस पहाड़में कुछ महीने बिताकर स्त्री वियोगी सुवर्ण वलयके गिर जाने से नंगी कलाईवाले उस कामीने, आषाढके प्रथम दिन शिखर लग्न वप्रके उखाडनेकी क्रीडामें प्रौढ हाथी जैसे दर्शनीय मेघको देखा ॥२॥

३ कैसे ही उसके सामने खडा होकर कौतुक उत्पादनके कारण राजराज (कुबेर) के अनुचरने (नेत्रोंके) भीतर आंसू रखे देर तक सोचा मेघके दर्शन होनेपर दूसरी वृत्तिवाला चित्त भी सुखी हो जाता है। कंठ आलिंगनके इच्छुक परदेशी जनके बारेमें तो कहना ही क्या ॥३॥

४ प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमै कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीत प्रीतिप्रमुखवचन स्वागत व्याजहार ।।४।।

५ "सतप्ताना त्वमसि शरण तत्पयोद, प्रियाया,
सदेश मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणा,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।।७।।

६ त्वामारुढ पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रत्ययादाश्वसन्त्य ।
क सनद्धे विरहविधुरा त्वय्युपेक्षेत जाया,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो य पराधीनवृत्ति ।।८।।

७ ता चावश्य दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिद्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्ध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यगनाना
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि ।।१०।।

८ त्वययायत्त कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै,
प्रीतिस्निग्धैजनपदवधूलोचनै पीयमान ।
सद्य सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य माल
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।।१६।।

(२) अवन्ति देश

९ वक्र पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशा,
सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा स्म **भूरुज्जयिन्या** ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरागनाना,
लोलापागैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।।२७।।

४ श्रावणके समीप होते ममय प्रियाके जीवनके अवलवके इच्छुक उसने मेघ द्वारा अपने कुशल मगलके समाचारको भेजते हुए अभिनव कुटजके फूलसे अघ द प्रसन्न हो प्रीति सहित वचनसे उसके लिये स्वागत कहा ।।४।।

५ 'हे मेघ, सतप्तोके तुम शरण हो, सो प्रियाके लिये कुबेरके क्रोधसे वियोगी बने मेरा स देश ले जाओ । तुम्हे यक्षेश्वरोकी बस्ती अलकाको जाना है जिसके प्रासाद बाहरी उद्यानमे स्थित तथा शिवके शिरकी चद्रिका जैसे उज्वल है ।।७।।

६ पवनके माग पर आरूढ विश्वाससे ढारस पाती केशोको थामे पथिक वनितायें ऊपरकी ओर तुम्हे देखेंगी । तुम्हारे तयार होजाने पर कौन है जा विरह-पीडित पत्नीकी उपेक्षा कर सकता है यदि वह जन मेरे जसा पराधीन वत्तिवाला न हो ।।८।।

७ और दिन गिननेमें लगी न मरी (अपनी) उस भाभीको अबाध-गति तुम अवश्य देखोगे । स्त्रियोका आशा ब धन प्राय फूलसा है जो तुरन्त गिरनेवाले प्रेमी हृदयको वियोगमें रोक रखता है ।।१०।।

८ "तुम्हारे आधीन ही कृषिका फल है" यह सोच भौहोके विलाससे अनभिज्ञ, प्रीतिसे स्निग्ध, ग्रामीण-बहुओके नेत्रो द्वारा पीये जाते तुम तुरन्त हलके जोतनेसे सोधी माल खेतपर आरूढ होकर कुछ पीछे फिर जल्दी जल्दी चलते उत्तरकी ओर (बढ) चलना ।।१६।।

(२) मालव

१ उत्तरकी ओर प्रस्थान किये आपके लिये यद्यपि माग टेढा होगा । (तो भी) उज्जयिनीके महलोकी गोदवाले प्रेम से विमुख न होना । नगरकी स्त्रियोके विद्युतमालाकी तरह फडफडाते और चकित चचल पलकोवाले नेत्रोंसे यदि (तुमन) नही रमण किया तो तुम अभागे हो ।।२७।।

१० प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्,
पूर्वोविष्टामनुसर पुरी श्रीविशाला विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गा गताना,
शेषै पुण्यैर्हृतमिव दिव कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३०॥

११ दीर्घीकुर्वन्पटु मदकल कूजित सारसाना,
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय ।
यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्राथनाचाटुकार ॥३१॥

१२ अप्यन्यस्मिन् जलधर, महाकालमासाद्य काले
स्थातव्य ते नयनविषय यावदत्येति भानु ।
कुर्वसध्याबलिपटहता शूलिन श्लाघनीया,
आमन्द्राणा फलमविकल लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३४॥

१३ गच्छन्तीना रमणवसति योषिता तत्र नक्त,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभि ।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दशयोर्वीं,
तोयोत्सगस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ता ॥३७॥

१४ ता कस्याचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावताया,
नीत्वा रात्रि चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्र ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेष,
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेताथकृत्या ॥३८॥

१५ आराध्यैन शरवणभव दैवमुल्लघिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमाग ।
व्यालम्बेथा सुरभितनयालम्बजा मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणता रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४५॥

१० **अवन्तिदेशमे** पहुँच उदयनकी कथाके पडित गावके वड्ढोसे पूर्वोक्त लक्ष्मीसे विशाल पुरीका अनुसरण करना सुकमके फलोके अत्यन्त होनेसे पथिवीपर आये स्वर्गीय जना के अवशिष्ट पुण्योसे जिसने स्वगलोककी कान्तिका मानो एक अश हर लिया है ॥३०॥

११ जहा सारसो के स्पष्ट मस्त मधुर कूजनको लम्बा करते, प्रात काल फले कमलके गन्धके सम्पकसे कषाययुक्त शिप्रा नदीका वायु प्रार्थनाके लिए चाटुकारी प्रियतमकी तरह अगानुकूल हो, स्त्रियाके सुरत खेदका अपहरण करता है ॥३१॥

१२ हे मेघ, दूसरे कालमे भी **महाकाल**को पा कर जब तक सूय चला नही जाये, तब तक तुम नयनके विषय रहना। (तब) त्रिशूलधारीकी प्रशसनीय सध्याकालीन पूजाके नगारेका रूप लेते, कुछ गम्भीर गजनाका पूरा फल तुम पाओगे ॥३४॥

१३ वहा रातको प्रियतमके निवासको जाती स्त्रियोके लिये, घने अन्धकारके कारण रुके प्रकाशवाले राजमागपर कनक कसौटी-जैसी चिकनी बिजली द्वारा पथिवीको दिखलाना। वह विकल है (अत) जलके त्यागकी कडकसे मुखर न होना ॥३७॥

१४ किसी भवनकी सोये कबूतरोवाली अटारीपर उस रातको बिता चिर विलासके कारण खेदयुक्त विद्युत-स्त्रीवाले आप सूय देखने पर फिर बचे मागको पूरा करे। मित्रोके प्रयोजनके काय (भार) को स्वीकार कर पुरुष सुस्त नही हुआ करते ॥३८॥

१५ **कार्तिकेय** देवकी पूजा करके रास्ता पार करते छीटेके भयसे वीणा वादक सिद्ध-दपतीके छोडे मागपर हो भूमिपर धाराके रूपमें प्रकट हुई **रतिदेव**की कीर्ति गौओके हननसे उत्पन्न (**चम्बल**) का मान करते (उसका) सहारा लेना ॥४५॥

१६ त्वय्यादातु जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्या सिन्धो पृथुमपि तनु दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेक मुक्तागुणमिव भुव स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥४६॥

१७ तामुत्तीय व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणा,
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्ब,
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥४७॥

(३) **कुरुदेश**

१८ **ब्रह्मावर्त्तं** जनपदमथच्छायया गाहमान
क्षेत्र क्षत्रप्रधनपिशुन कौरव तद् भजेथा ।
राजन्याना सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा,
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥४८॥

१९ हित्वा हालामभिमतरसा रेवतीलोचनाका,
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली या सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपा सौम्य सारस्वतीना,
अन्त शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्ण ॥४९॥

(४) **कनखल**

२० तस्माद् गच्छेरनु**कनखल** शैलराजावतीर्णा
जह्नो कन्या सगरतनयस्वर्गसोपान पक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचना या विहस्येव फेनै,
शभो केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५०॥

१६ कृष्णके वणके चोर भुके हुए तुम्हारेमेंसे जल लेनेके लिये, आकाश गामी (सिद्ध लोग) अवश्य दष्टि घमाकर उस सि धके बडे प्रवाहको दूर हानेके कारण छोटा, मध्यमें स्थूल इ द्रनील मणिसा, भूमिके एक मुक्ता-सूत्रका सा देखेंगे ॥४६॥

१७ उसको उतर कर परिचित भ्रूलताओके सौदयवाली, पलक उठानेस ऊपर सोहती, मगकी द्युतियोवाली कु द पुष्पके अनुगामी मधुकरकी शोभा चुगनेवाले **दशपुर**की वधुओके नेत्रोके कुतूहलाको अपनी छायाका पात्र बनाते आगे जाना ॥४७॥

(३) कुरुदेश

१८ तब अपनी छायासे ब्रह्मावत देशको पार होते क्षत्रियोके विनाशके लिये दु ख्यात उस **कुरुक्षेत्र**को जाना, जहापर **गाडीवधारी**ने सैकडो, श्वेत बाणो की वर्षाकी धारा गिरा, राजन्योके मुखो पर (वैसी) वर्षा की जैसी कि कमलो पर तुम ॥४८॥

१९ **रेवती**के लोचन सी प्रिय रसवती मदिराको छोडकर ब धुओ की खुशीके लिये युद्धसे विमुख हो **बलभद्र**ने जिनका सेवन किया, उन सरस्वती के जलोको प्राप्त कर हे सौम्य, तुम भी रगमात्रसे कृष्ण (रह) भीतरसे शुद्ध हो जाओगे ॥४९॥

(४) कनखल

२० वहासे **कनखल**के पास पवतराजसे उतरी, **सगर-तनयो**के लिये स्वगकी सीढियो जैसी गगाको जाना, जिसने **गौरी**के मुखकी टेढी भौं रचनेको हसकर ही चन्द्रमें लगी लहरो रूपी हाथो वाली अपनी फेनोंसे शभूके केशोको पकड लिया ॥५०॥

(५) हिमालय

२१ त चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्नि ।
अर्हस्येन शमयितुमल वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफला सपदो ह्युत्तमानाम् ॥५३॥

२२ गत्वा चोर्ध्व दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसघ,
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि स्या ।
शृङ्गोच्छ्रायै कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित ख,
राशीभूत प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहास ॥५८॥

२३ हेमाम्भोजप्रसवि सलिल मानसस्याददान,
कुर्वन्काम क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद, ललितैर्निर्विशेस्त नगेन्द्रम् ॥६२॥

२४ तस्योत्सगे प्रणयिन इव स्रस्तगगादुकूला,
न त्व दृष्ट्वा न पुनरलका ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या व काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
मुक्ताजालग्रथितमलक कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६३॥

२ कुमारसभवम्

(१) हिमालय

२५ अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा **हिमालयो** नाम नगाधिराज
पूर्वापरौ तोयनिधीर्विगाह्य स्थित पृथिव्या इव मान-
दण्ड ॥१॥

२६ य सर्वशैला परिकल्प्य वत्स मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथपदिष्टा दुदुहुर्धरित्रीम्
॥२॥

(५) हिमालय

२१ यदि वायु चल्ते समय देवदारकी शाखाओकी रगडसे उत्पन्न चिगारी से चवरीकी पूछका नष्टकर जगलकी आग हिमालयको पीडित कर रही हो तो हजारो जलधाराआमे उसे शात करनेमे तुम समथ होना। उत्तम जनाकी सम्पत्ति का फल शरणापन्नोकी पीडाका शमन है।।५३।।

२२ और ऊपर जा रावणकी भुजा द्वारा बिलगाये शिखरोकी सधिवाले स्वगकी वनिताआके दपण (जैस) कलासके अतिथि होना जो कि शकरके प्रतिदिनके अट्टहासकी राशि सा श्वेत कमल जसे निमल (अपने) शिखरोकी ऊचाइयोसे आकाशमे फैला खडा है।।५८।।

२३ मानसरोवरक कनक कमलाके उत्पादक जलको लेते क्षण भर ऐरावतके मुखके अशुककी यथेच्छ प्रसन्नता करते, हवाओसे कल्पद्रुमके पत्रोको वस्त्रोकी तरह कपित करते, हे मेघ, नाना ललित चेष्टाओके साथ उस पवत राजमे प्रवेश करना।।६२।।

२४ हे इच्छाबिहारी कलासकी गोदमे प्रियतमकी तरह शिथिलित गगारूपी दुकूलवाली अलका को फिर देखे बिना तुम नही जानोगे। जा ऊचे महलो वाली मेघकालमे जल उगलनेवाले मेघ समूहोकी मोतिया गुथी अलकोको कामिनीकी तरह धारण करती है।।६३।।

२ कुमारसभव

(१) हिमालय

२५ उत्तर दिशामे देवतारूपी हिमालय नामक पवतराज ह। जो पूर्वी पश्चिमी सागरोको अवगाहता पृथिवीके माप-दण्ड सा खडा है।।१।।

२६ दूहनेमें दक्ष दोहक मेरुके रहते भी जिस हिमालयको बछडा बनाकर सारे पवतोने पथु द्वारा उपदिष्ट पथिवीसे प्रकाशमान रत्नो और महौषधियोको दूहा।।२।।

२७ अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सोभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसनिपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाक ॥३॥

२८ यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनाना सपादयित्री शिखरैर्बिभर्ति
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसध्यामिव धातुमत्ताम्॥४॥

२९ आमेखल सचरता घनाना छायामध सानुगता निषेव्य।
उद्वेजिता वष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धा ॥५॥

३० पद तुषारस्रुतिधौतरक्त यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्ग नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलै केसरिणा किराता ॥६॥

३१ न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वच कुजरबिन्दुशोणा
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनगलेखक्रिययोपयोगम् ॥७॥

३२ य पूरय कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किनराणा तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥८॥

३३ कपोलकण्डू करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभीकरोति ॥९॥

३४ लागूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौर ।
यस्यार्थयुक्त गिरिराजशब्द कुर्वन्ति वालव्यजनैश्चमर्य ॥१३॥

३५ यत्राशुकाक्षेपविलज्जिताना यदृच्छया किपुरुषागनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्योजलदाभवन्ति १४

३६ भागीरथीनिर्झरसीकराणा वोढा मुहु कम्पितदेवदारु ।
यद्वायुरन्विष्टमृगै किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिवह १५

—सर्ग १

२७ अनन्त रत्नोके उत्पादक जिसके लिये हिम (बर्फ) सौभाग्य-विलोपक नही हुआ। चद्रमाकी किरणोमे लाछनकी तरह बहुतसे गुणोके होनेसे एक दोष विलीन हो जाता है ॥३॥

२८ जो अपने शिखरो द्वारा अप्सराओके विलास-आभूषणोको प्राप्त करानेवाली, मेघके खडोंसे लगाये रगवाली अकाल सध्याकी तरह धातु धारक है ॥४॥

२९ मेखला तक सचरण करनेवाले मेघोकी नीचे सानुपर पडी छायाको सेवन कर वर्षामे उद्विग्न सिद्ध-लोग जिसके धूपवाले शिखरोका आश्रय लेते है ॥५॥

३० हिमके गलनेसे मत गजोके धुले लाल परोको जहा न देखकर भी सिंहो के नखो द्वारा बखेरे मोतियो से किरात लोग मार्गका पता पाते है ॥६॥

३१ जहा धातुके रस से लिखित गजोके रक्त बिन्दुओ सी लाल भुर्ज छाले, विद्याधरोकी सुन्दरियोके प्रेम-पत्र लिखनेके लिये उपयुक्त होती है ॥७॥

३२ जो गहाओके मुहसे उठे वायु द्वारा बजनेवाले बासोके छिद्रोको भरते, गानेवाले किन्नरोके लिये तान देनेवाला बननेकी इच्छा करता है ॥८॥

३३ जहा गालकी खुजलीको हटानेके लिये गजोसे रगडे देवदारुओके बहे दूधसे उत्पन्न गन्ध शिखरोको सुगन्धित करती है ॥९॥

३४ पूछके कपानेकी शोभावाले जहा-तहा चन्द्र किरणो जसे सफेद, अपने चवरो द्वारा चमरिया जिसके गिरिराज नामको साथक करती है ॥१३॥

३५ जहा अकस्मात वस्त्रके खिचनेसे लज्जित किन्नरियोके लिये गुहाके द्वारपर लटके मेघ पर्दा बन जाते है ॥१४॥

३६ भागीरथीके निर्झरकी फुहारोको ले जाते फिर फिर देवदारुओको कपाते, बिलगाये मोरके पिच्छोवाले जिसके वायुकी मृगखोजी किरात सेवन करते है ॥१५॥

—सर्ग १

(२) रति-विलाप

३७ अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥१॥
३८ "अयि जीवितनाथ, जीवसीत्य" भिधायात्थितया तया
पुर ।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥३॥
३९ अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूधजा समदु खामिव कुर्वती
स्थलीम् ॥४॥
४० "उपमानमभूद्विलासिना करण यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिद गतमीदृशी दशा न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय ॥५॥
४१ क्व नु मा त्वदधीनजीविता विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृद ।
नलिनी क्षतसेतुबन्धनो जलसघात इवासि विद्रुत ॥६॥
४२ कृतवानसि विप्रिय न मे प्रतिकूल न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शन विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥७॥
४३ हृदये वससीति मत्प्रिय यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपद न चेदिद त्वमनग कथमक्षता रति ॥९॥
४४ परलोकनवप्रवासिन प्रतिपत्स्ये पदवीमह तव।
विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीन खलु देहिना सुखम्।१०।
४५ रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवा ।
वसति प्रिय कामिना प्रियास्त्वदृते प्रापयितु क ईश्वर ११
४६ नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमद प्रमदानामधुना विडम्बना ॥१२॥
४७ अवगम्य कथीकृत वपु प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदय ।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुता दु खमनग, मोक्ष्यति ॥१३॥

(२) रतिका विलाप

३७ तब मूर्छिना परवशा काम-बध(रति) को आकर असह्य पीडाकर नवीन वैधव्य देनेवाले विधाताने होशमे किया ।।१।।

३८ हे प्राणनाथ, तुम जीते हो यह कहकर उठके उसने सामने पथिवी पर शिवकी कोपाग्निसे (जलकर) भस्म मात्र बचे पुरुष-आकारको देखा ।।३।।

३९ तब पथिवी पर लोटनेसे धूसर स्तनवाली, विह्वल हो केश बिखेरे वह (रति) उम स्थलीको अपने समान दु खित करती विलापने लगी ।।४।।

४० अत्यन्त सौदयके कारण जो तुम्हारा शरीर विलासियोके लिये उपमा (की वस्तु) था। सो इसे ऐसी दशामे देख म फट जाती—नही (हाय) कठोर स्त्रिया ।।५।।

४१ जीवनाधार मुझे फेक क्षणभरमे सौहाद छोड तुम कहा हो ? टटे बाध वाले जलसमूहकी तरह नलिनी (छोड) तुम कहा भाग गये ।।६।।

४२ तुमने कभी मेरा अप्रिय नही किया और न मैंने ही तुम्हारे विरुद्ध कुछ किया। फिर विलखती रतिको अकारण ही क्यो नही दशन देते ।।७।।

४३ "तू (मेरे) हृदयमे बसती है" यह जो मुझसे प्रिय वाक्य कहते थे, उसे म वचना समझती हू। यदि यह दिखावेकी बात न थी, तो कैसे (आज) तुम अगहीन और रति अक्षत-शरीरा है ।।९।।

४४ परलोककी ओर (जात) नये यात्री, म तेरे मागका अनुगमन करूगी। दैवनेइस जनको वचित कर दिया, प्राणियोका सुख तो तेरे ही अधीन है ।।१०।।

४५ हे प्रिय रातके अधकारसे ढके नगर भागमे मेघके शब्दसे भयभीत कामियोकी प्रियाओको तेरे बिना (अब) कौन (प्रियतमकी) बस्तीमें पहुचा सकेगा ।।११।।

४६ लाल नेत्रोको घुमात पद-पदपर बातोको बडबडाते महिलाओका शराबका नशा तेरे बिना अब केवल विडबना है ।।१२।।

४७ हे अनग, प्रिय बधु, तेरे शरीरको कथा-मात्र अवशिष्ट जानकर निष्फल उदयवाला चद्रमा कृष्णपक्षमें क्षीणताको प्राप्त होते दु ख से नही छूटेगा ।।१३।।

४८ हरितारुणचारुबन्धन कलपुंस्कोकिलशब्दसूचित ।
वद संप्रति कस्य वाणता नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥१४॥

४९ प्रतिपद्य मनोहर वपु पुनरप्यादिश तावदुत्थित ।
रतिदूतिपदेषु कोकिला मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् ॥१६॥

५० मदनेन विनाकृता रति क्षणमात्र किल जीवितेति मे ।
वचनीयमिद व्यवस्थित रमण,त्वामनुयामि यद्यपि" ॥२१॥

—सर्ग ४

(३) कुमारक्रीडा

५१ महेश्वर शैलसुता च हर्षात्सतषमेकेन मुखेन गाढम् ।
अजातदन्तानि मुखानि सूनोर्मनोहराणि क्रमतश्चुचुम्ब४१।

५२ क्वचित्स्खलद्भि क्वचिदस्खलद्भि क्वचित्प्रकम्पै क्वचिदप्रकम्पै ।
बाल स लीलाचलनप्रयोगैस्तयोर्मुद वर्धयति स्म पित्रो ॥४२॥

५३ अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुर्गृहाङ्गणक्रीडनधूलिधूम्र ।
मुहुर्वदन्किंचिदलक्षितार्थं मुद तयोरकगतस्ततान ॥४३॥

५४ किंचित्कल भगुरकधरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शभो ।
प्रलम्बमान किल कौतुकेन चिर चुचुम्बे मुकुटेन्दुखण्डम्४८

५५ इत्थ शिशो शैशवकेलिवृत्तैर्मनोभिरामैर्गिरजागिरीशौ ।
मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिश नाविदता कदाचित् ॥४९॥

—सर्ग ११

४८ हरे लाल रगके सुन्दर वन्तवाली, कोयलके मीठे शब्दो द्वारा ज्ञापित, नय आमकी नई मजरी बताओ अब किसका वाण बनेगी ॥१४॥

४९ मनाहर शरीर धार उठकर फिर आदेश दो। रतिकी दूति कामे मीठे आलापमे स्वाभाविक पण्डित कोयलोको आज्ञा दो ॥१६॥

५० हे प्रिय, मदनसे विछडी रति क्षण भर जीती रही यह निदा मेरे ऊपर आ पडा यद्यपि मै तेरा अनुगमन करूगी ' ॥२१॥

—सग ४

(३) शिशु कार्तिकेय

५१ **शकर** और **पार्वतीने** हर्षसे लालसाके साथ एक मुख द्वारा क्रमश पुत्रके बिना दातवाले मनोहर छओ मुखोको चूमा ॥४१॥

५२ वह बालक कही डगमगाते कही न डगमगाते, कही कापते, कही न कापते, लीला सहित चलनेके प्रयोगो द्वारा पिता माताकी प्रसन्नताको बढा रहा था ॥४२॥

५३ बिना कारणकी हसीसे मिश्रित मुहवाले घरके आगनमे खेलते,धूलिसे धसरित, अस्पष्ट अथवाली कुछ बात बोलते दोनोकी गोदमे स्थित उस शिशु **कुमारने** प्रसन्नता पदा की ॥४३॥

५४ पड कधेवाले, झुके जटाजूटको धारण करनेवाले, शकरके से आलम्बयुक्त मुकुटके कुछ मधुर चद्रखण्डको कुतूहलसे देर तक उसने चूमा ॥४८॥

५५ इस प्रकार शिशुके मनोहर शैशवकी क्रीडाओ द्वारा मनोविनोद रूपी एकमात्र रसमे आसक्त गिरिजा और गिरीश कभी दिन और रात बीतने का पता भी नही पाते थे ॥४९॥

—सग ११

३ रघुवशम्

(१) रघुदिग्विजय

५६ स सेना महती कषन्पूवसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टा गगामिव **भगीरथ** ॥३२॥

५७ पौरस्त्यानेवमाक्रामस्तास्ताजनपदाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठ महोदधे ॥३४॥

५८ अनम्राणा समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।
आत्मा सरक्षित **सुह्मर्**वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥३५॥

५९ **वगा**नुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।
निचखान जयस्तम्भान्गगास्रोतोन्तरेषु स ॥३६॥

६० स तीर्त्वा कपिशा सैन्यैबद्धद्विरदसेतुभि ।
उत्कलादर्शितपथ **कलिंगा**भिमुखो ययौ ॥३८॥

६१ प्रतिजग्राह कालिगस्तमस्त्रैगजसाधन ।
पक्षच्छेदोद्यत शक्र शिलावर्षीव पवत ॥४०॥

६२ स सन्यपरिभोगेन गजदानसुगन्धिना ।
कावेरीं सरिता पत्यु शकनीयामिवाकरोत् ॥४५॥

६३ दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्या रवेरपि ।
तस्यामेव रघो **पाण्ड्या** प्रताप न विषेहिरे ॥४९॥

६४ **ताम्रपर्णी**समेतस्य मुक्तासार महोदधे ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यश स्वमिव सचितम् ॥५०॥

६५ स निर्विश्य यथाकाम तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्या शैलौ **मलयदर्दुरो** ॥५१॥

६६ असह्यविक्रम **सह्य** दूरान्मुक्तमुदन्वता ।
नितम्बमिव मेदिन्या स्रस्ताशुकमलघयत् ॥५२॥

३ रघुवश

(१) रघु-दिग्विजय

५६ वह (रघु) **पूर्वी** सागर गामिनी बडी सेनाको ले जाता शकरकी जटामे भ्रष्ट गगाको (ले जाते) **भागीरथ** सा मालूम पडा ॥३२॥

५७ उन उन पूर्वी देशोको इस प्रकार आक्रान्त करते वह विजयी महासागरके श्यामल तालके वनोवाले तटपर पहुचा ॥३४॥

५८ न झुकनेवालोको निमूल करनेवाले रघुसे नदीके वेगसे वेतके झुकनेके स्वभावका आश्रय लेकर, **सुह्म**देशियोने अपनी रक्षा की ॥३५॥

५९ पोतो साधनोके साथ तयार **बग** राजको बलपूवक उन्मलन कर उस नेताने **गगा**के प्रवाहके बीच जयस्तम्भ स्थापित किया ॥३६॥

६० गजो-बधे सेतुओवाली सेनाओके साथ **कपिशा** नदीका पार कर **उत्कलो** द्वारा दिखाये पथसे वह **कलिग**की ओर गया ॥३८॥

६१ गजाके साधनवाले कलिग-राजने अस्त्रोमे उसका मुकाबला किया जैसे पख काटनेके लिये उद्यत इन्द्रका पत्थर बरसानेवाले पवतोने ॥४०॥

६२ उसने गजोके मदजलकी सुगन्धिवाले सेनाके कपोके साथ, (अवगाहित कर) नदी-पतिके लिय **कावेरी**को अविश्वसनीय बना दिया ॥४५॥

६३ दक्षिण दिशा (के जाडो) मे सूयका भी तेज मन्द हो जाता है। उसी दिशामे **पाड्य** (लोग) **रघु**के प्रतापको नही सह सके ॥४९॥

६४ ताम्रपर्णीके सगमवाले महासागरकी श्रेष्ठ मोतियोको उन्होने अपने सचित यशकी तरह प्रणिपात करके प्रदान किया ॥५०॥

६५ तटापर फैले चन्दनयुक्त उस दिशाके स्तन समान **मलय** और **दर्दुर** पवतोका यथेच्छ उपभोग कर ॥५१॥

६६ सागरसे दूर छूटे पथिवीके शिथिल वस्त्रवाले नितम्ब जैसे **सह्याद्रि**का लघन असहय पराक्रमी (रघुने) किया ॥५२॥

६७ तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतै ।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णव ॥५३॥
६८ भयोत्सृष्टविभूषाणा तेन **केरल**योषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृत ॥५४॥
६९ अवकाश किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥५८॥
७० **पारसीका**स्ततो जेतु प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूस्तत्त्वज्ञानेन सयमी ॥६०॥
७१ **यवनी**मुखपद्माना सेहे मधुमद न स ।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदया ॥६१॥
७२ सग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनै ।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत ॥६२॥
७३ भल्लापवर्जितैस्तेषा शिरोभि श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तै स क्षौद्रपटलैरिव ॥६३॥
७४ अपनीतशिरस्त्राणा शेषास्त शरण ययु ।
प्रणिपातप्रतीकार सरम्भो हि महात्मनाम् ॥६४॥
७५ विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥६५॥
७६ तत प्रतस्थे **कौबेरीं** भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥६६॥
७७ विनीताध्वश्रमास्तस्य **सिंधु**तीरविचेष्टनै ।
दुधुवुर्वाजिन स्कन्धाल्लग्नकुकुमकेसरान् ॥६७॥
७८ तत्र **हूणा**वरोधाना भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥६८॥

६७ **अपरान्त** दशके जयके लिये तैयार हुई उसकी सेनाओने परशु रामके अस्त्रसे दूर हटाय सागरको **सह्याद्रिसे** सटासा दिया ।।५३।

६८ उसन भयसे भूषणरहित **केरल**-स्त्रियोके अलकोमे सेनाकी धूलिको (रखत) सुवासित चूणका रूप दिया ।।५४।।

६९ (जिस) सागरने प्राथना करनेपर रामका स्थान दिया था उसीन **अपरान्तके** राजाके बहाने **रघुको** कर दिया ।।५८।।

७० तब **पारसीकोको** जीतनके लिए स्थल मागसे (वैसेही) प्रस्थान किया जसे सयमी (पुरुष) इद्रियरूपी रिपुओका तत्वज्ञानसे ।।६०।।

७१ **यवनियोके** मखकमलके मद्यके नशको उसन (वैसही) सहन नही किया जैसे अकाल मेघाका उदय कमलोकी कोमल धूपको ।।६१।।

७२ घोडेके साधनवाले पाश्चात्योके साथ धनुषके शब्दोसे सूचित प्रतिभटो वाली धूलिमे उसका तुमुल सग्राम हुआ ।।६२।।

७३ उनके भालेसे कट दाढी-मूछवाले सिरोसे उसन पथिवीको मधु मक्खियोंसे व्याप्त मधुके छत्तोकी तरह ढाक दिया ।।६३।।

७४ बाकी बच हुए सैनिक शिरस्त्राणको हटा उसकी शरण मे गये। (आखिर) महात्माओके कोपका प्रतिकार प्रणिपात ही है ।।६४।।

७५ उसके योधाओन महाघ छालोसे बिछी द्राक्षालताओकी भूमियोमे अगूरकी मदिरा द्वारा विजयके खेदको मिटाया ।।६५।।

७६ तब **रघुने** सूयकी तरह किरणो द्वारा रसको उठाते, बाणो द्वारा उत्तरदशियोका उन्मूलन करते उत्तर दिशाको प्रस्थान किया ।।६६।।

७७ **सिधु** नदीके तीरपर लौटनेसे मागके खदको हटाते उसके घोडोने कधेपर लगे केसरसे पीले (अपने) केसरोको हिलाया ।।६७ ।।

७८ वहा जगह जगह स्वामियोके ऊपर प्रकट **रघुके** पराक्रमकी चेष्टाने **हूणोकी** अन्त पुरिकाओके कपोलोको लाल करनेका आदेश दिया ।६८

७९ **काम्बोजा** समरे सोढु तस्य वीयमनीश्वरा ।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटै साधमानता ॥६९॥

८० तेषा सदश्वभूयिष्टास्तुगा द्रविणराशय ।
उपदा विविशु शश्वन्नोत्सेका **कोसलेश्वरम्** ॥७०॥

८१ ततो गौरीगुरु शैलमारुरोहाश्वसाधन ।
वधयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभि ॥७१॥

८२ भुर्जेषु ममरीभूता कीचकध्वनिहेतव ।
गगाशीकरिणो मार्गे मरुतस्त सिषेविरे ॥७३॥

८३ सरलासक्तमातगग्रैवेयस्फुरितत्विष ।
आसन्नोषधयो नेतुनक्तमस्नेहदीपिका ॥७५॥

८४ तस्योत्सष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वच ।
गजवष्म **किरातेभ्य** शशसुर्देवदारव ॥७६॥

८५ तत्र जय रघोर्घोर पर्वतीयैगणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥७७॥

८६ **शरैरुत्सवसकेतान्स** कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरण वाह्वोर्गापयाभास **किन्नरान्** ॥७८॥

८७ परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।
राज्ञा हिमवत सारो राज्ञ सारो हिमाद्रिणा ॥७९॥

८८ चकम्पे तीर्ण**लौहित्ये** तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वर ।
तदगजालानता प्राप्तै सह कालागुरुद्रुमै ॥८१॥

८९ तमीश **कामरूपाणा**मत्याखण्डलविक्रमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यै ॥८३॥

७९ ममरम उसके पराक्रमको सहनेमे असमथ **कम्बोज** दशीय भी हाथी बाधनसे परिक्लेशित अखरोटोके साथ आकर झुक गय ॥६९॥

८० गव ही नहीं उनकी अधिकाश अच्छे घाडोवाली बडी धन राशिया भेटके रूपमें **कोसलेश्वर**को बराबर प्राप्त हुइ ॥७०॥

८१ नब अश्व-सेनायुक्त (रघु) गौरीके पिता (हिमाचल) पर उठी धातु धूलियोसे उसके शिखरोको बढाता सा चढा ॥७१॥

८२ भुज वृक्षोमे ममर बजनेवाले बासोकी ध्वनिके कारण, गगाके फुहार वाले वायुओन मागमें रघुकी सेवा की ॥७३॥

८३ दवदारमे लगे गजोकी कठ शृखलाओमे प्रतिबिंबित किरणोवाली औषधिया रातको नता (रघु) के लिए बिना तेलकी मशाले बनी ॥७५॥

८४ निवासोमें गजोके छोडे कठो रस्सोसे छिले छालवाले देवदारोने किरानोको गजोका पता दिया ॥७६॥

८५ वहा वाणके फेंकने, पत्थरके टकरानेसे, उठी अग्नि के साथ रघुका पवतीय गणोके साथ घोर सग्राम हुआ ॥७७॥

८६ उसन वाणोसे **उत्सव-सकेत**वाले किन्नरोको उत्सव विरत करके अपनी भुजाओके जयका उदाहरण दिखलाया ॥७८॥

८७ भेंट लिये हाथो युक्त उन लोगोमे, हिमालयका सार राजाको, और राजा का सार हिमालयको परस्पर मालूम हुआ ॥७९॥

८८ उसके **लौहित्य**[1] पार होनेपर **प्राग्ज्योतिष**[2] का राजा रघुके गजोके खम्भे बने कालागुरुके वक्षोके साथ काप उठा ॥८१॥

८९ इन्द्रसे भी बढकर पराक्रमवाले रघुकी **कामरूपके** राजाने, मद बहते गजोको दे सेवा की, साथ ही दूसरोमे भी वैसा करनेका अनुरोध किया ॥८३॥

---

१ ब्रह्मपुत्र, २ असम

९० कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानच पादयो ॥८४॥

९१ इति जित्वा दिशो जिष्णु‍र्यवतत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन् राज्ञा छत्रशून्येषु मौलिषु ॥८५॥

—सग ४

(२) इन्दुमती स्वयवर

९२ तत्र स्वयवरसमाहृतराजलोक,
कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सो ।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ,
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

९३ त कणभूषणनिपीडितपीवरास,
शय्योतरच्छदविमदकृशागरागम् ।
सूतात्मजा सवयस प्रथितप्रबोध,
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाच ॥६५॥

९४ "रात्रिगता मतिमता वर, मुच शय्या,
धात्रा द्विधैव ननु धूजगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव विभर्ति गुर्रुविनिद्रस्,
तस्या भवानपरधुयपदावलम्बी ॥६६॥

९५ निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचि विजहाति चन्द्र ॥६७॥

९६ वृन्ताच्छ्लथ हरति पुष्पमनोकहाना,
ससृज्यते सरसिजैररुणाशुभिन्नै ।
स्वाभाविक परगुणेन विभातवायु,
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥६९॥

९० कामरूपेश्वरने सुवण पीठपर स्थित देवता की तरह, उसके परोकी छायाकी रत्न पुष्पोके उपहारसे पूजा की ॥८४॥

९१ इस प्रकार (सभी) दिशाओको जीतकर रथसे उठी धूलियोको छत्र शूय राजाओके सिरोपर विश्राम कराते विजयी (रघु) लौटा ॥८५॥ —सग ४

(२) इन्दुमती-स्वयवर

९२ वहा स्वयवरके लिये एकत्रित राजा लोगो वाली
कमनीया कन्याके लाभके इच्छुक अजकी
भाव जानती प्रियाकी तरह रातमें, निद्रा
देरसे नैनोके पास आई ॥६४॥

९३ कण भूषणसे दबे स्थूल कधोवाले,
शय्याकी चादरकी रगडसे मिटे अगरागवाले **अजको**
समान आयु उदार, वचन सहित सूत पुत्रोने उस प्रसिद्ध
प्रबोधवाले उषाकालमे (अपनी) वाणियोसे जगाया ॥६५॥

९४ "हे मतिमानो में श्रेष्ठ रात बीत गई, शय्या छोडो।
विधाताने तो ससारके भारको दो ही हिस्सोमे बाटा ह।
जिनमेंसे एकको जागते हुए तुम्हारे पिता धारण करते हैं
उसके दूसरे भारके अवलम्ब आप ह ॥६६॥

९५ निद्रालीन आपके द्वारा उपेक्षिता,
रात्रिमे खण्डिता अबलासी (अपनी) उत्सुकताको
लक्ष्मी जिससे हटाती, वह चद्र भी, दिगन्तको पकड
तुम्हारे मुख जैसी शोभा को छोड रहा हैं ॥६७॥

९६ सवेरेका वायु वक्षोके वन्तसे शिथिल पुष्पोको हर रहा ह।
लाल किरणोसे प्रस्फुटित कमलोके साथ,
दूसरेके गुणसे स्वाभाविक गुणको मिला रहा है।
मानो तुम्हारी श्वासकी सुगधिके पानेका इच्छुक है ॥६९॥

९७ यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरता त्वयि वीर याते,
कि वा रिपूस्तव गुरु स्वयमुच्छिनत्ति ।।७१।।
९८ शय्या जहत्युभयपक्षविनीतनिद्रा,
स्तम्भेरमा मुखरश्रृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषा विभान्ति तरुणारुणरागयोगाद,
भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशा ।।७२।।
९९ दीर्घेष्वमी नियमिता पटमण्डपेषु,
निद्रा विहाय वनजाक्षवनायुदेश्या।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि,
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहा ।।७३।।
१०० भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहार,
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्या प्रदीपा।
अयमपि च गिर नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मजुवाक्पजरस्थ" ।।७४।।
१०१ इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रै कुमार,
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहसै,
सुरगज इव गाग सैकत सुप्रतीक ।।७५।।

—सर्ग ५

(३) अजविलाप

१०२ पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविला मृगलेखामुषसीव चन्द्रमा ।।४२

९७ जब तक प्रताप निधि भानु नही ऊपर उठा,
तब तक अरुणने तुरन्त अ धकारको निरस्त कर दिया।
हे वीर, युद्धोमे अग्रसर होनेपर,
तुम्हारे पिता रिपुओको स्वय क्यो उच्छिन्न करेगे ॥७१॥

९८ दोनो बगलोमे निद्रा छोडे,
शब्दायमान जजीरे खीचते तुम्हारे गज शय्या छोड रहे है।
जिनके दन्तकोश नव अरुण-रगके ससगसे,
टूटे पहाडके गेरूवाले तट जैसे दीख पडते है ॥७२॥

९९ हे कमलनयन, लम्बे तम्बुओमे बँधे,
ये पारसीक घोडे निद्राको छोड कर
चाटनेके लिए रखे सेधा पत्थरके टुकडोको
मुखकी भापसे मलिन कर रहे है ॥७३॥

१०० विरल गूथोवाला मुर्झाये पुष्पोका उपहार हो रहा है।
प्रदीप अपनी किरणोके घिरावेसे अभिन्न हो रहा है।
और तुम्हे जगानेके लिए प्रयुक्त हमारी वाणीको,
पिंजडेमें स्थित मधुरभाषी यह तोता भी दुहरा रहा है ॥७४॥

१०१ इस प्रकार वन्दि-पुत्रोकी रचित वाणीसे कुमार (अज) ने,
निद्रा रहित हो (वैसे) शय्या को तुरन्त छोड दिया।
जैसे राजहसोके मत्त मधुर निनादसे,
सुप्रतीक देवगज-गगाकी बालूको ॥७५॥

—सग ५

(३) अज-विलाप—

१०२ प्राणोके चले जानेसे, बे रग गोदमे पडी इन्दुमतीके साथ उसके पति (अज), मानो उषाकालमें मलिन मृग-लाछनको धारण किये च द्रमा-सा दीख पड रहे थे ॥४२॥

१०३ विललाप स बाष्पगद्गद सहजामप्यहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मादव भजते कैव कथा शरीरिषु ।।४३

१०४ "कुसुमान्यपि गात्रसगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितु यदि ।
न भविष्यति हन्त साधन किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो
विधे ।।४४।।

१०५ अथवा मदु वस्तु हिसितु मदुनैवारभते प्रजान्तक ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूवनिदशन मता ।।४५।।

१०६ स्रगिय यदि जीवितापहा हृदये कि निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृत क्वचिद् भवेदमत वा विषमीश्वरेच्छया।।४६।।

१०७ अथवा मम भाग्यविप्लवादशनि कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुन पातित क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ।।४७।।

१०८ कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिर मयि ।
कथमेकपदे निरागस जनमाभाष्यमिम न मन्यसे ।।४८।।

१०९ ध्रुवमस्मि शठ शुचिस्मिते विदित कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसनिवृतये यदनापृच्छ्य गतासि मामित ।।४९।।

११० मनसापि न विप्रिय मया कृतपूर्वं तव कि जहासि माम् ।
ननु शब्दपति क्षितेरह त्वयि मे भावनिबन्धना
रति ।।५१।।

१११ कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावतनशकि मे मन ।।५३।।

११२ इदमुच्छ्वसितालक मुख तव विश्रान्तकथ दुनोति माम् ।
निशि सुप्तमिवैकपकज विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्।।५५।

१०३ अपनी सहज धीरताको भी छोडकर वह अश्रु रुँधे कण्ठसे विलाप करने लगे। सतप्त (होने पर) लोहा भी मृदु हो जाता ह, शरीर-धारियोकी तो बात ही क्या ।।४३।।

१०४ 'यदि शरीरको छूकर फूल भी जीवनको खतम कर सकते ह तो हन्त, प्रहार इच्छुक दैवका दूसरा साधन क्यो नही होगा ।।४४।।

१०५ अथवा काल मदु वस्तुको मदु द्वारा ही मारा करता है। यहा पालेके अभिषेकसे मरती कमलिनी प्रथम उदाहरण दीखती है।।४५।।

१०६ यदि यह माला जीवनघातिका है तो हृदयपर रक्खी मुझे क्यो नही मारती ? (सच है) ईश्वरकी इच्छासे विष भी कही अमृत और अमत भी विष हो जाता है ।।४६।।

१०७ अथवा मेरे उलटे भागके कारण ब्रह्माने इसे बिजली बना दिया, जो कि इसने आश्रित लताको नष्ट कर दिया, पर वक्षको नही गिराया ।।४७।।

१०८ जब अपराध करनेपर भी चिरकाल तक तुमने मेरी अवज्ञा नही की, तो क्यो एकाएक इस निरपराध जनको बात करने योग्य नही समझती ।।४८।।

१०९ हे उज्ज्वल-हासवाली मै झूठा स्नेह दिखलानेवाला शठ हूँ, यह तुम्हे निश्चय विदित हो गया। तभी तो मुझसे बिना पूछे ही तुम न लौटनेके लिए यहासे परलोक चली गइ ।।४९।।

११० मने मनसे भी कभी तुम्हारा अप्रिय नही किया, (फिर) क्यो मुझे छोड रही हो ? निश्चय मै नामके लिए पथिवीका पति हूँ, भावोसे युक्त मेरा प्रेम तो तुझमे है ।।५१।।

१११ हे हस्तिनीसदश उरुवाली, फूल गुथे घुघराले भ्रमरकी कान्ति वाले तेरे अलकोको वायु हिलाता मेरे मनमे तेरे लौट आने का सन्देह पैदा कर रहा है ।।५३।।

११२ यह हिलते अलकोवाला तेरा मौन मुख मुझे (वैसे ही) सतप्त कर रहा है, जैसे रात्रिमें भीतर भ्रमरके शब्दसे रहित सोया अकेला कमल ।।५५।।

११३ शशिन पुनरेति शवरी दयिता द्वन्द्वचर पतत्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मा दहे ।।५६।।

११४ नवपल्लवसस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदगमर्पितम् ।
तदिद विषहिष्यते कथ वद वामोरु चिताधिरोहणम्।।५७।।

११५ कलम न्यभृतासु भाषित कलहसीषु मदालस गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षित पवनाधूतलतासु विभ्रमा ।।५९

११६ त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मा निहिता सत्यममी गुणास्त्वया
विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्ववलम्बितु क्षमा ।।६०।।

११७ कुसुम कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरण कथ नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम्।।६२

११८ तव नि श्वसितानुकारिभिबकुलैरधचिता सम मया ।
असमाप्य विलासमेखला किमिद किनरकण्ठि सुप्यते ।।६४

११९ धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरत गेयमृतुर्निरुत्सव ।
गतमाभरणप्रयोजन परिशून्य शयनीयमद्य मे ।।६६।।

१२० गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कला-
विधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद किं न मे
हृतम् ।।६७।।

१२१ विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैमम सर्वेविषयास्त्वदाश्रा "।।६९।

१२२ विलपन्निति कोसलाधिप करुणार्थग्रथित प्रिया प्रति ।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसवाष्पदूषिताम् ।।७०

—सर्ग ८

११३ चद्रमाके पास फिर रात्रि आती है चकवा पक्षीके पास फिर उसकी प्रिया आती है। इस प्रकार वे दोनो विरहके कालको सह सकते है, (पर) सदा के लिए चली गई तू मुझे क्यो न सतप्त करेगी ॥५६॥

११४ तेरा जो शरीर नव पल्लवके बिस्तरे पर भी रखने पर सतप्त होता था,हे सुदर उरुवाली,बोल,सो यह कैसे चितापर चढना सहेगा ॥५७॥

११५ तेरा मधुर भाषण कोयलोमें, मदसे अलस गमन कलहसियोमें, चचल दष्टि हरिनियोमे, विलास पवन कम्पित लताओमे ॥५९॥

११६ सचमुच ही स्वग जानेकी लालसावाली तूने मेरे ख्यालसे ये गुण बाट दिये। लेकिन वे (भी) तेरे विरहमे अति व्यथित मेरे हृदयको नही थाम सकते ॥६०॥

११७ तेरा दोहद बना यह अशोक जब फूलेगा, तब तेरे अलकोके उस आभरणको कैमे मै श्राद्धकी माला बनाऊगा ॥६२॥

११८ तेरे श्वासोका अनुकरण करनेवाली मौलसरियोकी हमारी आधी गुथी, इस विलास मेखलाको बिना पूरा किये, हे किन्नरकण्ठी, तू यह क्यो सो रही ॥६४॥

११९ मेरा धैय अस्त हो गया, खेल छूट गया, गान विरत हो गया, ऋतु मेरे लिये उत्सवहीन हो गया। आभूषणका प्रयोजन चला गया, आज मेरी शय्या तेरे बिना परिशून्य है ॥६६॥

१२० तू ही गहिणी, सचिव, सखी, ललित कलाओके बारेमे परस्पर प्रिय शिष्या रही है। निष्ठुर कालने तुझे हरते, बोल, मेरा क्या नही हर लिया ॥६७॥

१२१ विभव होनेपर भी तेरे बिना अजका सुख इतना ही गिनो, कि दूसरे प्रलोभनोमे न आकृष्ट मेरे सारे भोग तेरे अधीन है ॥६९॥"

१२२ इस प्रकार प्रियाके प्रति करुणा-पूण विलाप करते **कोसलाधिपने**, वक्षोको भी शाखाओसे गिरते रसरूपी आँसुओसे मलिन कर दिया ॥७०॥

—सग ८

(४) रामप्रत्यावर्तनम्

१२३ अथात्मन शब्दगुण गुणज्ञ पद विमानेन विगाहमान ।
रत्नाकर वीक्ष्य मिथ स जाया रामाभिधानो हरि-
रित्युवाच ॥१॥

१२४ वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्त मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्॥२॥

१२५ गर्भे दधत्यकमरीचयोऽस्माद्विवद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अबिन्धन वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादन ज्योतिरजन्य-
नेन ॥४॥

१२६ ता तामवस्था प्रतिपद्यमान स्थित दश व्याप्य दिशो
महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया
वा ॥५॥

१२७ मुखापणेषु प्रकृतिप्रगल्भ स्वय तरगाधरदानदक्ष ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्ति पिवत्यसौ पाययते च
सिन्धु ॥९॥

१२८ ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भ समील्यन्तो विवताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमय सरध्रैरूध्व वितन्वन्ति जल-
प्रवाहान् ॥१॥-

१२९ मातगनक्रै सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।
कपोलसर्सर्पितया य एषा व्रजन्ति कणक्षणचाम-
रत्वम् ॥११॥

१३० वेलानिलाय प्रसृता भुजगा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषा ।
सूर्याशुसपकसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभि
फणस्थै ॥१२॥

(४) रामका अयोध्या लौटना

१२३ तब गुणज्ञ राम नामक हरिने विमानसे आकाशको अवगाहन करते समुद्रको देखकर पत्नीसे कहा ॥१॥

१२४ "वदेहि, मलय तक मेरे सेतु द्वारा विभक्त फेनिल सागरको देख, मानो **आकाशगगा**से (विभक्त) उगे सु दर तारो वाला शरत कालका निमल आकाश है ॥२॥

१२५ सागरसे सूयकी किरणे जलरूपी गभ धारण करती है, यहा धन वद्धिका प्राप्त होते है। यह जल इधनवाली (**बडवा**) अग्निको धारण करता है, इसने आह्लादक च द्रमाको पैदा किया ॥४॥

१२६ नाना अवस्थाओको प्राप्त करते यह अपनी महिमासे दशो दिशाओमे व्याप्त होकर स्थित है। विष्णुकी तरह इसका रूप ऐसा या इतना कह कर समझाया नही जा सकता ॥५॥

१२७ तरगरूपी अधरके देनेमे दक्ष पत्नीमे अन य सामा य प्रेम रखनेवाला, स्वभावसे ही ढीठ यह समुद्र नदियो को स्वय पीता पिलाता है ॥९॥

१२८ नदीके मुहानेके प्राणियो सहित जलको खुले मुह हो रगडते ये तिमि मत्स्य अपने छिद्रवाले सिरोसे जलके प्रवाहोको ऊपर उछाल रहे है ॥१०॥

१२९ गजाकार नाकोके एकाएक ऊपर उछलनेसे समुद्रके फेनोको दो टुकडे होता देखो,वे इनके गालके पास होनसे क्षणभरके लिये कानोके चवर बन जाते है ॥११॥

१३० तटकी हवा पीनके लिए बडी लहरोके वेगसे अभिन्नसे फैले साँप सूयकी किरणोके सम्पकसे बढे रगवाली फणस्थित मणियोसे व्यक्त होते है ॥१२॥

१३१ तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पयस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुख कथंचित्क्लेशादपक्रामति शख-
यूथम् ॥१३॥

१३२ प्रवत्तमात्रेण पयासि पातुमावतवेगाद् भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिप्ठमय समुद्र प्रमथ्यमानो गिरिणेव
भूय ॥१४॥

१३३ दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलक-
रेखा ॥१५॥

१३४ कुरुष्व तावत्करभोरु, पश्चान्मार्गे मगप्रेक्षिणि दृष्टिपात,
एषा विदूरीभवत समुद्रात्सकानना निष्पततीव -
भूमि ॥१८॥

१३५ क्वचित्पथा सचरते सुराणा क्वचिद्घनाना पतता
क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाष प्रवतते पश्य तथा
विमानम् ॥१९॥

१३६ असौ महेन्द्रद्विपदानुगन्धिस्त्रिमागगावीचिविमदशीत ।
आकाशवायुदिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवा-
न्मुखे ते ॥२०॥

१३७ सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वा भ्रष्ट मया नूपुरमेक-
मुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदु खादिव बद्ध-
मौनम् ॥२३॥

१३८ त्व रक्षसा भीरु, यतोऽपनीता त मागमेता कृपया-
लता मे। अदशयन्वक्तुमशक्नुवत्य शाखाभिरावर्जि-
तपल्लवाभि ॥२४॥

१३१ तेरे अधरकी स्पर्धा करनेवाले लहरोके वेगसे एकाएक फेंके हुये ऊपरी अकुरो सहित मूगोसे गुथे मुखवाले शखोके समूह जैसे कैसे कठिनाईसे दूर जा रहे है ॥१३॥

१३२ भँवरके वेगसे घूमते जलको पीनेमे लगे मेघ द्वारा, यह समुद्र, पवत द्वारा फिर अत्यधिक मथा जाता दीख पड रहा है ॥१४॥

१३३ लवणसागरकी धारासे बधी बारीक तमाल-तालकी वन-पक्तियोसे नीला तट, दूरसे लोहेके चक्केके सदश (और) लवणसागरकी जल धारा स्याहीकी रेखा सी दीख पडती है ॥१५॥

१३४ हे गज सी उरुवाली, मृगनयनी जरा पीछे रास्तेपर दष्टिपात करो। कानन-सहित यह भूमि दूर होते समुद्रसे भाग सी रही है ॥१८॥

१३५ कही देवताओके पथसे और कही, पक्षियो कही बादलोके पथसे मेरे मनकी अभिलाषाके अनुसार देखो विमान जा रहा है ॥१९॥

१३६ यह महे द्रके गजके मदजलकी ग धवाला, गगाकी लहरके सम्पकसे शीतल, आकाश का वायु मध्या ह्मे निकले तेरे मुखके स्वेद-कणो को पी रहा है ॥२०॥

१३७ यही वह स्थल है, जहाँ तुझे खोजते पृथिवीपर गिरे एक नूपुरको मैंने देखा, जो मानो तेरे चरण-कमलके वियोगके दु खसे मौन था ॥२३॥

१३८ हे भीरु जिस मागसे राक्षस तुझे ले गया, उसे कृपा करके, बोलनेमें असमथ झुके पल्लवोयुक्त शाखाओंसे इन लताओने मुझे बतलाया ॥२४॥

१३९ मृग्यश्च दर्भाकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञ समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलो-
चनानि ॥२५॥

१४० एतद्गिरेर्माल्यवत पुरस्तादाविभवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नव पयो यत्र घनैमया च त्वद्विप्रयोगाश्रु सम विस-
ष्टम् ॥२६॥

१४१ उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि
दष्टि ॥३०॥

१४२ इमा तटाशोकलता च तन्वी स्तनाभिरामस्तबका-
भिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिबुध्या परिरब्धुकाम सौमित्रिणा साश्रुरह
निषिद्ध ॥३२॥

१४३ धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदव-
प्रपक ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुद प्त ककुद्मानिव **चित्र-
कूट** ॥४७॥

१४४ एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव
भूमे ॥४८॥

१४५ क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानु-
विद्धा ।
अन्यत्र माला सितपकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्त-
रेव ॥५४॥

१३९ और तणाकुरोकी उपेक्षा कर हरिनियोने तेरे जानेसे अनभिज्ञ मुझे सबोधित करते, ऊपर उठी पलकोकी पक्तिवाले नेत्रोको दक्षिण दिशामे कर दिया ॥२५॥

१४० **माल्यवान** गिरिके आगे आकाशचुम्बी यह शिखर प्रकट हो रहा है जहाँपर मेघोके साथ मने तेरे वियोगमे नया अश्रु-जल छोडा ॥२६॥

१४१ पासमें बेलोके वनोसे आच्छादित सारसोसे दोलित पम्पाके इस जल को दूरसे उतरी दृष्टि खिन्न हो पी सी रही है ॥३०॥

१४२ स्तन जैसे सु दर गुच्छोसे झुकी, तटके अशोककी पतली लताको तुझे पाया समझ अश्रु बहाते आलिंगनके इच्छुक मुझे लक्ष्मणने रोका ॥३२॥

१४३ हे सुतनु, धाराकी आवाज उगलनवाली गुहारूपी मुख और शिखरके अग्रभागपर लगे मेघके क्रीडा-पकवाला यह **चित्रकूट** दपयुक्त हो साडकी तरह मेरी आखोको खीच रहा है ॥४७॥

१४४ पवतके पास निमल निश्चल प्रवाहवाली दूर होनेसे पतली यह **म दाकिनी** नदी भूमिके कण्ठमें पडी मुक्तावलि सी प्रतीत हो रही ह ॥४८॥

१४५ कही प्रवाहको लेपन करनेवाले नीलोसे मिश्रित हो नीलममय यष्टि सी, कही नील कमलोंसे भीतर खचित श्वेत पकजोकी माला सी ॥५४॥

१४६ क्वचिनखगाना प्रियमानसाना कादम्बससगवतीव पक्ति ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पि-तेव ॥५५॥

१४७ क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्चछायाविलीनै शब-लीकृतैव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्य नभ-प्रदेशा ॥५६॥

१४८ क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मागरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्यागि, विभाति **गगा** भिन्नप्रवाहा **यमुना-तरगै** ॥५७॥

१४९ समुद्रपत्न्यौजलसनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वावबोधेन विनापि भयस्तनुत्यजा नास्ति शरीर-बन्ध ॥५८॥

१५० जलानि या तीरनिखातयपा वहत्ययोध्या मनुराज-धानीम् ।
तुरगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभि पुण्यतरीकृतानि॥६१॥

१५१ असौ पुरस्कृत्य गुरु पदाति पश्चादवस्थापितवाहिनीक ।
वृद्धैरमात्यै सह चीरवासा मामध्यपाणिभरतोऽभ्यु-पैति ॥६६॥

—सर्ग १३

(५) परित्यक्ताऽयोध्या

१५२ तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन ।
तस्या पुर सप्रति वीतनाथा जानाहि राजन्नधिदेवता माम् ॥१॥

१४६ कही मानसप्रेमी पक्षियोके समूहके सम्पकवाली पक्ति सी, कही कालागुरुसे दिये हुये पत्राकनवाली चदन निर्मित पृथिवीकी भक्ति सी ॥५५॥

१४७ कही छायामें विलीन अधकारोसे चद्रमाकी कालिमा लगी प्रभा सी, कही छिद्रोसे दिखाई देते नील आकाशमे शरदके शुभ्र मेघ-पक्तियो सी ॥५६॥

१४८ कही भस्म चूण लगे काले सर्पोके भूषणवाले शकरके शरीर सी। हे निर्दोषशरीरे, देख जमुनाके तरगोसे मिश्रित **गगा**का प्रवाह दिखलाई दे रहा है ॥५७॥

१४९ समुद्रकी पत्नियो **गगा जमुना**के सगमपर स्नान करने से, पवित्र हुये को, तत्वज्ञानके बिना भी मरनेपर शरीरका बधन नही रहता ॥५८॥

१५० तीरपर गाडे यज्ञस्तम्भोवाली सरयू **अयोध्या** राजधानीके पाससे जिस जलको बहाती है, उसे अश्वमेधके स्नानके लिये उतारकर **इक्ष्वाकुओने** पवित्र किया है ॥६१॥

१५१ (देखो) गुरुको आगे, सेनाओको पीछे किये वद्ध अमात्योके साथ, यह चीरधारी **भरत** अघ्य हाथमें लिये मेरे पास आ रहे ह ॥६६॥

—सग १३

५ ध्वस्त अयोध्या

१५२ "मै हे अपने पदसे ऊध्वगामी, तुम्हारे पिताके अधीन नागरिकोवाली थी।' वह कुशसे बोली, हे राजन, इस समय उसी अनाथपुरी (**अयोध्या**) की मुझे अधिदेवता जानो ॥९॥

१५३ विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेश पर्यस्तशाल प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूय दिनान्तमुग्रानिलभिन्न-भेद्यम् ॥११।

१५४ निशासु भास्वत्कलनूपुराणा य सचरोऽभूदभिसारि-काणाम्।
नदन्मुखोल्काविचिताम्मिषाभि स वाह्यते राजपथ शिवाभि ॥१२॥

१५५ आस्फालित यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदगधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानी महिषैस्तदम्भ शृङ्गाहत क्रोशति दीर्घि-काणाम् ॥१३॥

१५६ वृक्षेशया यष्टिनिवासभगान्मृदगशब्दापगमादलास्या।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हा क्रीडामयूरा वनबर्हिण-त्वम ॥१४।

१५७ सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान्।
सद्यो हतन्यकुभिरस्रदिग्ध व्याघ्रै पद तेषु निधीयते मे ॥१५॥

१५८ स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूस-राणाम।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सगान्निर्मोकपट्टा फणिभि-र्विमुक्ता ॥१७॥

१५९ कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाकुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्र-पादा ॥१८॥

१६० आवर्ज्य शाखा सदय च यासा पुष्पाण्युपात्तानि विला-
सिनीभि ।
वन्यै पुलिन्दैरिव वानरैस्ता क्लिश्यन्त उद्यानलता
मदीया ॥१९॥

१६१ रात्रावनाविष्कृतदीपभास कान्तामुखश्रीवियुता
दिवापि ।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा
गवाक्षा ॥२०॥

१६२ बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयससर्गमना ब्रुवन्ति
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयू-
जलानि ॥२१॥

१६३ तदर्हसीमा वसति विसृज्य यामभ्युपेतु कुलराजधानीम् ।
हित्वा तनु कारणमानुषीता यथा गुरुस्ते परमात्म-
मूर्तिम् ॥२२॥
—षोडश सर्ग

४ अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(१) शकुन्तला-परित्याग

१६४ राजा—(आरुह्य परिजनासावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति,
किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषय प्रेषिता
स्यु ? किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसा विघ्नैस्तपो दूषित,
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा,
इत्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुल मे मन ॥९॥

प्रतीहारी—सुचरितनन्दिन ऋषयो देव सभाजयितुमागता इति तर्कयामि ।

१६० जिनकी शाखाओसे स्नेहके साथ पकडकर विलासिनियोने पूजाके फूल उतारे थे, वह मेरी उद्यान लताये जगली भीलो जैसे बानरो द्वारा पीडित हो रही ह ॥१९॥

१६१ रातको दीपककी रोशनीसे शू य दिनमे भी ललनाओकी मुख शोभासे रहित बिना धूयेवाले गवाक्ष मकडियोके जालोंसे ढाके जा रहे ह ॥२०॥ ,

१६२ पूजा-कमसे रहित बालुकामय स्नानीय चूर्णोसे व चित पासमे बत र घरवाले सरयूके शू य जलो को देखकर म सतप्त हो उठती हूँ ॥२१॥

१६३ इसलिये इस (श्रावस्ती) बस्तीको छोडकर (अपनी) कुलराजधानी अयोध्यामे चलो ॥२२॥

—सग १६

४ अभिज्ञानशाकुन्तल

१ शकुन्तलाका परित्याग

१६४ राजा—(द्वारके कोठेपर चढकर परिजनके क धेका आसरा लिये खडे ह) बत्रधारिणी, किसलिये भगवान काश्यपने मेरे पास ऋषियो को भेजा होगा—

क्या बढे व्रतवालोके तप मे विघ्न पडा,
या **धर्मारण्यमे** रहनेवाले प्राणियोपर अत्याचार हुआ,
अथवा मेरे पापोसे वन लताओका फूलना फलना रुक गया,
इस तरह बहुत तक वितक करते निश्चय न कर मेरा मन व्याकुल है ॥९॥

प्रतिहारी—मै सोचती हूँ, सदाचार प्रेमी ऋषि महाराजका अभि नन्दन करनेके लिये आये हैं।

(**गौतमीके** साथ **शकु तलाको** आगे करके मुनि लोग प्रवेश करते हैं, उनके आगे-आगे कचुकी और पुरोहित है)।

कचुकी[1]—आप लोग इधर-इधर आये।

---

[1] ख्वाजासरा, अन्त पुरचारी वद्ध ब्राह्मण।

(तत प्रविशति गौतमीसहिता शकुन्तला पुरस्कृत्य मुनय पुरश्चैषा कचुकी पुरोहितश्च)

कचुकी—इत इतो भवन्त ।

१६५ शाङ्गरव—शारद्वत,

महाभाग काम नरपतिरभिन्नस्थितिरहो,
न कश्चिद्वर्णनामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।
तथापीद शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा,
जनाकीर्ण मन्ये हुतवहपरीत गृहमिव ॥१०॥

१६६ शकुन्तला—(निमित्त सूचयित्वा)। अहो, कि मे वामेतरन्नयन विस्फुरति ।

गौतमी—जाते, प्रतिहतममगलम्। सुखानि ते भर्तकुल-देवा वितरन्तु। (इति परिक्रामति।)

१६७ पुरोहित—(राजान निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विन असावत्र भवान्वर्णाश्रमाणा रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो व प्रतिपालयति। पश्यतैनम् ।

१६८ शाङ्गरव—भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीय तथापि वयमत्र मध्यस्था । कुत—

भवन्ति नम्रास्तरव फलागमैर्,
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना ।
अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१२॥

प्रतीहारी—देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषय ।

१६९ राजा—(शकुन्तला दृष्ट्वा) अथात्र भवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनाना किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥१३॥

१६५ शाङगरव—शारद्वत,
अहो महाभाग राजा चाहे न्यायपर दढ हो,
वर्णोंमे कोई भी कुमार्गपर चलता हो
तो भी सदा एकान्तमें अभ्यस्त मनसे,
यह जनाकीर्ण स्थान मुझे आगसे घिरे घर सा मालूम होता
है ॥१०॥

१६६ शकुन्तला—(असगुन देखकर) अहा मेरा दाहिना नेत्र क्यो
फडक रहा है ?
गौतमी—पुत्रि, (तेरा) अमगल नष्ट हो गया है। पतिके
कुलदेवता तुझ सुख प्रदान करे। (परिक्रमा करके)

१६७ पुरोहित—(राजाको दिखलाकर) हे तपस्वियो, वर्णाश्रमो के
रक्षक यहा आप पहले ही से आसन को छोड आपकी प्रतीक्षा
कर रहे है, उन्हे देखे।

१६८ शाङगरव—हे महाब्राह्मण, चाहे यह अभिनन्दनीय हो तो भी
हम इस विषयमे उदासीन है। क्योकि—
फलके आनेपर वक्ष नम्र होते है,
नये जलवाले मेघ दूर तक लटकते है।
सत्पुरुष समद्धिसे उच्छखल नही होते,
परोपकारियोका यही स्वभाव है ॥१२॥
प्रतिहारी—महाराज, यह प्रसन्नमुख दिखाई दे रहे है। मै
समझती हूँ, ऋषि आश्वस्त है।

१६९ राजा—(शकुन्तलाको देखकर) और यह आप—
शरीरके अत्यन्त अस्फुट सौन्दर्यसे युक्त अवगुण्ठनवती,
तपस्वियोके बीच पीले पत्तोके बीच नवपल्लवो सी कौन है ॥१३॥

१७० प्रतीहारी—देव, कुतूहलगर्भोपहितो न मे तक प्रसरति। ननु दशनीया पुनरस्या आकृतिलक्ष्यते।
राजा—भवतु। अनिवर्णनीय परकलत्रम्।

१७१ शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा। आत्मगतम्) हृदय, किमेव वेपसे? आयपुत्रस्य भावमवधाय धीर तावद् भव।

१७२ पुरोहित—(पुरोगत्वा)एते विधिवदर्चितास्तपस्विन। कश्चिदेषामुपाध्यायसदेश। त देव श्रोतुमहति।
राजा—अवहितोऽस्मि।

१७३ ऋषय—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्।
राजा—सर्वानभिवादये।
ऋषय—इष्टेन युज्यस्व।
राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनय?

१७४ ऋषय—

कुतो धर्मक्रियाविघ्न सता रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घ्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥१४॥

१७५ राजा—अर्थवान्खलु मे राजशब्द। अथ भगवाल्लोकानुग्रहाय कुशली कण्व?
ऋषय—स्वाधीनकुशला सिद्धिमन्त। स भवन्तमनामयप्रश्नपूवकमिदमाह—
राजा—किमाज्ञापयति भगवान्?

१७६ शार्ङ्गरव—यन्मिथ समयादिमा मदीया दुहितर भवानुपायस्त, तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुत, तदिदानीमापन्नसत्वा प्रतिगृह्यता सहधम चरणायेति।

१७० प्रतिहारी—महाराज, कौतूहलमें पडा मेरा तक काम नही दे रहा। हाँ इसका रूप दशनीय मालूम होता है।

राजा—अस्तु, दूसरेकी स्त्रीको नही देखना चाहिये।

१७१ शकुन्तला—(छातीपर हाथ रख अपने आपसे) हृदय, क्यो इस तरह कापता है। आयपुत्रके अभिप्रायको जानकर धीरज धर।

१७२ पुरोहित—(आगे जाकर) इन तपस्वी (महात्माओ) की विधिवत पूजा कर दी गई है। इनके उपाध्यायका कोई सन्देश है, उसे महाराज सुनें।

राजा—म सावधान हूँ।

१७३ ऋषि लोग—(हाथ उठाकर) राजन तुम्हारी विजय हो।

राजा—म सबको अभिवादन करता हूँ।

ऋषि लोग—तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो।

राजा—मुनि लोगोकी तपस्या निर्विघ्न तो है?

१७४ ऋषि लोग—

तुम्हारे रक्षक होते कैसे सतोके धम-कायमें विघ्न हो सकता है?
सूय के तपते समय कैसे अधकार प्रकट हो सकता है।।१४।।

१७५ राजा—मेरा राजाका नाम साथक है। अच्छा, भगवान कण्व लोक पर अनुग्रह करनेके लिये कुशलपूवक तो है?

ऋषि लोग—सिद्धिप्राप्त पुरुषोका कुशल (उनके) स्वाधीन होता है। उन्होने कुशल-मगल पूछकर यह कहा है।

राजा—भगवान क्या आज्ञा देते ह?

१७६ शार्ङ्गरव—"आपसमें शत करके मेरी कन्याके साथ आपने व्याह किया, सो प्रसन्नताके साथ मैंने आप दोनोके कायको स्वीकार किया। अब यह गर्भिणी है, इसे साथ रख धर्माचरणके लिये ग्रहण कीजिये"।

१७७ शकुन्तला—(आत्मगतम्) कि नु खल्वार्यपुत्रो भणति ?
राजा—किमिदमुपन्यस्तम् ?

१७८ शकुन्तला—(आत्मगतम्) पावक खलु वचनोपन्यास
शाङ्गरव—कथमिद नाम ? भवन्त एव सुतरा लोक-वृत्तान्तनिष्णाता
गौतमी—
नापेक्षितो गुरुजनो नो खलु पृष्टश्च बन्धुजन ।
परस्परस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकैकम् ॥१६॥
सतीमपि ज्ञातकुलैकसश्रया जनोऽन्यथा भर्तुमती विशकते।
अत समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया च प्रमदा स्व-बन्धुभि ॥१७॥
राजा—कि चात्र भवती मया परिणीतपूर्वा ?
शकुन्तला—(सविषादम्, आत्मगतम्) हृदय, साप्रत त आशका ।

१७९ गौतमी—जाते, मुहुर्त मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वा भर्ताभिज्ञास्यति। (इति यथोक्त करोति)।

१८० राजा—शकुन्तला निर्वर्ण्य। (आत्मगतम्)—
इदमुपनतमेव रूपमक्लिष्टकान्ति,
प्रथमपरिगृहीत स्यान्न वेति व्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषार।
न च खलु परिभक्तु नैव शक्नोमि हातुम्॥१९॥
(इति विचारयन्स्थित)

१७७ शकुन्तला---(अपने आपसे) देखे, आयपुत्र क्या बोलते है ?
राजा---आपने यह क्या कहा ?

१७८ शकुन्तला---(अपने आपसे)। यह वचन आग जैसा है।
शाङ्गरव---यह कैसे ? आप ही लोकवत्तान्तके अधिक ज्ञाता है।
इसने गुरुजनोकी अपेक्षा नही की, और न ब धुजनोसे पूछा।
परस्पर किये कामके विषयमे एक एकको क्या कहूँ ॥१६॥
मायकेमे ही केवल रहनेवाली सधवा सतीके बारेमें भी लोग शका
करते है। इसलिये प्रिया या अप्रिया स्त्रीको ब धुजन पतिके पास
रख देना चाहते है ॥१७॥
राजा---क्या मैने इन आपसे पहले व्याह किया है ?
शकुन्तला---(विषादके साथ अपने आपसे) हृदय, तेरी शका
उचित है।

१७९ गौतमी---पुत्रि जरा लज्जा न कर। तेरे घूघटको हटाती हूँ,
तब तुझे पति पहचानेगे।

१८० राजा---(शकु तलाको अच्छी तरह देखकर अपने आपसे)---
ऐसा निमल कमनीय रूप (घर) आया है,
इसे पहले ग्रहण किया या नही, यह सोचते,
भीतर तुषारयुक्त कु दको सवेरे जैसे भ्रमर,
(वैसे ही) मै न भोग सकता न छोड सकता ॥१९॥
(यह विचारते खडा रहा)।

१८१ प्रतीहारी—अहो धर्मापेक्षिता भर्तु। इदृश नाम सुखोपनत रूप दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।

शाङ्गरव—भो राजन्, किमिति जोषमास्यते?

१८२ राजा—भोस्तपोधन, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्या स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणा प्रत्यात्मान क्षेत्रिणमाशकमान प्रतिपत्स्ये?

१८३ शकुन्तला—(अपवाय) आयस्य परिणय एव सदेह। कुत इदानी मे दूराधिरोहिण्याशा।

१८४ शाङ्गरव—मा तावत्—

कृताभिमर्षामनुमन्यमान सुता त्वया नाद्य मुनिर्विमान्य।
मुष्ट प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन॥२०॥

१८५ शारद्वत—शाङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभि। सोऽयमत्र भवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम।

१८६ शकुन्तला—(अपवाय) इदमवस्थान्तर गते तादृशेनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानी मे शोचनीय इति व्यवसितमेतन् (प्रकाश) आयपुत्र, (इत्यर्धोक्ते) सशयित इदानी परिणये नैष समुदाचार। पौरव, न युक्त नाम ते तथा पुराऽऽश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिम जन समयपूव प्रतार्येदृशैरक्षरै प्रत्याख्यातुम्।

१८७ राजा—(कणौ पिधाय) शान्त पापम्।

व्यपदेशमाविलयितु किमीहसे जनमिम च पातयितुम्।
कूलकषेव सिन्धु प्रसन्नमम्भस्तटतरु च॥२१॥

१८१ प्रतिहारी—अहो, स्वामीका धमपर ध्यान। ऐसे सुलभ रूपको देख कर कौन है दूसरा, (जो) हिचकिचाता।
शाङ्गरव—राजन, आप क्यो चुप है ?

१८२ राजा—हे तपोधन सोच कर भी इनके ग्रहणकी बात मुझे याद नही आती। फिर कसे प्रकट गर्भिणी इनके प्रति अपनेको क्षेत्री बनाऊ।

१८३ शकुन्तला—(एकान्तमे) व्याहके विषयमें भी आयको सन्देह है ? अब कहा से मै दूरवाली सीढीकी आशा कर सकती हूँ ?

१८४ शाङ्गरव—ऐसा मत कहो—
(तुमसे) अपनी सुताको सबधित मानते (उस) मुनिको अपमानित न करो। जिसने चुराये धनको चोरको देते तुम्हे पात्र बनाया ॥२०॥

१८५ शारद्वत—शाङ्गरव, जरा तुम ठहरो। शकु तले, जो कहना था हमने कह दिया। और आप ऐसा कह रहे है। इन्हे विश्वास दिलाओ।

१८६ शकुन्तला—(एका तमें) उस तरहके अनुरागके उलट जाने पर याद करानेंसे क्या ? मुझे अब अपनेपर शोक करना है यही निश्चित है। (प्रकट) आयपुत्र, (आधा ही कहकर, विवाहके सदिग्ध होनेपर यह सबोधन ठीक नही) पुरु सतान, पहले आश्रममे स्वभावत सरल हृदयवाले इस जनको प्रतिज्ञापूवक वचित कर ऐमे शब्दो द्वारा प्रत्याख्यान करना तुम्हारे लिये उचित नही है।

१८७ राजा—(दोनो कानोपर हाथ रखकर) शान्त पापम् क्या (मेरी) कीर्तिको मलिन करना और इस जनको गिराना चाहती हो, जैसे किनारा तोडनेवाली नदी निमल जल और तटके वृक्षको (गिराती ह) ॥२१॥

१८८ शकुन्तला—भवतु। यदि परमार्थत परपरिग्रह-शकिना त्वयैव वक्तु प्रवृत्त, तदभिज्ञानेनानेन तवाशका-मपनेष्यामि।
राजा—उदार कल्प।

१८९ शकुन्तला—(मुद्रास्थान परामृश्य) हा धिक्। अगुली-यकशून्या मेऽगुलि। (इति सविषाद गौतमीमवेक्षते)।
गौतमी—नून ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिल वन्दमानाया प्रभ्रष्टमगुलीयकम्।

—अक ५

(२) **अभिज्ञान-लाभ**

(तत प्रविशति नागरिक श्याल, पश्चाद्ब-द्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

१९० रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेय राजकीयमगुलीयक-मासादितम्?
पुरुष—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्रा। अह नेदृशकमकारी।

१९१ प्रथम—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्त?
पुरुष—शृणुतेदानीम्। अह शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवर।

१९२ द्वितीय—पाटच्चर, किमस्माभिर्जाति पृष्ठा?
उभौ—यदावुत्त आज्ञापयति, कथय।

१८८ शकुन्तला—अस्तु यदि पराईके स्वीकारके भयसे तुम वस्तुत ऐसा कहते हो तो इस अभिज्ञान से तुम्हारी शका मिटाती हूँ।

राजा—बहुत ठीक।

१८९ शकुन्तला—(अगूठीके स्थानको छूकर) हा धिक मेरी अगुली में अगूठी नही है। (यह कह खिन्न हो गौतमीको देखती ह)।

गौतमी—निश्चय, शक्रावतारमे शची तीर्थकी वदना करते तेरी अगूठी गिरी होगी।

—अक ५

(प्रवेशक)

२ स्मारक अगूठी का लाभ

(कोतवाल हाथ पीछे बधे पुरुष और दो पुलिस सिपाहियोको लेकर प्रवेश करता है।)

१९० दोनो सिपाही—(पीटकर) अरे चोर, बता यह नामाकित राजकीय अगूठी तूने कहा पाई?

पुरुष—(भयका अभिनय करते) हुजूर, दया करे। मै ऐसा काम करनेवाला नही हूँ।

१९१ प्रथम सिपाही—तो क्या भला ब्राह्मण समझकर राजाने (इसे) तुझे दान दिया।

पुरुष—सुनिये अब। मै शक्रावतारमे रहनेवाला धीवर हूँ।

१९२ दूसरा सिपाही—लुटेरे, क्या हमने तुझसे जात पूछी?

कोतवाल—सूचक, क्रमसे सब कहने दो, बीचमे मत टोको।

१९३ पुरुष —अह जालोद्गालादिभिमत्स्यबाधनोपायै कुटु-म्बभरण करोमि। एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो, यावत् तस्योदराभ्यन्तर इद रत्नभासुरमगुलीय दृष्ट्वा पश्चादह तस्य विक्रयाय दशयन्गहीतो भावमिश्रै। मारयत वा मुचत वा, अयमस्यागमवृत्तान्त।

१९४ श्याल —जानुक, विस्रगन्धी गोधाद्री मत्स्यबन्ध एव नि सशयम्। अगुलीयकदशनमस्य विमशयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छाम

रक्षिणौ—तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

१९५ श्याल —सूचक, इम गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयत यावदिदमगुलीयक यथागमन भर्तुर्निवेद्य तत शासन प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि

१९६ उभौ—प्रविशत्वावुत्त स्वामिप्रसादाय

(इतिनिष्क्रान्त श्याल)

प्रथम —जानुक, चिरायते खल्वावत्त।

द्वितीय —नन्ववसरोपसपणीया राजान।

१९७ प्रथम —जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वधाथ सुमनस पिनद्धम (इति पुरुष निर्दिशति)।

१९८ पुरुष —नाहति भावोऽकारणमारण भावयितुम्।

द्वितीय —(विलोक्य) एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राज-शासन प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिभविष्यति, शुनो मुख वा द्रक्ष्यसि।

(प्रविश्य)

१९३ पुरुष—मैं जाल फेकने आदि मछली फसानेके उपायोसे कुटुम्बका पोषण करता हूँ। एक दिन रोहू मछलीको मैं खड-खड काट रहा था। उसी समय उसके पेटके भीतर इस रत्न जैसी प्रकाशमान अगूठीको देखकर फिर मैं बचनेके लिये इसे दिखला रहा था, तभी हुजूर लोगोने मुझे पकड लिया। मारिये या छोडिये, इसकी प्राप्तिकी यही बात है।

१९४ कोतवाल—**जानुक** यह निस्सन्देह विसाइन बसाता गोह भक्षक धीवर है। अगूठी कैसे पाया, यह सोचना है। दरबारमे ही चलते है।

दोनो सिपाही—ठीक, चल रे पाकेटमार।

(सब परिक्रमा करते ह)

१९५ कोतवाल—**सूचक**, दरबारके फाटकपर इसे सावधानीसे तब तक रक्खो, जब तक कि अगूठी कैसे प्राप्त हुई, इसके बारेमे स्वामीको निवेदन कर उनसे आज्ञा लेकर म न आजाऊँ।

१९६ दोनो सिपाही—बाबू, स्वामीकी कृपा पानके लिये प्रवेश करें।

(कोतवाल निकल गया)

प्रथम सिपाहीं—जानुक, बाबू देर कर रहे है।

दूसरा सिपाही—राजा लोगोके पास अवसर पाकर ही पहुचना होता है।

१९७ प्रथम सिपाही—जानुक, बध के लिये इसपर, फूल बाधनेके वास्ते मेरे हाथ फडक रहे है।

(ऐसा कहते पुरुषकी ओर इशारा करता है।)

१९८ पुरुष—हुजूर, अकारण मरवाना नही चाहिये।

दूसरा सिपाही—(देखकर) यह हमारे स्वामी हाथमें पत्र लिये राजाज्ञा पा इधर ही आते दिखाई दे रहे है। रे, (अब) तू गिद्धोकी बलि होगा, या कुत्तेका मुह देखेगा।

(प्रवेश करके)

१९९ श्याल —सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्न खल्वगुलीयस्यागम ।
सूचक —यथावुत्तो भणति।
द्वितीय —एष यमसदन प्रविश्य प्रतिनिवत्त । (इति पुरुप परिमुक्तबन्धन करोति)।
२०० पुरुष —(श्याल प्रणम्य) भत, अथ कीदशो म आजीव ?
श्याल —एष भर्त्रागुलीयकमूल्यसमित प्रसादोऽपि दापिन (इति पुरुषाय स्व प्रयच्छति)।
२०१ पुरुष —(सप्रणाम प्रतिगह्य) भत, अनुगहीतोऽस्मि
सूचक —एष नामानुग्रहो यच्छूलादवताय हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापित ।
जानुक —आवुत्त, परितोष कथय। तेनागुलीयकेन भर्तु समतेन भवितव्यम् ?
२०२ श्याल —न तस्मिन्महाह रत्न भर्तुबहुमतमिति तकयामि। तस्य दशनेन भतुरभिमतो जन स्मारित । मुहुत प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्।
२०३ सूचक —सेवित नामावुत्तेन।
जानुक —ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति (इति पुरुषमसूयया पश्यति)।
२०४ पुरुष —भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माक सुमनोमूल्य भवतु।
जानुक —एतावद्युज्यते।
२०५ श्याल —धीवर, महत्तरस्त्व प्रियवयस्यक इदानी मे सवृत्त। कादम्बरीसखित्वमस्माक प्रथमशोभितमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छाम ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

—अक ६

१९९ कोतवाल—सूचक, धीवरको छोड दो। अगूठी (जैसे) मिली (वह) ठीक है।
सूचक—जैसी बाबूकी आज्ञा।
दूसरा सिपाही— यमराजके घरमें पहुँचकर यह लौट आया।
२०० पुरुष—(कोतवालको प्रणाम कर) स्वामी, तो कैसा रहा मेरा पेशा ?
कोतवाल—स्वामीने अगूठीके मूल्यके बराबर यह इनाम दिलवाया है। (पुरुषको धन देता है)।
२०१ पुरुष—(प्रणाम सहित ले कर) मालिक बडा अनुगहीत हूँ।
सूचक—इसीको अनुग्रह कहा जाता है, जो सूलीसे उतारकर हाथी के कंधेपर बैठाना।
जानुक—बाबू, इनाम की बात कही। वह अगूठी स्वामीको बहुत प्रिय होगी।
२०२ कोतवाल—मै समझता हूँ, महाध रत्न सोचकर वह स्वामीको प्रिय नही है, उसके दशनसे स्वामीको अपने प्रियजनकी याद हो आई। स्वभावत गम्भीर भी स्वामी क्षणभर कातर-नयन हो गये।
२०३ सूचक—तो बाबूने सेवा बजा दी।
जानुक—तो बतलाओ, इसके बारेमे धीवरको (पुरुषको ईर्ष्यासे देखता है)।
२०४ पुरुष—भट्टारक, इसका आधा तुम लोगोके लिये फूलका दाम रहे।
जानुक—इतना ठीक है।
२०५ कोतवाल—धीवर महतो, तू अब मेरा प्रिय मित्र हो गया। पहिला शुभ काय, हमारा शराबसे मित्र बनना ठीक है, सो कलालकी दूकानमें चलें।

(सब निकल गये)

—अक ६

२१ कुमारदास (५०० इ० पू०)

यह सिहलके राजा थे, जिनकी मृत्यु ५२४ ई० में हुई थी। सिहल-परपरा कुमारदासको कालिदासका समकालीन और प्रिय मित्र बतलाती है और यह भी, कि किसी वेश्याने लोभके कारण कालिदासको मार डाला। जब इसकी खबर कुमारदासको लगी, तो महाकविकी चितामें राजाने भी अपनेको जला दिया। इस कथामें जितनी मात्रामें भावुकता है, उतनी सत्यता नहीं। तो भी कालिदाससे एक शताब्दी बाद पदा हुए कुमार दास उनके बहुत ही भक्त थे। वृहत्तर भारतके यव, कम्बुज आदि देशोंमें सस्कृतका बहुत मान था। वहा उसके अनेक पडित भी हुए। अच्छे कवि

जानकीहरणम

(१) अयोध्या

१ आसीदवन्यामतिभोगभाराद् दिवावतीर्णा नगरीव दिव्या।
क्षत्रानलस्थानशमी समृद्धया, पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या ॥१॥

२ यत्सौधश्रृगाग्रसरोजराग-रत्नप्रभाविच्छुरित शशाक।
पौरागनावक्त्रकृतावमानो, जगाम रोषादिव लोहि-तत्वम् ॥२॥

३ कृत्वाऽपि सवस्य मुद समृद्ध्या, हर्षाय नाभूदभिसा-रिकाणाम्।
निशासु या काचनतोरणस्थ-रत्नाशुभिभिन्नत-मिस्रराशि ॥३॥

४ चीनाशुकैरभ्रलिहामुदग्र,-श्रृगाग्रभागोपहितैर्गृहाणाम्।
विटककोटिस्खलितेन्द्रसृष्ट,-निर्मोकपट्टैरिव याऽवभासे ॥४॥

२१ कुमारदास (५०० ई०)

भी हुए होंगे, लेकिन सिंहलके इस महान कविको ही भारतमें पूरी प्रतिष्ठा मिली। इसकी सूक्तियोंको हमारे साहित्यकारोंने उद्धृत किया, और "जानकीहरण" का नाम बडी इज्जतके साथ लिया गया। राजशेखर (दसवीं शताब्दी) के अनुसार यह कालिदासकी शैलीके माननेवाले थे। "जानकीहरण" भारतसे लुप्त हो गया, लेकिन सौभाग्यसे सिंहलमें सिंहली भाषामें उसकी एक टीका मिल गई, जिसमें व्याख्या करते समय मूल पद उद्धृत किये गये थे। इन्हीं पदोंको जोडकर "जानकीहरण" का उद्धार इन पंक्तियोंके लेखकके गुरु श्री धर्मानन्द महास्थविरके गुरु श्री धर्माराम महास्थविरने किया।

जानकीहरण

१ अयोध्या-वर्णन

१ अत्यन्त भोगो सहित स्वर्गलोकसे पृथ्वीपर उतरी दिव्य नगरीसी, क्षत्रियरूपी अग्नि-स्थानकी शमीसी, पुरियोमे समृद्ध अयोध्या नामक नगरी थी ।।१।।

२ जिसके महलोके शिखरोके अग्रभागपर स्थित पद्मराग मणिकी प्रभासे प्रतिबिंबित चन्द्रमा, मानो नगर की अगनाओके मुखोसे पराजित हो कोपसे लाल हो गया ।।२।।

३ अपनी समृद्धिसे सबको आनन्दित करके भी वह नगरी अभिसारिकाओ को हर्षदायक नहीं हुई, (क्योकि) रातको सोनेके तोरणोमें अवस्थित रत्नोकी किरणोसे वहा अधाकार समूह नष्ट हो जाता था ।।३।।

४ आकाशचुम्बी गृहोके ऊँचे शिखरोके अग्रभागपर रक्खे, वेदीके छोरपर खिसके, इन्द्र निर्मित केचुल जैसे वस्त्रोसे जो प्रकाशित थी ।।४।।

५. दिदृक्षुरन्त सरसीमलघ्य, यत्खातहस समुदीक्ष्य
वप्रम्।
सस्मार नून दृढक्रौचकुज,-भागच्छिद भागवमा-
र्गणस्य ॥५॥

६ रथ्यासु यस्या रदिनो गहाणा,-मादशभिन्न कृत-
बध्यघाता ।
स्वबिबमालोक्य तत प्रमाण, चक्रुर्मदामोदमरि-
द्विपानाम् ॥६॥

७ लग्नैकभाग सितहर्म्यशृगे, विकृष्य मन्देन समीरणेन।
दीर्घीकृत बालमृणालशुभ्र, करोति यत्रध्वज-
कृत्यमभ्रम् ॥७॥

८ यस्या युवत्यो विहिता विधात्रा, रत्नैरिवापूवपुष
प्रकषम्।
प्रवालशीर्षा वदन सुवर्ण, मुक्तामयागावयवान्-
वहन्त्य ॥८॥

९ आलिग्य तुग वलभीविटक, विश्राणितात्मध्वनिपुष्करेषु
यत्सौधकान्तेरिव सविभाग, वव्रे सित शारदमभ्र-
वृन्दम् ॥९॥

१० प्रभाविवृत्तिर्वितता पताका-,स्वासन्नजीमूतघटासु
यस्याम्।
विद्युन्निभा काचनपिजरासु, ततान तोष शिखिना-
मुदग्रम् ॥१०॥
—सर्ग १

५ जिसकी परिखाका हस, सरोवरके भीतर देखनेके इच्छुक अलघनीय प्रकारको ऊपर देखकर, भागवके वाणके दृढ क्रौंच-कुजके भागका छेदना याद करता था ।।५।।

६ जिसकी सडकोपर के हाथी घरोके दपणमें निकले अपने प्रतिबिंबको देखकर बध्य घात किये गज शत्रुओके गजोके मदकी ग ध का पता पाते ।।६।।

७ सफेद महलके शिखरके एक छोरपर फसा, मन्द वायुसे खिचा, नव मृणाल जैसा श्वेत लम्बा बना मेघ, पताकेका काम देता था ।।७।।

८ जहा ब्रह्माने युवतियोको रत्नोकी तरह सुन्दर शरीर, मूगे जैसे सिरवाले सुनहले मुख, मुक्तामय शरीरावयव वाली बनाया ।।८।।

९ अटारीकी ऊँची वेदीका आलिंगन कर, पोखरोमे अपनी ध्वनिको बाट कर, शरद्कालके श्वेत मेघने जिसके महलोकी कान्ति को स्वीकार सा किया ।।९।।

१० जिस नगरीमे समीपस्थ मेघकी घटाओ मे बिजली सी पताकाओमें फैली प्रभाने, सोनेके पिंजडोमें स्थित मोरोको बहुत प्रसन्न किया ।।१०।।

—सर्ग १

(२) वसन्त

११ अथो वसन्त सुमनस्समद्ध्या, पूर्वावतीर्णो भुवन ततान ।
तस्य श्रिय प्राणसमस्य सम्यग्, ज्ञात्वा विवक्षामिव मत्यधाम ॥१॥

१२ भ्रान्त्वा विवस्वानथ दक्षिणाशा, आलब्य सवत्र करप्रसारी ।
ऋत्विक्ततो नि स्व इव प्रतस्थे, यत्रोपलब्धौ धनदस्य वास ॥२॥

१३ रूप वितेनुनवकुड्मलाढ्या, वृक्षा मनोज्ञद्युतिचपकाख्या
न्यस्ता वसन्तस्य वनस्थलीभि, सहस्रदीपा इव दीप-वक्षा ॥३॥

१४ सपिडितात्मावयवा उदीयु, पद्मानवा कटकितोध्व-दडा ।
अन्तजलावासविरूढशीत,-त्रस्ता वसन्तातपका-म्ययैव ॥४॥

१५ कर्णे कृतो दीघविलोचनाना, आलोलदृष्टिद्युति-भिन्नराग ।
बालोऽप्यशोकप्रभव प्रवाल, कान्ति प्रपेदे परि-णामगम्यम् ॥५॥

१६ प्रादुर्बभूवुर्नवकुड्मलानि, स्फुरन्ति कान्त्या करवीरजानि
प्रवासिना शोणितपाटलानि, नीरीफलानीव मनो-भवस्य ॥६॥

१७ वन्ध्योपि सालक्तकपादघात, लब्ध्वा रणन्नूपुरमग-नानाम्
उद्भूतरोमाच इवातिहर्षात्, पुष्पाकुरैरास नवैर-शोक ॥७॥

२ वसन्त-वणन

११ तब वसन्त फूलोकी समद्धिके साथ पहले उतरकर भुवनमे फैल गया। उसकी प्राणसम शोभाको भली प्रकार जानकर मर्त्यलोक मे रहनेकी इच्छासे मानो ॥१॥

१२ सूयन दक्षिणायन भ्रमणकर सवत्र किरणोको बिखेर अधिक दानसे मानो धनहीन हो, कुबेरका जहा वास है, वहा उसे पानके लिय प्रस्थान किया ॥२॥

१३ मनोहर द्युतिवाले चम्पक वक्ष नवीन कलियोसे समद्ध हो सौन्दय बढा रहे थे। वनस्थलियोने वसन्तके हजार दीपवाले झाडको मानो स्थापित किया था ॥३॥

१४ अपने शरीरको सकुचित किये, कण्टकित ऊपरी नालवाले, नवीन पद्म उग थे। मानो जलके भीतर वास करनसे बढी सर्दीसे डरकर वसन्तकी धूपकी कामनासे ही (यह कह रहे थे) ॥४॥

१५ विशाल-नत्रियाके कानोमें स्थापित अशोकसे मूगारूपी नव-अकुरने चचल नेत्रकी आभासे रगसे मिश्रित हो उनकी कान्तिको धारण किया ॥५॥

१६ करवीरकी नवीन कलिया प्रादुर्भूत हुईं अपनी कान्तिसे चमकने लगी। मानो कामदेव के लाल नीरीफल विरहियोके रक्तसे रजित ह ॥६॥

१७ बन्ध्या होत भी अगनाओके झँकृत नुपूरवाले महावर सहित पैरोके आघातसे, मानो बन्ध्या अशोक अति हषसे नवीन पुष्पाकुरोके मिससे रोमाचित है ॥७॥

१८ महीध्रमूर्ध्नि भ्रमरेद्रनीलै,-र्विभक्तशोक शिखि-
कठनीलै ।
गहीतभास्वन्मुकुटानुकार, ततान कान्ति नवकर्णि-
कार ॥८॥

१९ वासतिकस्याशुचयेन भानोर्, हेमन्तमालोक्य हतप्रभावम्
रम्य जहासे धृतकटकेन, प्रीत्या वनेनेव सरोरुहाणाम् ॥९॥

२० समीरणानर्तितमजरीके, चूते निसर्गेण निषक्तभावा ।
पुष्पावतसेषु पद न चक्रु,-र्दीप्तेष्विवाशोकवनेषु
भृगा ॥१०॥

२१ विनिद्रपुष्पाभरण पलाश, समुल्लसन् कुन्दलतावनद्ध ।
उद्भूतभस्मा मधुनेव रेजे, राशीकृतो मन्मथदाह-
वह्नि ॥११॥

२२ वसन्तदीप्तातपखेदिताना, महीरुहा वातचला प्रवाला ।
जिह्वा यथा विद्रुमभगताम्रा, निष्कासिता रेजुरति-
श्रमेण ॥१२॥

२३ प्रालेयकालप्रियविप्रयोग,—ग्लानेव रात्रि क्षय-
माससाद ।
जगाम मन्द दिवसो वसन्ते, क्रूरातपश्रान्त इव
क्रमेण ॥१३॥

२४ तत स्मरस्याहवधामकल्प,क्षोणी (गत) भ्रान्तशिलीमुखा-
कम् । उद्यानमासेवत रक्तदीप्ति,— सन्तानभास्वत्-
करवीरकीर्णम् ॥१४॥

२५ रम्याणि रामानुगताविभग,—पक्षानिलानर्तितपल्लवानि ।
उद्भ्रातभृगाणि लतागृहाणि, सभावयामास रहो
विहारै ॥१५॥

१८ पर्वतके शिखरपर भवरो, मोरके कण्ठो जैसे नीले गहरे नीलम द्वारा शोक-रहित सूयके मुकुटका अनुकरण करनेवाला नवीन कणिकार कान्तिका प्रसार कर रहा था ॥८॥

१९ वसन्तकालके सूयकी किरणोसे हेमन्तको अशक्त देख कर, कमलोके कण्टकित वनसे प्रसन्न होकर मानो (वसन्त) हस रहा था ॥९॥

२० वायुसे नाचती मजरीवाले आम्रमे स्वभावत आसक्ति रखनेवाले भवरे, अशोक वनोको प्रज्ज्वलित (अग्नि) सा समझ फूलोके ऊपर पर नही रखते थे ॥१०॥

२१ अडहुल-कुसुमसे भूषित, कुदकी लतासे बद्ध, उल्लसित पलाश, कामदेवकी दाह-अग्नि की राशिसे उठी मधुर भस्मसा शोभित (हो रहा) था ॥११॥

२२ वसन्तकी उद्दीप्त धूपसे खिन्न, हवा से चलते वक्षोके पल्लव, जान पडते थे, मानो (वह) अत्यन्त श्रमके कारण अपनी मूगे सी लाल जिह्वायें निकाले है ॥१२॥

२३ प्रलयकालके प्रिय-वियोगसे खिन्न सी रात क्षीण हो गई, वसन्तमें क्रूर आतपसे पीडित-सा हो दिन धीरे धीरे मन्द हो गया ॥१३॥

२४ तब कामदेवके युद्धके प्रकाश सा, घूमते भ्रमरोके मुखोके चिन्हवाला, लाल दीप्तियोसे चमकते करवीरोंसे आकीण उद्यानका सेवन किया ॥१४॥

२५ रमणियोके साथ हवासे नाचती पल्लवोवाले मस्त भगोसे रमणीय लतागहोमें वह एकान्त विहार करते थे ॥१५॥

२६ "त्वमप्रमाद कुरु नूपुराघ्रौ, भर क्षण काचिनितबभारम् ।"
इतीव तस्मिन् विहरन् नृपस्त्री–, कक्ष्या तुलाकोटि-
पुटैर्निनेदे ॥१६॥

२७ चिक्षेप वाला मुहुरर्धदृष्टि, पत्यावनगक्षतधैर्यवृत्ति ।
दूरस्थपुष्पस्तवकावभग–, व्याजेन सन्दर्शितबाहुमूल । १७

२८ पत्या परस्या प्रविधीयमाने, विलासवत्याश्चरणा तरागे ।
अन्यत्र युक्तोऽपि बबन्ध राग, लाक्षारसस्तत्प्रतिपक्षनेत्रे। १८

२९ पातु सुदत्या वदनारविन्द–, मादाय दृष्टो ललनाभि-
रीश ।
अपुष्परेणुव्यथितेऽपि तस्या–, श्चिक्षेप नेत्रे मुखगन्धवाहम्। १९

३० पुष्पावभगे निजहस्तकान्त्या, विन्यस्तराग कठिन पलाशम् ।
प्रवालकृत्ये विनियोजयन्ति, भर्त्रा परा सस्मितमालि-
लिगे ॥२०॥

३१ स्निग्धद्विजाली रुचिर प्रियगु–, श्यामाद्युतिश्चारु-
तमालकान्ता ।
विभर्षि गन्धाहृतभगचक्र, सन्माधवीमडपमेतदास्यम् ।२१।

३२ मध्ये ललाट तिलकस्य वृत्ति–, रोष्ठद्युतिर्भाति च पाट-
लेयम् ।
पुन्नागसयोगविभूषिताया–, श्चेत समायातमशोक-
ताते ॥२२॥

३३ "कि कौतुकेन श्रमकारिणा ते, सृजत्वमुद्यानविहारराग म् ।
बाले त्वमस्योपवनस्य लक्ष्मी–" रित्येवमूचे ललना
सखीभि ॥२३॥

३४ प्रियेण तन्व्या विनिवेशितस्य, कर्णे न वाशोकदलस्य राग
आनीलया नेत्ररुचा निरस्ता,–स्तस्या जगामेव विव-
त्तचक्षु ॥२४॥

२६ "तू (अपने) नूपुरवाले चरणोमे सावधानी रख, क्षणभर मेखलायुक्त नितम्बके भारको सभाल" यही कहते मानो वहा विहरते वह रानियोकी करधनोकी तुलाके पलडोसे शब्द कर रहा था ॥१६॥

२७ कामदेवद्वारा धैर्य नष्ट हुई बालाने दूरस्थ फूलके गुच्छेके तोडनेके बहाने अपने बाहुमूलोको दिखाते क्षणभर पतिपर आधी नजर डाली ॥१७॥

२८ दूसरी ललनाके चरणपर पतिको राग करते देख, दूसरी जगह लगा महावर उसके रोषयुक्त नेत्रमे लग गया ॥१८॥

२९ सुन्दर दातवालीका मुखकमल पीनेके इच्छुक राजा को, ललनाने देखा तो पुष्परजसे अ-पीडित उसके नेत्रने मुखसे सुगधित सास छोडी ॥१९॥

३० फूल तोडते समय अपने हाथकी कान्तिसे कठिन पलासको रगती जब वह मूगेकी कारीगरी कर रही थी, तभी स्वामीने मुस्कुरा कर दूसरीको आलिंगन किया ॥२०॥

३१ चिकने दन्त-पक्तियोवाली, प्रियगुसी श्यामल रुचिर द्युतिवाली, सुन्दर तमाल-सी कमनीया, गधसे भगोकी आकर्षिका, इस सुन्दर माधवी मडप जैसा तेरा मुख है ॥२१॥

३२ ललाटके बीचमें तिलक और यह ओठोकी लाल द्युति चमक रही है। पुन्नागके सपकसे विभूषित ~~यह~~ अशोकताके अन्तमें आ गया ॥२२॥

३३ "थकानेवाले कौतूहलसे तुझे क्या (लेना), तू उद्यान बिहारकी लालसा छोड। बाले, तू इस उपवनकी लक्ष्मी है", यही सखियोने उस ललनासे कहा ॥२३॥

३४ तन्वगीके कानोमें लगाये प्रियके अशोक पल्लवका राग, नील नेत्र किरणोंसे निरस्त और उसका नेत्र उलटा हो गया ॥२४॥

३५ विलोकयाक्ष्णो शितिकान्तिजालै–,रुदन्यया वारि-
विगाहिताया ।
रक्तोत्पल तन्निकटप्ररूढमि दीवरत्वगमित हरिण्य ॥२८॥

(३) **जलक्रीडा**

३६ तत सलील सलिल विभिन्दन्, एव वदन्नेव वरागनाभि ।
वृतो वृषेन्द्रोपमखेलगामी,स दीर्घिका दीघभुजो जगाहे॥३२
३७ तस्योरसि क्षत्रकुलैककेतोस् , तरगदोषा कमलाकरेण ।
न्यस्ता मुहु पकजरेणुपक्ति , सौवणसूत्रश्रियमाततान॥३३
३८ पद्माकरो वारि विगाहमान, कामीव रामाजनमूरुदघ्नम् ।
वीची-कराग्रेण नितबभागे, व्यास्फालयामास, शनै
सशब्दम् ॥३४
३९ तस्यावगाहे वनिताजनस्य, दूरीकृत पीननितबचक्रै ।
लब्धप्रवेशस्तनुषूदरेषु, स्तनैरुदासेऽथ सरस्तरग ॥३५॥
४० क्रीडापरिक्षोभरयेण तासा, उत्सारिते पकजरेणुजाले ।
कुसुम्भरक्तादिव कचुकान्त, कृष्ट बभासेऽम्बुरुहा-
करम्भ ॥३६॥
४१ निरुद्धहासस्फुरितावरोष्ठ, सद्य समाविष्कृतरोमहर्षं ।
जलावमग्नप्रमदोपगूढै–,रुद्भासकस्तस्य बभूव गड ॥४३॥
४२ फुल्ल यदीद कमल किमेव, अत्रैव नीलोत्पलयोर्विकाश ।
इत्यात्तशको वदन सुदत्या, हस सिषेवे न
सरस्तरन्त्या ॥४४॥
४३ मत्स्येन चीनाशुकपृष्ठलक्ष्य–,काचीमणिग्रासकुतूहलेन ।
आघ्राय मुक्तोपनितबमेका, सत्रासभुग्नभ्रु चिर
चकम्पे ॥४६॥

३५ देख, नेत्रोकी श्वेत प्रभासे जल अवगाहित उदन्या से, उसके निकट उगा रक्त कमल, हरनियोके लिये नीलकमल हो गया ॥२८॥

३ जलक्रीडा—

३६ तब लीला-सहित जलको फाडते वगगनाओसे घिरे, यह कहते महावषभ समान खेलते वह दीघभुज (राजा) दीघीमे अवगाहन करने लगे ॥३२॥

३७ उस क्षत्रिय-वश ध्वजके वक्षस्थलपर, तरगित सरोवर द्वारा रक्खी कमलरजकी पक्तिने क्षण भर सुवण सूत्रकी शोभा धारण की ॥३३॥

३८ सरोवरमे जाघ भर जलमें अवगाहन करते, ललनाओको कामीकी तरह तरगरूपी हाथसे नितम्ब स्थलपर शब्द-सहित हिलाया ॥३४॥

३९ वनिताओके अवगाहन करते समय उनके स्थूल नितम्बोसे दूर हटाई तरगाने, सूक्ष्म उदरोमे प्रवेश करनेका अवसर पाई सरोवर तरगोको स्तनोनें उछाल दिया ॥३५॥

४० उनकी क्रीडाके चाचल्यके वेगसे कमलोके केसर उडाये जानेपर, कुसुम्भसे लाल खिचे कचुकके छोरसा सरोवर जल प्रकाशित हो उठा ॥३६॥

४१ रुके हाससे फरफराते अधरके वात से तुरत रोमाचित, जलमें मग्न कामिनियोके आलिंगनसे उसका कपोल भासमान हुआ ॥४३॥

४२ 'अगर यह कमल फूला है, तो क्यो न यही दो नीलकमल खिल,' इस शकासे हसते सरोवरमे तैरती सुदन्तीके मुखका सेवन नही किया ॥४४॥

४३ रेशमी वस्त्रयुक्त पीठपर दीखती कटिमेखलाकी मणिको खानेकी इच्छासे मछलीने, सूघकर छोड दिया, इससे त्रस्त हो वह तिरछी भौ से देखती देर तक काँपती रही ॥४६॥

४४ प्रियोऽपरस्या गलितान्तरीये, व्यापरायामास दृशो नितबे ।
तद्धस्तयत्रच्युतवारिधारा, नाल बभूवास्य मुखार-
विन्दे ॥४७॥

४५ साय समादाय निकामपीत–,सुप्तद्विरेफ मुकुल
सरोजम्
काचित् तरास्फालितदीघदडा, भर्तुर्भुव कूजयतिस्म
कर्णे ॥५०॥

४६ सर सहस सहकामिनीभिर्, विभाय तुल्यो वृषवाहनस्य ।
विभूपितो लभितभूषणानि–,रध्यास्त सौध वसुधाधि-
नाथ ॥६२॥

४७ विलासवत्यो मदघूर्णिलोचना, निरूपयन्त्य शुचिरौ-
प्यभाजने ।
स्थितस्य मुग्धा मधुनो न जज्ञिरे, स्वरूपमिन्दुप्रतिरूप-
गोपितम् ॥७४॥

४८ विधूयमाना अपि पूवमासव , प्रवृद्धवामत्वमनस्यसाधितम् ।
स्मर नु तासा हृदये विलोचने, बबन्ध राग नु मुखेऽनुसौ-
रभम् ॥७५॥

(४) प्रबोधस्तुति

४९ इति प्रबन्धाहितपानकातर, प्रिया च तल्पे कथित निशा-
त्यये
व्यबोधयन् मगलवन्ति वन्दिनो, विधाय वाक्यानि विधा-
नृते जयम् ॥७६॥

५० जहीहि शयनमुद्गमस्य काल, समुपयत्यनुरक्तमड-
लस्य ।
ध्रुवशिरसि कीर्णपादधाम्नो, भुवन इव क्षततामसस्य
भानो ॥७७॥

४४ प्रियतमने दूसरीके हटे चादरवाले नितम्बके ऊपर नजर डाली जिससे उसके हाथकी पिचकारीसे छूटी जल धारा उसके मुखार विन्दपर शोभित नही हुई ॥४७॥

४५ सायकालको खूब पीकर सोये भवरसे युक्त कमलकी कलीको लेकर कोई लम्बे दण्डको खूब हिलाती भूपतिके कानमे कजन करती थी ॥५०॥

४६ कामिनियो सहित हस-युक्त सरोवरको शकरके समान विभासित कर आभूषणोसे अलकृत हो वसुधानाथ महलपर बैठे ॥६२॥

४७ मद्यसे घूर्णित नेत्रोवाली मुग्धा विलासवतियोने शुद्ध रौप्य पात्रमे स्थित, च द्रमाके प्रतिबिबसे छिपाये मद्यके रूपको नही जाना ॥७४॥

४८ उन्हें कपित करते भी दूसरी सजावट के बिना बढे सौन्दयको स्मरण करते मद्यने पहिले उनके हृदय और नेत्रोमे, फिर सुग धयुक्त मुखमे राग (लालिमा) प्रदान किया ॥७५॥

४ प्रभातकी स्तुति—

४९ इस प्रकार पानसे कातर शय्यापर सोये (राजा) और प्रियाको रात्रि के अन्तमे, बन्दियोने मगल-युक्त वचनोको गात जय करते जगाया ॥७६॥

५० "हे बिस्तर छोडे, भुवन के सिरपर किरण प्रकाश बिखेरे अ धकार नाशक रक्तमण्डल प्रभाके भवन जैसे सूयके उगनेका काल (अब) समीप है ॥७७॥

५१ विराम शवर्या हिमरुचिरवाप्तोऽस्तशिखरम् ।
किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताभोरुहदृश ।
इतीवाय भानु प्रमदवनपयन्तसरसी ।
करेणाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुत ॥७८॥

५२ समुत्तिष्ठन्त्येते निगडकृतझकारमपर ।
शनैराकर्षन्त करटनटलीनालिविततिं ।
निरस्यन्तो हेला विधुतपथुकर्णान्तपवनैर्,
द्विपास्ते दन्ताग्रस्थितकरमुदस्याननतटम् ॥७९॥

५३ पादेनैकेन तिष्ठन् पटुपटहरवैर्बोधितस्ते मयूर ।
पश्चात् पक्षेण सार्ध चिरशयनगुरु पादमन्य वितत्य ।
उत्फुल्लोद्धूतपक्षच्युतहिमकणिकावृष्टिरावातयष्टया,
दृष्ट्वामातण्डधामोदयमुदितमुदोजृम्भते ताडवार्थी ॥८०॥

५४ पूर्वाद्रौ सूयपादे चरति विसृजता चन्द्रपादावदात ।
कल्प तेनानुचक्रे मलयतरुरसामोदितासद्वयेन ।
उन्निद्रश्वेतपद्मप्रकरपरिकरच्छन्नवीचीवितानाद् ।
उद्यन् मन्द सरस्तस्सलिलगुरुबृहत्पक्षतिमल्लि
काक्ष ॥८१॥

—सग २

(५) वर्षा

५५ अथ तत्र भूधरशिरस्यधिका, समनुव्रजन् मनुकुलप्रभव ।
विरहानलक्षततनुस्तनुता, गमयाबभूव निवसन दिवसान् ॥१॥

५६ अधिकुजमस्य निपतद्धरिता, अनुरजित शुकमुखद्युतिभि । खुरधूतधातुकनिकानिकरै, तरुणायते परिणतोऽपि रवि ॥२॥

५१ रात्रिका अन्त हुआ, चन्द्रमा अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये मुकुलित कमल स नयनोवाले क्या आज भी तेरा सोना (रहा) है। इसी तरह यह तरुण सूय बनितोद्यानकी छारवाली पुष्करणी जगानेके लिये किंचित् लाल कगे (किरणो)से प्रहार कर रहा है ॥७८॥

५२ यह तेरे गज दूसरे जजीरोकी झकारको,
धीरेसे खीचते, गडमें विलीन भवरोकी पातीको,
कपित बडे कानोके पवनसे अप्रयास हटाते,
दातके छोरपर स्थित शुडयुक्त मुखको ऊपर उठा रहे ह ॥७९॥

५३ तुम्हारा मोर नगाडेकी जोरकी आवाजसे जगकर एक पैर पर खडा, देर तक सोनेसे भारी हुये दूसरे पैरको पखके साथ फैलाकर, फुल्ल-कपित पखसे गिरे ओसकी बूदोकी वृष्टियुक्त यष्टिपर, सूयके प्रकाशके उदयको देख मुदित हो नाचनेका इच्छुक उठकर जम्हाई ले रहा है ॥८०॥

५४ उदयाचलपर सूयकी किरणोके विचरते समय, चन्द्रमाकी किरणो जैसे उज्ज्वल, कल्पको छोडते, चन्दनके रससे सुगन्धित दोनो कधो सहित, फले श्वेत कमलके घेरेसे ढँकी लहरोवाले, सरोवरके जलसे भारी, बडे पक्षवाला हस धीरेसे उठ रहा है ॥८१॥

—सग २

५ वर्षा—

५५ तब वहा पवतके शिखरपर चलते बिरहानलसे क्षीण शरीर, मनु-सतान (राम)ने अधिक क्षीण होते दिन बिताये ॥१॥

५६ इसके दौडते घोडोकी शुक-मुख सी द्युतिवाली, खुरोसे उठाई धातुकी कनिकाओंसे रगा कुजमें प्रौढ भी सूय तरुण हो रहा था ॥२॥

५७ इममातपे रविमणिप्रभव–,ज्वलनाभिदीपिततनु सकलम।
शशिकान्तरत्ननिसृतै रजनी, शिशिरीकरोति पयसा
निकरै ॥१०॥

५८ प्रतिनाग इत्यवगतस्सरसी, मदहस्तिहस्तहतजर्जरित।
इह तत्प्रकोपहृतमुग्धतया, सलिलानि मुचति यथा
जलद ॥११॥

५९ अवजित्य खववपुष शिखरैर्, हसतीव सोऽयमितरान-
चलान्।
स्फुटधातुलोहितदरीवदन–,स्थितहसपक्तिदशनद्यु-
तिभि ॥१२॥

६० स्रुतधातुपकिलतनुधरणी–,धरणक्षमो हरिवराहरुचम्।
अयमुद्वहत्यभिमुखापतिते, दशनाकृतौ हिमरुचि
शकले ॥१३॥

६१ इह धातुसानुषु निषण्णदश शिरसि स्थितासितघना-
वलिषु।
मृगयोषितो जहति मुग्धधियो, दवकृष्णपद्धतिभय न
चिरम्॥१४॥

६२ अधिगशमस्य रुचिभि स्फुरित–,ग्रहवृन्दसक्तशिर-
सस्तरव।
परिफुल्लनीपतरुपण्डरुचा जनयन्ति चेतसि मद
शिखिनाम्॥१५॥

६३ शिखरेषु पकजमणिप्रकरे, द्युतिरजितच्छदभृतो दधते।
इह भूरिभूरुहलताततय, समये गतेऽप्यरुणपल्ल-
वताम्॥१६॥

६४ अयमेष सोदकदरीवदन–,स्रुतधातुधौतकटुकावयव।
प्रविभात्यसृक्सुपिशगितनुर्, युधिदानवद्विप इव
प्रहत ॥१७॥

५७ धूपमें सूय (-कान्त) मणिसे उत्पन्न अग्नि द्वारा दीप्त तनुवाले (राम) को, चन्द्रकान्त मणिसे निकले जलोसे रात ठडा करती थी ॥१०॥

५८ 'यह प्रतिद्वद्वी गज है" यह समझ मत्त गजके हाथके प्रहारसे जजरित सरोवर, यहा उसके प्रकोपकी ज्वाला हटानेके लिये मेघ सा जल छोड रहा है ॥११॥

५९ अपने शिखरोसे खबशरीर दूसरे पहाडोको जीतकर यह मानो धातुसे साफ लाल गुहामुखमे अवस्थित हसोकी पक्तिरूपी अपने दातोकी द्युतिसे हस सा रहा है ॥१२॥

६० बहती (गेरु) धातुसे पकिल-शरीर, पथिवीके धारणमें समथ, सामने आ पडे, दन्ताकार पाषाण-खडोमें यह सुवण सा चमकता विष्णुके वराह रूप सा है ॥१३॥

६१ यहाँ सिरपर अवस्थित काली मेघ-पक्तियोसे युक्त धातु-सानुओपर बैठी, मुग्ध-बुद्धि हरिनियाँ वनाग्निके काले मागका भय देरतक नही छोड पाती ॥१४॥

६२ इसके शिखरपर (अपनी) प्रभासे जगमगाते, फूले नीम-वक्षके बनके शोभायुक्त वृक्ष, नक्षत्रोमे लगे सिरवाले मोरोके हृदयमें मस्ती उत्पन्न करते हैं ॥१५॥

६३ यहा कमल मणियो वाले शिखरोपर द्युतिसे रगे पत्रोको धारण करते भारी वृक्ष-लता-समूह समयके बीतनेपर भी लाल पल्लववाले है ॥१६॥

६४ यह यहा जलयुक्त गुहाके मुखपर बहते गेरुसे धुले कटुक अगयुक्त, रुधिर जैसे लाल शरीरवाले, युद्धमें मरे दासूव-गज सा दिखाई पड रहा है ॥१७॥

६५ अयमर्कतापिततनु शशिन, परिणीय सामृतकणानचल ।
पुनरुद्वहत्युरुदरीवदन–, स्रुतनिझरच्छलहृत किर-
णान् ॥१८॥

६६ भृशमस्य गोपतिमणिप्रभव–,ज्वलदग्निदग्धविपिने
शिरसि ।
चलनादुपाहितमसीमलिन, वहतीव शीतकिरणै
करणम् ॥१९॥

६७ स्रुतधातुलोहितममी जलदा, अमित निपीय सलिल
सरस ।
ऽथ कल्पयन्त्यरुणकान्तिहृत, स्थितसध्यया परिगत
गगनम् ॥२१॥

६८ परिधावत शिखरिण शिखरे, वत दन्तिन प्रतिरिपु-
द्विरदम् ।
पवनैरसावुपहितो वदने, जलद क्षण मुखपटो
भवति ॥२२॥

६९ गजभिन्नगैरिकरसारुणिता, सितपकजैरनुगतास्सरित ।
नवबद्धरक्तवसनाकृतय, प्रविभान्त्यमूर्गिरिनितब-
गता ॥२३॥

७० शिखरैकभागनिरत पवनै–, रुपनीयतेऽयमुदधि जलद ।
अवगाहपानविधये समद, प्रविमुच्य वृक्षत इव
द्विरद ॥२४॥

७१ रदनक्षतक्षितिधरक्षतज–, स्रवसन्निभैररुषिता रदिन ।
कटकेषु धातुभिरिमे दधते, तरुणारुणावृतपयोद-
रुच ॥२५॥

७२ इति भास्वत सुतवरे वदति, न्यपतत् पयोधरपथादभित-
मधुकानन हृतमधु प्रसभ, प्रविधाय वेदितधृतिहनु-
मान् ॥२६॥

६५ सूयसे शरीर तपाया यह पवत चद्रके अमत-कणोको पीकर, विशाल गुहाके मुखपर बहते चश्मेके व्याजसे फिरसे किरणोको धारण कर रहा ह ॥१८॥

६६ सूयकान्त मणिसे उत्पन्न प्रज्ज्वलित अग्निसे दग्ध वनोवाले इसके शिखरपर, चलनेसे मसी जैसे काले अगको शीघ्र ठडी किरणोद्वारा वहन सा कर रहा है ॥१९॥

६७ सरोवरसे बहती (गेरु) धातुसे लाल जलोको अत्यधिक पी, लाल हो, उपस्थित सध्यासे मेघ आकाशको व्याप्त करते है ॥२१॥

६८ पवतके शिखरपर शत्रु-गजके सामने दौडते हाथीका, वायुसे आनीत मेघ, क्षण भरके लिये (गज का) मुखपट बन जाता है ॥२२॥

६९ हाथियोंसे तोडे गेरुके रससे लाल, सफेद कमलोसे युक्त नदियाँ, पवत नितम्बमें नये बधे लाल वस्त्र सी सोहती है ॥२३॥

७० शिखरके एक भागमे लग्न इस मेघको, वायु समुद्रके पास ला रहे है। मानो वक्षसे खोलकर नहाने और पिलानेके लिये मस्त हाथी जा रहे है ॥२४॥

७१ दातसे क्षत पवतके घावसे निकलती धाराओ द्वारा लाल रगे ये हाथी, धातुओ द्वारा कटकोमे तरुण-अरुण आच्छादित मेघका रूप धारण कर रहे है ॥२५॥

७२ इस प्रकार सूयके श्रेष्ठ पुत्र (राम) के कहते समय, सामने मेघ मागसे मधुर वनको बलात् मधु-वचित कर, प्रकट धैयवाले हनुमान उतर पडे ॥२६॥

७३ रविदग्धपक्षतियुग विहग, प्रतिपद्य गावणगमे विदिते।
मकराकर सपदि लघयितु, मलयादगामथ महेन्द्र-
नगम् ॥२९॥
—सग १३

(६) सागरसेतु

७४ नियतमेष पयोधिमहाधिप, पिवति सवमसरयगुहामुखै ।
इति चिराय सविस्मयमीक्षितो, नृपसुतेन समीरण-
नन्दन ॥२३॥

७५ अथ ससप ससज वनाकुल, द्युतिमदभ्रमदभ्रमदद्विपम्।
भयसरोगसरोगतपन्नग, पथि घनस्य घनस्यदना-
दितम् ॥२४॥

७६ तटयुगानतवारिदपक्षतिर्, गुरुदरीमुखलबितपन्नग।
अनुचकार पतत्पतिमुत्पतन्, फणधरोद्धरणे धरणी-
धरम् ॥२५॥

७७ अभिहतो गिरिणा वडवानल-प्रवलरोषधरो जलधिद्विप ।
रचयतिस्म सुवेलमहातरौ, नियमितस्थित एव गता-
गतम् ॥२७॥

७८ उपलसकटकं कटकैस्तता, कपिबलेन नगाननगात्रगा ।
पथि रवे रविना रविताडवा, कृतरव समुदा समुदा-
सिरे ॥२८॥

७९ हतसमुत्पतितोदकसन्तति--,स्फटिकदडयुतक्षणमाबभौ।
किरणमौक्तिकजालवृत सदा, सकलचन्द्रसितातप-
वारणम् ॥३०॥

८० प्रथममुद्गतवारितति पतद्, गिरितटाहतकोटिरुदन्वत ।
क्षणमरोचत वृष्टिषु विभ्रतो, भुज इवाद्रिवर मुर-
विद्विष ॥३१॥

७३ सूय द्वारा जलाये पखोवाले पक्षी (सपाती) से रावणके गमनको जान लेने पर (राम) तुरन्त सागरको लाघनके लिए मलयगिरिसे महेंद्रगिरिपर पहुचे ॥२९॥

—सग १३

६ सागर-सेतु—

७४ निश्चय ही यह पयोधि राज असख्य गुहा-मुखोसे सबको पीता है, यह सोचते राजपुत्रने पवन पुत्रके साथ देर तक विस्मयसे (समुद्रको) देखा ॥२३॥

७५ तब प्रकाशमान मेघके अति मदसे मस्त गज वाले, भयसे रुग्ण सरोवरस्थित सापवाले वनोको, मेघ-मागपर मेघके चलनेसे निनादित पाया और छोडा ॥२४॥

७६ दोनो तटोपर झुके मेघ-पखोवाले, भारी गुहा-मुखपर लटकते सपसे हनूमान, साप उठानेमें पक्षिराजसे उडते पवतसे जान पडते थे ॥२५॥

७७ पवत द्वारा कहे जाने पर बडवानल जैसे प्रबल रोपको धारण करनेवाला समुद्ररूपी गज, नियमित रूपसे खडा ही सुबेल रूपी महावक्ष पर गमनागमन करता था ॥२७॥

७८ पाषाण-समूहवाले कटकोसे विस्तत, कपि-सेना द्वारा पवतके मुख-शरीरपर स्थित सूयके मागपर सूयके साथ शब्द करते आनदके साथ उडे ॥२८॥

७९ आहत होकर उछला जल क्षण भर स्फटिक-दडसे युक्त सा, सदा पूणच द्रसे श्वेत छत्रयुक्त किरणरूपी मोतियोके जालसे आच्छादित भासित हुआ ॥३०॥

८० पवतके तटपर आहत छोरवाली सागरकी ऊपर उठी गिरी, जल-पक्ति पहले वृष्टिमें श्रेष्ठ (गोवधन) पवत धारी कृष्णकी भुजाकी तरह क्षण भर शोभित हुई ॥३१॥

८१ अथ निरीक्ष्य चिर हरिचेष्टित, सपदि बन्ध्यमबन्ध्य-
पराक्रम ।
इदमुवाच गभीरतया जित–,क्षुभितसिन्धुरव नृवरो
वच ॥४५॥

८२ इह गिलन्ति तिमिगिलपक्तय, क्षुभितसम्पतितास्ति-
मिशकया ।
सलिलधौ तिमित तिमित नग, त्यजत सेतुविधान-
मनोरथम् ॥४६॥

८३ अयमुपाहितसेतुरकपित–,स्थितमहातिमिदेहमहीधरै ।
बलमिद सकल शरताडितो, नयतु वारिधिरेव पर
तटम् ॥४८॥

८४ इति गिरा चलितो दृढकीलन–,ध्वतिनकपितदिग्वि-
दिशो नल ।
मलयकुजदरीषु महीभृत, पृथुरुत प्रथम समवेशयत् ॥५१

८५ अपहसन्निव फेनरुचा चिर, गिरिहतोदितकन्ततिबाहुना ।
अभिजघान पयोनिधिरुद्धत, कुसुमभाजि सुवेल-
शिरस्तटे ॥५२।

८६ विततधातुरस धरणीधर–,क्षतकृतव्रणचक्रमिबाबुधे ।
अभिचकत नलोऽनलभासुर, सलिलपृष्ठतट गिरि-
सेतुना ॥५४॥

८७ अवसितो नगसेतुरलक्ष्यत, क्षिपति विष्णुवराहरदे भुवि ।
विषमकृष्टतया जलपृष्ठत, समुदित क्षितिपार्श्व
इवैकत ॥५५॥

८८ अथ निवारयितु दृढमन्तरा, प्रथमपश्चिमसागरविग्रहम् ।
विपुलमद्रियुगेन महीयसा, विरचित नु भुजद्वय-
बन्धनम्॥६९॥

८१ तब हरि (हनमान) की चिर चेष्टाको निष्फल देखकर अनिष्फल पराक्रमवाले, पुरुषोत्तमने क्षुभित समुद्रके घोषको हरानेवाले इस वचनको गम्भीरताके साथ कहा ॥४५॥

८२ यहा तिमिगलोकी पक्तिया क्षुब्ध हो गिरी हुई तिमिके स देहसे, समुद्रमे विलीन तिमि बने पवत (ह) । सेतु-निर्माणके मनोरथको छोड दो ॥४६॥

८३ यह पास स्थापित सेतुवाला शरसे ताडित समुद्र ही अकपित खडे महातिमिके देह सदश पवतोके साथ इस सारी सेनाको दूसरे तटपर ले जावे ॥४८॥

८४ इस तरह वाणीसे सचालित दृढ कील गाडनेसे दिशा विदिशाको ध्वनित कपित करनेवाले नलने मलयगिरिके कुजोकी गुहाओमें घोर शब्द करते प्रथम पवतको स्थापित किया ॥५१॥

८५ उद्धत सागरने फेन सदश देर तक मानो हसते हुए कुसुम-युक्त सुबेलके शिरोभागपर पवतके आघातसे उछली जल-समुदाय रूपी बाहुसे ताडन किया ॥५२॥

८६ विस्तृत धातुरसवाले पवतके घावसे सागरके ब्रणो सा, अनल तुल्य प्रकाशमान नलने जलके पृष्ठ तलको पवतके सेतु से ढाक दिया ॥५४॥

८७ तैयार पवत-सेतु जान पडता था, विष्णुवराहके दात पर लटकी भूमि पर जलके तलसे पथिवीका पाश्व ही विषम आकर्षणसे एक ओरसे उत्पन्न हुआ है ॥५५॥

८८ तब भीतरसे पूरी तरह दृढतासे निवारण करनेके लिये प्रथम पश्चिमी सागरकी देह पर दो भुजाओके ब धन की तरह अतिमहान् दो पवतोसे विपुल पुल बनाया ॥६९॥

८९. अतिनिमग्नमदीयमहाशर–,व्रणरुजा कृतकाश्यविभा-
वितम्।
लवणसागरदानवदन्तिन, प्रकटमस्थि नु वशसमुद्-
भवम् ॥७०॥

९० मदगजैरगजैरगनिजर–,ध्वनितवहित सम्मित सूचितै ।
सरसि तैरसितैरपि वारिदै, प्रवितत सतत समय
कणै ॥७५॥

९१ निकषणेन युगस्य हिरण्मय–,ज्वलितरूपधरस्य
विघृष्टया।
कटकभित्तिषु काचनरेखया, रविगत प्रथयन्तमुदा-
रया ॥७६॥

९२ ज्वलितरत्नचयेन नभस्पृशा, गगनलग्नदवानलसशयात्।
अधिरुरोह सुवेलमल विभु, प्रतिजन जनयन्नतिसौ-
रतम् ॥८०॥

९३ तत्र स्थित्वा किरणनिकरन्यस्तरगैस्तरगैर्,
भास्वत्तोय वरुणनिलय वैद्रुमाणा द्रुमाणाम्।
पश्यन् रेमे सततसलिलभ्रशमुक्त समुक्त,
शक्रत्रस्तक्षितिधरशतस्थानदत तदन्तम् ॥८१॥

—सर्ग १४

८९ अत्यन्त घुसे मेरे महावाणके व्रणकी बाधासे हुये दुबलेपन द्वारा लवण-सागररूपी दानव-गजकी पृष्ठवशसे उत्पन्न अस्थि मानो प्रकट हुई थी ॥७०॥

९० पवतोत्पन्न पहाडी झरनोकी भारी आवाजसे सूचित पवतीय मस्त गजोंसे, सागरमें उन काले मेघो द्वारा निरतर जल कण फैलाये गय ॥७५॥

९१ सुवणमय उज्ज्वल रूप धारी दोनोके कसौटीके घषणसे, कटककी भित्तियोमे स्थूल सुवण रेखा द्वारा रविके मागका प्रकट करते ॥७६॥

९२ आकाश छूनेवाले जलते रत्नोंसे गगनमे लगे दावानलका सन्देह पैदा करनेवाले सुबेल पवतपर विभु (राम) सबके (मनमे) बहुत आनन्द उत्पन्न करते चढे ॥८०॥

९३ खडे हो मूगेके वृक्षोके किरणोसे रगी तरगो द्वारा चमचमाते सागरको देखकर, निरन्तर जलके गिरनेसे छुटते मुक्ता सहित, इद्रसे त्रस्त सैकडो पवतोके स्थान रूपी दन्तवाले उसके अन्तको दखनेका आनद लिया ॥८१॥

—सग १४

२२ शूद्रक (५४० इ० पू०)

"मृच्छकटिक" सस्कृतके सर्वोत्कृष्ट नाटकोमें है। इसके रचयिताका नाम शूद्रक बतलाया जाता ह्। शायद शूद्रक विदिशाका राजा था, जसा कि बाणकी "कादम्बरी" मे सकेत मिलता ह्। इस कविकी यही एक ही कृति प्राप्य ह्। इसका कथानक भासके "दरिद्रचारुदत्त" का ह्, लेकिन यह उससे

१ मृच्छकटिकम्

(१) वसन्तसेना-हृदयम्

(तत प्रविशति चेटी)

१ चेटी—कथमद्याप्यार्या न विबुध्यते? भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि। (इति नाट्येन परिक्रामति)
(तत प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

२ चेटी—(निरूप्य) उत्तिष्ठतूत्तिष्ठत्वार्या। प्रभात सवृतम्।
वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथ रात्रिरेव प्रभात सवृतम्?
चेटी—अस्माकमेष प्रभात, आर्याया पुन रात्रिरेव।

३ वसन्तसेना—चेटि, कुत पुनर्युष्माक द्यूतकर?
चेटी—आर्ये, वर्धमानक समादिश्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गत आयचारुदत्त।

४ वसन्तसेना—किं समादिश्य?
चेटी—योजय रात्रौ प्रवहण, वसन्तसेना गच्छत्विति।

५ वसन्तसेना—चेटि, कुत्र मया गन्तव्यम्?
चेटि—आर्ये, यत्र चारुदत्त।

२२ शूद्रक (५४० ई० पू०)

कहीं अधिक पूर्ण और सुन्दर है। शूद्रकका नाम चाहे यों ही इस नाटकके साथ जोडा गया हो, पर इस कृतिका महत्त्व उससे कम नहीं होता। "मृच्छकटिक" से तत्कालीन भारतीय समाजपर जितना प्रकाश पडता है, उतना और किसी नाटकसे नहीं पडता।

१ मृच्छकटिक

१ वसन्तसेनाका हृदय—

(तब दासी प्रवेश करती है)

१ चेटी—क्या अब भी आर्या नहीं जाग रही हैं? अच्छा, भीतर चलकर जगाती हूं। (अभिनयके साथ घूमती है)

(तब शरीर ढाके सोई वसंतसेना प्रवेश करती है)

२ चेटी—(देखकर) उठिये, उठिये आर्या, सबेरा हो गया।
वसंतसेना—(जगकर) क्या रात ही सबेरा हो गया?
चेटी—हमारा यह सबेरा है, आर्याकी तो रात ही है।

३ वसंतसेना—चेटि, तुम्हारा जुआरी कहां है?
चेटी—आर्या, वर्धमानकको आज्ञा दे, पुष्पकरंडक जूने उद्यान आर्य चारुदत्त गये।

४ वसंतसेना—क्या आज्ञा देकर?
चेटी—"रातमें रथ जोड ले, वसंतसेना जायेगी।"

५ वसंतसेना—चेटि, मुझे कहां जाना है?
चेटी—आर्या, जहां चारुदत्त हैं।

६ वसन्तसेना—(चेटी परिष्वज्य) चेटि, सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ, तदद्य प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये ? चेटि, कि प्रविष्टाहमिहाभ्यन्तरचतु शालकम् ?

चेटी—न केवलमभ्यन्तरचतु शालक, सवजनस्यापि हृदय प्रविष्टा।

७ वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजन ?

चेटी—सतप्स्यसि।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—यदार्या गमिष्यति।

८ वसन्तसेना—(सानुनयम्) तदा मया प्रथम सतप्तव्यम्। चेटि, गृहाण ता रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समपय। वक्तव्य च—"अह श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरण भवतु रत्नावली।"

चेटी—आर्ये, कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।

९ वसन्तसेना—गच्छ, न कुपिष्यति।

चेटी—(गृहीत्वा निष्क्रम्य, पुन प्रविशति) आर्ये, भणत्यार्या धूता—"आयपुत्रेण युष्माक प्रसादीकृता, न युक्त ममैता ग्रहीतुम्। आयपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती।"

(तत प्रविशति दारक गृहीत्वा रदनिका)

१० रदनिका—एहि वत्स, शकटिकया क्रीडाव।

दारक—(सकरुणम्) रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया ? तामेव सौवर्णशकटिका देहि।

६ वसतसेना—(चेटीको आलिंगन करके) चेटि, अच्छी तरह रातको नही ध्यान दिया, सो उन्हे प्रत्यक्ष देखूगी। क्या मै यहा चतु शालाके भीतर प्रविष्ट हुई हू ?

चेटी—केवल चतु शालाके भीतर ही नही बल्कि सभी जनोके हृदयके भीतर भी प्रविष्ट है।

७ वसतसेना—चारुदत्तका परिवार सतप्त तो नही हो रहा है ?

चेटी—सतप्त होगा।

वसतसेना—कब ?

चेटी—जब आर्या जायेगी।

८ वसतसेना—(खेदके साथ) तब मैं ही पहले सतप्त होऊगी। चेटि, इस रत्नावलीको ले। मेरी बहिन आर्या धूताको ले जाकर अर्पित कर। और कहना "मै श्री चारुदत्तके गुणो द्वारा जीती गई दासी, आपकी भी (दासी) हू। सो यह रत्नावली आपही का कठ भूषण हो।"

चेटी—आय चारुदत्त आर्यापर कुपित होगे।

९ वसतसेना—जा, नही कुपित होगे।

चेटी—जो आज्ञा देती है। (लेकर बाहर जा फिर प्रवेश करती है) आर्या, आर्या धूता कहती है "आयपुत्रने तुमको भेंट किया है, सो इसे मेरा ग्रहण करना उचित नही है। आप समझें कि आयपुत्र ही मेरे विशेष आभरण है।"

(बच्चेको लिये रदनिका प्रवेश करती है)

१० रदनिका—आ बच्चा, शकटिका (खिलौने की गाडी) से खेलें।

बच्चा—(दु खके साथ) रदनिका, इस मिट्टीकी गाडीसे मुझे क्या ? उसी सोनेकी शकटिकाको दे।

११ रदनिका—(सनिर्वेद निःश्वस्य उपसृत्य) जात, कुतोऽस्माक सुवर्णव्यवहार ? तातस्य पुनरपि ऋद्धया सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यावसन्तसेनाया समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये, प्रणमामि।

१२ वसन्तसेना—रदनिके, स्वागत ते, कस्य पुनरय दारक ? अनलकृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

रदनिका—एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।

१३ वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) अनुकृतमनेन पितृ रूपम्। (इत्यक उपवेश्य) एहि मे पुत्रक, आलिंग ।

रदनिका—न केवल रूप, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्यचारुदत्त आत्मान विनोदयति।

१४ वसन्तसेना—अथ किंनिमित्तमेष रोदिति ?

रदनिका—एतेन प्रातिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। तत पुनस्ता याचतो मयेय मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति—"रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया ? तामेव सौवर्णशकटिका देहि" इति।

१५ वसन्तसेना—हा धिक् हा धिक्, अयमपि नाम परसपत्त्या सतप्यते। भगवन्कृतान्त, पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशै क्रीडसि त्व पुरुषभागधेयै। (सासूय) जात मा रुदिहि। सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।

दारक—रदनिके, कैषा ?

११ रदनिका—(दु खके साथ उसास ले, पास आकर) पुत्र, कहा हम लोगोके यहा सोनेका व्यवहार है। तातके पास फिर सपत्ति होने पर सोनकी शकटिका से तू खेलेगा। इसे बहलाऊ। आर्या वसतसेनाके पास जाऊ। आर्या, प्रणाम करती हू।

१२ वसतसेना—रदनिका, तेरा स्वागत है। किसका यह बच्चा है, जो बिना भूषित शरीर भी चादसे मुखडेवाला मेरे हृदयको आनदित कर रहा है।

रदनिका—यह आय चारुदत्तका पुत्र रोहसेन है।

१३ वसतसेना—(हाथ फैलाकर) आ मेरे पुतवा, आलिगन कर। (गोदमे बैठाकर) पिताके जैसा इसका रूप है।

रदनिका—केवल रूप ही नही, शीलको भी, मैं सोचती हू। इससे आय चारुदत्त अपना मनोविनोद करते हैं।

१४ वसतसेना—तो, किसलिये यह रोता है?

रदनिका—यह पडोसी वैश्यके लडकेकी सोनेकी शकटिकासे खेलता था। उसने उसे ले लिया। फिर उसे मागा, तो मैंने मिट्टीकी शकटिका बनाकर दी। इसपर कहता है "रदनिका, इस मिट्टीकी शकटिकासे मुझे क्या? उसी सोनेकी शकटिका को दे।"

१५ वसतसेना—(खेदके साथ) हा धिक्, हा धिक, यह भी दूसरेकी सम्पत्तिसे सतप्त है। हे भगवान विधाता, कमल-पत्रपर गिरे जल बिन्दुके समान पुरुषके सौभाग्यसे तुम खेलते हो। (खेदके साथ) पुत्र, मत रो। सोनेकी शकटिकासे खेलोगे।

बच्चा—रदनिका, यह कौन है?

१६ वसन्तसेना—ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी।
रदनिका—जात, आर्या ते जननी भवति।
दारक—रदनिके, अलीक त्व भणसि यदस्माकमार्या जननी, तत् किमर्थमलकृता ?
१७ वसन्तसेना—जात, मुग्धेन मुखेनातिकरुण मन्त्रयसि। (नाट्येनाभरणान्यवताय रुदती) एषेदानी ते जननी सवृत्ता, तद्गृहाणैतमलकार, सौवणशकटिका कारय।
दारक—अपेहि न गृहीष्यामि, रोदिषि त्वम्।
१८ वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जात, न रोदिष्यामि। गच्छ, क्रीड। (अलकारैर्मृच्छकटिका पूरयित्वा) जात, कारय सौवणशकटिकाम्।

(इति दारकमादाय निष्क्राता रदनिका)
प्रविश्य प्रवहणाधिरूढ)

१९ चेट—रदनिके, निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै—पक्षद्वारके सज्ज प्रवहण तिष्ठति।

(प्रविश्य)

रदनिका—आर्ये, एष वधमानको विज्ञापयति—"पक्षद्वारे सज्ज प्रवहणम्" इति।
२० वसन्तसेना—चेटि, तिष्ठतु मुहतक, यावदहमात्मान प्रसाधयामि।
रदनिका—(निष्क्रम्य) वधमानक, तिष्ठ मुहूतक, यावदार्यात्मान प्रसाधयति।
चेट—ही ही भो, मयापि यानास्तरण विस्मृतम्। तद्यावद् गृहीत्वागच्छामि। एतौ नासिकारज्जुकटुकौ बलीवर्दौ। भवतु, प्रवहणेनैव गतागति करिष्यामि।

(इति निष्क्रान्तश्चेट)

१६ वसतसेना—तेरे पिता के गुणोसे जीती गई दासी ।
रदनिका—पुत्र, यह आया तेरी जननी होती है।
बच्चा—रदनिका, तू झूठ बोलती है यदि आर्या हमारी जननी है, तो क्यो जेवर पहने है ?

१७ वसतसेना—पुत्र, भोले मुह से अत्यत करुण बात कह रहे हो। (अभिनयके साथ आभूषणो को उतार कर रोती) यह अब मै तेरी जननी हो गई, सो इस आभूषणको ले, सोनकी शकटिका बनवा ले।
बच्चा—हट परे, नही लूगा, तू रोती है।

१८ वसतसेना—(आसुओको पोछ कर) पुत्र, नही रोऊगी। जा, खेल। (आभषणोंसे मिट्टीकी शकटिकाको भर कर) पुत्र, सोनेकी शकटिका बनवा ले।

(बच्चेको लेकर रदनिका निकल गई)

(रथपर चढा प्रवेश करके)

१९ चेट—रदनिका, आर्या वसतसेनाको निवेदन कर ढँका हुआ रथ पाखके छोटे दरवाजे पर तैयार खडा है।

(प्रवेश करके)

रदनिका—आर्या, यह वधमानक अज करता है, कि पाख द्वारपर रथ तैयार है।

२० वसतसेना—चेटि, जरा सा ठहर, जब तक मै अपनेको सजा लेती हू।
रदनिका—(निकल कर) वधमानक, जरा सा ठहर, जब तक आर्या अपनेको सजाती हैं।
चेट—ही-ही हे, मै भी यानके बिछौनेको भूल गया हूँ, सो तब तक उसे लाता हू। यह बैल के नाथकी रस्सीके कडे है। अच्छा, रथसे ही जाना-आना करता हू। (चेट निकल गया)

२१ वसन्तसेना—चेटी उपनय मे प्रसाधन, आत्मान प्रसाधयिष्यामि। (प्रसाधयन्ती स्थिता) —अक ६

२ अधिकरणम्—

(तत प्रविशति शोधनक)

२२ शोधनक—आज्ञप्तोऽस्म्यधिकरणभोजकै—"अरे शोधनक, व्यवहारमण्डप गत्वाऽऽसनानि सज्जीकुरु" इति। तद्यावदधिकरणमण्डप सज्जितु गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एषोऽधिकरणमण्डप। एष प्रविशामि। (प्रविश्य समार्ज्यासनमाधाय) विविक्त कारितो मयाधिकरणमण्डप विरचितानि मयासनानि। तद्यावदधिकरणिकाना पुनर्निवेदयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्टदुजनमनुष्य इत एवागच्छति? तद्दृष्टिपथ परिहृत्य गमिष्यामि।

(इत्येकान्ते स्थित)

(तत प्रविशत्युज्ज्वलवेषधारी शकार)

२३ शकार—

स्नातोऽह सलिलजलै पानीयैरुद्यान उपवनकानने निषण्ण।
नारीभि बहुयुवतिभि स्त्रीभिगन्धर्वै सुविहितैरगकै॥
क्षणेन ग्रन्थि क्षणजूलिका मे क्षणेन बाला क्षणकुन्तला वा।
क्षणेन मुक्ता क्षणमूध्वचूडाश्चित्रो विचित्रोऽह राजश्याल॥

(तथा स्थित)

२४ शोधनक—(अन्यत परिक्रम्य, पुरो दृष्ट्वा) एतेऽधिकरणिका आगच्छन्ति, तद्यावदुसर्पामि। (इत्युपसर्पति)

(तत प्रविशति श्रेष्ठिकायस्थादिपरिवृतोऽधिकरणिक)

अधिकरणिक—भो भो श्रेष्ठिकायस्थौ,

श्रेष्ठिकायस्थौ—आज्ञापयत्वार्य।

२१ वमतसेना—चेटि, ला मेरे प्रसाधन, अपनेको सजाऊगी। (सजाती रही)

—अक ६

२ न्यायालय—

(शोधनक प्रवेश करता है)

२२ शोधनक (झाडूदार)—अदालतके अधिकारियोने आज्ञा दी है अरे शाधनक न्यायमडपमें जाकर आसन लगा। सो न्यायमडपको तैयार करने जाता हू। (परिक्रमा करके, देखकर) यह अदालतका मडप है, प्रवेश करता हू। (प्रवेश करके झाडू देकर आसन रखकर) अदालतके मडपको मैने साफ कर दिया, आसन लगा दिये। सो अब अधिकरणिको (अफसरो) से अज करता हू। (परिक्रमा करके और देखकर) क्यो यह राष्ट्रिय शाला दुष्ट दुजन मनुष्य इधर ही आ रहा है, इसकी नजर बचाकर जाऊ।

(एक ओर खडा)

(तब उज्ज्वल-वेषधारी शकार प्रवेश करता है)

२३ शकार—

मै सलिल जल पानीसे स्नान कर उद्यान-उपवन-काननमे बैठा
नारियो, युवतियो, स्त्रियो, गधर्वों, सुसज्जित शरीरवालोके साथ।
क्षणमे गाठ और क्षणमे मेरी जूडा, क्षणमे बाल और क्षणमें कुतल
क्षणमे मोती क्षणमें ऊपर चूडा, म चित्र-विचित्र राजाका साला हू।

(वैसे ही खडा)

२४ शोधनक—(दूसरी ओर परिक्रमा करके सामने देखकर) यह अधिकरणिक आ रहे है, सो पास जाता हू। (पास जाता है)

(श्रेष्ठी कायस्थ आदिसे अफसर प्रवेश करता है)

अफसर—हे, हे श्रेष्ठि-कायथो।

श्रेष्ठि और कायथ—आज्ञा दें, आय।

२५ अधिकरणिक—अहो, व्यवहारपराधीनतया दुष्कर खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकै

छन्न कायमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृत,
स्वान्दोषान्कथयति नाधिकरणे रागाभिभूता स्वयम् ।
तै पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैनृप स्पृश्यते,
सक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरत ॥३॥

२६ अपि च,—

छन्न दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृता,
स्वान्दोषान्कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम् ।
ये पक्षापरपक्षदोषसहिता पापानि सकुर्वते,
सक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणोदूरत ॥४॥

२७ यतोऽधिकरणिक खलु ।

शास्त्रज्ञ कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधनस्,
तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरित दृष्ट्वैव दत्तोत्तर ।
क्लीबान्पालयिता शठान्व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापह ॥५॥

२८ श्रेष्ठिकायस्थौ—आयस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते । यद्येव, तदा चन्द्रालोकेऽप्यन्धकार इत्युच्यते ।

२९ अधिकरणिक—भद्र शोधनक, अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय ।

शोधनक—एत्वेत्वधिकरणभोजक, एतु

(इति परिक्रामन्ति)

२५ अधिकरणिक—अहो न्यायके पराधीन होनेसे अधिकरणिको (न्यायाधीशो) के लिये दूसरेके चित्तको अनुकूल करना दुष्कर है—

न्यायसे हटाये छिपे कायको पुरुष ला धरते है,
रागमे लिप्त स्वय अपने दोषोको अदालतमे नही कहते।
पक्ष-विपक्षके बढाये बलवाले दोषोसे राजा लिप्त होता है,
सक्षेपमे द्रष्टाका गुण दूर अपवादरूपसे ही सुलभ है ॥३॥

२६ और भी—

कुपित होकर न्यायसे हटे असत्यसे ढके दोषको बतलाते है,
अपने दोषोको अदालतमे नही कहते, होते भी नष्ट हो जाते।
जो पक्ष-विपक्षके दोषोके साथ हो पाप लिप्त होते है,
सक्षेपमे द्रष्टाका गुण दूरसे अपवाद रूपसे ही सुलभ है ॥४॥

२७ क्योकि अधिकरणिक (न्यायाधीश) तो—

शास्त्रज्ञ होते भी कपटके अनुसरणमें कुशल, वक्ता किंतु क्रोधी नही,
मित्र और स्वकीयमे समान आचरण देखकर ही उत्तर देनेवाला।
नपुसकोका पालक शठोका पीडक धर्मानुसारी और निर्लोभ,
द्वार बन परम तत्वमें आबद्ध हृदय और राजाके कोपको दूर करने वाला ॥५॥

२८ श्रेष्ठि और कायस्थ—आयके भी गुणमें दोष कहा जावे ? यदि ऐसा तो चादनीमें भी अधकार कहा जावे।

२९ अधिकरणिक—भद्र शोधनक, अधिकरण-मडप (न्यायालय) का माग बतला।

शोधनक—आर्यें, आये अधिकरणभोजक, आयें।

(परिक्रमा करते है)

३० शोधनक —अयमधिकरणमण्डप, तत्प्रविशन्त्वधिकरण-भोजका।

(सर्वे च प्रविशन्ति)

अधिकरणिक —भद्र शोधनक, वहिर्निष्क्रम्य ज्ञायता—"क क कार्यार्थी" इति।

३१ शोधनक —यदाय आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य) आर्या, अधिकरणिका भणन्ति "क क इहकार्यार्थी" इति।

शकार —(सहर्षम्) उपस्थिता अधिकरणिका (साटोप परिक्रम्य) अह वरपुरुषो मनुष्यो वासुदेवो राष्ट्रियश्यालो राजश्याल कार्यार्थी।

३२ शोधनक —(ससभ्रमम्) हन्त, प्रथममेव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी। भवतु, आय, मुहूर्त तिष्ठ, तावदधिकरणिकाना निवेदयामि। (उपगम्य) आर्या, एष खलु राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी व्यवहारमुपस्थित।

३३ अधिकरणिक —कथ प्रथममेव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी! यथा सूर्योदये उपरागो महापुरुषनिपातमेव कथयति। शोधनक, व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र, निष्क्रम्योच्यताम्—"गच्छाद्य, न दृश्यते तव व्यवहार" इति।

३४ शोधनक —यदार्या आज्ञापयतीति। (निष्क्रम्य, शकार-मुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"अद्य गच्छ न दृश्यते तव व्यवहार।"

शकार —(सक्रोधम्) आ किं न दृश्यते मम व्यवहार। यदि न दृश्यते, तदावुत्त, राजान पालक भगिनीपति विज्ञाप्य भगिनी मातर च विज्ञाप्यैतमधिकरणिक दूरीकृत्यात्रान्यमधिकरणिक स्थापयिष्यामि।

(इति गन्तुमिच्छति)

३० शोधनक—यह अधिकरणमडप है, सो अधिकरणभोजक प्रवेश करें।

(सब प्रवेश करते ह)

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, बाहर निकल कर जानो 'कौन-कौन वादी ह।'

३१ शोधनक—जो आय आज्ञा देते है। (बाहर निकलकर) आया, अधिकरणिक कहते है "कौन-कौन यहा वादी है।"

शकार—(हषके साथ) आ गये अधिकरणिक ? (अभिमान के साथ परिक्रमा करके) मैं श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य वासुदेव राष्ट्रियशाल (राजशाला) वादी हू।

३२ शोधनक—(घबडाया सा) हन्त, पहले ही राष्ट्रियशाल मुकदमे-वाला! अच्छा, आय, क्षण भर ठहरो, तब तक अधिकरणिकोको अज करता हू। (पास आकर) आर्यो, यह राष्ट्रियशाल वादी न्यायके लिये उपस्थित है।

३३ अधिकरणिक—क्यो पहले ही राष्ट्रियशाल वादी जैसे सूर्योदयके समय ग्रहण किसी महापुरुषके मरनेको ही बतलाता है। शोधनक, आज मुकदमा गडबड होगा। भद्र, जाकर कह "जा, आज तेरा मुकदमा नही देखा जायेगा।"

३४ शोधनक—जो आय आज्ञा देते ह। (निकलकर शकारके पास जाकर) आय, अधिकरणिक कहते है "जा, आज तेरा मुकदमा नही देखा जायेगा।"

शकार—(क्रोधके साथ) आह, क्या मेरा मुकदमा नही देखा जायेगा! यदि नही देखा जायगा, तो भगिनी पति जीजा राजा पालक से अज करके भगिनी और माको अज करके इस अधिकर-णिकको हटा कर इस पद पर दूसरे अधिकरणिकको स्थापित कराऊगा।

(जाना चाहता है)

३५ शोधनक —आर्य, राष्ट्रियश्याल। मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकाना निवेदयामि। (अधिकरणिक उपगम्य) एष राष्ट्रियश्याल कुपितो भणति (इति तदुक्त भणति)
अधिकरणिक —सर्वमस्य मूर्खस्य सभाव्यते। भद्र, उच्यताम् —"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार।"

३६ शोधनक —(शकारमुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार", तत्प्रविशत्वार्य
शकार —ह्री, प्रथम भणन्ति न दृश्यते, साप्रत दृश्यत इति। तन्नामभीतभीता अधिकरणभोजका, यद्यह भणिष्यामि तत्प्रत्याययिष्यामि। भवतु, प्रविशामि। (प्रविश्योपसृत्य) सुसुखमस्माक, युष्माकमपि सुख ददामि न ददामि च।

३७ अधिकरणिक —(स्वगतम्) अहो, स्थिरसस्कारता व्यवहारार्थिन। (प्रकाशम्) उपविश्यताम्।
शकार —आ, आत्मीयैषा भूमि। तद्यत्र मह्य रोचते तत्रोपविशामि। (श्रेष्ठिन प्रति) एष उपविशामि (शोधनक प्रति) नन्वत्रोपविशामि। (इत्यधिकरणिक-मस्तिष्के हस्त दत्वा) एष उपविशामि। (इति भूमौ उपविशति)

३८ अधिकरणिक —भवान्कार्यार्थी ?
शकार —अथ किं ?
अधिकरणिक —तत्कार्यं कथय।

३९ शकार —(कर्णे कार्यं कथयिष्यामि) एव मल्लक प्रमाणस्य कुलेऽह जात।

राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽह ममापि भगिनिपती राजा ॥६॥

३५ शोधनक—आर्य राष्ट्रियशाल, क्षण भर जरा ठहरें। अधिकरणिक से निवेदन करता हू। (अधिकरणिकके पास जाकर) यह राष्ट्रियशाला कुपित होकर कहता है, (उसके कहेको दुहराता है)।

अधिकरणिक—यह मूर्ख सब कर सकता है। भद्र, कह "आओ, तेरा मुकदमा देखा जायेगा।"

३६ शोधनक—(शकारके पास जाकर) आर्य, अधिकरणिक कहते है "आओ, तेरा मुकदमा देखा जायेगा।" तो आर्य प्रवेश करे।

शकार—ही-ही, पहले कहते है, नही देखा जायेगा, (अब कहते ह) देखा जायेगा। सो अधिकरणिभोजक, भयभीत है जो-जो मै कहूगा, वह-वह पतिययाऊँगा। अच्छा, प्रवेश करता हू। (प्रवेश करके पास जाकर) हमें सुसुख है, तुम्हे भी सुख देता हू और नही देता हू।

३७ अधिकरणिक—(अपने आपसे) अहो, वादीका एक सा ही सस्कार (होता) है। (प्रकट) बैठिये।

शकार—हा, अपनी ही यह भूमि है। सो जहा मुझे पसन्द है, वही बैठता हू। (श्रेष्ठीसे) यहा बैठता हू। (शोधनकसे) तो यहा बैठता हू। (अधिकरणिकके मत्थेपर हाथ देकर) यह बैठता हू। (भूमिपर ही बैठता है)

३८ अधिकरणिक—आप वादी है ?

शकार—और क्या ?

अधिकरणिक—तो मुकदमा (कार्य) बतलायें।

३९ शकार—कानमें कार्य बतलाऊगा। ऐसे बडे मल्लक प्रमाणके कुलमें म जनमा हू।

मेरा पिता राजाका सचिव है, राजा तातका जमाई है।
मै राजाका साला हू, मेरा भी भगिनीपति राजा है ॥६॥

४० अधिकरणिक—सर्वं ज्ञायते,

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति नितरा स्फीता सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमा ॥७॥

तदुच्यता कार्यम्।

४१ शकार—एव भणामि, अपराद्धस्यापि न च मे किमपि करिष्यति, ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितु रक्षितु सर्वोद्यानाना प्रवर पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवस शुष्क कारयितु पुष्ट कारयितु लून कारयितु गच्छामि। दैवयोगेन पश्यामि, न पश्यामि वा, स्त्रीशरीर निपतितम्।

४२ अधिकरणिक—अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति?

शकार—अहो अधिकरणभोजका, किमिति न जानामि? ता तादृशी नगरमण्डना काचनशतभूषणा केनापि कुपुत्रेण आर्थकल्यवतस्य कारणाच्छून्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया। (इत्यर्धोक्ते मुखमावृणोति)

४३ अधिकरणिक—अहो नगररक्षिणा प्रमाद। भो श्रेष्ठिकायस्थौ "न मयेति" व्यवहारपदमभिलिख्यताम्,

कायस्थ—यदाय आज्ञापयति। (तथा कृत्वा) आय, लिखितम्।

४४ शकार—(स्वगत) आश्चर्यम्, त्वरा कुर्वाणेनैव पायसपिण्डारकेणाय मयात्मैव विनाशित, भवतु। एव तावत् (प्रकाश्य) अहो अधिकरणभोजका, ननु भणामि, मयैव दृष्टा किं कोलाहल कुरुत? (इति) पादेन लिखित प्रो छति,

अधिकरणिक—कथ त्वया ज्ञात यथा खल्वर्थनिमित्त बाहुपाशेन व्यापादिता?

४० अधिकरणिक—सब मालूम है।
कुल बतलानसे क्या यहा शील ही कारण ह।
सुन्दर क्षेत्रमे अति स्पष्ट बबूलके वृक्ष (भी) होते है ॥७॥
सो काय बतलाइये ?

४१ शकार—एसा कहता हू। अपराधी होने पर भी मेरा (काई) कुछ नही कर सकता। सतुष्ट होकर भगिनीपतिने खेलन और रखनके लिये मुझे सारे उद्यानोमे श्रेष्ठ पुष्पकरडक जले जीण उद्यानको दिया। वहा प्रतिदिन देखनेके लिये, सूखा करनेके लिये, शोधन कराने, साफ करानके लिये, पुष्ट करानेके लिये, छेदन करानेके लिये जाता हू। दैवयोगसे देखता या नही देखता हू, पडे हुए स्त्रीके शरीरको।
अधिकरणिक—फिर क्या जानते हो, कौन सी स्त्री मरी ?

४२ शकार—अहो अधिकरणभाजक, क्यो नही जानता हू, वैसी नगरकी मडन सैकडो सोनेके भषणोवाली वसतसेनाको किसी कपूतने धनके कारण शू य पुष्पकरड ~ जूने उद्यान मे ले जाकर हाथके फदेसे बलात्कारके साथ मार दिया, मने नही। (आधा ही कह मुह ढाक लेता है)

४३ अधिकरणिक—अहो, नगरके पुलिसवालोकी गलती।
श्रेष्ठी और कायस्थ, "मै नही" इस अभियोग-वाक्यको पहले लिखिये।
कायस्थ—जो आय आज्ञा देते है। (वैसा करके) आय, लिख लिया।

४४ शकार—(अपने आपसे) अहो जल्दी करते हुये आज खीरपिंडके लोभी मैंने अपने ही को नाश कर लिया। अच्छा, तो यह, (प्रकट) हे अधिकरणिभोजको, मै कहता हू, मैने ही देखा। क्यो हल्ला मचाते हो। (लिखे हुये को पैरसे पोछ देता है)
अधिकरणिक—कैसे तुमने जाना, कि धनके कारण बाहुपाशसे उसे मारा ?

४५ शकार —हहो, नून परिशून्यया मोघस्थानया ग्रीवालिक-
या सुवर्णकैराभरणस्थानैस्तकयामि।
श्रेष्ठिकायस्थौ—युज्यत इव।
४६ शकार —(स्वगतम्) दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितोऽस्मि।
श्रेष्ठिकायस्थौ—भो, कमेष व्यवहारोऽवलम्बते ?
अधिकरणिक —इह हि द्विविधो व्यवहार ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कीदश ?
४७ अधिकरणिक —वाक्यानुसारेण, अर्थानुसारेण च ।
स यस्तावद्वाक्यानुसारेण, खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्य,
यश्चार्थानुसारेण स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्य ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—तद्वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहार ।
४८ अधिकरणिक —एवमिदम्। भद्र शोधनक, वसन्तसेना-
मातरमनुद्वेजयन्नाह्वय।
शोधनक —तथा, (इति निष्क्रम्य, गणिकामात्रा सह
प्रविश्य) एत्वेत्वार्या।
४९ वृद्धा—गता मे दारिका मित्रगहमात्मनो यौवनमनुभवितुम्।
एष पुनर्दीर्घायुभणति—"आगच्छ,अधिकरणिक आह्वयति"
तन्मोहपरवशमिवात्मानमवगच्छामि। हृदय मे प्रकम्पते
आय, आदिश मह्यमधिकरणमण्डपस्य मार्गम्।
५० शोधनक —एत्वेत्वार्या।

(उभौ परिक्रामत)

शोधनक —एषोऽधिकरणमण्डप । अत्र प्रविशत्वार्या।

(इत्युभौ प्रविशत)

५१ वृद्धा—(उपसृत्य) सुख युष्माक भवतु भावमिश्राणाम्।
अधिकरणिक —भद्रे, स्वागतम्, आस्यताम् ।
वृद्धा—तथा। (इत्युपविष्टा)

४५ शकार—बिना सुवर्णवाले आभरणसे खाली छूछी गदनसे अनुमान करता हू।

श्रेष्ठी और कायस्थ—सभव सा है।

४६ शकार—(अपने आपसे) खूब, फिर जी गया।

श्रेष्ठी और कायस्थ—हे, किसके ऊपर यह व्यवहार (अभियोग) है?

अधिकरणिक—यहा दो प्रकारका व्यवहार होता है।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसा?

४७ अधिकरणिक—वाक्यके अनुसार और अथके अनुसार। जो वाक्यके अनुसार होता है, वह वादी प्रतिवादियोसे और जो अथके अनुसार, वह अधिकरणिककी बुद्धिसे तैयार होता है।

श्रेष्ठी और कायस्थ—तो यह व्यवहार (मुकदमा) वसतसेनाकी मासे सम्बध रखता है।

४८ अधिकरणिक—यह ऐसा ही। भद्र शोधनक, वसतसेनाकी माको बिना उद्वेजित किये बुला लाओ।

शोधनक—अच्छा। (निकल कर गणिकाकी माके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्या।

४९ वद्धा—मेरी लडकी मित्रके गृहमे अपना यौवन भोगने गई। पर, यह चिरजीवी बोलता है "अधिकरणिक बुला रहे है", सो मोह परवश अनुभव कर रही हू। मेरा हृदय काप रहा है। आय, मुझ अधिकरण मडपका माग बतला।

५० शोधनक—आओ, आओ, आर्या।

(दोनो परिक्रमा करते है)

शोधनक—यह अधिकरणमडप है। यहा आर्या बैठो।

(दोनो प्रवेश करते हैं)

५१ वद्धा—(पास जाकर) तुम महानुभावो, सुखी होओ।

अधिकरणिक—भद्रे, स्वागतम, बैठिये।

वद्धा—अच्छा। (बैठ गई)

५२ शकार —(साक्षेपम्) आगतासि वृद्धकुट्टनि, आगतासि ?
अधिकरणिक —अये, त्व किल **वसन्तसेनाया** माता ?
वृद्धा—अथ किं।
अधिकरणिक —अथेदानीं वसन्तसेना क्व गता ?
वृद्धा—मित्रगृहम् ।
५३ अधिकरणिक —किंनामधेय तस्या मित्रम् ?
वृद्धा—हा धिक् हा धिक, अतिलज्जनीय खल्विद। जनस्य पृच्छनीयोऽयमथ, न पुनरधिकरणिकस्य।
५४ अधिकरणिक —अल लज्जया, व्यवहारस्त्वा पृच्छति।
श्रेष्ठिकायस्थौ—व्यवहार पच्छति। नास्ति दोष ,कथय।
५५ वृद्धा—कथ व्यवहार ? यद्येव, तदा शृण्व त्वायमिश्रा । स खलु साथवाह**विनयदत्तस्य** नप्ता, **सागरदत्तस्य** तनय सुगहीतनामधेय आय**चारुदत्तो** नाम, **श्रेष्ठिचत्वरे** प्रातिवसति। तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति ।
५६ शकार —श्रुतमार्यैं ? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि। चारुदत्तेन सह मम विवाद ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोष
५७ अधिकरणिक —व्यवहारोय चारुदत्तमवलम्बते।
श्रेष्ठिकायस्थौ—एवमिव ।
५८ अधिकरणिक —**धनदत्त**, वसन्तसेनार्यचारुदत्तस्य गृह गतेति लिख्यता व्यवहारस्य प्रथम पाद ।कथमार्यचारुदत्तोऽप्यस्माभिराह्वयितव्य ? अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति। भद्र शोधनक, अगच्छ, आयचारुदत्त स्वैरमसभ्रान्तमनुद्विग्न सादरमाहूय प्रस्तावेन—"अधिकरणिकस्त्वा द्रष्टुमिच्छति" इति।

५२ शकार—(आक्षेपपूर्वक) आ गइ बूढी कुटनी, आ गई ?
अधिकरणिक—अये, तुम वसंतसेनाकी मा हो ?
वद्धा—और क्या ?
अधिकरणिक—तो इस समय वसतसेना कहा गई है ?
वद्धा—मित्रके गृह।

५३ अधिकरणिक—क्या नाम है उसके मित्र का ?
वद्धा—हा धिक, हा धिक, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। लोगो के पूछनेकी यह बात है, अधिकरणिकके पूछनेकी नही।

५४ अधिकरणिक—लज्जा छोडा, व्यवहार (मुकदमा) तुमसे पूछता ह।
श्रेष्ठी और कायस्थ—व्यवहार पूछता है। कोई दोष नही, बताओ।

५५ वृद्धा—क्यो व्यवहार ? यदि ऐसा, तो आय लोग सुने। साथवाह विनयदत्तके नाती, सागरदत्तके पुत्र सुन्दर नामवाले आय चारुदत्त जो सेठ चौतरेमें बसते हैं, मेरी लडकी वहा यौवन-सुख अनुभव करती है।

५६ शकार—सुना आर्योने ? इन अक्षरोको लिखिये। चारुदत्त के साथ मेरा विवाद है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—चारुदत्त मित्र ह, इसमें दोष नही।

५७ अधिकरणिक—यह मामला अब चारुदत्तसे सम्बन्ध रखता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—ऐसा ही।

५८ अधिकरणिक—धनदत्त वसतसेना आय चारुदत्तके गृह गई, यह व्यवहारका प्रथम चरण है, (इसे) लिखिये। क्या आय चारुदत्तको भी हमें बुलाना होगा। अथवा व्यवहार उन्हे बुला रहा है। भद्र शोधनक, जा, आय चारुदत्तको स्वेच्छासे बिना शका और उद्वेगके आदरपूवक इस प्रस्तावके साथ बुला ला "अधिकरणिक तुम्हारा दशन चाहते ह।"

५९ शोधनक —(इति निष्क्रान्त) यदार्यं आज्ञापयति।
(चारुदत्तेन सह प्रविश्य) एत्वेत्वाय ।

६० चारुदत्त —(विचिन्त्य)

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशकते ॥८॥

६१ (सवितर्कं, स्वगतम्)

ज्ञातो नु कि स खलु बन्धनविप्रयुक्तो,
मार्गागत प्रवहणेन मयापनीत ।
चारेक्षणस्य नृपते श्रुतिमागतो वा,
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि ॥९॥

अथवा किं विचारितेन ? अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि ।
भद्र शोधनक, अधिकरणस्य मागमादेशय।

६२ शोधनक —एत्वेत्वार्यं ।

(इति परिक्रामत)

६३ चारुदत्त —(सशकम्) तत्किमपरम् ?

रुक्षस्वर वाशति वायसोऽय-
ममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्य च नेत्र स्फुरति प्रसह्य,
ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति॥१०॥

शोधनक —एत्वेत्वाय स्वैरमसम्भ्रान्तम्।

६४ चारुदत्त —(परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य च)

शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाक्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वाम चक्षुर्घोरमसशयम्॥११॥

५९ शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर चारुदत्तके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्य।

६० चारुदत्त—(सोचते)
शील और कुलके साथ (मुझसे) राजा परिचित है, मेरा,
यह बुलाया जाना सचमुच ही शंकास्पद है ॥८॥

६१ (तर्क करते अपने आपसे)
क्या उसे बंधन-मुक्त जान लिया।
मैंने रास्तेमें रथसे हटाया।
या गुप्तचर आंखोवाले राजाके कानमें पड़ा,
जिससे कि मैं इस तरह अभियुक्त की तरह (ले जाया) जा रहा हूं ॥९॥
अथवा विचारनेसे क्या फायदा? अधिकरण-मंडप ही जा रहा हूं।
भद्र शोधनक, अधिकरण (न्यायालय) का मार्ग बतला।

६२ शोधनक—आर्यें, आये, आय।
(दोनो परिक्रमा करते हैं)

६३ चारुदत्त—(शंकायुक्त) तो और दूसरा क्या?
यह कौआ रूखे स्वरसे बोल रहा है,
फिर अमात्यके नौकर बुला रहे हैं।
और मेरी बाईं आंख जोरसे फड़क रही है,
मेरे असगुन (मुझे) खिन्न कर रहे हैं ॥१०॥
शोधनक—आयें, आयें आर्य, स्वच्छन्द निश्चिन्त।

६४ चारुदत्त—(परिक्रमा करके और देखकर)
सूखे वृक्षपर बैठा तथा सूर्यकी ओर मुंह किये कौआ है। और मेरा बायां नेत्र निश्चय घोर (बात) बतला रहा है ॥११॥

६५ (पुनरन्यतोऽवलोक्य) अये, कथमय सर्प ?

मयि विनिहतदष्टिर्भिन्ननीलाजनाभ ,
स्फुरितविततजिह्व शुक्लदष्ट्राचतुष्क ।
अभिपतति सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि-
र्भुजगपतिरय मे मागमाक्रम्य सुप्त ॥१२॥

६६ अपि च, इदम्

स्खलति चरण भूमौ न्यस्त न चाद्रतमा मही,
स्फुरति नयन वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चाय तावद्विरोति हि नैकश,
कथयति महाघोर मृत्यु न चात्र विचारणा ॥१३॥

सवथा देवता स्वस्ति करिष्यन्ति।

शोधनक —एत्वेत्वार्यं ।इममधिकरणमण्डप प्रविशत्वार्यं ।

६७ चारुदत्त —(प्रविश्य, समन्तादवलोक्य)अहो, अधिकरण-मण्डपस्य परा श्री । इह हि—

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिल दूतोर्मिशंकाकुलम्,
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकर नागाश्वहिस्रात्रयम् ।
नानावाशकवकपक्षिरचित कायस्थसर्पास्पद,
नीतिक्षुण्णतट च राजकरण हिस्रै समुद्रायते॥१४॥

भवतु। (प्रविश छिरोभिघातमभिनीय, सवितर्कम्)अहह इदमपरम्—

सव्य मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा ।
पन्था सर्पेण रुद्धोय स्वस्ति चास्मासु दैवत ॥१५॥

तावत्प्रविशामि। (इति प्रविशति)

६५ (फिर दूसरी ओर देखकर) अये, क्यो यह साप
अजन सा अतिनील हिलती फली जिह्वावाला,
सफेद चार दाढोयुक्त कुपित,
कुटिल हाफ्ती काखवाला महाभुजग,
मेरे ऊपर नजर गडाये मेरे मागको रोककर लेटा है ॥१२॥

६६ और यह भी—
भूमिपर पडा (मेरा) चरण डगमगाता है और पथिवी गीली नही है। नत्र फडक रहा है, और वाइ बाहु बार-बार काप रही हु। यह दूसरा पक्षी बार-बार चिल्ला रहा है, (जो) महाघोर मृत्युको बतला रहा है, इसमे शक नही ॥१३॥
सवथा देवता मगल करें।
शोधनक—आर्यें, आर्यें आय । इस अधिकरणमडपमे प्रवेश करें आय।

६७ चारुदत्त—(प्रवेश करके चारो ओर देखकर) अहो, अधिकरण मडपकी परम शोभा—
यहा तो—
चितासक्त निमग्न म त्री रूपी सलिलवाला, दूतरूपी लहरोकी आकुल शकासे चारो ओर स्थित गुप्तचररूपी नाक-मगरवाला, गज-अश्वरूपी हिंस्रकोका आश्रय। नाना काव-काव करनें वाले काग पक्षीसे बना, कायस्थरूपी सर्पोंका निवास, राजनीतिसे ध्वस्त किये तटवाला, यह अधिकरण हिंस्रको से समुद्र सा है ॥१४॥
अच्छा (घुसते हुए सिरपर धक्काका अभिनय करके सोचते) अहह, यह दूसरा (असगुन)—
मेरी बाईं आख फडक रही है, और कौआ बोल रहा है।
यह माग सपसे रुद्ध है, देवता हमारा मगल करे ॥१५॥
तो प्रवेश करूँ। (प्रवेश करता है)

६८ अधिकरणिक —अयमसौ चारुदत्त । य एष—

घोणोन्नत मुखमपागविशालनेत्र
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
न ह्याकृति सुसदृग विजहाति वृत्तम् ॥१६॥

६९ चारुदत्त —भो, अधिकृतेभ्य स्वस्ति। हहो नियुक्ता अपि कुशल भवताम ?

अधिकरणिक —(ससभ्रमम्) स्वागतमार्यस्य। भद्र शोधनक, आयस्यासनमुपनय।

७० शोधनक —(आसनमुपनीय) इदमासनम। अत्रोपविशत्वाय।

(चारुदत्त उपविशति)

शकार —(सक्रोध) आगतोऽसि रे स्त्रीघातक, आगतोऽसि। अहोऽधर्म्यो व्यवहार, यदेतस्मै स्त्रीघातकायासन दीयते। भवतु, ननु दीयताम।

७१ अधिकरणिक —आर्य चारुदत्त, अस्ति भवतोऽस्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्ति प्रणय प्रीतिर्वा ?

चारुदत्त —कस्या ?

७२ अधिकरणिक —अस्या (इति वसन्तसेनामातर दर्शयति)

चारुदत्त —उत्थाय आर्ये, अभिवादये।

वृद्धा—जात, चिर मे जीव। (स्वगत) अय स चारुदत्त सुनिक्षिप्त खलु दारिकया यौवनम्।

७३ अधिकरणिक —आर्य, गणिका तव मित्रम् ?

(चारुदत्तो लज्जा नाटयति)

६८ अधिकरणिक—सो यह चारुदत्त है, जो कि यह—
ऊँची नाकवाला मुख, पलकयुक्त विशालनेत्र
अकारण यह दोषी नही हो सकते।
नागो, बैलो, घोडो और मनुष्योमे (उनका)
आकार सुन्दर शीलको नही छोडता ॥१६॥

६९ चारुदत्त—भो, अधिकारियोके लिए स्वस्ति। अहो नियुक्त (पुरुषो), आप लोगोका कुशल तो है?

अधिकरणिक—(घबडाहटके साथ) आयका स्वागत है। शोधनक, आयके लिए आसन लाओ।

७० शोधनक—(आसन लाकर) यह आसन है। आय यहा बैठे।

(चारुदत्त बैठते है)

शकार—(क्रोधके साथ) आ गया रे स्त्रीघातक, आ गया? अहो, धर्मानुसारी व्यवहार, जो कि इस स्त्रीघातकको आसन दिया जा रहा है। (गवके साथ) अच्छा, तो दीजिए।

७१ अधिकरणिक—आय चारुदत्त, इस आर्याकी लडकीके साथ आपकी प्रसक्ति, प्रणय या प्रीति है?

चारुदत्त—किसकी?

७२ अधिकरणिक—इसकी (वसन्तसेनाकी माको दिखलाता है)।

चारुदत्त—(उठकर) आर्ये, अभिवादन करता हूँ।

वृद्धा—मेरे पुत्र चिरञ्जीव। (अपने आपसे) यही वह चारुदत्त है। बेटीने (अपने) यौवनको सुन्दर जगह अपण किया।

७३ अधिकरणिक—आय, गणिका तुम्हारी प्रेमिका है?

(चारुदत्त लज्जा प्रदर्शित करता है)

७४ शकार —
लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीक निगूहितुम्।
स्वय मारयित्वार्थकारणादिदानी गूहति न तद्धि भट्टक।१७।
श्रेष्ठिकायस्थौ—आय चारुदत्त, भण ? अल लज्जया।
व्यवहार खल्वेष।
७५ चारुदत्त —(सलज्जम्) भो अधिकृता, मया कथमीदृश
वक्तव्यम्—"यथा गणिका मम मित्र" मिति ? अथवा
यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।
७६ अधिकरणिक —
व्यवहार सविघ्नोय त्यज्य लज्जा हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमल धैर्य छलमत्र न गृह्यते॥१८॥
७७ अल लज्जया, व्यवहारस्त्वा पृच्छति।
चारुदत्त —अधिकृत, केन सह मम व्यवहार ?
शकार —(साटोपम्) मया सह व्यवहार।
७८ चारुदत्त —त्वया सह मम व्यवहार सुदु सह।
शकार —अरे स्त्रीघातक, ता तादशी रत्नशतभूषणा
वसन्तसेना मारयित्वा, साप्रत कपटकापटिको भूत्वा,
निगूहसि ?
७९ चारुदत्त —असबद्ध खल्वसि।
अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, अलमनेन, ब्रूहि सत्यम्।
अपि गणिका तव मित्रम।
८० चारुदत्त —एवमेव।
अधिकरणिक —आर्य, **वसन्तसेना** क्व ?
८१ चारदत्त —गृह गत।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कथ गता, कदा गता, गच्छन्ती वा
केनानुगता ?

७४ शकार—

लज्जा या भीरुतासे अनुचित आचरणको छिपानेके लिये,
धनके लिय स्वय मारकर उसे अब भडुआ छिपाता है ॥१७॥

श्रेष्ठी और कायस्थ—आय चारुदत्त, कहे लज्जा छोडे। यह व्यवहार है।

७५ चारुदत्त—(लज्जापूवक) हे अधिकारियो, मैं कैसे कहूँ, कि गणिका मेरी मित्र है। अथवा यह यौवनका अपराध है, चरित्रका नही।

७६ अधिकरणिक—

यह खतरनाक व्यवहार है, मनकी लज्जा छोडो।
सच बोलो, धीरता रहने दो, यहा छल नही चलता ॥१८॥

७७ लज्जा रहने दो, व्यवहार तुमसे पूछता है।

चारुदत्त—अधिकारी, किसके साथ मेरा व्यवहार (मुकदमा) है?

शकार—(फूलकर) अरे, मेरे साथ व्यवहार है।

७८ चारुदत्त—तेरे साथ मेरा व्यवहार, बहुत मुश्किल है।

शकार—अरे स्त्रीघातक, वैसी सौ रत्नोकी भूषणवाली वसन्तसेनाको मार कर अब कपट-कपटी बनकर छिपाता है?

७९ चारुदत्त—फजूल है तू।

अधिकरणिक—आय चारुदत्त, इसे रहने दो, सच बोलो। क्या गणिका तुम्हारी मित्र है?

८० चारुदत्त—ऐसा ही है।

अधिकरणिक—आय, वसन्तसेना कहा है?

८१ चारुदत्त—घर गई।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे गई, कब गई, और जाती हुई किसके साथ गई?

८२ चारुदत्त —(स्वगतम्) कि प्रच्छन्न गतेति ब्रवीमि ?
श्रेष्ठिकायस्थौ—आय, कथय।

८३ चारुदत्त —गह गता किमन्यद् ब्रवीमि ?
शकार —मदीय पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान प्रवेश्यार्थनिमित्त बाहुपाशबलात्कारेण मारिता। अये, साम्प्रत वदसि गृह गतेति ?

८४ चारुदत्त —आ, असबद्धप्रलापिन्—

अभ्युक्षितोऽसि सलिलैन बलाहकाना,
चाषाग्रपक्षसदृश भृशमन्तराले।
मिथ्यैतदाननमिद भवतस्तथा हि,
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति ॥१९॥

८५ अधिकरणिक —(जनान्तिकम्)

तुलन चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम्।
ग्रहण चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम् ॥२०॥

८६ (प्रकाशम्) आर्यचारुदत्त खल्वसौ कथमिदानी अकार्यं करिष्यति ?
शकार —किं पक्षपातेन ? व्यवहारो दृश्यते।

८७ अधिकरणिक—अपेहि मूर्ख,

वेदार्थान्प्राकृतस्त्व वदसि, न च ते जिह्वा निपतिता,
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं, न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्त क्षिपसि, स च ते दग्धो भवति नो,
चारित्र्याच्चारुदत्त चलयसि, न ते देह हरति भू ॥२१॥

८८ आर्यचारुदत्त कथमकार्य करिष्यति ?

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेष,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसा कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पाप करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ॥२२॥

८२ चारुदत्त—(अपने आपसे) क्या छिपकर गई यह कहूँ?
श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य कहें।
८३ चारुदत्त—घर गई और क्या बतलाऊँ?
शकार—मेरे पुष्पकरंडक जूने उद्यानमे ले जाकर धनके लिये बाहुपाशसे बलात मार डाला। अये, अब कहता है घर गई?
८४ चारदत्त—आह, बकवास करनेवाले,
बादलोके जलसे तू धुला नही है,
चाशके अगले पखके समान भीतरसे,
यह आपका मुख अत्यन्त झूठा है,
जो जाडेके कमलकी तरह निष्प्रभ हो रहा है ॥१९॥
८५ अधिकरणिक—(अपनोमे)
पर्वतराजके तोलने और समुद्र पार होने,
और वायुके पकडने जैसा ही चारुदत्तके ऊपर दोष लगाना है ॥२०॥
८६ (प्रकट) आर्य चारुदत्त है, कैसे यह अकरणीय करेंगे।
शकार—पक्षपात करनेसे क्या लाभ? व्यवहार (साफ) दिखाई दे रहा है।
८७ अधिकरणिक—हट परे, मूर्ख—
गवार तू वेदके अर्थको कह रहा है, और तेरी जीभ नही गिरती,
मध्याह्नमे सूर्यको देख रहा है, तेरी दृष्टि सहसा विचलित नही होती।
प्रज्वलित अग्निके भीतर हाथ डाल रहा है, और वह तेरा दग्ध नही होता। सदाचारसे चारुदत्तको विचलित कर रहा है, और धरती तेरी देहको नही हरती ॥२१॥
८८ आर्य चारुदत्त कैसे यह अकार्य करेंगे?
समुद्रके जलकी ऊँचाई मात्र बचा रखकर,
जिसने बेपर्वाह हो धन दे डाला।
वह भलाइयोंका एक मात्र निधि महात्मा,
धनके लिये कायरोका सा पाप करेगा ॥२२॥

८९ वृद्धा—हताश, यस्तदानीं न्यासीकृत सुवर्णभाण्ड रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणाच्चतु समुद्रसारभूता रत्नावली ददाति, स इदानीमथकल्यवतस्य कारणादिदमकार्यं करोति ? हा जाते, एहि मे पुत्रि, (इति रोदिति)
अधिकरणिक —आर्यचारुदत्त, किमसौ पद्भ्या गता, उत प्रवहणेनेति ?

९० चारुदत्त —ननु मम प्रत्यक्ष न गता। तन्न न जाने कि पद्भ्या गता, उत प्रवहणेनेति।

(प्रविश्य, सामर्ष)

वीरक —

पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य।
अनुशोचत इय कथमपि रात्रि प्रभाता मे ॥२३॥

तद् यावद् अधिकरणमण्डप उपसर्पामि (प्रविष्टकेन) सुख आयमिश्राणाम् ?

९१ अधिकरणिक —अये, नगररक्षाधिकृतो वीरक। किमागमन-प्रयोजनम् ?
वीरक —ह्ली, बन्धनभेदनसभ्रमे आयकमन्वेषयन्, अपवारित प्रवहण व्रजतीति विचार कुवन्नन्वेषयन्, "अरे! त्वयाप्यालोकित, मयाप्यालोकितव्य" इति भणन्नेव चन्दनमहत्तरकेण पादेन ताडितोऽस्मि। एतच्छ्रुत्वा आयमिश्रा प्रमाणम्।

९२ अधिकरणिक —भद्र, जानीषे कस्य तत्प्रवहणमिति ?
वीरक —अस्यायचारुदत्तस्य। वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान क्रीडितु नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम्।
शकार —पुनरपि श्रुतमार्यै।

८९ बृद्धा—हताश, जो उस समय अमानत रक्खे सोनेके आभषणको रातमे चोरो द्वारा चुराये जानेपर उसकी जगह चारो समुद्रोका सार रत्नावली दे देता है, वह अब धनके लिय इस अकायको करेगा ? हा बेटी, आ मेरी पुत्री। (रोती है)

अधिकरणिक—आय चारुदत्त, क्या वह पैदल गई या रथसे ?

९० चारुदत्त—मेरे सामने नही गई, सो नही जानता पैदल गई या रथसे।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

वीरक—पाद प्रहारके अपमानसे पीडित भारी बरसे।
सोचते हुये मेरी यह रात कैसे करके सवेरा हो गई ॥२३॥

सा अधिकरणमण्डपमे जाता हूँ। (प्रवेश करके) सुख ता है आर्योको ?

९१ अधिकरणिक—अये, नगररक्षाधिकारी वीरक, वीरक, (तुम्हारे) आनेका क्या प्रयोजन है ?

वीरक—ही, बन्दीखाना टूटनेके उतावलेपनमें आयकको ढूढते, "ढँका हुआ रथ जा रहा है', यह विचार तलाशी लेते "अरे तून भी देखा, मैंने भी देखा' यह कहते चन्दन महत्तरने मुझे लात मारी। यह सुनकर अब (आप) आय जो उचित समझे, (सो करे)।

९२ अधिकरणिक—भद्र, जानते हो, किसका वह रथ था ?

वीरक—इस आय चारुदत्तका। "वसन्तसेना चढकर पुष्पकरडक जूने उद्यानमें विहारके लिये ली जा रही है", रथवान्ने कहा।

शकार—फिरभी सुना आर्योंने ?

९३ अधिकरणिक —
एष भो निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी ॥
जलं कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते ॥२४॥
वीरक —पश्चादिह भवतो न्याय द्रक्ष्यामः । य एषोऽधिक-रणद्वारश्वस्तिष्ठति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानं दृश्यतामस्ति तत्र काचिद् विपन्ना स्त्री न वेति ।

९४ वीरक —यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रम्य, प्रविश्य च) गतोऽस्मि तत्र । दृष्टं च मया स्त्रीकलेवरं श्वापदैर्विलुप्यमा-नम् ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कथं त्वया ज्ञातं स्त्रीकलेवरमिति ?

९५ वीरक —सावशेषैः केशहस्तपाणिपादैरुपलक्षितं मया ।
अधिकरणिक —अहो, धिक् वैषम्यं लोकव्यवहारस्य-
यथा यथैव निपुणं विचार्यते, तथा तथा सकटमेव दृश्यते ।
अहो सुसन्ना व्यवहारनीतयो, मतिस्तु गौः पंकगतेव सीदति ॥२५॥

९६ चारुदत्त —(स्वगतम्)
दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो रागान्धः परमिह हन्तुकामबुद्धिः
किं यो यद्वदति मृषेव जातिदोषात्तद्ग्राह्यं भवति न तद्विचारणीयं ॥२७॥

९७ अपि च,—
यो हि लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतोराकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि
सोऽहं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि ॥२८॥

९३ अधिकरणिक—

भो, यह निमल चादनीवाला च द्रमा राहुसे ग्रसा जा रहा है।
तट के गिरनेसे स्वच्छ जल मलिन हो रहा है ॥२४॥

वीरक, आपके याय (मुकदमे) को पीछे देखेगे। अधिकरणके दरवाजेपर जो यह घोडा खडा है, उसपर चढ जाकर पुष्पकरडक उद्यानको देखे, वहाँ कोई मरी स्त्री है या नही।

९४ वीरक—जो आय आज्ञा देते ह। (बाहर जाकर और फिर प्रवेश कर) वहा गया था। मैंने जानवरोसे विलुप्त किये जाते स्त्रीशरीरको देखा।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे तुमने जाना, कि स्त्रीशरीर है?

९५ वीरक—बचे हुये केश, हाथ, पाणि, पैरोसे मैंने समझा।

अधिकरणिक—अहो, लोक व्यवहारकी विषमताको धिक्कार है।
जैसे-जैसे इसे अच्छी तरह विचारते है, वैसे-वैसे सकट ही दिखाई दे रहा है। अहो सुगठित व्यवहारकी नीतिया, जहा बुद्धि पकमे पडी गौकी तरह फस जाती है ॥२५॥

९६ चारुदत्त—(अपने आपसे)

दुष्टात्मा दूसरेके गुणोमें ईर्ष्यालु रागसे अ धा मनुष्य दूसरेको मारने की इच्छासे जो कहता है, जातिके दोषसे वह झूठ ही क्या ग्राह्य होता है, वह विचारणीय नही ॥२७॥

९७ और भी—

जो मै फूली लताको फूलके लिये झुकाकर नही चुनता।
सो मैं भवरेके पखो से (काले) लम्बे केशोको पकडकर रोती स्त्रीको मारूँगा ॥२८॥

९८ शकार—हहो अधिकरणभोजका, किं यूयं पक्षपातेन व्यवहारं पश्यथ, येनाद्याप्येष हताशश्चारुदत्त आसने धार्यते ?

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, एवं क्रियताम्।

(शोधनकस्तथा करोति)

९९ चारुदत्त—विचायताम्। भो अधिकृता, विचार्यताम्
(इत्यासनादवतीय भूमावुपविशति)
शकार—(स्वगतं, सहर्षं नर्तित्वा) ही, अनेन मया कृतं पापमन्यस्य मस्तके निपतितम्। तद्यत्र चारुदत्त उपविशति तत्राहमुपविशामि। (तथा कृत्वा) चारुदत्त, पश्य-पश्य माम्। तद् भण भण मया मारितेति।

१०० चारुदत्त—भो अधिकृता (दुष्टात्मा इत्यादि पठति)
(सनिश्वासं, स्वगतम्)
मैत्रेय भो, किमिदमद्य ममोपघातो,
हा ब्राह्मणि, द्विजकुले विमले प्रसूता।
हा रोहसेन, हि न पश्यसि मे विपत्तिं,
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम्॥२९॥
प्रेषितश्च मया तद्वार्तान्वेषणाय मैत्रेयो वसन्तसेनासकाशं शकटिकानिमित्तं च तस्यै प्रदत्तान्यलंकरणानि प्रत्यर्पयितुं, तत्कथं चिरयते।

(ततः प्रविशति गृहीताभरणो विदूषकः)

९८ शकार—हे हो अधिकरणभोजको, क्या तुम पक्षपात से व्यवहारको देख रहे हो, जो अब भी इस अभागे चारुदत्तको आसनपर बैठाये हुये हो ?

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, ऐसा (ही) करो।

(शोधनक वैसा करता है)

९९ चारुदत्त—विचार कीजिये, हे अधिकारियो, विचार कीजिये। (आसनसे उठ कर जमीनपर बैठ जाता है)

शकार—(हर्षके साथ नाच कर) ही इस तरह अपने किये पापको दूसरे के मत्थे डाला। सो जहाँ चारुदत्त बैठा है, वहीं (मैं भी) बैठता हूँ। (वैसा करके) चारुदत्त, देख-देख (तो) मुझे। सो कह-कह, कि मने मारा।

१०० चारुदत्त—हे अधिकारियो, (दुष्टात्मा आदि पढता है)

(उसास लेकर अपने आपसे)

हे मैत्रेय, क्या आज यह मेरा मरण है,
विमल द्विजकुलमें जनमी हा ब्राह्मणी,
हा रोहसेन, मेरी विपद्को नही देख रहा है।
दूसरेके दुखसे झूठ ही तू आनन्दित होता है॥२९॥

मैंने उसका पता लगानेके लिये मैत्रेयको, वसन्तसेना द्वारा शकटिकाके लिये दिये आभूषणोको लौटानेके वास्ते भेजा था। सो वह क्यो देर कर रहा है ?

(आभरण बगलमें दाबे विदूषक प्रवेश करता है)

१०१ विदूषक —प्रेषितोऽस्म्यार्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तत्रालकरणानि गृहीत्वा यथा "आर्य मैत्रेय, वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनोऽलकारेणालकृत्य जननीसकाश प्रेषित। अस्य आभरण दातव्य, न पुनर्गृहीतव्यम्, तत्समपय" इति। तद्यावद्वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) कथ भावरेभिल ? भो भावरेभिल, किंनिमित्त त्वमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे ? (आकर्ण्य) कि भणसि "प्रियवयस्यश्चारुदत्तोऽधिकरणमण्डप आहूत इति" ? तन्न खल्वल्पेन कार्येण भवितव्यम्। (विचिन्त्य) तत्पश्चाद् वसन्तसेनासकाश गमिष्यामि, अधिकरणमण्डप तावद् गमिष्यामि। अयमधिकरणमण्डप। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य) सुखमधिकरणभोजकानाम्। कुत्र मम प्रिय वयस्य ?

१०२ अधिकरणिक —नन्वेष तिष्ठति।

विदूषक – वयस्य, स्वस्ति ते।

चारुदत्त —भविष्यति।

१०३ विदूषक —अपि क्षेम ते ?

चारुदत्त —एतदपि भविष्यति।

विदूषक—भो वयस्य, किंनिमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे ? कुतो वाऽऽहूत ?

१०४ चारुदत्त —वयस्य—

मया खलु नृशसेन परलोकमजानता।
स्त्री रतिर्वा विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति॥३०॥

विदूषक —किं किं ?

१०१ विदूषक—आय चारुदत्तने मुझे वसन्तसेनाके पास अलकार देकर भेजा, "आय मैत्रेय वसन्तसेनाने वत्स रोहसेनको अपने अलकारसे अलकृत करके मा के पास भेजा था। उसे आभरण देना चाहिये न कि (उससे) लेना चाहिये, सो (इसे) दे आओ।" सो वसन्तसेनाके पास जा रहा हूँ। (परिक्रमा करते आकाशकी ओर देख) क्यो श्री रेभिल है? हे श्री रेभिल, क्यो तुम उद्विग्नसे दिखाई देते हो। (सुनकर) क्या कहते हो "प्रिय मित्र चारुदत्त अधिकरणमण्डपमे बुलाये गये?" यह छोटा-मोटा काम नही होगा। (सोचकर) तो वसन्तसेना के पास पीछे जाऊँगा। अधिकरणमण्डपमें (पहिले) चलू। यह अधिकरणमण्डप है, सो प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके) अधिकरण भोजकोको सुख तो है? कहा है मेरा प्रिय मित्र?

१०२ अधिकरणिक—यह रहे।

विदूषक—वयस्य, स्वस्ति तुम्हें।

चारुदत्त—होगी।

१०३ विदूषक—तुम्हारा क्षेम तो है?

चारुदत्त—यह भी होगा।

विदूषक—हे मित्र, किसलिये उद्विग्नसे दिखाई दे रहे हो? और किसलिये (यहाँ) बुलाये गये?

१०४ चारुदत्त—मित्र,

परलोकके न जाननेवाले मुझ नृशसने,
स्त्री या विशेष करके रतिको, शेष यह कहेगा॥३०॥

विदूषक—क्या-क्या?

१०५ चारुदत्त —(कर्णे) एवमेवम्
विदूषक —क एव भणति ?
१०६ (सञ्ज्ञया शकार दर्शयति) नन्वेष तपस्वी हेतुभूत कृतान्तो मा व्याहरति।
विदूषक —(जनान्तिकम्) एव किमर्थ न भण्यते गृह गतेति।
१०७ चारुदत्त —उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न गृह्यते।
१०८ विदूषक —भो भो आर्या, येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलकृता नगर्युज्जयिनी, सोऽनीशोऽथकल्यवत कारणादीदृशमकार्यमनुतिष्ठतीति ? अरे रे कुलटापुत्र, राजश्यालसस्थानक, उच्छृखल, कृतजनदोषभाण्डबहुसुवर्णमण्डितमर्कटक, भण भण ममाग्रत, य इदानी मम प्रियवयस्य कुसुमिता माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचय न करोति, कदाऽप्याकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति, स कथमीदृशमकार्यमुभयलोकविरुद्ध करोति ? तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र, तिष्ठ, यावदेतेन कुटिलेन दण्डकाष्टेन तव मस्तक शतखण्ड करोमि।
१०९ शकार —(सक्रोधम्) शृण्वन्तु शृण्वन्त्वार्यमिश्रा, चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा, तत्किमर्थमेष काकपदशीर्षमस्तको मम शिर शतखण्ड करोति ? मा तावत्, रे दास्या पुत्र दुष्टवटुक।
(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्त पठति, शकार सक्रोधमुत्थाय ताडयति, विदूषक प्रतीप ताडयति, अन्योऽन्य ताडयत विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति)

१०५ चारुदत्त—(कानमें) ऐसा ऐसा।

विदूषक—कौन ऐसा कहता है?

१०६ चारुदत्त—(सकेतसे शकारको दिखलाता है) यही बेचारा हतु बन यमराज सा मुझपर मुकदमा कर रहा है।

विदूषक—(आपसमे) क्यो नही कहते, कि घर गई हैं।

१०७ चारुदत्त—कहनेपर भी परिस्थितिके दोषके कारण नही माना जा सकता।

१०८ विदूषक—भो, भो आर्यो, जिसने कि पुरकी स्थापनामे विहार, आराम, देवालय, तडाग, कूप और यज्ञयूपोंसे उज्जयिनी नगरीको अल्कृत किया, वह बेचारा धनके लिय ऐसा काय करेगा? (क्रोधके साथ) अरे रे, छिनालके बेटे, राजाके साले सस्थानक, उजड्ड, लोगोपर किये दोषोके भाड, बहुत सोनेसे मण्डित बानर, कह, कह मेरे सामने, जो मेरा मित्र फूली चमेलीकी लताको खीचकर फूल नही चुनता, कि खीचनपर पल्लव टूट जायगी, वह दोना लोकोके विरुद्ध ऐसे अकायको कैसे करेगा? ठहर रे कुटनीके बेटे, ठहर, जब तक कि इसी बीच म इस टेढे डण्डेसे तेरे सिरको सौ खण्ड नही बना देता।

१०९ शकार—(क्रोधके साथ) सुनें, सुनें आर्यो, चारुदत्तके साथ मेरा विवाद या व्यवहार है, सो यह सिर-मस्तकपर चुटियावाला मेरे सिरको क्यो सौ खण्ड बनाता है? मत रे दासीके बेटे, दुष्ट बटुक। (विदूषक डण्डेको उठाकर पहिलेकी तरह कहता है, शकार क्रोध के साथ उठकर मारता है। विदूषक उलटे मारता है। दोनो एक दूसरेको पीटते हैं, विदूषकको काँखसे आभूषण गिर जाते हैं)

११० शकार —(तानि गृहीत्वा, दष्ट्वा ससाध्वस) पश्यन्तु पश्यन्त्वार्या, एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलकारा। अस्यार्थकल्यवतस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च।

(अधिकृता सर्वेऽधोमुखा स्थिता)

१११ चारुदत्त —(जनान्तिकम्)

अयमेवविधे काले दष्टो भूषणविस्तर।
अस्माक भाग्यवैषम्यात्पतित पातयिष्यति ॥३१॥

विदूषक —भो, किमथ भूतार्थो न निवेद्यते?

११२ चारुदत्त —वयस्य!

दुबल नृपतेश्चक्षुर्नैतत्तत्व निरीक्षते।
केवल वदतो दैन्यमश्लाघ्य मरण भवेत् ॥३२॥

११३ अधिकरणिक —कष्ट भो, कष्टम्,

अगारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पते।
ग्रहोऽयमपर पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थित ॥३३॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—(विलोक्य, वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य) अवहिता तावदार्येद सुवर्णभाण्डमवलोकयतु तदेवेद न वेति?

११४ वृद्धा—(अवलोक्य) सदृशमेतद्, न पुनस्तत्।

शकार —आ, वृद्धकुट्टनि, अक्षिभ्या मन्त्रित वाचा मूकितम्।

वृद्धा—हताश, अपेहि।

श्रेष्ठिकायस्थौ—अप्रमत्त कथय, तदेवैतन्न वेति?

११५ वृद्धा—आर्य, शिल्पिकुशलतयावबध्नाति दृष्टिम्, न पुनस्तत्।

अधिकरणिक —भद्रे, अपि जानास्येतान्याभरणानि?

११६ वृद्धा—ननु भणामि, न खलु न खल्वनभिज्ञात। अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत्।

११० शकार—(उन्हें ले देखकर जल्दीमें) देखें, देखें आय, यह उसी बेचारीके आभूषण है, इसीके लिये वह मारी और व्यापादित की गई (सारे अधिकारी मुह नीचा कर लेते है)।

१११ चारुदत्त—(आपसमें)

ऐसे समय हमारे भाग्यकी विषमतासे।

गिरा और देखा गया यह भूषण (मुझे) गिरायेगा ॥३१॥

विदूषक—हे, क्यो असली बात नही बतलाते ?

११२ चारुदत्त—मित्र,

राजाकी आख दुबल होती है, वह वास्तविकताको नही देखती। (और) सिफ दीनता दिखलानेवालेका मरण अश्लाघनीय होता है ॥३२॥

११३ अधिकरणिक—कष्ट भो कष्ट,

मगल (ग्रह) विरुद्ध होने क्षीण वहस्पतिके होने पर,

पासमें यह दूसरा (ग्रह) धूमकेतुकी तरह उग आया ॥३३॥

श्रेष्ठी और कायस्थ—(देखकर वसन्तसेनाकी मासे) ध्यानसे आर्या, इस सोनके आभूषणको देखें, यह वही है या नही ?

११४ वद्धा—(देखकर) समान है, किन्तु वही नही है।

शकार—हा, बढी कुटनी, आखोसे सलाह करती, मुहसे मौन।

वद्धा—हताश, हट परे।

श्रेष्ठी और कायस्थ—ठीकसे कहो, यह वही है या नही।

११५ वृद्धा—आय, शिल्पकारकी चतुरताके कारण आँखको भ्रम होता है पर वह नही है।

अधिकरणिक—भद्रे, क्या इन आभरणोको पहचानती है ?

११६ वृद्धा—कह तो रही हूँ। नही, नही, यह बे-पहिचानके नही है। अथवा शायद शिल्पीने (वैसा) गढा हो।

११७ अधिकरणिक—पश्य श्रेष्ठिन्!

वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नून,
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्ग,
सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम्॥३४॥

११८ श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।
चारुदत्त—न खलु न खलु।
श्रेष्ठिकायस्थौ—तदा कस्य?
चारुदत्त—न खलु न खलु, इहात्र भवत्या दुहितु।

११९ श्रेष्ठिकायस्थौ—कथमेतानि तस्या वियोग गतानि?
चारुदत्त—एव गतानि। आ, इदम्।

१२० श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्त, अत्र सत्य वक्तव्यम्, पश्य पश्य—

सत्येन सुख खलु लभ्यते सत्यालापेन भवति पातकम्।
सत्यमिति द्वे अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय॥३५॥

१२१ चारुदत्त—आभरणान्याभरणानीति न जाने, किंत्व-स्मद्गृहादानीति जाने।
शकार—उद्यान प्रवेश्य प्रथम मारयसि कपटकापटिकतया साप्रत निगूहसि?

१२२ अधिकरणिक—आर्यचारुदत्त, सत्यमभिधीयताम्—

इदानी सुकुमारेऽस्मिन्नि शक कर्कशा कशा।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माक मनोरथै॥३६॥

११७ अधिकरणिक—देखो श्रेष्ठी—
भिन्न भिन्न वस्तुये भी एक समान होती है,
रूपको और कृत्रिम भूषण-गुणको,
देखकर शिल्पी लोग कारीगरीका अनुकरण करते है,
निपुणताके कारण समान दीखते है ॥३४॥

११८ श्रेष्ठी और कायस्थ—आय चारुदत्तके है यह ?
चारुदत्त—नही, नही, (ये) आपकी लडकीके है।

११९ श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे यह उससे अलग हुये ?
चारुदत्त—ऐसे हुये, हा यह।

१२० श्रेष्ठी और कायस्थ—सच कहो, देखो, देखो—
सत्यसे ही सुख मिलता है, सत्यके अपलापसे पातक होता है।
सत्य यह दोनो अक्षर है, सत्यको झूठसे मत छिपाओ ॥३५॥

१२१ चारुदत्त—आभरण, आभरण मैं नही जानता, किन्तु ये हमारे घरसे लाये गये है, यह जानता हूँ।
शकार—उद्यानमे ले जाकर पहले मारता है, फिर कपटकपटीपन दिखलाते अब छिपाता है ?

१२२ अधिकरणिक—आय चारुदत्त, सच कहो—
अब तुम्हारे इस सुकुमार शरीरपर निश्चय,
ककश कोडे हमारे मनोरथोके साथ पडेंगे ॥३६॥

१२३ चारुदत्त —
अपापाना कुले जाते मयि पाप न विद्यते।
यदि सभाव्यते पापमपापेन च कि मया ? ॥३७॥
(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीविते कृत्यम्। (प्रकाशम्) भो , किं बहुना—
मया किल नृशसेन लोकद्वयमजानता।
स्त्रीरत्न च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥३८॥

१२४ शकार —व्यापादिता । अरे, त्वमपि भण, मया व्यापादितेति।
चारुदत्त —त्वयैवोक्तम्।

१२५ शकार —शृणुत शृणुत भट्टारका । एतेन मारिता। एतेनैव सशयश्छिन्न ।
अधिकरणिक —शोधनक, गृह्यतामय चारुदत्त ।

—अक ९

२३. भारवि (५५० ई०)

भारविके नामका उल्लेख ६३४ ई० (शकाब्द ५५६) में उत्कीण ऐहोड (जिला बीजापुर) के शिलालेख में मिलता है। वह कालिदासके बादके महाकवियोंमें बहुत ऊँचा स्थान रखते ह। एक परम्पराके अनुसार यह दक्षिणापथके राजा पुलकेशी द्वितीयके छोटे भाई विष्णुवधनके दरबारी कवि थे । सम्भव ह, दक्षिणापथ के ही रहनेवाले हों । यह दण्डीके

१२३ चारुदत्त—

निष्पाप कुलमें उत्पन्न मुझमे पाप नही है।
यदि पाप सम्भव है, तो मेरे निष्पाप होनेसे क्या?॥३७॥

(अपने आपसे) (अब) मुझे वसन्तसेना के बिना जीवनसे काम नही। (प्रकट) भो, अधिक क्या—

दोनो लोकोका न ख्याल करते मुझ नशसने,
और विशेष कर स्त्रीरत्नको　बाकी यह कहेगा॥३८॥

१२४ शकार—मारा। अरे, तू भी कह, कि मने मारा।

चारुदत्त—तूने ही कह दिया।

शकार—सुनो, सुनो भट्टारको (साहबो), इसने मारा। इससे ही सन्देह दूर हो गया।

१२५ अधिकरणिक—शोधनक, चारुदत्त को पकड लो।

—अक ९

२३ भारवि (५५० ई०)

परदादा दामोदरके मित्र थे, इन्हींकी सहायतासे दामोदर चालुक्यराजा विष्णुवधनके दरबारमें पहुँचे। यद्यपि इनकी कवितामें प्रसादगुण का ह्रास ह, लेकिन उतना नहीं, जितना कि बादके अपभ्रशकालीन कवियोमें उसे देखा जाता ह। भारविकी सिफ एक ही कृति (किराताजुनीय) १८ सर्गोंमें मिलती है।

किरातार्जुनीयम्

(१) गुप्तचराभि हिता प्रवृत्ति —

१ श्रिय कुरूणामधिपस्य पालनी प्रजासु वृत्ति यमयुक्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिंगी विदित समाययौ युधिष्ठिर द्वैतवने वनेचर ॥१॥

२ कृतप्रणामस्य मही महीभुजे जिता सपत्नेन निवेदयिष्यत ।
न विव्यथे तस्य मनो नहि प्रिय प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण ॥२॥

३ द्विषा विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृत ।
स सौष्ठवौदायविशेषशालिनी विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥

४ "क्रियासु युक्तेर्नृप चारचक्षुषो न वचनीया प्रभवोऽनुजीविभि ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हित मनोहारि च दुलभ वच ॥४॥

५ स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिप हितान्न य सशृणुते स किप्रभु ।
सदानुकूलेषु हि कुवते रति नृपेष्वमात्येषु च सर्वसपद ॥५॥

६ विशकमानो भवत पराभव नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिन ।
दुरोदरच्छद्मजिता समीहते नयेन जेतु जगती सुयोधन ।७।

किरातार्जुनीयम्

१ गुप्तचरने युधिष्ठिरसे कहा—

१ कुरुओंके राजाकी राजलक्ष्मीके पालनव्यवहारको जाननेके लिये प्रजामें जिसे नियुक्त किया (गया था), वह ब्रह्मचारी वेषधारी वन-घुमन्तू किरात पता लगाकर द्वैतवनमें (आ) युधिष्ठिरसे मिला ॥१॥

२ प्रणाम करके शत्रुसे जीती पथिवीके बारेमे राजाको निवेदन करते-करते, वह दुखी नही हुआ, हितैषी लोग झूठे प्रियवाक्य कहना नही पसद करते ॥२॥

३ शत्रुआके नाशके लिये काम करनेकी इच्छावाले राजा युधिष्ठिरकी अनुज्ञा पा, एकान्तमे उसने भली, उदार और विशेषयुक्त निश्चित अथवाली वाणीको इस प्रकार कहना शुरू किया ॥३॥

४ "राजन, कायमें नियुक्त अनुजीवियोको चाहिये कि गुप्तचररूपी आखवाले प्रभुओको वञ्चित न करें। अत अच्छा हो या बुरा, मेरे कहे को क्षमा करें, क्योकि हित और मनोहर वचन दुलभ है ॥४॥

५ जो सखा स्वामीको उचित नही कहता वह कैसा सखा ? जो हितकी (बातें) नही सुनता वह कैसा प्रभु ? अनुकूल नृपो और अमात्योपर ही सारी सम्पदायें अनुरक्त होती है ॥५॥

६ सिंहासनासीन भी दुर्योधन वननिवासी आपसे पराजयकी शका करता, जूये से जीते ससारको नीतिसे जीतना चाहता है ॥७॥

७ तथापि जिह्म स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्र गुणसपदा यश ।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसगमाद्वर विरोधोऽपि सम महात्मभि ॥८॥

८ कृतारिषड्वगजयेन मानवीमगम्यरूपा पदवी प्रपित्सुना ।
विभज्य नक्तदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥९॥

९ सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविन समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभि ।
स सतत दशयते गतस्मय कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥१०॥

१० अनेकराजन्यरथाश्वसकुल तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिराद्रता भृश नृपापायनदन्तिना मद ॥१६॥

११ न तेन सज्य क्वचिदुद्यत धनु कृत न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

१२ तदाशु कर्तु त्वयि जिह्ममुद्यत विधीयता तत्र विधेयमुत्तरम् ।
परप्रणीतानि वचासि चिन्वता प्रवृत्तिसारा खलु मादृशा गिर" ॥२५॥

(२) द्रौपदी-सम्मति —

१३ निशम्य सिद्धि द्विषतामपाकृतीस्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीरुदाजहार द्रुपदात्मजा गिर ॥२७॥

७ तो भी वह कुटिल (दुर्योधन) आपको जीतनेकी इच्छासे गुण-सम्पदा युक्त उज्ज्वल यश बढा रहा है। क्योकि वैभवको ऊपर उठाते महात्माओके साथ विरोध भी अनार्योके ससगसे अच्छा है ॥८॥

८ काम-क्रोधादि छ प्रकारके शत्रुओपर जय पा मनु उपदेशित दुलभ नीतिको पानेकी इच्छासे आलस्य छाड वह इसीलिय तत्परतासे रात और दिनको बाटकर नीतिके साथ प्रयत्न कर रहा है ॥९॥

९ सदा निरहकार हो परिहास छोड वह नौकरोके प्रति प्रिय मित्रो सा और मित्राको भाइयो सा मानते आधिपत्य किये बन्धुओको भली प्रकार दिखलाता है ॥१०॥

१० राजाओंके भेंट दिये छतिवनके फूलकी तरह की गन्धवाले गजोके मदसे, अनेक सामन्तो, रथो, घोडोसे भरा उसके दरबारगृहका आँगन अत्यन्त गीला रहता है ॥१६॥

११ उसने कही भी ज्या चढाये धनुषको नही उठाया, मुखको कोपसे कुटिल नही किया। गुण-अनुरागसे राजा लोग उसकी आज्ञाको शिरपर मालाकी तरह धारण करते हैं ॥२१॥

१२ सो तुम्हारे साथ छल करनेमें तत्पर उसके साथ करने लायक प्रतिकार करै। दूसरोकी बातोको ढूढनेवाले मेरे जैसोकी बातें समाचार भर सार रखती है" ॥२५॥

२ द्रौपदीकी सलाह—

१३ तब शत्रुओकी सिद्धि सुनकर तत्सम्बन्धी विकारोको रोकनेमें असमथ द्रौपदी राजाके क्रोध और साहसको उत्तेजित करनेवाली वाणी बोली ॥२७॥

१४ भवादशेषु प्रमदाजनोदित भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तु व्यवसाययन्ति मा निरस्तनारीसमया दुरा-
धय ॥२८॥

१५ "व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न
मायिन ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसवृतागान्निशिता
इवेषव ॥३०॥

१६ गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजा नरा-
धिप ।
नरैस्त्वदन्य क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव
श्रियम् ॥३१॥

१७ परिभ्रमल्लोहितचन्दनोचित पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषित ।
महारथ सत्यधनस्य मानस दुनोति नो कच्चिदय
वृकोदर ॥३४॥

१८ विजित्य य प्राज्यमयच्छदुत्तरान्कुरूनकुप्य वसु वासवोपम ।
स वल्कवासासि तवाधुना हरन्करोति मन्यु न कथ
धनजय ॥३५॥

१९ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विष्वगिवागजौ
गजौ।
कथ त्वमेतौ धृतिसयमौ यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न
बाधितुम् ॥३६॥

२० विहाय शान्ति नृप, धाम तत्पुन प्रसीद सधेहि वधाय
विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि स्पृहा शमेन सिद्धि मुनयो न
भूभृत ॥४२॥

१४ "(यद्यपि) आप जैसाके सामने स्त्रीजनोका कथन आज्ञा देने की तरह तिरस्कारसा (ही) है, तथापि नारीके रीतिभावको हटानेवाली मनकी व्यथाये मुझे कहनेको प्रेरित कर रही ह ॥२८॥

१५ वे मूढबुद्धि पराजित हाते है, जो कि मायावियोके प्रति मायावी नही ह्'त। वसे कवचहीन अगवालोके भीतर तीक्ष्ण वाणोकी तरह शठ लाग घुसकर मारत हैं ॥३०॥

१६ अनुरव साधनावाले कुलाभिमानी तुमसे भिन्न कौन सा राजा (होगा जो) गुणोमे अनुरक्त, पनक मनोरमा लक्ष्मीको अपनी बहू की तरह शत्रुओ द्वारा अपहरण करायगा ॥३१॥

१७ लाल चन्दन (लगाने) के अभ्यासी, रथोपर चलनेवाला (आज) धूल धूसरित, पवतोमे पैदल भटकता यह सत्यवादी **भीमसेन** क्या आपके मनको दुखित नही करता ॥३४॥

१८ इन्द्र-समान जिसने उत्तर-कुरुओको जीतकर श्रेष्ठ धन प्रदान किया। वह **धनञ्जय** आज तुम्हारे वल्कल-वस्त्रोको ले चलते क्या तुम्हें क्रोधयुक्त नही करता ॥३५॥

१९ वन्य गजोकी तरह वनभूमियोमें सोनेसे कठोर देहवाले, चारो ओरसे उलझे केशोवाले इन जुडवो (**नकुल-सहदेव**)को देखते तुम कैसे धैय और सयमको हटानेका उत्साह नही करते ॥३६॥

२० हे नृप, कृपया शान्ति छोड उसी तेजको शत्रुओके वधके लिये फिर अगीकार करो। निस्पह मुनि लोग शत्रुओको हरा शान्तिसे सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नही ॥४२॥

२१ अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्" ॥४४॥
—सर्ग १

(३) हिमालय-वर्णनम्—

२२ अथ जयाय नु मेरुमहीभृता रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं न विलङ्घयितुं नभः ॥१॥
२३ तपनमण्डलदीपितमेकतः सततनैशतमोवृतमन्यतः।
हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः शिवमिवानुगतं गजचर्मणा ॥२॥
२४ भुजगराजसितेन नभःश्रिता कनकराजिविराजितसानुना।
समुदितं निचयेन तडित्वतीं लघयता शरदम्बुदसंहतिम् ॥४॥
२५ मणिमयूखचयांशुकभासुराः सुरवधूपरिभुक्तलतागृहाः।
दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः पुर इवोदितपुष्पवना भुवः ।५।
२६ अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्युतितेजसा ।
उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः ॥६॥
२७ दधतमाकरिभिः करिभिः क्षतैः समवतारसमैरसमैस्तटैः ।
विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदीः ॥७॥
२८ नवविनिद्रजपाकुसुमत्विषां द्युतिमतां निकरेण महाश्मनाम्।
विहितसान्ध्यमयूखमिव क्वचिन्निचितकाञ्चनभित्तिषु सानुषु ॥८॥

२१ यदि पराक्रम छोड चिरकाल तक क्षमाको ही सुखका साधन समझते हो, तो राज-चिन्ह धनुषको छोड जटाधारी हो यहा अग्निमें होम करो" ॥४४॥

—सर्ग १

छन्द—द्रुतविलंबित

३ हिमालय-वर्णन—

२२ तब वह (अर्जुन) मेरुपर्वतके जीतनेके लिये देशोके देखने की प्रबल इच्छासे, आकाश लाघनके लिये मानो ऊपर उठे उन्नत हिमाचल में गया ॥१॥

२३ (जो था) एक भागमे सूर्यमडलसे प्रकाशित, दूसरी जगह रातके अधकारसे निरन्तर आच्छादित, सामने अट्टहाससे अधकार-समूह को नष्ट करने, गज-चर्म पहिने शकरकी तरह ॥२॥

२४ शेषनाग जैसे सफेद, गगनचुम्बी सुवर्णरेखाओंसे शोभित शिखर वाले, बिजली सहित शरदके मेघ-समूहको नीचा दिखाते शिखर समूहोंसे समुन्नत ॥४॥

२५ मणि-किरण-समूहरूपी वस्त्रोंसे प्रकाशमान, देवागनाओ द्वारा सेवित लतागृहोयुक्त, ऊँची शिलाओरूपी पुर-द्वारोवाली उदित, फूले पुष्प युक्त वनोवाली भूमिको नगरसा धारण किये ॥५॥

२६ निरन्तर छोडते जलसे पीली विद्युतके तेजसे युक्त, गर्जनोंसे स्थूल नितम्बोपर लटकते मेघो द्वारा मानो उगे पखोवाले ॥६॥

२७ उच्चजातीय गजो द्वारा क्षत घाटोपर समतल-असमतल तटों द्वारा, पूज्य जलवाली विविध कामनाओके योग्य, फूले कमल-वनोवाली वेगवती नदियोके धारक ॥७॥

२८ प्रकाशमान महार्घ पत्थरोंसे नये फूले अडहुलके पुष्पकी कान्तिवाले, कही पर खचित सुवर्ण-भित्तिवाले सानुओमें सध्याकी किरण बनाये से ॥८॥

२९ पृथुकदम्बकदम्बकराजित ग्रथितमालतमालवनाकुलम् ।
लघुतुषारतुषारजलच्युत धृतसदानसदाननदन्तिनम् ॥९॥
३० ससुरचापमनेकमणिप्रभैरपपयोविशद हिमपाण्डुभि ।
अविचल शिखरैरुपबिभ्रत ध्वनितसूचितमम्बुमुचा
चयम् ॥१२॥
३१ विकचवारिरुह दधत सर सकलहसगण शुचि मानसम् ।
शिवमगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहसगण शुचिमान-
सम् ॥१३॥
३२ विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितैरुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभि ।
दधतमुन्नतसानुसमुद्धता धृतसितव्यजनामिव जाह्न-
वीम् ॥१५॥
३३ रुचिरपल्लवपुष्पलतागृहैरुपलसज्जलजैर्जलराशिभि ।
नयति सततमुत्सुकतामय धृतिमतीरुपकान्तमपि स्त्रिय
॥१९॥
३४ अखिलमिदममुष्य गौरीगुरोस्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये
तुलाम् ।
अधिवसति सदा यदेन जनैरविदितविभवो भवानी-
पति ॥२१॥
३५ कुररीगण कृतरवस्तरव कुसुमानता सकमल कमलम् ।
इह सिन्धवश्च वरणावरणा करिणा मुदे सनलदान-
लदा ॥२५॥
३६ येनापविद्धसलिल स्फुटनागसद्मा,
देवासुरैरमृतमबुनिधिर्ममन्थे ।
व्यावर्तनैरहिपतेरयमाहिताक ,
ख व्यालिखन्निव विभाति स मन्दराद्रि ॥३०॥

२९ गुच्छेवाले स्थूल कदम्बसे शोभित गूथी माला जैसे तमालवनोंसे आकीण, अल्प शीतल हिमजल बरसानेवाले, मद-युक्त सुमुख गजोको धारण किये ॥९॥

३० नाना मणि-प्रभायुक्त हिमश्वेत शिखरो, इद्रधनुष-सहित निजल विशद, निश्चल पर ध्वनि द्वारा सूचित मेघोके समूहको धारण करते ॥१२॥

३१ फूले कमलो और हसो सहित निमल मानस सरको धारण करते ईर्ष्या किये पावतीके साथ कलहयुक्त गणो सहित पवित्र मन वाले शिवको धारण किये ॥१३॥

३२ शिलाकी रोकसे लौट पडे जलो द्वारा विस्तत उडते फुहारपुजो वाले, श्वेत व्यजन सा उन्नत सानुओपर बहती गगाको धारण किये ॥१५॥

३३ यह हिमालय रुचिर पल्लव-पुष्प-लतागहोवाला (अपने) शोभायमान सरोवरो द्वारा, कान्तके समीप धैयवती स्त्रियोको भी निरन्तर उत्सुक करता है ॥१९॥

३४ इस गौरीके पिता (हिमालय) की समानता सारा त्रिभुवन नही कर सकता, यह मै मानता हूँ, क्योकि लोक-अज्ञात-महिमावाले भवानीपति सदा यहा निवास करते है ॥२१॥

३५ यहा कुररियाँ शब्द करती, वृक्ष फूलोंसे झुके, जल कमलयुक्त। वृक्षावृत खस-सहित अग्नि-सतापहारिणी नदिया गजोके आनन्दके लिये है ॥२५॥

३६ दास और असुरोने जिसके द्वारा नाग-निवास अमित जल सागरसे अमृत मथा, उस वासुकि नागके लपेटनेके चिन्हवाला, वही मन्दरगिरि आकाशको फोडता सा दीखता है ॥३०॥

३७ अस्मिन्नगृह्यत पिनाकभृता सलील-
मावद्धवेपथुरधीरविलोचनाया ।
विन्यस्तमगलमहौषधिरीश्वराया –
स्रस्तोरगप्रतिसरेण करेण पाणि ॥३३॥

—सर्ग ५

(४) जलक्रीडा—

३८ अथ स्फुरन्मीनविधूतपकजा विपकतीरस्खलितोर्मिसहति ।
पयोऽवगाढु कलहसनादिनी समाजुहावेव वधू सुरा-
पगा ॥२७॥

३९ प्रशान्तघर्माभिभव शनैर्विवान्विलासिनीभ्य परिमृष्ट-
पकज ।
ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरगमालान्तरगोचरो
ऽनिल ॥२८॥

४० गतै सहावै कलहसविक्रम कलत्रभारै पुलिन नित
म्बिभि ।
मुखै सरोजानि च दीर्घलोचनै सुरस्त्रिय साम्यगुणान्नि-
रासिरे ॥२९॥

४१ विभिन्नपयन्तगमीनपक्तय पुरो विगाढा सखिभिर्मरु-
त्वत ।
कथचिदाप सुरसुन्दरीजनै सभीतिभिस्तत्प्रथम प्रपे-
दिरे ॥३०॥

४२ विगाढमात्रे रमणीभिरम्भसि प्रयत्नसवाहितपीव-
रोरुभि ।
विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरेषु तरग-
सहति ॥३१॥

३७ यहा पिनाकधारी (शिव) ने चकित-नयना,
गौरीके मगल-महौषधि-लगे कापते,
हाथको शिथिल सपके ककणयुक्त,
अपने हाथामें लीला-सहित ग्रहण किया ॥३३॥

—सग ५

४ जल-क्रीडा-वणन—

३८ तब चचल मछलियो द्वारा कपित, कमलोवाली, पकरहित तीरमें गिरती लहरियोवाली कलहसोंसे निनादित गगाने मानो देव-बधुओंको जल क्रीडा के लिए बुलाया ॥२७॥

३९ प्रशान्त धूपकी बाधावाले पकजको मीजते, फहार लिये, तरगमालाओंके मध्यमे स्थित धीरे बहते वायुने विलासिनियोको हस्तावलम्ब दिया ॥२८॥

४० अप्सराओने हाव-भावयुक्त चेष्टाओ द्वारा कलहसोकी लीलाको, नितम्बयुक्त पत्नियोके भारोंसे तटको, दीघलोचनवाले मुखो द्वारा और सरोजोको, समान गुणतासे निरस्त किया ॥२९॥

४१ सामने विभिन्न ओर जानेवाली मीन-पक्तियो वाले जलको, सखियो सहित पहले प्रविष्ट भयभीत सुर-सुन्दरियोने किसी तरह अवगाहन किया ॥३०॥

४२ प्रयत्नसे सचालित स्थूल जघोंवाली रमणियोने अवगाहित जलमें बिखर गई तरग-पक्तिया सारसोको उडाकर तीरपर फैल गईं ॥३१॥

४३ शिलाघनैर्नाकसदामुर स्थलैर्बहृन्निवेशैश्च वधूपयोधरै ।
तटाभिनीतेन विभिन्नवीचिना रुषेव भेजे कलुषत्व-
मम्भसा ॥३२॥

४४ विधूतकेशा परिलोलितस्रज सुरागनाना प्रविलुप्त-
चन्दना ।
अतिप्रसगाद्विहितागसो मुहु प्रकम्पमीयु समया
इवोमय ॥३३॥

४५ विपक्षचित्तोन्मथना नखव्रणास्तिरोहिता विभ्रममण्ड-
नेन ये।
हृतस्य शेषानिव कुकुमस्य तान्विकत्थनीयान्दधुरन्यथा
स्त्रिय ॥३४॥

४६ सरोजपत्रे नु विलीनषट्पदे विलोलदृष्टे स्विदमू विलोचने।
शिरोरुहा स्विन्नतपक्ष्मसततेर्द्विरेफवृन्द नु निशब्द-
निश्चलम् ॥३५॥

४७ अगूढहासस्फुटदन्तकेसर मुख स्विदेतद्विकसन्नु पकजम्।
इति प्रलीना नलिनीवने सखी विदाबभूवु सुचिरेण
योषित ॥३६॥

४८ प्रियेण सग्रथ्य विपक्षसनिधावुपाहिता वक्षसि पीवरस्तने।
स्रज न काचिद्विजहौ जलाविला वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न
वस्तुनि ॥३७॥

४९ असशय न्यस्तमुपान्तरक्तता यदेव रोद्धु रमणीभिरजनम्।
हृतेऽपि तस्मिन्सलिलेन शुक्लता निरास रागो नयनेषु
न श्रियम् ॥३८॥

५० विपत्रलेखा निरलक्तकाधरा निरजनाक्षीरपि बिभ्रती
श्रियम्।
निरीक्ष्य रामा बुबुधे नभश्चरैरलकृत तद्वपुषैव मण्ड-
नम् ॥४०॥

४३ स्वग-वासियोके शिला-तुल्य कठिन वक्षस्थलो, और अतिस्थूल वधुओंके स्तनो द्वारा, तटपर ढकेले गये टूटी लहरोवाले जलने मानो क्रोधसे मलिनता धारण की ॥३२॥

४४ केश उलझाने वाली माला डुलाने, चन्दन मिटाने के अतिप्रसग से, देवागनाओका अपराध किये सी तरगे भय सहित बारबार काप रही थी ॥३३॥

४५ सोतोके चित्तको व्यथित करनेवाले नखक्षतको, सौन्दय-मण्डनको, धुल गये केसरके श्लाघनीय अवशेषोकी तरह स्त्रियोने उलटे धारण किया ॥३४॥

४६ चचलनयनीके नेत्र मानो भ्रमरो से लीन कमलपत्र है, झुके पलको वालीके केश मानो नीरव निश्चल भवरोके झुण्ड हैं ॥३५॥

४७ स्पष्ट हाससे प्रकट दन्तरूपी केसरवाला मुख नही, (बल्कि) फूल कमल है। इस प्रकार कमलिनीवनमें छिपी सखीको स्त्रिया देरतक देखती रही ॥३६॥

४८ किसी ललनाने प्रियकी गूथी, सोतोके स्थूल स्तनवाले वक्षस्थल पर रक्खी, जलसे मलिन, मालाको नही छोडा, क्योकि गुण प्रेममें बसते है, वस्तुमें नही ॥३७॥

४९ रमणियोने जो अजन डाला था, सो निस्सशय आखके दोनो कोरोपर लालिमा लगानेके लिये ही। उसके जलसे धुल जाने पर रागने भी नयनोकी सफेदीको हटाया, न कि शोभाको ॥३८॥

५० खौर बिना, अधरराग-रहित ओठोवाली, अजनहीन आखोवाली सोहती, ललनाओको देखकर सुरोने उनके शरीरोंसे ही आभूषण को अलकृत जाना ॥४०॥

५१ शुभानना साम्बुरुहेषु भीरवो विलोलहाराश्चलफेन-
पक्तिषु।
नितान्तगौर्यो हृतकुकुमेष्वश न लेभिरे ता परभाग-
मूर्मिषु ॥४२॥

५२ हृदाम्भसि व्यस्तवधूकराहते रव मदगध्वनिधीरमुज्झति।
मुहु स्तनैस्तालसम समाददे मनोरम नत्यमिव प्रवेपितम्
॥४३॥

५३ श्रिया हसद्भि कमलानि सस्मितैरलकृताम्बु प्रतिमागतै-
मुखै ।
कृतानुकूल्या सुरराजयोषिता प्रसादसाफल्यमवाप जाह्नवी
॥४४॥

५४ परिस्फुरन्मीनविघट्टितोरव सुरागनास्त्रासविलोलदृष्टय
उपाययु कम्पितपाणिपल्लवा सखीजनस्यापि विलोकनी-
यताम् ॥४५॥

५५ भयादिवाश्लिष्य झषाहतेऽम्भसि प्रिय मुदा नन्दयतिस्म
मानिनी।
अकृत्रिमप्रेमरसाहितैमनो हरन्ति रामा कृतकैरपीहितै
॥४६॥

५६ तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपा विगाहादलकै प्रसा-
रिभि ।
ययुर्वधूना वदनानि तुल्यता द्विरेफवृन्दान्तरितै सरोरुहै
॥४७॥

५७ करौ धुनाना नव पल्लवाकृती पयस्यगाधे किल जातसभ्रमा।
सखीषु निर्वाच्यमधाष्ट्र्यदूषित प्रियागसश्लेषमवाप
मानिनी ॥४८॥

५१ सुमुखी चचल-हारवाली अत्यत गोरी भीरु स्त्रियो ने चचल फन पक्तियावाली, क्रमयुक्त फूल बहाती लहरो मे तप्ति नही प्राप्त की। ।।४२।।

५२ बहुआ के फैलाये हाथो द्वारा ताडित सरोवर के जल मे मदग सी गभीर ध्वनि छोडने पर क्षण भर स्तनो ने ताल के साथ मनोरम नृत्यकी तरह कपन शुरू किया ।।४३।।

५३ अपनी शोभा सहित मुस्कुराहट से कमलो पर हसती, प्रतिबिंबित मुखो द्वारा शोभित जलवाली, अनुकूल बनाई गगा, देवराज की स्त्रिया की प्रसन्नता को पान में सफल हुई ।।४४।।

५४ चारो ओर डोलती मछलिया से घर्षित जघोवाली, भय से चचल नेत्रोवाली, कापते पाणिपल्लवोवाली, देवागनाये अपनी सखिया क लिये भी दशनीय हो गइ ।।४५।।

५५ मछली द्वारा ताडित पानी मे भयभीत मानिनी, मद से प्रिय को आलिंगन कर आनदित करती थी, ललनाये अकृत्रिम प्रेमरस युक्त कृत्रिम चेष्टाओ से भी मन हर लेती है ।।४६।।

५६ जल के अवगाहन से अत्यत अस्त-व्यस्त बिखरी-फैली अलको से ढके छोरवाले, वधुओ के मुख, मधो मे छिपे कमलो से मालूम होते थे ।।४७।।

५७ अगाध जल में भयभीत नवपल्लव समान दोनो हाथ कपाती मानिनी ने सखियो के बीच कथनीय धृष्टता से अदूषित प्रिय का अग-आलिंगन प्राप्त किया ।।४८।।

५८ प्रियै सलील करवारिवारित प्रवृद्धनि श्वासविकम्पित-
स्तन ।
सविभ्रमाधूतकराग्रपल्लवो यथाथतामाप विलासिनीजन
॥४९॥

५९ उदस्य धैर्यं दयितेन सादर प्रसादितायाः करवारिवारितम् ।
मुख निमीलन्नयन नतभ्रुव श्रिय सपत्नीवदनादिवाददे
॥५०॥

६० निरजने साधिविलोलिक दृशावयावक वेपथुरोष्ठपल्लवम् ।
नतभ्रुवो मण्डयति स्म विग्रहे बलिक्रिया चातिलक तदा-
स्पदम् ॥५२॥

—सग ८

(५) चन्द्रिका—

६१ रजिता नु विविधास्तरुशैला नामित नु गगन स्थगित नु ।
पूरित नु विषमेषुधरित्री सहृता नु ककुभस्तिमिरेण ॥१५॥

६२ रात्रिरागमलिनानि विकास पकजानि रहयन्ति विहाय ।
स्पष्टतारकमियाय नभ श्रीर्वस्तुमिच्छति निरापदि सर्व
॥१६॥

६३ व्यानशे शशधरेण विमुक्तकेतकीकुसुमकेसरपाण्डु ।
चूर्णमुष्टिरिव लम्भितकान्तिर्वासवस्य दिशमशुसमूह ।१७।

६४ उज्झती शुचमिवाशु तमिस्रामन्तिक व्रजति तारकराजे ।
दिक्प्रसादगुणमण्डनमूहे रश्मिहासविशद मुखमैन्द्री ॥१८॥

६५ नीलनीरजनिभे हिमगौर शैलरुद्धवपुष सितरश्मे ।
खे रराज निपतत्करजाल वारिधे पयसि गागमिवाम्भ
॥१९॥

५८ लीला से प्रिया के हाथ के जल द्वारा रोकी, बराबर सास लेने से कपित स्तनोवाली, सुदरता से हिलन करपल्लवयुक्त विलासिनियो ने यथायता प्राप्त की ।।४६।।

५६ प्रिय ने धैय को हटा आदर-सहित प्रसन्न की हुई झुकी भौहोवाली (प्रिया) के अजलि-जल से निवारित मुदे नयनवाल मुख को मानो सौत के मुह से शाभा को ले लिया ।।५०।।

६० अजन-रहित लोचन मे तिरछी नजर सोहती थी, बिना अधरराग के अधरपल्लव को कपन सोहाता था, तिलक-रहित उसके ललाट को रेखाकन मडित करता था ।।५२।।

—सग ८

५ चाँदनी-रात—

६१ अधकारने नाना वृक्षो और पवतोको अपने रगसे रग दिया, गगनको ढककर मानो झुका दिया। पथ्वी का ऊचे नीचे स्थानोमे भर दिया, दिशाओको माना लुप्त कर दिया ।।१५।।

६२ रात्रिके रगसे मुरझाये पकज खिलना छोडकर रह गये। आकाश स्पष्ट तारो से युक्त हुआ। सभी निरापद स्थानमें रहना चाहते है ।।१६।।

६३ चन्द्र द्वारा फेका केवडे के फूलके केसर सा श्वेत किरण-समूह मानो चूणमुष्टिसा पूव दिशा मे व्याप्त हुआ ।।१७।।

६४ वह पूव दिशा तारापतिके पास जाती, अधकारको विरह-शोकको तरह जल्दी छोडती, प्रसन्नता गुणरूपी मुडनसे युक्त, किरणोके हाससे विशद मुख को धारण करती थी ।।१८।।

६५ शैल (उदयाचल) में छिपे बिबवाले चन्द्रकी हिम-श्वेत चादनी नीलकमलसे आकाशमें फैलती, समुद्रके जलमें गगाके पानीके मिलनेकी तरह शोभा दे रही थी ।।१९।।

६६ द्या निरुन्धदतिनीलघनाभ ध्वान्तमुद्यतकरेण पुरस्तात् ।
क्षिप्यमाणमसितेतरभासा शभुनेव करिचर्म चकासे ॥२०॥
६७ अन्तिकान्तिकगतेन्दुविसृष्टे जिह्मता जहति दीधितिजाले ।
नि सतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्वसन्निव रराज दिगन्त ।२१
६८ दीपयन्नथ नभ किरणौघै कुकुमारुणपयोधरगौर ।
हेमकुम्भ इव पूर्वपयोधेरुन्ममज्ज शनकैस्तुहिनाशु ॥२३॥
६९ उद्गतेन्दुमवभिन्नतमिस्रा पश्यति स्म रजनीमवितप्त ।
व्यशुकस्फुटमुखीमतिजिह्मा व्रीडया नववधूमिव लोक ॥२४॥
७० न प्रसादमुचित गमिता द्यौर्नोद्धृत तिमिरमद्रिवनेभ्य ।
दिङ्मुखेषु च धाम विकीर्ण मूषितैव रजनीहिमभासा ॥२५॥
७१ मानिनीजनविलोचनपातानुष्णवाष्पकलुषान्प्रतिगृह्णन् ।
मन्दमन्दमुदित प्रययौ ख भीतभीत इव शीतमयूख ॥२६॥
७२ प्रेरित शशधरेण करौघ सहतान्यपि नुनोद तमासि ।
क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्न काननान्यविरलोच्च-
तरूणि ॥२८॥
७३ आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन ।
सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दु खिते मनसि सवमसह्यम् ॥३०॥
७४ गन्धमुद्धतरज कणवाही विक्षिपन्विकसता कुमुदानाम् ।
आदुधाव परिलीनविहगा यामिनीमरुदपा
वनराजी ॥३१॥
—सर्ग ९

(६) युधिष्ठिरोक्ति —

७५ स लेशमुल्लघितशात्रवेगित कृती गिरा विस्तरतत्त्वसग्रह ।
अय प्रमाणीकृतकालसाधन प्रशान्तसरम्भ इवाददे
वच ॥२॥

६६ आकाशको आच्छादित करते अतिनील घन जैसे अधकार, च द्रमाक उगत किरणो द्वारा, प्राचीमे फेका जाता, शकरके द्वारा फेके गज चम सा प्रतीत होता था ।।२०।।

६७ अत्यन्त समीप पहुचे च द्रमा द्वारा छोडे किरणोके सकोच छोडने पर अधकारके भार के हटने से निकली दिशायें सास लेती सी सोहती थी ।।२१।।

६८ तब किरणो से आकाशको प्रकाशित करते केसरसे अरुण पयोधरयुक्त गौरवण हिमाशु, पूवसागरसे मानो सुवण-कलशसा धीरे-धीरे ऊपर उठा ।।२३।।

६९ च द्रमावाली, नष्ट-अधकारवाली रजनीको, लोग अशुक रहित खुले मुखवाली, लज्जासे अति सकुचाती नववधूकी तरह अतृप्त हो देख रहे थे ।।२४।।

७० च द्रमा द्वारा आकाशको उचित स्वच्छता नही प्राप्त हुई पवतो-वनोमे तिमिर नही हटा और दिशाओमे तेज फैला, (जिससे) रजनी च द्र द्वारा अलकृत ही हुई ।।२५।।

७१ उष्ण अश्रुसे मलिन मानिनियोके आसुओको स्वीकार करते, भयभीत सा हिमाशु धीरे-धीरे उगकर आकाशमे प्राप्त हुआ ।।२६।।

७२ चन्द्र द्वारा प्रेरित किरणोने सघन अधकारको भी, म दर से मथित क्षीरसागर की तरह ऊचे वक्षोवाले सघन वनोसे दूर किया ।।२८।।

७३ आतपमें वधूके साथ सतुष्ट रात्रि विरही चकवा पक्षीने हिमाशुकी किरणे नही सहन की—दुखित मनमे सब असह्य लगता है ।।३०।।

७४ रजकण वाहक फूलते कुमुदोक गध फेकते तो यामिनीके वायुने सोये पक्षियोवाली बनालियोको थोडा कपित किया ।।३१।।

—सग ९

६ युधिष्ठिरका गम्भीर उद्गार—

७५ शत्रुकी सकल प्रकट चालोको जानते वाणीके विस्तारपूवक तत्त्व सग्रही अथसक्षेप, कालको प्रधान साधन माननेवाले प्रशातचेष्टा-युक्त युधिष्ठिर बोले ।।२।।

७६ विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवतते नाकृतपुण्यकमणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥३॥

७७ भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥४॥

७८ स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसपद विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चित ।
प्रागल्भमात्मा धुरि धुय, वाग्मिना वनेचरेणापि सताधिरोपित ॥६॥

७९ विरोधि सिद्धेरिति कर्तुमुद्यत स वारित किं भवता न भूपति ।
हिते नियोज्य खलु भूतिमिच्छता सहाथनाशेन नृपोऽनुजीविना ॥८॥

८० यदि प्रमाणीकृतमायचेष्टित किमित्यदोषेण तिरस्कृता वयम्।
अयातपूर्वा परिवादगोचर सता हि वाणी गुणमेव भाषते ॥११॥

८१ वनाश्रया कस्य मृगा परिग्रहा शृणोति यस्तान्प्रसभेन तस्य ते।
प्रहीयतामत्र नृपेण मानिता न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रिय ॥१३॥

८२ न वर्त्म कस्मैचिदपि प्रदीयतामिति व्रत मे विहित महर्षिणा।
जिघासुरस्मान्निहतो मया मृगो व्रजाभिरक्षा हि सतामलक्रिया ॥१४॥

७६ स्पष्ट-वर्णाभरणा, कर्णसुखा, शत्रुओंके हृदयोको भी प्रसन्न करनेवाली स्पष्ट गम्भीर पदोवाली वाणी न-पुण्यकर्माकी नही होती ।।३।।

७७ व विद्वानोंक बीच अति सभ्य है, जो मनके भीतरके अथको वाणीमे प्रवेश करात ह। उनमे भी निपुण कुछ (लोग) गम्भीर अथको (वाणीसे) प्रकाशित करते है ।।४।।

७८ हे धुरधर, कोई भारी अथरूपी सपत्ति को प्रशसते है, दूसरे विद्वान् वचन की शुद्धताको, तुमने वनचर होते भी अपनेको वाग्मियोमे अग्रणी साबित किया ।।६।।

७९ 'सिद्धिका विरोधी है' यह सोच कम करनेके लिये उद्यत राजाको आपने क्यो नही रोका ? अभिवद्धि-इच्छुक अथ-नाश में सहभागी नौकरको चाहिये कि राजाको हितमें नियुक्त करे ।।८।।

८० यदि श्रेष्ठोके चरित्रको माना, तो हम निर्दोष तिरस्कृत हुये, इससे क्या ? निन्दामें कभी न प्रवृत्त सत्पुरुषोकी वाणी गुणको ही कहती है ।।११।।

८१ वनमें रहनेवाले व मृग किसकी प्रजा है, जो कि उन्हे बलपूवक (पुरुष) मारता है। नृपको अभिमान छोडना चाहिये, जिसे ममता नही है, (उसकी ही) लक्ष्मिया होती है ।।१३।।

८२ "किसीको मौका नही दो" यह व्रत महर्षि (व्यास) ने मेरे लिये विहित किया। इसी कारण हिंस्र मगको मैंने मारा, व्रतकी रक्षा करना सत्पुरुषो की शोभा है ।।१४।।

८३ यदात्थ काम भवता स याच्यतामिति क्षभ नैतदनल्पचेत-
साम् ।
कथ प्रसह्याहरणैषिणा प्रिया परावनत्या मलिनीकृता
श्रिय ॥१८॥

८४ वय क्व वर्णाश्रमरक्षणोचिता क्व जातिहीना मगजीवि-
तच्छिद ।
सहापकृष्टैमहता न सगत भवन्ति गोमायुसखा न
दन्तिन ॥२२॥
—सग १४

२४ विशाखदत्त (५५० ई०)

सस्कृतके ऐतिहासिक नाटकोका एक अति सु दर नमूना "मुद्राराक्षस" ह, जिसके रचयिता विशाखदत्त ह। विशाखदत्त सम्भवत स्वय सामन्त थे, और प्राकृत कालके अ त समयमें उत्तरी भारतके किसी स्थानमें पदा हुए थे। इनके कालके बारेमें मतभेद है। कुछ विद्वान इ हें कालिदास और च द्र गुप्तका समकालीन मानते ह, दूसरे नवीं शताब्दीमें खींचते ह। "मुद्राराक्षस" की प्रस्तावनाके एक श्लोकमें जिस च द्रग्रहणका उल्लेख ह, उसे याकोबीने

मुद्राराक्षसम

(१) कौमुदीमहोत्सवनिषेध —

(तत प्रविशति कचुकी)

१ कचुकी—

रूपादीन् विषयान् निरूप्य करणै यैरात्मलाभस्त्वया,
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हता स्वार्थावबोधक्रिया ।
अगानि प्रसभ त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि मे।
न्यस्त मूर्ध्नि पद तवैव जरया, तृष्णे ! मुधा माद्यसि[1] ॥१॥

---

१ शार्दूलविक्रीडितम।

८३ "उस राजा से यथच्छ आप मागे' यह जा कहा वह बुद्धिमानोक लिये उचित नही। बलात् हरनेक इच्छुकोको दूसरक सामने थुकनस मलिन हुई लक्ष्मिया कैसे प्रिय हो सकती है।।१८।।

८४ वर्ण-आश्रमके रक्षक कहा हम राजा और कहा मृगोको मारनवाले नीच व्याधे। निकृष्टोक साथ उत्कृष्टोकी सगति नही हो सकती, गज सियाराक मित्र नही होते।।२२।।

—मग १४

२४ विशाखदत्त (५५० ई०)

२ दिसम्बर ८६० ई० का माना ह, और इसके कारण उन्हें नवीं सदीका ठहराया ह।

"मुद्राराक्षस" के अतिरिक्त "देवीचद्रगुप्त" नामक एक दूसरे नाटककी भी रचना इन्होने की थी, जिसका खण्डित अश मिलता है, और जिसमें समुद्रगुप्तके बाद रामगुप्तको हटाकर चद्रगुप्तके गद्दीपर बठनेका उल्लेख ह।

मुद्राराक्षस

१ कौमुदी महोत्सवका निषेध—

(कचुकी प्रवश करता है)

१ कचुकी—

रूप आदि विषयोको जिन इद्रियोसे निरूपण करके तुमने आत्मलाभ किया, उन नेत्र आदिमें भी अपने अथके जाननेकी शक्ति नष्ट हो गई। आज्ञा-वशवर्ती मेरे अग सहसा पटुताको छोड रहे हैं, हे तष्णे, जराने तेरे सिरपर पैर रख दिया, तू व्यर्थ बढ रही है।।१।।

२ (परिक्रम्य आकाशे) भो भो सुगाङ्गप्रासादाधिकृता पुरुषा, सुगृहीतनामा देव चन्द्रगुप्तो व समाज्ञापयति। यथा—"प्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवरमणीयतर कुसुमपुर अवलोकयितु इच्छामि, तत् सस्क्रियन्ताम् अस्मद्दर्शनयोग्या सुगाङ्गप्रासादस्य उपरि भूमय" इति। तत् कि चिरयन्ति भवन्त ? (आकाशे आकर्ण्य) कि ब्रूथ "आय ! किम् अविदित एवाय देवस्य चन्द्रगुप्तस्य कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेध" इति ? आ दैवोपहता, किमनेन व प्राणहरेण कथोद्घातेन ? शीघ्र इदानीम,—

आलिगन्तु गहीतधूपसुरभीन् स्तम्भान् पिनद्धस्रज,
सम्पूर्णेन्दुमयूखसहतिरुचा सच्चामराणा श्रिय ।
सिंहाङ्कासनधारणाच्च सुचिर सजातमूर्च्छामिव,
क्षिप्र चन्दनवारिणा सकुसुम सेकोऽनुगृह्णातु गाम् ॥२॥[1]

३ (आकाशे) कि कथयन्ति भवन्त ? "एते त्वरामहे" इति ? भद्रा, त्वरध्वम्, अयमागत एव देव चन्द्रगुप्त । य एष —

सुविश्रब्धैरगै पथिषु विषमेष्वप्यचलता,
चिर धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो याऽस्य गुरुणा।
धुर तामेवोच्चैर्नववयसि वोढु व्यवसितो,
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च, दु ख वहति च ॥३॥[2]

(नेपथ्ये)। इत इतो देव ।

(तत प्रविशति राजा प्रतीहारी च)

४ राजा—(स्वगतम्) राज्य हि नाम राजधर्मानुवर्त्तिपरतन्त्रस्य भूपते महदप्रीतिस्थानम्। यत —

परार्थानुष्ठाने जडयति नृप स्वार्थपरता,
परित्यक्तान्यार्थो नियतमयथार्थ क्षितिपति ।
परार्थश्चेत् स्वार्थादभिमततरो, हन्त परवान्,
परायत्त प्रीतै कथमिव रस वेत्तु पुरुष ॥४॥

१ हरिणी। २ शिखरिणी।

२ (परिक्रमा कर आकाशकी ओर) हे हे सुगाग महलक अफसर पुरुषो, सुगहीननाम महाराज **चन्द्रगुप्त** तुम्हें आज्ञा देते हैं, कि 'हो रहे इस कोमुदी महोत्सवमें मैं **पटना**को अधिक रमणीय देखना चाहता हूँ, सो **सुगाग प्रासाद**की ऊपरवाली मंजिलों को हमारे देखने लायक ठीकठीक करो।' सो आप क्या देर कर रहे हैं? (आकाशकी ओर सुनकर) क्या कहते हो—'अरे क्या यह नहीं मालूम है कि महाराज चन्द्रगुप्तके **कौमुदी-महोत्सव**का निषेध हो गया है।' आह भाग्यके मारे, तुम्हारे इस प्राणहारक बात कहनेका क्या मतलब? जल्दी, अब—धूप सुगंध लिये माला बंध स्तम्भोंको आलिंगन पूर्ण-चन्द्रकी कान्तिवाले अच्छे चंवरोंकी शोभायें करें। सिंहासनके धारणसे बहुत चिरसे मानो मूर्छित सी पृथिवीको जल्दी कुसुम-सहित चन्दन जलका अभिषेक अनुगृहीत करें ॥२॥

३ (आकाशकी ओर) आप क्या कह रहे हैं—'यह हम जल्दी कर रहे हैं?" भद्रजनो, जल्दी करो, यह महाराज चन्द्रगुप्त आ ही गये। जो कि यह—

विषम मार्गों में भी सुविश्वस्त अंगोंसे न विचलित होते, इसके पिताने पृथिवीके भारी जूयेको चिरकाल तक वहन किया, उसी बड़े जूयेको जवानीमें उठानेके लिये उद्यत, मनस्वी (चन्द्रगुप्त) विनम्र होने से न खिन्न होता है, और न दुःखी ॥३॥

(पर्देमें) इधर-इधर महाराज (राजा और अंगरक्षक प्रवेश करते हैं।)

४ राजा—(अपने आपसे) राजधर्मके अनुवर्तनमें परवश भूपतिके लिये राज्य तो सचमुच बड़ी अप्रिय वस्तु है। क्योंकि—

पराये अर्थके करनेमें स्वार्थपरता राजाको निश्चेष्ट करती है दूसरे अर्थोंको छोड़ वह निश्चय ही गलत पृथिवीपति है। अपने स्वार्थसे पराये यदि अधिक पसन्द है, तो अहो परवश, पराधीन वह प्रीति-रसको कैसे जान सकता है ॥४॥

५ अपि च। दुराराध्या हि राजलक्ष्मी आत्मवद्भि अपि राजभि । कुत —

तीक्ष्णादुद्विजते, मृदो परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते,
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिक बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो।
श्रीलब्धप्रसरेव वैशवनिता दु खोपचर्या भशम् ॥५॥[1]

६ अन्यच्च। कृतककलह कृत्वा, स्वतन्त्रेण त्वया कञ्चित् काल व्यवहर्त्तव्यमित्यार्योपदेश । स च कथमपि मया पातकम् इवाभ्युपगत । अथवा शश्वद् आर्योपदेशसस्क्रियमाणमतय सदा एव अस्वतन्त्रा वयम्। कुत ?—

इह हि रचयन् साध्वी शिष्य क्रिया न निवार्यते'
त्यजति तु यदा मार्ग मोहात् तदा गुरुरकुश
विनयरुचयस्तस्मात् सन्त सदैव निरकुशा,
परतरमत स्वातन्त्र्येभ्यो वय हि पराङ्मुखा ॥६॥[2]

(प्रकाशम्) आय वैहीनरे, सुगागप्रसादमार्ग आदेशय।

कचुकी—इत इतो देव ।

७ राजा—(परिक्रामति)।

कचुकी—(परिक्रम्य) अय सुगागप्रासाद, शनै आरोढुमर्हति आय ।

८ राजा—(नाट्येन आरुह्य दिशोऽवलोक्य) अहो, शरत्समय-सम्भृतशोभाविभूतीना दिशा' अतिरमणीयता । कुत ?—

शनै शान्ता भूता सितजलधरच्छेदपुलिना,
समन्तादाकीर्णा कलविरुचिभि सारसकुलै ।
चिता' चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुद,
नभस्त स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिश [3]॥७॥

---

१ स्रग्धरा। २ वसन्ततिलका। ३ शिखरिणी।

५ और भी, सयमी राजाओ के लिय राजलक्ष्मीका सेवन दुष्कर है। क्याकि (वह) उग्र पुरुप से उद्विग्न होती है, अपमानक डरसे कोमल के पास नही ठहरती, मूर्खोसे द्वेष करती, अत्यन्त विद्वानाकी भी प्रमिका नही हाती। शूरोसे भी अधिक डरती है बिल्कुल डरपोकोसे अहो उपहास करता है, हाथ आई वश्या स्त्री सी लक्ष्मी का सेवन बहुत दुष्कर है ॥५॥

६ और भी, बनावटी कलह करक कुछ काल तक स्वतन्त्र व्यवहार करना यह आय **चाणक्य** का उपदश है। आर उसे जसे-कैसे भी मैंन पापकी तरह स्वीकार किया। अथवा आयके उपदेशका अनुकरण करनेकी मतिवाल हम सदा ही परतन्त्र हैं, क्याकि—
इस दुनिया मे अच्छा काम करन शिष्य को रोका नही जा सकता जब मोहसे वह मागका छोडता है, तब गुरु अकुश (बनता) है। इसलिय विनयमे रुचिवाल सत सदा ही निरकुश है। अत हम स्वनत्रता से बहुत ही दूर हैं ॥६॥
(प्रकट) आय **वैहीनरि**, **सुगाग**-प्रासादका माग बतलाइय।
कचुकी—इधर-इधर महाराज।

७ राजा—(परिक्रमा करता है)
कचुकी—(परिक्रमा करके) यह सुगाग-प्रासाद है, आय धीरसे चढे।

८ राजा—(अभिनयपूवक चढकर, चारो ओर देखकर) अहो! शरत्काल द्वारा प्रदत्त शोभा-सपत्तिवाली दिशाओकी अतिरमणीयता। क्योकि—
सफेद मधखडोक तटवाली, चारो ओर मधुर शब्दवाले सारसोसे आकीण, रातमें विचित्र आकारवाले फूल ताराखपी कमलोसे सचित लम्बी नदियो सी आकाशसे दसो दिशायें बह रही हैं ॥७॥

९ अपि च—

अपामुद्वृत्ताना निजमुपदिशन्त्या स्थितिपद,
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले।
मयूराणामुग्र शरविषमिव हरन्त्या मदमहो,
कृत कृत्स्नस्याय विनय इव लोकस्य शरदा ॥८॥

१० अपि च—

भर्त्तुस्तथा कलुषिता बहुवल्लभस्य,
मार्गे कथचिदवताय तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती,
गगा शरन्नयति सिन्धुपति प्रसन्नाम्[2]॥९॥

(समन्तात् नाट्येन अवलोक्य) अये, कथ अप्रवृत्त-कौमुदीमहोत्सव कुसुमपुर पश्यामि? आय वैहीनरे, अथ त्वया अस्मद्वचनाद् आघोषित कुसुमपुरे कोमुदीमहोत्सव?

कचुकी—देव, अथ किम्। आघोषितो देवस्य आज्ञया कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सव।

राजा—आय, तदेव कि न परिगहीत अस्मद्वचन पौर-जनेन?

११ कचुकी—(कणौ पिधाय) देव, शान्त पाप, शान्त पाप, पथिव्या अस्खलितपूव देवस्य शासन, कथ पौरेषु स्खलितु-मर्हति?

१२ राजा—आर्य वैहीनरे, तत् कथ अप्रवृत्तकौमुदीमहो-त्सव अधुनाऽपि कुसुमपुर पश्यामि? पश्य,—

धूर्त्तैरन्वीयमाना स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्य्यो,
नालकुर्वन्ति रथ्या पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दै प्रयातै।
अन्योन्य स्पर्द्धमाना न च गृहविभवै स्वामिनो मुक्तशका,
साक स्त्रीभिभजन्ते विधिमभिलषित पावणपौरमुख्या[3]।१०।

---

१ शिखरिणी। २ प्रहर्षिणी। ३ शार्दूल विक्रीडितम्।

६ और भी—

भवरान जलाका रपनी मर्यादाका उपदेश करती, उदार फल ह्रानेपर धानाके झुकनको धारती, मोराके उग्र शर विष जैसे मदका हरण करता, अहा शरदने इस सारे लोकको विनय (युक्त) सा कर दिया ॥८॥

१० आर भी—

बहु पत्नावाल स्वामी की जसी कलुषित माग पर किसी तरह क्षीण होना रत्किी कथामे सवथा चतुर दूतीसी, शरद स्वच्छ गगाको सागरक पास न जा रहा हे ॥९॥

(चारा आर अभिनय क साथ दखकर) अये, पटनाको कौमुदी महोत्सव-रहित दख रहा हूँ ? आय वैहीनरि, क्या हमारे वचनसे कुसुमपुरमे तुमने **कौमुदी-महोत्सव**की घापणा की ?

१ कचुकी—(दानो कानाको ढाककर) महाराज, शान्त पाप, शान्त पाप (घार अनथ), पृथिवीपर महाराजका शासन कभी बाधित नहीं हुआ, वह कैसे नागरिकामे बाधित हो सकता है ?

२ राजा—आय **वैहीनरि,** तो अब भी **कुसुमपुर**को कौमुदी-महोत्सवके, बिना क्या दख रहा हूँ ? देखा—

धूर्ता द्वारा स्पष्ट कथा-कोविदो द्वारा लिवाई जाती वेश्याये स्थूल नितम्बक बोझस मन्द गतिक साथ सडकोको अलकृत नही कर रही है। नागरिकोंके मुख्य गृह विभवमे एक-दूसरेसे होड करते बेपर्वाह स्वामी (अपनी) स्त्रियोके साथ पौणमासी पवकी इच्छित विधिका सेवन नही कर रहे है ॥१०॥

१३ कचुकी—देव, एवमेतत्।
राजा—किमेतत् ?
कचुकी—देव, अत इदम्—

१४ राजा—आर्य, स्फुटमभिधीयताम।
कचुकी—देव, प्रतिषिद्ध कौमुदीमहोत्सव ।
राजा—(सक्रोधम्)। आ केन ?

१५ कचुकी—न अत पर अस्माभिर्देवो विज्ञापयितु शक्यते।
राजा—न खलु आर्येण चाणक्येन अपहृत प्रेक्षकाणा अतिशयरमणीय चक्षुषो विषय ?

१६ कचुकी—देव, कोऽन्यो जीवितुकामो देवस्य शासन उल्लघयिष्यिति ?

राजा—शोणोत्तरे, उपवेष्टु इच्छामि ।

१७ प्रतीहारी—देव, एतत् सिंहासन, उपविशतु देव ।

राजा—(नाट्येन उपविश्य) आय वैहीनरे, आयचाणक्य द्रष्टु इच्छामि ।

कचुकी—यद् आज्ञापयति देव (इति निष्क्रान्त)
(तत प्रविशति आसनस्थ स्वभवनगत कोपानुविद्ध
चिन्ता नाटयन् चाणक्य)

(२) चाणक्य-प्रकृति —

१८ चाणक्य—(आत्मगत) कथ स्पद्धते मया सह दुरात्मा राक्षसहतक ? कुत ?—

कृतागा कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगरात्,
यथा नन्द हत्वा नृपतिमकरोत् मौयवृषलम् ।
तथाऽह मौर्येन्दो श्रियमपहरामीति कृतधी,
प्रभाव मद्‌बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसित ॥११॥

१३ कचुकी—महाराज, यह ऐमा ही है।
राजा—य: क्या बान हे ?
कचुकी—महाराज इसलिय यह—
राजा—आय
१४ राजा—साफ कहिये।
कचुकी—महाराज कोमुदा महात्सवका निषध कर दिया है।
राजा—(क्राव पूवक) आह किमन ?
१५ कचुकी—इमम आग हम महाराजक सामन अज नही कर सकत।
राजा—आय **चाणक्य** ने दशकोकी आखोको अति रमणीय दश्यसे वचित नही किया ?
१६ कचुकी—महाराज जीनका इच्छावाला दूसरा कौन महाराजके शासन का उलघन करगा ?
राजा—श्राणात्तरा बठना चाहता हूँ।
१७ प्रनाहारो—यह मिहामन हे, महागज बैठे।
राजा—(अभिनयक माथ बैठकर) आय वैहीनरि आय **चाणक्यको** देखना चाहता हूँ।
कचुकी—जा आज्ञा दत ह महाराज (यह कह चला गया)।
(काप सहित, चिताका अभिनय करन अपने भवनमे आसनपर स्थित चाणक्य प्रवश करते हैं)

२ चाणक्यका स्वभाव—

१८ चाणक्य—(अपने आपमे) दुष्टात्मा राक्षस अभागा मेरे साथ क्या स्पर्धा करता है ? क्योकि—
सापकी तरह नगरसे निकलकर **कौटिल्य**ने, जैसे पापी **नन्द**को मार-कर **मौर्य** शूद्रका राजा बनाया। वसे मै भी मौय चन्द्रकी लक्ष्मीको हरूगा, यह सोचकर वह मेरी बुद्धिके प्रभावसे बढनेकी इच्छासे प्रयत्न-शील है ॥११॥

१९ (प्रत्यक्षवद् लक्ष्य बद्ध्वा) राक्षस, राक्षस, विर-
म्यता अस्माद् दुर्व्यवसितात्।

उत्सिक्त कुसचिवदृष्टराज्यतन्त्रो,
नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एष ।
चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवल ते,
साधर्म्य मदनुकृते प्रधानवैरम् ॥१२॥

२० (विचिन्त्य) अथवा, न अतिमात्र अस्मिन् वस्तुनि मया
मन खदयितव्यम् । कुत ?—

मद्भृत्यै किल नाम पवतसुतो व्याप्त प्रतिष्ठान्तरै,
उद्युक्ताश्च नियोगसाधनविधो सिद्धार्थकाद्या स्पशा ।
कृत्वा सम्मति कतवेन कलह मोर्येन्दुना, राक्षस,
भेत्स्यामि स्वमतेन, भेदकुशलो ह्येष प्रतीप द्विष [१]॥१३॥

२१ कचुकी—(प्रविश्य) कष्टा खलु सेवा नाम !
कुत ?—

भेतव्य नृपतेस्तत सचिवतो राज्ञस्ततो वल्लभात्,
अन्येभ्यश्च वसन्ति येऽस्य भवने लब्धप्रसादा विटा ?
दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनै पिण्डार्थमायस्यत,
सेवा लाघवकारिणी कृतधिय स्थाने श्ववृत्ति विदु [२]॥१४॥

२२ (परिक्रम्य अवलोक्य च) इद आयचाणक्यस्य गह, यावत्
प्रविशामि। (नाट्येन प्रविश्य अवलोक्य च) अहो, राजा-
धिराजमन्त्रिणो गृहभूति, कुत ?—

उपलशकलमेतद् भेदक गोमयाना,
वटुभिरुपहृताना र्बाहषा स्तोम एष ।
शरणमपि समिद्भि शुष्यमाणाभिराभि,
विनमितपटलान्त दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥१५॥

---

१ मालिनी। २ शिखरिणी। ३ वसन्ततिलका।

१९ (प्रत्यक्षकी तरह आकाशमे लक्ष्य बाधकर) राक्षस, राक्षस, रुक जा इस दुर्व्यवसायसे—

कुमन्त्रिया द्वारा, राजतन्त्रवाला वह गर्वित नन्द यह **चन्द्रगुप्त** नही है और नही तू **चाणक्य** हा हो सकता। केवल मेरे अनुकरणका मुख्य वैर तेरी समानता है ।।१२।।

२० (सोचकर) अथवा, इस बातमे मुझे मनको बहुत अधिक खिन्न नही करना चाहिये। क्योकि—

उद्यतर्पी मेरे नौकर **पर्वत-पुत्र** पर छा गये है, आज्ञा पूरी करनेमे तत्पर **सिद्धार्थक** आदि गुप्तचर है। इस समय **मौर्यचन्द्र**से कलह करके मै फोडनेमे कुशल अपने मतसे शत्रुमे उलट राक्षसको फोडूँगा ।।१३।।

२१ कचुकी—(भीतर प्रवेश कर) सेवा तो कठिन है, क्योकि—

राजासे डरना है फिर सचिवसे फिर राजाके प्रियजनमे भी, इनके भवनमे कृपापात्र जो दूसरे धूर्त बसते है, उनसे भी, और दीनतासे ऊपर मुह करके देखने तथा अपलापासे टुकडे के लिये कोशिश करते, (आदमी को लिये) हलका बनानेवाली सेवाको विद्वान ठीक ही कुत्तेकी वृत्ति मानते है ।।१४।।

२२ (परिक्रमा करके और देख कर) यह आर्य **चाणक्य**का गृह है, सो प्रवेश करता हूँ। (अभिनयसे प्रवेश करके और देखकर) अहो राजाधिराजके मन्त्रीके घरका वैभव, क्योकि—

गोइठाको ताडनेके लिये यह पत्थरका टुकडा, विद्यार्थियो द्वारा लाये कुशोकी यह राशि। घर भी इन सुखाई जाती समिधाओसे भरा, जीर्ण भीतें झुकी छतके छोरवाला दीखता है ।।१५।।

२३ तत स्थाने खलु अस्य वृषलो देवश्चन्द्रगुप्त इति। कुत ?—

स्तुवत्यश्रान्तास्या क्षितिपतिपभूतैरपि गुणै,
प्रवाच कापण्याद् यदवितथवाचोऽपि कृतिन ।
प्रभावस्तृष्णाया स खलु सकल स्यादितरथा,
निरीहाणामीशस्तणमिव तिरस्कारविषय ॥१६॥

२४ (विलोक्य समयम्) तदयम् आयचाणक्यस्तिष्ठति—

यो नन्दमौयनृपयो परिभूय लोक,
अस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।
पर्यायपालितहिमोष्णिम सवगामि
धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्न ॥१७॥

(जानुभ्या भूमौ निपत्य) जयति जयति आय्य ।

चाणक्य —(नाट्येन अवलोक्य) । वैहीनरे, कि आगमन-प्रयोजनम् ?

२५ कचुकी—आर्य प्रणतिसम्भ्रमसमुच्चलितभूमिपालमौलि-मणिशकलशिखापिशगीकृतपादपद्मयुगल पादपद्मयो आर्यं प्रणिपत्य देव चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति, क्रियान्तर अन्तराय अन्तरेण आय द्रष्टु इच्छामि इति ।

२६ चाणक्य —वृषलो मा द्रष्टु इच्छति ? वैहीनरे, न खलु वृषलस्य श्रवणमुपगतोऽय मया कृत कौमुदीमहोत्सव प्रतिषेध ?

कचुकी—आर्य, अथ किम् ?

चाणक्य —(सक्रोधम्) आ ! केन कथितम् ?

२३ इसलिय ठीक ही है, इनके लिये महाराज चन्द्रगुप्त शूद्र है। क्योंकि—
बिना थक मुखवाले अविद्यमान गुणो को भी लेकर राजाकी स्तुति करते मुह नही थकता, दीनताके कारण यथाथ भाषी सज्जन भी वाचाल बन जाते है, वह सब तृष्णाकी कारस्तानी है नही तो, निर्लोभियोक लिये ईश्वर भी हेय है ।।१६।।

२४ (देखकर भयके साथ) सो यह आचाय चाणक्य है—
जो लाकका तिरस्कार कर, नद और मौय दोनो राजाओका अस्त उदय एक ही समय करान, अपने प्रकाशमे सूयक बारी बारीसे गर्मी मर्दी गिरात सवगामी प्रकाश से बढ जाते है ।।१७।।
(दोना जानुओको भूमिपर रख) जय हो, जय हो आय।
चाणक्य—(अभिनयसे अवलोकन कर) वैहीनरि, (तुम्हारे) आने का क्या प्रयोजन है?

२५ कचुकी—आय प्रणामके लिय जल्दीसे चलित भूपालाकी मुकुट-मणियाके खडकी शिखाआसे पीले हुय दोनो चरणकमलवाले महाराज चन्द्रगुप्न आयके दोना पैरोमे प्रणाम करके अज करत है—दूसरे कामका अतराय न हो, तो आयको मैं देखना चाहता हूँ।

२६ चाणक्य—शूद्र मुझे देखना चाहता है? **वैहीनरि,** शूद्र के कानमे यह बात नही आई, कि मैन कौमुदी-महोत्सवका निषेध क्यो कर दिया?
कचुकी—आय, और क्या?
चाणक्य—(क्रोध-सहित) आ, किसने कहा?

२७ कचुकी—(भय नाटयित्वा) प्रसीदतु आय । स्वयमेव सुगागप्रासादशिखरगतेन देवेन अवलोकित अप्रवृत्तकौमुदी-महोत्सव कुसुमपुरम् ।
चाणक्य —आ ज्ञात, तिष्ठ तावद् भवद्भि एव मदन्तरेण प्रोत्साह्य रोषितो वृषल, कि अन्यत् ?

२८ कचुकी—(सभय तृष्णी अधोमुखस्तिष्ठति)
चाणक्य —अहो ! राजपरिजनस्य चाणक्यस्य उपरि विद्वेषपक्षपात । अथ क्व वृषल तिप्ठति ?

२९ कचुकी—(भय नाटयन्) आय, सुगागप्रसादगतेन देवेन अह आय्यपादमूल प्रेषित ।
चाणक्य —(उत्थाय) कचुकिन्, सुगागप्रासादमार्ग देशय ।

(३) उत्सव-निषेधकारणम्

३० कचुकी—इत इत आय । (इति उभौ परिक्रामत)
कचुकी—अयँ सुगागप्रासाद, शनै आरोढुमहृति आय ।

३१ चाणक्य —(नाट्येन आरुह्य अवलोक्य च सहृष आत्मगतम्) अये, सिहासनमध्यास्ते वृषल । साधु साधु—

नन्दैवियुक्तमनपेक्षितराजवृत्तै
अध्यासित च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।
सिंहासन सदृशपार्थिवसगत च,
प्रीतिं परा प्रगुणयन्ति गुणा ममैते[1] ॥१८॥

(उपसृत्य) विजयता वृषल ।

---

१ वसन्ततिलका ।

२७ कचुकी—(भय का अभिनय कर) दया करे आय, सुगाग प्रासादके शिखरपर अवस्थित महाराजाने स्वय कुसुमपुरका कौमुदी-महोत्सव रहित देखा।

चाणक्य—आ समझा, तो ठहरो। आप लोगोने ही मेरे विना प्रोत्साहित कर शूद्र को रुष्ट किया, और क्या?

२८ कचुकी—(भयभीत नीचे मुख किये चुप रहता है)

चाणक्य—अहो चाणक्यके ऊपर राजसवकोका द्वेषयुक्त पक्षपात? तो शूद्र कहा है?

२९ कचुकी—(भयका अभिनय करके) आय, सगाग प्रासादपर स्थित महाराजने मुझे आयके चरणोमे भेजा।

चाणक्य—(उठकर) **कचुकि,** सुगाग-प्रासादका माग बतलाओ।

३ उत्सव-निषेधका कारण—

३० कचुकी—इधर, इधर आय। (दोनो परिक्रमा करते है)

कचुकी—यह सुगाग प्रासाद है। आय धीरे धीरे चढिये।

३१ चाणक्य—(अभिनयपूवक चढ और देखकर हषपूवक अपने आपसे)। अय, सिंहासन पर आसीन है वृषल। अच्छा-अच्छा—राजाओके कतव्यसे बेपर्वाह नदो द्वारा त्यक्त, श्रेष्ठ राजा वृषल द्वारा अधिष्ठित और योग्य राजा के पास गया यह सिंहासन है, यह गुण मेरी परम प्रसन्नता को बढाते है ॥१८॥

(पास जाकर) विजयी हो **वृषल**।

३२ राजा—(सिंहासनादुत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा) आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणमति।

चाणक्य—(पाणौ गृहीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स,

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्,
आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनपशतै शश्वदेव क्रियन्ता,
चूडारत्नाशुगर्भास्तव चरणयुगस्यागुलीरन्ध्रभागा[1] ॥१९॥

३३ राजा—आर्यप्रसादाद् अनुभूयत एवेतत् नाशास्यते। उपविशतु आर्य। (इति उभौ यथासन उपविष्टौ)

चाणक्य—वृषल, किमथ वय आहूता ?

३४ राजा—आर्यस्य दर्शनेन आत्मान अनुग्राहयितुम्।

चाणक्य—(स्मित कृत्वा) वृषल, अलम् अनेन प्रश्रयेण, न निष्प्रयोजन अधिकारवन्त प्रभुभि आहूयन्ते, तत्प्रयोजन अभिधीयताम्।

३५ राजा—आर्य, कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य किं फल आर्य पश्यति ?

चाणक्य—(स्मित कृत्वा) वृषल, उपालब्धु तर्हि वय आहूता ?

राजा—आर्य, न उपालब्धुम्।

३६ चाणक्य—किं तर्हि ?

राजा—विज्ञापयितुम्।

चाणक्य—वृषल, यदि एव तर्हि विज्ञापनीयाना अवश्य शिष्येण रुचयोऽनुरोद्धव्या।

---

१ स्रग्धरा।

३२ राजा—(सिंहासनस उठकर चाणक्यके दोनो पैरोको पकडकर)। आय, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।
चाणक्य—(दोनो हाथोको पकडकर) उठ, उठ बच्चे—
महापवतासे शिलाओ पर गिरी गगाके फुहारोसे शीतल अनेक रगाकी, चमकती मणियोकी कातिवाल दक्षिण सागरक तीर तक्के आ-आकर भयसे प्रणत सैकडो राजा सदा तेर चरण युगलोकी अगुलियाक छिद्र भागको अपने चूडारत्नकी किरणोसे व्याप्त बनाये ॥१६॥

३३ राजा—आयकी कृपाम यह भोग ही किया जा रहा है, आय, वैठिय।
(दानो अपने अपने आसनपर बैठ)
चाणक्य—वृपल, किसलिय हमे बुलाया ?

३४ राजा—आयके दशनसे अपनेको अनुगृहीत करनेक लिये।
चाणक्य—(मुस्कुराकर) वपल, रहने दो तकल्लुफ, स्वामी, बिना प्रयोजन अधिकारियो को नही बुलाते। वही प्रयोजन कहिये।

३५ राजा—आय, **कौमुदी-महोत्सवक** निषधमें क्या लाभ आप देखते हैं।
चाणक्य—(मुस्कुराकर) तो वृषल उलाहना देनेके लिये हमें बुलाया है ?
राजा—आय, उलाहना दनके लिये नही।

३६ चाणक्य—तो क्या ?
राजा—विज्ञापन (अज) करनेके लिये।
चाणक्य—वृषल, यदि यह है तो विज्ञापनीयो (गुरुजनो) की रुचिका शिष्यको अवश्य पालन करना चाहिय।

३७ राजा—आय, क सन्देह ? किन्तु न कदाचिदपि आयस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्ति इति अस्ति न प्रश्नावकाश ।

चाणक्य—वृषल, सम्यग्गृहीतवानसि मदाशयम्। न हि प्रयोजन अनपेक्षमाण स्वप्नेऽपि चाणक्य चेष्टते।

३८ राजा—आय, अतएव मा प्रयोजनशुश्रूषा मुखरयति।

चाणक्य—वषल, श्रूयता, इह खलु अथशास्त्रकारा त्रिविधा, सिद्धि उपवणयन्ति। तद्यथा, राजायत्ता, सचिवायत्ता उभयायत्ता च इति। तत् सचिवायत्तसिद्धेभवत किं फलान्वेषणेन ? यतो वयमेव अत्र नियुक्ता वेत्स्याम ।

३९ राजा—(सकोप इव मुख परिवत्तयति)

(ततौ नेपथ्ये वेतालिकौ पठत)

४० एक,—

आकाश काश पुष्पच्छविमभिनवता भस्मना शुक्लयन्ती,
शीताशोरशुजालैजलधरमलिना क्लिन्दती कृत्तिमैभीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवला कौमुदीमित्यपूर्वा,
हासश्रीराजहसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्व [1]॥२०॥

४१ अपि च,—

प्रत्यग्रोन्मुषजिह्वा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणाम्,
आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा, जृम्भितै सागभगे ।
नागाक भोक्तुमिच्छो शयनमुरु फणान्चक्रवालोपधान,
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेदृष्टिराकेकरा व [2]॥२१॥

४२ द्वितीय,—

सत्वोत्कर्षस्य धात्रा निघय इव कृता केऽपि कस्यापि हेतो,
जेतार स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचा नागयूथेश्वराणाम्।
दष्ट्राभग मगाणामधिपतय इव व्यक्तभानावलेपा,
नाज्ञाभग सहन्ते नृवर, नृपतयस्त्वादृशा सावभौमा ॥२२॥

---

१ स्रग्धरा। २ पथ्यावक्त्रम।

३७ राजा—आय, इसमे क्या सन्देह ? लेकिन कभी भी आय बिना प्रयाजनके कोई काम नही करत इसलिय हमे पूछन का अवकाश है। चाणक्य—वषल मेरे अभिप्रायको अच्छी तरह तुमने पकडा है। प्रयाजनक बिना **चाणक्य** स्वप्नमे भी कोई काम नही करता।

३८ राजा—आय, इसीलिय प्रयोजन सुननेकी मरी इच्छा मुझसे बुलवा रही है।

चाणक्य—वषल, सुनिये, यहा शास्त्रकार तीन प्रकारकी सिद्धि बतलात है, जैसे —'राजाधीन, सचिव-अधीन और दोनो क अधीन।' तो सचिवाधीन सिद्धिके लाभ के बारेमे अ वषणसे आपको क्या ? क्याकि इसमें नियुक्त हमी उसे जानेंगे।

३९ राजा—(कुपित सा हो मुख फेर लेता है)

(पर्देमे दो **वैतालिक** पाठ करते है)

४० एक—

ढकनेवाली भस्म द्वारा आकाशको, काशके फूलकी शोभा जैसी सफेद करती, च द्रकी किरणोसे मेघ द्वारा मलिन गज-चमको भिगो रही है, उजली चादनीको शिरकी माला जसी धारण करती, यह अपूव शकरको हास-शाभारूपी राजहसी तुम्हार क्लेशको हरे ।।२०।।

४१ और भी—

अभिनव उदघाटनसे तिरछी, क्षण भर रत्नदीपाकी प्रभाओके असम्मुख अपन काममे मथर जलकण उपजाती अग भगोक व्यापारोसे विशाल फणमडलक तकियवाल शषनागकी शय्या छोडनके इच्छुक (विष्णु) का निद्राके विच्छेदसे रक्तिम (तथा) कुचित दृष्टि तुम्हारी सदा रक्षा करे ।।२१।।

४२ दूसरा—

किसी भी हेतुसे किसीको ब्रह्माने मद-जल छोडते गजयूथोंके स्वामियो को अपने तेजसे जीतनेवाला, शौयके उत्कष की निधिसा बनाया स्पष्ट अभिमान, गर्वीले मगोके स्वामियोकी तरह हे पुरुषश्रेष्ठ तेरे जैसे चक्रवर्ती राजा दाढ़ तोडनेकी तरह आज्ञा तोडनेको नही सह सकते ।।२२।।

अपि च,—
भूषणाद्युपभोगेन प्रभुर्भवति न प्रभु ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥२३॥

४३ चाणक्य —(आकर्ण्य आत्मगतम्) प्रथम तावद्विशिष्टदेवता-स्तुतिरूपेण प्रवृत्त शरद्गुणप्रख्यापन आशीर्वचनम्, इद अपर किमिति न अवधारयामि। (विचिन्त्य) आ ज्ञातम्। राक्षसस्य अय प्रयोग । आ दुरात्मन् राक्षस-हतक, दृश्यसे, जागर्त्ति खलु कौटिल्य ।

राजा—आर्य वैहीनरे, दीयताम् आभ्या वैतालिकाभ्या सुवर्णशतसहस्रम्।

कचुकी—यद् आज्ञापयति देव । (इति उत्थाय परिक्रा-मति) ।

४४ चाणक्य —(सक्रोधम्) वैहीनरे, तिष्ठ तिष्ठ, न गन्तव्यम्। वृषल, कि अयमस्थाने एव महान् अर्थोत्सर्ग क्रियते ?

राजा—आर्येण एव सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मम बन्धन इव राज्य, न राज्यमिव।

४५ चाणक्य—वृषल, स्वय अनभियुक्ताना राज्ञा एते दोषा भवन्ति। तद् यदि न सहसे, तदा स्वयमेव अभि-युज्यस्व।

राजा—एते वय स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

४६ चाणक्य —प्रिय न, वयमपि स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

राजा—यदि एव, तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रयो-जन श्रोतु इच्छामि।

चाणक्य —वृषल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य कि प्रयो-जन इति अहमपि श्रोतु इच्छामि।

राजा—प्रथम तावत् ममाज्ञाव्याघात ।

और भी—
भूषण आदिके उपभोगसे (कोई) प्रभु नही होता। तेरी तरह जिसकी आज्ञा को दूमरे तिरस्कृत नही कर सकत, वही प्रभु कहा जा सकता है ॥२३॥

४३ चाणक्य—(मुनकर अपन आपस) पहले (श्लोकमे) तो विशष देवनाकी स्तुतिक रूपमे वतमान शरदक गुणको बतलाते आशीर्वाद है। यह दूमरा क्या है, यह नही समझ पाया। (साचकर) ओ समझा। राक्षसका यह काम है। आ दुष्ट अभागे राक्षस, तू दखगा कि कौटिल्य जागरूक है।
राजा—आय वैहीनरि, इन दोनो वैतालिकोको सौ हजार सुवण (मुहर) द दीजिये।
कचुकी—जो महाराज आज्ञा देन ह। (उठकर परिक्रमा करता है)

४४ चाणक्य—(क्रोध-सहित) वैहीनरि ठहर, ठहर न जा। वषल, क्यो अनुचित स्थानमे इतने भारी धनका व्यय किया जा रहा है?
राजा—आय द्वारा इस प्रकार सब तरफसे कामोको करनसे रोके गय मेरे लिये राज्य, राज्य जैसा नही बल्कि बधन जैसा है।

४५ चाणक्य—वषल, ये अयोग्य राजाओके अपने दोष है। तो यदि तुम नही बर्दाश्त करते, तो स्वय ही अभियोजन (आज्ञा) करो।
राजा—यह (लीजिये) हम अपने काममें अभियोजन करते हैं।

४६ चाणक्य—यह हमें बहुत पसन्द है, हम भी काममे अभियोजन करेंगे।
राजा—अगर ऐसा है, तो कौमुदी-महोत्सवके निषेधका प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।
चाणक्य—वषल, कौमुदी महोत्सवक अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है, यह मै भी सुनना चाहता हूँ।
राजा—पहले तो मेरी अज्ञाका भग हुआ।

४७ चाणक्य—वृषल, ममापि खलु त्वदाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथम प्रयोजनमिति। कुत ?—

अम्भोधीना तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावननाम्,
आ पारेभ्यश्चतुर्णा चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तजलानाम्।
मालेवाज्ञा सपुष्पा नतनपतिशतैरुह्यते या शिरोभि,
सा मय्येव स्खलन्ती प्रथयति विनयालकृत ते प्रभुत्वम्[1] ॥२४॥

४८ राजा—अथ अपरमपि प्रयोजन यत् तच्छ्रोतु इच्छामि।
चाणक्य—तदपि कथयामि ?
राजा—कथ्यताम्।

४९ चाणक्य—शोणोत्तरे, शोणोत्तरे, मद्वचनात् कायस्थ अचलदत्त ब्रूहि, यत् भद्रभटप्रभृतीना लेख्यपत्र तत्तावत् दीयता इति।

प्रतीहारी—यदाय आज्ञापयति इति। (निष्क्रम्य पुन प्रविश्य) आय, इद पत्रम्।

चाणक्य—गृहीत्वा। वृषल, श्रूयताम्।

राजा—दत्तावधानोऽस्मि।

५० चाणक्य—वाचयति। स्वस्ति, सुगृहीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्य सहोत्थायिना प्रधानपुरुषाणाम्। तत्र प्रथम तावद् गजाध्यक्षो भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहारस्य चन्द्रभानोर्भागिनेयो हिगुरात, देवस्य स्वजनगन्धी महाराजो बलगुप्त, देवस्यैव कुमारसेवको राजसेन, सेनापते सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायण, मालवराजपुत्रो रोहिताक्ष, क्षत्रगणमुख्यतमो विजयवर्मा इति (आत्मगतम्) एते वय देवस्य कार्य्ये अवहिता स्म इति। (प्रकाशम) एतावद् एतत् पत्रम्।

राजा—आर्य, एतेषा अपरागहेतून् श्रोतु इच्छामि।

---

१ स्रग्धरा।

४७ चाणक्य—वृषल, तेरी आज्ञाका भंग ही कौमुदी-महोत्सवके निषेधका मेरा प्रथम प्रयोजन है।

क्योंकि—

तमालमें उत्पन्न पत्तोंसे श्याम तटके वनोंवाले, चंचल महामत्स्यों द्वारा क्षोभित, भीतर जलयुक्त चारों समुद्रोंके पार से आकर प्रणत सैकड़ों नृपति (अपने) सिरों पर जिस आज्ञाको पुष्पमालाकी तरह रखते हैं। सो (आज्ञा) मेरे ही ऊपर गिरती तेरे विनय भूषित प्रभुताको प्रख्यापित करती है ॥२४॥

४८ राजा—और दूसरा भी प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—उसे भी कहूँ?

राजा—कहिये।

४९ चाणक्य—शोणोत्तरा शोणोत्तरा, मेरे वचनसे कायस्थ अचलदत्तको कह, कि भद्रभट आदि का जो लेख्यपत्र है, उसे दीजिये।

प्रतीहारी—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर फिर प्रवेश करके)। आर्य, यह पत्र है।

चाणक्य—(लेकर) वृषल, सुनिये।

राजा—सावधान हूँ।

५० चाणक्य—बाँचता है। स्वस्ति, सुगृहीत नामवाले महाराज चन्द्रगुप्तके साथ उठने बैठने वाले प्रधानपुरुषोंकी यहाँसे हटकर मलयकेतुके आश्रितों की संख्याका लेख्यपत्र। वहाँ पहले गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहार चन्द्रभानुका भांजा हिंगुरात, महाराजका स्वजन सम्बन्धी महाराज बलगुप्त, देवका ही कुमार-सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्तका छोटा भाई भागुरायण, मालव-राजकुमार रोहिताक्ष, क्षत्रियसमूहका सबसे बड़ा मुखिया विजयवर्मा। (अपने आपसे) यह हम देवके कार्यमें लगे हैं। (प्रकट) इतना है यह।

राजा—आर्य, इनके विरक्त (बागी) होनेका कारण सुनना चाहता हूँ।

५१ चाणक्य —वृषल, श्रूयताम् । अत्र यौ एतौ गजाध्यक्षाश्वाध्यक्षौ भद्रभटपुरुषदत्तनामानो, एतौ खलु स्त्रीमद्यमृगयाशीलौ, हस्त्यश्वावेक्षणे अनभियुक्तौ, इति स्वाधिकाराभ्या अवरोप्य मया स्वजीवनमात्रेणैव स्थापितौ इति अपरक्तौ, गत्वा स्वेन स्वेन च अधिकारेण व्यवस्थाप्य मलयकेतु आश्रितौ। यौ एतौ हिंगुरातबलगुप्तौ, तौ अपि अत्यन्तलुब्धप्रकृती, दत्त धनम् अबहु मन्यमानो, तत्र बहु लभ्यते इति मलयकेतु आश्रितौ। योऽपि असौ भवत कुमारसेवको राजसेन, सोऽपि तव प्रसादात् अतिमात्र कोषहस्त्यश्व सहसा एव सुमहदैश्वर्य्यमवाप्य पुनरुच्छेदशकया अपक्रम्य मलयकेतु आश्रित । योऽयमपर सेनापते सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायण , असौ अपि तत्र काले पवतकेन सह समुत्पन्नसौहाद तत्प्रीत्या च "पिता मे चाणक्येन घातित" इति रहसि त्रासयित्वा, मलयकेतु अपवाहितवान्, ततो भवत्पथ्यकारिषु चन्दनदासप्रभृतिषु निगृह्यमाणेषु स्वदोषाशकया अपक्रम्य मलयकेतुमाश्रित , तेनापि असौ मम अनेन प्राणा परिरक्षिता इति कृतज्ञता अनुरुध्यमानेन पैतृक च परिचय, आत्मनोऽनन्तर अमात्यपद ग्राहित । यौ तौ रोहिताक्षविजयवर्म्माणौ, तौ अत्यन्तमानित्वात् स्वदायादेभ्य त्वया दीयमान बहुसम्मान असहमानौ, मलयकेतु आश्रितौ। इत्येषा अपरागहेतव ।

५२ राजा—आर्य, एव एतेषु परिज्ञातापरागहेतुषु अपि क्षिप्रमेव कस्मात् न प्रतिविहितम् आर्येण ?

चाणक्य —वृषल, न पारित प्रतिविधातुम्।

५१ चाणक्य—वृषल, सुनिय। यहा जो यह गजोके अध्यक्ष और घोडाके अध्यक्ष भद्रभट और पुरुषदत्त हैं, यह स्त्री मद्य और मृगयाके प्रेमी हैं, हाथी घोडाकी (सेना) के देखनके अयोग्य है। इसलिये अधिकारोसे वचित कर उन्हे अपने जीवन मात्रके साथ मने रख दिया, इसलिय यह विरक्त हो जाकर (वहा) अपने-अपने अधिकार पर आरूढ हो मलयकेतुके आश्रित हो गय। जो यह हिंगुरात और बलगुप्त है, य भी बहुत लोभी स्वभावक ह यहा दिय जात, धनको बहुत न मानकर वहा बहुत मिलेगा यह सोच मलयकेतुके आश्रित हो गये। और जो यह आपका कुमारसवक राजसेन है वह भी आपकी कृपासे बहुत अधिक कोश हाथी घोडेसहित भारी ऐश्वयको एकाएक पाकर उनक उच्छदक डरस भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। जो यह दूसरा सेनापति सिंहबलदत्तका छोटा भाई भागुरायण है, यह भी वहा समयपर पवतकके साथ मित्रता करके उसकी प्रीति और "तरे पिताको चाणक्यने मरवाया" यह कह एकान्तमे डराकर मलयकेतुका विरोधी बना। इसलिय आपके अहित करनवाले चदनदास आदिके पकडे जानेपर यह अपन अपराधके (खुलनेक) भयसे भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। उसने भी, "इसने मेरे प्राणोकी रक्षा की" यह सोच कृतज्ञताके अनुरोधस और पतृक परिचय का ख्याल कर अपने बाद अमात्यका पद प्रदान किया। जो वे रोहिताक्ष और विजयवर्मा ह, वे अपने दायादोको तुम्हारे द्वारा बहुत सम्मान दिये जानेको न सहन कर अत्यन्त अभिमानी होनेके कारण मलयकेतुके आश्रित हो गये। यह है इनक विरागका कारण।

५२ राजा—आय इस प्रकार इनके विरागके हेतुओके जान लेनेपर भी जल्दी ही क्यो नही आयने प्रतिविधान किया?

चाणक्य—वृषल, प्रतिविधान नही कर सका।

५३ राजा—किं अकौशलात्, उत प्रयोजनापेक्षितया ?
चाणक्य—कथ अकौशल भविष्यति, नियत प्रयोजनापेक्षितया।
राजा—तत् अप्रतिविधानप्रयोजन इदानी श्रोतुमिच्छामि।
चाणक्य—वषल, श्रूयता अवधायताच।
राजा—उभयमपि क्रियते, कथ्यताम्।

५४ चाणक्य—वषल, इह खलु विरक्ताना प्रकृतीना द्विविध प्रतिविधानम्, तद् यथा, अनुग्रहो निग्रहश्च इति। अनुग्रह तावत् आक्षिप्ताधिकारयो भद्रभटपुरुषदत्तयो पुन अधिकारारोपण एव। अधिकारश्च पुन तादृशेषु व्यसनदोषात् अनभियुक्तेषु पुन आरोप्यमाण सकलस्य एव राज्यस्य मूल हस्त्यश्व अवसादयेत्। हिंगुरातबलगुप्तयो अत्यन्तलुब्धप्रकृतिकयो सकलराज्यसम्प्रदानेनापि अपरितुष्यतो अनुग्रह कथ कर्तु शक्य ? राजसेनभागुरायणयोस्तु स्वधनप्राणनाशभीतयो कुतोऽनुग्रहस्य अवकाश ? रोहिताक्षविजयवम्मणोरपि दायादमानप्रदानपीडितयो मानमपि अपमान मन्यमानयो अत्यन्तमानिनो कीदृशोऽनुग्रह प्रीति जनयिष्यतीति परिहृत पूर्व पक्ष, उत्तरोऽपि खलु वय अचिरात् अधिगतनन्दैश्वर्या सहोत्थायिन प्रधानपुरुषवर्ग उग्रेण दण्डेन पीडयन्तो, नन्दकुलानुरक्ताना प्रकृतीना अविश्वास्या भवाम, इत्यत परिहृत एव। तत् एवमनुगृहीतास्मद्भृत्यपक्षो राक्षसोपदेशश्रवणप्रवणो महीयता म्लेच्छराजबलेन परिवृत, पितृवधामर्षित पर्वतकपुत्रो मलयकेतु अस्मान् अभियोक्तु उद्यत इति, सोऽय व्यायामकालो न उत्सवकाल इति। अतो दुर्गसंस्कारे आरब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेन ? इति प्रतिषिद्धि ।

५३ राजा—क्या अकौशलके कारण, या किसी मतलबसे।

चाणक्य—अकौशल (अनिपुणता) कसे, निश्चय मतलबसे ही।

राजा—अब प्रतिविधान न करनका मतलब सुनना चाहता हू।

चाणक्य—वृषल, सुनिये और मनमें करिये।

राजा—दोनो करता हू, कहिये।

५४ चाणक्य—वषल, वागी प्रजाओका दो प्रकारसे प्रतिविधान होता है, जैसे कि, अनुग्रह और निग्रह (दण्ड) से। अनुग्रह तो है छिने अधिकार वाले भद्रभट और पुरुषदत्तको फिरसे अधिकारपर स्थापित करना ही। व्यसनके दोषके कारण ऐसे अयोग्योको अविकार पर पुन स्थापित किये जान पर सारे राज्य की जड हाथी घोडका (की सेना का) नाश करत। और अत्यन्त लोभी प्रकृतिवाले, सारा राज्य देनेपर भी न सनुष्ट होनवाल हिंगुरात और बलगुप्त पर कैसे अनुग्रह किया जा सकता है? अपन धन और प्राणके नाशस भयभीत राजसन और भागुरायणपर अनुग्रह के लिये अवसर कहा? दायादोको मान देनेसे पीडिन, मानको भी अपमान माननेवाले अत्यन्त अभिमानी रोहिताक्ष और विजयवर्मा के मन मे भी अनुग्रह कसे (विश्वास) पैदा करेगा। इस प्रकार पहला पक्ष छाड दना पडा। दूसरा पक्ष (निग्रह)—हमने हाल ही मे नन्दके ऐश्वयको पाया है, उसके साथ उन्नत हुये प्रधान पुरुषाको कठोर दण्ड द्वारा पीडित करने पर नन्दकुल-भक्त प्रजाओका विश्वास हम पर नही रहता, इसलिये उसे भी छोड दिया। इस प्रकार अनुगहीत हुये हमारे भृत्य लोग राक्षसकी बात माननके इच्छुक है, म्लेच्छ राजा की भारी सेना लेकर पिताके वधसे क्रुद्ध पवतक-पुत्र मलयकेतु हमसे लडनेके लिये उद्यत है। सो यह प्रयत्नका समय है उत्सवका नही। गढकी मरम्मत में लगनेके समय कौमुदी-महोत्सव-का क्या काम इसीलिये मैंने (उसका) निषेध किया।

५५ राजा—आय, बहु प्रष्टव्यमत्र ।
चाणक्य —वृषल, विश्रब्ध पृच्छ, ममापि बहु वाख्येय अत्र ।
राजा—एष पृच्छामि ।
चाणक्य —अहमपि एष कथयामि ।
राजा—योऽय अस्माकमस्य सवस्यैव अनथस्य हेतुमलयकेतु, स कस्मात् आर्येण अपक्रामन् उपेक्षित ?
५६ चाणक्य —वृषल, मलयकेतो अपक्रमणानुपेक्षणे द्वयी गति च स्यात्, अनुगृह्येत निगृह्येत वा। अनुग्रहे पूवप्रतिश्रुत राज्याद्ध प्रतिपाद्येत। निग्रहे तावत् पवतकोऽस्माभि व्यापादित इति कृतघ्नताया स्वय हस्तो दत्त स्यात्। प्रतिश्रुताद्धराज्यप्रतिपादनेऽपि पवतकविनाश केवल कृतघ्नतामात्रफल स्यात् इति मलयकेतु अपक्रामन् उपेक्षित ।
५७ राजा—अत्र तावदेव राक्षस पुन इहैव अन्तनगरे वत्तमान आर्येण उपेक्षित, इत्यत्र किमुत्तर आयस्य ?
५८ चाणक्य—राक्षसोऽपि खलु निजस्वामिनि स्थिरानुरागित्वात् सुचिरमेव अत्र सहवासाच्च शीलज्ञाना नन्दानुरक्ताना प्रकृतीना अत्यन्त विश्वास्य, प्रज्ञापुरुषकाराभ्या उपेत, सहायसम्पदा युक्त, कोषबलवानिहैव अन्तर्नगरे वतमानौ महान्त खलु अन्त कोप उत्पादयेत्। दूरीकृतस्तु, वाह्यकोप उत्पादयन्नपि न दु खसाध्यौ भविष्यति इत्यतोऽपक्रामन् उपेक्षित ।
राजा—तत् किमर्थं इहस्थ एव उपायै न उपक्रान्त ?
५९ चाणक्य—अथ कथ अपक्रान्तो भविष्यति? ननु उपायै एव असौ हृदयेशय शकुरिव उद्धृत्य दूरीकृत । दूरीकरणस्य च उक्त प्रयोजनम्।
राजा—आर्य, कस्माद्विक्रम्य न गहीत ?

५५ राजा—आय, अभी बहुत पूछना है।

चाणक्य—वृषल, निश्शक पूछो, मुझे भी अभी बहुत कहना है।

राजा—यह लो मै पूछता हू।

चाणक्य—यह ला मै भी कहता हू।

राजा—हमारे इन सभी अनर्थो का कारण जो **मलयकेतु** है, क्यो आयने उसके बाहर जाने की उपेक्षा की?

५६ चाणक्य—वृषल, मलयकेतुके बाहर जानेकी उपेक्षा न करनेपर दो ही बाते होती उसपर अनुग्रह किया जाता या निग्रह। अनुग्रह करने-पर पहलेक वचनके अनुसार आधा राज्य देना पडता, निग्रह (दण्ड) करनपर हमने पवतकको मारा, इस कृतघ्नताक (लाछन) को खुद अपन ऊपर लेना पडता। वचन दिये आधा राज्य प्रदान करन पर भी **पवतक** का नाश करना, केवल कृतघ्नता होती, इसलिये हमने मलयकेतुके बाहर जान की उपक्षा की।

५७ राजा—यहा तो (खर) यह है। पर फिर यही भीतर नगरमें मौजूद राक्षस की आयन क्यो उपेक्षा की। इसके बारे में आयका क्या उत्तर है?

५८ चाणक्य—अपन स्वामी (**नद राजा**) का दढ भक्त होन से बहुत समयसे ही यही साथ रहनेक कारण **राक्षस** (उनके) शीलसे परिचित नद भक्त प्रजाओका अत्यत विश्वसनीय है। प्रजा और पौरुषसे, मित्र और सम्पत्तिसे युक्त, कोशसे बलवान् वह यही नगरके भीतर रहता भीतरस भारी क्षोभ पैदा करता निकाल बाहर करने पर बाहरसे क्षोभ पैदा करते भी दुस्साध्य होता, यह सोच बाहर जाते उसकी मैंने उपक्षा की।

राजा—तो क्यो नही यहा उसके रहते रहते उपाय किया?

५९ चाणक्य—फिर वह बाहर कैसे गया होता? निश्चय उपायोसे ही हृदयमे गडे काटेकी तरह मैंने उसे निकालकर दूर किया। और दूर करनेका प्रयोजन मैंने बतला दिया।

राजा—आय, पराक्रम करके क्यो नही उस पकडा?

६० चाणक्य —वषल, राक्षस खलु असौ विक्रम्य निगृह्यमाण स्वय वा विनश्येत्, युष्मद्बलानि वा विनाशयेत्। एव सति उभयथापि दोष । पश्य,—

स हि भृशमभियुक्तो यद्यपेयाद् विनाश,
ननु वृषल, वियुक्तस्तादृशेनापि पुसा।
अथ तब बलमुख्यान् नाशयेत्, सापि पीडा,
नवगज इव तस्मात् सोऽभ्युपायैर्विनेय [1] ॥२५॥

६१ राजा—न शक्नुमो वय आयस्य वाचा वाचम् अतिशयितु, सर्वथा अमात्यराक्षस एव अत्र प्रशस्यतर ।

चाणक्य —(सक्रोधम) न भवान् इति वाक्यशेष । मा तावत् एवम्। भो वृषल, तेन कि कृतम् ?

६२ राजा—यदि न ज्ञायते, तदा श्रूयताम्। तेन खलु महात्मना,

लब्धाया पुरि यावदिच्छमुषित, कृत्वा पद नो गले,
व्याघातो जयघोषणादिषु बलादस्मद्बलाना कृत ।
अत्यर्थं विपुलै सुनीतिविभवै सम्मोहमापादिता,
विश्वास्येष्वपि विश्वसन्ति मतयो न स्वेषु वर्गेषु न [2]॥२६॥

चाणक्य —(विहस्य) वृषल, एतत् कृत राक्षसेन।

६३ राजा—अथ किम्। एतत् कृत अमात्यराक्षसेन।

चाणक्य —वृषल, मया पुनर्ज्ञात, नन्दमिव भवन्त उद्धृत्य भवानिव भूतले मलयकेतु अधिराज्य आरोपित ।

राजा—अल उपालभ्य ? आर्य, दैवेन इद अनुष्ठित, किं अत्र आर्यस्य ?

---

१ मालिनी। २ शार्दूल विक्रीडितम।

६० चाणक्य—वषल पराक्रम करक पकडकर दडित करनपर राक्षस खुद नष्ट हाता, या तुम्हारी सनाका नष्ट करता। ऐसा होना दोना ही प्रकारसे बुरा है। दखो—

अत्यन्त आक्रान्त हो यदि वह नष्ट हाता, तो वषल, वैस पुरुषसे वञ्चित होत। अगर तुम्हारी सनाक मुखियाको वह नष्ट करता तो वह हानि भा नय फमाय हाथी सी हाती इसलिय उस युक्तिसे विनीत करना है ॥२५॥

६१ राजा—हम आयको बातसे पार नही पा सकत, सब तरह से (देखते) अमात्य राक्षस ही अधिक प्रशसनीय है।

चाणक्य—(कोपके साथ) आप नही, यह बाकी वाक्य भी कहो। एमा नही। वषल उसने क्या किया ?

६२ राजा—यदि नही मालूम है, तो सुनिये। उस महात्माने—
पुरीपर अधिकार होत समय इच्छानुसार बसे रह हमारे कठपर पैर रखकर जय घोषणा आदिमे हमारी सनाओ को जबदस्ती बाधा दी। (उसन) अपने विपुलनीति-वैभवसे अत्यधिक भ्रम पैदा किया, बद्धिया विश्वसनीयो पर भी विश्वास करती है, (पर) हमारे अपने वग पर नही ॥२६॥

चाणक्य—(हसकर) वषल, यह किया राक्षसने ?

६३ राजा—और क्या ? यह किया अमात्य राक्षसन।

चाणक्य—वषल, मैने तो समझा, नन्दकी तरह आपका उच्छद कर आपकी तरह उसने मलयकेतुका पथ्वीपर राज्यारोहण कराया।

राजा—रहने दें उलाहना। आय, दैवने ऐसा किया, इसमें आयका क्या है ?

६४ चाणक्य—हे मत्सरिन्,
आरुह्य या रुढकोपस्फुरणविषमिताग्रागुलीमुक्तचूडा,
लोकप्रत्यक्षमुग्रा सकलरिपुकुलोच्छेददीर्घा प्रतिज्ञाम्।
केनान्येनावलिप्ता न्वनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते,
नन्दा पर्यायभूता पशव इव हृता पश्यतो राक्षसस्य[1] ॥२७॥

६५ अपि च,—
गृध्रैराबद्धचक्र वियति चलनया दीघनिष्कम्पपक्षै,
धूमैध्वस्ताकभासा सघनमिव दिशा मण्डल दशयन्त।
नन्दाना नन्दयन्त पितवननिलयान् प्राणिन पश्य, चैतान्,
निर्वान्त्यद्यापि नैते सुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहा[2] ॥२८॥
राजा—अन्येनैव इद अनुष्ठितम्।
चाणक्य—आ केन ?

६६ राजा—नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन।
चाणक्य—दैव अविद्वास प्रमाणयन्ति।
राजा—विद्वासोऽपि अविकत्थना भवन्ति।

६७ चाणक्य—(सक्रोध नाटचेन) वृषल, भृत्यमिव मा आरोढु इच्छसि ?
शिखा मोक्तु बद्धामपि पुनरय धावति कर,
(भूमौ पादप्रहार कृत्वा)।
प्रतिज्ञामारोढु पुनरपि चलत्येष चरण।
प्रणाशान्नन्दाना प्रशममुपयात त्वमधुना,
परीत कालेन, ज्वलयसि मुन क्रोधदहनम्[3] ॥२९॥

---

१ स्रग्धरा। २ वसन्ततिलका। ३ शिखरिणी।

६४ चाणक्य—हे डाही—

बढ कान्नक फडफडानेसे टढी अगली अगुलियो द्वारा खुली शिखावाली, सार रिपुआक छदम लम्बी लोगाके सामन कठार प्रतिज्ञा के ऊपर आरूढ हाकर राक्षसक देखत दखत नौ करोड द्रव्यक स्वामी अभिमानी नवनन्द किमक द्वारा पक्तिबद्ध पशुओकी तरह मारे गय ॥२७॥

६५ और भी—

लम्ब निश्चल पखोवाल गिद्धो द्वारा (अपनी) गतिस आकाशमे बध चन्न धूमा द्वारा मूयक ध्वस्त प्रकाशवाली दिशाओको मेघयुक्त सी दिखलाती नन्दाक पितवनक घरोवाले प्राणियोको आनदित करती, दग्ध बहुन बहनी चर्बीको वहन करनवाली य अग्निया अब भी नही बुझ रही है ॥२८॥

राजा—दूसरे ने ही यह किया।

चाणक्य—आह, किसने ?

६६ राजा—नन्दकुलपर द्वेष रखनेवाले दैव ने।

चाणक्य—दैवको मूख प्रमाण मानते ह।

राजा—विद्वान गाल बजाने वाले नही होते।

६७ चाणक्य—(क्रोध का अभिनय करते) वषल, वषल, भत्य की तरह मरे ऊपर चढना चाहता है—

बधी हुई शिखा को फिर छोडनेके लिये यह हाथ दौड रहा है,

(भूमिपर पैर पटककर)

प्रतिज्ञापर आरूढ होनेके लिये यह चरण फिर चल रहा है।

नन्दोके नाशसे शान्त हो गई क्रोधाग्निको कालसे घिरा तू अब पुन प्रज्वलित कराना चाहता है ॥२९॥

६८ राजा—(सावेग स्वगतम) अये, तत् कथ सत्यमेव कुपित आर्य ? तथाहि,—
सरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षामयापि,
भ्रूभगोद्भेदधूम ज्वलितमिव पुन पिगया नेत्रभासा।
मन्ये, रुद्रस्य रौद्र रसमभिनयतस्ताण्डवे सस्मरन्त्या,
सजातोदग्रकम्प कथमपि धरया धारित पादघात [१] ॥३०॥

६९ चाणक्य —(कृतक कोप सहृत्य) वृषल, वृषल, अल उत्तरोत्तरेण ? यदि अस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते, तस्माद् इद शस्त्र तस्मै दीयता इति । (शस्त्रमुत्सृज्य उत्थाय च प्रत्यक्षवत् आकाशे लक्ष्य बद्ध्वा स्वगतम्) । राक्षस, राक्षस, एष एव भवत कौटिल्यबुद्धिविजिगीषोर्बुद्धे प्रकष ,—
चाणक्यत स्खलितभक्तिमह सुखेन,
जेष्यामि मौयमिति सम्प्रति य प्रयुक्त ।
भेद , किलैष भवता सकल स एव,
सम्पत्स्यते, शठ, तवैव हि दूषणाय[२] ॥३१॥
(इति निष्क्रान्त) ।

७० राजा—आय वैहीनरे, अद्य प्रभृति अनादृत्य चाणक्य चन्द्रगुप्त स्वयमेव राज्यकार्याणि करिष्यतीति गृहीतार्था प्रकृतय क्रियताम् ।

७१ कचुकी—(स्वगतम्) कथ निरुपपद एव 'चाणक्यो' न 'आय चाणक्य' इति । सत्यमेव हृतोऽधिकार , अथवा न खलु अत्र वस्तुनि देव दोषेण अवगन्तु अर्हामि—
स दोष सचिवस्यैव, यदसत् कुरुते नृप ।
याति यन्तु प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम् ॥३२॥

---

[१] स्रग्धरा, [२] वसतलिका

६८ राजा—(आवेगके साथ अपने आपसे) अये, तो क्या सचमुच ही आय कुपित हो गये? क्योकि—

कोपसे फडकनेवाली पलकोसे बहते निमल जलके प्रक्षालनसे छोटी हुई भी पीली नेत्र किरणो द्वारा, भकुटी ताननेसे उठे धूमवाले फिरसे मानो जले, मानता हू ताडवमे रौद्ररसके अभिनय करते रुद्रका स्मरण करती, उठे हुये भारी कपनवाले पद के प्रहारको पथिवीने जसे तैसे धारण किया ।।३०।।

६९ चाणक्य—(बनावटी कोप हटाकर) वृषल, वषल, रहने दो उत्तरके उत्तरको। यदि हमसे बडा राक्षसको समझते हो, तो इस हथियारको उसे दे दो। (हथियार छोडकर और उठकर प्रत्यक्षकी तरह आकाशमे लक्ष्य करके अपने आपसे) राक्षस, राक्षस, कौटिल्यकी बुद्धि जीतनेकी इच्छुक आपकी बुद्धिका यही बडप्पन है—

चाणक्यसे हटी भक्तिवाले मौयको अब मै आसानीसे जीतूगा, यह (सोच) इस समय जो तुमने फूट डाली, वह सब निश्चय ही शठ, तेरे ही दूषण के लिये होगा ।।३१।।

(निकल गये)

७० राजा—आय, वहीनरि, आजसे चाणक्यकी पर्वाह न करें, चन्द्रगुप्त स्वय ही राज्यका काम-काज करेगा, यह प्रजाको समझा दो।

७१ कचुकी—(अपने आपसे) क्या बिना उपाधि के ही चाणक्य 'आय चाणक्य" नही। हन्त, सचमुच ही अधिकार खतम हुआ, अथवा इस बातमें राजामे दोष देखना अच्छा नही है।

वह मन्त्रीका ही दोष है, जो कि राजा असद् आचरण करता है। हाथीवानके प्रमादसे गज दुष्ट कहलाता है ।।३२।।

७२ राजा—आर्य, क्या सोचते हो?

कचकी—देव, कुछ नही मोचता, केवल इतना ही अर्ज करता हूं, खशी है, कि देव अब देव (राजा) हो गये।

७३ राजा—(अपने आपमे) इस प्रकार हमारे (कार्यभार) ग्रहण करने पर अपने कार्य की सिद्धिकी कामनावाले आर्य सफल होवे। (प्रकट) शोणोत्तरा, इस सूखी कलह के कारण सिरकी पीडा मुझे दु ख दे रही है सो शयनगृहको बताओ।

प्रतिहारी—आये, आये महाराज।

७४ राजा—(आसनसे उठकर अपने आपसे)

आजके तिरस्कारसे ही मानो गौरव-उल्लघन करनेवाली मेरी बुद्धि, पथिवीके छेदमें प्रवेश करनेको प्रवृत्त हुई। सचमुच ही जो गुरुओको नही सम्मानित करते, उनके हृदयको लज्जा तोड क्यो नही देती ।।३३।।

(सब चले गये)।

—अक ३

भाग ४

अपभ्रंश (१)

(पूर्वकाल ५५०–७०० ई०)

२५.	सुबन्धु	(५६० ई०)
२६.	दंडी	(५८० ई०)
२७.	भट्टि	(६१० ई०)
२८.	विज्जा	(,,)
२९.	वाण	(६२० ई०)
३०.	हर्षवर्धन	(६०७-४७ ई०)
३१.	मयूर	(६२० ई०)
३२.	अमरुक	(६७० ई०)
३३.	भर्तृहरि	(,,)
३४.	शीला भट्टारिका	(,,)
३५.	माघ	(६७५ ई०)
३६.	भवभूति	(७०० ई०)

४. अपभ्रंश (५५०-१२०० ई०)

(१) पूर्व-काल (५५०-७०० ई०)

बाणने भाषाकवि ईशानका उल्लेख प्राकृत कविसे भिन्न किया है, जिससे साफ है, कि बाणके समय लोक भाषा प्राकृतसे भिन्न थी। इस कालकी भाषाका नाम अपभ्रंश था। यद्यपि अपभ्रंश शब्दका प्रयोग भाषाके तौरपर पतंजलि (१५० ई० पू०) ने भी किया है, लेकिन वहां वह संस्कृतसे भ्रष्ट उच्चारण रखनेवाली भाषाओंको अपभ्रंश कहा गया है। पतंजलिके समयकी वह भाषा पालि थी। विशेष कालकी भिन्न भिन्न भाषाओंके सामूहिक नामके तौरपर अपभ्रंश शब्दका प्रयोग बाणके बादसे हुआ है, जब कि प्राकृतका स्थान दूसरी भाषाने लिया। ईशान इसी भाषाके कवि थे। उनका नाम पीछे अपभ्रंश कवियोंको भी मालूम था, लेकिन उनकी कोई कृति हमारे पास तक नहीं पहुंची।

अपभ्रंश-कालने हमें सुबन्धु, दण्डी और बाण जैसे महान गद्यकार कवि प्रदान किये, जो बतलाता है, कि अब लोग गद्यकी महिमाको मानने लगे थे। अफसोस है, स्वयं अपभ्रंश भाषामें ऐसे गद्य नहीं मिलते। अपभ्रंश भाषा एक ऐसी भाषा है, जो उच्चारणमें प्राकृतका पूरा अनुसरण करती है, लेकिन व्याकरणमें कनउजी के अत्यन्त नजदीक है। यहां मैं केवल उस अपभ्रंशके बारेमें कह रहा हूँ, जो कि साहित्यके रूपमें सुरक्षित है, और जो उस समयके सबसे बड़े राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र कान्यकुब्जकी भाषा थी। व्याकरणके दूर होनेके कारण अब प्राकृतकी तरह संस्कृत उच्चारणोंके परिवर्तनसे भाषाका समझना आसान नहीं था। इसलिए कविताके सभी रसिक और पारखी अब संस्कृत कविताका आनंद नहीं ले सकते थे, और न उसके ऊपर अपनी राय देकर प्रभाव डाल सकते थे। इस प्रकार अब संस्कृत कवि इन बहुसंख्यक अधिकारियोंसे वंचित हो गये। संस्कृत कविताका अब वही आनंद ले सकते थे, जिन्होंने संस्कृत

व्याकरण और साहित्यके अध्ययनमें काफी समय लगाया हो। उन्हीके वाह-वाह करनेपर कवि सफल हो सकता था, राजकवि और दरबारी कवि बनकर सुखी जीवन बिता सकता था। कविताको अब बहुत सीमित लोगोमें स्वीकृत होनेका अवसर रह गया और उसके लिये वही कसौटी थे। परिणाम यह हुआ, कि अपभ्रशकालमें क्लिष्टसे क्लिष्टतर भाषामे लिखनेकी होड लग गई, जिन अलकारोको परिमित और मर्यादित रखकर सुदर काव्य रचा जाता था उनकी भरमारको अब गुण समझा जाने लगा। कवि लोगोका सारा ध्यान शब्दालकारो और अर्थालकारोको ढूढ ढढकर सजानेमे लग गया। उन्हें यह ख्याल नहीं रहा, कि कालिदासकी सफलतामें उनकी भाषाकी सरलताका हाथ कम नही ह।

इस कालकी एक विशेषता ह कुछ स्त्री कवित्रियोकी कृतियोका हमारे पास तक आना। दूसरे कालोमे भी वह रही होगी, किन्तु उनकी कविताके अवशेष हमें इसी कालके मिलते ह। जहा इस कालके पुरुष कवियोने शब्दाडम्बरपर बहुत जोर दिया, वहा स्त्री कवित्रिया इस दोषसे मुक्त ह। विज्जा, शीला भट्टारिकाके पद्य बडे सुदर ह। गोवधन और हषवधनकी कविताओमें भी प्रसाद गुण ह, लेकिन, इन्हें अपवाद ही कहना चाहिये, क्योकि इस कालके सभी महाकवि प्रसाद गुणको कविताका दूषण मानते थे। यद्यपि भट्टिकी तरह सबने व्याकरण काव्य बनानेका प्रयास नहीं किया, किन्तु झुकाव उसी तरफ था, और श्री हषने तो अपनी कविता द्वारा दशनको भी सिखलानेकी कोशिश की ह।

२५ सुब घु (५६० इ०)

सुब घु प्राकृत और अपभ्र श कालोकी स धिमें पदा हुए थे। इस कालका पूव भाग काव्यकी दृष्टिसे बडा समद्ध हैं। इसी समय दण्डी, वाण जसे महान गद्यकाव्य रचयिता तथा भटटि, हष, मयूर, भतहरि, अमरुक, माघ, भवभूति, भटटनारायण, मुरारि जसे कवि और नाटककार पदा हुए।

जहा तक उपलब्ध कृतियोका सम्ब ध ह, सस्कृतके गद्य कवियोमें सुब घु सबसे पुराने ह। दण्डी, वाण उनकी परम्पराको आगे ले चलते ह। सुब घुकी कृतिका नाम "वासवदत्ता" ह, इस वासवदत्ताका वत्सराज उदयनकी प्रियतमा अवन्तिराजपुत्री वासवदत्तासे कोई सम्ब ध नही ह।

वासवदत्ता

(१) प्रास्ताविकम्—

१ करबदरसदृशमखिल भुवनतल यत्प्रसादत कवय ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतय सा जयति सरस्वती देवी ॥१॥

२ भवति सुभगत्वमधिक विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।
वहति विकाशितकुमुदो द्विगुणरुचि हिमकरोद्योत ॥५॥

३ विषधरतोऽप्यतिविषम खल इति न मृषा वदन्ति विद्वास ।
यदय नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुन पिशुन ॥६॥

४ हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लघयति खल सुजनम् ।
दर्पणमिव त कुरुते तथा तथा निमलच्छायम् ॥९॥

५ सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कक ।
सरसीव कीत्तिशेष गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥१०॥

६ अविदितगुणाऽपि सत्कविभणिति कर्णेषु वमति मधुधाराम्
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृश मालतीमाला ॥११॥

२५ सुबन्धु (५६० ई०)

सुब धु "न्यायवार्तिक" रचयिता उद्योतकरके बाद हुए। कौनसे प्रदेशमें पदा हुए, आदिके बारेमें कुछ पता नही लगता। बहुत सम्भव ह, वह मध्यदेश (हि दी प्रदेश) के निवासी थे। विक्रमादित्य (गुप्तवशी) के कीतिशेष रहनेका इ हें बहुत अफसोस था, क्योकि इ हे विक्रमादित्य जसा गुणग्राहक कहीं नहीं मिला। सुब धुके समयसे चार सौ वष पहले भी गद्यकी नई छटा आरम्भ हो गई थी, यह रुद्रदामा (१६०–१७० ई०) के गिरनारवाले शिला लेखसे पता लगता ह। वाणने भटटार हरिश्च द्रके गद्यब धकी तारीफ की हैं, जो अब उपलब्ध नहीं ह। सम्भवत वह सुब धुसे भी पहले हुए थे।

वासवदत्ता

१ प्रस्तावना—

१ जिसकी कृपासे हाथमें स्थित वैरके समान सारे भुवनको,
सूक्ष्ममति कवि देखते हैं, उस सरस्वती देवीकी जय हो ॥१॥

२ दूसरेके गुणोको फैलानेवाले सज्जनका सौभाग्य अधिक होता हैं। कुमुदको विकसित करनेवाले च द्रमाकी रोशनी की रुचि दुगुनी होती हैं ॥५॥

३ विद्वान झूठ नही कहते, कि खल सापसे भी अधिक विषम हैं।
क्योकि साप नकुलका द्वेषी है, तो चुगल सुकुलका॥६॥

४ राख से मलिन हाथकी तरह खल जसे जैसे सज्जनको अपमानित करता हैं दपणकी तरह वह वैसे ही वसे उसे निमल आकारका बनाता हैं ॥९॥

५ सरोवरकी तरह पृथिवीपर विक्रमादित्यके कीर्तिशेष हो जाने पर वह रसज्ञता नष्ट हो गई, नये (तुच्छ राजा) विलासी हैं, फिर कौन किसके पास नही जायगा ॥१०॥

६ अज्ञात गुणोवाली भी सत्कविकी वाणी कानमे मधुकी धारा गिराती हैं। सुगधित न हुई भी चमेलीकी माला आखोको आकृष्ट करती है ॥११॥

७ सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धु ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध विन्यासवैदग्ध्यनिधिनिबन्धम् ॥१३॥

(२) नायक कन्दर्पकेतु —

८ अभूदभूतपूव सर्वार्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशोणकोण कषणनिमलीकृतचरणनखमणिर्नसिह इव दर्शितहिरण्य-कशिपुक्षेत्रदानविस्मय, कृष्ण इव कृतवसुदेवतपणो, नाराण इव सोकयसमासादितधरणिमण्डल महानायको राजा चिन्तामणिनाम । यत्र च शासति धरणिमण्डल छलनिग्रह-प्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, कण्टकयोगो नियोगेषु परीवादो वीणासु, खलसयोग शालिषु, द्विजिह्वसगृही तिराहितुण्डिकेषु, करच्छेद क्लृप्तकरग्रहणेषु, नेत्रोत्पाटन मुनीना, द्विजराजविरुद्धता पकजाना, सावभौमयोगो दिग्गजस्य, अग्नितुलाशुद्धि सुवणाना, सूचीभेदो मणीना, शूलभगो युवतिप्रसवे, दु शासनदशन भारते, करपत्रदारण जलजानाम् ।

९ तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दन, हिमालय इव जनित-शिव, मन्दर इव भोगिभोगाकित, कैलास इव महेश्व-रोपभुक्तकोटि, मधुरिव नानारामानन्दकर, क्षीरोदमथनो-द्यतमन्दर इव मुखरितभुवन, रागरज्जुरिवोल्लासितरति, इशानभूतिसचय इव सन्ध्योच्छलित, शरन्मेघ इवावदात-हृदयो विष्णु पदावलम्बी च, पाथ इव समरसाहसोचित, कस इव कुवलयापीडभूषित, ताक्ष्य इव विनताऽऽनन्दकर

७ सरस्वतीके दिये वरके प्रसादवाले, सज्जनोके एक मात्र बधु सुबधुने प्रतिअक्षर श्लेष-सहित प्रबध रचना-चातुरीकी निधिसमान (इस) ग्रथ को रचा ॥१३॥

२ नायक कदर्पकेतु—

८ अभूतपूर्व सार पृथिवीपतियोके सुदर चूडामणिरूपी कसौटीके कोनके घर्षणसे निर्मल किये चरण नखरूपी मणियोवाला, नरसिंहकी तरह हिरण्यकशिपु-क्षेत्रके दानका विस्मय दिखानेवाले कृष्णकी तरह वसुदेवको तृप्त किये नारायणकी तरह आसानीसे पृथिवीमडलको प्राप्त किये अचचल भी महानायक चिंतामणि नामक राजा हुये। जिनके पृथिवीमडलके शासन करते समय छल और निग्रहका प्रयोग शास्त्रार्थोमें होता, नास्तिकता चार्वाकोमें कटकका सयोग नियोगो (आज्ञाओ) में परिवाद (निंदा) का वीणाओमे खल (खल, खलिहान) का सयोग धानोमे दो जीभ (साप) का सग्रह सपेरो के पास, कर (टेक्स) का छद विहित करोके लेनेमें नेत्र उखाडना (उघाडना) मुनियोका द्विजराज (चद्र) से विरोध कमलोका, सारी भूमिमें योग दिग्गजका अग्नि और तुलाकी शुद्धि सुवर्णोकी, सूची (सूई) से छेदना मणियोका शूलकी पीडा तरुणियोके प्रसवमें, दुशासनका दर्शन महाभारतमे करपत्र (आरा, करसे पत्र) द्वारा विदारण कमलोका था।

९ पारिजातकी तरह नन्दन (वन) मे आश्रित, हिमालयकी तरह शिव (मगल) का उत्पादक मदरकी तरह भोगी (सर्पो के) भोग (फण) से चिह्नित कैलासकी तरह महेश्वर से उपभुक्त कोटि (शिखर या उत्कर्ष) वाला, मधुकी तरह नाना रामाओको आनददायक, क्षीर सागरके मथनको तैयार (खडे) मदरकी तरह भुवनको मुखरित करनेवाला रागकी रस्सीकी तरह रतिका उल्लासक शकरकी विभूतिके सचयकी तरह सध्यासे उठा, शरद्के मेघकी तरह उज्ज्वल हृदयवाला और विष्णुपद (आकाश) का अवलम्बी, अर्जुनकी तरह समर साहस मे योग्य, कसकी तरह कुबलयापीड

सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोडीकृतसुतनु, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्म, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठित, जलधरसमय इव विमलतरवारिधाराञासितराजमण्डल, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वर, मुक्तामयोऽप्यतरलमध्य, वंशप्रदीपोऽप्यक्षतदशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतुर्नाम।

१० येन च चन्द्रेणेव सकलकलाकुलग्रहेण, शर्वरीतिहारिणा, दलितकैरवेण, प्रसाधिताशेन विलोकिता, जलधय इव परामृद्धिमवापु ।

(३) स्वप्ने वासवदत्ता-दर्शनम्—

११ अथ स कदाचिदवसन्नाया यामवत्या दधिधवलकालक्षेपणकमासपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुञ्ज इव, मेनकास्वमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छत्रच्छायमण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिषण्णशिरसो राजतताटकचक्र इव, श्यामश्यामाया, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीबध्वा, अपरजलधिपयसि शखकान्तिकार्मुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके, शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु, कलप्रलापपरागबोधितचकिताभिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्धाध्ययनकमठेषु, वटुषु विभासरागमुखरकापटिकजनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु, विजयपताकामिव मकरध्वजस्य, आजिभूमिमिव मदनस्य, सकेतभूमिमिव लावण्यस्य, विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य, एकायतनशालामिव

(कमल, शिरोभूषा) से भूषित, गरुडकी तरह विनता (नम्र) का आनदकर और सुमुख नदन (पुत्र), विष्णुकी तरह व्यापक सुंदर नन, भीष्मकी तरह अपने वशमें काल (मत्यु) यमको किये, कौरवोंके व्यूहकी तरह सुशमा (सुनय) द्वारा अधिष्ठित, वर्षाके समयकी तरह अधिक निमल जलधारासे सत्रासित राज(हस) मंडलवाला, सुबाहुका तरह राम, (रामा सुंदरी) का आनद दायक, सम दृष्टि (युग्म आखो वाला) भी महेश्वर, मुक्तामय भी अचंचल मध्य (हृदय) वाला, वंश (बास) का प्रदीप भी अक्षत दश (दशा) वाला, (राजा चिंतामणि) का कन्दर्पकेतु नामक पुत्र था।

१० और जिसके द्वारा चंद्र द्वारा सारी कलाओंके ग्रहणसे शंकरीति (शकरकी रीति) मनोहर, दलित कुमुद (धूत) वाले, स्वायत्त किये आशा (दिशा) वाले (उसके) द्वारा देख जाते, समुद्रकी तरह उल्लसित गोत्र (जल) वाले दूरवर्धित जीवनवाले, प्रसन्न हृदय संतजनो ने परमऋद्धि को प्राप्त किया।

३ स्वप्नमें वासवदत्ता दर्शन—

११ तब वह एक बार भिनसारमें (जब कि) कुमुदिनीपति ((चंद्र), दहीकी तरह श्वेत, कालरूपी क्षपणक (साधु, नाशक) के मासपिंड सा निशारूपी जमुनाके फेनपुंज सा मेनकाके माजनके लिये निजी श्वेत शिलाखंड सा मधुछत्र से आकाशमें गर्भित अस्ताचलके तकियेके साथ सुखसे बैठे सिरवाला, रूपेकी तडागीके चक्र सा सांवली-सांवली रात्रिरूपी वधूके बचे मद्यवाले प्यालेसा होते पश्चिम (दिशारूपी) समुद्रके जलमें शंखकी कान्ति (ढूढने) का इच्छुक सा हो रहा था, (जबकि) शिशिरकी ओसकी फुहारोसे गीले कुमुदके भीतर भंवर बधे चरणोवाले थे कोमल कथनरूपी परागसे जगाई चकित अभिसारिका सी मैनाये, जगकर अध्ययनमें भिडे से छात्रो, विभास, (विहाग) रागसे याचकजन सडको पर काव्य कथाये गा रहे थे, (उसी समय) कामदेवकी विजय पताकाकी सी, मदनकी युद्धभूमिसी, लावण्य कीसकेत-भूमिसी, सौदयकी विहारस्थली सी सौभाग्यकी एक मात्र निवास-

सौभाग्यस्य, उत्पत्तिस्थानमिव कान्ते, स्तम्भनचूर्णमिव इन्द्रियाणाम्, आकर्षणमन्त्रसिद्धिमिव मनस, चक्षुर्बन्धनमहौषधिमिव मन्मथेन्द्रजालिन, त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापते, अष्टादशवर्षदेशीया कन्यामपश्यत् स्वप्ने।

१२ अथ ता प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबन्निव जनितेर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषसरसीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितु न शशाक। तथा हि—निर्लक्षमाकाशतले आलिगनार्थ प्रसारितबाहुयुगल, "एह्येहि प्रियतमे, मा गच्छ, मा गच्छे"ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव, चक्षुषि निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरिजनो दत्तकपाट परिहृतताम्बूलादिसकलोपभोगस्त दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्। अथ तस्य प्रियसखो मकरन्दो नाम कथमपि लब्धप्रवेशदर्शन, कन्दर्पसायकप्रहारपरवश कन्दर्पकेतुमुवाच—

१३ "सखे, किमिदमसाम्प्रतमसाधुजनोचितमध्वानमाश्रितोऽसि। तवैतच्चरितमालोक्य वितर्कदोलासु निवसन्ति सन्त। खला पुनस्त्वदनुचितमनिष्टमाचरन्ति। अनिष्टोद्भावनरसोत्तर हि भवति खलहृदयम्। को नामाऽस्य तत्वनिरूपणे समर्थ ?"

कथमपि स्मरशरप्रहारपरवश कन्दर्पकेतु परिमिताक्षरमुवाच —

शाला, क्रान्तिक उत्पत्तिस्थान सी, इन्द्रियोंके स्तम्भन करनेवाले चूणसी, मनक आकषण मन्त्रकी सिद्धि सी, कामदेवरूपी इन्द्र-जालिक की नजर बाधनेवाली महौषधिसी, त्रिभुवनको लोभनेवाली ब्रह्माकी सृष्टि सी, अठारह वषकी कन्या को स्वप्नमें देखा।

१२ तब खुश हो आखे फाड पीते हुयसे, चिरसेवित ईर्ष्यालु निद्रासे वह मानो युक्त हो गया। तब जगकर मानो विषके सरोवरमें दुजन-वचन मे डूबा हुआ सा वह अपनेको थाम न सका। और अलख आकाशमे आलिंगनके लिय दोनो बाहोको फैलाये 'आ, आ प्रियतमा, मत जा, मत जा," बोलते दिशाओ और विदिशाओमें प्रियतमाको विलिखित सी, आखमे उत्कीण सी, हृदयमे जडी सी (जानकर) पुकारने लगा। तब वही शैय्याक ऊपर लेटा सारे परिजनोको हटा किवाड दकर ताम्बूल आदि सारे उपभोगोको छोड उसने वह दिन बिताया। उसी तरह रात भी स्वप्न समागमकी इच्छासे किसी तरह बिताई। तब उसका प्रिय मित्र मकरन्द जसे कैसे घरके भीतर प्रवेश और दशन पाकर कामदवके वाणोके प्रहार के पराधीन कदपकेतुसे बोला—

१३ 'मित्र, क्यो इस अनुचित असाधुजनोक योग्य मागपर चल रहे हो? तुम्हार इस आचरणको दखकर सतजन सदेहके हिंडोलेमे झूल रहे ह और खल तुम्हारे लिये अनुचित और अनिष्ट हकत कर रहे है। खलोका हृदय अनिष्ट के उदभावनमे रस लेता है, इसकी वास्त-विकता कौन बतला सकता है?

(इस पर) कामदेव के वाणाके प्रहारसे विवश कदपकेतुने किसी तरह चद अक्षरोमें कहा—

१४ "वयस्य, दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्यस्मादृशजनचितवृत्ति । नायमुपदेशकाल । पच्यन्त इव मेऽगानि । क्रुष्यन्त इवेन्द्रियाणि । भिद्यन्त इव मर्माणि । निस्सरन्तीव प्राणा । उन्मूल्यन्त इव विवेका । नष्टेव स्मृति । अधुना तदलमनया कथया । यदि त्व सहपासुक्रीडासमदु खसुखोऽस्मि, तन्मया सममागम्यतामि"त्युक्त्वा परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निजगाम ।

१५ विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यत—
यश्च प्रबृद्धगुल्मतया रोगीव दृश्यमानबहुधातुविकार, साधुरिव सानुग्रहप्रचारप्रकटितमहिमा, मीमासान्याय इव पिहितदिगम्बरदशन । यश्च हरिवशैरिव पुष्कराक्षप्रादुर्भावरमणीयै, राशिभिरिव भीममकरकुलीरमिथुनसगतै, करणैरिव शकुनिनागभद्रवालबकुलोपेतै, देवखातैरुपशोभितान्त । यश्च छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्राभि, वशपत्रपतिताभि, पुष्पिताग्राभि, प्रहर्षिणीभि शिखरिणीभिर्लताभिदर्शितानेकवृत्तविलास ।

(४) कुसुमपुर-राजकन्या वासवदत्ता—

१६ अस्ति मन्दरगिरिश्रृङ्गैरिव प्रशस्तसुधाधवलै बृहत्कथालम्बैरिव शालभञ्जिकोपशोभितै, वृत्तैरिव समाणवकक्रीडितै, करियूथैरिव समत्तवारणै, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षै, बलि-

१४ "मित्र, दितिकी तरह शतमन्यु (इन्द्र या सौ क्रोधो) से समाकुल होती है हमारे जैसे लोगो की चित्तवत्ति। यह उपदेशका समय नही। मेरे अग जल रहे है, जीवन निकालेस जा रहे है हृदय फट सा रहा है, प्राण निकल से रहे है विवक उन्मूलित स हो रह है स्मति नष्टसी हो रही है। सो अब यह बात रहन दो। यदि तुम बचपन से साथ धूलखेलनक समयसे दुख सुखके साथी हो तो मेरे साथ चलो", यह कह परिजनोम छिप कर वह उसक साथ नगरसे निकल पडा।

१५ (आग विन्ध्य पवत दिखाई पडा)—

जो बढी हुई झाडियोसे रोगोसा बहुतसी धातुओ (सोना चादी या वात-पित्त आदि)को विकारोको दिखाता साधुकी तरह सानुग्रह (शिखरपर ग्रहोक या अनुग्रह सहित) प्रचारसे (अपनी) महिमा प्रकट करता, **मीमासाशास्त्र**की तरह **दिगम्बर** (आकाश या जैन) दशन को ढक था। जो **हरिवशो** की तरह पुष्कराक्ष (कमल-नयन या हस) के प्रादुर्भावसे रमणीय राशियोकी तरह मीन मकर-ककट मिथुन (मछली, मगर, केकडाके जोडो) से सयुक्त, करणो (तिथि आदि) की तरह पक्षी नागवल्ली, तरुण मौलसरीसे युक्त अमानुष निर्मित सरोवरो द्वारा भीतर से शोभित था। और जो **छन्दोविचिति** (छद ग्रथ) की तरह कुसुमोसे विचित्र (कुसुमविचित्रा) बासके पत्ते पर गिरे (वशस्थ) पुष्पिताग्र, प्रथिताग्रा (छद या फले अग्रभाग), प्रहृषणी (एक छद या हृषकारक), शिखरिणी (छद या शिखरवाली) लताओसे अनेक प्रकारके वत्तो (छदो या बातो) की शोभाको दिखला रहा था।

४ पटनाकी राजकुमारी वासवदत्ता—

१६ मन्दर पवतकी चोटियोकी तरह प्रशस्त चूनेसे श्वेत, **बृहत्कथा** (ग्रथ) के लम्बो (सर्गो) की तरह शालभजिकाओ (पुतलियो) से शोभित वृत्तो (छदो या वतमान) की तरह छात्रोकी क्रीडावाले, गज समूहोकी तरह मत्तगजो सहित, सुग्रीवकी सेनाओकी तरह गवाक्षो (जगलो या उस नामके वानर सेनापति) से युक्त, बलि

भवनैरिव सुतलसन्निवेशे, वेश्मभिरुद्भासितम्। धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असख्येनापि सख्यावता, अममभेदिनाऽपि वीरतरेण। अपतितेनापि नानासवासक्तेन, सुदर्शनेनाप्यचक्रेण, अजातमदेनापि सुप्रतीकेन, हसेनाप्यपक्षपातिना, अविदितस्नेहक्षयेणापि कुलप्रदीपेन, अग्रन्थिनापि वशपोतेन, अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन, निदाघदिवसेनेव वृषवर्धितरुचिना, माघविरामदिवसेनेव तपस्यारम्भिणा, नभस्वतेव सत्पथगामिना, विवस्वतेव गोपतिना, महेश्वरेणेव चन्द्र दधता निवासिजनेनानुगतम्। घनापगमेनेव दर्शितखण्डाभ्रेण, वेलातटेनेव प्रबालमण्डनेन, गजेन्द्रेणेव पल्लववर्धितरुचिना, कोकिलेनेव परपुष्टेन, भ्रमरेणेव कुसुमेषुलालितेन, जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन, महानटबाहुनेव बद्धभुजगाकेन, गरुडेनेव विलासिहृदयतापकारिणा, बन्धकेनेव शूलानामुपरिगतेन वेश्याजनेनाधिष्ठित कुसुमपुर नाम नगरम्।

(राजा या बलि कम) के भवनोकी तरह सुतल (पाताल) या सुदर भूधरा के स्थानोवाले गहो से चमचमाता (वह नगर) था। (उसके) निवासी धनद (कुबेर या धन देनेवाले) प्रचेतस (वरुण या समझदार) गोपालके साथ रामसे प्रियवादीके साथ पुष्पकेतु (फूल और ध्वजा या कामदेव) से भरतके साथ लक्ष्मणसे भी, तिथिवाले भी अतिथि (सत्कार) परायण, असख्य भी सख्यायुक्त (ज्ञानी) बिना मम भेदे भी अतिवीर, न गिरे भी नाना आसव (मद्य) मे आसक्त, सुदशन (चक्र या देखनेमे सुदर) भी अचक्र (अकपट) अनुत्पन्न मदवाले भी सुप्रतीक (सुन्दर अग या देवगज), हस भी अपक्षपाती (बिना पख उडनेवाले या न-पक्षपाती), अज्ञात स्नेह (प्रेम या तेल) की हानिसे भी कुल प्रदीप, बिना ग्रँथिके भी वशके पोत (बच्चे या छोटे बास), ग्रह न होते भी काव्य (कविता या शुक्र) तथा जीव (बृहस्पति या जीव या काम) के ज्ञाता, गर्मीके दिनकी तरह वृष (वषराशि या धम) की रुचि (तेज वधक), माघके विराम दिवसकी तरह तपस्या करनेवाले, वायुकी तरह सत्पुरुषो (या नक्षत्रो) के पथ पर जानेवाले, सूयकी तरह गोपति (किरणोके या गायोके स्वामी), महेश्वरकी तरह चद्र (या सुवण) धारण करनेवाले थे। जिस **कुसुमपुर** की निवासिनी वेश्याये थी बादलके हटनेसे दिखलाई देते मेघ-खडोसी, समुद्रके किनारेकी तरह प्रवाल (मूगे) के मडनवाली, देवागनाओकी तरह इद्राणीकी परिचर्यामे चतुर, गजेद्रकी तरह पल्लवमे रुचि (या पल्लवसे कान्ति) बढाये, कोयलकी तरह परपुष्ट (दूसरेसे पोषित या परम पोषणयुक्त), भवरकी तरह कुसुमेषु (कामदेव या फूलोमें) लालित, (या जलगहोकी तरह) रक्त (रुधिर या अनुरक्त) के आकषणमे निपुण, महानट (बडे नट या शकर के) बाहकी तरह बधे भुजग (साप या लपट) वाली, गरुडकी तरह विलासियोके हृदयोको ताप करनेवाली बुध की तरह शूलपर चढी।

१७ प्रचण्डप्रतिपक्षलक्ष्मीकेश-पाशकुसुममालामोदसुरभितकर-कमल, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकायसम्पादक, पार्थ इव सुभद्रान्वित सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्य-भामोपेत सबलश्च, शृंगारशेखरो नाम राजा प्रति-वसतिस्म । यो बलभित्, पावक, धमराट्, निऋति प्रचेता सदागति धनद, शकर इत्यप्टमूर्तिरप्यनष्ट-मूर्ति ।

१८ तस्य चाभूदेवविधस्य राज्ञो महिषीदिग्गजमदरेखेवा-नन्दितालिगणा, पावतीव सुकुमारा चन्द्रलेखालकृता च वनराजिरिव नवमालिकोद्भासिता सचित्रका च, अप्सर सहतिरिव सहतसुकेशी सुमजुघोषा च, सर्वात-पुरप्रधानभूता अनगवती नाम। तयोश्च मध्यमो-पान्ते वयसि वतमानयो कथमपि दैववशात् त्रिभुवन-विलोभनीयाकृति, पुलोमतनयेव नदितसहस्रनेत्रा, मेरु-गिरिमेखलेव सुजातरूपा, शरन्निशेव उल्लसत्तारका, सत्परिषदिव अच्छिद्रद्विजपक्तिभूषिता, राक्षसकुललक्ष्मीरिव माल्यवत्सुकेशशोभिता तनयाऽभूद् वासवदत्ता नाम। अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसितगोत्रे, विन्ध्याचल इव मदनालकृते, पारावार इव सजातलावण्ये, नन्दवन इव सदाकल्पतरूणामभिनन्दिते, पवन इव सुमनोहरे, परिणाम-मुपयात्यपि यौवने परिणयपराङमुखी तस्थौ ।

[१७ **श्रृंगारशेखर** राजा बसता था (जोकि) था, प्रचड शत्रुकी लक्ष्मीके केशोकी कुसुममालाकी सुगधसे सुगधित करकमलवाला प्रशसनीय क्यारीकी तरह बहुत धान्य और कायका सपादक, अर्जुनकी तरह सुभद्रा (या भद्रजना से) युक्त और भीमसेन (भयानक सेना) से युक्त, कृष्णकी तरह सत्यभामा (या सत्यके प्रकाश) से और बल (शक्ति या बलराम) से युक्त, जो शत्रुओका नाशक (या इन्द्र) पावक (पवित्र), धमराज, निरुपद्रव (या दिक्पाल) शकर (या कल्याण कारी) होनस अष्टमूर्ति भी अनष्ट (या नही आठ) मूर्तिवाला था।

१८ उस राजाकी पटरानी अनगवती थी, (जोकि) दिग्गजोकी मद रेखा सी आनदित अलिगणो (सखियो या भ्रमरो) वाली पार्वतीकी तरह सुकुमार और चन्द्रलेखा (सुन्दर कार्तिकेय या चन्द्रलेखा हार) से शोभित, वनपक्तिकी तरह नवमालिका (एक फल या नवीन माला) से उदभासित और चित्रक (तिलक या वृक्ष विशष) सहित, अप्स-राओकी तरह सघन सुकेशी (सुकेशी अप्सरा) से युक्त, मजुघोषा (मजुभाषिणी या मजुघोषा अप्सरा) युक्त। उन दोनोके जवानीके अन्त होते समय दैववश कैसे ही वासवदत्ता नामक पुत्री पदा हुई (जो कि थी) त्रिभुवनको लुभानेवाली आकृतिसे शचीकी तरह सहस्र नत्र (इन्द्र या हजारो आखो) को आनदित करनवाली, मेरुपवतकी मेखलाकी तरह सुजातरूपा (सुन्दर उत्पन्न रूप या सुन्दर सुवण वाली), शरदकालकी रात्रि की तरह तारा (पुतली या नक्षत्रो) को उल्लसित करनेवाली सत परिषद्की तरह छिद्र (दोष) रहित द्विजोसे भपित, राक्षसकुलकी लक्ष्मीकी तरह माल्यवान् (या मालावाले) सुकेश (या सुन्दर केश) वालोस शोभित। वह पूरी तरुणाई मे, (जो-कि थी) रावणके भुज वनमे उल्लसित हुये गोत्रो (पवतो या सजातियो) वाली विंध्याचलकी तरह मदन (या उस नामके वक्ष) से अलकृत, सागरकी तरह लावण्य (सुन्दरता या क्षारपन)-सहित, नदनवनकी तरह सदा कल्पतरु (या सुन्दर तरुओ) से अभिनदित, पवनकी तरह सुमनोहर, भी विवाह विमुख थी।

१९ सा च क्षणेनै कैकश समवलोक्य विरक्तहृदया सती तस्मात् कर्णीरथादवततार। अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने,बालिन-मिवागदोपशोभितस्पर्धागृह लक्ष्मीसरस्वत्योा त्रिभुवन-विलोभनीयकृति कञ्चिद्युवान ददश ।

(५) कन्दर्पकेतु-सौदय विरह व्यथा—

२० स चिन्तामणिनाम्नो राज्ञस्तनय कन्दपकेतुरिति स्वप्न एव तन्नामादिकमश्रृणोत्। अनन्तरम् "अहो प्रजापते रूप-निर्माणकौशलम्! मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दशनो-त्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणुनादाय विर-चितोऽयमिति, अन्यथा कथविमास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति। वृथैव दमयती नलस्य कृते वनवासवैशसमवाप, मुधैवे दुमती महिष्यप्यजानुरागिणी बभूव। विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वासस शापमनुबभूव शकुन्तला। निरथकमेव मदनमजरी नरवाहनदत्त चकमे। निष्कारण-मेव उरुगारिमर्निर्जितरम्भा रम्भा नलकूबरमचीकमत्। व्यथमेव धूमोर्णा स्वय स्वयवराथमागतेषु देवगणेषू धमराजमाचकाक्ष। निष्प्रयोजनमेव ऋद्धिगन्धवपक्षेषु कुबेर माससाद। अहेतुकमेव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता वभूव।" इति बहुविध चिन्तयती, विरह मुर्मुरमध्यमाधि-रूढेव, मदनदावाग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्नि-गृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव, उन्मादपातालगृह प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वतमाना, हृदये विलिखित-मिव, उत्कीणमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलित-मिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपजरप्रविष्टमिव, मर्मा-न्तरस्थितमिव, मज्जारसशवलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पलल-सविभक्तमिव, कन्दपकेतु मन्यमाना, उन्मत्तेव, अन्धेव,

१९ (स्वयवर सभामे) वह क्षण भर एक एकको देखकर विरक्त हृदय हो मचसे उतर गई। तब उसी रात मे उसने स्वप्नमे बालिकी तरह अगद (या भूषण) से उपशोभित लक्ष्मी और सरस्वतीकी स्पर्धाके गह, तीनो लोकाको लुभानेवाली आकृतिवाल किसी तरुणको दखा।

५ कन्दर्पकेतुका सौंदय और विरह-व्यथा—

२० वह चिंतामणि नामक राजाका पुत्र कदपकेतु है, यह भी स्वप्नमे ही उसने उसक नाम आदिको सुना फिर (सोचने लगी) 'अहो, ब्रह्माके रूप निर्माणकी निपुणता! मै समझती हू अपनी निपुणताको एक जगह दिखलानेक लिये उत्सुक ब्रह्माने तीना जगत्के उपादान रूपक परमाणुओको लेकर इसे बनाया, नही तो कैसे इसकी विशष कान्ति होती? व्यथ ही दमयन्तीने नलके लिय वनवासकी पीडा सही। व्यथ ही पटरानी इदुमती भी अजकी अनुरागिनी हुई। व्यथ ही शकुतलान दुष्यतके लिये दुर्वासाक शापको भोगा। निरथक ही मदनमजरी नरवाहनदत्तपर आसक्त हुई। अकारण ही अपने उरुकी गरिमासे रभा (केले) को जीतनेवाली रभाने नलकूवरको प्यार किया। व्यथ ही धर्मोणान स्वयवरक लिये आय दवगणोमे स्वय धमराजसे प्रम किया। निष्प्रयोजन ही ऋद्धिने गधर्वोमें कुबेरका प्राप्त किया। विना हेतु ही पुलोमकी पुत्री (शची) देवद्र पर आसक्त हुई।" इस तरह बहुत प्रकारसे सोचती वह विरहके भोर (की आग) मे पडी मदनरूपी दावानलकी ज्वालासे ग्रसित सी, वसतकालकी अग्निमे पकडी सी, दक्खिनी हवारूपा भयकर पावकसे ग्रस्त सी, उन्मादरूपी भुईधरेमे प्रविष्ट सी, सुन्न इद्रियोवाली सी हुई। उसन हृदयमे कदपकेतुको जटित सा, उत्कीण सा, खचित सा, कीलित सा, बद्ध सा, वज्रलेप गठित सा, हड्डियोमें प्रविष्ट सा, कलेजे के भीतर स्थित सा, प्राणोमे व्याप्त सा अन्तरात्मापर अधिष्ठित सा, रुधिरमें, मज्जामें घुल गया सा मासमे मिल गया सा समझा। और वह उन्मत्ता सी,

बधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छा-गृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरगपरम्परापरिगतेव, रागरज्जुभि परिवारितेव, कन्दपकुसुमबाणै कीलितेव, शृगारभावनाविषरसघूणितेव, रूपपरिभावना-शल्यकीलितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती, "हा प्रिये सरयनगलेखे, वितर हृदये मे पाणिपद्म, दु सहो विरहसन्ताप । मुग्धे मदनमजरि, सिंचागानि चन्दन-वारिणा। सरले वसन्तसेने, सवृणु केशपाशम्। तरले तरगवति, विकिरागेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि, कलय वलय शैवालकलापेन। चपले चित्रलेखे, चित्रपटे विलिख चित्तचौर जनम्। भामिनि विलासवति, विक्षिपा-वयवेषु मुक्ताचूर्णनिकरम् । रागिणि रागलेखे, स्थगय नलिनीदलनिचयेन पयोधरभारम । सुकान्ते कान्तिमति, मन्द मन्दमपनय वाष्पविन्दून् । यूथिकालकृते यूथिके, सचारय नलिनीदलतालवृन्तेनाद्रवातान् । एहि भगवति निद्रे, अनुगृहाण मा । धिक् इन्द्रियैरपरै, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यगानि विधिना । भगवन् कुसुमायुध, तवायमजलि, अनुवशो भव भाववति मादृशे जने। मलयानिल, वह यथेष्ट, अपगता मम प्राणा" इति बहुविध भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन सम समुमूर्च्छ।

२१ अथ तस्यास्तमालिका नाम शारिका तत्प्रियसखीभि सम समालोच्य कन्दर्पकेतोर्भावमाकलयितु प्रेषिता ।

अन्धी सी, बहरी सी, गूगी सा, सूनी सी, सारे इन्द्रियोके बिना सी, मूछित सी, भूत पकडी सी, यौवन-सागरके चचल तरगोमे लीन सी, रागरूपी रस्सीसे वेष्टित सी, कदपके पुष्प-बाणोसे जडी सी, शृगार भावनाक विषरससे घूमने सिरवाली सी (तरुणके) रूपक सोचने रूपी शल्यसे कीलित सी, **मलयानिल** द्वारा जीवन हरी जाती सी सखियोसे कहन लगी—'हा प्रिय सखी अनगलेखा, मरी छातीपर अपने पाणिपकजको रख, विरहका सताप दुस्सह हो रहा है। मुग्धा मदनमजरी, चदनजलसे अगोको भिगो। भोली वसतसना, (मेरे) केशोको बाध। चचल तरगवती अगमे केवडके केसरको बिखर। सुन्दरी मदनमालिनी, सेवारका ककण बना। चपला चित्रलेखा, (मेरे) चित्तचोरको चित्रपटपर लिख। भामिनी विलासवती, अवयवामे मोतीके चूण डाल। रागिनी रागलखा, कमलिनीके पत्रोसे स्तनोका ढाक दे। सुदर कातिवाली कातिमती धीरे धीरे (मेरे) आसुओके बूदोको हटा। जूहोस अलकृत यूथिका, कमलिनीके पत्रके पखसे भागी भीगी हवा चला। भगवती, निद्रा आओ, मेरे ऊपर अनुग्रह करो। दूसरी इन्द्रियोको धिक्कार। ब्रह्मान क्यो अगोको लोचनमय नही बनाया? हे भगवान् कामदेव तुम्हारे लिये यह हाथ जोडती है भाववाले मेरे जैसे जनपर अनुकूल होओ। हे मलयवायु यथेष्ट बहो मेरे प्राण जा रहे है। (फिर) वह मूछित हो गई।

२१ तब उसकी तमालिका नामकी मैनाको प्रिय सखियोने सलाह करके कदपकेतुका समाचार जाननक लिये भेजा।

(६) वासवदत्ता-भवने—

२२ अथ सहष समुत्थाय मकरन्दस्ता तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत्। सा तु तस्मै कृतप्रणामा ता पत्रिकामुपानयत्। अथ मकरन्दस्तामादाय पत्रिका विस्रस्य स्वयमेवावाचयत्।

प्रत्यक्षदृभावाप्यम्थिरहृदया हि कामिनी भवति।
स्वप्नानुभूतभावा दृढयति न प्रत्यय युवति॥

२३ तच्छ्रुत्वा कन्दपकेतुरमताणवनिमग्नमिव, सर्वानन्दानामुपरिवतमानमिवात्मान मन्यमानो मन्द मन्दमुत्थाय प्रसारितवाहुयुगलस्तमालिकामालिलिग। अथ तयैव सार्धं समासीन—"कि करोति, कि वदति, कथमास्ते" इत्यादि सकल वासवदत्तावृत्तान्तमपृच्छत्। त च दिवस तत्रैवातिबाहृच तस्मात्प्रदेशात्तया सहोच्चचाल ससुहृत्कन्दपकेतु। अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली वत्तान्तममु कथयितुमिव मध्यम लोकमवततार।

२४ तत क्रमेण च विघटमानदलपुटकुमुदकाननकोशमकरन्दविन्दुमन्दोहसान्द्र नि ष्यन्दास्वादमुदितमधुकरकुलकलरुतमुखरितदिगन्ते, चन्द्रिकापानभरालसचकोरकामिनीभिरभिनन्दितागमने, सुरतभरपरिश्रमखिन्नपुलिन्दराजसुन्दरीस्वेदजल्कणिकापहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति, कन्दपकेतुस्तमालिलिकामकरन्दसहायो वासवदत्तानगरमयासीत्।

२५ अथ स प्रविश्य कटकैकदेश विनिर्मित, अभ्रलिहशिखरेण, सुधाधवलेन एकान्तरनिविष्टकनकमुक्तामरकतपद्मरागच्छलेन, वासवदत्तादर्शनाथमवस्थितदेवतागणेनेव सालवलयेन परिगत, अनिलोल्लासिताभिनभस्तरुकुसम-

६ वासवदत्ताके भवनमें—

२२ हर्षके साथ उठकर मकरदने तमालिकाको बुलाकर सब वृत्तान्तसे परिचित कराया। उसने प्रणाम कर उसके लिये लाई चिट्ठी सामने रक्खी। तब मकरदने चिटठी लेकर खोलकर स्वय पढा— 'भावोको प्रत्यक्ष देख भी कामिनी अस्थिर हृदयवाली होती है। स्वप्नमे भावोको अनुभव करनेवाली युवतीका विश्वास दढ नही हो सकता।"

२३ यह सुन अमृतसागरमें डूबे से, सभी आनदोके ऊपर अपनेको अवस्थित मानते से कदपकेतुने धीरे धीरे उठकर दोनो हाथोको फैला तमालिकाको आलिगन किया। फिर साथ बैठकर—"वह क्या करती है, क्या बोलती है कैसे है" इत्यादि कहते वासवदत्ताके सभी वृत्तात पूछे। वह दिन वही बिताकर उसीके साथ उस प्रदेशसे अपने मित्र कदपकेतुको लिय चला। इसी बीच भगवान् सूय भी इस वृत्तातको मानो कहनेके लिये पथिवीलोकसे नीचे उतरे।

२४ तब कदपकेतु तमालिका और मकरदके साथ वासवदत्ताके नगरमें शामको गया, जब कि क्रमश खिलते पत्रपुटवाल कुमुद-वनके कोशोसे मकरदके विदुओक घने क्षरण और आस्वादसे मुदित भ्रमरोके मदुल शब्दोसे दिशाये मुखरित थी, चादनीक पानके भारसे अलस चकोरिया जिसके आगमनको अभिनदित कर रही थी, परिश्रमसे खिन्न शबरराजसुन्दरीके स्वेद जलकणोको हटाता रात्रिके अतिक्षीण स्वासकी तरह सायकालका वायु बह रहा था।

२५ (नगरमे) प्रवेश कर **कार्तिकेय**-तुल्य प्रभाववाल कदपकतुने राजधानीके एक मागपर निर्मित वासवदत्ताके भवनको देखा, जिसका कि आकाशचुम्बी शिखर चूनेसा धवल था, (जो) एक ओर रक्खे सुवण मोती पन्ना लालक व्याजसे वासवदत्ताके देखनेके लिय अवस्थित दवतागणोका तरह, साल (वक्ष) की बल्लियोसे घिरा, सुरपुरकी शोभाको तर्जित करती वायुसे हिलाती पारिजात कुसुम-मजरियोकी

मजरीभिरिव तजयन्तीभिरिव गगनपुरश्रिय पताकाभिरुपशोभमान, निधानमिव कौतुकस्य, आस्थानमिव श्रृंगारस्य, कुलगृहमिव सकलविभ्रमाणा, सकेतस्थानमिव सौन्दयस्य, वासवदत्ताभवन ददर्श।

२६ प्रणयपेशला प्रमदानामालापकथा श्रृण्वन् कन्दपकेतुर्मकरन्देन सह तद्भवन प्राविशत्।

(७) वासवदत्ता-सौदयम्—

२७ अकरोच्च मनसि—अहो भुवनातिशायि सौन्दयम्। अहो श्रृंगारकलाकौशलम्। तथा ह्ययं तत्काललीलावहलविमलमालवीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो मण्डपोऽसावपि कनकशलाकाविनिमितयन्त्रपजरसयत क्रीडाशुक इत्यादिपरिचिन्तयन्, प्रविश्य, व्याकरणेनेव सरक्तपादेन, महाभारतेनेव सुपर्वणा, रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा, जघायुगलेन विराजमाना, छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनुमध्या, नक्षत्रविद्यामिव गणनीयहस्तश्रवणा, न्यायस्थितिमिवोद्यतकरस्वरूपा, बौद्धसगतिरिबालकारभूषिता, उपनिषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्ती, द्विजकुलस्थितिमिव चारुचरणा, विन्ध्यगिरिश्रियमिव सुनितम्बा, तारामिव गुरुकलत्रतयोपशोभिता, शतकोटियष्टिमिव मुष्टिग्राह्यमध्या, प्रियगुश्यामासखीमिव प्रियदशना, ब्रह्मदत्तमहिषीमिव सोमप्रभा, दिग्गजकरेणुकामिवानुपमा, रेवामिव नमदा, वेलामिव तमालपत्रप्रसाधिता, अश्वतरकन्यामिव मदालसा, वासवदत्ता ददर्श।

सी पताकाओसे शोभित था। जो कौतुककी निधि सा, शृंगाररसका दरबार सा सारी शोभाओके कुलगृह सा सौंदयका सकेत स्थान सा था।

२६ महिलाओके प्रेम मनोहर वार्तालापको सुनन कदपकेतु मकरदके साथ उस भवनम प्रविष्ट हुआ।

७ वासवदत्ताका सौंदर्य—

२७ कन्दपकेतुके मनम हुआ—"अहो भुवनमें सबसे बढकर (यह) सौंदय! अहो शृंगार कलाका कौशल! जैसे मालविकाओके तत्काल लीलामय विरल विमल दातोकी कातिवाल गजदतोसे गढा यह मडप है, यह भी सुवण शलाकाओके बने पिंजरमे रक्खा पालतू तोता" इत्यादि यह सोचते प्रवेश कर उसने व्याकरणकी तरह रक्तपाद (लाल चरण या तेन रक्त सूत्र) के साथ, **महाभारतकी** तरह सुन्दर पव (या ग्रथि) के साथ रामायणकी तरह **सुदरकाण्ड** (या मनोहर नाल) से सुचारु दोनो जाघोके साथ विराजमान वास-दत्ताको देखा। (वह थी) **छदोविचिति** (ग्रथ) की तरह तनुमध्या (छद या क्षीण कटि) हो शोभती, नक्षत्रविद्याकी तरह हस्त और श्रवण (नक्षत्र या हाथ और कान) से गणनीय (श्रेष्ठ), न्याय (शास्त्र) की स्थितिकी तरह **उद्योतकर** (नैयायिक या प्रकाशक) स्वरूपवाली **बौद्ध** सगतिकी तरह अलकार (आभूषण या सूत्रालकार) स विभूषित, उपनिषद की तरह एक आनदको उद्योतित करती, द्विज (पक्षी या ब्राह्मण) के कुलकी मर्यादाकी तरह सुदर चरणो (या चरण सूत्र) वाली, विंध्य पवतकी शोभाकी तरह सुदर नितम्ब (या पवत निम्नदेश) वाली, ताराकी तरह गुरुपत्नी (बहुत परिजनो) से उपशाभित, बेल की यष्टिकी तरह मुटठीमे कमर आ जानेवाली, प्रियगुश्यामा (कगुमी श्यामा सखी) प्रियदशना (नाम या सुदर रूपवाली) ब्रह्मदत्तकी महिषीकी तरह सोमप्रभा (या चद्रमाकी कातिवाली), दिग्गजकी हथिनियोकी तरह अनुपमा (या उपमा रहित), रेवाको तरह नमदा (नदी या क्रीडा दनेवाली), समुद्रतटकी तरह तमाल पत्रोमे सजाई गई अश्वतर कयाकी तरह मदालसा (रानी या मदसे अलस)।

(८) किं करणीयम्—

२८ अथ ता प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबत कन्दर्पकेतो- जहार चेतना मूर्च्छा। तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ। अथ मकरन्दसखीजनप्रयत्नाल्लब्धसज्ञावेतावे- कासनमलचक्रनु। अथ वासवदत्ताया प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सर्वविस्रम्भपात्र कलावती नाम सखी कन्दर्प- केतुमुवाच "आर्यपुत्र, नाय विस्रम्भकथानामवसर। अतो लघुतरमेवाभिधीयते। त्वत्कृते याऽनया वेदनाऽ- नुभूता, सा यदि नभ पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा मिकपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा। त्वयापि राज्यमुज्झित किं बहुना आत्मा सकटे समारोपित एव। एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता प्रभाताया शवर्या यौवना- तिक्रमदोषशकिना पित्रा हठेन विद्याधरचक्रवतिनो विजयकेतो पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति निश्चिता। अनया चार्ययाऽस्माभि सह सम्मन्त्र्यालौ- चित—"अद्य यदि त जनमादाय नागच्छति तमालिका, तदावश्यमेवाश्रयाश आश्रयितव्य" इति। सुकृतवशाच्च महाभाग समागत। तदत्र यत् साम्प्रत तत्र भवानेव प्रमाणम्" इत्युक्त्वा विरराम।

(९) पलायनम्—

२९ अथ कन्दर्पकेतुर्भीतभीत इव, प्रणयानन्दामृतसागरलहरी- भिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्द वार्तान्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य, भुजगेनेव स्रदागत्यभिमुखेन, सरित्पतिनेव शुक्ति-

८ क्या करना चाहिए—

२८ प्रम से आखे फाड कर उसे पीत **कदपकेतु**की चेतनाको मूर्छान हर लिया। वासवदत्ता भी उसे देख मूर्छित हो गई। तब मकन्द और सखियोके प्रयत्नसे होशमे आये दोनो एक आसन पर विराजमान हुये। वासवदत्ताकी प्राणसे भी बढकर सारे विश्वासोकी पात्र कलावती नामकी सखीन कदपकेतुसे कहा— आयपुत्र, इत्मीनानके साथ बात करने को अवसर नही है, इसलिय बहुत सक्षेपमें ही कहती हूँ। तुम्हार लिये इसन जो वदना सही, उसे, यदि आकाश पत्र हो जाये, सागर दवात बन जाये, ब्रह्मा लिपिकर हो जाये, शष कथा कहनवाले हो जाये तब (उसमे से) कुछ मुश्किलस अनेक हजार युगोमे लिखी या कही जा सकती है। तुमने भी अपना राज छोडा। अधिक क्या, अपनेको सकटमे भी डाला। इस हमारी स्वामिपुत्री को यौवन बीत जानेक दोषसे डरत पिताने हठकर विद्या धरोक राजा विजयकेतुके पुत्र पुष्पकतुके साथ पाणिग्रहण करके कल सबरे दनेका निश्चय किया है। इस आर्याने हमारे साथ सलाह करके निश्चय किया था—'आज यदि उस जनको लेकर तमालिका नही आती, तो अवश्य मैं अग्निका ही आश्रय लूगी।" पुण्यवश महाभाग (यहा) आ गय। मो यहा जो उचित हो, उसके बारमे आप ही प्रमाण है।' यह कहकर वह चुप हो गई।

९ पलायन—

२९ तब प्रेमरूपी आनदके अमतसागरकी लहरोमे डूबेसे, तीनो लोकके राज्यपर अभिषिक्त हुय से कदपकेतु वासवदत्ताके साथ उससे सलाह करके **मकरद**को पता लेने के लिये उसी नगरमे नियुक्त करके, मनोजव नामक घोडे पर नगरसे निकल पडा। (वह घोडा) भुजगकी तरह गतिमें सदा अभिमुख (सीधे) सागरकी तरह शुक्ति (सीपो

शोभितेन, विन्ध्यविपिनेनेव श्रीवृक्षलाञ्छितेन, हंसेनेव मानसगतिना, अरण्येनेव गण्डशोभितेन, वनस्पतिनेव स्कन्धशोभितेन, वज्रेणेवेन्द्रायुधेन, मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निजगाम।

(१०) आत्मघात-निश्चय —

३० जलनिधिं अपश्यत्, अचिन्त्यच्च (कदर्पकेतु)—"अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृता, यदद्य लोचन-गोचरता नीत समुद्र। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्नि निर्वापयामि। यद्यप्यनातुरस्य देहत्यागो न विहितस्तथापि कार्य.। न खलु सर्वं सव कायमेव करोति। असारे ससारे केन किं नाम न कृतम्? तथाहि—गुरुदारहरण द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। नहुष परकलत्रदोहदी भुजगतामयासीत्। ययातिविहित-ब्राह्मणीपाणिग्रहण पपात। सुद्युम्न स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता। पुरुकुत्स कुत्सित एवाभवत्। कुवलयाश्वोऽश्वरतकन्यामपि जगाम। नृग कृकलासतामगमत्। नल कलिनाऽभिभूत। सवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथोऽपीष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पचत्वमयासीत्। शन्तनुरतिव्यसनाद्विललाप। युधिष्ठिर समरशिरसि सत्य-मुत्ससर्ज। तदित्थ नास्त्येव जगत्यकलक कोऽपि। तदहमपि देहमुत्सृजामि।

या भवरियो) से शोभित, विंध्याचलके वनकी तरह श्रीवृक्ष (पीपल या घोडाका विशेष भवरी) से लाछित, हसकी तरह मानस (मान सरोवर) की ओर गमन (या मनक वेग) वाला अरण्यकी तरह गड (गडा या गडा) से शोभित, वनस्पतिकी तरह स्कन्ध (कन्धे या बडी डाली) से अलकृत, वज्र की तरह इन्द्रायुध (इन्द्रका हथियार या नील नत्रवाला)।

१० आत्महत्याकी तैयारी—

३० जलनिधिको दख (कदपकेतु) सोचन लगा—'अहो, अपकार करते भी विधिने मेरा उपकार ही किया, जो कि इस समुद्रको लोचन-गोचर बनाया। सो म यहा देह छोड प्रियाक विरहकी अग्नि बुझाऊगा। यद्यपि निरागक लिये देहत्याग (शास्त्रमे) विहित नही है, तो भी वह करणीय (ही) है। सभी करणीय ही नही करते। असार ससारमे किमने क्या नही किया?—गुरुपत्नीका हरण द्विजोके राजा (चन्द्र) न किया, पुरूरवा ब्राह्मणके धनकी तष्णा करके नष्ट हुआ। **नहुष** दूमरेकी पत्नीका इच्छुक हो अजगर बना। **ययाति** ब्राह्मणीका पाणिग्रहण करके पतित हुआ। **सुद्युम्न** स्त्री बन गया। प्राणि-त्रधमे मोमककी निदयता ससार मे प्रसिद्ध है। **पुरुकुत्स** निंदित ही हुआ। कुबलयाश्व **अश्वतर** (नागराज) की कन्याके पास गया। नग गिरगिट हुआ। **नल** कलिसे अभिभूत हुआ। **सवरण** मित्रकी कन्यापर विकल हुआ। **दशरथ** भी प्रिय रामके लिये पागल हो मृत्युको प्राप्त हुआ। **कातवीर्य** गो-ब्राह्मणकी पीडाके कारण मरा। **शन्तनुने** अतिव्यसनके कारण विलाप किया। **युधिष्ठिरने** युद्धक्षत्रमे सत्यको छोड दिया। इस प्रकार ससारमे कोई कलकरहित नहीं है। सो मै भी शरीरत्याग करूगा। "

३१ तत कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलमवतरितुमारेभे शरीरत्यागाय।

३२ अथ मानग्रहेषु ग्राहेषु, निमत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्—"आर्य कन्दपकेतो, पुनरपि तव प्रियया सगतिभविष्यत्यचिरेण। तद्विरम मरणव्यवसायात्" इति। सोऽपि तदुपश्रुत्य मरणारम्भाद्विरराम। तत प्रियासमागमाशया शरीरस्थितिहेतुमशन चिकीर्षु कच्छोपान्तवन जगाम। अथ इतस्तत परिभ्रमन्, फलमूलादिना वने वतयन्, कियन्त काल निनाय कन्दपकेतु।

(११) **वासवदत्ता-समागम —**

३३ शरत्समयारम्भे विजृम्भमाणे कन्दर्पकेतुरितस्तत परिभ्रमन् काचिच्छिलापुत्रिका "मम प्रियानुकारिणी"ति करेण पस्पश। अथ सा स्पृष्टमात्रैव शिलाभावमुत्सृज्य वासवदत्तास्वरूप प्रपेदे। तामवलोक्य कन्दपकेतुरमृताणवमग्न इव सुचिरमालिंग्य "प्रिये वासवदते, किमेतत्", इति प्रपच्छ।

३४ सा तु दीघमुष्ण च नि श्वस्य प्रत्युवाच—"आर्यपुत्र, अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनसगोचर दु खमनुबभूव। उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथम प्रबुद्धाऽहं "भवत फलमूलादिकमाहरिष्यामी"ति विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वनेऽगच्छम्।

३१ स्नान आदि सारे कृत्योंको करके (अब) वह शरीरत्यागके लिये समुद्रजल मे उतरने लगा।

३२ जब कि ग्राह अनुग्रहयुक्त थे, मत्स्य मत्सर (ईर्ष्या) रहित थे, कच्छप इच्छाहीन थे, नक्र(नाके) क्रूरता रहित थे मकर न भयकर थे, शिशुमार मारनवाल नहीं थे, ऐसे समय आकाशवाणी हुई—"आय कदपकेतु, प्रियाक साथ जल्दी ही फिर तुम्हारा मिलन होगा। सो मरनेकी कोशिश न करो।' उस सुनकर उसने मरनेका ख्याल छोड दिया। तब वह प्रियाके मिलनेकी आशासे शरीर रक्षाके लिये भोजन करनेकी इच्छासे तटक पासवाले वनमे गया। फल मूल आदिसे वनमें जीवन यापन करते इधर उधर घूमते कदपकेतुने कितना ही समय बिताया।

११ वासवदत्तासे भेंट—

३३ शरद ऋतुके आरभ होते समय कदपकेतुने इधर-उधर घूमते किसी पत्थरकी पुतलीको 'मेरी प्रिया जैसी है" सोच हाथसे छू दिया। छून मात्र से उसने शिलारूपको छोडकर वासवदत्ताका स्वरूप प्राप्त कर लिया। उसे देखकर अमतसागरमे निमग्नकी तरह कदपकेतुने देर तक आलिंगन करके पूछा—'प्रिये वासवदत्ता, यह क्या?"

३४ उसन देर तक गम उसास लकर उत्तर दिया—'आयपुत्र, मुझ पापिनी अभागिनी के लिये आप महाभागन राज्य छोड साधारण आदमीकी तरह अकेले घूमते वचन और मनमे न आनवाले दुःख अनुभव किये। आप उपवास आदिसे प्यासे निद्रासे थक थे। पहले जगकर म 'आपके लिय फल मूल लाऊं' यह सोच फलादिकी तलाशके लिये वनमे गई।"

३५ "अथ क्षणेन तरुगुल्मान्तरित सेनानिवेश दृष्ट्वा 'किमय ममान्वेषणाय तातस्य व्यूह समायात। आहोस्विदायपुत्रस्ये'ति चिन्तयन्ती मा चारकथितोद तो दूरात्किरातसेनापतिर्धावति स्म। ततोऽन्य किरातसेनापतिस्तादृश एव तथाभूतया सेनयाऽन्वितो मृगया गत सोऽपि तच्छ्रुत्वा धावति स्म।

३६ अनन्तर चिन्तित मया—'यद्यहमायपुत्राय कथयामि, तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ न कथयामि तदैभिरह घातनीये'ति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयो तयोर्युद्धमासीत्। तत प्रवृत्तशरासारदुर्दिनस्थगितदिनकरकिरणे, रणकमविशारदद्विरदकरदूरोत्क्षिप्तक्षिप्तखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदशनसचरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपदसमाप्तपिशाचिकाकर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरुणि, प्रस्कन्नक्लीबजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, शृगालिकाशृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, श्वित्रदुभगेष्विव, शरीरेष्वनास्था कलयन्त, सम द्विषता धनुषा च जीवाकषण योधाश्चक्रु।

३७ अनन्तर च नारायण इव कश्चिन्नरकच्छेदमकार्षीत्। कश्चिद्बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदशनोऽभवत्। कश्चित्क्षपणक इव कटावृतविग्रहोऽभवत्। कश्चिदाशकितोरुभग सुयोधन इव पयसि विवेश। कश्चित्सुरापद्विज इव पपात। कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतायुश्चिर श्वसन्नासीत्। कश्चित्कण इव विक्लवी-

३५ उसी क्षण वृक्षो-झाडियोस छिपे एक छावनीको देखकर मै सोचने लगी —'क्या यहा मुझ ढूढनेक लिय बापूकी अथवा आयपुत्रकी सेनायें आ गइ ?" गुप्तचरसे बात सुनकर दूरसे किरात सेनापति मेरे पीछे दौडा। दूसरा किरात सेनापति भी वैसी ही सेनाके साथ शिकार को आया था। वह भी बात सुनकर दोडा।

३६ इसक बाद मैंने सोचा "यदि मै आयपुत्रको कहती हू, तो वह अकेले (लडते) इनके द्वारा मारे जायेग। न कहू, तो इनके द्वारा मै मारी जाऊगी '। मरे ऐसा सोचते समय ही एक मास-खडके लोभी दो गिद्धो की तरह उनक बीच युद्ध हुआ। (वह युद्ध-क्षेत्र था) चलते वाणोकी बदलीसे ढकी सूयकिरणोवाला, रणकममें विशारद हाथि याके सूडो द्वारा दूर फेके गये खडगधारी सैनिकोसे आलिगित होते विद्याधरके सौदयवाला, देखनेके लिये सचार करते अनेक आकाश चारी चारणोसे सचित चक्रवालवाला सुदर भटोक चलते खड्गसे खडित हाथीके पदसे बनाये पिशाचीके ओखली कर्णाभूषणवाला, कौतुकसे आकृष्ट जनोके मुहसे निकले, शब्दोवाला पलायन करने वाले भीरुओवाला गिरे कायर जनोवाला रणोद्यत जयशालियो वाला। वहा (वह) युद्ध गीदड और गीदडीके पसद मासपिडोकी तरह सापसे डसोकी तरह, रक्तसे अर्सुदरकी तरह, अपने शरीरोकी पवाह न करते शत्रुओ और धनुषोके जीव (या प्रत्यचा) का आकषण कग्नके साथ हुआ।

३७ बादमे नारायणकी तरह किसीने नरक (राक्षस या नरमुह) का छेद किया। **बौद्ध-सिद्धान्त**की तरह कोई नष्ट श्रुति वचन दशन (कान जाभ आख के बिना या वेद वचनके विरोधी दशनवाला) हुआ। कोई **जन** साधुकी तरह कट (शव या चटाई से ढके शरीरवाला) हुआ, कोई जघाके तोडनेकी आशकावाले दुर्योधनकी तरह पानीमे घुस गया। कोई मदिरा पीनेवाले ब्राह्मण की तरह पतित हुआ। काई शरशय्यापर स्थित भीष्मकी तरह आयु रहित हो देर तक सास लेता रहा, किसीने कणकी तरह सारे अगमे विकल हो शक्ति (हथि-

कृतसर्वांग शक्तिमोक्षमकरोत्। कश्चिद्राघव इव रावण वधमकरोत्। ततो विध्वस्तध्वजपट पतत्पताक च्युतचापचामरापीड स्खलत्खड्ग तत्समस्तमुभय मिथो जगाम हनन सैन्यम्।

३८ ततश्च यस्याश्रम, तेन मुनिना पुष्पादिकमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममायमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ताऽस्म्यहम्। तत क्षणेनैवेय वराकी बहुदु खमनुभव। तीत्यनुग्रहादार्यपुत्रकरुणया च स मुनिर्याच्यिमान आयपुत्रहस्तस्पर्शावधिक शापमकरोत्।"

३९ तत कन्दर्पकेतु श्रुतवृत्तान्तेन समागतेन मकरदेन तया वासवदत्तया च सम स्वपुर गत्वा हृदयाभिलषितानि सुरलोकदुर्लभानि सुखानि ताभ्या सहानुभवन् कालमनेक निनाय।

२६ दण्डी (५८० ई०)

दण्डीका समय सुबधु और बाणके बीचमें छठी सदीका अत है। यह दक्षिणके रहनेवाले थे। इनकी तीन कृतियोमें ,एक "अवन्तिसुदरी कथा" से पता लगता है, कि इनके प्रपितामह दामोदर भारविके मित्र थे, जिसके कारण भारविको ५०० ई० के पहले होना चाहिए। अवन्तिसुदरीके अतिरिक्त "दशकुमारचरित" और "काव्यादर्श" इनकी अन्य उपलब्ध कृतिया है। "काव्यादर्श" अलकारका बहुत ही सरल और सुदर ग्रथ है। इसके गुणोसे मुग्ध होकर तिब्बती भाषामें इसका अनुवाद हुआ, जो आज भी अलकारशास्त्र पढनेवालोके लिए अनिवार्य पाठ्य ग्रन्थ है। तिब्बतमें मम्मटके "काव्यप्रकाश" की भी तालपोथी इन पक्तियोके लेखक ने देखी थी। जान पडता है, उससे दण्डीकी कृति सुबोध तथा अच्छी जान पडी, इसीलिए

यार या बल) छोडा, किसीन रामकी तरह रावण (शत्रु) का वध किया। पताकाये गिराते चाप और चमरक आभूषणको च्युत करते खड्गको (हाथ स) छोडते सनिक मारे गय।

३८ तब पुष्प आदि लेकर लौटी मुझ उस आश्रमक मुनिने दिव्य दष्टिसे (सब) वत्तान्त जान कर—"तर कारण मेरा यह आश्रम नष्ट हुआ" कहत कुपित हो 'तू शिलामयी पुतली हो जा' कह मुझे शाप दिया। तब क्षण भरमे ही, "बचारी बहुत दु ख अनुभव कर रही है", सोच अनुग्रहस आयपुत्र पर (भी) करुणा करक याचना करनेपर, उन्होंन आयपुत्रके हाथक स्पशकी अवधि उस शापको कर दी।"

३९ तब कदपकेतुका वत्तान्त सुनकर आये **मकरन्द** और **वासवदत्ताके** साथ उसने अपन पुरमे जाकर उन दोनोके साथ हृदयके लिये प्रिय दवलोक-दुलभ सुखोको अनुभव करत काल बिताया।

२६ दण्डी (५८० ई०)

उसीका अनुवाद किया गया। "दशकुमारचरित" बहुत ही मजा हुआ गद्य-काव्य ह, जो कितनी ही बातोमें सुबन्धु और बाणसे भी अधिक आकषक है। दण्डीने "छन्दोविचिति"के नामसे एक छन्द-ग्रन्थ भी लिखा था, जो अब प्राप्य नहीं ह। "कालपरिच्छेद" नामक एक और ग्रन्थको भी इनका बनाया बतलाया जाता है। लेकिन, दण्डीकी सवश्रेष्ठ कृति "दशकुमार-चरित" ही ह। कालिदास उपमामें, भारवि अथगाम्भीयमें श्रेष्ठ माने जाते ह, तो दण्डीको पद लालित्यमें अद्वितीय साबित करनेवाला यही "दशकुमारचरित" ह। "दशकुमारचरित"में भी सभी उच्छवासोको दण्डीकी कृति नहीं माना जाता, न इस ग्रन्थ में दशो कुमारोका चरित मिलता ह।

दशकुमारचरितम्

(१) कुमाराणां जन्म वियोगश्च—

१ अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी। तत्र वीरभटात्तरगतुरगकुंजरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमंदरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्ड, पुरंदरपुरांगणवनविहरणपरायणगीर्वाणतरुणगणिकागणजेगीयमानयाऽतिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या कीर्त्याऽभित सुरभित, स्वर्लोकशिखरो रुचिररत्नाकरवेलामेखलावलयितधरणीरमणीसौभाग्यभागभाग्यवान् विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सततंतुलितवियन्मध्यहंसो राजहंसो नाम धनदपकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव। विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमन्वभावि।

२ तस्य राज्ञ परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्या कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन्। तेषा सितवर्मण सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रकामपाला, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनया समभूवन्। तेषु धर्मशील सत्यवर्मा संसारासारतां बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत्। विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीत कामपालो जनकाग्रजन्मनो शासनमतिक्रम्य भुव बभ्राम। रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत्। इतरे मन्त्रिसूनव पुरंदपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्वतिष्ठन्।

दशकुमारचरित

१ कुमारोका जन्म और वियोग—

१ सारी नगरियोकी कसौटी सी, सदा अगिनित पण्यो में फैलाई **मणि** समूह आदि वस्तुओ से रत्नाकरकी बडाई प्रकट करने वाली, मगध जैसे देश के शिरसी पुष्पपुरी (पटना) नामक नगरी है। वहा राजहस नामक भूप थे जो कि वीर सैनिको की उत्तरगो से युक्त तुरग गजरूपी मकरोसे भीषण सारे रिपुगणोके सेनारूपी सागरके मथनके लिए मन्दर जैस उद्दण्ड भुज-दण्डवाले जिनकी कीर्त्ति नगर उपवनमे बिहरनेवाली देवोका तरुण गणिकाये गाती थी, (कीर्त्ति जो) अति सम्मानयुक्त शरदके चन्द्रसा कुदवन, कपूर, ओस, मणाल हम, ऐरावत नीर क्षीर शकरक, अट्टहास **कैलास** या, काशके समान उज्ज्वल, सारी दिशाओमे व्याप्त, उससे चारो तरफ सुगधित। (राजा तो) स्वग शिखरके रुचिर रत्नाके रत्नाकरकी तट-मेखलासे घिरी पथिवीरूपी रमणीक सौभाग्यके भागसे भाग्यवान, शत्रुके सतापके प्रतापसे सदा आकाशके मध्यमे स्थित हस (सूय) क समान, तथा भारी अभिमानसे कामदेवक सौन्दयके सहोदर मनोहर निमल रूपवाले थ। उनकी रमणी **वसुमती** थी जो सुमति, सुदरियोके कुलकी चूडामणि थी। अमरपुरको जीतनेवाले पुष्प पुर नगरमे निवास करते मगधराजक साथ अनत भोगोमे लालित वसुमतीने **वसुमती** (पथिवी) की तरह **मगधराज**के साथ यथच्छ सुख भोग किया।

२ राजाके अनेक आज्ञाकारी, धीर बुद्धिमे बृहस्पतिको हरानेवाले, विचारकायवाल **धर्मपाल, पद्मोदभव, सितवर्मा** नामक तीन खान-दानी मत्री थे। उनमें सितवमाके पुत्र थे **सुमतिवर्मा** ओर **सत्यवर्मा,** धमपालके **सुमत्र, सुमित्र** और **कामपाल,** पद्मोद्भवक **सुश्रुत** और **रत्नोदभव**। उनमे धमात्मा सत्यवर्मा ससारको असार समझ तीथयात्राकी इच्छास देशान्तर चला गया। भडुओ, नटो, वश्याओ मे परायण दुराचारी कामपाल पिता और बड भाईकी आज्ञाका उल्लघन कर पथिवीपर घूमने लगा। रत्नोद्भव भी व्यापारमे निपुण होनस समुद्र पार चला गया। दूसर मत्री-पुत्र अपन पिताओके इन्द्रपुरके अतिथि होने (मरने) पर पूववत काय करते रहे।

३ एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो (राजा) ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—"देव, देवदर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते" इति। तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमानायि। भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचरभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत —"ननु तापस, देशं सापदेशं भ्रमन्भवांस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु" इति।

४ तेनाभाषि भूभ्रमणवलिना प्राञ्जलिना—"देव, शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेशं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम्। मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये संपराये भवतः पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं समाराध्य तपःप्रभावसंतुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वात्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते। ततः परं देवः स्वयं एव प्रमाणम्" इति।

(२) अवन्तिसुन्दरी-प्रेम—

५ अथ मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवाररक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन् मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्लासयन् वसन्तसमयः समाजगाम। तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम

३ एक बार सुहृत्-मित्र-पुरोहितो सहित गुणोस युक्त राजा सभामे सिहासनपर बठ थे, उसी समय ललाटके ऊपर हाथ जोडकर द्वारपालन राजासे अज की—'देव, दव द्वारा पूजनीय कोइ यति महाराजके दशनकी लालसासे आकर द्वारपर खडे ह।' तब अनुज्ञा मिलनेपर वह उस सयमीको राजाक समीप ले आया। आते हुये उसे देखकर उसके गुप्तचर होनेको अच्छी तरह जान सार अनुचरोको हटाकर मत्रीजनो के साथ (बठ) राजा प्रणाम करते उस यतिसे मद हासके साथ बोले— तो तपस्वी, भस बदले (नाना) दशोमे घूमते आपने जहा जहा जो कुछ दखा, उस कहो।"

४ पृथिवी भ्रमणके बलीने हाथ जोडकर कहा—'देव, महाराजकी आज्ञाको सिरपर धारणकर यतियोके इस निर्दोष भेसको स्वीकार कर (मैन) **मालवराज**क नगरमें प्रवश किया। वहा बहुत गुप्त रहत राजाके सारे वत्तान्तोको जानकर म लौटा हू। अभिमानी मानसारन अपन सैनिकोको मरवा, युद्धमे आपम पराजित होकर लज्जित हृदय (पर) निदय हो महान काल तक रहनेवाल काली-विलासी (शकर) की आराधना की। तपक प्रभावसे सतुष्ट शकर न उसे बड वीर शत्रुओको हनन करनेवाली एक भयकर गदा प्रदान की। जिस से अपनेको शत्रुहीन समझ बडे अभिमानस वह आपक साथ लडनकी तैयारी कर रहा है। इसक बाद देव ही जानें।'

२ अवन्तिसुन्दरी प्रेम—

५ वसन्त का समय आ गया। भ्रमरोक मधुर कठोकी शहनाईका कलरव दिशाओको वाचालित कर रहा था, मानिनियोके मनको उत्कठित कर रहा था। वह माकद सिन्दुवार, लाल-अशोक, पलाश, तिलकके वक्षोपर कलिया पैदा करते कामदेवकी यात्राके लिये रसिकोके मनोको उल्लसित कर रहा था। उस अतिरमणीय

मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया पौरसुन्दरीसमवाय-समन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमल-द्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे। तत्र रतिप्रतिकृति-भवन्तिसुन्दरी द्रष्टुकाम काम इव वसन्तसहाय पुष्पोद्-भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवन प्रविश्य तत्र तत्र मलयमारुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलय - कुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु कोकिलकीरालिकुल-मधुकराणामालापान् श्रावश्राव चक्रवाककलरव्या-कुलविमलशीतलसलिलललितानि सरासि दर्शदर्शम-मन्दलीलया ललनासमीपमवाप।

६ बालचन्द्रिकया "नि शकमित आगम्यताम्" इति हस्तसज्ञया समाहूतो निजतेजोनिर्जितपुरुहूतो राजवाहन कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिक समाजगाम। सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनैवाराध्यमान सकल्पितवर-प्रदानायाविर्भूत मूर्तिमन्त मन्मथमिव तमालोक्य मन्द-मारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे। तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवत्तलज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त। "ललनाजन सजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नो चेदब्जभूरेवविधनिर्माण-निपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्या तरुणी किं न करोति" इति सविस्मयानुराग विलोकयतस्तस्य समक्ष स्थातु लज्जिता सती किंचित्सखीजनान्तरितगात्रा तन्नयनाभिमुखै किंचिदाकुञ्चितैरेचितभ्रूलतैरपाङ्गवीक्षितै-रात्मन कुरगस्यानायमानलावण्य राजवाहन विलोक-यन्त्यतिष्ठत्।

कालमे मानसारकी पुत्री **अवन्तिसुंदरी** अपनी प्रिय-सखी **बालचंद्रिका** और नगरकी सुन्दरियोके साथ नगरके छोरपर अवस्थित रमणीय उद्यानमे बिहारकी लालसासे गई। वहा किसी अमोलेकी छायासे शीतल बालुका तलपर गंध-कुसुम हल्दी-अक्षत रेशमी वस्त्र आदि नाना प्रकारके सुगंधित द्रव्योसे कामदेवकी पूजा करती रमण करने लगी। रतिकी मूर्ति सी अवंतिसुंदरीको देखनेकी इच्छासे मित्र-वसंत सहित कामदेवकी तरह **पुष्पोद्भव**के साथ **राजवाहन**ने उस वनमें प्रवेश किया। वह जहा तहा मलयवायुसे हिलती शाखाओपर लगातार फूटते नवपल्लव पुष्प फलोसे उल्लसित आमके वृक्षोपर कोयल, तोता, भंवरोके आलापोको सुनते सुनते चकवोके कल-रवमे आकुल निर्मल शीतल जलोसे ललित सरोवरोको देखते-देखते लीलाके साथ ललनाओके समीप पहुंचे।

६ 'बखौफ इधर आइये' बालचंद्रिकाके हाथके इस इशारेसे बुलाये जाने पर अपने तेजसे इंद्रको पराजित किये **राजवाहन** पतली कमरवाली अवंतिसुंदरीके पास पहुंचे। वह साकार लक्ष्मी सी मालवेश्वरकी कन्या इच्छित वर प्रदानके लिये पूजे जाते साकार प्रकट हुये मन्मथकी तरह उन्हे देखकर मंद वायुसे हिलाई लताकी तरह कामके आवेशसे कंप उठी। फिर खेलके ख्यालसे लज्जा छोड कौन कौनसे दूसरे हाव भाव किये। "ललनाओको बनाने समय विधाताने अवश्य इसे घुणाक्षर न्यायसे बनाया होगा। नही तो यदि ब्रह्मा ऐसियोके निर्माणमे निपुण होता, तो उसके समान सौंदयवाली दूसरी तरुणीको क्यो नही बनाता" यह सोचते आश्चर्य और अनुरागके साथ राज-कुमार उसकी ओर देखने लगे। उनके सामने खडी होनेमे लज्जित हो उसने सखियोकी आडमे शरीरको कुछ छिपा लिया। फिर नयनो के अभिमुख कुछ तिरछी खिंची भौहोवाली आखोकी चितवन से अपने हरिनके लाये जाते लावण्ययुक्त राजवाहनको देखती खड़ी रही।

७ सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसान्ना सामग्र्या लब्ध-बलस्येव विषमशरस्य शरव्यायमानमानसो बभूव। सा मनसीत्थमचिन्तयत्—"अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्या पुरि भाग्यवतीना तरुणीना लोचनोत्सव क्रियते ? पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणा पुत्रवतीना सीमन्तिनीना का नाम सीमन्तमौक्तिकीक्रियते ? कास्य देवी ? किमत्रागमन-कारणमस्य ? मन्मथो मामपहसितनिजलावण्यमेन विलोयकन्तीमसूययेवातिमात्र मथ्नन्निजनाम सान्वय करोति। किं करोमि ? कथमय ज्ञातव्य" इति।

८ ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरगवृत्ति भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाजसन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनु-चितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत—"भर्तृदारिके, अय सकलकलाप्रवीणो देवतासानिध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञ परिचर्यार्हो भवत्या, पूज्यताम्" इति। तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया सतुष्टान्तरगा तरगावली मन्दानिलेनेव सकल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमार कुमार समु-चितासनासीन विधाय सखीहस्तेन शस्तेन गन्धकुसुमा-क्षतघनसारताम्बूलादिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजा तस्मै कारयामास।

९ तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृ-केलिविलोकनाय त देशमवाप। बालचन्द्रिका तु ता दूरतो विलोक्य रहस्यनिर्भेदभिया (भीता)। मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधा विहारलीलामनुभवन्ती क्षण स्थित्वा निजागारगमनायोद्युक्ता बभूव। मातरमनु-

७ उस समय उसका मन उसके किये हाव भावके रस सामग्रीसे शक्ति पा कामदेवके बाणका लक्ष्य हो गया। राजकन्याने मनमे सोचा 'अपने इस अनन्य-साधारण सौंदयसे किस नगरकी भाग्यशालिनी तरुणियोके लोचनोको यह आनंदित करता होगा? पुत्रवती पत्नियो-मे कौन इस पुत्ररत्नसे अपनी केशोकी मुक्ता बनाती होगी? इसकी दत्री (पत्नी) कौन होगी? इसक यहा आनेका क्या कारण है? अपने लावण्यक उपहास-कर्त्ता इसकी ओर देखती मुझे मन्मथ ईर्ष्यासे अत्यधिक मथन करता अपन नामको साथक कर रहा है। क्या करू? कमे यह जान?"

८ **बालचन्द्रिका**ने इंगितोसे उनक भीतरी भावोको जानकर (भी), स्त्री समाजक पास राजकुमारक वत्तान्तको अच्छी तरह बतलाना अनुचित होगा, यह सोच साधारण वाक्यमे कहा—'भर्तदारिके (स्वामिपुत्री) यह सकलकला-चतुर, देवताके आवाहन करनेमे निपुण मणि मन्त्र औषधिके ज्ञाता पूजनीय ब्राह्मण कुमार हैं। आप (इनकी) पूजा करे।" अपन मनोरथको दोहराती बालचन्द्रिकासे वह (बात) सुनकर वह मनमे सतुष्ट हुई। और मद वायु द्वारा तरगावली सी हो कामदेव से व्याकुलित राजकन्याने कामदेवके जीतनेवाले कुमारकी उचित आसनपर बैठा कर सखियोके हाथमे बढिया गधकुसुम अक्षत चन्दन ताम्बूल आदि नाना प्रकारकी वस्तुओसे पूजा कराई।

९ उसी समय परिजनोसे घिरी **मालवेन्द्र**की रानी बेटीकी क्रीडा देखनेके लिये उस स्थानमे आई। बालचन्द्रिका दूरसे ही उसे देखकर रहस्यके खुलनेके भयसे डर गई। **मानसार**की रानी सखियो सहित अपनी पुत्री की नाना प्रकारकी विहार-लीलाओका मजा लेती क्षण भर ठहर

गच्छन्त्यवन्तिसुन्दरी "राजहसकुलतिलक, विहारवाछया केलीवने मदन्तिकमागत भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमिति जनन्यनुगमन क्रियते, तदनेन भवन्मनोरागोऽन्यथा मा भूत्" इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलाप वदन्ती पुन पुन परिवृत्तदीननयना वदन विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात्

१० तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसगे बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरहवेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामाऽऽहारादिसकल व्यापार परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलयजरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तितनुलता बभूव। तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्ती मन्मथानलसतप्ता सुकुमारी कुमारी निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागण काचनकलसचितानि हरिचन्दनोशीरघनसारमिलितानि तदभिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासासि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च सतापहरणानि बहूनि सपाद्य तस्या शरीरमशिशिरयत्। बालचन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठा गता कोमलागी ता राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्यचिन्तयत्—"कुमार सत्वरमानेतव्यो मया। नो चेदेना स्मरणीया गति नेष्यति मीनकेतन। तत्रोद्याने कुमारयोरन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायक सम मुक्तसायकोऽभूत्। तस्मात्कुमारानयन सुकरम्" इति।

कर जानेक लिये तैयार हुई। माताका अनुगमन करती अवति-सुदरीन हसक बहाने कुमारको लक्ष्य करके "राजहस कुलतिलक, विहारकी इच्छासे क्रीडा वनमे मेरे पास आये आपको असमय ही छोडकर मेरा जाना उचित नही है। मै माताका अनुगमन कर रही हू, इससे आपको अपना मनोराग दूसरा नही करना चाहिये।" इस तरह उचित बाते कहती, फिर फिर घूमते दीन नयनोसे कुमारके मुखको दखती वह अपन महल को चली गई।

१० वहा हृदयवल्लभकी बातके प्रसगमे बालचद्रिकाने कुमारके कुल, नामको बतलाया। इस पर कामदेवके बाणके प्रहारसे व्याकुल-मन हा विरह वेदनासे कृष्णपक्षक चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन-दिन दुबली होती आहार आदि सार कामको छोडकर एकात महलमे चदनरमसे प्रक्षालित पल्लवकुसुमोसे रचित शय्यापर छटपटाती पड गई। वहा उस अवस्थाको अनुभव करती, कामाग्निसे सतप्त सुकुमारी कुमारीको दखकर सखिया खिन्न हो उसके सिचन के लिये तैयार किय सुवणकलशमे रक्ख हरिचदन खश-कपूर मिश्रित जलो, ताप हरणक लिय कमलनालक ततुके बन वस्त्रो, कमलिनी-पत्रके बने पखोको बहुत सा बनाकर उसके शरीरको शीतल करने लगी। **बाल-चद्रिकाने** उस कोमलागीको कामज्वरकी चरम अवस्थाको प्राप्त और राजवाहनके सौदयके अधीन-मनवाली, अनयशरणा देखकर अपने मनमे सोचा—"मुझे कुमारको जल्दी लाना चाहिय। नही तो कामदेव इसे स्मति-शेष गतिको पहुचा देगा। उद्यानमे दोनो के परस्पर अवलोकन करते समय कामदेवने एक ही समय (दोनो पर) बाण छोडा, इसलिये कुमारका लाना सुकर है।"

११ ततोऽवन्तिसुन्दरीरक्षणाय समयोचितकरणीयचतुर सखीगण नियुज्य सा राजकुमारमन्दिरमवाप। राजवाहन प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन सलपन्नागता प्रियवयस्यामालोक्य पादपमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकाऽऽगतेति सतुष्टमना निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदजलिपुटा "इतो निषीद" इति निर्दिष्टसमुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषित सकर्पूर ताम्बूल विनयेन ददती ता कान्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तया सविनयमभाणि—"देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारम्य मन्मथ-मथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना वामनेनेवोन्नततरुफमलभ्य त्वदुर स्थलालिंगनसौख्य स्मरान्धतया लिप्सु सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायेनामपय' इति मा नियुक्तवती" इति। राज कुमार पत्रिका तामादाय पपाठ—

"सुभग कुसुमसुकुमार जगदनवद्य विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसमभिलषति त्व चित्त कुरु तथा मृदुलम् ॥" इति।

१२ इति पठित्वा सादरमभाषत—"सखि, छायावन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो वहिश्चरा प्राणा इव वतसे। त्वच्चातुर्यमस्या क्रियाया मालवालमभूत्। तदखिल करिष्यामि। "

(३) साधु तस्कर —

१३ नगरमाविशन्नेव चोपलभ्य लोकवादाल्लुब्धसमृद्धपूण पुरमित्यर्थाना नश्वरत्व च प्रदश्य प्रकृतिस्थानमून्विधास्यन्कर्णीसुतप्रहिते पथि मतिमकरवम्। अनुप्रविश्य च द्यूतसभामक्षधूर्तै समगसि। तेषा च पचविंशति-

११ "तब **अवन्तिसुंदरी**की देखभालके लिये समयानुसार काम करनेमे चतुर सखियोको नियुक्त कर वह राजकुमारके घरपर पहुची। प्राणश्वरीके बारेमे (ही) पुष्पोद्भवके साथ राजवाहन बात कर रहा था। प्रियसखीको आई देखकर पादमूलक अन्वेषणीय लतासी वालचद्रिका आ गई सोच, मनमे सतुष्ट हुआ। ललाट-तटपर आभूषण वनते कमलकलीके आकारवाले शोभायमान अजलिपुटको ललाट पर भूषण बनत देख "यहा बैठो, कह दिखलाकर उचित आसनपर बठाया। अवतिसुदरीके भेजे कपूर-सहित ताम्बूलको विनयपूवक दता हुई, उससे कुमारन कान्ताका वृत्तान्त पूछा। उसने विनय पूवक कहा—'देव क्रीडोद्यानमे आपको दखनेके समयसे ही वह मन्मथसे मथित हो रही है। पुष्प शय्याओपर तापको शात होते न देख बौनेके समान ऊच वृक्षके अलभ्य फलका न पा उसने मुझ भजा है। कामान्धा होनेसे तुम्हारे वक्षके आलिंगनक सुखको पानेकी इच्छुक उसन 'स्वय ही प्रियतम को इसे अर्पित करना', कह पत्रिका लिखकर मेरे हाथो भेजी।' राजकुमारने पत्रिकाको लेकर बाचा—

मन्दर कुसुम स सुकुमार, ससार मे निर्दोष, तुम्हारे रूपको देखकर मरा मन अभिलाप कर रहा है, तुम (भी) अपन चित्तको वैसा हा मदुल करो॥

१२ पढकर कुमारन आदरपूवक कहा—"सखि छायाकी तरह मेरा अनुगमन करनेवाले पुष्पोद्भवकी प्रिया तू ही उस मृगनयनीकी बाहरी प्राणमी है। तेरी चतुराई इस कायलताकी थाला बनी हुई ह। सो मै सब करूगा।

३ भलामानुस चोर—

१३ नगरमें प्रविष्ट होते ही किवदन्तियोसे लोभियो और धनियोसे नगर पूण है, यह जानकर धनोका नश्वरत्व दिखला उन्हें प्रकृतिस्थ बनानेकी इच्छासे (चौराचाय) **कर्णीपुत्र**के मागपर चलनेका मैंने इरादा किया। मैं जूयेकी सभामे प्रवेश कर जूयेके धूर्तोसे

प्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु कौशलमक्षभूमि-
हस्तादिषु चात्यन्तदुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि तन्मूलानि
पावलेपान्यधिक्षेपवचनानि जीवितनिरपेक्षाणि संरम्भ-
विचेष्टितानि चान्यानि चानुभवन्न तृप्तिमध्यगच्छम्।

(एकदा) प्रतिकितवस्तु निदहन्निव क्रोधताम्रया दृशा मामभिवीक्ष्य—"शिक्षयसि रे, द्यूतवर्त्म हासव्याजेन? आस्तामयमशिक्षितो वराकः। त्वयैव तावद्विचक्षणेन देविष्यामि" इति द्यूताध्यक्षानुमत्या व्यत्यषजत्। मया ,जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्। तदर्धं सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्वाऽर्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम्। उदतिष्ठंश्च तत्र गतानां हर्षगर्भाः प्रशंसालापाः। प्रार्थ्यमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽत्युदारमभ्यवहार-विधिमकरवम्। यन्मूलश्च मे दुरोदरावतारः स मे विमर्दको नाम विश्वास्यतरं द्वितीयं हृदयमासीत्। तन्मुखेन च सारतः कर्मतः शीलतश्च सकलमेव नगर-मवधाय धूर्जटिकण्ठकल्माषकालतमे तमसि नीलनिवस-नार्धोरुकपरिहितो बद्धतीक्ष्णकौक्षेयकः गत्वा कस्यचिल्लुब्धेश्वरस्य गृहे संधिं छित्वा सूक्ष्मच्छिद्रालक्षिता-न्तर्गृहप्रवृत्तिरव्ययो निजगृहमिवानुप्रविश्य नीवीं सारमहतीमादाय निरगाम्।

१४ नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्यां झटिति शतह्रदासंपातमिव क्षणमालोकमलक्षयम्। अथासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता निःसंबाधवेलायां निःसृता संनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत्। "कासि वासु, क्व यासि?" इति सदयमुक्ता त्रासगद्-

मिला। उनकी पचीस प्रकारकी सभी जूआ-सम्बन्धी कलाओमे चतुराई, जूयेके सार हाथ आदि मे, और अत्यन्त दुलक्ष्य कूट कामो मे उसके कारण होनेवाली साभिमान निन्दा वचनो, प्राणोकी पर्वाह किये बिना साहसकार्यो और दूसरी (बातो) का तजर्बा करक मै तप्त नही हुआ। एक बार मरा विरोधी जुआडी क्रोधसे अपनी लाल हुई आखोसे जलाता सा मुझे देखकर "क्यो रे, परिहासके बहाने तू जूयका कायदा सिखलाता है। रहने दे इस अशिक्षित बेचारेको। तुझ चतुरके ही साथ मैं जूआ खेलूगा कहते जूयेके अध्यक्षकी अनुमतिसे मेरे साथ भिड गया। मैंने उससे सोलह हजार दीनार जीते। उसका आधा द्यूताध्यक्ष (सभिक) और जुआडियोमे बाट, आधा लकर जब मै उठ खडा हुआ, तो वहा अवस्थित लोगोके भी हषयुक्त प्रशसा-वचन मेरे प्रति उठ खडे हुये। अधिक अनुरागसे प्राथना करनेपर सभिकके घरमे मैंने अत्यत बढिया भोजन किया। जिस आदमी के मुकाबिलमे जूयमे मै उतरा था, वह विमदक मेरा अत्यत विश्वसनीय दूसरा हृदय सा बन गया। उसके मुहमे सारे नगरके बारे मे सार क्रम शीलसे जानकर, शकरके कठकी कालिमा जैसे अधिक काले, अन्धकार मे नीले वस्त्रकी जाघिया पहन तेज छुरा बाधे जाकर मैन किसी परम लोभीके घरमे सेध काटी और सूक्ष्म छिद्रसे दिखाई दती गहके भीतर चीजोको जान बिना कठिनाईके अपन घरकी तरह प्रवेश कर बहुत धनवाली निधि ले मै बाहर निकला।

१४ नीले मेघ-समूह जैमे स्थूल अन्धकारसे घुप सडकपर (पहुच) तुरन्त बिजलीके गिरनेकी तरह मैंने क्षण भर रोशनी दखी। मानो नगर दवताकी तरह नगरकी चोरीसे रुष्ट हो, सुनसानकी बेलामे निकल चमकत भषणवाली कोई युवती पास आ प्रकट हुई। 'सुन्दरी, तू कौन है कहा जाती है? इस तरह दयायुक्त पूछनेपर वह भयसे

गदमगादीत्—"आय, पुर्यस्यामयवर्य कुबेरदत्तनामा वसति। अस्म्यह तस्य कन्या। मा जातमात्रा धनमित्र-नाम्नेऽत्रत्यायैव कस्मैचिदिभ्यकुमारायान्वजानाद् भार्यां मे पिता। स पुनरस्मिन्नत्युदारतया पित्रौरते वित्तैर्निजै क्रीत्वेवार्थिवर्गाद् दारिद्र्य दरिद्रति सत्यथोदारक इति च प्रीतलोकाधिरोपितापरश्लाध्यनामनि वरयत्येव तस्मिन्मा तरुणीभूनामधन इति विदित्वार्थपतिनाम्ने कस्मै-चिदितरस्मै यथार्थनाम्ने सार्थवाहाय दित्सति मे पिता। तदमगलमद्य किल प्रभाते भावीति ज्ञात्वा प्रागेव प्रिय-तमदत्तसकेता वचितस्वजना निर्गत्याबाल्याभ्यस्तेन वत्मना मन्मथाभिसरा तदगारमभिसरामि, तन्मा मुच। गृहाणैतद् भाण्ड" इत्युन्मुच्य मह्यमर्पितवती।

१५ दयमानश्चाहमब्रवम्—"एहि साध्वि, त्वा नयेय त्वत्प्रियावसथम्" इति त्रिचतुराणि पदान्युदचलम्। आपतच्च दीपिकालोकपरिलुप्यमानतिमिरभार यष्टि-कृपाणपाणि नागरिकबलमनल्पम्। दृष्ट्वैव प्रवेपमाना कन्यकामवदम्—"भद्रे, मा भैषी। अस्त्ययमसिर्द्वितीयो मे बाहु। अपि तु मृदुरयमुपायस्त्वदपेक्षया चिंतित। शयेऽह भावितविषवेगविक्रिय। त्वयाप्यमी वाच्या निशि वयमिमा पुरी प्रविष्टा। दष्टश्च ममैष नायको दर्वीकरेणामुष्मिन्सभागृहकोणे। यदि व कश्चिन्मन्त्रवित् कृपालु स एनमज्जीवयन्मम प्राणानाहरेदनाथाया" इति। सापि बाला गत्यन्तराभावाद् भयगद्गदस्वरा बाष्पदुर्दिनाक्षी बद्धवेपथु कथकथमपि गत्वा मदुक्त-मन्वतिष्ठत्। अशयिषि चाह भावितविषविक्रिय।

गदगद होकर बोली—"आय, इस पुरीमे वैश्यश्रेष्ठ **कुबेरदत्त** रहते है। मैं उनकी कन्या हू। जन्मते ही मुझे यहीके **धनमित्र** नामक एक धनिक-कुमारकी पत्नी बनाना मर पिताने मान लिया। किन्तु वह मा-बापके मरनेपर अति उदारताके कारण अपने धनसे याचको की दरिद्रता खरीदकर दरिद्र हो गया। तब प्रसन्न लोगो द्वारा दिये गये "**उदारक**" इस दूसरे श्लाघ्य नामवालको वरण करनेकी इच्छा रखती भी मुझ तरुणीको उस निधनको न दे अथपति नामक एक दूसरे यथाथ नामवाले साथवाहको मेरा पिता देना चाहता है। यह अमगल आज सबेरे होनवाला हे, यह जानकर पहले ही प्रियतमके दिये सकेतके अनुसार स्वजनोको छोड घरसे निकलकर बचपनसे ही परिचित माग द्वारा मन्मथका अनुगमन करती प्रिय के घर जा रही हू। सो मुझे छोड दो। इस धनको ले लो।' यह कहकर उसन खोलकर आभूषण मुझे द दिये।

१५ तब दयाद्र हो—"आ साध्वि, तुझे तेरे प्रियके घर ले चलता हू।" यह कह मै तीन चार पग चला। इसी समय मशालके आलोकसे अन्धकारको लुप्त करती लाठी तलवार हाथमे लिये नागरिकोकी भारी सेना आ गई। देखते ही कापती उस कन्यासे मैने कहा—'भद्रे, डर मत। तलवारके साथ यह मेरी भुजा (मौजूद) है। तो भी तरे कारण मैने यह मदु उपाय सोचा है। मै विष-विकारका अभिनय करते लट जाता हू, तू इनसे कहना—रातको हम इस नगरीमे आये। उस सभागह के कोने पर मेरे इन स्वामीको सापने काट लिया। यदि आपमेसे कोई दयालु मन्त्र जानने-वाला हो, तो इन्हे उज्जीवित करके मुझ अनाथाके प्राणोको लौटा दे।" उस बालाने और उपाय न होनेसे भयसे गदगद स्वरवाली, आसुओका सावन भादो बहाती, कापती जैसे-तैसे भी मेरे कहे

तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी मा निवण्य मुद्रातत्रमत्र-ध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृताथ "गत एवाय कालदष्ट। तथाहि स्तब्धश्यावमग, रुद्धा दृष्टि, शान्ता एवोष्मा। शुचाऽल वासु। श्वोऽग्निसात्करिष्याम, कोऽतिवर्त्तेत दैव" इति सहेतरै प्रायात्।

१६ उत्थितश्चाहमुदारकाय ता नीत्वाऽब्रवम्—"अहमस्मि कोऽपि तस्कर। त्वद्गतेनैव चेतसा सहायभतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरोपलभ्य कृपया त्वत्समीपमनैषम्। भूषणमिदमस्या" इत्यशुपटलपाटिध्वान्तजाल तदप्यर्पितवान्। उदारकस्तु तदादाय सलज्ज च सहर्ष च ससभ्रम च मामभाषत—"आय, त्वयैवेयमस्या निशि प्रिया मे दत्ता, वाक्पुनर्ममापहृता। तथा हि न जाने वक्तु त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति, न ते स्वशीलमद्भुतवत्प्रतिभाति। नैवमन्येनापि कृतपूर्वमिति प्रतिनियतैव वस्तुशक्ति। न हि त्वय्यन्यदीया लोभादय। त्वयाद्य साधुतोन्मीलितेति तत्प्रायस्त्वत्पूर्वावदानेभ्यो न रोचते। दृष्टमिदानीमौदायस्य स्वरूपमिति त्वदाशयमननुमान्य न युक्तो निश्चय। त्वयामुना सुवृत्तेन क्रीतोऽय दासजन इत्यसारमतिगरीयसा क्रीणासीति स ते प्रज्ञाधिक्षेप। प्रियादानस्य प्रतिदानमिद शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयेव दत्तम्। अथवैतावदत्र प्राप्तरूपम्। अद्यप्रभनि भतव्योऽय दासजन" इति मम पादयोरपतत्।

मुताबिक किया। और मैं विष-विकारका अभिनय करते लेट गया। उनमेसे कोई मत्रज्ञ-अभिमानी मुझे देखकर मुद्रा-तन्त्र-मन्त्र-ध्यान आदिका उपयोग करके निष्फल हो "कालने डसा है, यह चल बसा, क्योकि, इसके शरीरने कालिमा पकड ली है, दष्टि निश्चेष्ट (शरीर की) गर्मी भी शात है। सुन्दरी, शोक करना बेकार है, कल हम इस अग्निसात करेंगे। दैवको कौन रोक सकता है ' कह दूसरोके साथ चला गया।

१६ उठकर उसे **उदारकके** पास ले जाकर मै बोला—'म एक चोर हू। तुम्हारे ऊपर लगे (अपने) चित्तरूपी सहायताके साथ तुम्हार पास अभिसार करती बीचमे पाकर मै कृपासे इसे तुम्हारे पास लाया हूँ। यह इसके भूषण है," और कपडो की तहस अन्धकार-जालको फाडत आभूषणको दे दिया। उदारकने उसे लेकर लज्जा और हषक साथ आश्चयसे मुझसे कहा—'आय, तुमने ही इस रातमे मेरी प्रिया दी, (पर) मेरी वाणीका अपहरण कर लिया। तुम्हारे एसे अद्भुत कमक बारेमे क्या कहू, यह समझ नही पाता। तुम्हारा आचरण अदभुत ही नही प्रतीत होता बल्कि दूसरे किसीन भी पहले कभी ऐसा नही किया। हरक वस्तुकी अपनी निजी शक्ति होनी है। तुम्हारे भीतर दूसरा जैसे लोभ आदि नही ह। तुमन आज साधुताका उदघाटन किया। यह पहलेके किय गये सुचरितोक समान नही है। मैंन इस वक्त उदारताक स्वरूपको देखा। इसलिये तुम्हारी बात को मानकर निश्चय करना ठीक नही है। तुमने इस सुकमसे इस दासजनको मझ जैसे निस्सार बुद्धिवालेको बडे दामपर खरीदा यह (कहना) तुम्हारी प्रज्ञाका अपमान नही है। प्रियाक दानका प्रतिदान है यह मेरा शरीर, जो उसकी प्राप्तिके बिना नष्ट होनवाला (ही) था इस भी तुम्हीन दिया। अथवा यहा इतना ही कहना उचित है, कि अबसे इस दासजनका तुम भरण करना यह कहकर वह मेरे पैरोमे गिर पडा।

१७ उत्थाप्य चैनमुरसोपश्लिष्याभाषिषि—"भद्र, कास्ते प्रतिपत्ति" इति। सोऽभ्यधत्त—"न शक्नोमि चैनामत्र पित्रोरनभ्यनुज्ञयोपयम्य जीवितुम्। अतोऽस्यामेव यामिन्या देशमिम जिहासामि, को वाहम्, यथा त्वमाज्ञापयसि" इति।

१८ अथ मयोक्तम्—"अस्त्वेतत्। स्वदेशो देशान्तरमिति नेय गणना विदग्धस्य पुरुषस्य। किंतु बालेयमनल्पसौकुमार्या। कष्टा प्रत्यवायभूयिष्ठाश्च कान्तारपथा। शैथिल्यमिव किंचित्प्रज्ञासत्वयोरनर्थेनेदृशेन देशत्यागेन सभाव्यते। तत्सहानया सुखमिहैव वस्तव्यम्। एहि, नयावैना स्वमवावास" इति

१९ अविचारानुमतेन तेन सद्य एवैना तद्गृहमुपनीय तयैवापसपभूतया तत्र मृद्भाण्डावशेषमचोरयाव।

२० ततो निष्पत्य क्वचिन्मुषितक निधाय समुच्चलन्तो नागरिकसम्पाते मार्गपार्श्वशायिनं कंचिन्मत्तवारणमुपरिपुरुषमाक्रम्याध्यारोहाव। ग्रैवेयप्रोतपादयुगलेन च मयोत्थाप्यमान एव पातिताधोरणपृथुलोरःस्थलपरिणत पुरीतल्लतापरीतदन्तकाण्ड स रक्षिकवलमाह्रिणोत्। अध्वसयाव चामुनैवाथपतिभवनम्। अपवाह्य च क्वचन जीर्णोद्याने शाखाग्राहिकया चावानराव। स्वगृहगतौ च स्नातौ शयनमध्यशिश्रियाव।

—उत्तरपीठिका, उच्छ्वास २

१७ उसे उठा छातीसे लगाकर मैंने कहा—"भद्र, अब तुम्हे क्या करना है?"

उसने कहा—"माता पिताकी अनुमतिके बिना इसके साथ व्याह करके मै यहा नही रह सकता इसलिये इसी रात इस देशको छोड देना चाहता हू। पर मै क्या हू जैसी तुम आज्ञा दो।"

१८ मैंने कहा—'रहने दो इस (बात) को। अपना देश और परदेश यह चतुर पुरुष नही गिनता, किन्तु, यह बाला अत्यन्त सुकुमारी है। जगलके रास्ते कष्टकर और बहुत सकटापन्न होते हैं। अनथकर देश परित्यागमे तुम्हारी बुद्धि और साहसकी कुछ शिथिलताका पता लगता है। सो इसके साथ सुखसे यही रहो। आओ इसे इसके घर ले चलते है।"

१९ बिना विचार किये ही सहमत कर तुरन्त उसे, हमने उसके घर पहुचाया, फिर उसीको भेदिया बना मिट्टीके बरतन भर छोडकर हम दोनोने (उस घरका) सब कुछ चुरा लिया।

२० तब (वहा से) निकलकर किसी जगह चारीके धनको रखकर चलत हुये नागरिकोकी भीडमे (हो), रास्तेकी बगलमें सोये फीलवानको हटाकर एक मस्त हाथीपर हम दोनो चढ गये। गदनकी रस्सीमे फसाय अपने दोनो पैरोसे मेरे द्वारा उठाये जानपर नीचे गिराये हाथीवान्‌क मोटे वक्षस्थल पर तिरछे दन्तके प्रहारसे आतसे लिपटे दातोवाले गजने रक्षियोकी सेनाको ध्वस्त कर दिया। उसी गजसे हम दोनोने अथपतिके घरको नष्ट कराया। (नगरसे) बाहर ले जा किसी पुराने उद्यानमे डाली पकडकर हम दोनो उतर गये। फिर अपने घरमे जा नहाकर बिस्तरेपर सो गये।

—उत्तरपीठिका, उच्छवास २

(४) दुहिता जमाताजाता—

२१ अहं च गत्वा श्रावस्तीमध्वश्रान्तो वाह्योद्याने लतामण्डपे शयितोऽस्मि। हंसरवप्रबोधितश्चोत्थाय कामपि क्वणितनूपुरमुखराभ्यां चरणाभ्यां मदन्तकमुपसरन्तीं युवतीमद्राक्षम्। सा त्वागत्य स्वहस्तवर्तिनि चित्रपटे लिखितं मत्सदृशं कमपि पुरुषं मां च पर्यायेण निर्वर्णयन्ती सविस्मयं सवितर्कं सहर्षं च क्षणमवातिष्ठत्। मयापि तत्र चित्रपटे मत्सादृश्यं पश्यता तद्दृष्टिचेष्टितमनाकस्मिकं मन्यमानेन "ननु सर्वसाधारणोऽयं रमणीयः पुण्यारामभूमिभागः किमिति चिरस्थितिक्लेशोऽनुभूयते। ननूपवेष्टव्यम्" इत्यभिहिता।

२२ सा सस्मितं "अनुगृहीतास्मि" इति न्यषीदत्।

२३ सकथा च देशवार्तानुविद्धा काचनावयोरभूत्। कथासंश्रिता च सा "देशातिथिरसि, दृश्यन्ते च तेऽध्वश्रान्तानीव गात्राणि। यदि न दोषो मद्गृहेऽद्य विश्रमितुमनुग्रहः क्रियताम्" इत्यशंसत्।

२४ अहं च "अयि मुग्धे, नैष दोषः, गुण एव" इति तदनुमार्गगामी तद्गृहे राजार्हेण स्नानभोजनादिनोपचरितः, सुखं निषण्णो रहसि पर्यपृच्छ्ये—"महाभाग, दिगन्तराणि भ्रमता कच्चिदस्ति किंचिदद्भुतं भवतोपलब्धम्" इति। ममाभवन्मनसि "महदिदमाशास्पदम्। एषा खलु निखिलपरिजनसबाधासंलक्षितायाः सखी राजदारिकायाः। चित्रपटे चास्मिन्नपि तदुपरि विरचितसितवितानं हर्म्यतलम्, तद्गतं च प्रकामविस्तीर्णं शरदभ्रपटलपाण्डरं शयनं, तदधिशायिनी च निद्रालीढलोचना ममैवेयं प्रतिकृतिः। अतो नूनमनङ्गेन सापि सखीनिर्बन्धपृष्ठविक्रियानिमित्ता चातुर्येणैतद्रूपनिर्माणेनैव समर्थमुत्तरं दत्तवती। रूपसंवादाच्च संशयादनया पृष्टो भिन्द्यामस्याः संशयं यथानुभवकथनेन" इति जातनिश्चयोऽब्रवम्।

४ बेटी दामाद हो गई—

२१ मै **श्रावस्ती** जाकर रास्तका थका नगरके बाहरवाले उद्यानमें लता-मडपके भीतर सोया था। हसकी आवाजसे जगकर मैंने रुनझुन् करत नूपुर सहित चरणोवाली पास आती किसी युवतीको देखा। आकर अपने हाथमे रक्खे चित्रपटमे लिखित मेरे समान किसी पुरुष-आकृति और मुझे अच्छी तरह देखती आश्चय-वितक हषके साथ क्षण भर वह खडी रही। मने भी चित्रपटमे मेरे सादश्यको देख उसके देखने को आकस्मिक न समझकर कहा—"क्यो, यह पवित्र आरामका रमणीय भूभाग तो सावजनिक चीज है, फिर क्यो देर तक खडे रहनेके क्लेशको सह रही हो, बैठ जाओ ना।'

२२ मुस्कुरात हुये—'अनुगहीता हू" कह वह बैठ गई।

२३ फिर हम दोनोके बीच देशके सम्ब धमे कुछ बात हुई। बातके सिल-सिलेमे उसने कहा—'तुम हमारे देशके अतिथि हो। तुम्हारा शरीर यात्रासे थका सा दिखाई पडता है। अगर दोष न हो, तो आज मेरे घरमे विश्राम करनेका अनुग्रह करे।'

२४ मै—"अयि मुग्ध यह दोष नही, गुण ही है" कह उसके पीछे पीछे उसक घर गया। वहा राजसी स्नान-भोजन आदि सेवन करके सुखपूवक बठनेपर एका तमे उसने मुझसे पूछा—"महाभाग, दिशाओ मे घूमत हुय कौन कौन अद्भुत वस्तु आपने पाई?' मेरे मनमें हुआ—'यह बडी (शुभ) आशाकी बात है। यह राजकन्याके सार परिजनोमे देखी-सुनी सखी ह। इस चित्रपटमें भी ऊपर सफेद चदवा लग महलकी छत और उसके भीतर काफी विस्तीण शरद्के मेघोसी उजली शय्या, और उसपर सोती निद्रा विलीन नेत्रोवाली मेरी ही यह छबि है। इसलिये निश्चय ही कामदेवने उस राजकन्याको भी वैसी ही अवस्थामे पहुचा दिया है। असह्य कामज्वरकी पीडासे पागल हो, सखी द्वारा आग्रहपूवक पूछने पर अस्वास्थ्य-कारणका साथक उत्तर चतुराईसे इस चित्रके निर्माण द्वारा ही राजकन्याने दिया। चित्रकी समानता के सशयसे यह पूछनेपर अपने अनुभवके कथनसे इसके सशयको तोडू" यह सोच निश्चय करके मैंने कहा—

२५ "भद्रे, देहि चित्रपट" इति। सा त्वर्पितवती मद्धस्ते। पुनस्तमादाय तामपि व्याजसुप्तामुल्लसन्मदनरागविह्वला वल्लभा तत्रैवाभिलिख्य "काचिदेवभूता युवतिरीदृशस्य पुस पार्श्वशायिन्यरण्यानीप्रसुप्तेन मयोपलब्धा किलैष स्वप्न" इत्यालप च।

२६ हृष्टया तु तया विस्तरत पृष्ट सर्वमेव वृत्तान्तमकथयम्। असौ च सख्या मन्निमित्तान्यवस्थान्तराण्यवर्णयत्। तदाकर्ण्य च "यदि तव सख्या मदनुग्रहोन्मुख मानस, गमय कानिचिदहानि। कमपि कन्यापुरे निराशकनिवासकारणमुपायमारचय्यागमिष्यामि" इति कथचिदेनामभ्युपगमय्य गत्वा तदेव खर्वट वृद्धविटेन समगसि। ससम्भ्रम सोऽपि विश्रमय्य तथैव स्नानभोजनादि कारयित्वा रहस्यमपृच्छत—"आर्य, कस्य हेतोरचिरेणैव प्रत्यागतोऽसि"।

२७ प्रत्यवादिषमेन—"स्थान एवाहमार्येणास्मि पृष्ट। श्रूयताम्। अस्ति हि श्रावस्ती नाम नगरी। तस्या पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रिय, प्राणा इव कुसुमधन्वन, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका। सा मया समापत्तिदृष्टा कामनाराचपङ्क्तिमिव कटाक्षमाला मम मर्माणि व्यकिरत्। तच्छल्योद्धरणाक्षमश्च धन्वन्तरिसदृशस्त्वदृते नेतरोऽस्ति वैद्य इति प्रत्यागतोऽस्मि। तत्प्रसीद कचिदुपायमाचरितुम्। अयमह परिवर्तितस्त्रीवेषस्ते कन्या नाम भवेयम्। अनुगतश्च मया त्वमुपगम्य धर्मासनगत धर्मवर्धन वक्ष्यसि— "ममेयमेकैव दुहिता। अनुगतश्च मे जातमात्राया त्वस्या जनन्यस्या प्रस्थिता। माता च पिता च भूत्वाहमेव व्यव-

२५ 'भद्रे, (जरा) चित्रपटको दो तो।" उसने उसे मेरे हाथमें दे दिया फिर उसे लेकर बहाना बना उल्लसित मदनके रागसे विकल सोई उस वल्लभाको भी वहीं चित्रित कर मैंने कहा—'मैंने एक ऐसी युवतीको ऐसे पुरुषकी बगलमें लेटी जगलमें निद्रित पाया। यह स्वप्न था।"

२६ पूछनपर हर्षित होकर विस्तारके साथ मने सारे वत्तान्तको कह दिया। उमन (भी) मेरे कारण अपनी सखीकी हुई अवस्थाको बतलाया। उमको सुनकर मैंने कहा, "यदि तरी सखीका मन मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहता है, तो कुछ दिन (एसे ही) बितावे। म कयाक अ त पुरमे नि शक निवासके लिये उपाय करके आऊगा।" इस प्रकार किसी तरह उसे समझा बुझाकर मै उसी वणिक पथपर जा वद्ध वश्याभिलाषीसे जा कर मिला। उसने भी विश्राम करा वैसे ही स्नान भोजनादि कराकर एका तमे मुझसे पूछा—"आय, किस कारण बडी जल्दी लौट आये?"

२७ मने जवाब दिया—"ठीक ही आयने पूछा। सुनिय, **श्रावस्ती** नामक नगरी है। उसका पति दूसरा धमपुत्र (ुधिष्ठिर) **धमवर्धन** नामक राजा है। उसकी दुहिता लक्ष्मीका प्रत्याख्यान सी, कामदेवक प्राणोसी, सुकुमारतामें नवमालिका (चमेली) को दूर फेंकनेवाली **नवमालिका** नामक है। उसने अकस्मात देखे जानेपर कामके वाणोकी पातीकी तरह कटाक्षोकी माला मेरे हृदय पर फेकी। उस शल्यको निकालनेमें असमथ हो 'धन्व तरि समान तुम्हारे बिना दूसरा वैद्य नही है,' यह सोचकर लौट कर आया हू। सो कृपा करके कोई उपाय करे। मै स्त्रीभेस बदलकर तुम्हारी कन्या बनता हूँ। मेरे पीछे-पीछे तुम चलकर धर्मासनपर बैठे धमवधनसे कहना—'मेरी यह एक ही दुहिता है। ज मते ही इसकी माता मर गई। मैंने ही माता और पिता होकर इसका पालन पोषण किया। इसके

धयम्। एतदर्थमेव विद्यामय शुल्कमजितु गतोऽभूदवन्तिनगरीमुज्जयिनीमस्मद्वैवाह्यकुलज कोऽपि विप्रदारक। तस्मै चेयमनुमता दातुमितरस्मै न योग्या। तरुणीभूता चेयम्। स च विलम्बित। तेन तमानीय पाणिमस्या ग्राहयित्वा तस्मिन् न्यस्तभार सन्यसिष्ये। दुरभिरक्षतया तु दुहितृणा मुक्तशैशवाना, विशेषतश्चामातृकाणा इह देव मातृपितस्थानीय प्रजानामापन्नशरणमागतोऽस्मि। यदि वृद्ध ब्राह्मणमधीतिनमगतिमतिथि च मामनुग्राह्यपक्षे गणयत्यादिराजचरितधुर्यो देव, सैषा भवद्भुजतरुच्छायामखण्डितचारित्रा तावदध्यास्ता यावदस्या पाणिग्राहकमानयेयम्" इति।

२८ स एवमुक्तो नियतमभिमनायमान स्वदुहितृसनिधौ मा वासयिष्यति। गतस्तु भवानागामिनि मासि फाल्गुणे फल्गुणीषूत्तरासु राजान्त पुरजनस्य तीर्थयात्रोत्सवो भविष्यति। तीर्थस्थानात्प्राच्या दिशि गोरुतान्तरमतिक्रम्य, वानीरवलयमध्यवर्तिनि कार्त्तिकेयगृहे करतलगतेन शुक्लाम्बरयुगलेन स्थास्यसि। स खल्वहमनभिशक एवैतावन्त काल सहाभिविहृत्य राजकन्यया भूयस्तस्मिन्नुत्सवे। पुनस्त्वदुपहृते वाससी परिधायापनीतदारिकावेषो जामाता नाम भूत्वा त्वामेवानुगच्छेयम्। नृपात्मजा तु मामितस्ततोन्विष्यानासादयन्ती "तया विना न भोक्ष्ये" इति रुदन्त्येवावरोधने स्थास्यसि। त मूले च महति कोलाहले, क्रन्दत्सु परिजनेषु, रुदत्सु सखीजनेषु, शोचत्सु पौरजनेषु, किंकर्तव्यतामूढे सामात्ये पार्थिवे, त्वमास्थानीमेत्य मा स्थापयित्वा वक्ष्यसि–

लिये ही विद्यारूपी कन्या शुल्क अर्जित करनेक लिये हमारे विवाह करने योग्य कुलमे उत्पन्न एक ब्राह्मण कुमार अवन्ती देशकी नगरी उज्जयिनीमे गया। उसे इसे देनेका वचन दे दूसरेको देना ठीक नही है। यह अब तरुणी हो गई है, और वह विलम्ब कर रहा है। इसलिये उसे लाकर इसका पाणिग्रहण करा उसके ऊपर भार छोड मै सन्यास लेना चाहता हू। शैशव छोड (आगे बढी) विशेषकर बिना माताकी लडकियोकी रक्षा कठिन है, यह सोच प्रजाके माता पिता जैसे महाराजको जानकर मै शरणमे आया हू। यदि इस वेदपाठी निरवलम्ब अतिथि वृद्ध ब्राह्मणको, मनुके चरित्रको धारण करनेवाले महाराज आप अनुग्रह-योग्य समझते ह, तो यह (मेरी कन्या) आपके भुजरूपी वृक्षकी छायामे अखडित-चरित्रवाली हो तब तक रहे, जब तक कि मै इसके पाणिग्रहण करनेवालेको ले आता हू।"

२८ वह ऐसा कहनेपर निश्चय ही मुझे अपनी लडकीके पास रहनेके लिये भेजेगा। आगामी फागुन मासकी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे राजाकी अन्त पुरिकाओका तीथ मेला होगा। तीथ (नदीके घाट) से पूव दिशामे एक गव्यूति (दो कोस) दूर बेतकी लताके बीच स्थित कार्तिकेयके मन्दिरमे दो सफेद वस्त्र हाथमे लेकर तुम रहना। इतने समय तक निभय हो राजकन्याके साथ विहार करके, उस मेले मे गगा-जल-विहारमे कन्याओके लगी रहते समय, मै डूबकर तुम्हारे पास आ ऊपर उठूगा। फिर तुम्हारे लाये दोनो वस्त्रोको पहनकर कन्याके भेसको छोड दामाद बनकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलूगा। राजकन्या मेरे लिये इधर-उधर ढूढकर मुझे न पा—"उसके बिना खाना नही खाऊगी" कहती अन्त पुरमे रोती रहेगी। उसके कारण महान् कोलाहल होगा, परिजनोंमें क्रन्दन मचेगा, सखियाँ रोयेगी, पुरवासी शोक करेंगे, अमात्य-सहित राजा किंकतव्यविमूढ हो जायेगा, उस समय तुम दरबारमे पहुचकर मुझे सामने रखकर कहना—

२९ "देव, स एष मे जामाता तवाहृति श्रीभुजाराधनम्। अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु, गहीती षट्स्वगेषु, आन्वीक्षिकीविचक्षण चतुःषष्टिकलागमप्रयोगचतुर, विशेषेण गजरथतुरगतन्त्रवित् इष्वसनास्त्रकर्मणि गदायुद्धे च निरुपम, पुराणेतिहासकुशल, कर्ता काव्यनाटकाख्यायिकानाम्, वेत्ता सोपनिषदोऽर्थशास्त्रस्य, निर्मत्सरो गुणेषु, विश्रम्भी सुहृत्सु, शक्त, सविभागशील, श्रुतधर गतस्मयश्च। नास्य दोषमणीयासमप्युपलभे। न च गुणेष्वविद्यमानम्। तन्मादृशस्य ब्राह्मणमात्रस्य न लभ्य एव सम्बन्धी। दुहितरमस्मै समर्प्य वार्धकोचितमन्त्यमाश्रम सक्रमेय, यदि देव साधु मन्यत" इति।

३० स इदमाकर्ण्य वैवर्ण्याक्रान्तवक्त्र परमुपगतो वैलक्ष्यमारप्स्यतेऽनुतुमनित्यतादिसकीर्तनेनात्रभवन्त मन्त्रिभि सह। त्व तु तेषामदत्तश्रोत्रो मुक्तकण्ठ रुदित्वा चिरस्य बाष्पाकुण्ठकण्ठ काष्ठान्याहृत्याग्नि सधुक्ष्य राजमन्दिरद्वारे चिताधिरोहणायोपक्रमिष्यते। स तावदेव त्वत्पादयोर्निपत्य समागत्य नरपतिरनूनैरर्थैस्त्वामुपच्छन्द्य दुहितर मह्य दत्वा मद्योग्यतासमाराधित समस्तमेव राज्यभार मयि समर्पयिष्यति। सोऽयमभ्युपायोऽनुष्ठेयो यदि तुभ्य रोचते इति।

३१ सोऽपि पटुर्विटानामग्रणीरसकृदभ्यस्तकपटप्रपञ्च पाञ्चालशर्मा यथोक्तमभ्यधिक च निपुणमुपक्रान्तवान्। आसीच्च मम समीहितानामहीनकालसिद्धि। अन्वभव च मधुकर इव नवमल्लिकामाद्रसुमनसम्।

—उ० उ० ५

२९ "देव, यह मेरा दामाद आपके श्रीभुजकी पूजाके योग्य है। चारो वेदोको पढे, छहो अगोको ग्रहण किये, न्यायशास्त्रमे विचक्षण, चौसठ कलाओके प्रयोगमे चतुर, विशेषकर गज रथ तुरगकी, शास्त्रोका वेत्ता, वाण हथियारके काममे, गदा-युद्धमे अनुपम, पुराण इतिहासमे कुशल काव्य नाटक-आख्यायिकाका रचयिता, रहस्य सहित अर्थ-शास्त्रका वेत्ता, गुणोमे ईर्ष्या न करनेवाला, मित्रोका भक्त, मधुर भाषी, बाटकर भोग करनेवाला, तीव्र स्मृतिवाला, गर्व रहित तरुण है। इसमे मैं अणुमात्र भी दोष नही पाता, न गुणोमे से किसीको अविद्यमान। सो मेरे जैसे (साधनहीन) केवल ब्राह्मण मात्र व्यक्तिको ऐसा सम्बन्धी प्राप्य नही हो सकता। इसे अपनी कन्या समर्पित कर बुढापके लिय उचित चौथे अन्तिम आश्रम (सन्यास) मे चला जाना चाहता हू, यदि महाराज इसे ठीक मानते हैं।"

३० फिर यह सुनकर फीक पडे मुह से वह अत्यन्त लज्जित हो ससारकी अनित्यता आदि कहकर मन्त्रियो सहित तुम्हे समझानेकी कोशिश करेगा। फिर तुम उनकी बातो पर कान न दे मुक्तकठ देरतक रोकर आसुओक मारे बैठ गय गलेवाले हो, राजमहलके फाटकपर काष्ठ जमा कर आग जला चितापर बैठनका प्रयत्न करना। तब अमात्यो सहित राजा अवश्य तुम्हारे पैरोमे गिरकर घन से तुम्हें सान्त्वना द, मुझे अपनी लडकी दे, मेरी योग्यतासे प्रसन्न हो सारे राज्यक भारको मेरे ऊपर समर्पित करगा। यह उपाय करना है, अगर तुम्हे पसन्द हो।"

३१ उस धूर्त-श्रेष्ठ पचालशर्माको अनेक बार कपट प्रपच करनेका अभ्यास था। मैंने जैसा कहा, उससे भी अधिक अच्छी तरह उसने किया। थोडे ही कालमे मेरे मनोरथ सिद्ध हो गये। भवरेकी तरह नवमालिका (चमली) के ताजे फूलोका मने उपभोग किया।

—उ० उ० ५

(५) राजनीति —

३२ दिव्य हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्र नामाप्रतिहतवृत्ति। तेन हीन सतोऽप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय वाह्यविद्यास्वभिषगमागमय दण्डनीति कुलविद्याम्। तदर्थानुष्ठानेन चावजितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासन "शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्" इति।

३३ एतदाकर्ण्य "स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम्। तथा क्रियते" इत्यन्त पुरमविशत्। ता च वार्ता पार्थिवेन प्रमदासनिधौ प्रसगेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशल प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वसाह्यो वाह्यनारीपरायण पटुरयन्त्रितमुखो बहुभगिविशारद परममन्विषणपर परिहासयिता परिवादरुचि पैशुन्यपण्डित सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुनयोपाध्याय कामतन्त्रकर्णधार कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्व व्यज्ञापयत्—

३४ "देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद् भाजन भवति विभूते, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनै कदर्थयन्त स्वार्थ साधयन्ति धूर्ता। तथाहि केचित्प्रेय किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिर, बद्ध्वा दर्भरज्जुभि, अजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशन च शाययित्वा सवस्व स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतरा पाषण्डिन पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित्पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगत त्यक्तुमिच्छेत्। तमन्ये परिवार्याहु —

५ राजनीति—

३२ भूत और भविष्यत् कालमे दूर और नजदीकके विषयोमे अव्याहत गति रखनेवाला शास्त्र दिव्यचक्षु है। उसके बिना दीघ विशाल लोचनोके रहते भी पदार्थके दशनमे असमथ होनसे प्राणी अ ध ही ह। इसलिये बाहरी विषयो मे आसक्ति छोड कुलकी विद्या दण्डनीति (राजनीति) को सीखो। उसकी बातोके प्रयोग द्वारा अपनेमे शक्ति सिद्ध कर स्थायी शासनवाले बन-समुद्रमेखला पथिवीका शासन चिरकालतक करो।

३३ यह सुनकर 'गुरुजनने ठीक ही शिक्षा दी, म वैसा ही करूगा।"—कह वह अ त पुरमे चला गया। प्रसगवश स्त्रियोके पास यह बात राजाने कही। उमे सुनकर पासमे बैठे आज्ञाकारितामे कुशल, कृपासे घनी बन, गीत-नत्य वाद्य आदि से अवचित, बाहरी नारियोमे लपट चतुर, मुहफट, बहु व्यग चतुर, दूसरेके हृदयका पता लगाने मे तत्पर, हसानेवाला दूसरेकी निंदामे रुचि रखनेवाला, चुगली करनमे पण्डित, मन्त्रियोस भी रिश्वत लेनवाला सारे दुराचारोको पढानवाला **कामशास्त्र**का कणधार (राजाका) **विहारभद्र** नामक सेवक कुमार-अवस्थासे साथ रहता मुस्कुराकर अज करन लगा।

३४ 'देव, दैवकी कृपासे यदि कोई वैभवका पात्र होता है, तो धूत उसे अकस्मात नाना प्रकारके प्रलोभनोसे दूषित करके अपना मतलब गाठत है। जैसे—कोई मरकर मिलनेवाले भारी अभ्युदयोकी आशासे सिर मुडाकर कुश-रस्सी बाध, मगचमसे (तन) ढाक, मक्खनसे शरीर चुपड और अनशनके लिये लेटवाकर सवस्व हर लेते हैं। उनसे भी बडे घोर पाखडी पुत्र-स्त्री शरीर प्राणोको भी छीन लेते है। यदि कोई होशियार (आदमी) इस मगतष्णाके लिये हाथक धनको नही छोडना चाहता, तो उसे दूसरे घेर कर कहते है—

३५ एकामपि काकिणी कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून् घातयेम, एकशरीरिणमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि, यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचरत" इति । स पुनरिमान्प्रत्याह—

३६ "कोऽसौ मार्ग" इति । पुनरिमे ब्रुवते—"ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्तान्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति । तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम् । अधीष्व तावद् दण्डनीतिम् । इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थं षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता । सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकमक्षमा" इति । स "तथा" इत्यधीते, शृणोति च, तत्रैव जरां गच्छति । तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरानुबन्धि सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽधिगम्यते, भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगतिः, अधिगतशास्त्रेण चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम् । आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदनः संपद्यते, इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धनं पर्याप्तमिति मानोन्मानपूर्वकं देयम् । उत्थितेन च राज्ञा क्षलिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्नः प्रथमेऽष्टमे वा भागे श्रोतव्यम् । शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्ताश्चत्वारिंशतं चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्ध्यैव ते विकल्पयितारः ।

३७ द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां जनानामाक्रोशाद् दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति । तत्रापि प्राड्विवाकादयः स्वेच्छया जयपराजयौ विदधानाः, पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनश्चार्थैर्योजयन्ति । तृतीये स्नातुं भोक्तुं च लभते । भुक्तस्य याव-

३५ एक काकिणी (बीस कौडी) को भी हम लाख कार्षापण बना सकते हैं, हथियारके बिना सभी शत्रुओको मार सकते है। अकेले तनवाले मदको चक्रवर्ती बना सकते ह यदि हमारे बतलाये मागपर (वह) चले इनके बारेमे पूछना है—

३६ 'वह कौन सा माग है?'' फिर वह कहते हैं— "चार राजविद्याये है ना, त्रयी (तीनो वेद), वार्ता (अथकर शिल्प), आन्वीक्षिकी (तकशास्त्र) और दडनीति (राजनीति)। उनमेसे तीन पहली (त्रयी, वार्ता और आन्वीक्षिकी) बडी पर कम फल दनेवाली ह। उन्हे रहन दो। राजनीति पढो। इसे आचाय **विष्णुगुप्त** (चाणक्य) ने मौय (**चन्द्रगुप्त**) के लिये छ हजार श्लोकोमे सक्षिप्त कर दिया है। सो यही अध्ययन करके अच्छी तरह अनुष्ठान किये जाने पर कहेके अनुसार काम कर सकती है।'' आदमी 'ठीक है'' कहकर पढता और सुनता है। (पढते पढते) वह बूढा हो जाता है। वह शास्त्र तो दूसरे शास्त्रोसे सम्बन्ध रखता है, सारे ही वाङमय (साहित्य) को बिना जाने उसे ठीक तौरसे नही समझा जा सकता। मान लो कम या अधिक समय मे उसने उसके अथको समझ लिया। (राजनीति) शास्त्रके जानकार को प्रारम्भ ही मे पुत्र स्त्रीपर भी विश्वास नही करना चाहिये। अपने पटके लिये भी बनाय जाते इतने चावलोसे इतना भात तैयार होता है, इतन भातके पकानके लिये इतना इधन काफी है, इस तरह नाप-तोलकर चीज देनी चाहिये। (सबेरे) उठकर राजाको मुह धोये या बिना धोय मुटठी-आध मुट्ठी पेटके भातर करके दिनक पहले या आठवें भागमे सारे आय व्ययको सुनना चाहिये। इसक सुनते सुनते भी वे धूत अध्यक्ष (विभाग-अध्यक्ष) दूना मार लेते है। वह (तो) **चाणक्य**के बतलाये चालीस अपहरणक उपायोको अपनी बुद्धिसे हजार गुना बना सकते ह।

३७ दूसर (भाग) मे परस्पर लडनेवाले लोगोकी चिल्लाहटसे कान जलते बचारा राजा जीता है। वहा भी **प्राड्विवाक** (वकील) आदि स्वेच्छासे जय पराजय कराते, स्वामीको पाप और अपयशके साथ और अपनेको धनके साथ जोड देते है। ततीय (भागमे)

दन्ध परिणामस्तावदस्य विषभय न शाम्यत्येव । चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्त प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति । पचमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति । तत्रापि मन्त्रिणो मध्यस्था इवान्योन्य मिथ सभूय दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यता देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया विपरिवतयन्त, स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति । बाह्याभ्यन्तराश्च कोपान् गूढमुत्पाद्य प्रकाश प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशमवगृह्णन्ति । षष्ठे स्वैरविहारो मन्त्रो वा सेव्य । सोऽस्यैतावान्स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिका । सप्तमे चतुरगबलप्रत्यवेक्षणप्रयास । अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेश ।

३८ पुनरुपास्यैव सध्या, प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्या । तन्मुखेन चातिनृशसा शस्त्राग्निरसप्रणिधयोऽनुष्ठेया । द्वितीये भोजनानन्तर श्रोत्रिय इव स्वाध्यायमारभेत । तृतीये तूर्यघोषेण सविष्टश्चतुर्थपचमौ शयीत किल । कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत् । पुन षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भ । सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च । दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानार्थान्वितशुल्कबाधवर्त्मनि वाणिज्यया गधयन्त, कार्यमविद्यमानमपि लेशेनोत्पाद्यानवरत भ्रमन्ति । अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहु —

स्नान-भोजनका समय मिलता है। खाया भोजन जब तक पचता नही तब तक उसके मनसे विषका भय शा त नही होता। चतुथ (भागमे) सुवण-ग्रहणके लिये हाथ फैलाय उठ खडा होता है। पचम (भागमे) मत्रणाकी चि तासे भारी परिश्रमका अनुभव करता है। वहा भी मध्यस्थकी तरह परस्पर मिलकर दोष-गुणो दूतो, गु्नचरोक वाक्योको, सभव असभवको और देश काल काय की अवस्थाओको, मनमाना उलटते मत्री लोग एक दूसरेके मित्रोका लाभ करत है, गुप्तरीतिसे राज्यके भीतर और बाहर उपद्रव पैदा कर बाहरसे शा त करते हुये से बबस बना स्वामीको हाथमे कर लेत है। छठे (भाग) मे स्वच्छापूवक बिहार या मत्रणा की जा सकती है। सो उस (राजाका) इतना ही स्वच्छासे बिहार करनका काल है जो आधार पहर (तीन पाव अधिक तीन नाडिका) काल है। सातवे (अश) मे चतुरग सनाके निरीक्षणका प्रयास करना है। आठवे में सेनापति सहित सैनिक तैयारी सम्ब धी चि ताका क्लेश उठाना है।

३८ फिर स ध्या की उपासना करनी ही है। रातक पहले भागमे गुप्त चरोको देखना है। उनक द्वारा हथियार-आग विषदान जैस अत्य त नशस काम कराने है। रातके द्वितीय (भाग) मे भोजनके बाद वदपाठीकी तरह स्वाध्याय आरम्भ करे। ततीय भाग मे वाद्य घोषके साथ लेटकर चौथ पाचवें में सोवे। निर तर चिन्ताके कष्टसे विह्वल इस बचारेको कैसे निद्रा-सुख मिलेगा? फिर छठे भागमें शास्त्र-चिन्तनके कायकी चिन्ता शुरू होगी। रातके सातवे भागमे तो सलाह लेनी और दूतोको भेजना है। दूत भी तो दोनो ओर मीठी बाते कहने से पाये धनको, शुल्ककी बाधासे रहित रास्तेमे वाणिज्य द्वारा बढाते है, और अविद्यमान कायको भी जरा से उपायसे विद्यमान करके लगातार भ्रमण करते रहते है। आठवे भागमे पुरोहित आदि पास आकर राजासे कहते है—

३९ "अद्य दृष्टो दुस्वप्न । दुस्था ग्रहा । शकुनानि चाशुभानि । शान्तय क्रियन्ताम् । सवमस्तु सौवणमेव होमसाधनम् । एव सति कम गुणवद् भवति । ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणा । कृतमेभि स्वस्त्ययन कल्याणतर भवति । ते चामी कष्टदारिद्रया बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहा । दत्त चैभ्य स्वर्ग्यमायुष्यमरिष्टनाशन च भवति" इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपाशु भक्षयन्ति । तदेवमहर्निशमविहितसुखलेशमायासबहुलमविरलकदथन च नयतो न तत्रास्यास्ता चक्रवतिता, स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्य भवेत् । शास्त्रज्ञसमाज्ञातो हि यद् ददाति, यन्मानयति, यत्प्रिय ब्रवीति, तत्सर्वमतिसधातुमित्यविश्वास । अविश्वासता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्या । यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोक एव सिद्ध नात्र शास्त्रेणाथ । स्तनधयोऽपि हि तैस्तैरुपायै स्तनपान जनन्या लिप्सते ।

—उत्तर० उ० ८

(६) राजपत्रिका—

३९ पुष्पपुराद्राज्ञो राजहसस्याज्ञापत्रमादाय समागता राजपुरुषा प्रणम्य राजवाहन व्यजिज्ञपन्—"स्वामिन् ! एतज्जनकस्य राजहसस्याज्ञापत्र, गृह्यता ।" इत्याकर्ण्य समुत्थाय भूयोभूय सादर प्रणम्य सदसि तदाज्ञापत्रमग्रहीत् । शिरसि चाधाय तत उत्तार्योत्कील्य राजा राजवाहन सर्वेषा शृण्वतामेवावाचयत्—

३९ "आज सरकारने दु स्वप्न देखा। (आपके ग्रह बुरे) स्थानमे है। अशुभ सगुन है। इनकी शांति करनी चाहिय। होमके सारे साधन सोनके होने चाहिये। ऐसा करनेसे कम फलदायक होता है। ब्राह्मण ब्रह्मा के समान है। इनके द्वारा किया गया स्वस्तिवाचन बहुत कल्याण कारी होता है। ये दरिद्रताका कष्ट उठाते बहुस तान यज्ञकर्ता हिम्मतवाले होते भी अभी दान नही पाये है। इनको दिया दान स्वर्गोपयोगी, दीर्घायुकारी, अनिष्ट नाशक होता है।" यह कह बहुत सा धन दिलवाकर उसमें से स्वय गुप्तरूपसे खाते है। सो इस प्रकार रात दिन जरा भी सुख पाये बिना, बहुत कष्टवाला, घने मनोरथ भगो वाला हो रात-दिन बिताते अनीतिको, राजाको चक्रवर्तिता मिलती, तो दूर अपने मडल मात्रकी प्रतिरक्षा भी मुश्किल हो जाती है। शास्त्रज्ञतामें ख्याति प्राप्त हो वह जो देता है, जा मानता है, जो मधुर बोलता हैं, सो सब वचनाके लिये। अविश्वास दरिद्रताकी ज मभूमि है। नीतिके बिना लोक-व्यवहार नही होता (पर) वह तो लोक सिद्ध है, वहा शास्त्रका कोई प्रयोजन नही। दुध-मुहा बच्चा भी जैसे तैसे उपायोसे जननीके स्तनपानको पानेकी इच्छा करता है।

—उत्तर उ० ८

६ राजाकी चिट्ठी—

३९ पुष्पुरसे राजा **राजहस**के आज्ञापत्रको लेकर आये राजपुरुषोने प्रणाम करके **राजवाहन**से अज किया—"स्वामिन, यह पिता (राज-हस) का आज्ञापत्र ग्रहण कीजिये।" यह सुन उठकर सभा मे बार-बार आदरपूवक प्रणाम कर आज्ञापत्रको ग्रहण किया, और सिरपर रख उससे उतारकर खोलकर राजा राजवाहनने सबको सुनाते इस प्रकार उसे बाचा—

४० "स्वस्ति श्री पुष्पपुरराजधान्या श्री राजहसभूपतिश्चम्पा-
नगरीमधिवसतो राजवाहनप्रमुखान् कुमारान्
आशास्याज्ञापत्र प्रेषयति । यथा यूयमितो मामामन्त्र्य
प्रणम्य प्रस्थिता पथि कस्मिश्चिद् वनोद्देश उपशिवालय
स्कन्धावारमवस्थाप्य स्थिता । तत्र राजवाहन शिवपूजार्थ
निशि शिवाल्ये स्थित प्रातरनुपलभ्यावशिष्टा सर्वेऽपि
कुमारा 'सहैव राजवाहनेन राजहस प्रणस्यामो न चेत्प्रा-
णास्त्यक्ष्याम' इति प्रतिज्ञाय सैन्य परावर्त्य राजवाहन-
मन्वेष्टु पृथक्प्रस्थिता एत भवद्वृत्तान्त तत प्रत्या-
वृत्ताना सैनिकाना मुखादाकर्ण्यासहृचद्दु खोदन्वति
मग्नमानसावुभावह युष्मज्जननी च।"

४१ वामदेवाश्रम गत्वैतद् वृत्तात तद्विदित विधाय प्राण परित्याग
कुर्व इति निश्चित्य तदाश्रममुपगतौ त मुनि प्रणम्य
यावत्स्थितौ तावदेव तेन त्रिकालवेदिना मुनिना विदित-
मेवास्मन्मनीषितम् । निश्चयमवबुद्ध्य प्रावोचि—'राजन
प्रथममेवैतत्सर्वं युष्मनीषित विज्ञानबलादज्ञायि । येदेते
त्वत्कुमारा राजावाहननिमित्ते कियन्तमनेहसमापदमासाद्य
भाग्योदयादसाधारणेन विक्रमेण विहितदिग्विजया
प्रभूतानि राज्यान्युपलभ्य षोडशाब्दान्ते विजयिन राजवाहन
पुरस्कृत्य प्रत्येत्य तव वसुमत्याश्च पादानभिवाद्य भवदाज्ञा-
विधायिनो भविष्यन्ति । अतस्तन्निमत्त किमपि साहस
न विधेयम्' इति । तदाकर्ण्य तत्प्रत्ययाद्धैर्यमवलम्ब्याद्य-
प्रभृत्यह देवी च प्राणानधारयाव। इदानिमासन्नवर्तिन्यवधौ
वामदेवाश्रमे गत्वा विज्ञप्ति कृता—'स्वामिन् !
तदुक्तावधि पूर्णप्रायो भवति, तत्प्रवृत्तिस्त्वयाद्यापि

४० "स्वस्ति श्री, **पुरुषपुर** राजधानीसे श्री **राजहंस** भूपति चम्पा नगरीमें बसत **राजवाहन** आदि कुमारोंको आशीर्वाद दे आज्ञापत्र भेजते हैं। क्योंकि तुम सब यहांसे बिना पूछे मुझे प्रणाम करके प्रस्थान कर रास्तेमें किसी वनस्थानमें शिवालयके पास छावनी डाले रहे। वहां शिवालयमें रातके वक्त शिवपूजनके लिये गये राजवाहनको सबेरे न पाकर बाकी सारे कुमारोंने भी 'राजवाहनके साथ ही राजहंसको प्रणाम करेंगे, नहीं तो प्राणोंको छोड़ेंगे यह प्रतिज्ञा करके सेनाको लौटा राजवाहनको ढूंढनेके लिये अलग-अलग प्रस्थान किया। आपके इस वृत्तान्तको वहां से लौटे सैनिकोंके मुंहसे सुनकर मेरी और तुम्हारी मां का मन असह्य दुःख-सागरमें मग्न हुआ।"

४१ **वामदेव**के आश्रममें जाकर इस वृत्तांतको उन्हें ज्ञात करा हम प्राण त्याग करेंगे यह निश्चय कर हम दोनों उस आश्रममें जा, मुनिको प्रणाम कर खड़े हुये। तभी उस त्रिकालज्ञ मुनिने हमारे मनकी बातको जान लिया, और (हमारे) निश्चयको समझकर कहा—राजन, आपके इस सारे मनोभावको (दिव्य) ज्ञानके बलसे मैंने पहले ही जान लिया। यह (लोग) तुम्हारे कुमार राजवाहनके लिये कितने ही समय तक आफत उठायेंगे। फिर भाग्यवश असाधारण पराक्रमसे दिग्विजय कर बहुत से राज्य प्राप्त कर सोलहवें वर्षके अंतमें विजयी राजवाहनको आगे किये लौटकर तुम्हारे और वसुमतीके चरणोंका अभिवादन करके आपके आज्ञाकारी होंगे। अतः उनके लिये कोई साहस नहीं करना चाहिये।' सो सुनकर उस पर विश्वास करके धैर्य अवलंबन कर आज तक मैं और देवीने प्राण धारण किया। अब अवधिके नजदीक आनेपर वामदेवके आश्रममें जाकर हमने अर्ज की—'स्वामिन् आपकी कही अवधि करीब करीब पूर्ण हो रही है। उनका समाचार तो आप जानते

विज्ञायत' इति श्रुत्वा मुनिरवदत्—'राजन् राजवाहनप्रमुखा सर्वेपि कुमारा अनेकान्दुजयाशत्रून्विजित्य दिग्विजय विधाय भ्वलय वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिता तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्ता शीघ्रमेव सेवका' इति मुनिवचनमाकण्य भवदाकारणायाज्ञापत्र प्रेषितमस्ति। अत पर चेत्क्षणमपि यूय विलम्ब विधास्यथ तत मा वसुमती च मातर कथावशषावव श्रोप्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथि भूत्वा पेयम्" इति।

—कथोपसहार

२७ भट्टि (६१० ई०)

भटिट स्वामी या वत्सभटिट गुजरातके निवासी तथा बलभीके राजा श्रीधरसेनके दरबारी कवि थे। बलभीमें श्रीधरसेन चार हुए। श्रीधरसेन द्वितीयने भट्टि नामके किसी विद्वानको कुछ भूमि दान दी थी, सम्भव ह यह वही भटिट हो। भटिटकी एक ही कृति हमें मिलती है, जिसका मूल नाम "रावणवध" था, लेकिन वह कविके नामपर ही अधिक प्रसिद्ध ह। यह महाकाव्य २० सर्गों और ३६२४ श्लोकोमें समाप्त हुआ है। इस काव्यमें

रावणवध

(१) रामजन्म—

१ अभून् नृपो विबुधसख परन्तप श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृत ।
गुणैर्वर भुवनहितच्छलेन य सनातन पितरमुपागमत् स्वयम् ॥१॥

ही है। सुनकर मुनि न कहा—गजन्, राजवाहन आदि सारे कुमार अनक दुजय शत्रुआको जीतकर दिग्विजय कर भूमडलको वशमे करके **चम्पा**मे एकत्र माजूद ह। अपना आनापत्र उन्हे बुलानेके लिय जल्दी सेवका द्वारा भजो। मुनिक इस वचनका सुनकर आप लागाक बुलानक लिये (यह) आज्ञापत्र भजा ह। इसक बाद अगर क्षण भर भी तुम विलम्ब करोगे, तो मुझे और माता वसुमतीका कथाशेष ही सुनोगे, यह जानकर पानी भी रास्ते पर (आरूढ) हाकर ही पीना।"

—कथाका उपसहार

२७ भट्टि (६१० ई०)

अपने सारे व्याकरण ज्ञानका समावेश करना चाहा है, जिसके कारण यह काव्य नहीं, बल्कि व्याकरणके प्रयोगोंका ग्रन्थ बन गया और उसी दृष्टिसे लोग अधिकतर इसे पढते भी ह। व्याकरण चक्षुवालोके लिए दीपतुल्य होते भी इसका यह अथ नहीं ह, कि इसमे काव्यके गुणोका बिल्कुल अभाव ह। रामायणके कई पात्रोकी उक्तिया इसमें बडी ही सुन्दर और सजीव देखनेमें आती ह।

भट्टिकाव्य

१ राम-जन्म—

१ देवताओक मित्र परम तपस्वी वेदज्ञ **दशरथ** नामस प्रसिद्ध राजा हुये। गुणोमें श्रेष्ठ जिन्हे पिता बनाकर सनातन पुरुष स्वय लोक-हितके बहाने आये ॥१॥

२ सोऽध्यष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट पितृनपारीत् समगस्त
बन्धून् ।
व्यजेष्ट षड्वगमरस्तनीतौ समूलघात न्यवधीदरीश्च ॥२॥

३ वसूनि तोय घनवद् व्यकारीत् सहाऽऽसन गोत्रभिदा-
ऽध्यवात्सीत् ।
न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थिताऽसौ यशासि सर्वेषुभृता
निरास्थत् ॥३॥

४ पुण्यो महाब्रह्मसमूहजुष्ट सन्तर्पणो नाकसदा
वरेण्य ।
जज्वाल लोकस्थितये स राजा यथाऽध्वरे वह्निरभि-
प्रणीत ॥४॥

५ स पुण्यकीर्ति शतमन्युकल्पो महेन्द्रलोकप्रतिमा
समृद्ध्या ।
अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्यामध्यासिता ब्रह्मभिरि-
द्धबोधै ॥५॥

६ निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्मासनकौशलस्य ।
ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थिताऽवहस्येव पुर
मघोन ॥६॥

७ सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभाजि विचित्रधातूनि सकाननानि ।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौघैर्मेरो शरासीव गृहाणि
यस्याम् ॥७॥

८ अन्तर्निविष्टोज्ज्वलरत्नभासो गवाक्षजालैरभिनिष्पतन्त्य
हिमाद्रिटकादिव भान्ति यस्या गगाऽम्बुपातप्रतिमा
गृहेभ्य ॥८॥

२ उन्होंने वेदोंको पढा, देवताओंको पूजा, पितरोंको तृप्त किया, बंधुओंको सम्मानित किया। रागादि छ वर्गको जीता, नीतिमें रति की, और जडस शत्रुओंका वध किया ॥२॥

३ मेघ जैसे जलको वैसे धनको बाटा, इन्द्रके साथ (एक) आसनपर बैठे। शंकर छोड उन्होंने किसीकी भक्ति नही की, सारे वाणधारियोंके यशको नष्ट कर दिया ॥३॥

४ पुण्यात्मा महाब्राह्मणोंके समूहसे युक्त हो देवताओंके अति उत्तम तृप्तिकारक, वह राजा लोकको स्थितिके लिये, (वैसे) प्रज्वलित हुये जैसे यज्ञमें ले जाया गया अग्नि ॥४॥

५ वह इन्द्र समान पुण्य यशवाले, ज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा निवासित सारे ऋतुओंमे सुखद, समृद्धिमें इन्द्रलोकके समान अयोध्यामें रहते थे ॥५॥

६ जो **अयोध्या** निर्माण चतुर ब्रह्माके कौशलकी अभिलाषाओंकी सीमा सी, ऊपर चमकती रत्न किरणोंसी मानो इन्द्रपुरका उपहास करते अवस्थित थी ॥६॥

७ जिस अयोध्याके घर सच्चे-रत्न मोती-हीरायुक्त, विचित्र धातुओं और उपवन सहित, अप्सराओंके समूहों जैसी ही स्त्रियोंसे युक्त सुमेरुके शिखर जैसे थे ॥७॥

८ जहां गृहोंके भीतर रक्खे उज्ज्वल रत्नोंकी किरणें गवाक्षों द्वारा निकलती, **हिमाचल** शिखरसे गंगाजलके पात सी शोभा देती थी ॥८॥

९ धर्म्यासु कामाऽर्थयशस्करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा
निसृषूत्तमासु॥९॥

१० पुत्रीयता तेन वराऽङ्गनाभिरानायि विद्वान् ऋतुषु क्रियावान्।
विपत्तिमज्ञानगतिर्मनस्वी मान्यो मुनिः स्वां
पुरमृष्यशृङ्गः ॥१०॥

११ ऐहिष्ट तं कारयितुं कृताऽऽत्मा क्रतुं नृपः पुत्रफलं मुनीन्द्रम्।
ज्ञाताऽऽशयस्तस्य ततो व्यतानीत् स कर्मठः कर्म सुताऽ-
नुबन्धम् ॥११॥

१२ रक्षांसि वेदी परितो निरास्थदङ्गान्ययाक्षीदभितः प्रधानम्।
शेषाण्यहौषीत् सुतसम्पदे च वरं वरेण्यो नृपतेरमार्गीत् ॥१२॥

१३ निष्ठां गते दत्रिमसभ्यतोषे विहित्रिमे कर्मणि राजपत्न्यः।
प्राशुर्हुतोच्छिष्टमुदारवंश्यास्तिस्रः प्रसोतुं चतुरः सुपुत्रान्॥१३॥

१४ कौसल्ययाऽसावि सुखेन रामः प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्
प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन॥१४॥
—प्रकीर्णकाण्डम्, सर्ग १

(२) प्रातः—

१५ अथाऽस्तमासेदुषि मन्दकान्तौ पुण्यक्षयेणेव निधौ कलानाम्।
समाललम्बे रिपुमित्रकल्पैः पद्मैः प्रहासः कुमुदैर्विषादः ॥१॥

१६ दूरं समारुह्य दिवं पतन्तं भृगोरिवेन्दुं विहितोपकारम्।
बद्धाऽनुरागोऽनुपपात तूर्णं तारागणः सम्भृतशुभ्रकीर्तिः ॥२॥

९ वह राजा श्रमयुक्ता काम-अर्थ यश करी लोक-सम्मानिता, कालमें प्राप्त तीन उत्तम पत्नियोंमे, विद्याओंमें विद्वान् की तरह रमण करता था ॥९॥

१० वरांगनाओंमे पुत्रकी कामना करते उसने यज्ञमे कर्मिष्ट विद्वान्, विपाक-निर्मित ज्ञानमे गति रखनेवाले, मनस्वी माननीय, शृंगी ऋत्विको अपने पुरमे बुलवाया ॥१०॥

११ राजाने उन संयमी मुनीद्रसे पुत्रफलवाले यज्ञको करानेकी इच्छा (प्रकट) की। भाव जानकर उन कमठ मुनिने पुत्र-सम्बन्धी कर्मको उसके लिये कराया ॥११॥

१२ यज्ञवेदीके चारो ओर राक्षसोंका निराकरण किया, प्रधान यज्ञके चारो ओर अंगों (यज्ञ) का यजन कराया। पुत्र प्राप्तिके लिये श्रेष्ठ आहुतियां डाली और श्रेष्ठ मुनिने नृपतिके लिये वर मांगा ॥१२॥

१३ दानपात्र ब्राह्मणोंके तुष्ट होने, विहित कर्मके समाप्त होने पर उच्चवंशी तीनों राजपत्नियोंने यज्ञशेषको भक्षण किया, चार सुन्दर पुत्रोंको पैदा करनेके लिये ॥१३॥

१४ **कौसल्या**ने पहले सुखसे रामको जन्म दिया, फिर **कैकेयी**से भरत हुये। अकेली **सुमित्रा**ने लक्ष्मण-सहित उदार-चेष्टावाले शत्रुघ्नको जन्म दिया ॥१४॥

—सर्ग १

२. प्रात वर्णन—

१५ तब कलानिधि (चन्द्रमा) के मदकांति हो, पुण्यक्षय जनकी तरह अस्ताचलपर जानेपर शत्रुओं और मित्रोंके समान क्रमश कमलोंने प्रहास और कोइयोंने विषाद प्राप्त किया ॥१॥

१६ भगु (गिरि) पतन की तरह दूर आकाशमे आरूढ हो गिरते, उपकारक चन्द्रके गिरनेपर उसके पीछे अनुरागी स्वच्छ कीर्ति-धारी तारागण भी गिरे ॥२॥

१७. क्व ते कटाक्षा क्व विलासवन्ति प्रोक्तानि वा तानि ममेति मत्वा।
लकाऽगनानामवबोधकाले तुलामनारुह्य गतोऽस्तमिन्दु ॥३॥

१८ मानेन तल्पेष्वयथामुखीना मिथ्याप्रसुप्तैर्गमितत्रियामा।
स्त्रीभिर्निशाऽतिक्रमविह्वलाभिर्दृष्टेऽपि दोषे पतयोऽनुनीता ॥४॥

१९ इर्ष्याविरुग्णा स्थिरबद्धमूला निरस्तनि शेषशुभप्रताना।
आप्यायिता नेत्रजलप्रसेकै प्रेमद्रुमा सरुरुहु प्रियाणाम् ॥५॥

२० तत समाशकितविप्रयोग पुनर्नवीभूतरसोऽवितृष्ण।
स्मरस्य सन्त पुनरुक्तभाव नाऽऽवतमानस्य विवेद लोक ।६

२१ शशाकनाथाऽपगमेन धूम्रा मूर्च्छापरीतामिव निर्विवेकाम्।
तत सखीव प्रथिताऽनुरागा प्राबोधयद् द्या मधुराऽरुणश्री ॥१६॥

२२ अवीततृष्णोऽथ परस्परेण क्षणादिवाऽऽयातनिशाऽवसान।
दु खेन लोक परवानिवाऽगात् समुत्सुक स्वप्ननिकेतनेभ्य ॥१७॥

२३ तालेन सम्पादितसाम्यशोभ शुभाऽवधान स्वरबद्धरागम्।
पदैर्गताऽर्थ नृपमन्दिरेषु प्रातर्जगुर्मंगलवत्तरुण्य ॥१९॥

२४ दुरुत्तरे पक इवान्धकारे मग्न जगत्सन्ततरश्मिरज्जु ।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन् प्रत्युज्जहारेव ततो विवस्वान् ॥२०

१७ कहा वे कटाक्ष कहा वे मेरे ललित वचन है, यह सोचकर, लकाकी स्त्रियोके जागनेके समय, स देह पर आरूढ हुये बिना च द्रमा अस्त हो गया ।।३।।

१८ निशाक बीतनेसे विह्वल स्त्रियो द्वारा दोष देखनेपर भी मान करक शय्यापर उलटा मुख किये झूठी निद्रामे रात बिताये पति मनाय गय ।।४।।

१९ प्रियतमाओकी ईर्ष्यामे व्याधित स्थिरबद्धमूल सारे शुभ हास आदि विस्तारासे वचित प्रेमरूपी वक्ष आसुओक सेचनमे तर्पित हो बढ ।।५।।

२० तब वियोगकी आशका करनवाल पुन नय उत्पन्न रसयुक्त अभिलाषी लोगोने दोहराते कामदेवक भी पुनरुक्तभावको नही जाना ।।६।।

२१ रात्रिके बीतनेमे मूर्छित, विवक रहित से धूमिल द्युलोकको, अरुणकी मधुर शोभाने बड अनुरागवाली सखीकी तरह जगाया ।।१६।।

२२ तब एक दूसरेस अतप्त हुय, मानो क्षण भरमे निशाकी समाप्ति होगी समझनेवाल, लोग दु खसे परवशकी तरह उत्सुक हो शयनगहोसे निकले ।।१७।।

२३ राजमहलामे प्रात काल तरुणियोने तालसे समता और शोभा सम्पादित किये। शुभ एकाग्रनायुक्त साथक स्वरयुक्त मगल रागको पदोक साथ गाया ।।१९।।

२४ तब दुस्तर पक जैसे अ धकारमे मग्न, आकारक भेदस नष्ट हुये, फैल रश्मिरूपी रस्सीवाल सूयने उगकर जगतका निकाला ।।२०।।

२५ पीतौष्ठरागणि हृताऽजनानि भास्वन्ति लोलैरलकैर्मुखानि।
प्रात कृताऽर्थानि यथा विरेजुस्तथा न पूर्वेद्युरलङ्कृतानि ॥२१
—सर्ग ११

(३) विभीषण-विलाप —

२६ व्यश्नुते स्म तत शोको नाभिसम्बन्धसम्भव ।
विभीषणमसावुच्चै रोदिति स्म दशाननम् ॥१॥
२७ "भूमौ शेते दशग्रीवो महार्हशयनोचित ।
नेक्षते विह्वल मा च न मे वाच प्रयच्छति ॥२॥
२८ विपाकोऽय दशग्रीव, सदृष्टोऽनागतो मया।
त्व तेनाऽभिहित पथ्य किं कोप न नियच्छति ॥३॥
२९ भजन्ति विपदस्तूणमतिक्रामन्ति सम्पद ।
तान्मदान्नावतिष्ठन्ते ये मते न्यायवादिनाम ॥४॥
३० अपथ्यमायतौ लोभादामनन्त्यनुजीविन ।
प्रिय शृणोति यस्तेभ्यस्तमृच्छन्ति न सम्पद ॥५॥
३१ द्वेष्टि प्रायो गुणेभ्यो यन्न च स्निह्यति कस्यचित् ।
वैरायते महद्भिश्च शीयते वृद्धिमानपि ॥९॥
३२ समाश्वसिमि केनाह कथ प्राणिमि दुगत ।
लोकत्रयपतिर्भ्राता यस्य मे स्वपिति क्षितौ ॥१०॥
३३ अहो जागर्ति कृच्छ्रेषु दैव यद्बलभिज्जित ।
लुठ्यन्ति भूमौ क्लिद्यन्ति बान्धवा मे स्वपन्ति च ॥११॥
३४ शिवा कुष्णन्ति मासानि भूमि पिबति शोणितम् ।
दशग्रीवसनाभीना समदन्त्यामिष खगा ॥१२॥

२५ पीले ओष्ठ रंगवाले अंजन पुंछे चंचल अलकोंसे चमकते कृतार्थ मुख प्रातः जैसे शोभा दे रहे थे वैसे पूर्व दिन में अलंकृत भी नहीं शोभा देते थे ।।२१।।

—सर्ग ११

३ विभीषणका विलाप—

२६ तब सहोदर सम्बन्धी शोक **विभीषण**को व्याप्त हुआ और वह **रावण**के लिये फूट फूट कर रोने लगा ।।१।।

२७ 'महार्घ शय्यापर सोनेवाला दशानन भूमिपर सो रहा है। **वह** न मुझ विह्वलको देखता है और न मुझे उत्तर देता है ।।२।।

२८ हे दशग्रीव, मैंने इस उचित परिणामको देखा था। उसे तुझे कहा (भी), पर तूने कोपपर भावी नियंत्रण नहीं किया ।।३।।

२९ जो मदके कारण उचित वक्ताओंकी सम्मति नहीं मानते उन्हें विपत्तियां जल्दी ही आ पकड़ती और सम्पत्तियां छोड़ जाती हैं ।।४।।

३० भविष्यमें अपथ्य होनेवाली बातको सेवक लोभवश कहते हैं। उनसे जो प्रिय बात सुनता है, उसे सम्पदा नहीं प्राप्त होती ।।५।।

३१ चूंकि प्रायः गुणोंसे द्वेष करता है और किसीसे स्नेह नहीं करता, महानोंके साथ बैर करता है, इससे (उसकी) समृद्धि भी नष्ट हो जाती है ।।६।।

३२ दुर्गतिको प्राप्त मैं किससे ढारस बांधू, कैसे जिऊं, जब कि मेरा तीन-लोक पति भाई पृथिवीपर सो रहा है ।।१०।।

३३ अहो संकटोंमें दैव जग रहा है जो कि इन्द्रके विजेता मेरे बांधव भूमिपर लोट सो रहे हैं ।।११।।

३४ सियारियां मांस खा रही है, पृथिवी शोणित पी रही है। **दशानन**के बंधुओंके आमिषको पक्षी खा रहे हैं ।।१२।।

३५ येन पूतक्रतो मूर्ध्नि स्थीयते स्म महाऽहवे।
तस्यापीन्द्रजितो दैवाद्ध्वाक्षैः शिरसि लीयते ॥१३॥
३६ त्वमजानन्निदं राजन्नीडिषे स्म स्वविक्रमम्।
दातुं नेच्छसि सीतां स्म विषयाणां च नेशिषे ॥१५॥
३७ हविर्जक्षिति निःशङ्को मखेषु मघवानसौ।
प्रवाति स्वेच्छया वायुरुद्गच्छति च भास्करः ॥१९॥
३८ धनानामीशते यक्षो यमो दाम्यति राक्षसान्।
तनोति वरुणः पाशमिन्दुर्नोदीयतेऽधुना ॥२०॥
३९ शाम्यत्यृतुसमाहारस्तपस्यन्ति वनौकसः।
नो नमस्यन्ति ते बन्धून् वरिवस्यन्ति नामराः ॥२१॥
४० श्रीर्निष्कुप्यति लङ्काया विरज्यन्ति समृद्धयः।
न वेद तन्न यस्यास्ति मतं त्वयि विपर्ययः ॥२२॥
४१ शमं शमं नभस्वन्तः पुनन्ति परितो जगत्।
उज्जिहीषे महाराज, त्वं प्रशान्तो न किं पुनः ॥२७॥
४२ प्रोर्णोति शोकश्चित्तं मे मन्त्र सशाम्यतीव मे।
प्रमाष्टि दुःखमालोकं मुञ्चाम्यूर्जं त्वया विना ॥२८॥
४३ रोदिम्यनाथमात्मानं बन्धुना रहितस्त्वया।
प्रमाणं नोपकाराणामवगच्छामि यस्य ते ॥३०॥
४४ त्वयापि नाम रहिताः कार्याणि तनुमो वयम्।
कुमश्च जीविते बुद्धिं धिक् तृष्णां कृतनाशिनीम् ॥३२॥
४५ तृणेह्मि देहमात्मीयं त्वं वाचं न ददासि चेत्।
द्राघयन्ति हि मे शोकं स्मर्यमाणा गुणास्तव" ॥३३॥
४६ अन्तःपुराणि पौलस्त्य, पौराश्च भृशदुःखिता।
संश्रुत्य समाभिधावन्ति हतं रामेण संयुगे ॥३७॥

३५ जो महायुद्धमें इन्द्रके सिरपर खडा होता था उस मेघनादके सिरपर दैवके कारण कौवे बैठे है ।।१३।।

३६ हे राजन् इसे बिना जाने तुम अपने पराक्रमकी तारीफ करते थे। सीताको नही देना चाहते थे और विषयोपर काबू नही कर पाये थे ।।१५।।

३७ (अब) वह इन्द्र निश्शंक हो यज्ञोमे हवि-भक्षण कर रहा है, वायु स्वेच्छापूर्वक बह रहा है और सूर्य उग रहा है ।।१९।।

३८ कुबेर धनोपर अधिकार कर रहा है यम राक्षसोका दमन कर रहा है। वरुण पाशको फैला रहा है अब चन्द्रमा उग रहा है ।।२०।।

३९ ऋतुये शान्त हो रही है वनवासी तपस्या कर रहे हैं। (अब) तेरे बन्धुओको अमर न नमस्कार करेंगे न पूजेंगे ।।२१।।

४० **लंकापर** श्री क्रुद्ध है समृद्धियां विरक्त है। इसे तुमने नही जाना, जिसका तेरे बिना उलटा हो रहा है ।।२२।।

४१ वायु शान्तिपूर्वक चारो ओर जगतको पवित्र कर रहे है। हे महाराज, क्या प्रशान्त हो फिर तुम नही उठोगे ।।२७।।

४२ शोक मेरे चित्तको ढाक रहा है मेरी हिम्मत ठंडी हो रही है। दुःख प्रकाशको पोछ रहा है तेरे बिना मै बलको छोड रहा हू ।।२८।।

४३ तुझ बन्धुके बिना मैं अपने अनाथ होनेके लिये रो रहा हू। जिस तेरे किये उपकारोकी सीमा मै नही जानता ।।३०।।

४४ तेरे बिना भी क्या हम कार्योको फलायेगे? जीनेकी इच्छा करेंगे? कृतघ्ना तृष्णाको धिक्कार है ।।३२।।

४५ यदि तुम उत्तर नही देते तो मैं अपने शरीरको मार दूगा। याद आते तेरे गुण मेरे शोकको बढा रहे है ।।३३।।"

४६ युद्धमे राम द्वारा रावणके मारे जानेकी बात सुनकर अन्तःपुरवाले और पुरवासी अत्यन्त दुःखित हो दौड रहे थे ।।३७।।

४७ मूर्धजान् स्म विलुचन्ति क्रोशन्ति स्मातिविह्वलम्।
अधीयन्त्युपकाराणा मुहुर्मुहु प्रमन्यु च ॥३८॥

४८ रावणस्य नमन्ति स्म पौरा सास्रा रुदन्ति च।
भाषेत स्म ततो रामौ वच पौलस्त्यमाकुलम् ॥३९॥

४९ "दातु स्यातुद्विषा मूर्ध्नि यष्टुस्तर्पयितु पितन्।
युद्धाभग्नाविपन्नस्य किं दशास्यस्य शोचसि ॥४०॥

५० बोभवीति न सम्मोहो व्यसने स्म भवादृशाम।
किं न पश्यसि सर्वोऽय जनस्त्वामवलम्बते ॥४१॥

५१ त्वमर्हसि भ्रातुरनन्तराणि कर्तु जनस्यास्य च शोकभगम्।
धुर्ये विपन्ने त्वयि राज्यभारो मज्जत्यनूढ
क्षणदाचरेन्द्र" ॥४२॥

—सर्ग १८

२८ बिज्जा (विद्या ६१० ई०)

संस्कृतमें स्त्रियोने भी कविता की थी, और कुछ कविताओके देखनेसे मालूम होता है कि वह पुरुषोसे पीछे नहीं थी। पर, उनके थोडेहीसे नमूने सुभाषित ग्र थोमें सुरक्षित ह। कलकत्ता विश्वविद्यालयके डा० यतीन्द्रविमल चौधरीने "सस्कृत पोएटिसेस" (सस्कृत कवयित्रिया) में कितनियोकी रचनाओको सगहीत किया ह, जिनमें बिज्जा या बिज्जिकाके भी पद्य हैं।

स्फुट-सग्रह

(१) चाटुकारिता—

१ भूपाला शशि-भास्करान्वयभवा के नाम नासादिता,
भर्तार पुनरेकमेव हि भुवस्त्वा देव मन्यामहे।

४७ वे बालाको नोचत थे अति विह्वलतासे क्रन्दन करते थे। बार बार स्वामीके उपकारो को अत्यन्त शोकसे याद करते थे ।।३८।।

४८ अश्रुमुख पुरवासी रावणको नमस्कार करते रो रहे थे। तब व्याकुल विभीषणसे रामने यह बात कही ।।३९।।

४९ 'दाता, शत्रुओके सिरपर खडे होनेवाले पितरोकी पूजा और तर्पण करनेवाले, युद्धमे अखण्डित-अविपदग्रस्त रावणके लिये तुम क्यो शोक करते हो ।।४०।।

५० आप जैसोको दु:खमे अधिक मोह नही करना चाहिये। क्या नही देखते, ये सब लोग तुम्हारे सहारे है ।।४१।।

५१ तुमको भाईकी अन्त्यष्टि और इन लोगोका शोकभग करना चाहिये। हे राक्षसेश्वर, धुरधर तुम्हारे विपद्युक्त होनेपर बिना वहन होता राज्य का भार डूब जायेगा" ।।४२।।

—सर्ग १८

२८ बिज्जा (विद्या ६१० ई०)

डा० चौधरीने इनका समय ईसाकी सातवीं सदीके आसपास माना है। किसी किसीका कहना है कि यह किसी राजा चन्द्रादित्यकी पत्नी विजय-भट्टारिका थी। इनके बारेमें यह भी मशहूर है कि दण्डीने सरस्वतीको जब सर्वशुक्ला कहा, तो विद्याने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"नीलकमल सी श्यामा मुझ विज्जिकाको जाने बिना ही दण्डीने सरस्वतीको सर्वशुक्ला कहा', अर्थात विद्या अपने समयकी द्वितीय सरस्वती थी।

स्फुट संग्रह

१ चापलूसी—

१ (उसने) चन्द्र सूर्यवंशी कौनसे राजा नही पाये, पर हे देव, हम समझते है, पृथिवीने तुम्हीको एक स्वामी पाया, जिसने कि **अंगदेश**को जीत,

येनाग परिमृप्य कु तलमथाकृष्य व्युदस्याऽऽयत,
चोल प्राप्य च मध्य देशमधुना काच्या कर पातित ॥१॥[1]

(२) खड्ग —

२ यश -पुत्र देव त्वदसि-लतिकाऽसूत समरे,
समीरस्तद्धूली - पटल - पट - राशि विकिरति।
शिवा गायन्त्युच्चैर्नटति च कबन्धावलिरभद्,
अरातीना मोक्ष सपदि भव-बन्ध-व्यतिकरात् ॥२॥[2]

(३) कवि-प्रशसा—

३ नीलोत्पल-दल-श्यामा विज्जका मामजानता।
वथव दण्डिना प्रोक्ता सव-शक्ला सरस्वती ॥३॥[3]

(४) ग्राम्या—

४ मचे रोमाचितागी रति-मृदित-तनो ककटी-वाटिकाया,
कान्तस्यागे प्रमोदादभय-भुज-परिष्वक्त-कण्ठे निलीना।
पादेन प्रेखयन्ती मुखरयति मुहु पामरी फेरवाणा,
रात्रावत्राम-हेतोवति-शिखर-लता-लम्बिनी कम्बु-
मालाम् ॥८॥[4]

(५) विरहिणी—

५ देवेन प्रथम जितोऽसि शशभृल्लेखाभताऽनन्तर,
बुद्धेनोद्धत-बुद्धिना स्मर तत कान्तेन पान्थेन मे।
त्यक्त्वा तान् बत हसि मामतिकृशा बालामनाथा स्त्रिय,
धिक् त्वा धिक तव पौरुष धिगुदय धिक्कार्मुक धिक्
शरान् ॥९॥[1]

---

१ शार्दूलविक्रीडितम। २ शिखरिणी। ३ अनुष्टुप।
४ स्रग्धरा।

कुंतलका छान, विस्तृत **चोल** देशका हरा, अब **मध्यदेश**को लेकर **काची**क ऊपर हाथ डाल रहा है ।।१।।

२ खड्गकी प्रशसा—

२ हे दव समरमे तुम्हारी खडग-लतासे यशरूपी पुत्र पैदा हुआ वायु उसके धूलियो रूपी वस्त्रको राशिको फैलाता है। सियारिया ऊच गाती ह शिरहीन धड नाचत ह ससारक बधनसे शत्रुओ-का मोक्ष तुरत हो गया ।।२।।

३ कविकी प्रशसा—

३ नीलकमलक पत्रोसी श्यामा मुझ विज्जिकाको जान बिना, **दण्डी**ने व्यथ ही सरस्वतीका पूरा सफद कहा ।।३।।

४ ग्रामीण स्त्री—

४ ककडीके खतमे मचान पर रति मर्दित शरीरवाली पतिके शरीरपर निभय भुजामे आलिगित कठवाली रोमाचित अगयुक्त लेटी, पर पीटती ग्रामाणा रातको गीदडोको डरानक लिय धिरी शिखर लतासे लटकती शखोकी मालाको बार बार बजा रही है ।।८।।

५ विरहिणी—

५ हे कामदेव पहल देव चद्रशेखर द्वारा तू जीता गया, फिर विशाल बुद्धिवाले बुद्ध द्वारा, तब मेरे बटोही कात द्वारा। उन्हे छोडकर हाय मुझ अनाथा अतिदुर्बल बाला स्त्री को तू मार रहा है। तुझे धिक्कार, तेर पौरुषका धिक्कार (तरे) उदयको धिक्कार धनुषको धिक्कार, तरे शरोका धिक्कार ।।६।।

(६) पथिक-कामिनी—

६ मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो,
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगा ।
एकां घातयितुं वियोग विधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं,
प्रावृट्-काल हताश, वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥१०॥[1]

(७) दृष्टि—

७ जनयति जननाथ दृष्टिरेषा,
तव नवनीतल-सरोरुहाभिरामा ।
प्रणयिषु सुसमाश्रितेषु लक्ष्मी-
मरिषु च भगमनगमगनासु ॥१२॥[2]

(८) प्रोषित-भर्तृकोक्ति—

८ विज्ञप्तिरेषा मम जीव-बन्धो,
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः ।
सम्प्रत्ययोग्य-स्थितिरेष देशः,
करा हिमांशोरपि तापयन्ति ॥१५॥[3]

(९) तडागान्योक्ति—

९ माद्यद्दिग्गज-दान-लिप्त-करट-प्रक्षालन-क्षोभिता,
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योमयो निर्मला ।
कष्टं भाग्य-विपर्ययेण सरसः कल्पान्तर-स्थायिनस्,
तस्याप्येक-बक-प्रचार-कलुषं कालेन जातं जलम् ॥१८॥[4]

---

१ शार्दूलविक्रीडितम् । २ पुष्पिताग्रा । ३ उपजाति । ४ हरिणी ।

६ बटोहीकी पत्नी—

६ मेघोसे आकाश ढक गया, नये जलसे धरती, बिजलीसे दिशायें, धाराओसे गगन, कुटजोसे वन, धाराओसे नदिया (ढक गईं)। एक वियोग पीडित दीन बेचारी स्त्रीको मारनेके लिये, हे अभागे वर्षाकाल, तूने (इतना) मिथ्या आडम्बर क्यो किया ?।।१०।।

७ चितवन—

७ हे राजन्, तुम्हारी नवीन नीलकमलसी सुन्दर यह दृष्टि, आश्रित प्रणयी जनोमे लक्ष्मीको शत्रुओमे नाशको, और स्त्रियोमे कामको उत्पन्न करती है।।१२।।

८ परदेसीकी पत्नीका सवाद—

८ हे जीवनबन्धु, मेरी यह विनती है, कि तुम कुछ दिन (और) वही बिताओ। इस समय यह देश रहने योग्य नही है, क्योकि चन्द्रमाकी किरणें भी यहा ताप दे रही है।।१५।।

९ अन्योक्ति—

९ जिसकी निर्मल लहरे, मत्त दिग्गजके मदसे लिप्त कपोलोके, घोनेसे क्षोभित हो अप्रतिहत आकाशकी सीमा तक विचर रही हैं, कल्पान्त तक रहनेवाले उस सरोवरका भी जल, हा कष्ट, उलटे भाग्यके कारण, काल या (आज) एक बगलेके चलनेसे मलिन होने लायक हो गया। ।।१८।।

(१०) दैवोपालम्भ —

१० प्रियसखि, विपद्-दण्ड-प्रान्त-प्रपात-परम्परा-
परिचय-चले चिन्ता-चक्रे निधाय विधि खल ।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-कुलालवद्,
भ्रमयति मनो नो जानीम किमत्र करिष्यति ॥१९॥[१]

११ विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपदि महता धैर्य-भ्रंश यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जड-विधे कल्पापाय-व्यपेत-निज-क्रमा,
कुल-शिखरणि क्षुद्रा नैते न वा जल-राशय ॥२०॥[२]

(११) उलूखल-गीति —

१२ विलास-मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दो -कन्दली-,
परस्पर-परिस्खलद्-वलय-नि स्वनोद्बन्धुरा ।
लसन्ति कल-हुंकृति-प्रसभ-कम्पितोर -स्थल-,
त्रुटद्-गमक-सकुला कलम-कण्डनी-गीतय ॥२१॥[३]

(१२) चम्पक —

१३ केनापि चम्पक-तरो बत, रोपितोऽसि,
कुग्राम-पामर-जनान्तिक-वाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढ-नव-शाक-विवृद्ध-लोभाद्,
भो भग्न-वाट-घटनोचित-पल्लवोऽसि ॥२२॥[४]

(१३) तरु —

१४ सच्छाय फल-भार-नम्र-शिखर सर्वार्ति-शान्ति-प्रद
त्वामालोक्य सु-भूरुह खलु वय मार्ग विहायाऽऽगता ।[५]

---

१ पृथ्वी, २ वसन्ततिलका, ३ शार्दूलविक्रीडितम, ४ आर्या,
५ हरिणी ।

१० दैवको उलाहना—

१० हे प्रिय सखि, विपदरूपी डडेके छोरके लगातार गिरनेसे परिचयसे चिन्ताके चक्करमे चचल मनको रखकर, ढीठ कुम्हार द्वारा जब दस्ता पिड बनाइ मिट्टीकी तरह घुमाता दुष्ट विधाता, जाने यहा क्या करनेवाला है ॥१६॥

११ विपदमे वडाके वय टूटनेको जो दखना चाहता हे, तो तू इस विफल परिश्रमवाली बुरी कोशिशसे रुक जा। हे जड दैव, यह प्रलयके (महा)नाशमे भी अपने स्वभावमे अविचल, कुल-पर्वत है, क्षुद्र जलराशि नही है ॥२०॥

११ ओखल-गीति—

१२ लीला स्नेहयुक्त उठते मूसलसे चचल बाहुरूपी कदलीके द्वारा परस्पर गिरती चूडियोकी खनखनसे सुन्दर मधुर हुकारके साथ, जोरसे कपित वक्षस्थलसे टूटते, तालके सहित धान कूटनेकी गीतें शोभा दे रही है ॥२१॥

१२ चम्पक—

१३ हे चम्पा वक्ष—हाय किसीने तुम्हे कुग्रामके पामर जनोके पास, आखिरी बारीमे रोप दिया, जहापर उगे हुय नये सागकी वृद्धिके लोभसे, टूटी बारीको ठीक करनेके लिये उपयुक्त तुम्हारा पल्लव (माना गया) है ॥२२॥

१३ तरु—

१४ अच्छे छायादार फलके भारसे झुके शिखरवाले, सबसे अधिक शाति-प्रद, सुवृक्ष, तुम्हें देखकर हम रास्ता छोडकर आ गये। यदि तुम्हारा

अन्तस्ते यदि कोटरोदर-चलद्-व्यालावली-विस्फुरद्-
वक्त्रोद्वान्त-विषानलातिभयद धन्यस्तदानी भवान् ॥२३॥

(१४) **सूर्योदय-वर्णनम्—**

१५ उन्निद्र-कोकनद-रेणु-पिशगिताागा
गायन्ति मजु मधुपा गृह-दीर्घिकासु।
एतच्चकास्ति च रवेनव-बन्धु-जीव-
पुष्पच्छदाभमुदयाचल-चुम्बि बिम्बम् ॥२४॥

(१५) **वर्षा—**

१६ सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुचन्तु नाद घना,
वाता वान्तु कदम्ब-रेणु-शबला नृत्यन्त्वमी बर्हिण ।
मग्ना कान्त-वियोग-दु ख-जलधौ दीना विलोक्यागना,
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्येऽसति ॥२५॥

१७ अस्थिरमनेक-राग गुण-रहित नित्य-वक्र-दुष्प्रापम्।
प्रावृषि सुरेन्द्र-चाप विभाव्यते युवति-चित्तमिव ॥२६॥

१८ मलिन-हुत-भुग्-धूप-श्यामैर्दिशो मलिना घनै-
रविरल-तृणै श्यामा भूमिनवोद्गत-कदलै ।
सुरत-सुभगो नून काल स एव समागतो,
मरण-शरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिन ॥२७॥

(१६) **वसन्त —**

१९ किशुक-कलिकान्तगतमिन्दु-कला-स्पर्धि केसर भाति।
रक्त-निचोलक-पिहित धनुरिव जतु-मुद्रित वितनो ॥२८॥

भीतरी रूप, काटरके गभम चलते सापोके लहलहाते मुखोसे उगले विष ज्वाला के कारण अनि भयप्रद है तो आप धन्य है ।।२३।

१४ **सूर्योदय-वर्णन—**

१५ फूले कमलकी धूलिस पील अगवाले भवरे घरकी दीघियाम मधुर गान करत है। नवीन अडहुल फूलक पत्र सा चमकनवाला, उदया चलका चूमनेवाला यह सूयमडल चमक रहा है ।।२४।।

१५ **वर्षा—**

१ (भल ही) नवीन जलक भारमे भारी उत्साह-महित मेघ (अपना) नाद छोड। कदवके केसरमे लिप्त वायु बहे, मोर नाचे। हे विद्युन पति वियोगरूपी दु ख-सागरमे डूबी दीन अगनाको देखकर जा त कादती हे तो तू मेरे समान स्त्री होनेपर भी निष्ठुर है ।।२५।।

१८ अस्थिर नाना रगयुक्त, गुण रहित नित्य कुटिल और ुलभ, (यह) वर्षाकालका इन्द्रधनुष युवतीक चित्तसा दीखता हे ।।२६।।

१८ अग्निके मलिन धूये जैसे से श्याम बादला द्वारा दिशाये मलिन है, नये निकले कदवाल घने तणोसे भूमि श्याम है। रस लिये सचमुच वही सुदर काल आ गया है जिसमे वियोगी के लिये मरण (ही) शरण होता है ।।२७।।

१६ **वसन्त—**

१९ टसूकी कलीक भीतर स्थित चद्रकलाके साथ होड लगानेवाला कसर शोभा देता है। मानो लाल थैलीमे छिपा लाखसे मुद्रित कामदेवका धनुष है ।।२८।।

२९ बाण (६२० ई०)

बाण वर्तमान आरा जिला (बिहार) मे सोन नदीके दाहिने तटपर अवस्थित प्रीतिकूटके निवासी थे। संस्कृत गद्यकाव्य इनकी कृतियोके रूपमें अपने चरम उत्कर्षपर पहुँचा। बाण हर्षवर्धन शीलादित्य (६०७–४७ ई०)के दरबारी कवि थे। यह एक बडे समृद्ध कुलमें पैदा हुए थे, जिसके कारण चाटुकारितामें निपुण नहीं हो सकते थे। इनके व्यक्तित्वका पता "हर्षचरित" और "कादम्बरी"से मिलता है। शायद इनकी तरहकी प्रकृतिके और आढ्य कुलमें उत्पन्न हुए दूसरे संस्कृतके कवि क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्रने बहुत लिखा, उनके "दशावतारकाव्य"से पता लगता है, कि उनमें टकसाली कवि बननेकी भी प्रतिभा थी। बाण अपनी "कादम्बरी"को पूरा नहीं कर सके, जिसे उनके पुत्र भूषण भट्टने समाप्त किया। उपरोक्त दो श्रेष्ठ

१ हर्ष-चरितम्

(१) प्रास्ताविकम्—

१ उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषा वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्या कवीश्वरा ॥१०॥

२ कवीनामगलद् दर्पो नून वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणा गतया कर्णगोचरम् ॥११॥

३ पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थिति।
भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥१२॥

४ अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहन।
विशुद्धजातिभि कोश रत्नैरिव सुभाषितै ॥१३॥

५ कीर्त्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य पर पार कपिसेनेव सेतुना॥१४॥

२९ बाण (६२० ई०)

गद्यकाव्योके अतिरिक्त "चण्डीशतक", "पार्वती परिणय", "मुकुटताडितक" तीन और ग्रन्थोका इन्हे रचयिता बतलाया जाता है। यह भी किंवदन्ती है, कि "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागानन्द" तीनो नाटकोके भी रचयिता बाण ही थे, जो उनके आश्रयदाता हर्षवर्धनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध है। हो सकता है, इन नाटकोको हर्षवर्धनने लिखा हो, और बाणने उनका प्रतिसंस्करण किया हो। बाण प्रथम श्रेणीके घुमक्कड थे। यौवनके आरम्भ होते ही तीन दर्जनसे अधिक गुणियो और कलाकारोकी मण्डली लेकर वह कई वर्षोंतक देशाटन करते रहे, देशाटन और पण्डित मित्रतासे इन्हे बहुत लाभ भी हुआ। इनकी कृतियोमें तत्कालीन देश और समाजका जितना विस्तृत और गम्भीर, आकर्षक और अपुनरुक्त चित्रण मिलता है, वैसा और जगह मिलना दुर्लभ है।

१ हर्षचरित

१ प्रस्तावना

१ जिनके मुहपर सरस्वती (वास करती) है वे आख्यायिकाकार, कवीश्वर क्यो न वन्दनीय हो ॥१०॥

२ निश्चय ही **वासवदत्ता**मे कवियोका दर्प गलित हो गया। जैसे कर्ण (कान) के गोचर हुई शक्तिसे पाडुपुत्रो का (दर्प)॥११॥

३ पदोके बन्धमे उज्ज्वल वर्णोके क्रमकी स्थितिसे मनोहर, भट्टार **हरिश्चन्द्र**की गद्य रचना राजती है॥१२॥

४ **सातवाहन**ने विशुद्ध जातिके रत्नो जैसे सुभाषितो द्वारा, अपने अमर तथा अग्राम्य **कोश**[1]को रचा॥१३॥

५ कुमुद सी उज्ज्वल **प्रवरसेन** की कीर्ति **सेतु** द्वारा वानर-सेनाकी तरह सागरके परले पार पहुच गई॥१४॥

---

१ गाथासप्तशती

६ सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥१५॥

७ निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥१६॥

८ समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥१७॥

—उच्छ्वास १

(२) राजदूतागमनम्

९ ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—"एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते" इति। सोऽब्रवीत्—"आयुष्मन्, अविलम्बं प्रवेशय एनम्" इति।

१० अतिदूरगमनगुरुजडजङ्घम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रन्थिम्, अतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्, अप्राक्षीच्च दूरादेव—"भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्र भवतः कृष्णस्य" इति।

६ सूत्रधार द्वारा किये आरंभवाले बहुत भूमिका (अभिनय) वाले (अपने) नाटकोंसे पताका-युक्त देवकुलों (छतरियों) की तरह **भासने** यश प्राप्त किया।।१५।।

७ **कालिदास**की निकली सूक्तियोंमें मधुर घनी मंजरियोंमें जसी, प्रीति किसको नहीं होगी।।१६।।

८ कामोत्तेजक, गौरीकी आराधना किये हरकी लीला की तरह **बृहत्कथा** किसके लिये विस्मयकारिणी नहीं होगी।।१७।।

—उ० १

२ राजाके दूतका आगमन—

९ ग्रीष्मकालमें एक बार घर पर रहते भोजन करनेके बाद अपराह्ण समयमें बाणके भिन्न वर्णज भाई **चंद्रसेन**ने प्रवेश करके कहा— 'चारों समुद्रोंके अधिपति, सारे राजाओंकी चूडामणियोंरूपी कसौटीके कोन द्वारा घिसनेसे निर्मल चरण नखकी मणियोंवाले सारे चक्रवर्तियोंमें धुरंधर, देव महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **हर्षदेव**के भाई **कृष्ण** का भेजा दीर्घयात्री अतिप्रसिद्ध दूत द्वारपर खडा है।" **बाणने** कहा—"आयुष्मान् बिना विलंबके उसे भीतर लाओ।"

१० तब बडी दूरकी यात्रासे भारी तथा जड जंघावाले, गर्द भरे वस्त्र खंड से बंधी ऊंची जांघियावाले पीठपर हिलते कपडसे बंधे शिथिल ग्रंथि-वाले बहुत घने सूत्रके बंधनसे झुके भीतरसे विलग की हुई पत्रिका द्वारा शोभित सिरवाले, पत्रवाहकको **बाणने** प्रवेश करते देखा और दूरसे ही पूछा—'भद्र, सारे भुवनके अकारण-बंधु आप **कृष्ण**का मंगल तो है?'

११ स "भद्रम्" इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—"एष खलु स्वामिनो माननीयस्य लेख प्रहित" इति विमुच्य चापयत्।

१२ अथ बाण सादर गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—"मेखलकात् सदिष्टमवधाय फलप्रतिबन्धी धीमद्भिरपहरणीय कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासवाद-नमात्रकम्।" अवधृतलेखार्थश्च सममुत्सारितपरिजन सदेश पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—"एवमाह मेधाविन स्वामी—'जानात्येव मान्य यथैकगोत्रता वा, समानजा-तिता वा, सम सवर्धन वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शना-भ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवण वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतव। त्वयि तु विना कारणेऽनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपात किमपि स्निह्यति मे हृदय दूरस्थे-ऽपीन्दोरिव कुमुदाकरे। भवन्तमन्तरेणान्यथा चान्यथा चाय चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न सन्त्येव ते येषा सतामपि सता न विद्यन्ते मित्रोदासीन-शत्रव। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवत केनचिदसहिष्णुना यत्किचिदसदशमुदीरितम्। इतरो लोकस्तथैव तद् गृह्णाति वक्ति च।

१३ सलिलानीव गतागतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिना मनासि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चय कि करोतु पृथिवीपति। तन्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽस्मि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्—'यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलै शैशवमपराधी'ति। तथेति च प्रतिपन्न स्वामिना। अतो भवता राजकुलमक्त-

११ मंगल है" कहकर वह, प्रणाम कर समीपमें बैठ गया। फिर (थोड़े) विश्रामके बाद —"यह माननीय स्वामीका भेजा हुआ पत्र है", यह कहकर उसे प्रदान किया।

१२ तब बाणने आदरपूर्वक लेकर स्वयं ही उसे बाँचा—'मेखलकसे संदेशको जानकर फल अनुरोधी बुद्धिमान् आप देर न करें यही यहां मतलब है। और तो बातका समर्थन मात्र है।' पत्रके अभिप्रायको जानकर परिजनोंका हटा (बाणने) मेखलकसे सन्देश पूछा। मेखलकने कहा— 'मेधावी आपको हमारे स्वामीने यो कहा है— 'माननीय आप जानते ही हैं कि स्नेहके कारण होते हैं एक गोत्र या एक जातिका होना, या साथ पालन-पोषण होना, या एक देशमें निवास होना, या बराबर देखते रहना, या पारस्परिक अनुरागको सुनना, या परोक्षमें उपकार करना या एक जैसे शीलका होना। तुम्हें न देखे होनेपर भी अकारण ही सन्निकटके बन्धुकी तरह कुमुदाकरमें दूरस्थ चन्द्रमाकी तरह पक्षपाती हो मेरा हृदय (तुममें) कुछ स्नेह करता है। तुम्हारी अनुपस्थितिमें दुर्जनोंने इस चक्रवर्ती (हर्ष) को उलटा-उलटा समझा दिया। पर वह वैसा नहीं है। सत्पुरुष होते भी ऐसे पुरुष (दुनियामें) नहीं होते जिनके मित्र, उदासीन और शत्रु न होवें। बाल-चपलता की ओर की चित्तवृत्ति होनेके कारण किन्हीं असहिष्णुने आपके सम्बन्धमें जो कुछ अयुक्त बात कह दी दूसरे लोग उसे वैसे ही ग्रहण करते और कहते हैं।

१३ अविवेकियोंके मन पानीकी तरह गतानुगतिक चंचल होते हैं। बहुत मुखोंसे सुननेमें स्थिर निश्चय किये पृथिवीपति क्या करें? हम तो तुम्हारा दूर रहते भी तुम्हारा प्रत्यक्ष किये से है। तुम्हारे बारेमें हमने चक्रवर्तीको अर्ज किया है। पहली आयुमें प्रायः सबका ही शैशव चपलताका अपराधी होना है। स्वामीने भी 'ठीक है' माना है। इसलिये बिना देर किये आप राजदरबारमें आयें। महाराजको

तकालक्षेपमागन्तव्यम् । अवकेशीवादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नासि मे बहुमत । न च सेवावैषम्य-विषादिना वा परमेश्वरोपसपणभीरुणा भवता भवितव्यम् । यतो यद्यपि—

१४ स्वेच्छोपजातविपयोऽपि न याति वक्तु,
देहीति मागणशतैश्च ददाति दु खम् ।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे,
कष्ट मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्ध ॥३॥

१५ "तथाप्यन्ये ते भूपतय , अन्य एवायम् । न्यक्कृतनृगनिषधनहुषाम्वरीपदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथयया-तिरमतमय स्वामी । नास्याहकारकालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टय , न गवगुरुगरलग्रहगदगद्गदा गिर , नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदपदाहज्वरवेगविक्लवा विकाराश्च, नाभिमानमहासनिपातनिर्मितागभगानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृताप्ठनिप्ठ्यूतनिप्ठुराक्षराणि जल्पितानि । तथा च अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धि , न शिलाशकलेषु । मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधी , नाभरणभारेषु । दानवत्सु कमसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु । सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीति , न जीवितजरत्तृणे । गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनताभियोग , न निजकलत्रधमपुत्रिकासु । गुणवति धनुषि सहायबुद्धि , न पिण्डोपजीविनि सेवकजने । अपि च—अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरण प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरण वैदग्ध्यम्, वान्धवोपकरण लक्ष्मी , कृपणोपकरणमैश्वयम्,

देखे बिना निष्फल वृक्षकी तरह बन्धुओके बीच बसते तुम मेरे बहु-मान्य हो। आप सेवाकी विषमतासे खिन्न अथवा महाराजके पास आनेमे भयभीत न होवे क्योकि यद्यपि,

१४ अहो, दुष्पडित राजा, कामदेवकी तरह स्वच्छासे उत्पन्न विषय (देश) वाला होते भी बोला नही जा सकता सैकडो मगतो (वाणा) द्वारा 'दो" (कहना) दुख देता है, मोह वश जीवनको भी असमय ही फेक देता है ।।३।।

१५ तो भी वे भूपति और है, यह (हर्ष) दूसरे ही है। **नग-नल-निषध नहुष-अम्बरीष दशरथ दिलीप नाभाग भगीरथ-ययाति**को (इन्होने) हेठा किया है। इन स्वामी की दृष्टि अहकाररूपी कालकूट विषसे लिप्त होकर दुष्ट नही है, वाणी गर्वके भारी विषसे गलेके ग्रहणरूपी रोगसे गदगद नही है स्थितिया अति आश्चर्यकी ह, गर्मीकी मगी द्वारा (इनकी) स्थिरता भुलाई जानवाली नहीं है, उत्कट अभिमानक दाह ज्वरके ज्वरसे विह्वल करने वाले विकार नही ह, गतिया अभिमानरूपी महासनिपातसे बने अग भगवाली नही है, कथन मदसे पीडित टेढे किये ओठसे निकले निष्ठुर अक्षरावाले नही है। और भी, निर्मल यह साधुओको रत्न मानते है शिलाखडाको नही। मोतीसे उज्ज्वल गुणोको अलकार मानते है, आभूषणके बोझोको नही। दानयुक्त कर्मो को साधन मानते है हाथियो और भ्रमरोको नही। सर्वश्रेष्ठ यशमे महाप्रीति रखते है, जीवनके जीर्ण होते तृणमे नही। लिये कर (शुल्क) वाली आशाओ (दिशाओ) में प्रसाधनका उपयोग करते है, निज स्त्रीरूपी चमडेकी पुतलियोमे नही। गुणवाले धनुषमें (इनका) मित्रताका भाव है, पिंडपर जीनेवाले सेवकजनो पर नही। और भी, इनका मित्रोका उपकरण (साधन) अपने आप है मृत्युका साधन प्रभुता है पडितका साधन विदग्धता, बान्धवका साधन लक्ष्मी, दरिद्रोका उपकरण ऐश्वर्य, ब्राह्मणोका उपकरण अपना सर्वस्व, सुकृतके स्मरणका उपकरण हृदय, धर्मका उपकरण आयु, साहसका

द्विजोपकरण सवस्वम्, सुकृतसस्मरणोपकरण हृदयम्, धर्मोपकरणमायु, साहसोपकरण शरीरम असिलतोपकरण पृथिवी, विनोदोपकरण राजकम्, प्रतापोपकरण प्रतिपक्ष । नास्याल्पपुण्यैरवाप्येत सर्वातिशायिसुखरसप्रसूति पादपल्लवच्छाया" इति।
श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेन समादिशत्—"कृतकशिपु विश्रान्तसुखिनमेन कारय" इति।

—उच्छ्वास २

(३) वाणस्य यात्रा—

१६ अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधवलदुकूलवासा, गहीताक्षमाल, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुश समावर्त्य, देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुर सरा सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजवलिविलेपनप्रदीपकबहुला विधाय पूजाम्, परमया भक्त्या प्रथमहुततरलतिलत्वग्विचटनचटुलमुखरशिखाशेखर प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिष भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्वा द्युम्न यथाविद्यमान द्विजेभ्य, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखी नैचिकीम्, शुक्लागराग, शुक्लमाल्य, शुक्लवासा, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूर, शिखासक्तसिद्धार्थक, पितु कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमगल, दत्ताशीर्वाद, वान्धववृद्धाभिरभिनन्दित, परिजनजरतीभिवन्दितचरणैरभ्यनुज्ञात, गुरुभिरभिवादितैराघ्रात शिरसि, कुलवृद्धैर्वर्धितगमनोत्साह, शकुनै-

उपकरण शरीर, तलवारका उपकरण पृथिवी, विनोदका उपकरण राजसभा प्रतापका उपकरण शत्रु पक्ष है। पुण्यहीनोको सबसे वन्कर सुख रम पैदा करनवाली इनक पाद पल्लवकी छाया आसानी के नही मिल सकती।"

(तात) सुनकर उसी चन्द्रमनको वाणन आदश दिया— भोजन आदि कराकर इसे विश्राम सुख दिलवाओ।

—उच्छवास २

३ वाणकी यात्रा—

१६ तब दूसरे दिन उठकर सवरे ही नहाकर वाणने श्वेत दुकूल वस्त्रको धारण किया फिर रुद्राक्ष-माला लिये प्रस्थान-सम्बन्धी सूक्तो और मत्रोको बहुत बार दोहराया, दुग्ध-स्नान पूवक सुगधित बहुत कुसुम धूप-गन्ध ध्वज बलि विलेपन-दीपक सहित देव-देव [शकरकी पूजा की, फिर, परम भक्तिसे पहले हवन किये चटचट करके तिलोक छिलकाके फूटनेस चचल मुखर, शिखारूपी शेखरवाले घत आहुतिसे बढ दाहिनी लौवाले भगवान् अग्निमे भक्ति पूवक हवन किया, ब्राह्मणो को विद्यमानके अनुसार धन दान दिया। फिर, पूव-मुह बैठी, होमकी गौकी प्रदक्षिणा की। सफेद अगराग, सफेद माला, सफद वस्त्रवाले गोरोचन और विचित्र दूर्वाकी फुनगीके पल्लवसे गूथे पहाडी कर्णिकार पुष्पसे बनाये कर्णाभरणको धारा, शिखामे सरसो लगाया (बाणने) माता को तरह स्नेहार्द्र हृदयवाली श्वेत वस्त्र धारिणी साक्षात भगवती महाश्वेता (गौरी) सी पिताकी छोटी बहिन **मालती** द्वारा किये सारे यात्र। मगल, और आशीर्वाद पाये। बान्धव बूढियो द्वारा अभिनदित, सेवक-बूढियो द्वारा वदित चरण अनुज्ञा प्राप्त, अभिवादन किये गुरुओ द्वारा सिरपर चूम, कुलके वद्धो द्वारा गमनके लिये प्रोत्साहित, ज्योतिषियोके मतके अनुसार शकुनो द्वारा, नक्षत्र विषयक दोहद किये,

मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहद, शोभने मुहुर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठ पिष्टपचागुलपाण्डुर मुखनिहितनवचूतपल्लव पूर्णकलशमुदीक्षमाण, प्रणम्य कुलदेवताभ्य कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथ जपद्मिर्निजद्विजैरनुगम्यमान प्रथमचलितदक्षिणचरण, प्रीतिकूटान्निरगात्।

१७ प्रथमेऽह्नि घमकालकष्ट निरुदक निष्त्रपादपविषम पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातन शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुललम्बितलोलजिह्वालतासहस्त्रै पुलकितमिवाच्छभल्लगोलागूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासघाते रोमाचितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतै शनैश्चण्डिकाकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामान ग्राममगात्। तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना सपादितसपय सुखमवसत्। अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवती भागीरथी यष्टिग्रहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्। अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणितारमन्वजिरवति कृतसनिवेशमाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।

—उ० २

(४) **हर्षेणालाप —**

१८ राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च त गिरिगुहागतसिंहबृहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—"एष स बाण ?" इति। "यथाज्ञापयति देव, सोऽयम्" इति विज्ञापितो दौवारिकेण। "न तावदेनमकृतप्रसाद

मुदर मुहूर्तमे ताजे गोबरमे निष्प जागनक चबूतरपर स्थापित कठमे श्वेत कुसुमकी मालाम घिर आटक पाचा अगुलियाक छापस श्वेत आम्रपल्लववाल पूर्ण कलशको दर्शन, कुलदेवताओंका प्रणाम करक हाथमे पन्ने फेन लिये विजयका जप करत अपने ब्राह्मणो द्वारा अनुगमन किये जात पहले दाहिना चरण उठा बाण **प्रीतिकूट** नगरस निकले।

१८ पहल दिन धीरे धीरे **चण्डिकावन**का पार किया, जाकि ग्रीष्मकालके कष्टवाला निर्जल निष्पत्र निवृक्ष विषम है। नमस्कार जिसमे प्रवेश करते ही मिलनेवाले वक्षमे पथिक जनोके द्वारा की जाती कात्यायनी उत्कीर्ण है। (जो वन) सूखा होते भी प्यासे वन्य जन्तुओकी लटकती चचल हजारो जिह्वा-लताओ द्वारा पल्लवित सा अच्छ भालू, वानरो द्वारा चाटे जाते छत्रोसे भगाई मधुमक्खियोसे रोमाचित सा, पुलकितसा, जल स्थानामे उगे मोटे सतावरीके सैकडो कदोसे रोमाचित सा था। फिर **मल्लकूट** नामक गावमे पहुँचे। वहा अपने अभिन्न-हृदय मित्र और भाई जगत्पतिसे सवित हो सुखसे वास किया। दूसरे दिन भगवती **भागीरथी**को उतरकर (बाणने) **यष्टिग्रहक** (जठियाव) नामक जगला गावड मे रात बिताई। अगल दिन **अजिरवती** नदीके पास बस हुये **उपमणितार** (मनियर) नामक स्कन्धावार (कैम्प) मे पहुचे, और राजभवनसे नातिदूर ठहर गये।

—उच्छवास २

४ हर्षसे बातचीत—

१८ राजाने उस बातको सुनकर और उन्हें देखकर गिरि गुहामे अवस्थित सिंहके किये गम्भीर स्वरसे आकाश मडलको भरते हुये पूछा—"यही वह **बाण** है।" "जैसी महाराज आज्ञा करते हैं, वही है यह"

पश्यामि" इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकशारां तिरस्करिणी-मिव भ्रमयन्नपाङ्गनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराज-सूनोरकथयत्—"महानयं भुजङ्गः" इति।

१९ तूष्णीभावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—"देव, अविज्ञाततत्त्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदित-लोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि। स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितु-मविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादयः कृताः संस्काराः। सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजङ्गता? लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवमशून्यमासीत्। अत्रानपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम्। इदानीं तु सुगत इव शान्तमनसि, मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे शासति सप्ताम्बुराशिरशनामशेषद्वीपमालिनीं महीं क इवाविशङ्कः सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं कल्पयिष्यति। आसतां तावन्मानुष्यकोपेताः। त्वत्प्र-भावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति। रथाङ्गना-मानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम्। कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते। शरारवोऽपि सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुञ्जते। सर्वथा

द्वारपाल ने अर्ज की। "बिना कृपा दिखाये इसे नहीं देखूंगा।" यह कहकर नील श्वेत अनुक्रम परदे जैसा तिरछी पलकोंसे खिंची जाती चचल पुतलियोंकी लम्बाई वाले नेत्रकी प्रभाको फेंककर पीठकी ओर बैठे अपने अतिप्रिय मित्र मालव राजपुत्रसे (हर्ष) बोला—

यह महालम्पट है।

१६ राजाके वचनके (यह) कहने पर और राजदरबारियोंके मूक रहनेपर क्षणभर मौन रह बाणने अर्ज की—'देव, बिना वास्त विकता जाने, बिना विश्वासके, भरमाये और लोक वृत्तांतको न जाने बिना क्या ऐसा फरमाना है? लोगोंके स्वभाव और किंवदंतियां मनमानी और विचित्र होती है। महान् पुरुषोंको तो यथार्थदर्शी होना चाहिये। मुझे उलटा मामूलीसा नहीं समझना चाहिये। मैं सोम यज्ञ करनेवाले वात्स्यायनोंके वंशमें पैदा हुआ ब्राह्मण हूं। कालानुसार मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये। अंगो-सहित वेदको अच्छी तरह पढ़ा। यथाशक्ति शास्त्र सुने हैं। विवाह करके गृहस्थ हूँ, (मुझमें) क्या लम्पटता है? दोनों लोकोंकी अविरोधिनी चचलताओंसे मेरा बाल्य रहित नहीं रहा। इसका अपलाप मैं नहीं करता, और इसीसे खिन्न सा मेरा हृदय है। लेकिन, अब तो बुद्धकी तरह शान्त मनवाले, मनुकी तरह वर्ण-आश्रमकी व्यवस्थाओंके करने वाले, और मानो समुद्रोंकी मेखलायुक्त सारी द्वीपमालाओंवाली पृथिवीपर साक्षात् दण्डधर महाराजके शासन करते समय कौन ऐसा है, जो बेखौफ हो सारे व्यसनोंके बंधु दुराचारोंका मनसे भी अभिनय करनेकी कल्पना करेगा। मनुष्यता रखनेवालोंकी बात तो अलग, आपके प्रभावसे भंवरे भी भयभीतसे मधुपान करते हैं, चक्र-वाक भी प्रियतमाओंके अनुवर्तनके व्यसनमें लज्जित से हैं, वानर भी

कालेन मा ज्ञाम्यसि स्वामी स्वयमेव। अनपाचीनचित्त-वत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावता प्रकृतय" इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्।

२० भूपतिरपि "एवमस्माभि श्रुत" इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत्। सभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत्, केवलममतवृष्टिभि स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणन्तगता प्रीतिमकथयत्, अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तर प्राविशत्।

—उच्छ्वास २

(५) सेना निवेश —

२१ स्वयमपि विसिस्मिये भूपाल। सवतो विक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात्प्रतिष्ठमान स्कन्धावार, अधोक्षजकुक्षेरिव युगादौ निष्पतन्त जीवलोक, अम्भोनिधिमिव कुम्भभुवो वदनात्प्लावितभुवनमुद्भवन्त, अजुनवाहुदण्डसहस्रसपिण्डितो मुक्तमिव महस्रधा प्रवतमान प्रवाह नमदाया।

२२ "प्रसर तात। भाव, कि विलम्बते ? त्वगति तुरगम। भद्र, भग्नचरण इव सचरसि यावदमी पुरसरा सरभसमुपरि पतन्ति। वाहयसि किमुट्रष्म् ? न पश्यति निदय, निशूकशिशु शयानम्। वत्स रामिल, रजसि यथा न नश्यसि न पश्यसि, गलति शक्तुप्रसेवक। किमेवमित्वर, त्वरसे ? सौरभेय, सरणिमपहाय हयमध्य धावसि। धीवरि, विशसि। गन्तुकामा मातगि, मातग-

चक्तिनमे हो चपलता करते हैं हिंस्र जन्तु भी अनुकंपाके साथ मास खाते हैं। समय पाकर मुझे स्वामी स्वयं पूरी तौरसे जानेंगे। विचार कर धारणा बनाना प्रज्ञावानोंका स्वभाव होता है।" यह कहकर वह (वाण) चुप हो गये।

२० राजा भी ऐसा हमने सुना है कहकर चुप हो गया। पर वार्तालाप (या) आसन प्रदान आदि कृपासे उनपर अनुग्रह नहीं किया। अमृतवर्षासे नहलाते केवल स्नेहयुक्त दृष्टिपात मात्रसे (अपनी) आन्तरिक प्रीति दिखलाई। अस्त होनेके अभिलाषी सूर्यके ढलते समय (राजा) दरबारियोंको छोडकर भीतर चला गया।

—उच्छ्वास २

५ सैनिक पडाव—

२१ स्वयं भी भूपाल विस्मित हो गये। सर्वत्र आखें फैलाकर निवासस्थानके पाससे प्रस्थान करते (वाणने) स्कन्धावार (कैम्प) को देखा, जो कि मानो था—विष्णुकी कुक्षिसे सृष्टिके आदिमें निकलता हुआ जीवलोक, अगस्त्यके मुखसे समुद्रकी तरह बाढ-ग्रस्त पैदा होता भुवन अर्जुनकी हजार बाहुओंसे घिरा तथा उन्मुक्त हजारों धारोंमें चलता नर्मदाका प्रवाह।

२२ फेन जाओ तात। मित्र क्यों देर करते हो? घोडा कूद रहा है? भद्र तुम तो टूटे पैरवालेकी तरह चल रहे हो जब कि आगे जानेवाले जल्दीसे ऊपर दौड जा रहे हैं। क्या ऊंट ले जा रहे हो? निष्ठुर, लघु शिशुको लेटे नहीं देख रहे हो? बच्चा रामिल मतवाले हो, जो न नष्ट होते हो न देखते हो सत्तूका थैला फटकर गिर रहा है। इत्वर (जल्दीबाजी) क्यों इस तरह जल्दी कर रहे हो? सोरभेय रास्ता छोड, घोडोंके बीचमें दौडते हो। धीवर, मछली मारते हो?

मागम्। अग, गलति तिरश्चीना चणकगोणी। गणयसि न मामारटन्तम्। अवटमतटेनावतरसि। सुखमास्व म्वरिणि। सोवीरक, कुम्भो भग्न। मन्थरक, खादिप्यसि गत सन्निक्षुम्। उक्षाण प्रसादय। कियच्चिर चिनोषि चेट, वदगणि, दूर गन्तव्यम। किमद्यैव विद्रासि द्रोणक द्राघीयमी दण्डयात्रा विनेकेन निष्ठुरकेण निष्क्रेयमस्माकम्। जग्रन पन्था स्थपुटक। स्थावरक, यथा न भनक्षि फाणितस्थाली गरीयान्गण्डकनण्डुलभारको न निवहति दम्य। दामक, माषीणाममुतो द्राग्दात्रेण मुखयवसपूलक लुनीहि। को जानाति यवसगत गतानाम्। धव, वारय बलीवर्दान्। वाहीकरक्षित क्षेत्रमिदम्। लम्बिता शकटी गार्कर धुरधर धुरि धवल नियुङ्क्ष्व। यक्षपालित, प्रमदा निनक्षि। अक्षिणी कि ते स्फुटिते। हत हस्तिपक रे, दीव्यसि करिकरदण्डे। समद, समदकदमे स्खलसि। भ्रातर्भावविधुरबन्धो, उद्धर पकादनड्वाहम्। इत एहि माणवक, घनेभघटासघट्टसक्टे नास्ति निस्तरणम्।

—उच्छ्वास ७

(६) आश्रम—

२३ अथ तेषा तरूणा मध्ये नानादेशीयै स्थानस्थानेषु स्थाणूनाश्रितै शिलातलेषूपविष्टैलताभवनाध्यावसद्भिररण्यानीनिकुजेषु निलीनैर्विटपच्छायासु निषण्णैस्तरुमूलनिषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैमस्करिभि श्वेतपटै पाण्डुरिभिक्षुभिभागवतैर्वर्णिभि केशलुचनै कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकै काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकै

मानगी, मानगाक मागमे जाना चाहती हो ? मित्र गिर रही है तिरछी हुइ चनेकी गोन। मेरे चिल्लानेको नही सुन रहा है ? बिना तटके बगस्त उतर रहे हो। स्वच्छाविहारिणि मुखस रहो। काचिक (काजी) का घडा टूट गया। मथरक चल (डेरपर) गन्ना खाना। ऊनोको शान्त करो। चट (नौकर) कितनी दर तक जरा को चिनता रहता? दूर जाना है। द्रोणक क्या आज ही लाद जायगा। लम्बी दडयात्रा एक निष्ठुरकक बिना पूरा करनी है आगे रास्ता ऊचा नीचा है। स्थावरक जिसमे गडके बन्धन न टूटे। चावनक भारी बोझ वाला वाहन नहीं निभ सकता। दासक, वहा उडदोके खेतोमेसे जल्दीस दरातीस मुहमे दन क लिए घासके थोडमे पूलेको काट ले। कान जानता है नवतण के पानको। धव, बैलाको हटा रखवाले इसे रखा रहे है। गाडी लटक गइ, जुयमे उजल वहादुर धुरधर (बैल) को जोत। यक्षपालित प्रमदाओको पीस रहा है ? क्या तेरा आख फूट गई है। रे अभाग हाथीवान् हाथाक हस्तदडस खलता है। नशमे चूर सम्मद तू कीचडमे गिर रहा है। भाइ मित्र विधुर-बन्धु कान्नडस बैलको उठाओ। इधर आ लौड, हाथियोकी घनी भाडमे म निकलनेका रास्ता नही है।'

—उच्छवास ७

६ आश्रम —

२३ तब वृक्षोक बीच देखा जगह जगह खम्भोके सहार शिलातलोपर बैठ लतावनोमे वास करते अरण्य-कुजोमे विलीन वृक्षोकी छायामें उपविष्ट वृक्षमूलोका सेवन करते, नाना देशीय वीतराग अर्हतो, **मस्करियो** (सन्यासियो) **श्वेताम्बरो,** लाल काषायधारी भिक्षुओ, **वैष्णवो,** ब्रह्मचारियो **केश-लुचको, कपिल**-मतानुयायियो, **जैनो,** चार्वाको वैशेषिकमतावलबियो उपनिषद-मतावलबियो, ईश्वरको कारण माननेवालो **(नैयायिको)**, रसायन बनानेवालो, **धर्मशास्त्रियो,**

कारन्धमिभिधमशास्त्रिभि पौराणिकै साप्ततन्तवै शाब्दै पाचरात्रिकैरन्यैश्चस्वान्स्वान्सिद्धान्तान्शृवद्भिरभियुक्तैश्चिन्तयद्भिश्च प्रत्युच्चरद्भिश्च सशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यस्यद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यता प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्यमानम्, अतिविनीतै कपिभिरपि चैत्यकम कुर्वाणैस्त्रिशरणपरै परमोपासकै शुकैरपि शाक्यशासनकुशलै कोश समुपदिशद्भि शिक्षापदोपदेशोपशमशालिनीभि शारिकाभिरपि धर्मदेशना दशयन्तीभिरनवरतश्रवणगृहीतालीकै कौशिकैरपि बोधिसत्वजातकानि जपद्भिजातसौगतशीलशीतलस्वभावै शार्दूलैरप्यमासाशिभिरुपास्यमानम्, आसनोपान्तोपविष्टविस्रब्धानेककेसरिशावकतया मुनिपरमेश्वरम्, अकृत्रिम इव सिहासने निषण्णम्, उपशममिव पिवद्भिवनहरिणैर्जिह्वालताभिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नता पारावतपोतेव कर्णोत्पलेनेव प्रिया मैत्री प्रसादयन्तम्, इतरकरकिसलयनखमयूखलेखाभिजनितजनव्यामोहम्, उद्ग्रीव मयूर मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभि पूरयन्तम्, इतस्तत पिपीलकश्रेणीना श्यामाकतण्डुलकणान्स्वयमेव किरन्तम्, अरुणेन चीवरपटलेन म्रदीयसा सवीतम्, बहलबालातपानुलिप्तमिव पौरदर दिग्भागमुल्लिखितपद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्तावदातया देहप्रभया पाटलीकृताना काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलितकुमुदाकरेण स्निग्धधवलप्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तु-

पौराणिकों, सप्ततनुवादियो, **वयाकरणो, पचरात्रा**नुयायियो और अन्यो द्वारा अपने-अपन सिद्धान्तोका सुनत उत्तम पुरुषोके साथ चिन्तन करन प्रति उच्चारण करन सशय करत निश्चय करते, व्युत्पत्ति करत विवाद करन अभ्यास करत, व्याख्यान करत, शिष्यता प्राप्त होते। दूर ही से (वह एसा आश्रम) था (जहा)— अति विनम्र वानर भी चैत्य पूजा कर रहे थे त्रिशरण (**बुद्ध-धम-सघ**क) परम उपासक बुद्ध धममे चतुर तोते भी (**अभिधम**) **कोश**का उपदश कर रहे थे, शिक्षापदो (पच शील) के उपदशोसे शान्तवृत्तिवाली मैनाये धर्मोपदश दे रही थी, अनध्यात्राल उल्लू भी बराबर सुनते बोधिसत्व जातकोका जप कर रह थे, अमासभक्षी शादूल बौद्ध आचारसे शीतल स्वभाव हो गये (वहा) रह रहे थे, आसनके पास निभय विश्वस्त अनक सिहबच्चे बैठ थ। वही अकृत्रिम सिंहासनपर मध्यमआयु वाले वड मुनिराज जावाकरमित्र को दखा। जिनक पादपल्लवको वन हरिन जिह्वा लतासे चाटते उपशमका पान कर रहे थ। जिनक बाये हाथकी हथली पर बठ तिन्नाका भात खात कबूतरक बच्च कणरूपी कमलको मानो प्रिया मैत्रीसे तप्त कर रहे थ जिनके दूसरे कर-पल्लवके नखोकी किरण रखाये लोगोको व्यामुग्ध करती, मानो ऊपर कठ उठाये मोर जैसे पन्ना जटित जलपात्रको जलकी धाराओसे भर रही थी। वह जहा तहा चीटियोकी पातियोमे स्वय सबाके चावलकी कनियोको बिखर रहे थे। अतिकोमल लाल चीवर पटलसे ढका जिनका शरीर मानो बालसूयकी प्रचुर धूप से पवित्रित पूव दिशा थी, चमकते लालकी प्रभाकी प्रतिमूर्ति लाल उज्ज्वल देह प्रभासे लाल बनाई दिशाओको काषाय वस्त्रक ग्रहणका उपदेश

जीवनाथममृतमिव वर्षन्तम्, सर्वशास्त्राक्षरपरमाणुभिरिव निर्मितं परमसौगतमप्यवलोकितेश्वरम्, अस्खलितमपि तपसि लग्नम्, आलोकमिव यथावस्थितसकलपदार्थप्रकाशकम, दर्शनार्थिना सुगतस्याऽप्यभिगमनीयमिव, धर्मस्याप्याराधनीयमिव, प्रमादस्यापि प्रसादनीयमिव, मानस्यापि माननीयमिव, वन्द्यत्वस्यापि वन्दनीयमिव, जन्म यमस्य, नेमिं नियमस्य, तत्वं तमसः, शरीरं शौचस्य, कोशं कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सद्वृत्तं सद्वृत्ततायाः, सर्वस्वं सर्वज्ञतायाः, दाक्ष्यं दाक्षिण्यस्य, पारं परानुकम्पायाः, निर्वृतिं सुखस्य, मध्यमे वयसि वर्तमानं जीवाकरमित्रमद्राक्षीत। अतिप्रशान्तगम्भीराकारारोपितबहुमानश्च सादरं दूरादेव शिरसा मनसा वचसा च ववन्दे।

—उच्छ्वास ८

२ कादम्बरी

(१) उज्जयिनी —

२४ अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता, प्रसवभूमिरिव कृतयुगस्यात्मनिवासोचिता भगवता महाकालाभिधानेन भुवनत्रयसर्गस्थितिसंहारकारिणा प्रमथनाथेनेवापरैव पृथिवी समुत्पादिता, द्वितीयपृथिवीशङ्कया जलनिधिनेव रसातलगभीरेण परिखावलयेन परिवृता, पशुपतिनिवासप्रीत्या गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिवृता, प्रकटशङ्खशुक्तिमुक्ताप्रवालमरकतमणिराशिभिश्चामीकरचूर्णसिकतानिकरनिचितै -

दे रही थी, अनुच्छ खलना-प्त्रक झुक थाड मुकुलित कमलाकर जैसे स्निग्ध धवल स्वच्छ नेत्रासे पीडित क्षुद्र जन्तुओके उज्जीवनाथ अमत बरसा रही थी और सार शास्त्राक अक्षररूपी परमाणुओसे मानो निर्मित थी। वह परम बाद्ध भी अवलाकितेश्वर (करुणामय) थे अभ्रष्ट हा तपस्यामे लग सार पदार्थोंके यथास्थित प्रकाशसे, दर्शनार्थियोक लिए (ज्ञानी) बुद्ध के भी दशनीयसे, धमक लिये भी पूजनीयसे, प्रसाद (कृपा) क लिये भी प्रसादकरणीय स, सम्मानक लिये भी माननीय स वद्यताक लिये भी वदनीय से थ। वह सयमके जन्मस्थान नियमकी धुरा तपस्याक सार पवित्रताक शरीर भलाइयोके कोश विश्वासक गह, सदाचारक भी सदाचार भवनताक सवस्व, उदारताके आदाय, परदयाक पारगत मुखके (भी) मुख थे। (उनकी) अत्यन्त प्रशान्त और गम्भीर आकृतिमे प्रविष्ट हो (राजाने) सम्मानसे आदरपूवक दूरसे ही सिर मन और वचनस उनकी वदना की।

—उच्छ्वास ८

२ कादम्बरी

१ उज्जैन नगर—

२४ **अवन्ति** दशमे त्रिभुवनमे ललाम, सतयुगकी जन्मभूमि सी **उज्जन** नामक नगरी है जिसे त्रिभुवन के सष्टिस्थितिसहारकारी भूतपति भगवान महाकाल नामक भूतनाथ न निज निवास के लिये दूसरी पथिवी सा उत्पन्न किया। द्वितीय पथिवी के भ्रमसे जा रसातल तक गहरी (समुद्र) परिखा वलयस घिरी सी है। जा पशुपति के निवासकी प्रसन्नता से कैलास पवत से, चूनेस सफेद, गगनचुम्बी शिखरमालाओ वाल प्राकारो से घिरी है। शख सीप मोती-मूगा-पन्ना मणिकी राशियोस सुवण-चूणकी बालुकाओ स सचित विस्तत, अगस्त्यके पिये सलिलवाल विस्तत सागर-सी बडी बाजारकी सडकोस शोभित है। जो सुर-असुर-सिद्ध-गधव

रायामिभिरगस्त्यपरिपीतसलिलै सागरैरिव महाविपणि-पथैरुपशोभिता, सुरासुरसिद्धगन्धर्व्वविद्याधरोरगाध्यासिताभिश्चित्रशालाभिरविरतोत्सवप्रमदावलोकनकुतूहला - दम्बरतलावतीर्णाभिर्दिव्यविमानपक्तिभिरेवालकृता, मथनोद्धृतदुग्धधवलितमन्दरद्युतिभि कनकमयामलकलशशिखरैरनिलदोलायिनसितध्वजैरु परिपतद्भगैरिव तुषारगिरिशिखरैरमरमन्दिरैर्विराजितशृगाटका, सुधावेदिकोपशोभितोदपानैरनवरतचलितजलघटीयन्त्रसिच्यमानहरितोपजनान्धकारै केतकीधूलिधूसरैरुपशल्यकैरुपशोभिता, मदमुखरमधुकरकुलान्धकारितनिष्कुटा, स्फुरदुपवनलताकुसुमपरिमलसुरभिसमीरणा, रणितसौभाग्यघण्टैरालोहिताशुकपताकैराबद्धरक्तचामरैर्विद्रुममयै प्रतिगृहमुच्छ्रितैमकराकै मदनयष्टिकेतुभि प्रकाशितमकरध्वजपूजा, सततप्रवृत्ताध्ययनध्वनिधौतकल्मषा स्तिमितमुरजरवगम्भीरावर्जितेषु सलिलसीकरासारम्नबकरचितदुर्दिनेषु पयस्तरविकिरणरचितसुरचापचारुषु धारागृहेषु मत्तमयूरैमण्डलीकृतशिखण्डैम्ताण्डवव्यसनिभिराबध्यमानकेकाकोलाहला, विकचकुवलयकान्तेरुत्फुल्लकुमुदधवलोदरैरनिमिषदर्शनरमणीयैराखण्डललोचनैरिव सहस्रसख्यैरुदभासिता सरोभि, अविरलकदलीवनकलिताभिरमृतफेनपुजपाण्डुराभिर्दिशि - दिशि दन्तवलभिकाभिधवलीकृता, यौवनमदमत्तमालवीकुचकलशललितसलिलया भगवतो महाकालस्य शिरसि सुरसरितमालोक्योपजातेर्ष्ययेव सततमाबद्धतरगभृकुटिलेखया खमिव क्षालयन्त्या सिप्रया परिक्षिप्ता।

विद्याधर-नागयुक्त चित्रशालाओ द्वारा निरतर उत्सववाली, प्रमदाओ के अवलोकनके कुतूहलसे आकाशतलसे उतरे दिव्य विमान पांतियोसे अलकृत है। जिसके सुवणमय आमलक (कलश)युक्त शिखर मथनसे उठी दुग्ध सी सफेद की हुई मन्दर की किरणासे हैं। जिसकी वायुसे हिलती सफेद ध्वजाये ऊपर गिरती **आकाशगगा** सी है। जिसके चारो ओर **हिमगिरि** जसे शिखरावाले देवमदिरासे शोभित है। जो चूनकी वदिकासे शोभित प्यावो, निरतर चलते रहटसे सीचे जाते हुए उपवनोकी छायावाले कवडके चूणसे धूसर उपनगरोसे शोभित है। जहा मदसे मुखर मधुकरोसे अधरी अमराइया उपवनकी लताको सूघकर उडते गधसे सुगन्धित वायु द्वारा साभाग्य घट शब्दायमान है। जहा लाल वस्त्रके पताको, बध आरक्त चवरासे प्रत्येक घरमे उठे मूगेके मकर चिह्नवाली मदनकी दडध्वजाओसे कामदेवकी पूजा होती जान पडती है। जो निरतर होते (वद) अध्ययन की ध्वनि द्वारा पापसे धुली है। जहा दढ मदग के शब्दकी गभीर गजनाओमें जलके फहारोके वगासे बना बदालयोमे, गिरी सूय किरणो से निर्मित इन्द्र धनुषयुक्त फौवाराघरामें पख गोल बनाये नत्य-परायण मस्त मयूरो के किये जाते कक्काका कोलाहल है। जो फले कमलो से सुन्दर उत्फुल्ल कुमुदोसे सफद उदरवाले अपलक देखनमे रमणीय इन्द्रके लोचनो जसे हजारो सरोवरोसे भासित है। जो निरतर केलके वनोसे कलित अमतके फेन-पुज सी पाडुवण दिशा-दिशामें हाथीदातके झरोखोसे सफद यौवनमदसे मस्त मालव ललनाओके स्तनकलशसे हिलते जलवाली भगवान महाकालके सिरपर **गगा**को देखकर ईर्ष्यायुक्त सदा तरगरूपी भकुटिका ताने आकाशको धोती सी, **सिप्रा** नदीसे घिरी है।

२५ सकलभुवनख्यातयशसा हरजटाचन्द्रेणेव कोटिसारेण मैनाकेनेवाविदितपक्षपातेन मन्दाकिनीप्रवाहेणेव प्रकटितकनकपद्मराशिना स्मृतिशास्त्रेणेव समावसथकूपप्रपारामसुरसदनसेतुयन्त्रप्रवर्तकेन, मन्दरेणेवोद्धृतसमग्रसागररत्नसारेण संगृहीतगारुडेनापि भुजगभीरुणा, खलोपजीविनापि प्रणयिजनोपजीव्यमानविभवेन, वीरेणापि विनयवता, प्रियंवदेनापि सत्यवादिनाभिरूपेणापि स्वदारसन्तुष्टेनातिथिजनाभ्यागमार्थिनापि परप्रार्थनानभिज्ञेन, कामार्थपरेणापि धर्मप्रधानेन, महासत्त्वेनापि परलोकभीरुणा, सकलविज्ञानविशेषविदा वदान्येन दक्षेण स्मितपूर्वाभिभाषिणा परिहासपेशलेनोज्ज्वलवेषेण शिक्षिताशेषदेशभाषेण वक्रोक्तिनिपुणेनाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण सर्वलिपिज्ञेन महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा बृहत्कथाकुशलेन द्यूतादिकलाकलापपारगेण श्रुतरागिणा सुभाषितव्यसनिना प्रशान्तेन सुरभिमासमारुतेनेव सततदक्षिणेन हिमगिरिकाननेनेवान्तःसरलेनेव, लक्ष्मणेनेव रामाराधननिपुणेन, शत्रुघ्नेनेवाविष्कृतभरतपरिचयेन, दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना, बौद्धेनेव सर्वास्तिवादशूरेण सांख्यागमेनेव प्रधानपुरुषोपेतेन जिनधर्मेणेव जीवानुकम्पिना, विलासिजनेनाधिष्ठिता।

२६ सशैलेव प्रासादैः, सशाखानगरेव महाभवनैः, सकल्पवृक्षेव सत्पुरुषैः, दर्शितविश्वरूपेव चित्रभित्तिभिः, संध्येव पद्मरागानुरागिणी, अमराधिपमूर्तिरिव मखशतानलधूमपूता, पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा, वृद्धेव जातरूपक्षया, गरुडमूर्तिरिवाच्युतस्थितिरमणीया,

२५ जहा के विनामी निवासी है—सत्रनाकमे विख्यात यशवाले शिवकी जटाके चन्द्र (सुवर्ण) जैसे कोटि (मूल्यवाले) पक्षपात न प्रकट किये मैनाक पर्वतसे **मदाकिनी**की धारा जैसे सुवर्णपदममे प्रकट करनेवाले, स्मृतिशास्त्रकी तरह सभा-अतिथिशाला-कूप-प्याव-आराम देवालय-सेतु रहटके लगानेवाले, मदरकी तरह सारे सागरके रत्नसारो को खीच लेनेवाले। जो गारुडी विद्याका ज्ञाता होते भी सर्प (कुटिल) से भीरु खल (खलिहान) के उपजीवी होते भी स्नेही जनके उपजीवक, विभववाले वीर होते भी विनययुक्त, मीठे बोलते भी सत्यवादी सुदर होते भी अपनी पत्नीमे सतुष्ट अतिथिजनोके आगमनके इच्छुक होते भी दूसरेसे प्रार्थना करनेमे अनभिज्ञ काम और अर्थ-परायण होते भी धर्म-प्रधान, महाविनीत भी परलोक-भीरु, सारे विज्ञानके विशेष ज्ञाता होते भी दानपरायण, उदार मुस्कुराकर बोलनेवाले, परि-हासचतुर, उज्ज्वल-वेषधारी, सारे देशोकी भाषाका माल हुए व्यग-निपुण कहानी आख्यानके परिचयमे चतुर, सारी लिपियोके जानकार, **महाभारत पुराण रामायण**मे अनुरागी, **बृहत्कथा**मे कुशल, जुआ आदि कलाओमे पारगत, शास्त्र-अनुरागी, सुभाषितमे आसक्त, प्रशान्त वसन्त मासके वायुकी तरह निरतर दक्षिण (उदार, दक्षिणी), **हिमालय**के वनकी तरह भीतर से सरल (देवदार वाले), **लक्ष्मण**की तरह रामाराधन (राम या रामाकी सेवा) मे निपुण, शत्रुघ्नकी तरह **भरत** (या नाट्य) परिचित, दिनकी तरह मित्र (या सूर्य) के अनु-गामी, बौद्धकी तरह **सर्वास्तिवाद** (सबके अस्तित्व) मे शूर, **साख्य**-शास्त्रकी तरह प्रधान पुरुषसे युक्त, जैन धर्मकी तरह जीवपर अनु कम्पावाले।

२६ (जो नगरी) महलो से पर्वतोवाली सी, महाभवनोमे उपनगर वाली सी सत्पुरुषोसे कल्पवृक्षयुक्त सी, चित्रयुक्त भीतोसे विश्वरूप दिखाती सी सध्या सा लालके रगवाली देवेन्द्रकी मूर्ति सी सौ यज्ञोकी आगके धूयेसे पवित्र सी पशुपतिकी नृत्य क्रीडा सी, सुधा (चूने),

प्रभातवेलेव प्रबुद्धसवलोका, शबरवसतिरिवावलम्बित-चामरत्नागदन्तधवलगहा, शेषतनुरिव सदासन्नवसुधाधरा, जलधिमथनवेलेव महाघोषपूरितदिगन्तरा, प्रस्तुताभि-षेकभूमिरिव सनिहितकनकघटसहस्रा, गौरीव महा-सिंहासनोचितमूर्ति, अदितिरिव देवकुलसहस्रसेव्या, महा-वराहलीलेव दर्शितहिरण्याक्षपाता, कद्रुरिवानन्दितभुजग-लोका, हरिवशकथेवानेकबालक्रीडारमणीया, प्रकटाग-नोपभोगाप्यखण्डितचरित्रा, रक्तवर्णापि सुधाधवला, अवलम्बितमुक्ताकलापापि विहारभूषणा बहुप्रकृतिरपि स्थिरा, विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।

—पूवभागत

(२) युवराजाय उपदेश —

२७ एव समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा, **चन्द्रापीडस्य** यौव-राज्याभिषेक चिकीर्षु प्रतीहारानुपकरणसभारसग्रहार्थ-मादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेक च त कदाचिद्-दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन शुक-नास सविस्तरमुवाच—

"तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवल च निसर्गतएवाभानुभेद्य-मरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहन तमो यौवन-प्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमद। कष्ट-मनञ्जनवर्तिसाध्यम्परमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरो-पचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्र-

सा सफद अट्टहासवाली वृद्धाकी तरह जातरूप (सवण) क्षय (गह) वाली, गरुडकी मूर्तिसी, अच्युत (न च्युत या विष्णु) की स्थिति (या मयादा) सा रमणीय थी। प्रभातकी बला से (जिसके) सारे लोग प्रबुद्ध (नाता या जगे) रहते, चवर-सहित खूटियाके लटकनेसे सफेद घरोवाली जो शबरकी बस्ती सी थी। शेषके शरीरकी तरह सदा पासमे वसुधा धर (पवत या धरती धारक) थी। समुद्र मथनके नन्द सी महाधनमे भरी दिशाओवाली थी। सजाये अभिषक स्थानकी तरह जिसके पास हजार सुवणघट थ। गौरीकी तरह जिसकी मूर्ति महासिहासन लायक थी। अदितिकी तरह हजारो देवकुलो (देवो या देवालयो) स जो सवनीय थी महावराहका लीला सी हिरण्याक्ष-के पतनका दिखाती सोनमे जूयके पाशेके गिरनस युक्त थी। **हरिवंशकी** कथा का तरह अनक बाल क्रीडाओसे रमणीय थी। अगनाओ के प्रकट उपभोगयुक्त भा अखडित आचरण वाला थी। रक्तवण (रग या चार वण) वाली भी सुधा (चून) सी धवल थी। मोतियोके अव-लम्बनवाली भी विहार (बिना हार या आराम) क भूपणवाली थी, वह बहुत प्रकृति (स्वभाव या जनता) वाली भी स्थिर दवलोक के प्रकाशकी विजयिनी नगरी थी।

—पूवभाग

२ युवराज को उपदेश—

२७ इस प्रकार दिन बीतनेपर चद्रापीडका युवराज-अभिषक करनेके इच्छुक राजान प्रतिहारोको साधन-सामग्री जमा करनके लिये आदश दिया। युवराजाभिषेकके पास आने पर किसी समय दशनके लिय आये विनययुक्त (कुमार) को और भी अधिक विनम्र देखनेके इच्छुक (मन्त्री) शुकनाशने विस्तारके साथ कहा—'तात चद्रा-पीड, जानन योग्य बातो के ज्ञाता, सवशास्त्र पढे हुये तुम्हे उपदेश करनके लिये कुछ भी नही है। स्वभावसे ही सूय जैसे अभेद्य, रत्नके आलोक जसे अछद्य, दीपककी प्रभासे न हटानेयोग्य, अति गहन यह यौवन-से उत्पन्न अधकार है। अतमे भी न शात होनेवाला दारुण है लक्ष्मीका मद। एश्वयके तिमिरका घोर अधापन अजनकी बत्तीसे भी असाध्य है। अभिमानके दाह-ज्वरकी तीव्र गर्मी अति सर्दीके उपचारसे न हटनवाली होती है। विषयके विषके रसका विषम मोह निरतर मूलमत्रसे नही शमन किया जा सकता।

गम्यो विषमो विषयविषास्वादमोह । नित्यमस्नानशौच-वध्यो रागमलावलेप । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा धीरा च राज्यसुखसनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौजनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्व चेति महतीय खल्वनर्थपरपरा सर्वा । अविनयानामेकैकम-प्येषामायतनम्, किमुत समवाय ।

२८ यौवनारम्भे च प्राय शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलाऽपि कालुष्य-मुपयाति बुद्धि । अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूना दृष्टि । अपहरति च वात्येव शुष्कपत्र समुद्भूतरजोभ्रान्ति-रतिदूरमात्मेच्छाया यौवनसमये पुरुष प्रकृति । इन्द्रिय-हरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषय-स्वरूपाण्यद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनस । नाश-यति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तक पुरुषमत्यासगो विष-येषु । भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगत-मले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो वि-शन्ति सुखेनोपदेशगुणा । गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थित शूलमभव्यस्य । इतरस्य तु करिण इव शखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजन-यति । हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजात प्रदोषसमय-निशाकर इव गुरूपदेश । प्रशमहेतुर्वय परिणाम इव पलित-रूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणम-यति । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम् । अकारण च भवति दुष्प्रकृतेरन्वय श्रुत चाविनयस्य । चन्द-

रागरूपी मलका समग कभी स्नानकी शुद्धिसे नही जाता। राज्य-सुखरूपी सन्निपातकी निद्रा घार और सदा रात्रिके अन्धेरेमे न जगनेकी है। इसलिय विस्तारपूवक तुम्हे कहता हू। जन्मसे ही ऐश्वय, नवीन योवन अद्वितीय रूप, अतिमानुप शक्ति यह सब निश्चय भारी अनर्थोका समूह है। इनमेसे एक एक भी बहुतसे अविनयोका घर है। इनके समूहके बारेमे तो कहना ही क्या?

२८ यौवनके आरम्भमे शास्त्र जलके प्रक्षालनसे निमल हुई बुद्धि भी प्राय मलिन हो जाती है। जवानोकी दष्टि (आख) धवलताको बिना छोड भी रागयुक्त होती है। यौवनके समय उत्पन्न रज (धूल या मल) के भ्रमवाला स्वभाव अपनी इच्छासे पुरुषको सूखे पत्तेकी आधीकी तरह बहुत दूर उडा ले जाता है। इन्द्रियरूपी हरिणको हरनवाली इस उपभोग मृगतृष्णा का कभी अन्त नही होता। नवयौवनसे-कषाययुक्त पुरुषके मनको जलकी तरह वही आस्वादित विषय अतिमधुर लगते है। विषयोमे अत्यन्त आसक्ति विपयमे ले जानवाले दिशामोहकी तरह पुरुषको नष्ट करती है। आप जैसे ही (पुरुष) उपदशोके पात्र होते है। स्फटिक मणिमे चन्द्रकी किरणोकी तरह निमल मनमे उपदेशके गुण प्रविष्ट होते है। अयुक्त (पुरुष) को गुरुका वचन कानमें स्थित जलकी तरह निमल भी बडा शूल पैदा करता है। दूसरे (युक्त पुरुष) को तो हाथीके शख-आभूषणकी तरह वह अधिकतर शोभा देता है। अति मलिन अन्धकारको सध्याके समयके चन्द्रमाकी तरह दोषसमूहको गुरुओका उपदेश हरता है। वही (यौवन) शान्ति (इन्द्रियनिग्रह) के कारण आयुके परिणामकी तरह श्वेतिमास केशोको मलिन न करते उसीको गुणरूपमे परिणत करता है। विषयरसको न चखे तुम्हारे लिय यही उपदेशका काल है। कामदेवके बाणके प्रहारसे जर्जरित हृदयपर उपदेश, जलकी तरह ढल जाता है। दुस्वभाववालेके लिये कुल बेकार है और शिक्षा अविनयके लिये है। क्या चन्दनसे उत्पन्न आग जलाती नही? क्या प्रशात करने वाले जलके

नप्रभवो न दहति किमनल ? कि वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरो भवति बडवानलो वारिणा ? गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजल स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजर वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोष गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्य कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोक, नोद्वेगकर प्रजागर ।

२९ विशेषेण राज्ञाम्—विरला हि तेषामुपदेष्टार । प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दाममदाश्च पृथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्त सशयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् । अहकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृति, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मी । आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशि, लक्ष्मीमेव प्रथमम् ।—

३० इय हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मी क्षीरसागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चै श्रवसश्चचलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता । न ह्येवविधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या । लब्धापि खलु दु खेन परिपाल्यते। दृढगुणसदाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापजरविधृताप्यपक्रामति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते । न परिचय रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न

माथ वडवानल अधिक प्रचण्ड नही होता? गुरुओका उपदेश पुरुषाक लिय सार मलाको धो सकनवाला निजल स्नान है, वालकी सफेदी आदि विरूपताक बिना जरा रहित वद्धता है। चवाके दापक बिना गुरु (या स्थूल) होना है बिना सुवणका बना अ ग्रामीण कणाभरण हे प्रकाश बिना आलोक हे न उद्वेग करनेवाला जागरण है।

२९ त्रा करक गजाओक विरले ही उपदेशक होते हैं लोग भयसे प्रति ध्वनिकी तरह राजाक वचनका अनुसरण करते ह। प्रचण्ड दपवाल वह कगविवरका खूत्र मूद उपदेश-वाक्यको नही सुनत सुनकर भी हाथाकी तरह आव मूद तिरस्कार करते, हितोपदश दनवाल गुरुओको खिन्न करतह। राजाका स्वभाव अहकार-दाह ज्वरकी मूर्छासे अधकार यक्त और चचल हाना है। धन, मूठ अभिमानसे उमत्त कर देता हैं। राजलक्ष्मा राज्यरूपी विपविकारवाली तद्रा देव है। हे मगल कामी पहल लक्ष्मीको ही दखा—

३० पड्ाक कमल वनमे रहनवाली भ्रमरी इस लक्ष्मीने क्षीरसागरसे पारिजातके पल्लवो से रागका, चद्रखण्डसे पूरी कुटिलताको, उच्च श्रवा (अश्व) मे चचलताक। कालकूट (विष) से वहोश करनेकी शक्तिको, वारुणीम मदका कौस्तुभ मणिम निष्ठुरताको (लिया)। इन मवको लेकर ही महवासक परिचयके कारण विरहके समय मनबहलावके चिह्नकी तरह पैदा हुई। इस मसार मे एसा अजनबी कोई नही ह जैमी कि यह नीचा (लक्ष्मी)। मिलनेपर भी कठिनाईसे रक्षित हाती हैं। दढ गुण (गुण या रस्सी) के सदान (दान या बधन) स निश्चल की हुई (बधी) भी नष्ट हो जाती है। प्रचण्ड दपवाले हजारो भटो (योद्धाओ) को उठी खड्ग लताओके पिंजडेमे रक्खी भ। खिमक जाती है। मद जलमे बदली जैसे अधकारवाले गजो द्वारा निर्मित घगमे पाली भी पलायन करती है। न परिचयको मानती न कुलीनताको प्रतीक्षा करती, न रूपको देखती, न पडि-

शील पश्यति । न वैदग्ध्य गणयति। न श्रुतमाकर्णयति । न धर्ममनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते । न विशेषज्ञता विचारयति । नाचार पालयति । न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षण प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति । कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम् । अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति, पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति । विश्वरूपत्वमिव गृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुंचति भूभुजम्, लतेव विटपकाननमध्यारोहति । गंगेव वसुजनन्यपि तरंगबुदबुदचंचला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्ति, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावडिबाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्रया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति। सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिंगति । जन गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्वममंगलमिव न बहु मन्यते । सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति । अभिजातमहिमिव लंघयति । शूर कण्टकमिव परिहरति । दातार दुःस्वप्नमिव न स्मरति । विनीत पातकिनमिव नोपसर्पति । मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति । परस्परविरुद्ध चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निज चरितम् ।

३१ तथाहि । सततमुष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति । उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति । तोय-

ताईको गिनती, न शिक्षाको सुनती, न धमका अनुरोध करती, न त्यागका आदर करती न विशेषज्ञताका विचार करती, न आचारका पालन करती, न सत्यको समझती, न लक्षणको प्रमाण मानती। यह लक्ष्मी ग धव-नगरकी लेखा जैसी देखत-दखत नष्ट हो जाती है। आज भी (समुद्रमथन के समय) मदराचलक घूमनक चक्करस उ पन्न मस्कारोसे युक्त हो चक्कर काट रही है। कमलिनीक भीतर चलनेके कारण कमलनालक काट लगी सी कही भी पैरका निश्चित होकर नहा रखती स्थान नहा बाधती। बहुत प्रयत्नस महाराजाओके घरोमें पकडी गई भी नाना ग धवाल गजोके कपोलोक मदको पीकर मतवाली सी लडखडाती है। कठोरता सिखलानेक लिये ही मानो तलवारकी धारो पर निवास करती है। वहुरूपता धारण करनेके लिये ही मानो नारायणके शरीरमे आश्रित है। न-बहु-परिचिता सध्याके कमलकी तरह मूल दण्ड-कोषोके समद्ध राजाको भी छोडदेती है। लताकी तरह क्षुद्र वक्षोपर चढती है। यह लक्ष्मी **गगा**की तरह वसु (धन या भीष्म) की जननी भी, तरग और बुलबुलेकी तरह चचला है सूयकी गतिकी तरह नाना सक्रान्ति (सक्रान्ति या ससग) का प्रकट करनेवाली पातालकी गुहाकी तरह भारी अ धकारवाली, हिडिम्बाकी तरह भीम (या भयकर) साहससे खिचने योग्य हृदय-वाली है। वषाकी तरह अचिर प्रकाश (बिजली या कम समयके प्रकाश) करनेवाली है। दुष्ट पिशाचीकी तरह अनक पुरुषोके उच्छाय (ऊचाई या वद्धि) को देखी यह अल्प स्वत्व (साहस या हृदय) वालेको उ मत्त बनाती है। सरस्वती द्वारा स्वीकृत पुरुष-बाहु को इर्ष्यासे आलिगन नही करती, गुणीजनको अपवित्र सा मान नही छूती, उदारहृदयको अमगल सा जान बहुमान नही करती, सुजनको असगुनकी तरह नही देखती। कुलीनको सापकी तरह लाघ जाती है शूरको काटकी तरह छोडती है, दाताको दु स्वप्नकी तरह नही याद करती, विनम्रके पास पातकीकी तरह नही जाती पडितको उ मत्तसा (जान) उपहास करती है, और परस्पर विरुद्ध इ द्रजालको दिखलाती सी अपन चरितको जगतमें प्रकट करती है।

३१ जसे कि—लगातार गर्मी पैदा करती भी जाडच (जाडा या जडता) उपजाती है। उन्नतिको धारण कराती भी नीच स्वभावताको प्रकट करती है। तोयराशि (समुद्र या जलसमूह) से उत्पन्न भी तष्णा (प्यास या लोभ) को बढाती है। ईश्वरता (ऐश्वय या शकरत्व)

राशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति । ईश्वरतां दधानाप्यशिव-
प्रकृतित्वमातनोति । बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापा-
दयति । अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्ष
दर्शना । पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया । रेणुमयीव स्वच्छ-
मपि कलुषीकरोति ।

३२ यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जल-
मलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारि-
धारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्,
परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोह-
दीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्,
तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनया-
नाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्वि-
षयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी
दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्,
अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवाद-
विस्फोटकानाम, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका काम-
करिणः, बध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्ड-
लस्य ।

३३ न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः,
यो वा न विप्रलब्धः । नियतमियमालेख्यगतापि चलति,
पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते,
श्रुताप्यभिसंधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति ।

३४ एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परि-
गृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च
गच्छन्ति ।

को धारण करती भी अ शिव स्वभावताको बढाती है। बलका सचयन करती भी लघुता आपादित करती है। यह लक्ष्मी अमतकी सहोदरा भी अ तमें कडवी, साकार भी प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाली, पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष या विष्णु) मे रत भी खलजनोकी प्रिया है, धूलिमयी सी स्वच्छको भी मलिन करती है।

३२ और जैसे जैसे यह चचला दीप्त होती है, वैसे वैसे दीपशिखा की तरह केवल काजल जैसे मलिन कमको ही उगलती है। जैसे कि—यह लक्ष्मी तष्णारूपी विष-लताओको बढानेवाली पानीकी धारा है इद्रियरूपी मगोक लिय शिकारीका गीत है सच्चरित्र चित्रोको छूनवाली धूमलखा है मोहरूपी लम्बी नीद ताननेवालोके लिये विलास-सेज है, धा मदक पिशाचियोक लिय घरका पुराना झरोखा ह शास्त्रकी दृष्टि रखनवालोके लिये आखकी फूलीका पदा होना ह। (यह) सार दुराचारोकी अग्रपताका है क्रोधके आवेगरूपी मकराकी उत्पत्ति नदा है, विषयरूपी शराबोकी मद्यशाला है, भौ बिगाडनेवाले नाट्योकी सगीतशाला है दोषरूपी सर्पोके रहनेकी गुहा है, सत्पुरुषक व्यवहाराको हटानवाला बेत है, गुणरूपी कलहसोके लिय अकाल वर्षा है, लाकनिदारूपी विस्फोटोका प्राप्तिस्थान है, कपट नाटककी प्रस्तावना है स्वेच्छाचारी गजो का कला है, साधुताकी वध्यशाला है, धमरूपी चन्द्रमण्डलक लिय राहुकी जीभ है।

३३ म ऐसे (पुरुष) को नही जानता, जिसे कि इस अपरिचिता (लक्ष्मी) न गाढ आलिगन नही दिया अथवा जो छकाया नही गया। निश्चय ही यह चित्रलिखित भी चलनी है, पुस्तकमयी (ज्ञानमयी) भी इद्रजाल जैसा करती है उत्कीण भी धोखा दती है, सुनी भी सशय पदा करती है, चिन्तन की गई भी वचना करती है।

३४ भाग्यवश इस प्रकारकी इस दुराचारिणी द्वारा कैसे भी पकडे गये राजा विह्वल होत है, सार अभिनयोक अधिष्ठान बनते है। जसे कि—अभिषेकके समयमे ही इनका दाक्षिण्य (उदारता) मगल-

तथाहि, अभिषेकसमय एव चैतेषा मगलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्ति ,उष्णीषपटबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम,चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणा , जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादा , ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यश ।

३५ तथाहि । केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभि खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिमनस्विजनगर्हिताभि सपद्भि , प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमाना , विविधविषयग्रासलालसै पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमाना , प्रकृतिचचलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति ।

३६ ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभगसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवागानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति, अधमभग्नगतय पगव इव परेण सचार्यन्ते, मृषावादविपाकसजातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारै पार्श्ववर्तिना शिर शूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कम्पित लोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि-

कलशके जलसे मानो घुल जाता है, इनका हृदय हौमके धूमसे मलिन कर दिया जाता है, उनकी क्षमा पुरोहितक कुशाग्ररूपी झाडुओसे सकल दी जाती है, उनक मनमे बुढापके आनेकी स्मति सिर-पेचके बाधनस ढक दी जाती है, उनकी परलोकपर लगी निगाह् छत्र मण्डल द्वारा मानो हटा दी जाती है उनकी सत्यवादिता चवरकी हवासे दूर कर दी जाती हे, उनके गुण बेंतक दण्डोसे उत्मारित कर दिये जात है, उनकी ख्यातिया जयकारक कोलाहलसे माना तिरस्कृत कर दी जाती है उनका यश, ध्वजपटके पल्लवोसे मानो लुप्त कर दिया जाता है।

३५ और भी—कोई कोई (लक्ष्मीपात्र) श्रमके वश ढीले पक्षीके कण्ठकी तरह चपल जुगनूके आभास जैसी मुहूत मात्र मनोहर लगनेवाली पण्डितजनोसे निंदित सम्पत्तियो द्वारा प्रलोभित थोड धनक लाभके अभिमानस भूले जन्मवाले अनेक दाषामे बढाय, दुष्ट रक्त द्वारा मानो रागके आवशसे बाधित हुये नाना विपयके ग्रासकी लालसावाले पाच होन भी अनक हजार इन्द्रियोसे पीडित होत, स्वभावत चचलता के कारण मौका पानेवाले एक होते भी लाख हुये से मन द्वारा विह्वल हो जात ह।

३६ वह ग्रहो द्वारा मानो पकड गय, भूतो द्वारा मानो अभिभूत होते ह, मन्त्रो द्वारा मानो आवशित हाते ह। वह दुष्ट प्राणियो द्वारा मानो फास जात है वायु द्वारा मानो तितर-बितर किये जाते हैं, पिशाचा द्वारा मानो ग्रसित हाेत है, कामवाणोसे हृदयमे आहत हुय स माना हजारो मुख विकार करत है। वह धनकी गर्मीसे जलत हुय से मानो नाना चेष्टा करते ह भारी प्रहार स आहत से माना अगोका धारण नही कर सकत, मगरोकी तरह तिरछे परि-भ्रमण करते है, अधमसे भग्न आचारवाले पगुओकी तरह मानो दूसरे द्वारा सचालित होते है। वह मिथ्या भाषणके कारण उत्पन्न मानो मुखके रोगवाले बहुत कठिनाईसे बोलत है, छतिवनके वृक्षकी

न प्रतिबुध्यन्ते, जातुकाभरणानीव सोष्माण न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्। तृष्णाविषमूच्छिता काञ्चनमयमिव सर्व पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्या परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतव, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतय, तैमिरिका इवादूरदर्शिन, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवना। श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणा पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

३७ अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीधूतवकैर्द्यूत विनोद इति, परदाराभिगमन वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पान विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्ति रसिकतेति, महापराधावकर्णन महानुभावतेति, पराभवसहत्व क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमानन महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्याति यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्त स्वयमपि विहसद्भि प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभि स्तुतिभि प्रता-

तरह पुष्प केसरके विकारोसे पडोसियोंक सिरमे शूल पैदा करत है, आसन्न मत्युवालोकी तरह ब धुजनोको भी नही पहचानते उत्कपित नत्रवालोका तरह तेजस्वियोको नही दखते, कालसे डसे की तरह महामन्त्री (मत्र या उपदेश) से भा नही होशमे आते, लाहके भूषणो-की तरह तजस्वी (अग्नि या पुरुष) को नही सह सकत। वह दुष्ट गजोकी तरह महामानरूपी स्तम्भमे स्थिर किय भी उपदेश (या आज्ञा) को नही ग्रहण करते। तृष्णारूपी विषसे मूछित हुये सारे (जगत) को कनकमय देखते है, वाणोकी तरह पान (मद्यपान या घषण) से तीक्ष्णता बढाय दूसरे द्वारा प्रेरित हो विनाश करते है। वह दूर स्थित फलके लिये दण्ड फेककर बडे कुलोका भी गिराते है अकालक फूलक उत्पन्न हानेको तरह मनोहर आकारवाले भी लोगोक विनाशक हेतु है। वह श्मशानकी आग की तरह अत्य त भयकर सम्पत्तिवाल हात है। वे राजा फूलीक अ धोकी तरह अदूरदर्शी, वहिष्कृतकी तरह क्षुद्र लोगो से बसे भवनवाल होत है। वह सुने जाते भी मुर्देके बाजेका तरह उद्विग्न करते है। सोचे जाते भी महापातकके मनोरथकी तरह उपद्रव करते है। प्रतिदिन भरे जाते पाप द्वारा माना माटी देहवाले हात है। एसी और एसी अवस्थावाले सैकडो व्यसनो का मित्रतासे युक्त वल्मीक (दीमकके टीले) क तणके अग्रभागमें अवस्थित जलबिन्दुओकी भाति पतित हुय भी अपनेको नही समझते।

३७ दूसरे (प्रभु) तो स्वाथ-साधन-तत्पर धनरूपी मासके कवलके लालुप, दरबारको कमलिनीके धूर्त। वगुला द्वारा (प्रतारित) द्यूतको विनोद, परस्त्रीगमनको चतुराई शिकारको व्यायाम, मद्यपानको विलास प्रमत्तताको शूरता, निज स्त्री परित्यागको अव्यसनी होना, गुरुके वचनके तिरस्कारको दूसरेकी बातमे न पडना, नौकरके वशी-भूत होनेको सुखसे सेवनीय हाना नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याकी आसक्तिको रसिकता, महान् अपराध (की बाते) सुननेको महानु-भावता तिरस्कार सहनेको क्षमा, स्वरिताको प्रभुता देवापमानको महासत्त्वता ब दीजनामे ख्यातिको यश, चपलताको उत्साह, विशेष न जाननेको निष्पक्षपातता (समझते ह)। वह दोषोको भी गुण पक्षमे आरोप करते भीतरसे स्वय भी हसत वचना करनमे चतुर धूर्तोकी मानुष लोकके लिये अनुचित स्तुतियो द्वारा प्रतारित होते, धनके मदसे मत्तचित्त हो चेत न करके 'वैसा ही है', यह अपने मनमे रखके झठे अभिमानको धारण करते है। मरणधमा होते भी दैवी अशके

यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणा प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावा सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति ।

३८ आत्मबिडम्बना चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसंभावनोपहताश्चान्तःप्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति । दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिनम् ।

३९ सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति । किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं **कौटिल्यशास्त्रं** प्रमाणम्, अभिचार-

अवतार लिये जैसे देवाधिष्ठित अपनेको अतिमानुष लगाते देवोंक लिय उचित चप्टा और अनुभावका आचरण करत सभी लोगोंक उपहासक पात्र होन हैं।

३८ व अनुजीवी जना द्वारा अपनी विडम्बना किय जानका अभिनन्दन करत हैं। दवता (विष्णु) के आरापकी वचनास मनकी असत्य सम्भावना स नष्ट हो भीतर घुसा अन्य दा भुजाओकी तरह अपन दाना वाहाको मानते हैं अपन ललाटमे चमडके भीतर छिप तीसरे लोचनका सन्दह करत हैं। वह दशन दनेका भी अनुग्रह मानत हैं, दष्टिपात करनको भी उपकारक तौरपर धारण करत हैं सम्भाषण का भी पारितोषिक-दान कहत हैं, आज्ञाको भी वरदान मानते हैं स्पशको भी पवित्र समभ्त हैं। मिथ्या माहात्म्यक गवसे युक्त वह न देवनाओका प्रणाम करते हैं न द्विजोको पूजत हैं न माननीयोको मानन हैं, न अचनियोकी अचना करते हैं न अभिवादनीयोका अभिवादन करते हैं। न गुरुओ के आने पर उठतह। विद्वानोको व्यथका क्लेश दे, उपभाग-सुखसे वचित कर हसते हैं, वद्धोके उपदेशको बुढापकी विकलताका प्रलाप बतलाते हैं। अपनी बुद्धिका तिरस्कार है यह माच, वह सचिवोक उपदेशकी निन्दा करते हैं हितवादियोपर कोप करत हैं।

३९ वह सवथा उसीका अभिनन्दन करते, उसीस आलाप करत हैं उसीको पासमे रखते हैं, उसीको सम्बद्धन करते हैं, उसीके साथ सुखसे रहते ह, उसीको देखत हैं, उसीके साथ मित्रता करते ह, उसीका वचन सुनते हैं, उसीमें (धन) बरसाते हैं, उसीका बहुमान करते हैं, उसीको प्रामाणिक बतलाते हैं, जो कि रात दिन बराबर हाथ जोड इष्टदेवताकी तरह अन्य-करणीय छोड तारीफ करता है, या जो माहात्म्य उदभावन करता है। अथवा उनके लिये युक्त क्या है, जिनके लिये अत्यन्त दयाहीन नृशस उपदेश **कौटिल्य**शास्त्र प्रमाण है, हत्या आदि अभिचार क्रियावाले सवथा क्रूर स्वभावके पुरोहित

क्रिया क्रूरैकप्रकृतय पुरोधसो गुरव, पराभिसधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टार, नरपतिसहस्रमुक्तोज्झिताया लक्ष्म्या-मासक्ति, मारणात्मकेषु शस्त्रेष्वभियोग, सहजप्रेमा-द्रहृदयानुरागा भ्रातर उच्छेद्या ।

४० तदेवप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मि-न्महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनै, न निन्द्यसे साधुभि, न धिक्क्रियसे गुरु-भि, नोपालभ्यसे सुहृद्भि, न शोच्यसे विद्वद्भि । यथा च न प्रकाश्यसे विटै, न प्रतायसे कुशलै, नास्वाद्यसे भुजगै नावलुप्यसे सेवकवृकै, न वञ्च्यसे धूर्तै, न प्रलोभ्यसे वनिताभि, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नत्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाधिक्षिप्यसे विषयै, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन ।

४१ काम भवान्प्रकृत्यैव धीर, पित्रा च समारोपितसस्कार, तरलहृदयमप्रतिबद्ध च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्-गुणसतोषो मामेव मुखरीकृतवान् । इदमेव च पुन पुनरभिधीयसे—'विद्वासमपि सचेतनमपि महासत्त्व-मप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुर्विनीता खली करोति लक्ष्मीरि'ति । सवथा कल्याणै पित्रा क्रियामाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमग-लम । कुलक्रमागतामुद्वह पूवपुरुषैरूढा धुरम् । अवनमय द्विषता शिरासि । उन्नमय स्वबन्धुवर्गम् । अभिषेकान्तर च प्रारब्धदिग्विजय परिभ्रमन्विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणा पुनर्विजयस्व वसुधराम् । अय च ते काल

जिनके गुरु हैं दूसरोकी हानिमे रत मत्री जिनके उपदेष्टा हैं, हजारा गजाओ द्वारा भाग कर छोडी गई लक्ष्मीमे जिनकी आसक्ति है मारक हथियारोपर जिनका उत्साह है, सहज प्रेमस स्निग्ध हृदय द्वारा अनुरक्त भाई जिनक लिये मारणीय है।

४० सो कुमार, अधिकतर इस प्रकार अतिकुटिल कठिन प्रयत्नसे सहने लायक, दारुण राज्यतन्त्रमे इस महामोह करनेवाले यौवनमे, वैसा प्रयत्न करना जिसमे कि लोगो द्वारा उपहसित न किये जाओ सज्जनो द्वारा निन्द न जाओ गुरुओ द्वारा धिक्कारे न जाओ, सुहृदो द्वारा उलाहना न दिय जाओ विद्वानो द्वारा सोचे न जाओ। जिसमे कि अश्रद्धाचारियो द्वारा मशहूर न बनो बुराइयो द्वारा प्रतारित न किये जाओ भुजगो (भडुआ) द्वारा चूस न जाओ, सेवकरूपी भडियो द्वारा लोपित न किये जाओ, धूर्तो द्वारा वचित न हो वनिताओ द्वारा प्रलोभित न हो, लक्ष्मी द्वारा विडम्बित न किये जाओ, मदसे नचाये न जाओ कामदवद्वारा, उन्मत्त न किये जाओ, विषयो द्वारा प्ररित न हो, राग द्वारा खीचे न जाओ, सुख द्वारा अपहृत न हो।

४१ ठीक है आप स्वभावसे ही धीर है और पिताने (अच्छा) सस्कार तुममे पैदा किया है। धन चचल-हृदय अबोध को (ही) मतवाला करता है। तो भी आपके गुणसे मुझे जो सन्तोष है, उसीन मुझे इतना बुलवाया। यही बार-बार तुम्हे कहना चाहता हूँ यह दुष्टा लक्ष्मी विद्वान् को भी, सजग को भी, महासत्व को भी कुलीन को भी, धीर कोभी, उद्योगी पुरुष को भी पथभ्रष्ट करती ह। कल्याण-युक्त पिता द्वारा किये जाते नवयुवराज-अभिषेक मगल को अच्छी तरह अनुभव करो। पूव पुरुषो द्वारा उठाये कुल-परपराके राज-धुरे को उठाओ। शत्रुओ के सिर को झुकाओ, अपने बन्धुवगको उठाओ और अभिषेक के बाद दिग्विजय आरम्भ कर घूमते अपने पिता द्वारा जीती हुई सातो द्वीपो की भूषण वसुन्धराको फिर विजय करो।

प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति" इत्येतावदभिधायोपशशाम।

४२ उपशान्तवचसि (कुमार) निभृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मूहुर्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

—पूर्वभागे

(३) अच्छोदसर —

४३ आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो दृष्ट्वा मनस्येवमकरोत्— 'अहो निष्फलमपि मे तुरगमुखमिथुनानुसरणमेतदालोकयत सर सफलतामुपगतम्। अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदशनफलम्, आलोकित खलु रमणीयानामन्त, दृष्ट आह्लादनीयानामवधि, वीक्षिता मनोहराणा सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजनननाना परिसमाप्ति, विलोकिता दशनीयानामवसानभूमि। इदमुत्पाद्य सर सलिलममबरसमुत्पादयता वेधसा पुनरुक्ततामिव नीता स्वसष्टि। इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेद्रयाह्लादनसमथमतिविमलतया चक्षुष प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पशसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्यायति, हसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाहलादयति। नियत चास्यैव दशनतृष्णया न परित्यजति भगवान्कैलासनिवासव्यसनमुमापति। न खलु साप्रतमाचरति जलशयनदोहृद देवो रथागपाणियदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपरुषपयस्युदन्वति स्वपिति। नून चेद न प्रथममासीत्सरो येन प्रलयवराहघोणाभिघातभीता भूतधात्री

उडाने का तुम्हारा यह प्रताप काल है। बढे प्रतापयुक्त राजा नाना लोकोमे देखनेवाला सिद्ध-आदेश जैसा होता है।"

४२ शुकनाश के बात खतम कर लन पर उपदेशके वचनो द्वारा प्रक्षालित से, उन्मीलित से, स्वच्छ किये से, अभिपिक्त से, चमकाय से, प्रलिप्त से, अलकृत से, पवित्रित से उदभासित से हो (कुमार) प्रसन्न-मन क्षणभर ठहर कर (अपने) भवनमे आ गय।

—पूवभाग

३ अच्छोदसर—

४३ दखने मात्र से थकावट दूर हुए (चन्द्रापीड ने उस स्थानको) अवलोकनकर मन मे एसा सोचा—"अहो किन्नरोके जोडे का मेरा अनुगमन निष्फल होत भी इस सरोवर को देखने से सफल रहा। आज दोनो आखो द्वारा दशनीय के देखनेका फल पूरा हुआ है, रमणीयोका अन्त मैंने देख लिया, आह्लादनीयो की सीमा देख ली, मनोहर वस्तुओ की सीमान्त-रेखा अवलोकित कर ली, प्रीति-उत्पादक (वस्तुओ) की चरमताको प्रत्यक्ष कर लिया, दशनीय (वस्तुओकी) अन्तिम भूमिका विलोकन कर लिया। इस सरोवर के अमृतरसवाले जलको उत्पन्न करके उत्पादक ब्रह्माने अपनी सप्टि पुनरुक्त सी कर दी। यह तो अमृत की तरह सारे इन्द्रियो को आह्लादित करता है, अत्यन्त निमल होने से आखो में आनन्द पैदा करता है, शीतल होने से स्पससुख देता है। (यह अपने) कमलकी सुगन्धिसे घ्राणको तप्त करता है, हसो द्वारा मुखरित होनेसे कानको आनदित करता है, स्वादु होने से जिह्वा को आह्लादित करता है। निश्चय इसीके दशनके लोभसे भगवान उमापति कैलास निवासकी आसक्ति नही छोडते। देव चक्रपाणि (विष्णु) ठीक नही करते, जो कि अमृतरस-सुगधित जल वाले इसे छोडकर खारे रसके बुरे जलवाले समुद्रमें जलशयन की इच्छा से सोते है। निश्चय यह सरोवर पहले नही था,

कलशयोनिपानपरिकलितसकलसलिल सागरमवतीर्णा, अन्यथा यद्यत्रागाधानेकपातालगम्भीराम्भसि ,निमग्ना भवेन्महासरसि किमेकेन महावराहसहस्रैरपि नासादिता भवेत्। नून चास्मादेव सलिललेशमादाय महाप्रलयेषु प्रलयपयोदा प्रलयदुर्दिनान्धकारितदशदिश 'लावयन्ति भुवनान्तराणि।

४४ मन्ये च यत्सृष्टेरर्वाकसलिलमय ब्रह्माण्डरूपमादो भुवनमभत्तदिद पिण्डीभूय सरोव्यपदेशेनावस्थितम्' इति विचारयन्नेव तस्य शिलाशकलकशवालुकाप्रायम्, विद्याधरोद्धृतसनालकुमुदकलापार्चितानेकचारुसैकतलिगम्, अरुन्धतीदत्ताघपय पयस्तरक्तकमलशोभितम्, उपकूलशिलातलोपविष्टजलमानुषनिषेव्यमाणातपम्, अभ्यणतया च कैलास्य स्नानागतमातृमण्डलपदपक्तिमुद्राकितम् अवकीणभस्मसूचितमग्नोत्थितगणकदम्बकोद्धूलनम्, अवगाहावतीणगणपतिगण्डस्थलगलितमदप्रस्रवणसिक्तम्, अतिप्रमाणपादानुमीयमान-तृषितकात्यायनी-सिहावतरणमार्गं, दक्षिणतीरमासाद्य तुरगादवततार। अवतीर्यं च व्यपनीत च व्यपनीतपर्याणमिन्द्रायुधमकरोत्।

४५ क्षितितललुठितोत्थित च गृहीतकतिपययवसग्रास सरोऽवताय पीतसलिलमिच्छया स्नात चोत्थाप्यान्यतमस्य समीपवर्तिनस्तरोर्मूलशाखायामपगतखलीन हस्तपादशृखलया कनकमय्या चरणौ बद्ध्वा कृपाणकावलूनान्क्षिप्त्वा चाग्रत कतिचित्सरस्तीरदूर्वाप्रवालकवलान्पुनरपि सलिलमवततार। ततश्च प्रक्षालितकरयुगलश्चातक इव

जो कि प्रलय के वराहके थूथुनके आघात से भयभीत धरती अगस्त्य द्वारा पान के इच्छित खारे जलवाले सागरमे उतरी, नही तो यदि अनक पानाल गहरे जलवाल अथाह इस महासरोवर मे निमग्न हाती, तो एक क्या हजारा महावराहो के भी हाथ न आती। ओर निश्चय इसीसे कुछ जल लेकर महाप्रलय मे प्रलय के मघ प्रलयकी वदलीमे दशा दिशाओ मे अधेरा फैला भुवना को बहा दते हैं।

४४ म समझता हू सष्टि से पहले भुवन शुरूमे जलमय ब्रह्माडाकार था मोही यह सरोवर के व्याज से साकार हो अब स्थित है। इस तरह विचारत हुए ही उस (सरोवर) के पाषाण-खड से ककश अधिक बालुकावाल विद्याधरो से निकाल कर नालयुक्त कुमुदो से अनेक सुन्दर बालुका लिग अर्चित किय गये, अरुन्धती द्वारा दिय अघ जलके चारो और बिखरे रक्तकमल द्वारा शाभित, पासके शिलातलपर बैठ जलमानुष द्वारा धूप सेय जात और कैलास के पास रहन से स्नान के लिए आई मातकाआकी पदपक्तियो की मुद्रासे अकित, बिखरे हुए भस्म द्वारा डूबकर उठ शकर के गणोका भस्म लगाना सूचित करते, नहान के लिए उतरे गणश के कपोल से बहती मदधारसे निचित, अति विशाल पैरो से दुर्गाके प्यासे सिहके उतरनेके मागको बतलाते, दाहिन तट पर पहुचकर **चद्रापीड** घोड से उतरे। उतरकर उन्होंन **इद्रायुध** अश्व के ऊपरसे जीन हटा लिया।

४५ फिर धरतीपर लोटकर उठे कुछ कौर घास खाय घोडे को सरोवरमे उतारा। जल पी इच्छानुसार नहा लेन के बाद ले जाकर लगाम हटा पासके वक्षकी मूल शाखामे सोनेकी जजीरसे उसके दोनो चरणोको बाध दिया। फिर कटारस सरोवरक तीरवाले दूबके अकुरक कवलोको काटकर (घाडके) आग रख कुमार जलमे उतर। हाथ पैर धो चातककी तरह जलमय आहार कर, चक्रवाककी तरह मणाल-

कृत्वा जलजमयमाहारम्, चक्राह्व इवास्वाद्य मृणालशकलानि, शिशिरांशुरिव कराग्रै स्पृष्ट्वा कुमुदानि, फणीवाभिनन्द्य जलतरंगवातान्, अनंगशरप्रहारातुर इवोरसि निधाय नलिनीदलोत्तरीयम्, अरण्यगज इव शीकराद्रपुष्करोपशोभितकरः सरः सलिलादुदगात्। प्रत्यग्रभग्नशिरैश्च समृणालैर्जलकणिकाचितैः कमलिनीपलाशैर्लतामण्डपपरिक्षिप्ते शिलातले संस्तरमास्तीर्य निधाय शिरसि पिण्डीकृतमुत्तरीयं निषसाद।

४६ मुहूर्तं विश्रान्तश्च तस्य सरसः उत्तरतीरप्रदेशे समुच्चरन्तमुन्मुक्तकवलेन निश्चलश्रवणपुटेन तन्मुखीभूतेनग्रोदीवेणेन्द्रायुधेन प्रथममाकर्णितं श्रुतिसुभगं वीणातन्त्रीझंकारमिश्रममानुषगीतशब्दमश्रृणोत्। श्रुत्वा च कुतोऽत्र विगतमर्त्यसंपाते प्रदेशे गीतध्वनेः संभूतिरिति समुपजातकौतुकः कमलिनीदलसंस्तरादुत्थाय तामेव गीतसंपातसूचितां दिशं चक्षुः प्राहिणोत्। अतिदवीयस्तया तु तस्य प्रदेशस्य प्रयत्नव्यापृतलोचनोऽपि विलोकयन्न किंचिद्ददर्श, तमेव केवलमनवरतं शब्दं शुश्राव।

४७ कुतूहलवशाच्च गीतध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिर्दत्तपर्याणमिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैरप्रार्थितैरपि वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा वकुलैलालवंगलवलीलतालोल-कुसुमसुरभिपरिमलयाऽलिकुलविरुतिमुखरितया तमालनीलया दिङ्नागमदवीथ्येव पश्चिमया वनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे।

खडाका खाकर चन्द्रमाका तरह करास कमलाका छूकर, सापकी तरह जलतरगकी हवाओका अभिनन्दन कर, कामवाणके प्रहारवाले रोगीकी तरह छातीपर कमलिनीक पत्तेरूपी चादरको रखकर, वनगजकी तरह फुहारोस भीग पुष्कर (कमल या सूड) से शोभित हाथवाल हो, सरोवरके जलसे बाहर निकल ऊपर आये। फिर तत्काल टूट सिरवाल, मृणालयुक्त जलबिन्दुओसे भीग, कमलिनाके पत्रो के लतामडपम घिरे एक शिलातलपर बिछौना विछा सिरक नीचे चादरका गडुरी बना कर बैठ।

४६ मुहूर्त भर विश्राम किया था, कि उस सरोवरक उत्तर तीरपर उच्चारित, कौल छोड निश्चल कानसे उसी आर मुह कर सिर उठाये इन्द्रायुध द्वारा पहल सुन गये, श्रुतिमनोहर वीणा वाद्यकी झकारसे मिश्रित अमानुषिक गीतके शब्दको सुना। सुनकर इस निजन प्रदेशमे गीत-ध्वनि कैस सम्भव है?' मोच कौतुकाक्रान्त हो कमलिनी-दलके विस्तरसे उठकर (कुमारने) गीतके आनम सूचित दिशाकी ओर आख दौडाई। प्रयत्नम आख लगानेपर भी, उस स्थानक अति दूर हानक कारण, राजकुमार कुछ न देख, केवल उसी शब्दका लगातार मुनत रहे।

४७ कुतूहलवश गीतध्वनिसे उत्पन्न जिज्ञासासे प्रेरित हो वहा जानेका ख्याल करक जीन लगा इन्द्रायुधपर आरूढ हो, पहले ही पहुचे गीतप्रेमी वनहरिणो द्वारा बिना पूछे भी उपदेशे मागसे हो, राजकुमारने मौलसरी-इलायची-लवग-लवलीकी लताओके चचल कुसुमोके सौरभकी गधमें, भ्रमरोकी ध्वनिसे मुखरित तमाल जैसी नीली दिग्गजोके मदकी गली जैसी पश्चिमी वनपातीवाले उस गानध्वनिके सकेत की ओर प्रस्थान किया।

४८ क्रमेण च समुखागतै अच्छनिर्झरजलकणजालजनितजडि-
मभि जर्जरितभूर्जवल्कलै, धूर्जटिवृषरोमन्थफेनबिन्दु-
वाहिभि षण्मुखशिखण्डिशिखाचुम्बिभि, अम्बि-
काकर्णपूरपल्लवोल्लासनदुर्ललितै उत्तरकुरुकामिनी-
कर्णोत्पलप्रेंखोलनदोहृदिभि, आकम्पितकक्कोलै नमेरु-
कुसुमपासुपातिभि पशुपतिजटाबन्धातवासुकिपरिपीत-
शेषैराह्लादिभि पुण्यै कैलासमारुतैरभिनन्दमानो
गत्वा च त प्रदेश ।

४९ सवतो मरकतहरितै, हारिहारीतरुतिरमणीयै, भ्रम-
द्भृगराजनखरजर्जरितजरठकुड्मलै, उन्मदकोकिलकुल-
कवलीकृतसहकारकामलाग्रपल्लवै, उन्मदषट्चरण-
चक्रवालवाचालितविकचचूतकलिकै, अचकितचको-
रचुम्बितमरिचाकुरै, चम्पकपरागपुजपिजरकपिजल-
जग्धपिप्पलीफलै फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूत-
कलविकै, प्रक्रीडितकपिकुलकरतलताडनतरलितताडी-
पुटै, अन्योन्यकुपितकपोतपक्षपालीपालितकुसुमै, कुसमर-
जोराशिसारसारिकाश्रितशिखरै, शुकशतमुखनखशिखर-
शकलितफलस्फीतै, जलधरजललुब्धविप्रलब्धवि-
मुग्धचातकध्वानमुखरिततमालखण्डै, इभकलभको
ल्लूनपल्लववेल्लितलवलीवलयै, आलीयमाननवयौवनम-
त्तपारावतपक्षक्षेपपयस्तकुसुमस्तबकै तनुपवनकम्पित-
कोमलकदलीदलवीजितै, अविरलफलनिकरावनतना-
लिकेरवनै, अकठोरपत्रसपुटपूगविटपिपरिवृतै अनिवा-
रितविहगतुण्डखण्डितखर्जूरजालकै, मदमुखरमयूरीमधुर-
रवविराजितान्तरै, आकलितकलिकाकलापदन्तुरितै,

अन्तरान्तरा कैलासतरगिणीतरगितसिकतिलतलभूमि-भागै, वनदेवताकरतलविवहनिभमलक्तकजलजसिक्त-मिव किसलयनिकरमतिसुकुमारमुद्वहद्भि, ग्रन्थिपणग्रास मुदिनचमरीकुलनिषेविनमूलै, कर्पूरागुरुप्रायै, इन्द्रायुधै-रिव घनावस्थानै, कुमुदैरिवाद त्तदिनकरप्रवेशशिशिराभ्य-न्तरै, दाशरथिबलैरिवाजननीलपरिगतप्रान्तै प्रासादैरिव सपारावतै, भवतापसैरिव सनिहितवेत्रासनै, रुद्रैरिव नाग-लतावद्धपरिकरै, उदधिकूलपुलिनैरिव निरतरोद्भिन्न-प्रवाललताकुरजालकै अभिषेकसलिलैरिव सर्वौषधि-कुसुमदलकिसलयसनाथै आलेख्यगृहैरिव बहुवणचित्रपत्र-शकुनिशतसशोभितै, कुरुभिरिव भारद्वाजद्विजोपसेवितै, महाम्मरमुखैरिव पुनागसमाकृष्टशिलीमुखै, महाकरि-भिरिव प्रलम्बबालपल्लवस्पृष्टभतलै, अप्रमत्तपाथिवैरिव पयन्तावस्थितबहुगुल्मकै, दशितैरिव भ्रमरसघातकवचा-वतकायै, प्रमाणाभिमुखैरिव वानरकरागुलिस्पृष्टगुजै, अवनिपालशयनैरिव सिहपादाकिततरुतलै, आरब्धपच-तप क्रियैरिवोच्छिखशिखिमण्डलपरिवृतै, दीक्षितैरिव कृतकृष्णसारविषाणकण्डूयनै, जरद्गृहमुनिभिरिव जटाल-वालकमण्डलधरै, इद्रजालिकैरिव दृष्टिहारिभि पादपै परिवृत **चन्द्रप्रभा**नाम्नस्तस्य सरस पश्चिमे तीरे कैलासपादस्य ज्योत्स्नावदातया प्रभया धवलयतस्त प्रदेश भूतलभागसनिविष्ट भगवन शूलपाणे शून्य सिद्धायतनमपश्यत्।

नदी द्वारा तरगित बालुकामय तलयुक्त भूभागवाला, वनदेवताके करतलो जैसे अलताक जलाशसे मानो सिक्त, किसलय समूहका अति कोमलतासे ऊपर उठाये हुये, गाठ पत्ताके ग्राससे मुदित चमरियो द्वारा सेवित अधोभागवाला प्राय कपूर और अगरवाला, इन्द्रायुधोकी तरह घनमे रहनेवाला, कुमुदोकी तरह सूयके प्रवशका न दे भीतरसे शीतल, रामकी सेनाकी तरह अजन नील नल द्वारा गिर छोरवाला, प्रासादोका तरह पारावत (कबूतर) वाला शिवके नपस्वियाको तरह पासमे वेत्र (बेंत) के आसनवाला या अमन-प्रिय, रुद्राकी तरह नाग लता (या नागरूपी लता) स बाधे परिकरवाला, समुद्रनटके पुलिनोकी तरह सदा प्रकट मूगेके लताकुरके जालवाला, अभिषेकक जलकी तरह सभी औषधि कुसुम-फलसे युक्त, चित्रशालाकी नरह बहुत रगवाला चित्र पत्र पक्षी (शतपत्र) से शोभित कुरुआका तरह भारद्वाज द्विज (पक्षी या कृप) से सेवित, महासमरक आरभकी तरह पुन्नाग (वृक्ष या गज) द्वारा आकृष्ट भ्रमरोवाला, महागजाकी तरह लटकते नवपल्लवो द्वारा छुये जाते भूतलवाला, सावधान राजाआकी तरह सीमान्तपर अवस्थित बहुत सी सैनिक छावनियोवाला, वमचारियाकी तरह भ्रमरसमूहरूपी कवचस ढके शरीरवाला, तोलनके लगोकी तरह बानरके हाथोकी अगुलियासे छुइ गुजावाला राजाके शयनकी तरह सिहक पैरोसे अकित तरुतलवाला, पचाग्नि तपस्या आरम्भ कियोकी तरह उठती शिखा वाला, शिखियो (अग्नि या मोर) के समूहसे घिरा व्रतमे दीक्षितो को तरह हरिणकी सीगसे खुजलाहट किये बूढ गहमुनियाकी तरह जटा-कमण्डल (या जटा-समूह)-धारी इन्द्रजालिको (जादूगरो) की तरह नजर खीचने (या बन्द करने) वाला, वक्षोसे घिरा, **चन्द्र प्रभ** नामक उस सरोवरके पश्चिम तीरपर **कैलास**के चरणकी प्रभा द्वारा सफेद किया जाता। (राजकुमारने) उस प्रदेशके भूभागमे अवस्थित भगवान शकरके शून्य सिद्धायतन (देवालय) को देखा।

(४) महाश्वेता—

५० तच्च पवनोद्धतैरितस्तत समापतद्भि केतकीगभधूलिभिधवलीक्रियमाणकाय पशुपतिदशनहेतोबलादिव प्रतिपाद्यमानो भस्मव्रतमायतनप्रवेशपुण्यैरिव परिगृह्यमाण प्रविश्याद्राक्षीच्चतु स्तम्भस्फटिकमण्डपिकाप्रतिष्ठितम्, अचिरोद्भूतैरार्द्रार्द्रैर्दलशिखरगलज्जलबिन्दुभिरूध्वविपाटितच न्द्रबिम्बदलैरिव निजाट्टहासावयवैरिव शेषफणशकलैरिव पाचजन्यसहोदरैरिव क्षीरोदहृदयाकारैरुपपादितमौक्तिकमुकुटविभ्रमै शुचिभिमन्दाकिनीपुण्डरीकै कृताचनम्, अमलमुक्ताशिलाघटितलिगम्, अशेषत्रिभुवनवन्दितचरणम्, चराचरगुरुम्, चतुर्मुखम्, भगव त त्र्यम्बकम् ।

५१ तस्य च दक्षिणा मूतिमाश्रित्याभिमुखीमासीनाम्, उपरचितब्रह्मासनाम्, अतिविस्तारिसवदिङमुखप्लावकेन प्रलयविप्लुतक्षीरपयोधिपूरपाण्डुरेणातिदीघकालसचितेन तपोराशिनेव सवतो विसपता पादपान्तरैस्त्रिस्रोतोजलनिभेन पिण्डीभूय वहृतेव देहप्रभावितानेन सगिरिकानन दन्तमयमिव त प्रदेश, अन्यथैव धवलयन्ती कैलासगिरिम्, अन्तद्रष्टुरपि लोचनपथप्रविष्टेन श्वेतिमानमिव मनो नयन्तीम्, अतिधवलप्रभापरिगतदेहतया स्फटिकगृहतामिव दुग्धसलिलमग्नामिव विमलचेलाशुकान्तरितामिव आदशतलसक्रान्तामिव शरदभ्रपटलतिरस्कृतामिव अपरिस्फुटविभाव्यमानावयवाम्, पचमहाभूतमयमपहाय द्रव्यात्मकमगनिष्पादनोपकरण-

४ शिवपूजती महाश्वेता

५० हवासे उडाये इधर उधरसे गिरते केतकाके गभ केसरोसे सफद श्वेत शरीर बने पशुपतिके दशनाथ मानो हठात् भम्म व्रतको स्वाकृत किये, देवालय प्रवेशके पुण्योसे माना ग्रहण किये से हो राज कुमारने प्रवेश करके भगवान् शकर को दखा जो चार खम्भो की स्फटिक मडपीक तलपर प्रतिष्ठित, हाल ही मे उखाडे भीग भीगे पत्तोके छोरसे गिरत जल बिन्दुओवाले, ऊपर फाडे चद्रबिम्बके दलो जैसे अपन अट्टहासके अवयवो जस, शषक फणके खडो जैसे, पाचजय शखक सहोदरो जैम, क्षीरसागरके हृदयके रूपवाल, मोतीके मुकुटकी शाभा किय पवित्र गगाक पुडरीको द्वारा अचित, निमल मुक्ताशिलाम गढ लिंग, मकल त्रिभुवन द्वारा वदित चरण, चराचरके गुरु, चार मुखवाले थे।

५१ और मुखलिगकी दाहिनीवाली मूर्तिकी ओर सामन बैठी कया दखी जो थी ब्रह्मासन धारिणी, बहुत बडी सारी दिशाओको बहानेवाले प्रलयमें फैले क्षीरसागरकी धारा जैसी पाण्डुवण, अति दीघकालमे मचित तपकी राशि जैमी, सब ओरसे चलत वक्षा तरो द्वारा गगाके जल जैमी, पिण्ड हुई बहती सी देहकी प्रभाके वितान द्वारा गिरि वन-सहित उस प्रदेशको दतमय सी करती, कलासगिरिको दूसरी ही तरह सफेद करती, दशकके भीतर लोचन माग द्वारा प्रविष्ट होनसे मनको सफेद सी करती, अत्यत श्वेत प्रभा से व्याप्त देह होनेसे स्फटिक-गृहमें विद्यमान सी, दुग्धजलमे डूबी सी निमल वस्त्रमे ढकी सी, दपणके तलमे लगी सी, शरदके मेघ समूहसे ढकी सी अस्पष्ट दीखते अगोवाली थी। और थी पाचभौतिक द्रव्यरूपसे नही बल्कि अग्र निर्माणके साधनसमूह के तौर पर केवल श्वत गुणसे उत्पन्न की गई यज्ञकी क्रियाकी तरह, उद्धत गणोके केश पकडनेके भयमे शकरकी सेवा करती रतिकी तरह, कामदवकी देहके लिये शकरको

कलापधवलगुणेनेव केवलेनोत्पादिताम्, अध्वरक्रियामिवोद्धतगणकचग्रहभयोपसेवितत्र्यम्बकाम्, रतिमिव मदनदेहनिमित्त हरप्रसादनार्थमागृहीतहराराधनाम्, क्षीरोदधिदेवतामिव सहवासपरिचितहरचन्द्रलेखोत्कण्ठाम्, इन्दुमूर्तिमिव स्वर्भानुभयकृतत्रिनयनशरणगमनाम्, ऐरावतदेहच्छविमिव गजाजिनावगुण्ठनोत्कण्ठितशितिकण्ठचिन्तितोपनताम्, पशुपतिदक्षिणमुखहासच्छविमिव बहिरागत्य कृतावस्थानाम्, शरीरिणीमिव रुद्रोद्धूलनभूतिम्, आविर्भूता ज्योत्स्नामिव हरकण्ठान्धकारविघट्टनोद्यमप्राप्ताम्, गौरीमनःशुद्धिमिव कृतदेहपरिग्रहाम्, कार्तिकेयकौमारव्रतक्रियामिव मूर्तिमतीम्, गिरिशवृषभदेहद्युतिमिव पृथगवस्थिताम्, आयतनतरुकुसुमसमृद्धिमिव शंकराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्, पितामहतपःसिद्धिमिव महीतलमवतीर्णाम्, आदियुगप्रजापतिकीर्तिमिव सप्तलोकभ्रमणखेदविश्रान्ताम्, त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासाम्, आगामिकृतयुगबीजकलामिव प्रमदारूपेणावस्थिताम्, देहवतीमिव जनध्यानसंपदम्, अमरगजवीथीमिवाभ्रगंगागमवेगपतिताम्, कैलासश्रियमिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्, श्वेतद्वीपलक्ष्मीवान्यद्वीपावलोकनकुतूहलागताम्, काशकुसुमविकाशकान्तिमिव शरत्समयमुदीक्षमाणाम्, शेषशरीरच्छायामिव रसातलमपहाय निर्गताम्, मुशलायुधदेहप्रभामिव मधुमदविघूर्णनायासविगलिताम्, शुक्लपक्षपरंपरामिव पुञ्जीकृताम्, सर्वहंसैरिव धवलतया कृतसंविभागाम्, धर्महृदयादिव विनिर्गताम्, शंखादिवोत्कीर्णाम्, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्,

प्रसन्न करनके अथ हरकी आराधना पकडे हुई, क्षीरसागरकी अधि-ष्ठात्री देवताकी तरह साथ रहनमे परिचित शकरकी चन्द्रलखामे उकण्ठावाली चन्द्रकी मूर्तिसी सूयक भयम त्रिलोचनके शरणमे पहुची, ऐरावतक देहके चमकी तरह गज चमके अवगुण्ठनम उत्कठित शकरके चिन्तनमे पास आई, पशुपतिके दाहिने मुखके हासकी शोभाका तरह बाहर आकर अवस्थित शकरके लगानेका साकार विभूति सी, शकरके कठकी कालिमाक हटानक प्रयत्नम आई प्रकट चादनी सी, गारीके मनकी शुद्धि मानो दह धारण किय हुई सी, कार्तिकेयक कौमार-व्रतकी मूर्तिमती क्रिया सी गिरीशक वषभके दहका प्रकाश मानो अलग अवस्थित सा देवालयके चैत्यके वृक्षोक कुसुमकी समद्धि मानो शकरकी अचनाके लिये स्वय उद्यत हुई सी ब्रह्माकी तप सिद्धि मानो महीतलपर उतरी मी, सतयुगक प्रजापति (ब्रह्मा) की कीर्ति मानो सातो लोकाके भ्रमणक खेदस विश्राम करतीसी तीनो वद माना कलियुग द्वारा ध्वस्त धमक शोकसे वनवास धारण कियसे, आने-वाल सतयुगका बीजाश मानो स्त्रीरूपमें अवस्थित सा मानो मुनिजनो की दह ध्यानसम्पदा, देवताओके गजोकी वीथि (गली) सी आकाश-गगाके आते वगमें पडी सी रावणके उखाडनेके क्षोभसे गिरी कलास की शोभा सी अन्य द्वीपोके देखनेकी कुतूहलसे आई श्वेतद्वीपकी लक्ष्मी सी, काशक फूलके प्रकाशकी शोभावाले शरदकाल को देखती सी, शेषके शरीरकी छाया सी रसातलको छोडकर निकल आई, बल-रामके देहकी प्रभाकी तरह मद्यके नशे द्वारा शरीर घुमानेके खेदसे गिरी सी, शुक्लपक्षकी पाती मानो पुजीभूत सी, सफेदीसे सारे हसोकी तरह बाटती सी, धमके हृदयसे मानो निकली सी, शखसे मानो उत्कीण सी, मोतीसे मानो आकर्षित सी, मृणालसे मानो बनाये अगोवाली सी, धाराओसे मानो धुली सी, रूपेके रससे मानो घँसी सी, चन्द्रमण्डलसे

मृणालैरिव विरचितावयवाम्, दन्तदलैरिव घटिताम्, इन्दुकरकूचकैरिवाक्षालिताम्, वणसुधाच्छटाभिरिवाच्छुरिताम्, अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्, पारदरसधाराभिरिव धौताम्, रजतद्रवेणेव निमष्टाम्, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दमिन्दुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम्, इयत्तामिव धवलिम्न, स्कन्धावलम्बिनीभिरुदयतटगतादकबिम्बादुद्धृत्य बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम, जटापाशग्रथितामुत्तमाङ्गेन मणिमय नामाकमीश्वरचरणद्वयमुद्वहन्तीम् ।

५२ रविरथतुरगखुरक्षुण्णनक्षत्रक्षोदविशदेन भस्मना कृतललाटपट्टिकाम्, शिखरशिलाश्लिष्टशशाककलामिव शैलराजमेखलाम्, अतुलभक्तिप्रसाधितया लक्ष्यीकृतलिगयापरयेव पुण्डरीकमालया दृष्ट्या सभावयन्ती भूतनाथम्, अनवरतगीतपरिस्फुरिताधरपुटवशादतिशुचिभि शुद्धहृदयमयूखैरिव गीतगुणैरिव स्वैरिव स्तुतिवर्णैरिव मूर्तिमद्भिर्मुखान्निष्पतद्भिदशनांशुभि पुनरपि स्नपयन्ती गौरीनाथम्, अतिविमलैश्च वेदार्थैरिव साक्षात्पितामहमुखादाकृष्टैर्गायत्रीवर्णैरिव ग्रथनस्फीततामुपगतैर्नारायणनाभिपुण्डरीकबीजैरिवोद्भूतै, सप्तर्षिभिरिव करस्पर्शपूतमात्मानमिच्छद्भिस्तारकारूपेणागतैरामलकीफस्थूलैर्मुक्ताफलैरुपचितेनाक्षवलयेनाधिष्ठितकण्ठभागाम्, परिवेषपरिगतचन्द्रमण्डलामिव पौर्णमासीनिशाम्, अधोमुखहरशिर कपालमण्डलाकारेण मोक्षद्वारनियुक्तकलशकान्तिना स्तनयुगलेनैकहंसमिथुनसनाथामिव **गगाम्**, गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिबद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम् ।

मानो ऊपर खीची सी, कुटज कुन्द-मिधुवारके फूलोकी छबियोसे मानो उल्लामित सी, धवलताकी सीमा सी कन्धेपर लटकते उदयाचलके तटपर पहुचे सूयबिम्बसे निकालकर बालकिरणोकी प्रभाओसे मानो निर्मित सी, उठनी बिजलीके तरल तज सी ताम्रवण वालिया द्वारा तुरन्त स्नानके लिय अवस्थित विरल जलकणोके होनसे प्रणाममे लगे शकरके चरणके भस्मचूणवाली सी, जटाओसे प्रकाश मान शिरद्वारा जटापाशमे गुथ मणिमय नामाक वाले शकरके दोनो चरणोका वहन करती सी।

५२ और(वह)थी, सूयके रक्तके तुरगो के खुरोमे चूण किये तारोकी धूलि जैसे निमल भस्म द्वारा ललाटपट्टिका बनाइ सी, शिखरकी शिलामें लगे चन्द्रकला जसी हिमालयकी मेखलासी, अतुल भक्तिसे सावित लक्षित निगवाली सी, पुण्डरीकोकी मालावाली दूसरी दष्टिसे मानो शकरकी सभावना करती सा, निरन्तर गाय जात गीतसे हिलन अधरोके वश अति पवित्र शुद्ध हृदयकी किरणो सी गीतके गुणो सी, स्वरो सी, स्तुतिके अक्षरो सी, मुखमे निकलते मूर्तिमान दातकी किरणो द्वारा गौरीनाथको फिरसे नहलाती सी और अति निमल वदके अर्थो द्वारा मानो साक्षात् ब्रह्माके मुखसे आकर्षित **गायत्रीके** अक्षरो के गूथनसे पुष्ट हुई सी, **नारायणके** नाभि कमलके बीजो द्वारा मानो उत्पादित उद्धत सी, **सप्तर्षियो** द्वारा मानो हाथके स्पशसे स्वय पवित्र हुये तारोके रूपसे आये आवलेके फलके बराबर स्थूल मोतियासे बन रुद्राक्षकी माला धारे कठभागवाली, मडलसे घिरे चद्रमडलवाली पूर्णिमाकी रात सी, अधोमुख शिवके सिरके कपालके मगनके आकारवाले मोक्षद्वारपर रक्खे कलशकी शोभासे युक्त दोनो स्तनो द्वारा एक हस-जोडीसे युक्त गगा सी, गौरीके सिंहके केसरोसे बनी मानो चवर के चिर आकारवाली युगल-स्तन के बीच बधी ग्रथिवाली, कल्पतरु लताके वल्कलकी उत्तरीय (चादर) वाली।

५३ अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूख-
जालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्
आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तान-
चरणचलप्रभापरिष्वगाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रा-
वृतनितम्बाम्, यौवनेनापि स्वकालोपसर्पिणा निर्विका-
रेण विनीतेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्, लावण्येनापि
कृतपुण्येनेव स्वच्छात्मना परिगृहीताम्, रूपेणापि रुचिर-
लोचनेन विगतचापलेनायतनमृगेणेव सेविताम्, उत्सगगता
च स्वसुतामिव सूक्ष्मदन्तखण्डिकागुलीयकापूरितागुलिना
त्रिपुण्ड्रकावशिष्टभस्मपाण्डुरेण प्रकोष्ठबद्धशखखण्डकेन
नखमयूखदन्तुरतया गृहीतदन्तकोणेनेव दन्तमयी दक्षिण-
करेण वीणामास्फालयन्तीम्, प्रत्यक्षामिव गन्धर्वविद्या
मणिमण्डपिकास्तम्भलग्नाभिरात्मानुरूपाभि सहचरी-
भिरिव सवीणाभिर्विलासवतीभि प्रतिमाभिरुपेताम्,
स्नपनार्द्रलिगसक्रान्तप्रतिबिम्बतयातिप्रबलभक्त्याराधि-
तस्य हृदयमिव प्रविष्टा हरस्य।

५४ हारलतयेव प्राप्तकण्ठयोगया, ग्रहपक्त्येव ध्रुवप्रति-
बद्धया, क्रुद्धयेव रागरक्तमुखवर्णया, मत्तयेव घूर्णित-
मन्द्रतारयोन्मत्तयेवानेककृततालया, मीमासयेवानेक-
भावनानुबिद्धया, गीत्या देव विरूपाक्षमुपवर्णयन्तीम्,
अतिमधुरगीतावकृष्टैर्ध्यानमिवाभ्यस्यद्भिर्निश्चलकर्ण-
पुटैर्मृगवराहवानरवारणशरभसिंहप्रभृतिभिर्वनचरैराबद्ध-
मण्डलराकर्ण्यमानगीतानुबिद्धविपचीनिर्घोषाम्, अमरा-
पगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्,
त्रिपुरारिशरशलाकामिव तपोमयीम्, पीतामृतामिव

५३ और थी त्रिलोचनके पाससे प्रसादके तौरपर मिले चूड़ामणिके चद्रके किरण-समूहो से घेरे यज्ञोपवीत द्वारा मानो पवित्रित-कायावाली सी, और पैर तक पहुचे स्वाभाविक, सफेद भी पद्मासन बाधनेसे उत्तान चरणके तलवाकी प्रभाके ससगसे थोडा लाल हुय दुकूलसे ढँके नितम्ब-वाली अपने कालमे पास आय यौवन द्वारा भी निर्विकार विनम्र शिष्यकी तरह उपासना की जाती सी, लावण्यसे भी मानो पुण्यात्मा स्वच्छ आत्मासे स्वीकृत हुई सी, रूप द्वारा भी रुचिर लोचन रूपी अचपल देहमग द्वारा मानो मवित सी। और थी गोदमें बैठी अपनी पुत्री सी सूक्ष्म हाथीदातकी टुकडियोकी अगूठियोसे भरी अगुलियो द्वारा, त्रिपुण्डके बच भस्मसे सफेद कलाईमे बध शखखडयुक्त नखकी किरणोंके उछलनेसे द तके कोनेको पकडे दाहिने हाथ द्वारा दन्तुमयी वीणाको बजाती, मानो प्रत्यक्ष ग धवविद्याकी मडापकाके स्तम्भमे लग्न मणिसी, अपने अनुरूप सहचरी वीणा सहित सौन्दययुक्त प्रतिमाआसे युक्त सी थी।

५४ वह थी अभिषेक द्वारा भीग लिगमे लग्न प्रतिबिम्ब होनेसे मानो अति प्रबल भक्ति द्वारा आराधित शकरके हृदयमे प्रविष्ट हुई सी। वह गीतिस शकरका स्तुति कर रही थी जो गीति हारलता द्वारा मानो कठ मयोग पाई सी, ग्रहोकी पक्तियो द्वारा मानो ध्रुव (गीत का ध्रुव या ध्रुवतारा)से प्रतिबद्ध ऋद्धा की तरह मानो राग (रक्त) से युक्त वणवाली मत्ता की तरह चक्कर खाके मन्द्र-तार (स्वरो) मे उ मत्ता सी, अनेक ताल करती। **मीमासा** (विचारणा) सी अनेक विधियो से सूत्रित। वह कन्या अति मधुर गीतसे आकर्षित ध्यान-अभ्यास करत निश्चय कानोवाले मानो मृग-वराह-बानर-गज-शरभ-सिह आदि मण्डल बाधे बनचरो द्वारा सुने जाते गीतोसे सबद्ध वीणाका निर्घोष करती, मानो आकाशसे उतरी गगासी, यज्ञकर्ताकी अप्राकृत (न प्राकृत, दिव्य) वाणीसी, त्रिपुरारिके शरकी शलाकासी तपोमयी, अमत पीनेसे तष्णा (प्यास या लोभ) से रहित, शम्भुके

विगततृष्णाम्, ईशानशिरःशशिकलामिवानुपजातरागाम्, अमथितोदधिजलसंपदमिवान्तःप्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाबद्धाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योतिःप्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्षहृदयाम्, महीमिव जलभृतदेहाम्, हिमसमयदिनमुखलक्ष्मीमिव परिगृहीतभास्करातपाम्, आर्यामिवोपात्तयतिगणोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलावस्थानाम्, अंशुमयीमिव तनुच्छायानुलिप्तभूतलाम्, निर्ममाम्, निरहंकाराम्, निर्मत्सराम्, अमानुषाकृतिम्, दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवयःपरिमाणामप्यष्टादशवर्षदेशीयामिवोपलक्ष्यमाणाम्, प्रतिपन्नपाशुपतव्रतां कन्यकां ददर्श।

५५ ततोऽवतीर्य तरुशाखायां बद्ध्वा तुरगममुपसृत्य भगवते भक्त्या प्रणम्य त्रिलोचनाय तामेव दिव्ययोषितमनिमिषपक्ष्मणा निश्चलनिबद्धलक्ष्येण चक्षुषा पुनर्निरूपयामास। उदपादि चास्य रूपसंपदा कान्त्या प्रशान्त्या चाविर्भूतविस्मयस्य मनसि—

५६ "अहो जगति जन्तूनामसमथितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि। तथाहि। मया मृगयायां यदृच्छया निरर्थकमनुबध्नता तुरगमुखमिथुनमयमतिमनोहरो मानवानामगम्यो दिव्यजनसंचरणोचितः प्रदेशो वीक्षितः। अत्र च सलिलमन्वेषमाणेन हृदयहारि सिद्धजनोपस्पृष्टजलं सरो दृष्टम्। तत्तीरलेखाविश्रान्तेन चामानुषं गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषदुर्लभदर्शना दिव्यकन्यकेयमालोकिता। न हि मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषताम्। कुतश्च मर्त्यलोके

शिरकी चन्द्रकला सी राग (या रक्तिमा) बिना, बिना मथे समुद्रजल की सपदा सी भीतर स्वच्छ, समासरहित पदकी वत्ति सी द्वन्द्व समास (या झगडा) से रहित, बौद्ध (योगाचार दर्शन) के ज्ञान सी आलबरहित, वदेही सी ज्योति (अग्नि या नान) मे प्रवेश प्राप्त द्यूतकलामे कुशलता सी, वशमें करे अक्ष (इन्द्रिय या पापाण) के सारोवाली मही सी जल धारित देहवाली, शीतकालके प्रात की शोभा सी, भास्करके आलोक (या तपको) स्वीकृत किय, आया (छन्द) की तरह यति और गणके अनुकूल मात्राक। लिय चित्रित सी। अचल स्थितिवाली, तजोमयी सी शरीरकी कातिसे भूतलको व्याप्त किये, ममतारहित अहकाररहित मत्सररहित, दिव्य आकारवाली, दिव्य होनेसे आयुका परिमाण न बतानेवाली भी अठारह वषका सी दिखाई देती, **पाशुपत** व्रत धारिणी थी।

५५ तब राजकुमारने उतरकर घोडको वक्षकी शाखामे बाध कर भगवान् त्रिलोचनको भक्तिसे प्रणाम करके उसी दिव्य स्त्रीको निश्चल लक्ष्य बने अपलक नेत्रसे फिर अवलोकन किया। आर उमकी रूपशोभा, काति और प्रशातिसे चकित विस्मित कुमारके मनम हुआ—

५६ "अहा! ससारमे प्राणियाके बिना सोचे दूसरे वत्तात आ टपकत है, जैसे मने शिकारमे यो ही व्यय किन्नर जोडीका अनुगमन करते इस अत्यत मनोहर, मानवोके लिय अगम्य, दिव्य जनोके गमनागमन वाले प्रदेशको देखा। यहा पानीकी खोज करते मनोहर सिद्धजनोसे सेवित जलवाले सरोवरको देखा, और उसके तीरके पास विश्राम करते दिव्य गीतको सुना, और उसका अनुसरण करत मनुष्योके लिये दुलभ दशन इस दिव्य कयाको देखा। इसके दिव्य होनमे मुझे सन्देह नहीं। आकार ही इसके अमानुषी होनेका अनुमान कराता है। मत्युलोकमें इस प्रकारकी विशेष सगीत ध्वनि कहा संभव है।

सभूतिरेवविधाना गान्धवध्वनिविशेषणाम् । तद्यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलास-शिखरम्, नोत्पतति वा गगनतलम्, तत "का त्वम्, किमभिधाना वा किमथ वा प्रथमे वयसि प्रतिपन्ना व्रतम्," इति सवमेवैतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। अतिमहान-यमवकाश आश्चर्याणाम्, इत्यवधाय तस्यामेव स्फटि-कमण्डपिकायामन्यतम स्तम्भमाश्रित्य समुपविष्टो गीतसमाप्त्यवसर प्रतीक्षमाणस्तस्थौ ।

—पूर्वभागे

(५) प्रथम परिचय —

५७ 'अस्या परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वय परिमल' इति मनसा निश्चित्य त तपोधनयुवानमीक्षमाणाहमचिन्तयम् —"अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोशस्याक्षीणता विधातु, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसभार भगवन्त कुसुमा-युधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपातिशयराशिरयमपरो मुनिर्मायामयो मकरकेतुरुत्पादित । मन्ये च सकल-जगन्नयनानन्दकर शशिबिम्ब विरचयता लक्ष्मीलीला-वासभवनानि कमलानि सृजता ब्रह्मणैतदाननाकारक-रणकौशलाभ्यास एव कृत, अन्यथा किमिव हि सदृश-वस्तुविरचनाया कारणम्। अलीक चेद यथा किल सकला कला कलावतो बहुलपक्षे क्षीयमाणस्य सुषुम्णानाम्ना रश्मिना रविरापिबतीति, ता खल्वस्य गभस्तय समस्ता वपुरिदमाविशतीति। कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशबहुले तपसि वतमानस्येद लावण्यम्" इति चिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभ कुसुमायुध कुसुमसमयमद इव मधुकरी परवशामकरोदुच्छ्वसितै सह ।

सो यदि, यह मेरी आखोसे यदि एकाएक दूर न जाये या कैलास शिखर पर नही चढ जाये या आकाशमें न उड जाय, तो "तू कौन है, क्या नामवाली है, किसलिये तरुणाईमे व्रत धारिणी हुई" यह सब पास जाकर पूछूगा। यह आश्चर्योका बहुत ही बडा स्थान है।" यह सोच उसी स्फटिक मडपिकामें एक स्तम्भ का सहारा ले बैठकर राजकुमार गीतकी समाप्ति की प्रतीक्षा करन लगे।

—पूवभाग

५ परिचय—

५७ इसकी सुगधि तो दूसरे फूलोकी गन्धको तिरस्कृत करनेवाली है, यह मनमें निश्चय करके उस युवा तपस्वीको देखती मैंन सोचा—

अहो! इस तरहके अतिशय सौंदयवाले रूपके उत्पादनसे ब्रह्माका साधन कोश अक्षय है, जो कि त्रिभुवनके अद्भुत रूपवाले भगवान कामदेवको उत्पन्न करके, उसके आकारसे भिन्न अति सौदय-राशि इस दूसरे मायामय कामदेव जैसे मुनिको उत्पन्न किया। मै समझती हू, सारे जगतके नयनोको आनदकर चन्द्रबिम्बकी रचना करते लक्ष्मीके विलासभवनरूपी कमलोको सजन करत ब्रह्माने इसके मुखकी आकृति बनानेकी चतुराईका अभ्यास किया, नही तो एक समान वस्तु बनानेका क्या कारण था? कृष्णपक्षमे क्षीण होत चन्द्रमाकी सारी कलाओको सुषुम्णा नामक रश्मि द्वारा सूय पीता है, यह कथन झूठा है। इसकी वह सारी किरणे इसके इस शरीरमे सम्मिलित हैं। नही तो सौदयनाशक बहुत कष्टकरी तपस्यामे विद्यमान इसका यह सौदय कैसे (टिका) है। यह सोचती गुण-दोषके विशेष विचार बिना केवल सौदय-पक्षपाती नव-यौवन सुलभ कामदेवने (मुझे) वसतके मदकी तरह मधुकरीको, नि श्वासोके साथ परवश कर दिया। थोडी आकुचित पलकोवाले कुटिल, अधिक चचल पुतलीके काले गभयुक्त अपलक दाहिने नेत्र द्वारा लालसासे पीती सीमै कुछ मागने सी लगी—'मै तेरे आधीन हू' यह कहती, सामने हृदयको अर्पित करती सी,

विस्मृतनिमेषेण किञ्चिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मित-तरलतरतारशारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिब-न्तीव, किमपि याचमानेव, 'त्वदायत्तास्मि' इति वदन्तीव, अभिमुखं हृदयमर्पयन्तीव, सर्वात्मनानुप्रविशन्तीव, तन्मयतामिव गन्तुमीहमाना, 'मनोभवाभिभूता त्रायस्व' इति शरणमिवोपयान्ती, 'देहि हृदयेऽवकाशम्' इत्यर्थिता-मिव दर्शयन्ती 'हाहा, किमिदमसाम्प्रतमतिह्रेपणमकुलकुमा-रीजनोचितमिदं मया प्रस्तुतम्' इति जानानाप्यप्रभ-वन्ती करणानाम्, स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव, संयतेव, मूर्च्छितेव, केनापि विधृतेव, निस्पन्दसकला-वयवा तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेना-नाख्येयेन, स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रू-पसंपदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौव-नेन, किमनुरागेणैवोपदिश्यमाना, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम् ।

५८ उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्य-माणेव हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम् । अनन्तरं च मेऽन्तमद-नेनावकाशमिव दातुमाहितसताना निरीयुः श्वासमरुतः । साभिलाषं हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुच-युगलम् । खेदलवलेखाक्षालितेवागलल्लज्जा । मकरध्वज-निशितशरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः । तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगा-द्रोमाञ्चजालकम् । अशोषत स्वेदाम्भसा धौतश्चरण-युगलादिव हृदयमविशद्रागः ।

सब प्रकारसे प्रवेश करती सी, तन्मयताको मानो जान पानेको 'काम देवसे पराजित मेरी रक्षा करो', यह कह शरणागत होती सी, 'हृदयमे स्थान दो' यह याचना दिखाती सी चाहने लगी। 'हा, अनुचित अति लज्जाकर कुलकुमारी जनोके लिये अभव्य इस प्रसगको क्यो प्रस्तुत किया', यह जानती भी इन्द्रियो पर अधिकार न रखती, स्तभित सी, लिखित सी, उत्कीर्ण सी, बधी सी, मूर्छित सी, किमी द्वारा पकडी गई सी, सारे अगसे निश्चेष्ट, उस समय प्रकट हुई जडता द्वारा बिना कहे सिखे अकथनीय, केवल आत्मानुभव द्वारा नही जान सकी। क्या उसकी सौंदय-सम्पत्तिसे क्या मनसे, क्या मनसिजसे क्या अभिनव यौवनसे, क्या अनुरागसे मानो उपदिष्ट होत या अन्य ही किसी प्रकारसे अथवा नही जानती कैसे कैसे बहुत देर तक मै उसे देखती रही।

५८ इन्द्रियोसे, उठाकर उसके पास ली जाती, हृदयसे आगे आकर्षित होती, पीछेसे कामदेव द्वारा प्रेरित होती सी, अपनेको जसे-कैसे विना प्रयत्नके मन रोका। और बादमे मेरे भीतर कामदेवको अवकाश देते हुये से श्वास वायु धारा बनकर निकले हृदयकी अभिलाषाको बतलाते हुये मानो दोनो स्तन-मुख कपित हुये। पसीनेकी रेखासे घुलकर लज्जा मानो गल गई। कामदेवके तीक्ष्ण वाणोके गिरनेसे भयभीत सा शरीर कप गया। उसके सौदय आधिक्यको देखनके लिये मानो कौतूहलसे आलिगनकी लालसावाले (मेरे) अगोमे रोमाच हो गया। पसीनेके जलसे पूरी तौरसे धुले चरणयुगलका राग मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गया।

५९ आसीच्च मम मनसि—
"शातात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिन् जने मा निक्षिपता किमिदमनार्य्येणासदृशमारब्ध मनसिजेन ? एव च नामातिमूढ हृदयमगनाजनस्य, यदनुरागविषययोग्यतामपि विचारयितु नालम्। क्वेदमतिभास्वर धाम तेजसा तपसा च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि ? नियतमय मामेव मकरलाञ्छनेन विडम्ब्यमानामुपहसति ानसा। चित्र चेद यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसहर्तुम्। अन्या अपि कन्यकास्त्रपा विहाय स्वयमुपयाता पतीन्, अन्या अप्यनेन दुर्विनीतेन मन्मथेनोन्मत्तता नीता नार्य, न पुनरहमेका यथा कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुली भूतमेवमस्वतन्त्रतामुपैत्यन्त करणम्। कालो गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सवथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुटमनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्रदेशादपसपण श्रेय। कदाचिदनभिमतस्मरविकारदशनकुपितोऽय शापाभिपन्नता करोति माम्। अदूरपाको हि मुनिजनप्रकृति" इत्यवधार्यापसपणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजनपूजनीया चेय जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्, उल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतसम्, असदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

५९ और मेरे मनमे हुआ—कामुकता के व्यापारको दूर छोड इस शात आत्मा पुरुषके ऊपर इस तरह मुझे फेकते क्या अनाय कामदेवने अनुचित नही किया ? अगनाजनोका हृदय ऐसा ही अति मूढ है, जो कि अनुराग पात्रकी योग्यताके बारेमे भी नही विचार सकता । कहा यह तेज और तपस्याका अति प्रकाशमान धाम और कहा साधारण जनोद्वारा अभिनदित कामदेवकी कामुक चेष्टायें ? निचश्य ही कामदेव द्वारा मुझे इस तरह बिडवित होती देख यह मनसे मेरा उपहास करता होगा। आश्चय है, मै यह जानती भी अपन विकारको रोक नही सकती। दूसरी भी कन्यायें लाज छोडकर स्वय पतियोके पास गइ ? दुष्ट कामदेवने केवल अकेली मुझे ही नहीं दूसरी नारियोको भी उन्मत्त बनाया, जैसे कि इसी क्षण रूप मात्र देखनेसे आकुल (मेरा) हृदय परतत्र हो रहा है । समय और गुण सब प्रकारसे कामदेवकी दुर्निवारताको स्थापित करत है । जब तक मै होश-हवासवाली हू, और जब तक मेरी काम-दुश्चेष्टा इस हलकेपनको यह स्पष्ट नही जान लेता तब तक ही इस जगह से (मेरा) हट जाना अच्छा है । शायद अरुचिकर काम विकारको देख कुपित होकर यह मुझे शाप दे दे। मुनि जनोका स्वभाव कोपसे दूर नही रहता। यह सोचकर मै हटनेकी इच्छा करने लगी। यह जाति सबकी पूजनीय है, यह सोचकर उसके मुखसे आकर्षित-दष्टि निश्चल पलकवाली, भूतल को न देखती उल्लसित कण पल्लवसे छूने कपोलवाली, चचल अलकोमे शोभायमान कुसुम मालावाली, कन्धे पर हिलते मणिकुडलोके साथ मैन उसे प्रणाम किया।

६० अथ कृतप्रणामायामपि दुर्लंघ्यशासनतया मनोभुव, मदजननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्य, अविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य, चचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणाम् दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्ते, तथाभवितव्यतया च तस्य वस्तुन, कि बहुना मम मदभाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्तमपि मद्विकारापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयदनग ।

६१ तदा तस्याप्यभिनवागतमदन प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गम प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भि पुर प्रवृत्त श्वासै । वेपथुगृहीता व्रतभगभीतेवाकम्पत करतलगताक्षमाला, द्वितीयेव कर्णावसक्त कुसुममजरी कपोलतलासगिनी समदृश्यत स्वेदसलिलसीकरजालिका। मद्दर्शनप्रीतिविस्तारितस्य चोत्तानतारकस्य पुण्डरीकमयमिव तमुद्देशमुपदर्शयतो लोचनयुगलस्य विसर्पिभिरशुसतानैर्यदृच्छयाच्छोदसलिलमपहाय विकचकुवलयवनैरिव गगनतलसमुत्पतितैररुध्यन्त दश दिश । तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणीकृतमदनावेशा तत्क्षणमहमवर्णनयोग्या कामप्यवस्थामन्वभवम्

६२ इद च मनस्यकरवम्—'अनेकसुरतसमागमलास्यलीलोपदेशोपाध्यायो मकरकेतुरेव विलासानुपदिशति, अन्यथा विविधरसासगललितेष्वीदृशेषु व्यतिकरेष्वप्रदिष्टबुद्धेरस्य जनस्य कुत इयमनभ्यस्ताकृती रतिरसनिस्यन्दमिव क्षरन्ती, अमृतमिव वर्षन्ती, मदमुकुलितेव,

६० तब मेरे प्रणाम करनेके बाद ही कामदेवकी आज्ञाके दुलघनीय होनेसे, चैत महीनेके मदके उत्पादनसे, और उस प्रदशकी अति रमणीयता से, और अभिनव यौवनके बहुत दुर्विनीत होनेसे, और इद्रियोकी चचल स्वभावतासे, विषय-अभिलाषाओकी दुर्निवारतासे, और मनोवत्तियो का चपलतासे, और तद् तद् वस्तुकी वैसी भवितव्यता से, बहुत क्या (कहूँ) मेरे मन्दभाग्य की दुष्टताके कारण और ऐसे क्लेशके बदा होनेके कारण भी, मेरे विकारसे अधीर हुये उसे भी दीपकको पवनकी तरह कामदेवने चचल कर दिया।

६१ तब नवागत मदनकी अगवानी करते स उसका भी रोमाच प्रकट हुआ। मरी ओर प्रस्थान करते मनको माग दिखलाते से श्वास आगे चले। पकडे व्रतके भगसे भयभीत सी हाथकी रुद्राक्ष माला कपी कपोलस लिपटा कानम लगी कुसुममजरी स्वेद-जल बिंदुआकी दूसरी जाली सी दिखाई देने लगी। मेरे दखनेकी इच्छासे फैले और उत्तान पुतलिया वाले उस स्थानको पुण्डरीकमय सा दिखलाते, लोचनयुगलकी फैलनी किरणा द्वारा अकस्मात् स्वच्छासे आच्छाद सरोवरके जलको छोडकर मानो आकाशतलकी ओर उडत फूले कमलोके बनासे दशो दिशाय रुध गइ। तरुणके उस अति प्रकट विकारसे कामके दुगुन आवेश-वाली हो म उसी क्षण किसी अवणनीय अवस्थाका अनुभव करन लगी।

६२ मैन मनमे साचा—अनेक सुरत-समागमोकी नत्य-लीलाका उपदेशक गुरु कामदेव ही विलासोको सिखा रहा है नही तो विविध रस ससगस ललित ऐसे व्यापारोमे अशिक्षित ज्ञानवाले पुरुषकी यह अभ्यासरहित आकृति, कैसे रति रसका प्रवाह सी बहाती, अमत सी बरसाती, मदसे मुकुलित सी, खेदसे अलस सी, निद्रासे जड सी, आनन्दके भारसे मद चलती पुतलियोके सचारवाली, चचल भौहोको उल्लसित करने वाली, इस पुरुषकी यह दृष्टि कैसे है? कहासे यह अत्यन्त निपुणता

खेदालसेव, निद्राजडेव, आनन्दभरमन्थरतरत्तारस-चारिणी, अनिभृतभ्रूलतोल्लासिनी दृष्टि। कुतश्चेद-मतिनैपुण्यम्, यच्चक्षुषैवानक्षरमेवमन्तगतो हृदयाभिलाष कथ्यते।' प्राप्तावसरा चोपसृत्य त द्वितीयमस्य सहचर मुनिबालक प्रणामपूर्वकमपृच्छम—"भगवान्किमभिधान? कस्य वाय तपोधनस्य युवा? किनाम्नश्च तरोरियम-वतसीकृता कुसुममजरी? जनयति हि मे मनसि महत्कौ-तुकमस्या समुत्सपन्नसाधारणसौरभोयमनाघ्रातपूर्वो गन्ध" इति। स तु मामीषद्विहस्याब्रवीत्—"बाले, किमनेन पृष्टेन प्रयोजनम्? अथ कौतुकमावेदयामि। श्रूयताम्-

—पूर्वभागे

(६) प्रेम—

६३ अस्ति त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तिरत्युदारतया सुरासुरसिद्ध-वृन्दवन्दितचरणयगलो महामुनिर्दिव्यलोकनिवासी श्वेतकेतुर्नाम। तस्य च भगवत सुरलोकसुन्दरीहृदया-नन्दकरम् अशेषत्रिभुवनसुन्दरम्, अतिशयितनलकूबर रूपमासीत्। स कदाचिद्देवताचनकमलान्युद्धर्तुमैरावतमद-जलबिन्दुबद्धचन्द्रकशतखचितजलाम् हरहसितसितस्रोतस मन्दाकिनीमवततार। अवतरन्त च त कमलवनेषु सततसनिहितविकचसहस्रपत्रपुण्डरीकोपविष्टा देवी लक्ष्मी-ददश। तस्यास्तु तमवलोकयन्त्या प्रेममदमुकुलितेना-नन्दबाष्पभरतरगतरलतारेण लोचनयुगलेन रूपमास्वा-दयन्त्या जृम्भिकारम्भमन्थरमुखविन्यस्तहस्तपल्लवाया मन्मथविकृत मन आसीत्। आलोकनमात्रेणाच्च समासादित-सुरतसमागमसुखायास्तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके कृता-र्थतासीत्। तस्माच्च कुमार समुदपादि। ततस्तमुत्सग

आई, जो कि आख द्वारा ही अक्षरके विना ही भीतरके हृदय अभि-लाषको कह गया। अवकाश पाकर और पास जा उसके दूसरे साथी मुनिबालकको प्रणाम करके मैने पूछा—'भगवान् यह क्या नामवाले है? किस तपोवनके पुत्र यह तरुण है? कौन से नामके वक्षकी कुसुममजरी (इनका) कर्णाभूषण बनी हुइ है? फैलता हुआ असा-धारण सौरभवाला कभी न सूघा इसका यह गध मेरे मनमे भारी कौतुक पैदा कर रहा है।' वह थोडा सा हसकर मुझसे बोला—बालिके, यह पूछनेका क्या मतल्व है? यदि कौतूहल है, तो बतलाता हू, सुनो—

—पूर्वभाग

६ प्रेम—

६३ त्रिभुवनमे प्रख्यात कीर्तिवाले, अत्यत उदारतासे सुर-असुर सिद्ध-समूह द्वारा वदित चरणावाले, दिव्यलोकवासी **श्वेतकेतु** नामक महामुनि है। सुरलोक का सुदरियाके हृदयोको आनन्द करनवाले, अखिल त्रिभुवनमे सुन्दर **नलकूबर**से भी बढकर उन भगवान्का रूप था। एक समय वह देव पूजार्थ कमलोको चुननके लिय **ऐरावत**के मदके जलबिन्दुओपर बधी चद्रिकाओ द्वारा खचित जलवाली, शकरके हास जैसी सफद स्रोतवाली, **गगा**मे उतरे। कमलवनमे उतरत हुय उन्हें पासके फूल सहस्रदल पुडरीकपर सदा उपविष्ट लक्ष्मीदेवीने देख लिया। देखती, प्रेम मदसे मुकुलित आनद-अश्रु-तरगसे चचल पुतलियोवाले लोचनयुगल द्वारा रूपका आस्वाद लेती, जम्हाई आनेसे मन्द मुखपर रक्खे हस्तपल्लववाली, लक्ष्मीका मन काम विकारसे विकृत हो गया। देखने मात्रसे सुरतसमागमका सुख पा उसी आसनके पुडरीकपर उसे तप्ति हो गई, जिससे कुमार उत्पन्न हुआ। तव उसे गोद मे लेकर लक्ष्मी ने—'भगवन्, लो यह तुम्हारा बटा है यह कहकर **श्वेतकेतु**को दे दिया। मुनि ने भी बालकोके लिये उचित सारे सस्कारोको करके **पुण्डरीक**से उत्पन्न होनेके कारण **पुण्डरीक**

आदाय सा 'भगवन्, गृहाण तवायमात्मज' इत्युक्त्वा तस्मै श्वेतकेतवे ददौ। असावपि बालकजनोचिता सर्वा क्रिया कृत्वा तस्य पुण्डरीकसभवतया तदेव पुण्डरीक इति नाम चक्रे, प्रतिपादितव्रत च तमागृहीतसकलविद्याकलापमकार्षीत्। सोऽयम्। इय च सुरासुरैमथ्यमानात्क्षीरसागरादुद्गत पारिजातनामा पादपस्तस्य मजरी। यथा चैषा व्रतविरुद्धमस्य श्रवणससगमासादितवती तदपि कथयामि। अद्य चतुर्दशीति भगवन्तमम्बिकापति कैलासगतमुपासितुममरलोकान्मया सह नन्दनवनसमीपेनायमनुसरन्निगत्य साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभि कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादितविग्रहया नवचूताकुरकणपूरया पुष्पासवपानमत्तया वनदेवतया पारिजातकुसुममजरीमिमामादाय प्रणम्याभिहित —

६४ 'भगवन् सकलत्रिभुवनदशनाभिरामायास्तवाकृतेरस्या सदृशोऽयमलकार क्रियताम्। इयमवतसविलासदुललितारोप्यता श्रवणशिखरम्। व्रजतु सफलता जन्म पारिजातस्य' इत्येवमभिदधाना चायमात्मरूपस्तुतिवादत्रपावनमितलोचनस्तामनादृत्यैव गन्तु प्रवृत्त। मया तु तामनुयान्तीमालोक्य 'को दोष सखे, क्रियतामस्या प्रणयपरिग्रह,' इत्यभिधाय बलादियमनिच्छतोऽप्यस्य कणपूरीकृता। तदेतत्कात्स्न्र्येन योऽयम्, यस्य चायम्, या चेयम्, यथा चास्य श्रवणशिखर समारूढा, तत्सवमावेदितम्। इत्युक्तवति तस्मिन्स तपोधनयुवा किंचिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्, 'अयि कुतूहलिनि, किमनेन प्रश्नायासेन? यदि रुचितसुरभिपरिमळा गृह्यतामियम्,' इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय कलैरलिकुल-

यही उसका नामकरण किया, और व्रती बना उसे सारी विद्याओमे पारगत करा दिया। वही है यह। और यह देवासुरो द्वारा मथे क्षीर सागरसे निकले **पारिजात** नामक वृक्षकी मंजरी है। इसने कैसे ब्रह्मचर्य व्रतके विरुद्ध इसके कानोका ससग पाया इसे भी बतलाता हू। आज चतुर्दशी है यह सोच **कैलास**वासी भगवान् अम्बिकापतिकी उपासनाके लिये सुरलोकसे मेरे साथ यह **नंदनवन**के समीपसे निकला। (तब) साक्षात मधुमासकी लक्ष्मी द्वारा दिये ललित हस्तावलम्ब वाली, मौलसरीकी मालाकी मेखलावाली कुसुमपल्लवसे गुथी जानु तक लटकती कंठमालिकाओ द्वारा निरंतर आच्छादित शरीर वाली, नये आम्रमंजरीके कर्णपूरवाली, पुष्पके आसवके पीनसे मत्त, वनदेवताने इस पारिजात कुसुममंजरीको लेकर प्रणाम करके कहा—

६४ 'भगवन, सकल त्रिभुवनके दर्शनके लिये अति सुन्दर तुम्हारे इस रूपके योग्य यह अलकार है, इसे धारण कीजिये, तुच्छ आभूपण विलास को अपने कानोमे रखिये। इस प्रकार पारिजातका जन्म सफल होगा।' इस प्रकार कहती वनदेवता द्वारा यह अपने सौंदर्यकी स्तुति करनेकी लज्जासे नीची आख किये उसका अनादर करते ही चलने लगा। मैंने उसे पीछे आती देखकर 'मित्र, क्या दोष है इसके स्नेहको स्वीकार कीजिये कहकर इच्छा न होने पर भी जबदस्ती इसे इसके कानका भूषण बना दिया। सो यह पूरी तौरसे जो है और यह जिसका है, जो (मंजरी) यह है, और जैसे इसके कानोमे यह आरूढ हुई, सो सब मैंने बतला दिया।' उसके यह कहनेपर उस तपस्वी तरुणने कुछ मुस्कुराकर मुझसे कहा—'आर्ये कुतूहलिनी, इस प्रश्नके परिश्रमसे क्या फायदा? यदि इसकी सुगंध पसन्द है, तो लीजिये, और पास आकर

क्वणितै प्रारब्धरतिसमागमप्रार्थनामिव मदीये श्रवण-पुटे तामकरोत्। मम तु तत्करतलस्पर्शलाभेन तत्क्षण-मपरमिव पारिजातकुसुममवतंसस्थानपुलकमासीत्। स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृताङ्गुलिजालकात्कर-तलादक्षमालां लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्। अथाहं तामसंप्राप्तामेव भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलील तद्भुजपाशसदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शिता-पूर्वहारलतालीला कण्ठाभरणतामनयम्।

६५ इत्थंभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृ-दारिके, स्नाता देवी। प्रत्यासीदति गृहगमनकाल। तत्क्रियतां मज्जनविधि' इति। अहं तु तेन तस्या वच-नेन नवग्रहा करिणीव प्रथमाङ्कुशपातेनानिच्छया कथं-कथमपि समाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपङ्कमग्नामिव कपोलपुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकी-लितामिव सौभाग्यगुणस्यूतामिव अतिकृच्छ्रेण दृष्टिं समाकृष्य स्नातुमुदचलम्। उच्चलितायां च मयि द्वि-तीयो मुनिदारकस्तथाविधस्तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचि-त्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत्—'सखे पुण्डरीक, नैतदनु-रूपं भवत। क्षुद्रजनक्षुण्ण क एष मार्ग? धैर्यधना हि साधव। किं य कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि? कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लव, येनास्येवं कृत? क्व ते तद्धैर्यम्? क्वासाविन्द्रियजय? क्व तद्वशित्वम्? चेतस क्व सा प्रशान्ति? क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम्? क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता? क्व ते गुरूपदेशा? क्व तानि श्रुतानि? क्व ता वैराग्यबुद्धय? क्व तदुप-

अपन कानासे निकालकर, भ्रमराके मधुर गुजित द्वारा रतिस्मागम-की याचना करती भी मेरे कानामे उसे लगा दिया। मेरे तो शरीरमे आभूषणकी जगह उसके हाथके स्पर्श-लोभमे उसी क्षण दूसरा पारिजात कुसुमसा रोमाच हो गया। मेरे कपालके स्पर्शके सुखसे चचल अगुलिया-वाले हाथामे अक्षमालाको लज्जाके साथ गिरत भी उसने नही जाना। तब उस रुद्राक्षमालाको पृथिवी तक न पहुचने दे मैंन उसके भुजपाश म जी क ग्रहणके सुख सा अनुभव करती, अपूव हार लताकी शोभा दिखलाती लीला-सहित (अपना) कठाभरण बना लिया।

६५ यह व्यापार हो जानके बाद मेरी छत्रग्राहिणी ने मुझसे कहा—स्वामिपुत्री, देवीने नहा लिया। घर जानेका समय नजदीक है। म। स्नान कीजिय। मै तो उसके इस वचनद्वारा प्रथम अकुश मारनेसे नई पकडी हथिनी सी बिना इच्छाके जैसे-तैसे खिंची जाती उसके मुख-सौदयरूपी अमतके पकमे डूबी सी कपोलके रोमाचजालमें लग्न सी, कामदेवके शरीरकी शलाका द्वारा कीलित सी, सौभाग्य सूतसे सिली सी, बडी कठिनाईसे आख हटाकर नहाने चली। मेरे वहासे चलनेपर साथीको उस प्रकार धैय छोडत देखकर कुछ प्रमसहित सिखलात दूसरे मुनिपुत्रने कहा—'मित्र पुडरीक,यह आपके लिय उचित नही है। क्षुद्रजनो द्वारा सेवित यह कौन माग है? साधु जन धैयके धनी होत है। क्यो जसे कैसे साधारण आदमीकी तरह तू अपनेको विकल होनेसे नही रोकता? कैसे कहासे तुझे, यह अपूव प्रथम इद्रिय-शिथिलता आई, जिसन तुझे ऐसा कर दिया? कहा है वह तेरी वीरता? कहा वह इद्रियजय? कहा वह इद्रिय-वशिता? कहा चित्तकी वह प्रशान्ति? कहा वशपरपरासे आया वह ब्रह्मचय? कहा वह सारे विषयोमें अनिच्छा? कहा तेरे लिये वे गुरुके उपदेश? कहा वे शास्त्र? कहा वह वैराग्य-बुद्धि? कहा वह उपभोगमे विराग? कहा वह सुखसे पराङ्मुखता? कहा

भोगविद्वेषित्वम् ? क्व सा सुखपराङ्मुखता ? क्वासौ तपस्यभिनिवेश । क्व सा भोगानामुपयरुचि ? क्व तद्यौवनानुशासनम् ? सवथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धमशास्त्राभ्यास , निरर्थक सस्कार , निरुपकारको गुरूपदेशविवेक , निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, नि कारण ज्ञानम्, इदमत्र भवादृशा अपि रागाभिषगै कलुषीक्रियन्ते, प्रमादैश्चाभिभूयन्ते । कथ करतलाद् गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि । अहो विगतचेतनत्वमपहृतानामेवम् । इदमपि तावद् ध्रियमाणमनयानायया निवायता हृदयम्' इति ।

६६ एवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इव प्रत्यवादीत् 'सखे **कपिंजल**, कि मामन्यथा सभावयसि ? नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मषयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम् ।' इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्नविरचितभीषणभ्रुकुटिभूषेण चुम्बनाभिलाषस्फुरिताधरेण मुखे दुना मामवदत्—'चचले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्वा पदात्पदमपि न गन्तव्यम्' इति ।

६७ तच्च श्रुत्वाहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजलास्यारम्भलीलापुष्पाजलिमेकावलीम् 'भगवन् गह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टे शून्यहृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नातापि पुन स्नातुमवातरम् । उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीप नीयमाना सखीजनेन बलादम्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम् ।

६८ गत्वा च प्रविश्य कन्यान्त पुर तत प्रभृति तद्विरहविधुरा किमागतास्मि किं तत्रैव स्थितास्मि, किमेकाकिन्यस्मि, किं परिवृत्तास्मि, किं तूष्णीमस्मि, कि प्रस्तुतालापास्मि, कि जागर्मि, कि सुप्तास्मि, किं रोदिमि, कि न रोदिमि, कि दु खमिदम्, किं सातमिदम्, किमत्कण्ठेयम्, किं व्या-

नपस्यामे वह आग्रह ? कहा वह भोगोके प्रति अरुचि ? कहा वह यौवनपर अनुशासन करना ? सवथा तरी प्रज्ञा निष्फल है, धम शास्त्रका अभ्यास बेकार है सस्कार निरथक है, गुरुके उपदेश विवक अनुपकारक है प्रबुद्ध होना निष्प्रयोजन ज्ञान निष्फल है, जो कि यहा तरे जैसे भी रागके ससगसे मलिन बन जायें प्रमादोसे पराजित होवे ! कैसे हाथसे गिरी और चुराई गई रुद्राक्ष-मालाको भी तूने नही जाना ! अहो ध्वस्तोकी बखबरी ! (अपने) इस हृदय-का भी तो उस अनाया की पकडमे आनसे नही रोका।'

६६ मित्र कपिंजल, क्या मुझे उलटा ममझ रहे हो। इस दुप्ट कन्याके रुद्राक्षमाला हरणके अपराधको इस प्रकार मैं नही सह मकता। यह कहकर झूठ कोपसे सुन्दर बहु प्रयत्नसे बनाई भयकर भ्रकुटिके भूषणस युक्त चुम्बनकी अभिलाषासे कपित ओष्ठोवाले मुखचन्द्रसे मुझ कहा—'चचले, इस अक्षमालाको बिना दिये इस स्थानमे एक कदम भी नही हटना।

६७ यह मुनकर कामदेवके नत्यकी लीलाकी पुष्पाजलि सी एकावलीको मैंने अपने कठ से उतार कर भगवान, लीजिय अक्षमाला' कह मेरे मुहपर लगी दप्टिवाले उस शून्यहृदय (तरुण) के फैले हाथोमे रखकर पसीनसे नहाई भी मै फिर नहाने उतरी। उठकर जैसे-तैसे प्रयत्न करके, उलटी ओर ढकेली जाती नदी सी **पुडरीक**के बारेमें सोचती सखीजनो द्वारा जबदस्ती अम्बाके साथ अपने घरको गई।

६८ जाकर कन्या-अत पुरमे प्रवेश कर तब से उसके विरहसे व्याकुल मैन कुछ नही जाना—क्या आई, क्या वही खडी हू क्या अकेली हू, क्या लौटी हू, क्या चुप हू, क्या बोल रही हू क्या जागती हू क्या सोई हू, क्या रोती हू क्या नही रोती क्या दुख है, क्या यह सुख है, क्या

धिरयम्, कि व्यसनमिदम्, किमुत्सवोऽयम्, कि दिवस एष, किं निशेयम्, कानि रम्याणि, कान्यरम्याणीति सव नावागच्छम्। अविज्ञातमदनवत्तान्ता च क्व गच्छामि, कि करोमि, कि शृणोमि, कि पश्यामि, किमालपामि, कस्य कथयामि, कोऽस्य प्रतीकार इति सर्व च नाज्ञासिषम्।

६९ केवलमारुह्य कुमारीपुरप्रासाद विसज्य च सखीजन द्वारि निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा, सर्वव्यापारानुत्सज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी, तामेव दिग तत्सनाथतया प्रथितामिव महारत्ननिधानाधिष्ठितामिव अमृतरससारसागरपूरप्लावितामिव पूणचन्द्रोदयालकृतामिव दशन सुभगामीक्षमाणा, तस्माद्दिगन्तरादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनिमपि तद्वार्ता प्रष्टुमीहमाना तद्वल्लभतया तप क्लेशायापि स्पृहयन्ती, तत्प्रीत्येव गृहीतमौनव्रता स्मरजनितपक्षपाता च तत्परिग्रहान्मुनिवेषस्याग्राम्यता तदास्पदतया यौवनस्य चारुता तच्छ्रवणसपर्कात्पारिजातकुसुमस्य मनोहरता तन्निवासात्सुरलोकस्य रम्यता तद्रूपसपदा कुसुमायुधस्य दुर्जयतामध्यारोपयन्ती, दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितु सागरवेलेव चन्द्रमस मयूरीव जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी, तथैव ता तद्विरहातुरजीवितोद्गमरक्षावलीवाक्षावली कण्ठेनोद्वहन्ती, तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्यालापयेव कणलग्नया पारिजातमजर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पशसुखजन्मना कदम्बमुकुलकणपूरायमाणेन रोमाचजालेन कण्टकितैककपोलफलका निष्पन्दमतिष्ठम्।

यह उत्कठा है, क्या यह व्याधि है क्या यह व्यसन है, क्या यह उत्सव है क्या यह दिन है क्या यह रात है, कौन रमणीय है कोन अरमणीय है, मदनके व्यवहारमे अपरिचिता मै कहा जा रही हू क्या कर रही हू, क्या सुन रही हू, क्या देखती हू क्या बालती हू किससे बालती हू, इमका प्रतिकार क्या है।

८९ सिफ कन्या अन्त पुरके ऊपर चढकर, सखियाको छोड सारे परिजनो का द्वार प्रवश रोक सारे कामोको छोडकर मणिजालावाले झरोखे पर मुख रक्खे अकेली (बैठी), **पुडरीक**मे युक्त होनके कारण अलकृत भी महारत्नकाशसे अविष्ठिन, अमतरसके सारवाले सागरके प्रवाहसे बहाई सी, पूणचन्द्रके उदयसे अलकृत सी, देखनमे सुन्दर, उसी दिशाकी ओर देखनी (रही)। उस दिशासे आते वायुसे भी वनकुसुमके गन्धसे भी, पक्षियाके शब्दसे भी **पुडरीक**का समाचार पूछनकी इच्छा करती (थी)। पुडरीक क प्रिय होनसे तपक क्लेशकी भी इच्छा करती थी, उसकी प्रीतिसे माना मौन व्रत धारिणी, कामदेवके प्रति पक्षपातिनी था। उसके ग्रहण करनेसे मनिवेषकी अग्राम्यताकी, उसका आश्रय होनसे यौवनकी चारुताकी उसके कानके सम्पकसे पारिजातकुसुम की मनोहरताकी, उसके निवासके कारण सुरलोककी रमणीयताकी, उसके सौदयकी सम्पत्ति द्वारा कामदेवके दुर्जेयताकी कल्पना करती था। दूरस्थ सूयको कमलिनी सी, चन्द्रमाको सागरतट सी, जलधरको मयूरी सी, मै उसीकी ओर मुख किये थी। उसके विरहसे आतुर जीवन के निकलनेकी रक्षाकवच सी रुद्राक्षमालाको उसी तरह कठमे धारण किये, और वसे ही उसके रहस्य-आलापमे लगी सी, व्यस्त सी, कानमे लगी पारिजातमजरी और उसी प्रकार प्रियके हाथके स्पश सुखसे उत्पन्न कदम्बकलीके कर्णाभरण द्वारा एक कपोलमे रोमाचित निश्चल (बैठी) रही।

(७) प्रियतमा-सन्देश —

७० अथ ताम्बूलकरकवाहिनी मदीया तरलिका नाम मयैव सहागता स्नातुमासीत। सा च पश्चाच्चिरादिवागत्य तथाऽवस्थिता शनैं शनैर्मामिवादीत्—'भर्तदारिके, यो तौ तापसकुमारकौ दिव्याकारावस्माभिरच्छोदसरस्तीरे दृष्टौ, तयोरेको येन भतृदुहितुरिय कर्णावतसीकृता सुरतरुमजरी । स तस्माद्वितीयादात्मनो रक्षन्दशनममतिनिभृतपद कुसमितलतासतानगहनान्तरेणोपसत्य मामागच्छन्ती पृष्ठतो भतृदारिकामुद्दिश्याप्राक्षीत्

७१ "बालिके, केय कन्यका, कस्य वापत्यम्, किमभिधाना, क्व वा गच्छति ?" इति

७२ मयोक्तम्—"एषा खलु भगवत श्वेतभानोरशुसभ्ताया-मप्सरसि गौर्यां समुत्पन्ना देवस्य सकलगन्धवमुकुट-मणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृणितचरणनखचक्रस्य प्रण-यप्रसुप्तगन्धवकामिनीकपोलपत्रलतालाछितभुजतरुशिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता **महाश्वेता** नाम गन्धर्वाधिवास हेमकूटाचलमभि-प्रस्थिता" इति।

किमपि चिन्तयन्मुहूतमिव तूष्णी स्थित्वा (स वि)गत-निमेषेण चक्षुषा चिरमभिवीक्षमाणो मा सानुनयमथिता-मिव दशयन्पुनराह—'बालिके, कल्याणिनी तवावि-मवादिन्यचपला बालभावेऽप्याकृतिरियम्। तत्करोषि मे वचनमेकमभ्यथ्यमाना ?' इति।

७३ ततो मया सविनयमुपरचिताजलिपुटया दर्शितादरम-भिहित—'भगवन्, कस्मादेवमभिधत्से ? का हम् ? महात्मान सकलत्रिभुवनपूजनीयास्त्वादृशा पुण्यैविना निखिलकल्मषापहारिणीमस्मद्विधेषु दृष्टिमपि न पात-

७ प्रियतम का सदेश—

७० मेरी पानदानवाहिनी **तरलिका** उस समय मेरे ही साथ नहाने के लिये गई थी। वह पीछे देरसे आई। उस स्थिति मे |पा मुझसे धीरे-धीरे बोली—'स्वामिपुत्री, जो वे दोनो दि य आकारवाले कुमार हमने **अच्छोदसरोवर**के तीर पर दखे। उनमेसे जिसने कल्पतरु-मजरी का स्वामिपुत्रीका कणभूपण बनाया, उसने दूसरेसे अपनेको छिपात अत्य त चुपचाप पैर रखत, फुली हुई लताओके झुमुटके भीत रसे पास आकर, पीछे आती मुझसे स्वामिपुत्रीके बारेमे पूछा—

७१ बालिके, कौन है यह क या और किसकी सतान है? क्या नामवाली है, और कहा जा रही है?'

७२ मन कहा—यह भगवान **श्वेतभानू** (ग धवराज) की च द्रकिरणमे उत्पन्न (पुत्री) अप्सरा **गौरी**मे जनमी सारे ग धर्वोके मुकुटमणि-शलाकाके शिखरोके घिसनेसे चिकने चरणनखसमहवाले, स्नेहसे सोई ग धवकामिनीके कपोलोकी पत्रलता द्वारा लाछित भुजरूपी तरु शिखरवाले, लक्ष्मीके कर-कमलको पादपीठ बनानेवाले, ग धवराज **हस**की लडकी **महाश्वेता** (है, जो) ग धवनिवास **हेमकूट** पवतकी ओर पधारी है।'

कुछ देर चुप रहकर अपलक आखासे अनुनयपूवक मुझ देखते याचना सी दिखलाते (मुनिकुमारने) फिर कहा—

"बालिके, बालपनमें अचचल तेरी यह विश्वसनीय आकृति कल्याणी है। प्राथना करता हूँ, मेरी एक बात करेगी?"

७३ मैंने विनयपूवक हाथ जोडकर आदर दिखलाते कहा—'भगवन, क्यो ऐसा कहते हैं? मै कौन हू? आप जैसे समस्त त्रिभुवन-पूजनीय महात्मा, पुण्यके बिना सारे पापोको दूर करनेवाली अपनी दष्टि हमारे

यन्ति, कि पुनराज्ञाम्। तद्विश्रब्धमादिश्यता कर्तव्यम्। अनुगृह्यतामयं जनः' इति।

७४ एवमुक्तश्च मया सस्नेहया सखीमिवोपकारिणीमिव प्राणप्रदामिव दृष्ट्या मामभिनन्द्य निकटवर्तिनस्तमालपादपात्पल्लवमादाय नीष्पीड्य तटशिलातले तेन गन्धगजमदसुरभिपरिमलेन रसेनोत्तरीयवल्कलैकदेशाद् विपाट्य पट्टिक स्वहस्तकमलकनिष्ठिकानखशिखरेणाभिलेख्येय पत्रिका 'त्वया तस्यै कन्यकायै प्रच्छन्नमेकाकिन्यै देया' इत्यभिधायार्पितवान्। इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलभाजनादाकृष्य तामदर्शयत्। अहं तु तेन तत्सबन्धिनालापेन शब्दमयेनापि स्पर्शसुखमिवान्तर्जनयता श्रोत्रविषयेणापि रोमोद्गमानुमितसर्वा गानुप्रवेशेन मदनावेशमन्त्रेणेवावेश्यमाना तस्या करतलादादाय ता वल्कलपत्रिका तस्यामिमामभिलिखितामार्यामपश्यम्—

७५ 'दूर मुक्तालतया बिससितया विप्रलोभ्यमानो मे।
हस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीत ॥'

७६ अनया च मे दृष्ट्या दिङ्मोहभ्रान्त्येव प्रणष्टवर्त्मन, बहुलनिशयेवान्धस्य, जिह्वोच्छित्त्येव मूकस्य, इन्द्रजालिकपिच्छिकयेवातत्त्वदर्शिन, ज्वरप्रलापप्रवृत्त्येवासबद्धभाषिण, दुष्टनिद्रयेव विषविह्वलस्य, लोकायतिकविद्ययेवाधमरुचे, मदिरयेवोन्मत्तस्य, दुष्टावेशक्रिययेव पिशाचग्रहस्य, दोषविकारोपचय, सुतरामक्रियत स्मरातुरस्य मे मनस, येनाकुलीक्रियमाणा सरिदिव पूरेण विह्वलतामभ्यगमम्। ता च द्वितीयदर्शनेन कृतमहापुण्यामिवानुभूतसुरलोकवासामिव, देवताधिष्ठिता-

जैमाके ऊपर नही डालते। फिर आज्ञाकी बात क्या? इसलिये निधडक कर्तव्यका आदेश देकर, इस जनको अनुगृहीत करें।"

७४ मेरे ऐसा कहनेपर उन्होंने स्नेहयुक्त सखी सी, उपकारिणी सी, प्राणदायिनी दृष्टिसे मुझे अभिनंदित किया (और) पासके तमालवृक्षसे पल्लव को शिलातलपर निचोडकर गजके मद जैसे सुगंधयुक्त रससे, (अपने) चादरके वल्कलके एक कोनेसे पट्टी फाड कर उसपर अपने हस्तकमलकी कानी अंगुलीके नखके अग्रभागसे लिखकर एकांतमें चुपकेसे उस कन्याको इसे देना' कहते यह पत्रिका अर्पित की। यह कहकर तरलिकाने पानलदानसे निकाल कर उसे (पत्रको) दिखलाया। पुंडरीक सम्बन्धी उस आलाप द्वारा शब्दमय होते भी भीतर स्पर्श सुखको उत्पन्न करते कानोंमें पडे विषय के भी रोमांचसे सारे अंगमें प्रवेशका अनुमान कराने वाले कामदेवके मंत्रके आवेश मे आई सी, मैंने उसके हाथसे उस वल्कल-पत्रिकाको लेकर उसमें लिखी इस आर्या (छन्द) को देखा—

७५ 'कमलतंतु सी सफेद मुक्तालता द्वारा प्रलोभित हंसकी तरह आशा दिखलाती सी मेरे मानसजन्मा को तू दूर ले गई।

७६ और उस (पत्रिकाके) देखने से मार्ग भूले को दिशा भ्रम सा, अन्धे को अमावस्याकी रात सा, मूक के लिये जिह्वा काटने सा, तत्व न देखने वालेको जादूगरकी कूची सा, प्रलापीको ज्वरसे बकबक करने की प्रवृत्ति सा, विषसे विकलको दुष्ट निद्रा सा, अधममें रुचिवालेको नास्तिक विद्या सा उन्मत्तको मदिरा सा, पिशाच लगे को दुष्ट आवेश क्रिया सा, कामदेव-पीडित मेरे मनको दोष विकारोंके आधिक्यसे युक्त किया, जिससे आकुल हो मैं बाढ से नदीकी तरह विह्वल हो गई। दूसरी बार दर्शन करके महापुण्यात्मा **तरलिका**को, देवलोक निवासका अनुभव किये सी, देवता द्वारा अधिष्ठित सी, वरप्राप्त सी, अमृत

मिव, लब्धवरामिव, पीतामृतामिव, समासादितत्रैलोक्य-राज्याभिषेकामिव, मन्यमाना, सततसंनिहितामपि दुर्लभदर्शनामिवातिपरिचितामप्यपूर्वामिव सादरमाभाष-माणा पार्श्वावस्थितामपि सर्वलोकस्योपर्यवस्थितामिव पश्यन्ती, कपोलयोरलकलताभंगेषु च सोपग्रहं स्पृशन्ती, विपरीतमिव परिजनस्वामिसंबन्धमुपदर्शयन्ती, 'तरलिके, कथय कथं स त्वया दृष्टः? किमभिहितासि तेन? कियन्तं कालमवस्थितासि तत्र? कियदनुसरन्नस्मान्सा-वागतः?' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम्। अनयैव च कथया तया सह तस्मिन्नेव प्रासादे तथैव प्रतिषिद्धाशेषपरिजन-प्रवेशा दिवसमत्यवाहयम्।

—पूर्वभागे

(८) अकाल उपदेश —

७७ अहं तु तदाकर्ण्य तदवस्थयैवाप्रतीकारविकारोऽयं तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्ति न सर्वात्मना निवारणीय इति मनसावधार्याब्रुवम्—'सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि, यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम्? उत धर्मशास्त्रेषु पठितम्? उत धर्मार्जनोपायोऽयम्? उता-परस्तपसां प्रकारः? उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम्? उत व्रतरहस्यमिदम्? उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम्? आहोस्विदन्यो नियमप्रकारः? कथमेतद्युक्तं भवतो मनसापि चिन्तयितुम्? किं पुनराख्यातुमीक्षितुं वा अप्रबुद्ध इवानेन मन्मथहतकेनोपहासास्पदतां नीयमान-मात्मानं नावबुध्यसे? मूढा हि मदनेनायास्यन्ते? का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः? स खलु धर्मबुद्ध्या विषलतां सिंचति,

पिये सी, तीनो लोकका राज्याभिषेक पाये सी, जानती सदा पास रहनेवाली होते भी दुलभ दशनवाली सी अति परिचित होते भी अपूव सी, आदरपूवक बात करती, पासमे स्थित भी सारे लोकाके ऊपर अवस्थित सी देखती, दोनो कपोलोकी घुघराली अलकोको, ओर स्नहके साथ छूती, सेविका-स्वामिनीके सम्बधको उलटा सी दिखाती मैंन बार बार पूछा—'तरलिक बतला कैसे तूने उसे देखा ? उसने तुझ क्या कहा ? वहा कितने काल तक तू ठहरी ? हमारा अनु गमन करते कितना दूर वह आया ? इसी कथामे उसक साथ प्रासादमे सार परिजनो के प्रवेशको निषिद्ध किये इसी तरह मैंने दिन विताया ।

—पूवभाग

८ अकाल उपदेश—

७७ उस अवस्थामे विकार नही हटा सकता, तो भी असत मागपर आरूढ मित्रका यथाशक्ति सब तरहसे रोकना चाहिये, यह समझ कर मैंन कहा—मित्र **पुण्डरीक** यह मुझ भली प्रकार ज्ञात है। मै कवल यही पूछता हू, जो आपने यह काय आरम्भ किया हे, क्या इसे गुरओने उपदेश दिया, या धमशास्त्रोमे पढा या धम कमानेका यह उपाय है, या तपस्याका दूसरा ढग है या यह स्वग जानेका माग है, या यह व्रतका रहस्य है, या यह मोक्ष पानेकी युक्ति है, अथवा नियमका दूसरा तरीका है ? क्या मनसे भी आपको यह सोचना उचित है ? क्या फिर कहना या देखना उचित है ? अनजाने यह दुष्ट कामदेव तुम्हे उपहासास्पद बना रहा है, क्या तुम नही जानते ? मदन द्वारा मूढ पीडित होता है। साधुजनोसे निंदित साधारण जनो द्वारा आदरित ऐसे विषयामे आपको क्या सुखकी आशा हो सकती है ? वह आदमी तो धम समझ कर विष लताको सीचता है, कमलकी माला जान खड्गकी लताका आलिगन करता है, काले अगुरुके धूमकी

कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिगति, कृष्णागुरुधूम-
लेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति ज्वलन्तमगारमभि-
स्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति,
मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु य सुखबुद्धिमारो-
पयति । अधिगतविषयतत्त्वोऽपि कस्मात्खद्योत इव
ज्योतिनिवार्यमिद ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि
प्रबलरज प्रसरकलुषितानि स्रोतासीवोन्मार्गप्रस्थितानी-
न्द्रियाणि ? न नियमयसि वा क्षुभित मन ? कोऽयम-
नगो नाम ? धैर्यमवलम्ब्य निभर्त्स्यतामय दुराचार'
इत्येव वदत एव मे प्रवचनमाक्षिप्य प्रतिपक्ष्मान्तराल-
प्रवृत्तबाष्पवेणिक प्रमृज्य चक्षु करतलेन मामवलम्ब्या-
वोचत्—

७८ "सखे, किं बहूक्तेन । सर्वथा स्वस्थोऽसि । आशीविष-
विषवेगविषमाणामेतेषा कुसुमचापसायकाना पतितोऽसि
न गोचरे । सुखमुपदिश्यते परस्य । यस्य चेन्द्रियाणि
सन्ति, मनो वा वर्तते, य पश्यति वा, शृणोति वा,
श्रुतमवधारयति वा, यो वा शुभमिद न शुभमिदमिति
विवेक्तुमल स खलूपदेशमर्हति । मम तु सर्वमेवेदमति-
दूरापेतम् । अवष्टम्भो ज्ञान धैर्यं प्रतिसंख्यानमित्यस्त-
मितैषा कथा । कथमप्येव मे यत्नविधृतास्तिष्ठन्त्यसव ।
दूरातीत खलूपदेशकाल । समतिक्रान्तो धैर्यावसर ।
गता प्रतिसंख्यानवेला । अतीतो ज्ञानावष्टम्भसमय ।
केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहायोपदेष्टव्यम्, उन्मा-
र्गप्रवृत्तिनिवारण वा करणीयम् ? कस्यान्यस्य वा
वचसि मया स्थातव्यम् ? का वापरस्त्वत्समो मे
जगति बन्धु ? किं करोमि, यन्न शक्नोमि निवारयितु-
मात्मानम् ? इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुष्टावस्था ।
तद् गत इदानीमुपदेशकाल । यावत्प्राणिमि तावदस्य

रेखा जान काल सपको छाती लगाता है, रत्न जान जलते अगारका छूना है, कमलनाल जान दुष्ट गजके दतरूपी मुसलको उखाडता है। मूढ है वह जो अनिष्टमे सम्बन्ध रखनेवाले विषय भोगामे सुख समझता है। विषयके तत्वज्ञ होते भी क्यो जुगनूमे ज्योति की तरह निवारणीय इस ज्ञानको धारण करते हो, जिससे कि प्रबल रजके प्रसारसे मलिन धाराओ की भाति उलट मार्गपर चलती इद्रियो को नही रोकते या क्षुब्ध मनको नियमन नही करते ? कौन होता है यह कामदेव ? धीरज धर इस दुराचारीको धमकाओ। मेरे ऐसा कहते समय बातको बीचमें काटकर पलकोके बीच बहती अश्रुधारा युक्त नत्रोको पोछकर हाथमे मेरा अवलम्ब ले **पुडरीक** बोला—

७८ "सखे, बहुत कहनेमे (लाभ) क्या ? सब तरहसे तुम स्वस्थ हो ? सर्पके विषके वेगमे भी भयकर कामदेवके इन बाणोके तुम लक्ष्य नही हुये, अत दूसरेको भले उपदेश दो। (पर ऐसे) दूसरेको, जिसको कि इद्रिया हैं, मन है जो देखता है, सुनता है, सुने हुयेको समझता है, जो शुभ-अशुभ का विवेक कर सकता है, वही उपदेशके योग्य है। मेरे तो यह सब बहुत दूर भाग गये, चित्त नियत्रण, ज्ञान, धैर्य अध्यात्म-ज्ञान की कथा खतम हो चुकी है। जैसे-कैसे बिना यत्नके पकडे मरे प्राण ठहरे हुये हैं। उपदेशका काल दूर चला गया। धैर्य का अवसर जाता रहा। अध्यात्म-ज्ञानकी बेला गत हो चुकी। ज्ञान द्वारा नियमनका समय बीत चुका। ऐसे समय (भला) आपको छोड कर कौन (दूसरा) उपदेश करेगा, या उलट मार्ग पर जानेसे निवारण करेगा ? कौन है दूसरा (जिसके) वचनपर मुझे रहना चाहिये ? तुम्हारे समान ससारमे और दूसरा कौन मेरा बन्धु है ? क्या करू, यदि मै अपनेको निवारण नही कर सकता। अभी आपने यह बुरी अवस्था देखी। सो अब उपदेशका काल खतम हो चुका। जब तक सास ले रहा हूँ, तब तक प्रलयकालके बारह सूर्योंकी किरणोकी धूपसे (भी)

कल्पान्तोदितद्वादशदिनकरकिरणातपतीव्रस्य मदनसंतापस्य प्रतिक्रिया क्रियमाणामिच्छामि। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि, उत्क्वथ्यत इव हृदयम, प्लुष्यत इव दृष्टि, ज्वलतीव शरीरम्। अत्र यत्प्राप्तकाल तत्करोतु भवान्' इत्यभिधाय तूष्णीमभवत्।

७९ एवमुक्तेऽप्यहमेन प्राबोधयम्। यदा पुन पुन शास्त्रोपदेशविशदै सनिदर्शनै सेतिहासैश्च वचोभि सानुनय सोपग्रह चाभिधीयमानोऽपि नादात्कर्णे, तदाहमचिन्तयम्—'अतिभूमिमय गत, न शक्यते निवर्तयितुम्। इदानी निरर्थका खलूपदेशा। तत्प्राणपरिरक्षणेऽपि तावदस्य यत्नमाचरामि' इति कृतमतिरुत्थाय गत्वा तस्मात्सरस सरसा मृणालिका समुद्धृत्य कमलिनीपलाशानि जललवलाञ्छितान्यादाय गर्भधूलिकषायपरिमलमनोहराणि च कुमुदकुवलयकमलानि गृहीत्वागत्य तस्मिन्नेव लतागृहशिलातले शयनमस्याकल्पयम्। तत्र च सुखनिषण्णस्य प्रत्यासन्नवर्तिना चन्दनविटपादीना मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य तेन स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्, आचरणतलादङ्गचर्चा चारचयम्। अभ्यर्णपादप्रस्फुटितवल्कलविवरशीर्णेन च करसचूर्णितेन कर्पूररेणुना स्वेदप्रतिक्रियामकरवम्। उरोनिहितचन्दनद्रवार्द्रवल्कलस्य स्वच्छसलिलसीकरनिकरस्राविणा कदलीदलेन व्यजनक्रियामन्वतिष्ठम्। एव च मुहुर्मुहुरन्यदन्यन्नलिनीदलशयनमुपकल्पयत, मुहुर्मुहुश्चन्दनचर्चामारचयत, मुहुर्मुहुश्च स्वेदप्रतिक्रिया कुर्वत, कदलीदलेन चानवरत वीजयत समुदभून्मे मनसि चिन्ता—

८० "नास्ति खल्वसाध्य नाम भगवतो मनोभुव। क्वाय हरिण इव वनवासनिरत स्वभावमुग्धो जन, क्व च विविधविलासरसराशिगन्धर्वराजपुत्री **महाश्वेता** ? सर्वथा

तीव्र इस (मेरे) मदन-सतापका प्रतिकार करो। मेर अग पक से रहे है हृदय उबल सा रहा है नेत्र भुन से रहे हैं शरीर जल सा रहा है। यहा जो करना चाहिये, उस आप करे।।" यह कहकर (पुड रीक) चुप हो गया।

७९ ऐसा कहनेपर भी (मैं) ने उस समझाया। जब फिर फिर शास्त्रके उपदेशसे निमन, उदाहरण, इतिहासयुक्त वचनो द्वारा अनुनय और आग्रहके साथ कह जाने पर भी वह कानमें नही लाया तो मैन सोचा—बहुत दूर जा चुका यह (अब) रोका नही जा सकता। जब उपदेश व्यथ है। सो इसके प्राणाकी रक्षाके लिये यत्न करना है।' यह सोच कर उठके उस सरोवरमे जाकर सरस कमलनालोको उखाड जलकण-युक्त कमलिनीके पत्तोको, भीतरक केसरक काषायगधसे मनोहर और श्वेत कमलोको लाकर उसी लतागहवाल शिलातलपर उसके लिये मैन शय्या बनाई। वहा सुखपूवक बैठ उसक लिये पासके चन्दनवक्ष आदिसे कोमल पत्राका निचोडकर स्वभावत सुगधित हिम से शीतल उस रस म मैन ललाटकी पट्टी बनाई और चरणके तलवे तक अग का भूषण रचा। पासके वक्षकी फूटी छालके छेदसे गिरी और हाथसे चूण की कपूरधूलिसे पसीनेका प्रतिकार किया। छातीपर रक्खे चन्दनरसम भीग वल्कलयुक्त उसे स्वच्छ जलकी फुहार झरने-वाले केलेके पत्तेसे पखा झलने लगा। इस प्रकार बार बार नई-नई कमलपत्रकी शय्या बनाते बार-बार चदन चर्चित करते, बार-बार स्वेदकी चिकित्सा करते और केलेके पत्रसे (पखा) झलते मेरे मनमें चिता पैदा हुई—

८० 'भगवान कामदेवके लिये (कोई बात) असाध्य नही है। कहा हरिन जैसा वनवासमे निरत, स्वभावत मुग्ध यह पुरुष, और कहा नाना विलास रसोकी राशि, गन्धवराज-कन्या महाश्वेता? सवथा कामदेव के लिये ससारमे कुछ भी दुघट, दुष्कर, अप्राप्य या अकरणीय नही

नहि किञ्चिदस्य दुर्घटं दुष्करमनायत्तमकर्तव्यं वा जगति। दुरुपपादेष्वर्थेष्वप्ययमवज्ञया विचरति। न चायं प्रतिकलयितुं शक्यते। का वा गणना सचेतनेषु, अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलं यद्यस्मै रोचते। कुमुदिन्यपि दिनकरकरानुरागिणी भवति, कमलिन्यपि शशिकरद्वेषमुज्झति, निशापि वासरेण सह मिश्रतामेति, ज्योत्स्नाप्यन्धकारमनुवर्तते, छायापि प्रदीपाभिमुखमवतिष्ठते, तडिदपि जलदे स्थिरतां व्रजति, जरापि यौवनेन संचारिणी भवति। किं वा तस्य दुःसाध्यमपरम्, एवंविधो येनायमगाधगाम्भीर्यसागरस्तृणवत् लघुतामुपनीतः? क्व तत्तपः, क्वेयमवस्था? सर्वथा निष्प्रतीकार्य्यमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यम्? किंवा चेष्टितव्यम्? कं देशं गन्तव्यम्? किं शरणम्? को वोपायः? कः सहायः? कः प्रकारः? का युक्तिः? कः समाश्रयो येनास्यासवो धार्यन्ते? केन वा कौशलेन, कतमया वा युक्त्या, कतरेण वा प्रकारेण, केन वावष्टम्भेन, कया वा प्रज्ञया, कतमेन वा समाश्वासनेनायं जीवेत्?' इत्येते चान्ये च मे विषण्णहृदयस्य संकल्पाः प्रादुरासन्।

८१ (कपिंजल) पुनश्चाचिन्तयम्—'किमनया ध्यातया निष्प्रयोजनया चिन्तया। प्राणास्तावदस्य येन केनचिदुपायेन शुभेनाशुभेन वा रक्षणीयाः। तेषां च तत्समागममेकमपहाय नास्त्यपरः संरक्षणोपायः। बालभावादप्रगल्भतया च तपोविरुद्धमनुचितमुपहासमिवात्मनो मदनव्यतिकरं मन्यमानो नियतमेकोच्छ्वासावशेषजीवितोऽपि नायं तस्याः स्वयमभिगमनेन पूरयति मनोरथम्। अकालान्तरक्षमश्चायमस्य मदनविकारः। सततमतिगर्हितेन कृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून्साधवः। तदति-

है। दुलभ वस्तुओंके प्रति भी वह तिरस्कारके साथ विचरता है। उसे प्रतिकूल नही किया जा सकता। यदि चाहे तो चेतनोकी गिनती ही क्या, अचेतनोको भी वह मिला सकता है, (तभी तो) कुमुदिनी भी सूर्यके किरणोमे अनुरागवाली होती कमलिनी भी चन्द्रकिरणोके प्रति द्वेषका छोड देती, रात्रि भी दिनके साथ मिल जाती चादनी भी अधकारका अनुगमन करती छाया भी दीपकके सामने ठहरती, बिजली भी मेघमे स्थिर हो जाती, जरा भी यौवनके साथ चलनेवाली होती। उसके लिये दूसरा क्या दुस्साध्य है, जिसने कि ऐसे सागरसे अगाध गम्भीरतावाले इस (पुरुष) को तणकी तरह हलका बना दिया? कहा वह तपस्या, कहा यह अवस्था? यह बिल्कुल ही प्रतीकार-रहित आफत आ गई। अब क्या करना चाहिये? क्या प्रयास करना चाहिये? किस देशमे जाना चाहिये? कौन शरण है, कौन उपाय है, कौन सहायक है कौन ढग है, क्या युक्ति है कौन आश्रय है जिससे कि इसके प्राण बचाये जायें? किस कौशलसे कौन सी युक्तिसे, कौन से ढगसे, किस नियमसे कौन प्रज्ञासे या किस तरह धीरज बधानेसे यह जीवित रहेगा। यह और (ऐसे) दूसरे सकल्प-विषाद मेरे मनमें प्रकट हुये।

८१ फिर मैंने सोचा—'इस बेकारकी मनकी चिन्तासे क्या बनना है? बुरे या भले जिस किसी उपायसे इसके प्राणोकी रक्षा करनी है। उनके रखनेका उपाय उस (कन्या) के समागम को छोडकर और दूसरा नही है। लडकपनके कारण, बेसमझीसे तपके विरुद्ध अनुचित उपहास की भाति अपने मदन विकारको समझते निश्चय ही एक सास बचा जीवन होते भी यह स्वय उसके पास जा मनोरथ नही पूरा करेगा। इसका यह काम विकार भी देर तक सह्य नही होगा। सदा अति निंदित कार्यसे भी मित्रके प्राणोकी सदा रक्षा करनेको साधु लोग (उचित) मानते हैं। सो यह अति लज्जाजनक अकरणीय (काम)

क्षेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम्, किं चान्यत्क्रियते। का चान्या गतिः। सर्वथा प्रयामि तस्याः सकाशम्। आवेदयाम्येतामवस्थाम्' इति चिन्तयित्वा कदाचिदनुचितव्यापारप्रवृत्तं मां विज्ञाय संजातलज्जो निवारयेदित्यनिवेद्यैव तस्मै तत्प्रदेशात्सव्याजमुत्थायागतोऽहम्। तदेवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तम्, ईदृशस्य चानुरागस्य सदृशम्, अस्मदागमनस्य चानुरूपम्, आत्मनो वा समुचितं तत्र भवती प्रभवति' इत्यभिधाय किमियं वक्ष्यतीति मन्मुखासक्तदृष्टिस्तूष्णीमासीत्।

(९) प्राणयाञ्चा—

८२ अहं (महाश्वेता) तु तदाकर्ण्य सुखामृतमये ह्रद इव निमग्ना, रतिरसमयोदधिमिवावतीर्णा सर्वानन्दानामुपरि वर्तमाना सर्वमनोरथानामग्रमिवाधिरूढा, सर्वोत्सवानामतिभूमिमिवाधिशयाना, तत्कालोपजातया लज्जया किंचिदवनम्यमानवदनत्वादस्पृष्टकपोलोदरैः ग्रथितैरिवोपर्युपरिपतनानुबन्धदर्शितमालाक्रमैः, अप्राप्तपक्ष्मसंश्लेषतयोपजातप्रथिमभरैरमलैरानन्दबाष्पजलबिन्दुभिः स्रवद्भिरावेद्यमानप्रहर्षप्रसरा तत्क्षणमचिन्तयम्। दिष्ट्या तावदयमनङ्गो मामिव तमप्यनुबध्नाति, यत्सत्यमेतेन मे संतापयताप्यंशेन दर्शितानुकूलता। यदि च सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते, ततः किमिव नोपकृतमनेन, किं वा नोपपादितम्? कोवानेनापरः समानो बन्धुः, कथं वा कपिंजलस्य स्वप्नेऽपि वितथा भारती प्रशान्ताकृतेरस्माद्वदनान्निष्क्रामति। इत्थंभूते किं मयापि प्रतिपत्तव्यम्, तस्य वा पुरः किमभिधातव्यम्, इति।

८३ एवं विचारयन्त्येव प्रविश्य ससंभ्रमा प्रतीहारी मामकथयत्—'भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थशरीरेति परिजना-

न। हमारे लिये अवश्य-करणीय हो गया। दूसरा क्या किया जाये ? और दूसरा उपाय क्या है ? जैसे भी हो, उस कन्या के पास जाता हू। उसे इसकी अवस्था बतलाऊगा। 'यह सोचकर' शायद अनुचित काम में लगा जानकर लज्जित हो मुझे रोके, यह सोच उसे बिना बतलाये ही उस जगहसे बहाना बना उठकर मैं आया हू। सो ऐसी स्थितिमे जो कालोचित हो, उसे अनुरागके लिये उचित और हमारे आगमनके अनुरूप हो, या तुम्हारे लिये समुचित हो, उसे करनेकी आपही अधिकारिणी हैं।' यह कहकर यह क्या कहेगी' यह सोचता (कपिंजल) मेरे मुख पर दृष्टि लगाये चुप हो गया।

९ प्राणभिक्षा—

८२ सो सुनकर सुखके अमृत-सरोवरमें निमग्न सी, रतिरस-युक्त समुद्रमें उतरी सी, सारे आनन्दो के ऊपर स्थित सी, सारे मनोरथोके शिखरपर आरूढ सी सारे उत्सवोकी अधित्यकामें सोई सी, तत्काल उत्पन्न हुई लज्जासे किंचित् झुका मुख होनेसे कपोलोके न छूये, ऊपर गिरनेकी इच्छा दिखाते गुथी माला क्रमोसे, पलकोके न मिलने से मोटे हो गिरते निर्मल आनन्दाश्रु-जलबिन्दुओ द्वारा हर्षके आधिक्य को सूचित करती उस क्षण मैंने सोचा— अहो यह अनग मेरी तरह उसे भी पीडित कर रहा है, सो सचमच मुझे सतप्त करते इसने एक अशमे अनुकूलता दिखलाई है। यदि सचमच ही उसकी ऐसी दशा है तो मदन ने क्या नही उपकार किया, क्या नही पूरा कर दिया ? इसके समान दूसरा कौन बधु है ? स्वप्नमें भी प्रशान्त आकृतिवाले **कपिंजल**के मुखसे व्यर्थकी वाणी कैसे निकल सकती है ? ऐसा होनेपर मुझे भी क्या करना चाहिये, उसके सामने क्या कहना चाहिये ?

८३ जब मैं ऐसे विचार कर रही थी, तभी प्रतीहारीने जल्दी जल्दी प्रवेश कर मुझसे कहा—'स्वामिपुत्री, तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है, यह

दुपलभ्य महादेवी प्राप्ता' इति। तच्च श्रुत्वा कपिजलो महाजनसमदभीरु सत्वरमुत्थाय 'राजपुत्रि, महानयमुपस्थित कालातिपात। भगवाश्च भुवनत्रयचूडामणिरस्तमुपगच्छति दिवसकर। तद् गच्छामि। सवथाभिमतसुहृत्प्राणरक्षादक्षिणाथमयमुपरचितोऽजलि। एष मे परमो विभव,' इत्यभिधाय प्रतिवचनकालमप्रतीक्ष्यैव पुरोयायिनाम्बाया प्रविशता कनकवेत्रलताकरेण प्रतीहारिजनेन कचुकिलोकेनागृहीतताम्बूलकुसुमपटवासागरागेण चामरव्यग्रपाणिना कुब्जकिरातबधिरवामनवषवरकलमूकानुवीतेन परिजनेन सवत सरुद्धे द्वारदेशे कथमप्यवाप्तनिगम प्रययौ।

८४ अम्बा तु मत्समीपमागत्य सुचिर स्थित्वा स्वभवनमयासीत्। तया तु तत्रागत्य कि कृत किमभिहित किमाचेष्टितमिति शून्यहृदया सर्वं नालक्षयम्। गताया च तस्यामस्तमुपगते भगवति हारीतहरितवाजिनि सरोजिनीजीवितेश्वरे चक्रवाकसुहृदि सवितरि, लोहितायमाने पश्चिमाशामुखे, हरितायमानेषु कमलवनेषु, नीलायमाने पूर्वदिग्भागे, पातालपककलुषेण महाप्रलयजलधिपय पूरेणेव तिमिरेणावष्टभ्यमाने जीवलोके किकर्तव्यतामूढा तामेव तरलिकामपृच्छम्—

८५ 'अयि तरलिके, कथ न पश्यसि दृढमाकुल मे हृदयम। अप्रतिपत्तिविह्वलानि चेन्द्रियाणि। न स्वयमण्वपि कर्तव्यमलमस्मि ज्ञातुम्। उपदिशतु मे भवती यदत्र साप्रतमयमेव त्वत्समक्षमेवाभिधाय गत कपिजल। यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सज्य धयम्, अवमुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम् अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लघ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम अगीकृत्यायशोरागान्धवृत्ति, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता-

बात परिजनोसे जानकर महादेवी आई है'। यह बात सुनकर लोगोकी भीडमे भीरु कपिजलन तुरत उठकर कहा—'राजपुत्री, बहुत देर हो गई। भगवान त्रिभुवन चूडामणि सूय अस्त हो रहे है। सो जाता हू। प्रिय मित्रके प्राणोकी रक्षाकी भिक्षाके लिये सब तरहसे मै यह हाथ जोड रहा हूँ। यही मरे पास परम धन है,' और उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही माक आग आग चलने वाले सोनेके वेनलता हाथमे लिये प्रतीहारियो कचुकियो ताम्बूल-पुष्प सुगधितचूण-अगराग लिये चवर डुलानेमे लगे हाथवाले कुवडे किरात-बहिरे-बावन नपुसक गूगे परिजनोके प्रवेशसे चारो ओरसे रुधे दर्वाजेम किसी तरह रास्ता प कर चला गया।

८४ मेर पास आ दर तक ठहरकर मा अपने भवन चली गई। उसने वहा क्या किया क्या कहा क्या आचरण किया, यह सब शून्य-हृदया मैन नही जाना। उसके चले जाने पर हारिल जैसे हरे अश्व वाले कमलिनी-प्राणेश्वर, चकवा के मित्र, भगवान सूय अस्त हो गये। पातालके पक जैसे मलिन, महाप्रलयक समुद्रजलकी धारा समान अधकारसे ससारक ढक जाने पर किकतव्यविमूढ हुई मैने उसी **तर लिका**स पूछा—

८५ 'अयि तरलिके, मेरे अति व्याकुल हृदय को क्या तू नही दख रही है? अरुचिसे मेरी इन्द्रिया विह्वल है। यहा क्या करणीय है इसे अणु मात्रभी जानने मे मै स्वय असमथ हू। यहा जो उचित हे,उसे तू बतला, तेर सामने ही **कपिजल** एसा कह कर गया है। यदि और कन्याओकी तरह लज्जा छोड कर, धैय हटाकर, विनय त्याग कर, जन-निंदाकी पर्वाह न कर,सदाचारका अतिक्रमणकर,शीलका उल्लघन कर कुलका तिरस्कार कर, अयशको अगीकार कर, पितासे अनुज्ञा लिये बिना, माताका अनुमोदन पाये बिना, राग से अधी हो,स्वय (प्रिय के) पास जा पाणिग्रहण कराऊ, (तो) इस प्रकार गुरुजनोकी बातका

मात्रा, स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्। एव गुरुजनातिक्रमादधर्मो महान्। अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमगीकरोम्येवमपि प्रथम तावत्स्वयमागतस्य प्रथमप्रणयिनस्तत्र भवत **कपिजलस्य** प्रणयप्रसरभग। पुनरपर यदि कदाचित्तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभगात्प्राणविपत्तिरुपजायते, तदपि मुनिजनवधजनित महदेनो भवेत्' इत्येवमुच्चारयन्त्यामेव मयि चन्द्रोदयजन्मना विरलविरलेनालोकेन वसन्तवनराजिरिव कुसुमरजसा धूसरता वासवी दिगयासीत्

—पूर्वभागे

(१०) कादम्बरी-स्नेह —

८६ आसीच्चास्य (चद्रापीडस्य) मनसि—'शेषेन्द्रियाण्यपि मे वेधसा किमिति लोचनमयान्येव न कृतानि। कि वानेन कृतमवदात कम चक्षुषा यदनिवारितमेना पश्यति? अहो, चित्रमेतदुत्पादित वेधसा सवरमणीयानामेक धाम। कुत एते रूपातिशयपरमाणव? यन्नूनमेनामुत्पादयतो विधे करतलपरामशक्लेशेन ये विगलिता लोचनयुगलादश्रुजलबिन्दवस्तेभ्य एतानि जगति कुमुदकमलकुवलयसौगन्धिकवनान्युत्पन्नानि, इत्येव चिन्तयत एवास्य तस्यानयनयुगले निपपात चक्षु। तदा तस्या अपि नूनमय स **केयूरके**णावेदित इति चिन्तयन्त्या रूपातिशयविलोकनविस्मयस्मेर निश्चलनिबद्धलक्ष चक्षुस्तस्मिन्सुचिर पपात।
लोचन प्रभाधवलितस्तु कादम्बरी दशनविह्वलोऽचल इव तत्क्षणमराजत **चन्द्रापीड**। दृष्ट्वा च प्रथम रोमोद्गम, ततो भूषणरव, तदनु कादम्बरी समुतस्थौ। अथ

उल्लघन करनेसे महा अधम होगा। यदि धमके अनुरोधसे दूसरी बात स्वीकार कर मत्यु अगीकार करती हू, तो स्वय आये आप **कपिंजल**का स्नेह पहिले भग होगा। फिर यदि कही मेरे आशाभग करनेसे उस जनका प्राण जाये, तो यह भी मुनिजनकी हत्या करने का भारी पाप होगा।' मेरे ऐसा कहते समय ही चद्रमाक उदयसे उत्पन्न विरल विरल प्रकाशसे, कुसुमशर द्वारा वसन्तकी वनपक्ति की तरह पश्चिम दिशा धूसर हो गई।

—पूवभाग

१० कादबरीका स्नेह—

८६ और मेरे (**चद्रापीड**के) मनमे हुआ—'ब्रह्माने मेरी बाकी इन्द्रियोको भी लोचनमय ही क्यो न बनाया। इस नत्रने कौन सा पुण्य किया, जो कि वह बरोकटोक **कादम्बरी** को देख रहा है? अहो विधाताने (कादम्बरी के रूप मे यह) सारे रमणीय (गुणो) का एक विचित्र धाम उत्पन्न किया है! कहासे उसने इन अत्यन्त सुदर परमाणुओको पाया? मो अवश्य इसे बनाते विधाताके हाथके स्पशसे हुये दु ख के कारण दोनो नेत्रोस जो अश्रु कण गिरे उनसे ससारमे कुमुद-कमल-कुवलयके सुगधित वन उत्पन्न हुये। ऐसा सोचत ही **कादबरी** के युगल नयनोपर उसकी दृष्टि पडी। तब उसके भी अब **केयूरक** ने जिसकी वात की, अवश्य यही वह (पुरुष) है, यह सोचती अति सुदर वस्तुको देख विस्मय मे मदहासयुक्त निश्चल उसके नेत्र देर तक उसके ऊपर पडे रहे।

उस समय **चद्रापीड** लोचनकी प्रभासे उज्ज्वल **कादबरी**के दशनसे विह्वल अचल से शोभित हो रहे थे। दख कर पहले रोमाच, फिर भूषणका शब्द हुआ उसके बाद **कादबरी** उठ खडी हुई। तब कामदेव ही ने उसमे पसीना पैदा किया, जल्दी जल्दी उठनेका परिश्रम तो बहाना था। उरुके कपन ने ही गति रोक दी, नूपुरके

तस्या कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत् ससम्भ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। उरुकम्प एव गति रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे। नि श्वासप्रवृत्तिरेवांशुकचल चकार, चामरानिला निमित्तता ययौ। अन्त प्रविष्ट **चन्द्रापीड**स्पर्शलोभेनैव निपपात हृदये हस्त , स एव कर स्तनावरणव्याजो बभूव। आनन्द एवाश्रुजलमपातयत्, चलितकर्णावतसकुसुमरजो व्याजमासीत। लज्जैव वक्तु न ददौ मुखकमलप्रकारकेतकीकण्टकक्षति साधारणतामवाप। वेपथुरेव करतलमकम्पयत्, निवेदनोद्यतप्रतीहारीनिवारण कपटमभूत्।

८७ तदा च कादम्बरी विशतो मन्मथस्यापि मन्मथ इवाभूद् द्वितीय तया सह यो विवेश चन्द्रापीडहृदयम्। तथाहि असावपि तस्या रत्नाभरणद्युतिमपि तिरोधानममस्त हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमगणयत्, भूषणरवमपि सभाषणममन्यत, सर्वेन्द्रियाहरणमपि प्रसादमचिन्तयत्, देहप्रभासपर्कमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयत्।

८८ **कादम्बरी** तु कृच्छ्रादिव दत्तकतिपयपदा **महाश्वेता** स्नेहनिभर चिरदर्शनजातोत्कण्ठ सोत्कण्ठ कण्ठे जग्राह। महाश्वेतापि दृढतरदत्तकण्ठग्रहा तामवादीत्—'सखि कादम्बरि, **भारतवर्षे** राजानेकवरतुरगखुरमुखोल्लेखदत्तचतु समुद्रमुद्रो रक्षितप्रजापीडस्**तारापीडो** नाम। तस्याय निजभुजशिलास्तम्भविश्रान्तविश्वविश्वभरापीडश्**चन्द्रापीडो** नाम सूनुर्दिग्विजयप्रसगेनानुगतो भूमिमिमाम्। एष च दर्शनात्प्रभति प्रकृत्या मे निष्कारणबन्धुता गत ।

शब्दसे आकर्षित हस तो (यो ही) अपयशभागी बने। श्वासकी गतिने ही वस्त्रको चचल कर दिया, चँवरकी हवा तो निमित्त मात्र हुई। अतरमे प्रविष्ट **चद्रापीड**के छूनेके लोभ से ही हृदयपर हाथ गया, जो स्तन ढाकनेका बहाना हुआ। आनदने ही आमुओके जलको गिराया, कर्णभूषण बन हिलते फलक केसर (का पडना तो) बहाना मात्र हुआ। लाजने ही कहने नही दिया, मुखकमलके गधमे आये भवर साधन (मात्र) बने। मदनके वाणके प्रथम प्रहारकी पीडा ही न सीत्कार कराया कुसुमसमूहोके कतकी (केवडे) के काटोका चुभना कारण बना। कपनने ही करतलको कपाया निवेदनके लिये उद्यत प्रतिहारीका रोकना बहाना (भर) हुआ।

८७ तब **कादबरी** के भीतर प्रवेश करते कामदेव का भी दूसरे कामदेव सा हुआ जो कि कादवरी के साथ चद्रापीडके हृदयमे प्रविष्ट हुआ, क्योकि चद्रापीड ने कादम्बरी के रत्नभूषणोकी द्युतियो को देखनमे ... मानो हृदयमे प्रवेश करनेको भी रहनेका स्थान जाना, भूषणकी आवाजको भी वातालाप माना सारे इद्रियोके चुरानेको भी प्रसाद समझा, देह प्रभाके सम्पर्कको भी सुरत-समागमका सुख कल्पना किया।

८८ **कादबरीने** कठिनाइमे कुछ कदम चलकर बडे स्नेहके साथ देखने पर उत्कठित हो लालसापूर्वक **महाश्वेता**को अकवार दिया। महाश्वेताने भी वहुत दृढतासे कठग्रह देकर उससे कहा— 'सखि **कादबरी, भारतवर्ष**मे अनेक श्रेष्ठ अश्वोके खुराके मुखोसे खोदकर चारो समुद्रो पर मुद्रा लगानेवाले पीडा से प्रजाके रक्षक, **तारापीड** नामक राजा है। उनके यह पुत्र, अपने भुजरूपी पाषाण-स्तम्भपर विश्राम किये सारी धरतीके आपीड (आभूषण) **चद्रापीड** दिग्विजयके प्रसगसे इस भूमिमे आये। यह देखने मात्रसे स्वभावत मेरे अकारण बधु हो गये। विशेषत स्वभावसे सरल (अपने) गुणो द्वारा सभीका सग छोडकर निष्ठुर हुई मेरी चित्तवृत्तिको आकर्षित करते वर्तमान है। (ससार

परित्यक्तसकलासगनिष्ठुरामपि मे सविशेषस्वभावसरग-
लैर्गुणैराकृष्य चित्तवृत्ति वतते। दुलभो हि दाक्षिण्यपरवशो
निर्निमित्ताकृत्रिमहृदयो विदग्धजन । यतो दृष्टवा चेम-
महमिव त्वमपि निर्माणकोशल प्रजापते, नि सपत्नता च
रूपस्य स्थानाभिनिवेशित्व च लक्ष्म्या, सद्भतृतासुख
च पृथिव्या, मुरलोकातिरिक्तता च मर्त्यलोकस्य,
सफलता च मानुषीलोचनानाम, एकस्थानसमागम च
सर्वकलानाम्, ऐश्वर्य च सौभाग्यस्य, अग्राम्यता च
मनुष्याणा ज्ञास्यमीति बलादानीतोऽयम्। कथिता चास्य
नया बहुवार प्रियसखी। तदपूवदशनोऽयमिति विमुच्य
लज्जाम् अनुपजातपरिचय इत्युत्सृज्याविश्रम्भताम्,
अविज्ञातशील इत्यपहाय शका यथा मयि तथात्रापि
प्रवर्तितव्यम्। एप ते मित्र च वान्धवश्च परिजनश्च
इत्यावेदिते तया **चन्द्रापीड** प्रणाममकरोत्।

८९ कृतप्रणाम च त तदा **कादम्बर्या**स्तियग्विलोकयन्त्या
सस्नेहमतिदीघलोचनयोरपागभाग गच्छतस्तारतारकस्य
लोचनस्य श्रमसलिललवविसर इवानन्दबाष्पजलबिन्दु-
निकरो निपपात। त्वरितमभिप्रस्थितस्य हृदयस्य धूलि-
रिव मुधाधवला स्मितज्योत्स्ना। अगुलिविवर-
विनि सृतमरकतागुलीयकलेखो विभ्रमगृहीतताम्बू-
लवीटिका इव करो जृम्भारम्भमन्थर मुखमुत्ससप।
स्रवत्स्वेदजलधौतलावण्यनिमलेषु चास्या स्तम्भसक्रान्त-
प्रतिबिम्बतया सचरन्मूर्तिर्मकरकेतुरिवावयवेष्वदृश्यत
चन्द्रापीड। तथाहि। सिजन्मणिनूपुरपुटेनभुवमालिखतागु-
ष्ठेनाहूत इव चरणनखेषु निपपात। दर्शनातिरभस-

मे) उदारता के वशवर्ती, अकारण मित्र, बिना बनावटी हृदयके पडितजन दुलभ है। चूकि इनको दखकर मेरी तरह तू भी जानेगी। ब्रह्माके निमाणकी चतुराई, अप्रतिम उचित स्थानमे लक्ष्मीका पक्ष-पात, सच्चे स्वामी पानेका पथिवीको सुख, मत्युलोकका देवलोकसे मे भी बढकर होना मानुषियोके नेत्रो की सफलता सभी कलाओके एक स्थानमे समागम, और सौभाग्य ऐश्वय तथा मनुष्योका अ-ग्राम्य होना। इसीलिये जबदस्ती मै इन्हे लाई हू। प्रिय सखी, मैने इन्हे बहुत बार तेरे बारेमे कहा है। सो यह पहल पहल दशनमे आये, यह सोचकर लज्जा मत कर, परिचय नही हुआ है, यह सोच अविश्वास को त्याग कर, इनका शील अज्ञात है यह सोचकर शका करना छोडकर, जैसा मेरे विषयमे वैसा इनके विषयमे भी व्यवहार करना। यह तेरे मित्र बान्धव और परिजन है, यह बतला देनपर **चद्रापीडने** प्रणाम किया।

८९ उनके प्रणाम कर लेनके बाद स्नेहके साथ तिरछी देखती हुई कादम्बरी की बडी-बडी दोनो आखोके कोरकी ओर जाती मनोहर पुतलियो-वाले नेत्रका स्वेद जल आनदाश्रु जलबिन्दुओके रूपमे गिर पडा। प्रस्थान किये हुये हृदयकी धूलिकी तरह तुरत ही सुधा जैसी धवल मुस्कुराहटकी ज्योति फैल गई। प्रिय अगुलीके बीचसे निकली पन्नेकी अगूठीकी रेखावाला हाथ लीलासे पानके बीडेका लिये सा, जम्हाई होनेसे मथर मुखके पास उठ गया। बहते हुये स्वेदके जलसे धुले लावण्यवाले उसके निमल अगोमे और स्तम्भोमे प्रतिफलित प्रतिबिंब होनेसे मानो चद्रापीड चलायमान मूर्तिवाले कामदेवसे दिखाई दिये। क्योकि मणिमय नूपुरके पुटवाले अगूठे द्वारा भूमिको कुरेदते मानो बुलाये जाकर चरणनखोमें चन्द्रपीड आ गिरे। दशनके कारण हुई जल्दी के साथ दौडे हृदयसे आया सा स्तनोके बीचमे दिखाई दिया। फूले हुये कमलकी माला सी लम्बी

प्रधावितेन गत्वा हृदयेनानीत इव स्तनाभ्यन्तरे समदृश्यत। विकचकुवलयदामदीर्घया च दृष्ट्या निपीत इव कपोलतले समलक्ष्यत। सर्वासामेव च तदा तासां कन्यकानां तिर्यक्पश्यन्तीनां तं कुतूहलापाङ्गचुम्बिन्या दृष्ट्या निर्गन्तुकामा इव कर्णपूरमधुकरैः समं बभ्रमुस्तरलास्तारकाः।

९० **कादम्बरी** तु सविभ्रमकृतप्रणामा **महाश्वेत**या सह पर्यङ्के निषसाद। ससम्भ्रमं परिजनोपनीतायां च शयनशिरोभागनिवेशितायां धवलांशुकप्रच्छदपटायां हेमपादाङ्कितायां पीठिकायां **चन्द्रापीड** समुपाविशत्। महाश्वेतानुरोधेन च विदितकादम्बरीचित्ताभिप्रायाः सर्वतमुखन्यस्तहस्तदत्तशब्दनिवारणसंज्ञाः प्रतीहार्यो वेणुरववीणाघोषानुगीतध्वनीन्मागधीजयशब्दांश्च सर्वतो निवारयाञ्चक्रुः। त्वरितपरिजनोपनीतेन च सलिलेन **कादम्बरी** स्वयमुत्थाय महाश्वेतायाश्चरणौ प्रक्षाल्योत्तरीयांशुकेनापमृज्य पुनः पर्यङ्कमारुरोह। **चन्द्रापीड**स्यापि कादम्बर्याः सखी रूपानुरूपा जीवितनिर्विशेषा सर्वविश्रम्भभूमि**मदलेखे**ति नाम्ना बलादनिच्छतोऽपि प्रक्षालितवती चरणौ। महाश्वेता तु कर्णाभरणप्रभावर्षिण्यपाङ्गदेशे सप्रेम पाणिना स्पृशन्ती, मधुकरभरपर्यस्तं च कर्णावतंसं समुत्क्षेपयन्ती, चामरपवनविधूतिपर्यस्तालकवल्लरीमनुष्वजमाना कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ। सा तु सखीप्रेम्णा गृहनिवासेन कृतापराधेवानामयेनैव लज्जमाना कृच्छ्रादिव कुशलमाचचक्षे।

९१ तदा समुपजातशोकापि च महाश्वेतामुखनिरीक्षणतत्परापि मुहुर्मुहुरपाङ्गविक्षेपप्रचलिततरलतरतारसारोदरं चक्षुर्मण्डलितचापेन भगवता कुसुमधन्वना बलान्नीयमानं चन्द्रापीडपीडनयेव न शशाक निवारयितुम्। तेनैव क्षणेन तेनासन्नसखीकपोलसङ्क्रान्तेनेर्ष्यया रोमाञ्च-

दृष्टि द्वारा मानो पिये हुये कपाल तलपर रक्खे से थे। उस समय चद्रापीडको तिरछी देखती उन सभी कयाओकी कुतूहलयुक्त नेत्र चूमनेवाली दृष्टि द्वारा निकलनेकी इच्छावाली चचल पुतलिया कर्णाभूषणके मधुकरोके साथ मानो घूमने लगी।

९० कादम्बरी विलास सहित प्रणाम करके **महाश्वेताके** साथ पलगपर बैठ गई। पलगके सिरहानेकी ओर रखी, सफेद रेशमी आवरणवाली सोनेके पावोमे अकित, परिजनो द्वारा जल्दीसे लाई गई पीठिका पर चद्रापीड बैठे। महाश्वेताके कहनेपर कादम्बरी मनके अभिप्रायको जान गई, मुह मुहपर रक्खे हाथ द्वारा दिये रोकनेके सकेतको पा प्रतिहारियोने वेणुके शब्दो, वीणाके घोषो, गीतकी ध्वनियो, मागधियो (बन्दी स्त्रियो) के जय शब्दोको चारो ओर बन्द करा दिया। परिजनो द्वारा तुरन्त लाये जलसे कादम्बरी स्वय उठकर महाश्वेताके दोनो चरणोको धोकर चुनरीके कपडेसे पोछकर फिर पलग पर बैठ गई। रूपके अनुरूप प्राण-समान सारे विश्वासोकी भूमि **मदलेखा** नामक कादम्बरीकी सखीने अनिच्छुक **चद्रापीडके** चरणोका जबदस्ती प्रक्षालन किया। महाश्वेताने कर्ण भूषणकी प्रभा बरसानेवाले नेत्रके कोनेको प्रेम-सहित हाथसे छूती मधुकरोके भारसे गिरे कर्णभूषको ऊपर उठाती, चवरकी हवासे कापती बिखरी अलकलता को उसके स्थानपर रखती कादम्बरीसे कुशल-मगल पूछा। सखीके प्रेमके कारण घरमें रहनेसे अपराध किये सी, स्वस्थ होने से ही लजाती सी, उसने कठिनाईसे कुशल-मगल बतलाया।

९१ तब शोकाकुल भी, महाश्वेताके मुखके देखनेमे तत्पर भी, बार बार नेत्रकी गतिसे चचल तरल पुतली युक्त नेत्रको, लिवाये जाते चद्रापीड की पीडा की तरह नवाये धनुष वाले भगवान् कामदेव जबदस्ती न रोक सके। उसी क्षण **कादम्बरी** पासकी सखियोके कपोलोमें

भिद्यमानकुचतटनग्यत्प्रतिबिम्बेन विरहव्यथास्वेदाद्रवक्ष स्थलघटितशालभजिकाप्रतिमेन सपत्नीरोषाग्निमिषता दौर्भाग्यशोकमानन्दजलतिरोहितेनान्धतादु -खमभजत सा। मुहूर्तापगमे च ताम्बलदानोद्यता **महाश्वेता** तामभाषत—

९२ सखि**कादम्बरि**,सप्रतिपन्नमेव सर्वाभिरस्माभिरयमभिनवागनश्चन्द्रापीड आराधनीय । तदस्मै तावद्दीयताम्' इत्युक्ता च किचिद्विर्वातितावनमितमुखी शनैरव्यक्तमिव 'प्रियसखि, लज्जेऽहम् । अनुपजातपरिचयाप्रागल्भ्येनानेन गृहाण। त्वमेवास्मै प्रयच्छ' इत्युवाच सा ताम्। पुन पुनरभिधीयमाना च तया कथमपि ग्राम्येव चिराद्दानाभिमुख मनश्चक्रे । महाश्वेतामुखादनाकर्षितदष्टिरेव वेपमानागयष्टि, आकुललोचना, स्थूलस्थूल नि श्वसन्ती, निजशरप्रहारमूच्छिता मन्मथेन स्नपितेव स्वेदजलविसरनिमज्जनभयेन च हस्तावलम्बनमिव याचमाना, साध्वसपरवशा पतामीति लगितुमिव कृतप्रयत्ना प्रसारयामास ताम्बूलगर्भ हस्तपल्लवम् ।

९३ **चन्द्रापीडस्तु** जयकुजरकुम्भस्थलास्फालनसक्रान्तसिन्दूरमिव स्वभावपाटलम्, धनुर्गुणाकर्षणकृतकिणश्यामलम्, कचग्रहाकृष्टिरुदितारिलक्ष्मीलोचनपरामर्शलग्नाजनबिदु -मिव विसर्पन्नखकिरणतयातिरभसेन प्रधाविताभिरिव विवर्धिताभिरिव प्रहसिताभिरिवागुलीभिरुपेत, स्पर्शलोभाच्च तत्कालकृतसनिवेशा सरागा पचापीन्द्रियवृत्तीरपरागुलीरुद्वहन्त प्रसारितवान् पाणिम् । तत्र च

लग्न होनकी ईर्ष्यासे विरहका पीडाके स्वेदसे भीगी, छाती पर लगी पुतली की प्रतिमावाले, सौतके रोष से उभडते अभाग्यके शोकको आनदजल द्वारा उम रोमाच होते स्तनतटपर लुप्त होते प्रतिबिम्बसे अधपनके दु खको प्राप्त हुई। क्षण भर बाद पान देनेके लिये तैयार कादम्बरीमे महाश्वेताने कहा—

९२ 'सखि कादबरी, हम सबने पा ही लिया है, नये आये इन चन्द्रापीडकी आराधना करनी चाहिये। सो इन्हे दो।' कुछ घूमे झुके मुखवाली (कादवरीने) धीरेसे अस्पष्ट सा कहा, "प्रिय सखि, इनके साथ अधिक परिचय न होनेसे मै लजाती हू। लो तुम ही इन्हे दो।" और फिर फिर उसके कहने पर जैसे-तैसे ही ग्रामीण स्त्रीकी तरह देरसे पान दनेका मन उसने किया। महाश्वेताके मुखसे दष्टिको बिना खीचे ही कापते देह, व्याकुल लोचनवाली लबी-लबी सास लेती, कामदेव के निज वाणोक प्रहारसे मूछित, पसीनेक जलोसे नहाई सी, परिश्रम के जलसमूहमे डूबनके भयसे हाथका अवलबन मागती सी, भयसे पराधीना 'गिर रही हूँ' कह पकडनेका मानो प्रयत्न करती, कादम्बरी न पानवाले करपल्लवको फैलाया।

९३ चन्द्रापीडने विजय गजके सिरके थपथपानेसे सिन्दूर लगे से स्वभावत लाल, धनुषकी ज्याके खीचनेसे पडे घट्टेसे श्यामल, केश पकडनेके लिये खीचनेसे रोई शत्रु लक्ष्मीके लोचनको छूनेसे लग गये काजलकी बिन्दुवाले से, फैलती नख किरणोके कारण अत्यन्त वेगसे दौडती हुई सी, बढती हुई सी, हसती हुई सी, अगुलियोसे युक्त, और छूनेके लोभसे तत्काल प्रवेशवाली रागयुक्त पाचो इन्द्रियोकी वत्तियो वाली दूसरी अगुलियो को उठाते हाथको फैलाया। उधर कादबरी उस कालके लिये सुलभ हाव-भावके देखनेके लिये कुतूहल द्वारा

सा तत्कालसुलभविलासदशनकुतहलिभिरिव कुतोऽप्यागत्य सवरसैरधिष्ठिता, तेनानिबद्धलक्ष्यतया शून्यप्रसारितेन चन्द्रापीडहस्ता वेषणायेव पुर प्रवतितनखाशुनिवहेन वेपथुचलितवलयावलीवाचालेन, सभाषणमिव कुवता हस्तेन स्वेदसलिलपातपूवकम् 'गह्यतामय मन्मथेन दत्तो दासजन' इत्यात्मानमिव प्रतिग्राह्यन्ती, 'अद्यप्रभृति भवतो हस्ते वतते' इति जीवितमिव स्थापयन्ती ताम्बूलमदात्। आकषन्ती च करकिसलय भुजलतानुसारेण स्पशतृष्णागतमनगशरभिन्नमध्य हृदयमिव पतितमपि रत्नवलय नाज्ञासीत्। गहीत्वा चापर ताम्बूल महाश्वेतायै प्रायच्छत्।

—पूवभागे

३० हर्ष (६०७—६४७ इ०)

हृष के जीवन के बारे में काफी सामग्री वाणरचित "हृषचरित" और चीनी पयटक स्वेन चाड की यात्रा से मिलती ह। शासनपत्र भी उनके जीवन पर काफी प्रकाश जालते ह। यह भारत के अन्तिम सबसे बडे हिदू सम्राट थे। यद्यपि इनके पिता पितामहो की राजधानी थानेश्वर थी, लेकिन अपने भगिनी-पति, अन्तिम मौखरी राजा की हत्या के बाद कान्यकुब्ज को इनके बडे भाई राज्यवधनने अपनी राजधानी बनाया, और भाई की हत्या के बाद हृष सिहासन पर बठे। चीनी पयटक के अनुसार यह बौद्ध थे, लेकिन हर्ष स्वय अपने को "परममाहेश्वर" (शव)

रत्नावलि

सागरिका—

१ (तत प्रविशत्यासनस्थो गृहीतवसन्तोत्सववेषो राजा विदूषकश्च)

मानो कहीसे भी आकर सारे रसो से लिप्त, लक्ष्य न बंध होनके कारण खाली। फैलाये चन्द्रापीड के हाथको ढूढनेक लिये माना सामन हिल नखोकी किरणो के कपन से चलित, वाचाल वलयो से बातचीत करते हाथ से स्वद जल गिरानके साथ कामदवने (इस) दासजनको (तुम्हे) प्रदान किया, इमे ग्रहण करा यह कहकर मानो अपनको ग्रहण करा रही, 'आजसे यह जन आपक हाथमे है' यह कहती मानो जीवनको (हाथमे) स्थापित करती पानको प्रदान किया। और करपल्लवको हटाती भुजलताके साथ छूनक लोभस आये कामदेवके शरसे खडित वक्षवाली उसने हृदयकी तरह (हाथसे) गिरे रत्न-ककणको भी नही जाना। फिर दूसरा पान लेकर (उसन) महा श्वताको दिया।

—पूवभाग

३० हर्ष (६०७—६४७ ई०)

और अपने मत भाई को "परमसौगत" कहते ह। इनकी बहन राज्यश्री वैधव्य के बाद भिक्षुणी हो गई। वस्तुत इनकी आस्था बुद्ध और शिव दोनो पर समान थी। इनकी कृतिया "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागा-नद" तीनो ही नाटक ह। और, जसा कि पहले बतलाया, इन्हें वाण की कृति होने का सदेह किया जाता ह। इस समय अपभ्रश भाषा प्रचलित थी। वाण के मित्र ईशान उसके प्रतिष्ठित कवि थे, पर उनकी कोई रचना हमारे पास नहीं पहुची ह। अपभ्रश के सबसे पुराने कवि सरहपाद (७५० ई०) ह, जो हष की मृत्यु के सौ वष बाद आते ह।

रत्नावलि

सागरिका—

१ (तब वसतोत्सवके भेसमें आसनपर बैठा राजा और विदूषक प्रवेश करते ह)

राजा—(सहर्षमवलोक्य)—सखे वसन्तक।
विदूषक—आज्ञापयतु भवान्।

२ राजा—
राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः,
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
कामं काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥९॥

३ विदूषक—(सहर्षम्) भो वयस्य, एवं नेदम्। अहं पुन-
र्जानामि न भवतो न कामदेवस्य ममैवैकस्य बटुकस्य-
य मदनमहोत्सवो, येन प्रियवयस्येनैव मन्त्रयते।
(विलोक्य) तत्किं पुनरनेन। प्रेक्षस्व तावदेतस्य
मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्राहगृहीतशृंगकजलप्रहारनृत्यन्ना-
गरजनजनितकौतूहलस्य समन्ततः सुवृत्तमदलोद्दामचच-
रीशब्दमुखररथ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपिंजरीकृत-
दिशामुखस्य श्रियं मदनमहोत्सवस्य।

४ राजा—(सहर्षं समन्तादवलोक्य) अहो, परां कोटिमधि-
रोहति प्रमोदः पौराणाम्। तथाहि—
कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुंकुमक्षोदगौरै-
र्हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिरःशेखरैः कैंकिरातैः।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा,
कौशाम्बी शातकुंभद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ॥१०॥

५ अपि च—
धारायन्त्रविमुक्तसततपयःपूरप्लुतेसर्वतः,
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे।

राजा—(हर्षके साथ देखकर) सखे वसंतक,

विदूषक—आप आज्ञा दें।

२ राजा—

राज्य विजित शत्रुवाला सारा भार योग्य सचिवके ऊपर रख दिया है। अच्छी तरह पालनसे प्रजा लालित तथा उसके सारे कष्ट मिटा दिये गये हैं। प्रद्योतकी सुता, वसंतका समय और तू (पास) है। कामदेव पूरी तौरसे संतोषको प्राप्त करे। मेरे लिये तो समझो यह महान उत्सव है ॥९॥ छंद—शार्दूलविक्रीडित

३ विदूषक—(हर्षके साथ) हे मित्र ऐसा यह नहीं। मैं तो जानता हूं न आपका और न कामदेवका, बल्कि सिर्फ मुझ ब्राह्मण बटुकका यह मदन महोत्सव है, जिसे कि प्रिय मित्र ऐसा समझ रहे हैं। (देखकर) फिर इससे क्या? मदिरामें मस्त कामिनियोंके आलिंगनमें बंधे, पिचकारीके जलके प्रहार पर नाचते, नागरिक लोगोंमें उत्पन्न कौतूहलवाले चारों ओर गोल मादलके साथ जोरके चाचर गीतके शब्दोंमें सड़कके किनारोंको शोभित करनेवाले बिखरे चूर्णसे पीली दिशाओंवाले, मदन-महोत्सवकी शोभा देखो।

४ राजा—(हर्षके साथ चारों ओर देखकर) अहो, पुरवासियोंका प्रमोद चरम सीमाको पहुंच रहा है जैसे कि—

चूर्ण बिखरी केसर चूर्णसे गौर प्रातःकालसे
सुवर्ण-भूषणके प्रकाशों द्वारा भारसे झुके सिरोंके शेखरवाले अशोकोंसे,
वेष से लखे जाने वाले अपने विभवसे सारे कोशको जीते,
यह सारी कौशाम्बी सोनेके जलसे खचित जनोंसे पीली दीख रही है ॥१०॥

५ और भी—

पिचकारियोंसे छूटते निरंतर जलके प्रवाहमें भीगे चारों ओर
तुरन्त रौंदे घने पंकसे खेले गये आंगनमें क्षण भर,

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणै,
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासै पुर कुट्टिमम् ॥११॥

६ विदूषक —(विलोक्य) एतदपि सुविदग्धजनजलभरित शृंगकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहर वारविलासिनी-जनविलसितमालोकयतु प्रियवयस्य ।

७ राजा—(विलोक्य) वयस्य, सम्यग् दृष्ट भवता। कुत —
अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे,
दृष्टो मनाङ्मणिविभूषणरश्मिजालै ।
पातालमुद्यतफणाकृतिशृंगकोऽयं
मामद्य सस्मारयतीव भुजगलोक ॥१२॥

८ विदूषक —(विलोक्य) भो वयस्य, प्रेक्षस्व । एषा खलु **मदनिका** मदनवशविसष्ठुल वसन्ताभिनय नृत्यन्ती चूतलतिकया सह्रैत एवागच्छत्यवलोकयतु प्रियवयस्य — (तत प्रविशतो मदनलीला नाट्यन्त्यौ द्विपदीखण्ड गायन्त्यौ चेट्यौ ।)

९ मदनिका—गायति—
कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलीकृतबहुचूतक ।
शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनक ॥१३॥
विकसितबकुलाशोकक उत्कण्ठितप्रियमेलक ।
प्रतिपालनासमथकस्ताम्यति युवतिसाथक ॥१४॥

१० अथवा—
इह प्रथम मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि ।
पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरै कुसुमबाणै ॥१५॥

११ राजा—(निवर्ण्य) अहो, मधुरोऽयमासा निर्भर क्रीडा-रस । तथाहि—

उद्दाम्न कामिनियोंके कपोलोंसे गिरते सिंदूरके रंगसे लाल,
चरण-चिह्नों द्वारा लोग नगर के चौतरोंको सिंदूरित कर रहे हैं ॥११॥

६ विदूषक—(देखकर) प्रिय मित्र, जल भरी पिचकारी द्वारा सुचतुर जनोंके जल-प्रहारसे सींसी भरती मनोहर वारांगनाओं के इस विलासको भी देखें।

७ राजा—(देखकर) मित्र, आपने भले देखा। क्योंकि—
पैर चूर्णमें अंधकारित इस (स्थान) में,
मणि भूषणोंकी किरणों से युक्त तनिक दीखता
उठ फणके आकारकी पिचकारियोंवाला यह भुजंग* लोक।
मुझे आज मानो पातालका स्मरण दिला रहा है ॥१२॥

८ विदूषक—(देखकर) हे मित्र देखो। यह **मदनिका** मदनसे व्याकुल हो वसंतके अभिनयका नृत्य करती **चूतलतिका**के साथ इधर ही आ रही है देखो प्रिय मित्र—
(तब मदन लीलाका अभिनय करती द्विपदी गीत गाती दो चटिया प्रवेश करती है)

९ मदनिका—गाती है—
कामदेवका प्रिय दूत, बहुतेरे फूले आमोंवाला
मान शिथिल करनेवाला, दक्षिणी वायु बह रहा है ॥१३॥
जो फले बकुल और अशोकयुक्त उत्कंठित प्रियोंका मिलानेवाला है,
(आज) प्रतीक्षा करनेमें असमर्थ युवतियोंका झुण्ड उद्दाम है ॥१४॥

१० अथवा—
यह चैतका महीना पहले आदमीके हृदयोंको कोमल बनाता है।
फिर अवसर पा कामदेव (उसे) फूलके बाणोंसे बेधता है ॥१५॥

११ राजा—(अच्छी तरह देखकर) अहो इनका क्रीडारस अत्यंत मधुर है। जैसे कि—शिथिल अस्त-व्यस्त केश फूलोंकी रची मालाकी

---

* **वेश्यालपट, सर्प**

स्रस्त स्रग्दामशोभा त्यजति विरचितामाकुल केशपाश,
क्षीबाया नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दत पादलग्नौ ।
व्यस्त कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्या,
क्रीडन्त्या पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभगानपेक्षम् ॥१६॥

विदूषक —भो वयस्य, अहमप्येतेषा वधूपरिजनाना मध्ये नृत्यन् मदनमहोत्सव मानयिष्यामि ।

१२ राजा—(सस्मित) वयस्य एव क्रियताम् ।

विदूषक —यद्भवानाज्ञापयति । (उत्थाय चेट्योमध्ये नृत्यति) भवति मदनिके, भवति चूतलतिके, मामप्येतच्चचरिक शिक्षापयथ ।

उभे—भो वयस्य हताश, न खलु एषा चर्चरी । द्विपदीखण्ड खलु एतत् ।

१३ विदूषक —(सहर्ष) किमेतेन खण्डेन मोदका क्रियते ?

मदनिका—(विहस्य) नहि नहि, पठयते खल्वेतत् ।

१४ विदूषक —(सविषादम्) यदि पठ्यते तदलमेतेन । वर प्रियवयस्यस्यैव सकाश गमिष्यामि । (गन्तुमिच्छति)

१५ उभे—एहि क्रीडाम । वसन्तक, कुत्र गच्छसि ? इति (बहुविध वसन्तकमाकर्षत , विदूषकश्च बलाद् गच्छति)

विदूषक —(राजानमुपसत्य) वयस्य, नर्तितोऽस्मि । नहि नहि, क्रीडित्वा पलायितोऽस्मि ।

१६ राजा—साधु कृतम् ।

चूतलतिका—हञ्जे मदनिके, चिर खल्वावाभ्या क्रीडितम् । तदेहि निवेदयावस्तावत् भट्टिन्या स देश महाराजस्य ।

१७ मदनिका—एहि, त्वराव ।

उभे—(उपसृत्य) । जयतु जयतु भर्ता । भत , देवी आज्ञापयति (इत्यर्धोक्ते लज्जा नाट्यत्यौ) नहि नहि, विज्ञापयति ।

शोभाको छोड रहा है। खेलती मस्त कामिनीके पैरमें लगे यह नपूर दूने जोरसे बज रहे है। पीडाके कारण मानो स्तनके भारसे झुकी कटिकी अपेक्षाके विना कपनके कारण हिलता इसका यह हार वराबर छातीको पीट रहा है ।।१६।।

विदूषक—हे मित्र, मै भी इन बहुओक बीचमे नाचता मदन महोत्सव मनाऊगा ।

१२ राजा—(मुस्कुराकर) मित्र ऐसा ही करो।

विदूषक—जो आप आज्ञा देते हैं। (उठकर चेटियोके बीचमे नाचते) आप **मदनिका** आप **चूतलतिका** मुझे भी यह **चाचर** सिखाओ।

दोनो—हे मित्र छी , यह चाचर नही है, यह द्विपदीखड है।

१३ विदूषक—(हर्षके साथ) क्या इस खड (खाड) से लड्डू बनाये जात है ?

मदनिका—(विहसकर) नही नही, इसे गाया जाता है।

१४ वि ूषक—(विषादके साथ) यदि गाया जाता है, तो रहने दो इसे। अच्छा है, प्रिय मित्र ही के पास जाऊगा।

(जाना चाहता है।)

१५ दोनो—आओ खेलेगे वसतक, कहा जाते हो (बहुत तरह से वसतकको घसीटती है, और विदूषक जबदस्ती भागता है)।

विदूषक—(राजाके पास जाकर) मित्र, मने नाच लिया, नही नही, खेलकर, भाग आया ।

१६ राजा—अच्छा किया।

चूतलतिका—री मदनिके, हम दोनो देर तक खेलती रही, सो आ महाराजके पास स्वामिनीका सदेश अज करे।

१७ मदनिका—आ, जल्दी करे।

दोनो—(पास जाकर) जय हो, जय हो स्वामी की। स्वामी, देवी आज्ञा देती है—(आधा कहकर लज्जाका अभिनय करती) नही नही अज करती है।

१८ राजा—(सहर्ष विहस्य सादरम्) नन्वाज्ञापयतीत्येव रमणीय। विशेषतोऽद्य मदनमहोत्सवे। तत्कथय किमाज्ञापयति देवी।

विदूषक—आ दास्या पुत्रि, कि देवी आज्ञापयति।

१९ चेट्यौ—एव देवी विज्ञापयति, "अद्य खलु मया मकरन्दोद्यान गत्वा रक्ताशोकपादपतलसस्थापितस्य भगवत कुसुमायुधस्य पूजा निवर्तयितव्या। तत्र आर्यपुत्रेण सनिहितेन भवितव्यम्।"

२० राजा—(सानन्दम्) वयस्य, ननु वक्तव्यमुत्सवादुत्सवान्तरमापतितम्।

विदूषक—भो वयस्य, तदुत्तिष्ठ तत्रैव गच्छाव, येन तत्र गतस्य ब्राह्मणबालकस्य मम स्वस्तिवाचन किमपि भविष्यतीति।

२१ राजा—मदनिके, गम्यता देव्यै निवेदयितु अयमहमागत एव मकरन्दोद्यानमिति।

चेट्यो—यद्भर्ताऽऽज्ञापयति।

२२ राजा—वयस्य, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम्।

विदूषक—एतु एतु भर्ता।

(इति परिक्रामत)

२३ विदूषक—(अग्रतोऽवलोक्य) एतत्तन्मकरन्दोद्यान, तदेहि प्रविशाव।

(इति प्रविशत)

विदूषक—(अवलोक्य सविस्मयम्) भो महाराज, प्रेक्षस्व तावदेतत् खलु मलयमारुतान्दोलितमुकुलायमानसहकारमजरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितान मत्तमधुकरमुक्तझकारमिलितकोकिलालापसगीतसुखावह तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यान लक्ष्यते। तत्प्रविशतु भवान्।

१८ राजा—(हर्षके साथ विहँस कर आदरपूर्वक) 'आज्ञा देती है', यही (कहना) सुन्दर है। विशेष कर आज मदन महोत्सवके समय। सो कहो देवी क्या आज्ञा देती है।
विदूषक—आह दासीकी बेटी, क्या देवी आज्ञा देती है' कहती है।

१९ चेटिया—देवी इस प्रकार अर्ज करती है 'आज मुझे मकरन्द उद्यानमें जा लाल अशोक वृक्षके नीचे स्थापित भगवान कामदेवकी पूजा करनी है। वहाँ आर्यपुत्रको साथ रहना चाहिए।'

२० राजा—(आनंदके साथ) मित्र बतलाओ, (एक) उत्सवके बाद दूसरा उत्सव आ गया।
विदूषक—मित्र, सो उठो वहीं चलेंगे, जिसमें वहाँ जानेपर मुझ ब्राह्मण बालकका कुछ स्वस्तिवाचन भी हो जायेगा।

२१ राजा—मदनिका, जाओ, देवीसे निवेदन करना कि यह मैं मकरंद उद्यान आ पहुँचा।
चेटिया—जो स्वामी आज्ञा देते हैं।

२२ राजा—वयस्क, **मकरंद-उद्यानका** मार्ग बतलाओ।
विदूषक—आइये आइये स्वामी।
(दोनों परिक्रमा करते हैं)

२३ विदूषक—(आगेकी ओर देखकर) यह मकरंद-उद्यान है, आओ प्रवेश करें।
(दोनों प्रवेश करते हैं)
विदूषक—(देखकर विस्मय के साथ) भो महाराज, देखो मलय-वायुसे चालित मुकुलित, आमकी मंजरीके केसरसे बँधे रेशमी वितानवाला, मस्त मधुकरकी झंकारसे मिश्रित, कोयलके अलाप संगीतका सुख देनेवाला, यह मकरंद उद्यान आपके आगमन पर आदर दिखलाता सा दीख पड रहा है। सो आप प्रवेश करें।

२४ राजा—(समन्तादवलोक्य) अहो मकरन्दोद्यानस्य परा श्री । इह हि—

उद्यद्विद्रुमकान्तिभि किसलयैस्ताम्रा त्विष बिभ्रतो,
भृगालीविरुतै कलैरविशदव्याहारलीलाभृत ।
घूणन्तोमलयानिलाहतिचलै शाखासमूहैर्मुहुर्,
भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसगमधुना मत्ता इवामी द्रुमा ॥१७॥

२५ अपि च —

मूले गण्डूषसेकासव इव बहुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या,
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भाति ।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसित शिंजित नूपुराणा,
झकारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृगसार्थै ॥१८॥

२६ विदूषक —(श्रुत्वा) भो वयस्य, नैते मधुकरा नुपुरशब्दमनुहरन्त, नूपुरशब्द एवैष देव्या परिजनस्य ।

२७ राजा—वयस्य, सम्यगुपलक्षित भवता ।

(तत प्रविशति उज्ज्वलवेषा **वासवदत्ता काचनमाला** च पूजोपकरणहस्ता **सागरिका** च)

२८ वासवदत्ता—हजे काचनमाले, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मागम् ।

काचनमाला—एतु एतु भट्टिनी ।

२९ वासवदत्ता—(परिक्रम्य) हजे काचनमाले, अथ कियद्दूरे स रक्ताशोकपादपो यत्र मया भगवत कुसुमायुधस्य पूजा निवतयितव्या ?

काचनमाला—भट्टिनि, आसन्न एव किं न प्रेक्षते भट्टिनी । इय खलु सा निरन्तरोद्भिन्नकुसुमशोभिनी भट्टिन्या परिगृहीता माधवीलता । एषाऽपरा नवमालिकालता, यस्या अकालकुसुमसमुद्गमश्रद्धालुना भर्त्रानुदिनमायास्यत आत्मा । तदेनामतिक्रम्य दृश्यत एव स रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजा निर्वतयिष्यति ।

२४ राजा—(चारो ओर देखकर) अहो, मकरद उद्यानकी परम शोभा। यहा तो—

उगती मूगेकी कातिवाले नवपल्लवा द्वारा लाल वण धारण किये, भवरो क मधुर शब्दो द्वारा स्पष्ट कथनका लीला करत, मलय वायुक धक्केसे चलते शाखा समूहो द्वारा लडखडात, मद्यपानसे चक्कर खाते यह वृक्ष क्षण भर मस्त स दीख रहे है ।।१७।।

२५ और भी—

वक्षमूलमे कुल्लाक सिंचनकी मदिराकी तरह पुष्पवष्टिसे वासित हो रहा है। मद्यसे थोडे लाल तरुणियोक मुख-चद्रमे चिरसे आज चपा शोभा दे रही है। अशोकके ऊपर पैर मारते नूपुरोकी आवाज सुनकर, झकारके अनुगायनस भ्रमर मानो अनुकरण कर रहे है ।।१८।।

२६ विदूषक—(सुनकर) हे मित्र, ये भवरे नूपुरके शब्दकी नकल नही कर रहे है यह तो देवाक परिजनोके नूपुरोका शब्द है।

२७ राजा—मित्र, आपने ठीक पहिचाना।

(तब उज्ज्वल वेषमे **वासवदत्ता, काचनमाला** और पूजाकी सामग्री हाथमे लिये **सागरिका** प्रवेश करती है)

२८ वासवदत्ता—री कचनमाला, मकरद-उद्यानका माग बतला।
काचनमाला—आर्ये-आर्ये स्वामिनी।

२९ वासवदत्ता—(परिक्रमा करके) री कचनमाला, तो कितनी दूर है वह लाल अशोकवृक्ष,जहा मुझे भगवान् कामदेवकी पूजा करनी है ?
काचनमाला—स्वामिनि, नजदीक ही है, क्या स्वामिनी (उसे) नही देख रही हैं। यह है वह फूले फूलोसे बराबर शोभित स्वामिनी की अपनाई चमेली लता। यह दूसरी जूही लता है, जिसके अकाल में फूल फूली देखने के इच्छुक स्वामी रोज अपनेको कष्ट देते है। सो इसे पार करते ही दिखाई देगा वह लाल अशोक वृक्ष, जहा देवी पूजा करेंगी।

३० वासवदत्ता—तदेहि तत्रैव लघु गच्छाम ।
काचनमाला—एतु एतु भट्टिनी ।
(सर्वा परिक्रामन्ति)

३१ वासवदत्ता—अय स रक्ताशोकपादपो यत्राह पूजा निवर्तयिष्ये। तत्पूजानिमित्तान्युपकरणानि मे उपनय ।
सागरिका—(उपसृत्य) भट्टिनि, एतत्सर्व सज्जम्।

३२ वासवदत्ता—(निरूप्यात्मगत) अहो प्रमाद परिजनस्य। यस्यैव दशनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते, तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत्। भवतु, एव तावद् भणिष्यामि। (प्रकाश) "हञ्जे सागरिके, कस्मात्त्वमद्य मदनमहोत्सवपराधीने परिजने सारिकामुज्झित्वेहागता। तत्तत्रैव लघु गच्छ। एतदपि सव पूजोपकरण **काचनमाला**या हस्ते समपय।"

३३ सागरिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (इति कतिचित् पदानि गत्वा आत्मगतम्) सारिका मया पुन **सुसगताया** हस्ते समर्पिता। एतदप्यस्ति मे प्रेक्षितु कौतूहल, कि यथा तातस्यान्त पुरे भगवाननगोऽच्यते, अत्रापि तथैव किमन्यथेति। तदलक्षिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये। (परिक्रम्यावलोक्य च) तद्यावदिह पुजासमयो भवति तावदहमपि भगवन्तमनगमेव पूजितु कुसुमान्यवचेष्यामि। (इति कुसुमावचय नाट्यति)

३४ वासवदत्ता—**काचनमाले**, प्रतिष्ठापयाशोकमूले भगवन्त प्रद्युम्नम्।
काचनमाला—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (इति तथा करोति)

३५ विदूषक—(परिक्रम्यावलोक्य च) भो वयस्य, यथा विश्रान्तो नूपुरशब्दस्तथा तर्कयाम्यागता देव्यशोकमूलमिति।

३० वासवदत्ता—तो आ, वहीं जल्दी चलें।
काचनमाला—आवें-आवे स्वामिनी।
(सब परिक्रमा करती हैं)

३१ वासवदत्ता—यह वह लाल अशोक वृक्ष है जहा मै पूजा करूगी। सो पूजाकी सामग्री ला मेरे पास।
सागरिका—(पास आकर) स्वामिनी, यह सब तैयार है।

३२ वासवदत्ता—(देखकर अपने आपसे) अहो, नौकरानियोंकी भूल, जिसके ही सामने आनेसे (इसे) प्रयत्नपूर्वक रोका जाता है, उसीके सामने आ पड़ी है। अच्छा, तो ऐसे कहती हू (प्रकट) "री सागरिका, क्यो तू आज परिजनोंके मदन-महोत्सवमें लगे होते समय मैनाको छोडकर यहा आ गई ? सो तू वही जल्दी जा। इस सारी पूजा-सामग्रीको भी **काचनमाला**के हाथमे दे दे।"

३३ सागरिका—जो स्वामिनी आज्ञा देती हू। (कुछ कदम जाकर अपने आपसे) मैनाको तो मैंने **सुसगता**के हाथमे दे दिया है। इसे भी देखनेका मुझे कुतूहल है क्या जैसे बापूके रनिवासमे भगवान् कामदेवकी पूजा होती है, वैसी ही यहा भी है, या दूसरी। सो छिपकर देखूगी। (परिक्रमा करके देखकर) तो जब तक यहा पूजाका समय होता है, तब तक मै भी भगवान् अनगकी पूजा करनेके लिये फूल चुनती हू। (फूल चुननेका अभिनय करती है)

३४ वासवदत्ता—काचनमाला, अशोककी जडमें भगवान् कामदेवको स्थापित कर।
काचनमाला—जो स्वामिनी आज्ञा देती हैं (वैसा ही करती है)।

३५ विदूषक—(परिक्रमा करके, देखकर) हे मित्र, चूकि नूपुरका शब्द बन्द हो गया है, इससे सोचता हू, देवी अशोककी जडमें आ गई।

३६ राजा—वयस्य, सम्यगवधारितम्। पश्येय देवी । या किलैषा-
कुसुमसुकुमारमूर्तिदधती नियमेन तनुतर मध्यम्।
आभाति मकरकेतो पाश्वस्था चापयष्टिरिव ॥१९॥
तदेहि उपसपाव । (उपसृत्य)। प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(विलोक्य) कथमार्यपुत्र ? जयतु जयतु आर्यपुत्र । अलकरोत्विम देशमासनपरिग्रहेण। एतदासन, अत्रोपविशत्वार्यपुत्र ।

(राजा नाट्येनोपविशति)

काचनमाला—भट्टिनि, स्वहस्तदत्तै कुसुमकुकुमचन्दन-वासोभि शोभित रक्ताशोकपादप गत्वार्च्यता भगवान्प्रद्युम्न ।

३८ वासवदत्ता—उपनय मे पूजोपकरणानि।

(काचनमाला उपनयति, वासवदत्ता तथा करोति)

३९ राजा—प्रिये,
प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्ति,
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती,
बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥२०॥

४० अपि च—
स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोक ॥२१॥

४१ अपि च—
अनगोऽयमनगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न सप्राप्त पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥२२॥

४२ काचनमाला—भट्टिनि, अर्चितो भगवान् प्रद्युम्न ।
तत्कुरु भर्तुरुचित पूजासत्कारम्।
वासवदत्ता—तेन ह्युपनय मे कुसुमानि विलेपन च।

३६ राजा—मित्र, ठीक समझा। देखो, यह देवी है जो कि यह—
कुसुम से सुकुमार आकृतिवाली नियमसे अति-क्षीण कटि धारण करती, जान पडती है, कामदेवके बगलके धनुषकी यष्टि है ।।१९।।
सो आओ चलें। (पास जाकर) प्रिये वासवदत्त

३७ वासवदत्ता—(देखकर) क्या आयपुत्र है? जय हो जय हो आय-पुत्रकी। आसन ग्रहणकर इस स्थानको शोभित करें। इस आसन पर यह आसन है यहा आयपुत्र बैठे।
(राजा अभिनयपूर्वक बैठता है)
काचनमाला—स्वामिनी, पुष्प-केसर चदन-सुगंधिम शोभित लाल अशोक वृक्षके पास जाकर भगवान कामदेवकी पूजा अपने हाथसे करे।

३८ वासवदत्ता—ला, मेरी पूजा-सामग्री।
(काचनमाला लाती है वासवदत्ता पूजती है)

३९ राजा—प्रिये—
तुरत स्नानसे विशेष तौरसे स्पष्ट कान्तिवाली, केसरिया रगके रुचिर फहराते वस्त्रसे कमनीया, कामदेवकी पूजा करती तू नवीन मूगे के अमोलसे जनमी लता सी शोभा दे रही है ।।२०।।

४० और भी—
हे प्यारी, तेरे ही द्वारा कामदेवकी पूजा मे लगे हाथसे छुआ गया, अशोक अति मृदु उगे दूसरे नवपल्लवोवाला सा दीख रहा है ।।२१।।

४१ और भी—
यह अनग आज निश्चय ही अपने अनगपन (देहके न होनेकी) निंदा करेगा, जो कि यह तेरे हाथके स्पर्शको नही पा सका ।।२२।।

४२ काचनमाला—स्वामिनी, भगवान् कामदेवकी पूजा (तो) कर ली, अब स्वामीका उचित पूजा-सत्कार करें।
वासवदत्ता—तो ला, मेरे फूल और अग-लेपन।

४४

४३ काचनमाला—भट्टिनि, एतत् सर्व सज्जम्।
(वासवदत्ता नाट्येन राजान पूजयति)

४४ सागरिका—(गृहीतकुसुमा) हा धिक् हा धिक्। कथ कुसुमलोभोत्क्षिप्तहृदययातिचिरमेव मया कृतम्। तदनेन सिन्धुवारविटपेनापवारितशरीरा भूत्वा प्रेक्षे। (विलोक्य) कथ प्रत्यक्ष एवापूव कुसुमायुध ? अस्माक तातस्यान्त पुरे चित्रगतोऽच्यते। इह प्रत्यक्षीकृत। तदहमप्येभि कुसुमैरिह स्थितैव भगवन्त कुसुमायुध पूजयिष्ये। (इति कुसुमानि प्रक्षिपति) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध, शुभदशनो मे भविष्यसि। दृष्ट यद् द्रष्टव्यम्। अमोघदर्शनो मे भविष्यसि। (इति प्रणमति) आश्चर्यमाश्चयम्। दृष्टोऽपि पुन प्रेक्षितव्य। तद्यावन्न कोऽपि मा प्रेक्षते तावदेव गमिष्यामि। (इति कतिचित् पदानि गच्छति)।

४५ काचनमाला—आर्य वसन्तक, एहि साप्रत त्वमपि स्वस्तिवाचन प्रतीच्छ।

(विदूषक उपसपति)

४६ वासवदत्ता—(विलेपनकुसुमाभरणदानपूवकम्) आय, स्वस्तिवाचन प्रतीच्छ। (इत्यर्पयति)

४७ विदूषक—(सहर्ष गृहीत्वा) स्वस्ति भवत्यै।

(नैपथ्ये वैतालिक पठति)

अस्तापास्तसमस्तभासि नभस पार प्रयाते रवा-
वास्थानी समये सम नृपजन सायतने सपतन्।
सप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुष पादास्तवासेवितु
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते॥२३॥

४३ काचनमाला—स्वामिनी यह सब तैयार है।
(वासवदत्ता अभिनय पूर्वक राजाकी पूजा करती है)

४४ सागरिका—(फूल लिये) हा धिक फूलके लाभमें तन्मय हृदय मने बडी देर कर दी। मा इस सिंदुवार वृक्षकी आडमें शरीर को किये देखती हू। (देखकर) क्या ? यह (तो) प्रत्यक्ष ही अपूर्व कामदेव है। हमारे बापूके रनिवासमें चित्रमें लिखे कामदेव पूजे जाते है, और यहा तो प्रत्यक्ष। सो मैं भी इन फूलोंसे यही खडी भगवान कुसुमायुधकी पूजा करती हू। (फूलोको छोडती है) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध तुम्हारा दर्शन मेरे लिये शुभ हो। दर्शनीय वस्तु मैंने देख ली। मेरे लिये तुम अमोघ-दर्शन होओ। (प्रणाम करती है) अचरज, अचरज, देख लेनेपर भी फिर देखना चाहिये। सो जब तक मुझे कोई नही देखे, तब तक ही यहा से मुझे चल देना है। (कुछ कदम जाती है)

४५ काचनमाला—आर्य **वसंतक**, आओ अब तुम भी स्वस्तिवाचन ग्रहण करो।
(विदूषक पास जाता है)

४६ वासवदत्ता—(विलेपन पुष्प आभूषण देकर) आर्य स्वस्तिवाचन* स्वीकार करो। (दक्षिणा अर्पित करती है)

४७ विदूषक—(हर्षके साथ ग्रहण करके) स्वस्ति हो आपकी।
(नेपथ्यमे वैतालिक पढ रहा है)

अस्त-अपास्त हुये प्रकाशो सारे आकाशको रविके पार करते समय, अब कमलकी शोभा चुरानेवाले हे नेत्रोके **उदयन**, तुम्हारे चरणोकी सेवा करनेके लिये सायकालमें यह राजा लोग दरबारमें इकट्ठा हो प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२३॥

---

* **दक्षिणा**

४८ सागरिका—(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य राजानं दृष्ट्वा सस्पृहम्) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता ? तत्परप्रेषणकूशमपि मे शरीरमेतस्य दर्शनेदानीं बहुमतं संवृत्तम् ।

४९ राजा—कथमुत्सवापहृतचेतोभिरस्माभिः सन्ध्याऽतिक्रमोऽपि नोपलक्षितः । देवि, पश्य—

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥२४॥

देवि, तदुत्तिष्ठाव । आवासाभ्यन्तरमेव प्रविशाव ।

(सर्वे उत्थाय परिक्रामति)

५० सागरिका—कथं प्रस्थिता देवी । भवतु, त्वरितं गमिष्यामि । (राजानं सस्पृहं दष्ट्वा निःश्वस्य) हा धिक् । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः ।

(इति निष्क्रान्ता)

५१ राजा—(परिक्रामन्)—

देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा,
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छाम्यताम् ।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृंगांगना,
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ॥२५॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

३१ मयूर (६२० ई०)

इन्हें बाण का बहनोई कहा जाता है, और संभवतः बाण की जन्मभूमि (आरा जिला) के आसपास ही कहीं इनका भी निवासस्थान था। गोरखपुर के कुछ ब्राह्मण लोग अपने को मयूर का वंशज बतलाते हैं। बाण शायद उसी वंश के थे, जिसे आजकल सवरिया (या पूर्वी कनौजिया) कहा जाता

४८ सागरिका—(सुनकर हर्षके साथ घूमकर राजाको देख लालसाके साथ) क्या यही वह राजा उदयन है, जिनके लिये मुझे बापूने दिया था ? तो दूसरे की सेवा मे दुबला भी मेरा शरीर इनके दर्शन से अब सम्मानित हो गया।

४९ राजा—क्यो, उत्सवमे तल्लीन हम लोगोने मध्याह्न बीतने को भी नही जाना। देवि, देख—
उदयाचलके तटमे छिपी यह पूर्व दिशा अपने अतिपाण्डु मुख द्वारा निशानाथ को (वैसे ही) सूचित कर रही है, जैसे रमणी अपने हृदयस्थित प्रियको ॥२४॥
देवि, तो हम दोनो उठे। आवासके भीतर प्रवेश करे।
(सब उठकर परिक्रमा करते है)

५० सागरिका—क्यो, देवी चली गई ? अच्छा मै भी जल्दी चलू। (राजाको लालसाके साथ देखकर उसास ले) हा धिक, मै मदभागिनी इन्हे देर तक देख भी नही पाई।
(बाहर चली गई)

५१ राजा—(परिक्रमा करते)—
देवि चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कार करनेवाले तेरे मुखकमलसे हराये हुए कमल देख सहसा मलिन हो रहे है। तेरे परिवारकी वारांगनाओके गीतोको सुनकर लज्जित सी हो भवरिया धीरे से कलियोमे विलीन हो रही है ॥२५॥
(सब बाहर निकल गये)

३१ मयूर (६२० ई०)

है। मयूर ने अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग नहीं किया। उनका स्रग्धरा छंद में "सूयशतक" नामक एक स्तोत्र मिलता है। यद्यपि इसमें काव्य के चमत्कार को हम पूरा नहीं देख पाते, पर प्रतिभा उनमें थी, इसमें सन्देह नहीं है।

सूर्यशतकम्

१ दत्तानन्दा प्रजाना समुचितसमयाकृष्टसृष्टै पयोभि
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाज ।।
दीप्तांशो दीर्घदु खप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो व पावनाना परमपरिमिता प्रीतिमुत्पादयन्तु ।।९।।

२ नि शेषाशावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्त नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ।।
अत्यन्त यानभिज्ञा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तु
ब्रध्नस्येद्धारचिर्वो रुचिरिवरुचितस्याप्तयेवस्तुनोऽस्तु।।२४।।

३ आयान्ती कि सुमेरो सरणिररुणिता पाद्मरागै परागैर्
आहोस्वित्स्वस्य माहारजनविरचिता वैजयन्ती रथस्य ।।
माजिष्ठी प्रष्ठवाहावलिविधुतशिरश्चामराली नु लोकै-
राशक्यालोकितैव सवितुरघनुदेसस्तात्प्रभातप्रभा व ।।२७।।

४ वेलावर्धिष्णु सिन्धो पय इव खमिवार्धोद्गताग्रयग्रहोडु
स्तोकोद्भिन्नस्वचिह्नप्रसवमिव मधोरास्यमस्यन्मनासि ।।
प्रात पूष्णो शुभानि प्रशमयतु शिर शेखरीभूतमद्रे
पौरस्त्यस्योद्गभस्तिस्तिमिततमतम खण्डन मण्डल व
।।७४।।

५ यत्प्राच्या प्राक्चकास्ति प्रभवति च यत प्राच्यसावुज्जिहानाद्
इद्ध मध्ये यदह्नो भवति ततरुचा येन चोत्पाद्यतेऽह्न ।।
यत्पर्यायेण लोकानवति च जगता जीवित यच्च तद्वो
विश्वानुग्राहि विश्व सृजदपि च रवेमण्डल मुक्तयेऽस्तु ।।७७।।

सूर्यशतक

१ उचित समयमे आकृष्ट और सष्ट पयो द्वारा लागोक आनददायक पूर्वाह्न मे दिशा दिशामें बिखरी दिनके बीतनपर एकत्र हुई, चिर दु खसे उत्पन्न ससार भयरूप। सागरके उतारनेकी नौकाये सी सूर्यकी गौवें (किरणे) तुम्हारे लिए परम पवित्र अति उत्कृष्ट प्रीति उत्पन्न करे ॥९॥

२ सकल दिशाओके पूरा करनेमे निपुण, महागुणोस प्रशसनीय रूपवाला, उदयके आरभमें ही पर्याप्त नही दिन बीतत समयकी बाधामे भी जो उन्नत ही रहता है, जो क्षण भर भी अधकारके साथ एक जगह बसनमे अत्यत अनभिज्ञ हे। वह चमकना सूयका तज अभिलाषा की तरह तुम्हे प्रिय वस्तु प्राप्त कराये ॥२४॥

३ क्या सुमेरुका माग लालो जसे परागोमें लाल होता आ रहा है, या अपन रथके कुमुम से रगी ध्वजा, घोडोकी पक्तिकी कपित सिरोकी लाल चवरपक्तिया हैं। (अथवा) ऐसे लागाने आशका करते जिसे देखा, सो सूयकी प्रभातकी प्रभा तुम्हारे पाप हरे ॥२७॥

४ सिधुके जलकी तरह किनारे तक बढनेवाला आकाशकी तरह आधे उठ प्रधान नक्षत्रवाला, वसतके आरभकी तरह थोड खिले अपने चिह्नरूपी फूलोयुक्त चित्तोको हरता, पवतक सिरसे प्रात सूर्यको पूवमे उठती किरणो द्वारा अधकारको खडन करनेवाला, सूय-मडल तुम्हार पापका शमन करे ॥७४॥

५ जो पहले पूवमे प्रकाशता है और जिसके उगनेसे वह (दिशा) पूव बनती है, जो दिनके मध्यमे दीप्त होता है जिस विस्तत किरणो-वाले से दिन उत्पन्न होता हे, जो पर्यायिसे लोगाकी रक्षा करता है, और जो ससारका जीवन है। विश्वपर अनुग्रह करनेवाला विश्व स्रष्टा वह रविमडल तुम्हारी मुक्तिके लिये हो ॥७७॥

६ तीर्थानि व्यथकानि ह्रदनदसरसीनिझराम्भोजिनीना
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभश्वभ्रपातानुबन्धि ।।
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जता नैव यत्र
त्रातु यातेऽन्यलोकान् स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हित व ।९५।

७ श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिता श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्य सकृदपि पुरुष सवपापैर्विमुक्त ।।
आरोग्य सत्कवित्व मतिमतुलबल कान्तिमायु प्रकर्ष
विद्यामैश्वयमर्थ सुतमपि लभते सोऽत्र सूयप्रसादात् ।१०१।

३२ अमरुक (६७० ई०)

कवि के बारे में भी हमें अधिक मालूम नही है। मुक्तक के कवियो में अमरुक का स्थान बहुत ऊचा ह। यह शब्द के नहीं रस के कवि ह। यद्यपि उन्होंने सौ पद्यो को ही रचा—जिनकी सख्या दूसरो की उदारता से अब

शतकम्

१ लिखन्नास्ते भूमि बहिरवनत प्राणदयितो,
निराहारा सख्य सततरदितोच्छूननयना ।
परित्यक्त सर्व हसितपठित पजरशुकैस्,
तवावस्था चेय, विसृज कठिने ! मानमधुना ।।७।।

२ दपत्योर्निशि जल्पतोगृहशुकेनाकर्णित यद्वचस्,
तत्प्रातर्गुरुसनिधौ निगदत श्रुत्वैव तार वधू ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकल विन्यस्य चच्चो पुरो
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ।।१६।।

६ दह, नदी, सरोवर, निझर, कमलिनियोके तीथ व्यथ है। पापरूपी गड्ढके गिरनेक (जिस) भयको समुद्र नही दूर करता, स्वग नदी (गगा) के पाप नाशक जल भी स्नान करनवालोको दूसरे लोकोमे जानपर जहा रक्षा नही कर सकते, वह दिनका एकमात्र हेतु सूय तुम्हारा हित करे ।।९५।।

७ श्रीमयूरने ससारक कल्याणक लिय सौ श्लोक रच। भक्ति-सहित इन्हे एक बार भ। जो पुरुष पढ वह सब पापोसे मुक्त होवे। आराग्य, सत्कवित्व, अतुल बल, सौदय, दीघ-आयु विद्या, एश्वय और धनको भी वह यहा सूयकी कृपाम पाव ।।१०१।।

३२ अमरुक (६७० ई०)

ड्योडी हो गई ह—तो भी इतने ही से अमरुक अमर ह। बहुत सभव है, सस्कृत काव्यक्षेत्र में अपना जौहर दिखलाने वाले वह प्रथम कश्मीरी कवियोमेंसे हो।

शतक

१ प्राणप्रिय बाहर सिर झुकाये भूमि पर लकीर खीच रहा है। निरतर रोनेसे सखिया फूली आखोवाली तथा निराहार है। पिजडेके तोतोने सारे हसने पढनेको छोड दिया। और तेरी यह अवस्था हे, हे कठोर हृदये, अब (भी तो) मानको छोड ।।७।।

२ रातको बात करते पति पत्नियोके वचनको जो तोतेन सुना, उसे सबेरे गुरुजनोके पास जोरसे कहते सुनकर, लज्जा-पीडिता बहू, (अपने) कानसे लटकते लालके टुकडको चोचके सामने रख अनारके फूलके बहाने (तोतेका) मुह ब द करती है।।१६।।

३ सा बाला वयमप्रगल्भमनस सा स्त्री वय कातरा,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुग धत्ते सखेदा वयम्।
साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तु न शक्ता वय,
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाता स्म इत्यद्भुतम् ॥३४॥

४ "सुतनु, जहिहि मौन पश्य पादानत मा,
न खलु तव कदाचित्कोप एवविधोऽभूत्।"
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या,
नयनजलमनल्प मुक्तमुक्त न किंचित् ॥३९॥

५ बाले! नाथ! विमुच मानिनि रुष, रोषान्मया कि कृत?
खेदोऽस्मासु नमेऽपराध्यति भवान्? सर्वेऽपराधा मयि।
तत्कि रोदिषि गद्गदेन वचसा? कस्याग्रतो रुद्यते?
नन्वेतन्मम, का नवास्मि दयिता? नास्मीत्यतो रुद्यते।५७।

६ तदाभूदस्माक प्रथममविभक्ता तनुरिय,
ततो न त्व प्रेयान्, अहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानी नाथस्त्व, वयमपि कलत्र किमपर,
मयाप्त प्राणाना कुलिशकठिनाना फलमिदम् ॥६९॥

७ प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पष्ठत सा पुर सा,
पर्यंके सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
हहो चेत प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवाद ॥१०२॥

८ गन्तव्य यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केय त्वरा,
द्वित्राण्येव पदानि तिष्ठतु भवान्पश्यामि यावन्मुखम्।
ससारे घटिकाप्रणालविगलद्वारा समे जीविते,
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद्वा न वा सगम ।१६३।

३ वह बाला है, (पर) अप्रौढ मन हम हैं । वह स्त्री है, (पर) कातर हम हैं । वह स्थूल उन्नत स्तन-युगल-धारिणी है, खेदयुक्त हम हैं । वह भारी नितम्बसे आक्रान्त है पर जानेमे असमथ हम हैं । अन्य जनमे स्थित दोषोसे बुरे हम हो गये, यह विचित्र (बात) है ।।३४।।

४ हे सुशरीरे मौन छाड पैरो में पडे मेरी ओर देख । इस तरहका काप तुझे कभी नही हुआ ।' ऐसा स्वामीके कहते समय उस ति छी अधमूदी आखोवालीने बहुतसा अश्रुजल छोड दिया (और कुछ) नही कहा ।।३६।।

५ बाले ? नाथ । मानिनि राप छाड । रोप करक मैंने क्या किया ? हमे खद है आपने मेरा काई अपराध नही किया, मारे अपराध मुझमे है । ता क्यो गदगद वाणीसे रो रही हो ? किसक सामने राया जाता है ? यह मेरे ही मामने ता । क्या मैं नई प्रिया हू ? प्रिया नही हू, इसीलिये तो रा रही हू ।।५७।।

६ नव, पहल हमारा यह शरार विभक्त नही था । इसके बाद न तुम प्रियतम रहे और म (हुई) अभागी प्रियतमा । अब तुम नाथ हो और हम भी पत्नी । यह क्या, जैसे कठार प्राणोका मन दूसरा फल, पाया ।।६९।।

७ उसके वियोगस आतुर मेरे लिये वह महलमे है । दिशा-दिशामे वह पीछे वह सामन वह पलगपर वह और मागमे वह है । अहो अचरज, मेरी प्रकृति दूसरी काई नही, वही, वही, वही, वही है मारे जगतमें यह कौन सा अद्वैतवाद है ।।१०२।।

८ यदि जाना निश्चित ही है तो अहो जाओगे यह कौन सी जल्दी है ? दा-तीन कदम ही आप ठहरे, जब तक मैं मुख देखू । रहटकी घैलियासे गिरते जलके समान ससारमे जीवनके होनेसे, कौन जानता है, तुम्हारे साथ मेरा मिलन (फिर) होगा या नही ।।१६३।।

३३ भर्तृहरि (६७० ई०)

भर्तृहरिके बारेमें अधिक पता नहीं लगता। इनका काल सातवीं शताब्दीका अन्त मालूम होता ह। वयाकरण भर्तृहरि और कवि भर्तृहरि एक ही थे, यह कहना मुश्किल ह। वयाकरण भर्तृहरि तो सभवत वही थे, जिनका उल्लेख चीनी पयटक ई चिड ने किया ह। भर्तृहरि के शतक बहुत लोकप्रिय ह। इसका एक उत्तम सस्करण डा० कौशाम्बी ने किया ह।

शतकत्रयम्

१ अज्ञ सुखमाराध्य मुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ ।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि नर न रजयति ॥८॥

२ मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभि प्रीणयन्त ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य,
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्त कियन्त ॥१९॥

३ क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यकशयन,
क्वचिच्छाकाहार क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि ।
क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दु ख न च सुखम् ॥२१॥

४ जातिर्यातु रसातल गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता
शील शैलतटात् पतत्वभिजन सदह्यता वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न केवल,
येनैकेन विना गुणास् तृणलवप्राया समस्ता इमे ॥२५॥

५ कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिमनस्विन ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीयते वन एव वा ॥३४॥

२३ भर्तृहरि (६७० ई०)

इससे पता लगता ह, कि भतृहरि की कृति में लोगो ने बडी उदारतापूवक क्षेपक किये ह। यदि व्याकरण के प्रौढ ग्रथ "वाक्पदीय" के रचयिता भी यही नहीं ह, तो इनकी यही एक कृति ह, जो नीति, शृगार और वराग्य के तीन भागो में विभक्त है।

शतकत्रय

१ अज्ञका आसानीसे सेवन किया जा सकता है, विशषज्ञ का और अधिक आसानीसे, (पर) थोड से ज्ञानसे पडित आदमीका रजन ब्रह्मा भी नही कर सकता ।।८।।

२ मन वचन शरीरसे पुण्यरूप। अमृतसे भर, उपकारों द्वारा त्रिभुवनको मनुष्ट करते, दूसरक गुणाक कणाको भ। सदा पहाड बनात, अपने हृदयके भीनर उल्लसित सतजन कितन है ।।१९।।

३ कही भूमिपर बिस्तरा और कही पलगपर भी मोना। कही सागका आहार और कही बासमतीक भातका स्वाद भी। कही कथरीधारी और कही दिव्य वस्त्रधारी भ।। काय (पूरा करने) की चाहवाला मनस्वी पुरुष न दुखकी पर्वाह करता न सुखकी ।।२१।।

४ जाति रसातलको चली जाये, गुण उसके भी नीच चले जायें। शील पवतके तटसे गिर पडे, कुलीनताको आग लग जाये। वैरी शूरता मर तुरत वज्र गिरे, हमारा तो बस वही मतलब पूरा हो, जिस एकके बिना यह सारे गुण तिनके के बराबर है ।।२५।।

५ फूल के गुच्छेकी तरह मनस्वियोकी दो ही गति होती है—या तो सारे लोकके सिरपर रहें या वनमे ही बिखर जायें ।।३४।।

६ खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणै सतापितो मस्तके,
वाछन् देशमनातप विधिवशाद् बिल्वस्य मूल गत ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्द शिर,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस् तत्रैव यान्त्यापद ।।३९।।

७ जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा ।
नास्ति येषा यश काये जरामरणजन्मभी ।।५५।।

—नीतिश्लोका

८ एताश् चलद्वलयसहतिमेखलोत्थ-
झकारनूपुररवाहृतराजहस्य ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवश तरुण्यो,
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशाक्षिपातै ।।८०।।

९ उपरि घन घनपटल तिर्यग् गिरयोऽपि नर्तितमयूरा ।
क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टि पथिक क्व पातयतु ।।८७।।

१० वक्त्र चन्द्रविडम्बि पकजपरीहासक्षमे लोचने,
वर्ण स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णु कचाना चय ।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
वाचा हारि च मार्दव युवतिषु स्वाभाविक मण्डनम् ।।९०।।

११ स्मित किंचिद्वक्त्र सरलतरलो दृष्टिविभव,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरस ।
गतीनामारम्भ किशलयितलीलापरिकर,
स्पृशन्त्यास् तारुण्य किमिव न हि रम्य मृगदृश ।।९३।।

१२ मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दन वपुषि कुकुमाविलम् ।
वक्षसि प्रियतमा मदालसा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगत
।।११६।।

६ दिनक राजा (सूय) का किरणोमे शिरपर मतप्त कोई गजा, धूप रहित स्थानका इच्छासे भाग्यवश बलके नीच चला गया। वहा भी (एक) बड से फलन आवाज के साथ गिरकर उसका सिर तोड दिया। प्राय भाग्यहीन जहा जाता है, (उसके माथ) वहा विपत्तिया (भी) जाती है ।।३६।।

७ व सुदर कृतियावाल रसामे सिद्ध कवीश्वर विजयी ह जिनक यश-रूपी शरीरमे जरा मरणसे उत्पन्न भय नही ।।५५।।

—नीति सम्बन्धी श्लोक

८ हिलत वलयो, मखलाओस उत्पन्न झकारो और नूपुरक शब्दोसे राजहसियोको आकृष्ट करनेवाली यह तरुणिया, भयभीत मुग्ध हरिनियाक से दृष्टिपातोसे किसक मनको वशमे नही कर लेती।।८०।।

९ ऊपर घने तहवाले बादल (ह), पासमे मोर नाचते पवत भी हैं, पथिवी भी कदलासे उजली है, बेचारा, (वियोगी) पथिक कहा अपनी आखें पसारे ।।८७।।

१० मुख चद्रमाको तिरस्कार करनेवाला, दोना लोचन पकजका परिहास करनेवाले, रग सोनका प्रत्याख्यान करनेवाला, केश भवरोको जीतनेवाले, दोनो स्तन गजके कुभके सौंदयको हरनेवाले नितब स्थूल और भारी, वाणियोकी मृदुलता मनोहरिता, ये ह, युवतियोके स्वाभाविक आभूषण ।।९०।।

११ थोडी सी मुस्कराहट सहित मुख सरल और चचल नेत्रो का सौदय, वचनोका नवीन ललित उक्तियो सरस व्यवहार, नवपल्लव सी लीलावाली चलने की क्रिया—तरुणाईमें प्रवेश करती मगनयनियोका क्या नहीं रमणीय होता ।।९३।।

१२ चमेली की कली सिर पर, केसरयुक्त चदन शरीर पर, वक्ष पर मदसे अलस प्रियतमा हो, (बस) सारा स्वग (यही) आ गया ।।११६।।

१३ नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा,
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातै ,
शक्रादयोऽपि विजिता अबला कथ ता ॥११८॥

१४ स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवती ।
यस्मात तपसोऽपि फल स्वग स्वर्गेऽपि चाप्सरस ।१२०

१५ सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारामणीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिद जगत् ॥१३०॥

१६ मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलै शिरोरुहै ।
पाणिभ्या पद्मरागाभ्या रेजे रत्नमयीव सा ॥१३१॥

१७ गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्या पादाभ्या रेजे ग्रहमयीव सा ॥१३२॥

—श्रृगारश्लोका

१८ भ्रान्त्वा देशमनेकदुर्गविषम प्राप्त न किचित् फल,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचित सेवा कृता निष्फला।
भुक्त मानविवर्जित परगृहे साशकया काकवत्,
तृष्णे, जृम्भणि, पापकर्मनिरते नाद्यापि सतुष्यसि ॥१४८॥

१९ त्व राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नता,
यातस् त्व विभवैर्यशासि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति न ।
इत्थ मानद, नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तर,
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो नि स्पृहा ।१६३

१३ निश्चय ही वह कविवर उल्टी समझवाले है,
जो नित्य कामिनियोको अवला करन है। (अपन) अति चचल पुनलियो वाले दष्टिपातोसे जिन्हान इ द्रादिका भी जीत लिया, वह कैसे अबला है ?॥११८॥

१४ जो झूटा पटित युवतिया की निदा करता है, वह अपन और दूसरे का वचक है क्योकि तपस्या का भी फल स्वग है, और स्वग मे भी अप्सरराये है ॥१२०॥

१५ दीपके रहत, आगके रहते, ताराख्पी मणियो और चद्रमाके भी होते मगपातकी सी आखोवाली उस (प्रिया) के बिना मरे लिये जगत् अधकारमय है ॥१३०॥

१६ चद्रमाके कमनीय मुख, घन नीले केशा, लाल जैसे दानो हाथो से वह रत्नमयी सी शोभा दती थी ॥१३१॥

१७ भारी स्तनके भारा से चमक्ते मुखरूपी चद्रमा से, शनै चलनेवाले (शनैश्चर) दोनो पैरा से, वह ग्रहमयीसी शाभ रही थी ॥१३२॥

—शृगारके श्लोक

१८ अनेक दुगम और विपम देशो मे भटकत (मैन) कुछ भी फल नही पाया। जाति और कुलके उचित अभिमान को छोडकर की गई सेवा निष्फल हुई। कौवे की तरह भयभीत हो बिना सम्मान के दूसरे के घर मे खाया। हे वचक, पापकम में निरत तष्णा, आज भी तू नही सतुष्ट होती ॥१४८॥

१९ तू राजा है तो हम भी गुरु की उपासना करके विद्याके अभिमानसे उन्नत हैं। तू अपने विभव से प्रसिद्ध है, तो कवि लोग हमारे यशोको दिशाओ में फैला रहे है। हे मानदाता, इस प्रकार हम दोनो का अन्तर बहुत नही है, यदि हम से तुम पराङमुख हो, तो हम भी तुमसे बिलकुल नि स्पह है ॥१६३॥

२० न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धय ।
नृपसद्मनि नाम के वय स्तनभारानमिता न योषित ।।१६५।।

२१ भ्रात, कष्टमहो महान् स नृपति सामन्तचक्र च तत्,
पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत् ताश्चन्द्रबिम्बानना ।
उद्रिक्त स च राजपुत्रनिवहस् ते बन्दिनस् ता कथा
सर्व यस्य वशादगात् स्मृतिपद कालाय तस्मै नम ।।१६९।।

२२ वयमिह परितुष्टा वल्कलैस् त्व च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेष ।
सतु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽथवान् को दरिद्र ।।१७७।।

२३ नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीताचिता,
खड्गोग्रै करिकुम्भपीठदलनैर्नाक न नीत यश ।
कान्ताकोमलपल्लवाधररस पीतो न चन्द्रोदये,
तारुण्य गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ।।१९५।।
—वैराग्यश्लोका

३४ शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

भट्टारिका आम तौर से रानिया या परिव्राजिकाओ को कहते थे। सभवत शीला राजा की पत्नी थीं। इनका समय वही मालूम होता है, जो भर्तृहरि और माघ का। शीला कहा की रहने वाली थीं, इसका हमें पता नहीं।

१. नायकानुनय —

१ विरह-विषमो वाम काम करोति तनु तनु,
दिवस-गणनादत्तश्चाय व्यपेत-घृणो यम ।
त्वमपि वशगो मान-व्याधेर्विचिन्तय नाथ हे,
किसलय-मृदुर्जीवेदेव कथ प्रमदाजन ।।१।।

२० न हम नट हैं, न लम्पट, न गायक ह न दूसरे के द्रोह मे कटिबद्ध बुद्धिवाले, न स्तनके भार से झुकी कामिनिया हैं फिर राजभवन मे हम कौन होते हैं ॥१६५॥

२१ अहो कष्ट हे भाई, वह महान राजा और वह सामन्तोका समूह और उसके पास वह राजसभा और वह च द्रमुखिया, और वह अभि मानी राजपुत्रा का झुड, व वदाजन, वे कथायें—यह सब जिसक कारण स्मतिशप रह गय उस कालको नमस्कार है ॥१६६॥

२२ हम यहा वक्षके छालोसे सतुष्ट और तुम लक्ष्मी से । दोनो हा को यहा एक समान विशेष सतोप है । दरिद्र तो वह होगा, जिसक। तष्णा विशाल है। मनके सतुष्ट हो जान पर कौन धनवान और कौन दरिद्र ॥१७७॥

२३ पथिवीपर वादियोको दमन करनेवाली विनयपूवक पढी विद्याका अभ्यास नही किया, खड्ग क। नोकोसे गजोके कुम्भो और पीठो को दलन करते स्वग तक अपने यश नही पहुचाया। चादनीके समय काताके कोमल पल्लव सदृश अधर रसको नही पिया। अहो शू य-घरमे दीपक का तरह (हमारी) तरुणाई निष्फल ही गई ॥१६५॥

—वैराग्य-सम्बन्धी श्लोक

३४ शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

उन्होने श्रृगारिक कवितायें ही की है, जिससे भी किसी सामन्त की अन्तःपुरि का होने का सन्देह होता है। इनकी कवितायें सुन्दर ह।

१ नायक से प्रार्थना—

विरहमें विषम प्रतिकूल कामदेव शरीरको दुबला करता है। दिन गिननेमें दक्ष यह यम दया-रहित है। तुम भी मानरूपी रोगके वश हो, हे नाथ, सोचो, नवपल्लवसी कोमल प्रमदा कैसे जिये ॥१॥

(२) वियोगी—

२ प्रिया-विरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा क कृतघ्नमपासते ॥२॥[१]

(३) दूती—

३ दूति त्व तरुणी युवा स चपल श्यामास्तमोभिर्दिश,
सन्देश स रहस्य एव विजने सकेतकावासक ।
भूयो भूय इमे वसन्त-मरुतश्चेतो नयन्त्यन्यतो
गच्छ क्षिप्र-समागमाय निपुण रक्षन्तु ते देवता ॥३॥[२]

४ श्वास कि ? त्वरितागता, पुलिकता कस्मात् ? प्रसाद कृत,
स्रस्ता वेण्यपि ? पादयोर्निपतनात्, नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्र मुख ?-मातपेन गमित, क्षामा किमत्युक्तिभिर्,
दूति, म्लान-सरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य कि वक्ष्यसि ॥४॥[२]

(४) असती—

५ य कौमार-हर स एव हि वरस्ता एव चैत्र क्षपास्,
ते चोन्मीलित-मालती-सुरभय प्रौढा कदम्बानिला ।
सा चैवास्मि तथापि चौर्य-सुरत-व्यापार-लीला-विधौ
रेवा-रोधसि वैतसी-तरु-तले चेत समुत्कण्ठते[२] ॥५॥

(५) जरा—

६ इदमनुचितमक्रमश्च पुसा,
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकारा ।
इदमपि न कृत नितम्बिनीना
स्तन-पतनावधि जीवित रत वा ॥६॥

---

१. अनुष्टुप् २ शार्दूलविक्रीडितम

२ वियोगी—

२ प्रियासे रहित इसके हृदयमे चिंता आ गई। यह जानकर निद्रा भाग गई। कृतघ्नके पास कौन रहना चाहेगा।।२।।

३ दूती—

३ हे दूती, तू तरुणी है, वह चपल तरुण है। दिशाये अंधकारसे श्यामल है वह सन्देश गुप्त है संकेतस्थान निर्जन है। यह वसंतकी हवाये अधिकाधिक चित्तको बहकानेवाली है। जल्दी लौटनेके लिये तू अच्छी तरह जा, देवता तेरी रक्षा करे।।३।।

४ सांस क्या ले रही है? (जल्दी) जल्दी आई। रोमांचित क्यो है? (उनकी) कृपा से। व्रण खुले क्यो? पैरोपर गिरनेसे, (और) नीवी? आने-जानेमे। पसीनेसे भीगा मुह क्या? धूपमे हुआ। थकी क्या? बोलनेमे। हे दूती, तू (अपने) कुम्हलाये कमलाकार ओठके लिये क्या कहती है? ।।४।।

४ कुलटा—

५ जिसने कौमार्यका हरन किया, वही पति (अब भी) है, वही चैतकी राते हैं, वही फूली चमेलीके सुगंधित और कदंबके प्रौढ वायु है। वही मैं हू, तो भी नर्मदाके किनारे बेतकी लताओके नीचे चोरीसे मिलन-व्यापारकी लीलाके लिये चित्त उत्कंठित होता है।।५।।

५ जरा—

६ यह अनुचित है, और पुरुषोके लिये ठीक नही है, जो कि बुढापे में भी पुरुषोको कामविकार होते है। (पर) स्त्रियोके लिये यह भी नही किया, क्योकि स्तन के गिरने तक उनका जीवन-आनंद रहता है।।६।।

३५ माघ (६७५ इ०)

माघ कवि का अपना नाम था, या भट्टि की तरह उपाधि, यह नहीं कहा जा सकता। भट्टि की तरह ही यह गुजरात के रहनेवाले थे। माघ के दादा सुप्रभदेव, राजा धमनाभ(बमलात)के मन्त्री थे। इनके पिता का नाम दत्तक था। धनी कुल में पदा होने से इन्हें अर्थाभाव की कठिनाइया नहीं सहनी पडी। इनका जन्म भिन्नमाल (श्रीमाल) में हुआ था। इन्हीं के नगर में और शायद कुछ ही समय पहले महान ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने जन्म लिया था, जिन्होने ६२५ ई० के आसपास "ब्रह्म सिद्धान्त" को लिखा। माघ बडे दानी थे, इनकी एक ही कृति "शिशुपालवध" मिलती ह, जो कवि के नाम से अधिक प्रसिद्ध ह। माघ पडित थे, कवियो में

शिशुपालवधम्*

(१) नारदागमनम्—

१ श्रिय पति श्रीमति शासितु जगज्जगन्निवासो वसुदेव-
सद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भांगभुव मुनि हरि ।१।

२ "गत तिरश्चीनमनूरुसारथे प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलन हविर्भुज ।
पतत्यधो धाम विसारि सवत किमेतदि" त्याकुलमीक्षित
जनै ॥२॥

३ चयस्त्विषामित्यवधारित पुरा तत शरीरीति विभा-
विताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयव पुमानिति क्रमादमु नारद इत्यबोधि
स ॥३॥

---

*माघ

३५ माघ (६७५ ई०)

अपने पांडित्य को दिखलाने से कहीं बाज नहीं आते। यद्यपि माघ में कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थगाम्भीर्य और दंडी के पद-लालित्य का एकत्र समावेश माना गया है, किंतु जिसमें अधिक से अधिक पांडित्य प्रदर्शन करने की कोशिश की जाये, वह अच्छी कविता कैसे हो सकती है? सारे अपभ्रंश-काल में अच्छी कविता की कसौटी कलाबाजी को माना जाता था, अतः माघ को दोष देना अनुचित है। अपभ्रंश-काल के अन्तिम महाकवि श्रीहर्ष ने तो इस कपाल क्रिया करनेवाली कविता में हद कर दी है। यदि समय के फेर में न पड़ते, तो "माघ" का रूप और सुंदर होता था।

शिशुपालवध

१ नारदागमन—

१ जगतको शासन करनेके लिये श्री-सम्पन्न वसुदेवके घरमें बसते जगत्‌निवास लक्ष्मीपति हरिने आकाशसे उतरते ब्रह्माके पुत्र उन नारदमुनिको देखा ॥१॥

२ सूर्यकी गति तिरछी होती है, अग्निकी ज्वाला उर्ध्वमुखी प्रसिद्ध है। सब तरफ फैलता नीचे गिरता यह प्रकाश क्या है, यह लोगोने व्याकुल हो देखा ॥२॥

३ पहले निश्चय किया "यह किरणोका समूह है", फिर यह "शरीरधारी" ज्ञात आकृतियुक्त स्पष्ट अंगोवाला पुरुष, यह सोचते क्रमशः उन्होंने नारद को जाना ॥३॥

४ निवर्त्य सोऽनुव्रजत कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभ
सद ।
समासदत्सादितदैत्यसपद पद महेन्द्रालयचारु चक्रिण ।।११।।

५ पतत्पतगप्रतिमस्तपोनिधि पुरोऽस्य यावन्न भुवि
व्यलीयत ।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैजवेन पीठादुदतिष्ठदच्युत
।।१२।।

६ तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुष सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता
मनीषिण ।।१४।।[1] —सर्ग १

(२) **पर्वतवर्णनम्—**

७ नि श्वासधूम सह रत्नभाभिर्भित्वोत्थित भूमिमिवोरगाणाम्
नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रेवतक ददर्श[2] ।।१।।

८ गुर्वीरजस्र दृषद समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचा वितानै ।
विन्ध्यायमान दिवसस्य भर्तुर्मार्ग पुना रोद्धुमिवोन्नम-
द्भि ।।२।।

९ सहस्रसख्यैर्गमन शिरोभि पादैर्भुव व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकर साधु हिरण्यगर्भम् ।।४।।

१० क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि
अभ्राणि बिभ्राणमुमागसगविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम्
।।५।।

११ विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूरा कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरी ।
नवोलपालकृतसैकताभा शुचीरप शैवलिनीदधानम् ।।८।।

---

१ वशस्थ २ उपजाति (१-८)

४ अतीन्द्रिय ज्ञाननिधि नारद, अनुगमन करते नम्र देवताओको लौटाकर दैत्योकी सम्पत्तिको उच्छिन्न करनेवाले कृष्णके इन्द्रभवन जैसे सुन्दर स्थानमें पहुँचे ॥११॥

५ उनके सामने उगत सूय समान तपोनिधि नारद के धरती पर न विलीन होनेके साथ, पवतके मेघकी तरह कृष्ण बड वेगसे अपने आसनसे उठ खडे हुये ॥१२॥

६ आदि पुरुष (कृष्ण) ने पूजनीय नारदको अर्घ्य आदि द्वारा अच्छी तरह पूजा। मनीषी लोग अपुण्यात्माओके घरोमे स्नेहसे जानेके इच्छुक नही होते ॥१४॥　　—सग १

२ **पर्वत वर्णन—**

७ (उन्होन) भूमिको फोडकर उठ, सर्पोके रत्नोके किरणा सहित, श्याम क धूये जैसे नील पाषाणमें पिरोई विचित्र धातुओ से युक्त **रवतक** (गिरनार) गिरिको देखा ॥१॥

८ (जो) सदा भारी शिलाओके चारो ओर ऊपर ऊपर (छाये) मेघोके बितानो द्वारा, **विंध्य पवत** बन सूयके मागको फिर रोकनेके लिये सिर उठाये था ॥२॥

९ (जो) हजार सख्यावाले सिरो और पैरोसे आकाश और भूमिको व्याप्त कर अवस्थित, नेत्रके तौरपर सूय और च द्रमाको धारे ठीक हिरण्यगभ (विष्णु) सा था ॥४॥

१० (जो) कहीपर पानीके निकलनेसे पीले, धुली चादर समान रूपवाले बादलोको धारण करते, उमाके अगके ससगसे विभक्त भस्मवाले शकर जैसा दीखता था ॥५॥

११ (जो) लटकते नीलकमलके कणभूषणवाले कपोलोकी तरह लोध सी गोरी नई मूजसे शोभित, बालूकी आभा से युक्त, सेवारवाली शुद्ध नदियोको धारण किये हुआ ॥८॥

१२ राजीवराजीवशलोलभृङ्गमुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललना सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमु-
द्वहन्तम् ॥९॥

१३ अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने।
भृङ्गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥१२॥

१४ फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतङ्गकान्तैः।
शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां सङ्क्रान्तिमाक्रान्तगुणाति-
रेकाम् ॥१६॥

१५ दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥१७॥

१६ कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झ-
रौघाः।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्तस्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र[1]
॥२३॥
—सर्ग ४

(३) ऋतुवर्णनम्—

१७ अथ रिरंसुममुं युगपद् गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम्[2]॥१॥

१८ नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनो-
भरैः ॥२॥

१९ विलुलितालकसंहतिरामृशन् मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम्।
तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन् मरुदाववौ ॥३॥

---

१ शालिनी, २ द्रुतविलंबित

१२ (जो) कमलपक्तियोके वशमे चचल भृगोवाले वृक्षोक समूहाम गर्मीके आतपको चुराता, कान्ताओकी कमनीय अलकवाली दव ललनाओको राक्षसोकी तरह अचल हो उठाता ।।६।।

१३ (जो) उग्रतापवाले रविको धारण करत भी अरबिन्द धारण करन वाला था। रस पिये, कमलोको झुकाती नमत भगोकी पाती जिनक तटपर खिन्न थी ।।१२।।

१४ जिसन सूयकी किरणोक स्पशस अग्निक तजको फलित करते सूय-कातो द्वारा यह प्रकट किया, कि पात्रक गुणोसे आक्रान्त गुण द्वारा अधिक सक्राति होती है ।।१६।।

१५ उस दखे हुये भी पवतने मुरारिको क्षणभरक लिये अपूवकी तरह हो अधिक विस्मित कर दिया। जो क्षण-क्षणमे नवीन हो, वही रमणीयता कारूप है ।।१७।।

१६ इस (**रवतक**) के पुरुषोकी तरह ऊच पवतशिखरोसे पत्थरोके सिरपर गिरकर जजर हुये चश्मे, आकाशकी ओर उछलते, काम-पीडिता देवागनाओक शरीरको सुख दत है ।।२३।।

—सग ४

३ ऋतु-वर्णन

१७ तब गिरि (रैवतक) मे रमण करनके इच्छुक, सतोके सकटनाशक (कृष्ण) को अपने अपने, वक्षोकी पुष्पफल-सपत्तिसे सेवा करनके लिये ऋतुओन एक साथ भूमिपर पैर रक्खा ।।१।।

१८ कृष्णान नवपल्लवयुक्त पलाशवनवाले, परागसे स्पष्ट व्याप्त पकज-वाले, मदुल म्लान पल्लवोवाले, पुष्पसमूहोसे सुगधित वसतको सामने देखा ।।२।।

१९ हिलती अलकोवाली मृगनयनियोके ललाटपर उत्पन्न स्वेदजलको छूता, सरोवरोके सूक्ष्म तरगोको दलित करता, कमलोको हिलाता वायु बह रहा था ।।३।।

२० तुलयति स्म विलोचनतारका कुरबकस्तबकव्यतिषगिणि।
गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये मलिनिमालिनि माधवयोषिता ॥४॥

२१ स्फुटमिवोज्ज्वलकाचनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः ।
विरहिणा हृदयस्य भिदाभृत कपिशित पिशित मदनाग्निना ॥५॥

२२ स्मरहुताशनमुर्मुरचूणता दधुरिवाम्रवणस्य रज कणा ।
निपतिता परित पथिकव्रजानुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ॥६॥

२३ रतिपतिप्रहितैव कृतक्रुध प्रियतमेषु बधूरनुनायिका।
बकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलि ॥७॥

२४ प्रियसखीसदृश प्रतिबोधिता किमपि काम्यगिरा परपुष्टया ।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरयादुरयाचितमगना ॥८॥

२५ मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुव पथिका हरिणा इव।
अविनमन्नरराज वृथोच्चकैरनृतया नृतया वनपादप ॥१०॥

(४) वर्षावर्णनम्—

२६ स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहु प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाजगतीधरम् ॥२५॥

२७ गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।
अभिससार न वल्लभमगना न चकमे च कमेकरस रह ॥२६॥

२० कुरवकके गुच्छोमे लग गुणयुक्त अवलम्बसे गुणमे उत्कर्ष पाई भ्रमरकी कालिमा कृष्णकी स्त्रियाके लोचनाकी पुतलियाके समान थी ।।४।।

२१ (वह) उज्ज्वल, सुवर्ण कान्तिवाल, चम्पकासे युक्त फूले अशोकको शोभित कर रहा था घाव लगे विरहियो का हृदय कामाग्निसे पीला पड गये मास सा ।।५।।

२२ आमके बगीचेके परागोके कण, बटोहियोके ऊपर चारो तरफ गिरे कामाग्निके भौर हो उन्हे बहुत सतप्त करते थे ।।६।।

२३ क्रुद्ध वधुआको मनानेवाले प्रियतमोके पास कामदेव द्वारा प्रषित मी मोलसरीके फूलोके रसरूपी मद्यके पानसे मधुर शब्दवाले भवरे वक्षसे मानो निकले ।।७।।

२४ भारी रोषको काटनेवाली कमनीय वाणीवाली प्रियसखी समान कोयल द्वारा कुछ उपदिष्ट हो ललनाओने प्रियतमको बिना माग अपना शरीर प्रदान किया ।।८।।

२५ फूल चुननेकी इच्छासे रागसे पास आकर प्रमदाओ द्वारा झुकाया न झुकता व्यर्थ ऊचा वनवृक्ष (अपनी) झूठी पुरुषतामे शाभित नही हुआ ।।१०।।

४ वर्षावर्णन—

२६ हिलते अधीर बिजलीरूपी नयनोवाली क्षण भर (जलसे) न खाली विशाल पयोधरवाली मेघपक्ति समयकी प्रतीक्षा किये बिना क्षण भर मानो (अपने) प्रिय पर्वतसे मिली ।।२५।।

२७ श्रावणमे आकाशमे गजोके समूह जैसे काले ऊचे नये मेघोको देखकर अगनाने, एक राग-रसवाले किसी वल्लभकी एकान्तमें न कामना की, न अभिसार ।।२६।।

२८ अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितानकसवलिताशुकम् ।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुच शबलिमा बलिमानमुषो वपु
॥२७॥

२९ द्रुतसमीरचलै क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मजरी ।
नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदै
॥२८॥

३० पटलमम्बुमुचा पथिकागना सपदि जीवितसशयमेष्यती ।
सनयनाम्बुसखीजनसभ्रमा विधुरबन्धुरबन्धुरमैक्षत ॥२९॥

३१ प्रवसत सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालित ।
नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुत
॥३०॥

३२ जलदपक्तिरनतयदुन्मद कलविलापिकलापिकदम्बकम ।
कृतसमाजनमदलमण्डलध्वनिजया निजया स्वनसपदा
॥३१॥

३३ नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभि ।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे
॥३२॥

३४ शमिततापमपोढमहीरज प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भ-
साम् ।
प्रविरलैरचलागनमगना वनसुग न सुगन्धि न चक्रिरे
॥३३॥

३५ द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृगमृगच्छवि केतकम् ।
घनघनौघविघट्टनया दिव कृशशिख शशिखण्डमिवच्युतम्
॥३४॥

२८ (इन्द्र) धनुषरूपी वलयको धारण किये मेघकी श्यामता, बलि राजा के अभिमानको हरनेवाले (कृष्ण) के, नाना पाषाणके कुडलाका द्युतियोके बितानोसे युक्त अशुकवाले शरीरका अनुकरण करती ग ।।२७।।

२९ शीघ्रगामी वायुसे हिलते वृक्षो द्वारा क्षण भर दीखकर लुप्त हुई मजरीकी तरह, नये तमाल सदृश आकाशरूपी वक्षकी मजरी बिजली मेघो में प्रकाशित थी ।।२८।।

३० बटाहीकी मरणोमुख वियोगिनी बहू न रोती हुई सखियाके क्षोभसे, मेघ-समहको असुदर देखा ।।२९।।

३१ फूली द्रोणपर्णीके कापनसे लालित, मनस्वी जनोके मनोको झुकाने-वाली बरसाती हवा वनाको झुकाती बटोहियोको अत्यत उद्विग्न कर रही थी ।।३०।।

३२ अपनी सम्पदा द्वारा ऊपर लेप किये, मादलोकी ध्वनिका जीतनेवाली, मेघपक्ति न सुदर-भार्या मयूराको मस्त करके नचाया ।।३१।।

३३ नये कदम्ब केसर जैसे लाल हुये अम्बरयुक्त कदलीकी सुगन्धिवाले वनवायुओने स्त्रियोके प्रति कामियोके मनमें नया-नया अनुराग पैदा किया ।।३२।।

३४ (जिसने) मेघोके विरल जलोके प्रथम विन्दुओ से तापशान्त हुये, धूलिरहित भूमि वाले पवतोको अगनाओके लिये न सुगम नही सुगधित किया ।।३३।।

३५ हाथीके दातसे श्वेत, हिलते, भ्रमरोरूपी मृगकी छविवाले केवडा मानो, घने मेघोके टकरानेसे गिरे आकाशकी क्षीण शिखावाले चद्र-खड थे ।।३४।।

३६ दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डव स्फुरितनिर्झरशीकरचारव ।
कुटजपुष्पपरागकणा स्फुट विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम्
॥३५॥

३७ नवपय कणकोमलमालतीकुसुमसततिसततसगिभि
प्रचलितोडुनिभै परिपाण्डिमा शुभरजोभरजालिभि -
राददे ॥३६॥

३८ निजरज पटवासमिवाकिरद्धृतपटोपमवारिमुचा दिशाम्
प्रियवियुक्तबधूजनचेतसामनवनीनवनीपवनावलि ॥३७॥

३९ प्रणयकोपभृतोऽपि पराङमुखा सपदि वारिधरारवभीरव ।
प्रणयिन परिरब्धुमथागनाऽववलिरे वलिरेचितमध्यमा ॥
॥३८॥

४० विगतरागगुणोऽपि जनो न क चलति वाति पयोदनभस्वति ।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवै
॥३९॥

४१ अरमयन्भवनादचिरद्युते किल भयादपयातुमनिच्छव ।
यदुनरेन्द्रगण तरुणीगणास्तमथ मन्मथमन्थरभाषिण
॥४०॥

४२ मुदमब्दभुवामपा मयूरा सहसाय त नदी पपाट लाभे।
अलिना रमतालिनीशिलीन्ध्र सह सायन्तनदीपपाटलाभै
॥७२॥

४३ कुटजानि वीक्ष्य शिखिभि शिखरीन्द्र समयावनौ घनमद-
भ्रमराणि ।
गगन च गीतनिनदस्य गिरोच्चै समया वनौघनमद-
भ्रमराणि ॥७३॥

—सर्ग ६

३६ पिसी मोतीके चूर्ण जैसे अति श्वेत उछलते निर्झरोंके फुहारे जैसे सुन्दर कुटजके फूलोंके केसर-कण स्पष्ट दहीके चूर्णकी समानता धारण कर रहे थे ॥३५॥

३७ नवीन जलकण समान कोमल चमेलीके फूलसमूहोंके सदा साथ रहनेवाले चंचल ताराओंके समान भंवरे सुंदर धूलिके समूहोंसे उत्पन्न सफेदीको धारण कर रहे थे ॥२६॥

३८ प्रियोंसे वियुक्त वधुओंके चित्तकी न रक्षिका नवीन नीमकी वनपंक्ति न पट सदृश मेघोंको धारण करनेवाली दिशाओंपर अपने परागको चादरकी तरह फेंक दिया ॥३७॥

३९ प्रणय कोपको धारण करते पराङ्मुखी, त्रिवलीस रिक्त उदर-वाली महिलायें भी मेघोंके शब्दोंसे तुरंत भयभीत हो, प्रियोंको आलि-गन करने लगी ॥३८॥

४० 'मेघ वायुके बहते समय कौन रागरहित जन भी चलित नही होता" भवरोके ऊचे स्वरसे यह सत्य कहनेपर नवपल्लव नाच उठीं ॥३९॥

४१ तब बिजलीके भयसे मानो प्रियतमके घरसे जानेकी अनिच्छुका कामवश मन्द भाषिणी तरुणियोंने यदुवंशी राजाओंके साथ रमण किया ॥४०॥

४२ मेघसे उत्पन्न जलोंको पा सहसा आनन्दको पा नदियां बह चली, सायकालके दीपक सी श्वेतिमावाली कदली के पुष्पमें भ्रमरके साथ भ्रमरी आनन्द करने लगी ॥७२॥

४३ पर्वतके समीपवाले प्रदेशमें बहुतसे मस्त भवरोंसे युक्त कुटज (पुष्प) के जलाधिक्यसे झुके बादलवाले गगनको देखकर मोरोंने गानेके शब्दकीसी वाणीसे ऊची आवाज की ॥७३॥

—सर्ग ६

(५) सूर्यास्तवर्णनम—

४४ अभितापसपदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमान इव[1]।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत्
॥१॥

४५ विरलातपच्छविरनुष्णवपु परितो विपाण्डु दधदभ्रशिर ।
अभवद् गत परिणति शिथिल परिमन्दसूयनयनो दिवस
॥३॥

४६ अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलिततलागुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुला खगकुलानि
गिर ॥४॥

४७ उपसध्यमास्त तनु सानुमत शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुच ।
करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचित खलूच्चतरमेव पदम्
॥५॥

४८ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत करसहस्रमपि ॥६॥

४९ नवकुकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकर
॥७॥

५० द्रुतशातकुम्भनिभमशुमतो वपुरधमग्नवपुष पयसि।
रुरुचे विरचिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥९॥

५१ रुचिधाम्नि भतरि भृश विमला परलोकमभ्युपगते विविशु ।
ज्वलन त्विष कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव
पति ॥१३॥

---

१ प्रमिताक्षरा

५ सूर्यास्तवर्णन—

४४ तब सूय, अग्निकी किरणोके अधिक सतापको मानो न सहते, पश्चिम समुद्रके जलमें गिरनेकी इच्छासे अस्ताचलपर चढनेके लिये दौडा ॥१॥

४५ परिवलनको प्राप्त, विरल धूपकी छबियुक्त, अल्प-उष्ण-शरीरवाला, चारो ओर पीला सा, मेघरूपी शिरयुक्त प्रशान्त सूयरूपी नयनवान् दिन शिथिल हो गया ॥३॥

४६ (वह) अपराह्णमें अधिक शीतल वायु द्वारा धीरे धीरे चालित लतारूपी अगुलियोवाला (दिन), नीडोके लिये पक्षियोको आकुल-वाणीसे मानो बुलाता आवाज दे रहा था ॥४॥

४७ सन्ध्याके समीप सूयकी क्षीण किरणे पवत-शिखरोपर अवस्थित थीं। अस्तके समय भी उच्चतर स्थानमें सत्पुरुषोका रहना ही उचित है ॥५॥

४८ दैवके प्रतिकूल होनेपर बहुतेरे साधन भी विफल हो जाते है। (इसी लिए) गिरनेवाले सूयके लिये हजारो किरणे भी सहायक नही हुई ॥६॥

४९ नये केसर से अरुण पयोधरवाली, अपने करमें धरे रुचिर अम्बरवाली पश्चिम दिशाके साथ अति समीपता पा सूय बहुत अनुरक्त हुआ ॥७॥

५० पिघले सुवण समान जलमें आधे डूबे सूयका देह, ब्रह्माके नखसे टूटे बृहत ब्रह्माडके आधे खडकी तरह शोभित हो रहा था ॥८॥

५१ रुचिर प्रभावाले स्वामी (सूय) के परलोक जानेपर विमल किरणें आगमें प्रविष्ट हो गइ, अन्यथा कैसे दूसरे जन्ममें वही पति सुलभ होता ॥१३॥

५२ पतिते पतगमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमासि परितस्तरिरे ॥१८॥

५३ व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरत पटल बहिबहलपकरुचि ।
दिवसावसानपटुनस्तमसो बहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहा ॥१९॥

५४ किमलम्बताम्बरविलग्नमध किमबधतोध्वमवनीतलत ।
विससार तियगथ दिग्भ्य इति प्रचुरीभवन्न निरधारि तम ॥२०॥

(६) **चन्द्रोदयवर्णनम्—**

५५ वसुधान्तनि सृतमिवाहिपते पटल फणामणिसहस्ररुचाम्।
स्फुरदशुजालमथ शीतरुच समलचकारननु माघवनीम् ॥२५

५६ कलया तुषारकिरणस्य पुर परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम्।
क्षणमभ्यपद्यत जनैन मृषा गगन गणाधिपतिमूतिरिति॥२७॥

५७ प्रथम कलाभवदथाधमथो हिमदीधितिमहदभूदुदित ।
दधति ध्रुव क्रमश एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥२९॥

५८ रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥३३॥

—सग ९

५२ सूर्यरूपी मृगराजके समुद्रमे गिरने पर अपने प्रतिबिम्बसे रुष्ट हो गज समूहो जैसे मलिन अंधकारने चारो ओरसे जगतको ढाक लिया ।।१८।।

५३ भारी पंक सा दीखता, दिनांतके भारी अंधकारका समूह पवन-गुहाओ के भीतरसे आकर फैलता बाहरी गुहाओमे खूब लिपट गया ।।१९।।

५४ वेशी होता अंधकार क्या आकाशसे लगा नीचे लटका, अथवा पथिवी तलसे ऊपर बढा या दिशाओसे तिरछ फैला यह नही निश्चय किया जा सका ।।२०।।

६ चन्द्रोदयवणन—

५५ तब पथिवीके छोरसे निकले नागराजके हजारो फण मणियाकी किरणोके समूह जैसे चंद्रमाकी उछलती किरणोके जाल ने पूव दिशाको अलकृत किया ।।२५।।

५६ पूवमे चंद्रमाकी किरणो द्वारा थोडा टूट अंधकार-समूहकी जटावाले गगनको, लोगोने भूतनाथ शकरकी मूर्ति है यह क्षण भर के लिये सत्य समझा ।।२७।।

५७ हिमकिरण (चद्र) पहले कला मात्र उगे फिर आधे फिर बडे लगे। निश्चय तेजस्वी भी एकाएक नही, बल्कि क्रमश ही वृद्धिको प्राप्त करते हैं ।।२९।।

५८ रजनीको पा शशि शोभित हुये, उन्होने तुरन्त उसे भी अलकृत किया। अहो बिना विलम्ब किये परस्पर उपकार करना बडोका चरित्र है ।।३३।।

—सग ९

(७) प्रातर्वर्णनम्——

५९ द्रुततरकरदक्षा क्षिप्तवैशाखशैला
दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघा सारमुद्धर्तुमेते
कलशमुदधिगुर्वी वल्लवा लोडयन्ति[1] ॥८॥

६० परिशिथिलितकणग्रीवमामीलिताक्ष
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूध्वज्ञुरेव।
रिसियिषति न भूय शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठ प्रस्फुरत्प्रोथमध्य ॥११॥

६१ नवकनकपिशग वासराणा विधातु
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासा वितानम्।
जनितभुवनदाहारम्भमम्भासि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूध्वमौर्वानलार्चि ॥४३॥

६२ विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैमयूखै
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाण ।
कृतचपलविहगालापकोलाहलाभिर्-
जलिनिधिजलमध्यादेष उत्तायतेऽक ॥४४॥

६३ पयसि सलिलराशेनक्तमन्तर्निमग्न
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्ने ।
यदयमिदमिदानीमगमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठागारगौर विवस्वान् ॥४५॥

६४ अतुहिनरुचिनासौ केवल नोदयाद्रि
क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृत सव एव ।

---

१ मालिनी

७ प्रात वर्णन—

५९ अति शीघ्र हाथ चलानमे दक्ष डडारूपी शैल फेकत सुरलोक पानीकी तरह दहीमे गम्भीर ध्वनि धारण करते है। चन्द्रमाकी तरह सारको निकालनेके लिये समुद्र जैसे बडे घडका यह गोपाल मथन कर रहे हैं ॥८॥

६० यह घोडा कान और गरदन झुकाये आखे मूदे, ऊपरकी ओर जाघ किये ही क्षण भर सोकर फिर चतुर चपल आठ सहित नाक फरफराता आग फैली घासका रस लेना चाहता है ॥११॥

६१ वज्रपाणिकी दिशा (पूर्व) मे, नवीन सुवर्ण जैसे पीले दिनकर की किरणोका वितान चमक रहा है, (जो) महासमुद्रके जलको जलाता ससारका दाह करता, प्रज्ज्वलित बडवानलकी ज्योति सा दीखता है ॥४३॥

६२ चपल चचल पक्षियोके आलापके कोलाहल के साथ, फैले मोटे रस्सो जैसी आकारवाली किरणो द्वारा, मानो दिशाओस भारी कलशकी तरह खीचा जाता, समुद्र-जलके बीचसे यह सूर्य निकाला जा रहा है ॥४४॥

६३ यह सूर्य रातको समुद्रक जलमे डूबा भीतर बडवानलकी ज्वालासे निश्चय सतप्त हुआ। तभी तो इस समय उगता हुआ जलते खैर-काठके अगार जैसे उज्ज्वल अगको धारण कर रहा है ॥४५॥

६४ क्षणभर ऊपर आय अशीतल किरण (सूर्य) द्वारा केवल यह उदया-चल ही नही, बल्कि यह सारे ही पहाड, नवीन किरणो द्वारा फूले

नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तबकरचितमेते शेखर बिभ्रतीव ॥४६॥

६५ उदयशिखरिश्रृगाग्रागणेष्वेष रिगन्
सकमलमुखहास वीक्षित पद्मिनीभि ।
विततमदुकराग्र शब्दयन्त्या वयोभि
परिपतति दिवोके हेलया बालसूय ॥४७॥

६६ क्षणमयमुपविष्ट क्ष्मातलन्यस्तपाद
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम् ।
भुवनतलमशेष प्रत्यवेक्षिष्यमाण
क्षितिधरतटपीठादुत्थित सप्तसप्ति ॥४८॥

६७ परिणतमदिराभ भास्करेणाशुबाणैस्-
तिमिरकरिघटाया सवदिक्षु क्षताया ।
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेन
छुरितमुभयरोधोवारित वारि नद्य ॥४९॥

—सग ११

(८) **शिशुपाल-कोप —**

६८ यदपूपुजस्त्वमिह पाथ, मुरजितमपूजित सताम् ।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयित जन खलु गुणीति मन्यते[१] ॥१४॥

६९ यदराज्ञि राजवदिहाघ्यमुपहितमिद मुरद्विषि ।
ग्राम्यमृग इव हविस्तदय भजते ज्वलत्सु न महीशवह्निषु ॥१५॥

७० अनृता गिर न गदसीति जगति पटहैर्विघुष्यसे ।
निन्द्यमथ च हरिमचयतस्तव कमणैव विकसत्यसत्त्यता ॥१६॥

---

१ छन्द-उद्गता

बन्धुजीवकके फूलोके गुच्छो जैसे शोभित शिखरको मानो धारण कर रहे हैं ॥४६॥

६५ यह बालसूर्य, उदयाचलके शिखर के आगनामे रेंगता, कमलाके मुखोके हासके साथ पद्मिनियो द्वारा देखा जाता, पक्षियो से पुकारते आकाशकी गोदमें, फैले करो (हाथो) सहित लीलाके साथ गिर रहा है ॥४७॥

६६ यह सप्ताश्व (सूर्य) पृथिवीतल पर पाद (किरण) रख क्षण भर बैठा लोगोको प्रसन्न हो दिनके लिये प्रणाम करते देखकर, सकल भुवनतलको देखनेका इच्छुक हो पर्वत-तटके सिंहासनसे उठा ॥४८॥

६७ नई धूपसे उछलती नदिया परिपक्व मदिरा समान, दोनो प्रवाहोसे निवारित जलको, सूर्यमे किरणरूपी वाणो द्वारा सारी दिशाओमें ताडित तिमिररूपी गजाके रुधिर जैसा वहन करती दीखती है ॥४९॥

—सर्ग ११

८ शिशुपालका कोप—

६८ हे पृथापुत्र **युधिष्ठिर**, सत्पुरुषो द्वारा अपूजित मुरारिको जो तुमने यहा पूजा। सो यह बडे प्रेम विवश ही है, प्रियको लोग गुणी मानते हैं ॥१४॥

६९ यहा अ राजा कृष्णके लिये राजाकी तरह तुमने अर्घ्य उपस्थित किया, राजारूपी अग्नियोके होत उस हविको गावके मृगकी तरह, यह (कृष्ण) नही पा सकता ॥१५॥

७० झूठ बात तुम नही बोलते यह (तुम्हारे लिये) ससारमे नगाडोसे घोषित किया जाता है निन्दनीय कृष्णकी अर्चना के इस तुम्हारे कामसे ही इसकी असत्यता प्रकट है ॥१६॥

(९) कृष्ण-भर्त्सना—

७१ तव धमराज इति नाम कथमिदमपष्ठु पठ्यते।
भौमदिनमभिदधत्यथवा भृशमप्रशस्तमपि मगल जना
॥१७॥

७२ यदि वार्चनीयतम एष किमपि भवता पृथासुता।
शौरिरवनिपतिभिनिखिलैरवमाननाथमिह कि निम-
न्त्रितै ॥१८॥

७३ प्रतिपत्तुमग घटते च न तव नृपयोग्यमहणम्।
कृष्ण कलय ननु कोऽहमिति स्फुटमापदा पदमनात्म-
वेदिता ॥२२॥

७४ असुरस्त्वया न्यवधि कोऽपि मधुरिति कथ प्रतीयते।
दण्डदलितसरघ प्रथसे मधुसूदनस्त्वमिति सूदयन्मधु ॥२३॥

७५ छलयन्प्रजास्त्वमनृतेन कपटपटुरैन्द्रजालिका। प्रीतिम-
नुभवसि नग्नजित सुतयेष्टसत्य इति सप्रतीयसे[1] ॥२५॥

७६ त्वयि पूजन जगति जाल्म कृतमिदमपाकृते गुणै।
ह्रासकरमघटते नितरा शिरसीव ककतमपेतमूर्धजे ॥३३॥
—सर्ग १५

(१०) युद्धाय सेनासमागम—

७७ सजग्माते तावपायानपेक्षो सेनाम्भोधी धीरनादौ रयेण।
पक्षच्छेदात्पूवमेकत्र देशे वाछन्तौ वा विन्ध्यसह्यौ
निलेतुम्[2] ॥१॥

७८ पत्ति पत्ति वाह्मेयाय वाजी नाग नाग स्यन्दनस्थो
रथस्थम्।
इत्थ सेना वल्लभस्येव रागादगेनाग प्रत्यनीकस्य भेजे ॥२॥

---

१ मालिनी, २ शालिनी

९ कृष्णके प्रति—

७१ यह तेरा "धमराज" नाम, कैसे झूठ बोला जाता। अथवा अमगल दिनको लोग मगल कहते है ।।१७।।

७२ हे कुन्तीपुत्रो यह कृष्ण यदि आप लोगाको अत्यन्त पूजनीयसा है। तो अपमानके लिये सारे अवनिपतियोको यहा क्या निमन्त्रित किया ।।१८।

७३ मित्र राजा-योग्य पूजा तुम्हारे लिये ठीक नही है। ह कृष्ण सोचो, कि मै कौन हू। अपनेको न समझना आफतोका घर है ।।२२।।

७४ तुमने मधु नामक किसी असुरका मारा, यह कैसे विश्वास किया जाये ? सूदन (मारन) करनेवाले तुम दडसे मक्खियोको दलन करके मधुसूदन प्रसिद्ध हुये ।।२३।।

७५ मदारी, कपटमे पटु, लोगोको झूठसे धोखा देत, नग्नजित्-सुता (सत्यभामा) के सच-पसन्द बन, तुम आनन्द अनुभव करत जान पडते हो ।।२५।।

७६ ह दुष्ट गुणहीन, ससारमे यह तेरी की गई पूजा, बिना केशवालेके सिरपर कघी की तरह अत्यन्त उपहासकर है ।।३३।।

—सग १५

१० युद्धार्थ सेनासमागम

७७ हटनेके अनिच्छुक गम्भीर घोष करते वे दोनो सेनारूपी सागर वगसे एक दूसरेसे मानो पख कटनेसे पहले **विध्य और सह्याद्रि** एक देशमे रहनेके लिये मिले ।।१।।

७८ पैदलसे पैदल, सवारसे सवार, हाथीसे हाथी, रथीसे रथी, भिडे, इस प्रकार स्वामीके प्रेमसे एक विरोधी शत्रुके अग द्वारा अग (चतुरगिनी सेना) मिली ।।२।।

७९ रथ्याघोषैर्बृहणैर्वारणानामैक्यं गच्छन्वाजिनां हेषया च।
व्योमव्यापी सततं दुन्दुभीनामव्यक्तोऽभूदीशितेव प्रणादः
॥३॥

८० रोषावेशाद् गच्छतां प्रत्यमित्रं दूरात्क्षिप्तस्थूलबाहु -
ध्वजानाम्।
दीर्घास्तिर्यग्वैजयन्तीसदृश्यः पादातानां भ्रेजिरे खड्गे-
लेखाः ॥४॥

८१ सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा आगी शोभामाप्नुवत-
श्चतुर्थीम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्ड गण्डशैला इवे -
भाः ॥६॥

८२ सक्रीडन्ती तेजिताश्वस्य रागादुद्यम्यारामग्रकायोत्थितस्य।
रहोभाजामक्षधूः स्यन्दनानां हाहाकारं प्राजितुः प्रत्य-
नन्दत् ॥७॥

८३ कुर्वाणानां सापरायान्तरायं भूरेणूनां मत्युनां माजनाय।
समाजन्यो नूनमुद्धूयमाना भान्ति स्मोच्चैः केतनानां
पताकाः ॥८॥

८४ उद्यन्नादं धन्विभिर्निष्ठुराणि स्थूलान्युच्चमण्डलत्वदधन्ति।
आस्फाल्यन्ते कार्मुकाणि स्म कामं हस्त्यारोहैः कुञ्जराणां
शिरांसि ॥९॥

८५ घण्टानादो निःस्वनो डिण्डिमानां ग्रैवेयाणामारवो बृंहितानि।
आमेलीव प्रत्यवोचन् गजानामुत्साहाथ वाचमाधो-
रणस्य ॥१०॥

८६ रोषावेशादाभिमुख्येन काचित्पाणिग्राहं रहसैवापयातौ।
हित्वा हेतीमल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहू बाहवि व्यासृ-
जेताम् ॥१२॥

८७ शुद्धाः सगं न क्वचित्प्राप्तवन्तो दूरान्मुक्ताः शीघ्रतां दश-
यन्तः।

७९ निरन्तर आकाशमे व्यापते रणभेरियोके महाघोष, रथाके घोष, हाथियाके गजन, घोडोके हिनहिनानेसे एक ही इश्वरकी तरह अव्यक्त (घाष) हो गया ॥३॥

८० रोषके आवशमे शत्रुओकी आर दौडन, दूरस उठाये मोटी वाहुरूपी ध्वजाओवाले, पैदल सैनिकाके। लम्बी तिरछी तलवारे ध्वजाओके ममान शोभित हो रही थी ॥४॥

८१ घने चमवाले कमरमे रस्सी वध, शारीरिक प्रौढावस्थाकी शाभा युक्त प्रचड, प्रलय वायुसे प्रेरित महाशिलाओ जैसे प्रचड गज चलित हुये ॥६॥

८२ वेगवान् रथोके चक्काका चिल्लाती धुरी रागसे चाबुक उठाये, अगले शरीरको उठाये घोडोका उत्साहित करते सारथीके हाहाकारका प्रतिनदन कर रही थी ॥७॥

८३ ऊचे ध्वजस्तम्भोकी पताकाये, युद्धमे बाधक मिट्टीकी धूलाके माजनके लिये यमराज द्वारा चलाये जाते झाडुआ सी जान पडती थी ॥८॥

८४ धनुधर कठोर भारी ऊचे मडलो वाले धनुष को उठा घोषके साथ, चला रहे थे, गजारोही गजोके सिर पर खूब धक्के दे रहे थे ॥९॥

८५ घटोकी आवाज, नगाडोका गडगडाना, कठकी साकलकी आवाज, गजोका गजन, गजोके उत्साहके लिये हाथीवानोकी बोली "हा"का मानो प्रत्युत्तर दे रहे थे ॥१०॥

८६ योधा, रोषके आवेशसे सामनेसे वेगसे पास आ हाथ पकडकर, शस्त्रोको छोड पहलवानोकी तरह मुक्का मारते, हाथापाई करके लडने लगे ॥१२॥

८७ कही सग न पाकर दूरसे छोडे शीघ्रता दिखलाते हुये,

अन्त सेन विद्विषामाविशन्तो युक्त चक्रु सायका वाजि-
ताया ॥१३॥

८८ वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदान सग्रामाग्रे मानिना लज्जि-
तानाम् ।
अज्ञाताना शत्रुभिर्युक्तमुच्चै श्रीमन्नाम श्रावयति स्म
नग्ना ॥१६॥

८९ मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि प्रायेणाय व्यक्तमासीद्विशेष ।
आत्मीयास्ते ये पराच पुरस्तादभ्यावर्ती समुखो य
परोऽसौ ॥१८॥

९० कुन्तेनोच्चै सादिना हन्तुमिष्टान्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति
स्म ।
कर्मोदार कीतये कर्तुकामान्किवा जात्या स्वामिनो ह्लेप-
यन्ति ॥२३॥

९१ जेतु जैत्रा शेकिरे नारिसैन्यै पश्यन्तोऽधोलोकमस्तेषुजाला ।
नागारुढा पावतानि श्रयन्तो दूर्गाणीव त्रासहीनास्त्र-
सानि ॥२४॥
—सर्ग १८

(११) कविपरिचय —

९२ सर्वाधिकारी सुकृताधिकार **श्रीवर्मला**ख्यस्य बभूव राज्ञ ।
असक्तदृष्टिविरजा सदैव देवोऽपर **सुप्रभ**देवनामा[1] ॥१॥

९३ कालेऽमित तथ्यमुदकपथ्य **तथागत**स्येव जन सचेता ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतियस्य वचश्चकार ॥२॥

९४ तस्याभवद् **दत्तक** इत्युदात्त क्षेमी मृदुधमपरस्तनूज ।
य वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनै प्रतीय ॥३॥

---

१ उपजाति

शत्रुओकी सेनाओके भीतर प्रवेश करते, शुद्ध वाण वाजिता (पक्षवत्ता) के लिये उचित काम कर रहे थ ।।१३।।

८८ बन्दी लोग सग्राममे पराक्रम उत्साह के प्रशसक महाकाय करके अभिमानी लज्जित अज्ञात (पुरुषो) के श्रीयुक्त नामका शत्रुओके साथ ऊच स्वरसे सुना रहे थे ।।१६।।

८९ वहा दोना सेनाओके मिलन पर प्राय यह विशेष स्पष्ट (दीखता) था, (कि) जो पीछे वे आत्मीय, जो सन्मुख थे वह शत्रु ।।१८।।

९० सवार के उठाये भाले द्वारा मारनेके लिये अभिप्रत हाथीसे उत्तम घोडा नही डरता था। कुलीन लोग कीर्तिके लिये महान् कम करनेके इच्छुक स्वामियोको क्या लजवाते हैं ।।२३।।

९१ लोगोको नीचे देखते वाणाको फेंकते निभय गजारूढ विजयी, चलायमान दुर्गोका आश्रय लेनेकी तरह शत्रु-सेनासे नही जीते जा सक ।।२४।। —सग १८

११ कवि परिचय

९२ **श्रीवमलात** नामक राजाके **सुप्रभदेव** नामक सर्वाधिकारी पुण्याधिकारी, अनासक्त दष्टिवाले, दूसरे देवता जैसे सदा निमल थे ।।१।।

९३ उस समय जिनके मित वचनका पालन राजा अनुरोधके विना अपने हितकी इच्छासे ही करता था, जैसे **तथागतकी** सत्य हित-फलयुक्त वचनको होशमद ।।२।।

९४ उनके **दत्तक** नामक उदार, क्षमाशील, मृदु, धमपारायण पुत्र हुये। जिनको देखकर लोगोने **युधिष्ठरके** गुणग्राहक व्यास-कथित वचनको स्वीकार किया ।।३।।

९५ सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनित जनेन।
यश्च द्वितीय स्वयमद्वितीयो मुख्य सता गौणमवाप नाम[1] ॥४॥

९६ श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मज सुकविकीर्तिदुराशयाद
काव्य व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्[2] ॥५॥

३६ भवभूति (७०० ई०)

तीन नाटकों—"मालतीमाधव", "महावीरचरित" "और "उत्तर रामचरित"—के रचयिता होने के कारण भवभूति नाटककार के तौर पर प्रसिद्ध ह। यह भी कहा जाता ह, कि दार्शनिक उम्बेक और भवभूति एक ही थे। यह सभव भी हो सकता ह। वाक्यपतिराज ने अपने प्राकृत काव्य "गउडवह" (गौडवध) में इनकी प्रशसा की ह। वाक्यपतिराज, कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा (७५० ई०) के आश्रित थे, और भवभूति उनके गुरु थे। यशोवर्मा कौन से राज-वश के थे, यह निश्चय करना मुश्किल है। कान्यकुब्ज गुप्तो के सामन्त और पीछे स्वतन्त्र सम्राट मौखरियो की राजधानी रही, जिनके बाद वधन-वश के राज्यवधन और हर्ष वर्धन ने वहा से शासन किया। हर्षवधन की मत्यु (६४७ ई०) के बाद से गुर्जर प्रतिहारो की प्रभुता के आरभ होने के समय के बीच की प्राय दो शताब्दियो का कान्यकुब्ज का इतिहास विशृंखलित ह। इसी समय यशोवर्मा ने शासन किया था। मौखरी अपने नामो के साथ वर्मा लगाते थे, सभव ह, उन्हींके यह वशज रहा हो। "गउडवह" के एक श्लोक (८२९) में जिस सूयग्रहण का वणन आया है, वह डा० याकोबी के अनुसार १४ अगस्त ७३३ ई० को पडा था। भवभूति इससे पहले हो चुके थे। भवभूतिका 'मालतीमाधव" अरोचक नाटकका का एक अच्छा

---

१ आख्यानकी, २ इन्द्रवज्रा

९५ और स्वय अकेले, मत्पुरुषामें मुख्य जिन्हाने आनदमाा। मार लागा से मर्वाश्रय जैमा अनिद्य दूसरा नाम प्राप्न किय। ।।४।।

९६ उन दत्तकके पुत्र ने सुकवियाक। कर्ति (पान) की दुराशास, रमणीय श्रीशब्दसे सग की समाप्त किये लक्षणवाल लक्ष्मीपतिके चरित्रके कथनमात्रसे सुदर, इस **शिशुपालवध** नामक काव्यको बनाया ।।५।।

—ग्रथके अन्तमे

३६ भवभूति

उदाहरण ह, यद्यपि उसके कितने ही स्थल सुदर भी ह। "महावीरचरित" में महावीर राम के चरित को नाटक का रूप दिया गया है। उनकी सबसे सुदर कृति "उत्तररामचरित" ह, जिसे सस्कृत के उत्कृष्ट नाटको में रक्खा जा सकता ह और इसीसे भवभूति का लोहा मानने के लिये हम मजबूर ह। अपभ्रश-काल के और कवियो के पीछे जो परम्परा लाठी लेकर पडी हुई थी, उसीके शिकार भवभूति भी हुये। अपभ्रश सस्कृत से दूर और आधुनिक भाषाओ के अत्यन्त समीप तथा बीच की कडी थी। प्राकृत के काल तक सस्कृत के साथ उच्चारण के बदलने से समीपता थी इसलिये, अल्पज्ञ भी काव्यको कसौटी पर कसने के लिये तयार थे, पर अपभ्रश काल में अब विशेषज्ञो का बोलबाला था, जिनके डरके मारे भी कवियो को क्लिष्ट रचना की ओर झुकना पडता था। भवभूति चाहे कान्यकुब्ज के दरबार में रहे हो, किन्तु उनका जन्म विदभ बरार) के पद्मपुर नगर में हुआ था। इनका गोत्र काश्यप था, पिता का नाम नीलकठ, माता का नाम जतुकर्णी और दादा का नाम भट्टगोपाल था। इनका मुख्य नाम नीलकठ था, लेकिन भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था।

१ मालतीमाधवम्

(१) मालती-प्रेम—

(तत प्रविशति गृहीतचित्रफलकोपकरण कलहस)

१ कलहस —क्वेदानी तुलितमकरध्वजावलेपरूपविभ्रमाक्षिप्तमालतीहृदयमाहात्म्य नाथ माधव पश्यामि ? (परिक्रम्य) परिश्रान्तोऽस्मि । यावदिहोद्याने मुहूर्तं विश्रम्य **मकरन्द**सहचर नाथ **माधव** प्रेक्षिष्ये ।

(तत प्रविशति मकरन्द)

२ मकरन्द —कथित**मवलोकित**या मदनोद्यान गतो माधव इति । भवतु, गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) । दिष्ट्या वयस्य इत एवाभिवतते । (निरूप्य) अस्य तु

गमनमलस शून्या दष्टि शरीरमसौष्ठव,
श्वसितमधिक कि न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथवा ।
भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवन,
ललितमधुरास्ते ते भावा क्षिपन्ति च धीरताम् ॥२०॥

(तत प्रविशति यथानिदिष्टरूपो माधव)

३ माधव —

तामिन्दुसुन्दरमुखी सुचिर विभाव्य
चेत कथकथमपि व्यपवतते मे।
लज्जा विजित्य विनय विनिवार्य धैय-
मुन्मथ्य मन्थर विवेकमकाण्ड एव ॥२१॥

आश्चर्यम,
यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभाव-
मानन्दमन्दममृतप्लवनादिवासीत् ।

१ मालतीमाधव

१ मालती प्रेम—

१ कलहंस—कामदेव के अभिमान युक्त रूप-लावण्य के समान **मालती** के हस्तक महत्त्व का दिये स्वामी माधवको कहां देखूं? (परिक्रमा करके) थका हुआ हूं, तब तक यहां उद्यानमें क्षण भर विश्राम कर **मकरंदके** मित्र स्वामी **माधवकी** प्रतीक्षा करूँगा।

(तब मकरंद प्रवेश करता है)

२ मकरंद—**अवलोकितासे** कहा, कि माधव **मदन** उद्यान गये। अच्छा, जाता हूं। (परिक्रमा करके और देखकर) ओहो मित्र यही है। (ध्यानमें देखकर) इसकी तो—
गति मुस्त दृष्टि शून्य शरीर बुरा,
स्वास अधिक है यह क्या? अथवा इससे दूसरा क्या हो सकता है। भुवनमें कामदेवका हुक्म चल रहा है और यौवन विकारवाला है। वे ये ललित और मधुर भाव आदमीकी धीरताको भगा देते हैं ॥२०॥

(तब उपरोक्त रूपमें माधव प्रवेश करता है)

३ माधव—

उस चन्द्रमुखीको बहुत देरतक देखकर मेरा मन कैसे-कैसे दूसरा सा हो रहा है। लज्जाको जीतकर विनयको हटाकर धैर्यको मथितकर अकाल हीमें मद-बुद्धि ॥२१॥
आश्चय
उसके पास जो मेरा हृदय अचल हो अन्य भावोंको हटाकर आनद

तत्सनिधो तदधुना हृदय मदीय-
मगारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥२२॥

४ मकरन्द —(उपसृत्य) सखे माधव इत इत ललाट त-पस्तपति घर्माशु । तदस्मिन्नुद्याने मुहूर्तमुपविशाव ।

(उभौ परिक्रामत)

कलहस —कथ मकरन्दसहचर इदमेव बालोद्यानमल-करोति माधव । तद् दर्शयामि मदनवेदनाखिद्यमान-मालतीलोचनसुखावहमात्मनोऽस्य प्रतिच्छन्दकम । अथवा विश्रामसोख्य तावदनुभवतु ।

५ मकरन्द —तदस्यैव तावदुच्छ्वसितकुसुमकेसरकषायशीत-लामोदवासितोद्यानस्य काचनपादपस्याधस्तादुपविशाव ।

(उभौ तथा कुरुत)

मकरन्द —वयस्य माधव, सकलनगरागनाप्रवर्तितमहो-त्सवाभिरामकामदेवोद्यानयात्राप्रतिनिवृत्तमन्यादृशमिव भवन्तमवधारयामि । अपि त्वमवतीर्णोऽसि रति-रमणबाणगोचरताम् ?

(माधव सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)

६ मकरन्द —(विहस्य) किमवनम्रमुग्धमुखपुण्डरीक स्थितोऽसि, पश्य—

अन्येषु जन्तुषु च यस्तमसावतेषु,
विश्वस्य धातरि सम परमेश्वरेऽपि।
सोऽय प्रसिद्धविभव खलु चित्तजन्मा,
मा लज्जया तव कथञ्चिदपन्हू नतिर्भूत ॥२३॥

७ माधव —वयस्य, कि न कथयामि ? श्रूयताम् । गतोऽहमवलोकिताजनितकौतुक कामदेवायतनम् । इतस्तत परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोद-परिमलाकृष्टसकलमिलदलिपटलसकुलाकुलितमुकुला-

म म द हो मानो अमनमे तरता था। मा अब अगारसे छुरकी तरह व्यथित हो रहा है ।।२२।।

४ मकरन्द—(पास आकर) सखे माधव इधर इधर (आओ) ललाट तपानवाला सूय तप रहा है। सो इस उद्यानम जरा दर बठेग।

(दोना परिक्रमा करक)

कलहस—क्यो मकरदके साथ इस। वालोद्यानका माधव अलकृत कर रहे ह तो कामवेदनासे खिन्न मालतीक लाचनोके सुखद इनके निज। चित्रका दिखलाना हू। अथवा यह विश्राम-सुख अनुभव करे।

५ मकरद—ना हम खिलने फूलोक केसरक कषायसे शीतल-सुगधित इस। उद्यानके काचन वक्षके न।च बैठे।

(दोनो वैसा करत ह)

मकरद—वयस्य माधव, सार नगरकी स्त्रियाके महोत्सव, सुन्दर मदनोद्यानका यात्रा से लौटे आपको मै दूसरा ही दख रहा हू। क्या तुम रति पतिके वाणाके लक्ष्य (तो नही) हो गय ?

(माधव लज्जा-सहित मुह नीचे कर लता है)

६ मकरन्द—(विहसकर) क्यो झके पुडरीक जैसे मुग्ध मुखवाले हो, दखो—

जा अधकारमे ढक अन्य प्राणियो और
विश्वक विधाता परमेश्वरपर भ। एक समान,
प्रसिद्ध वैभवावला यह मनसिज है, उसे
लज्जामे किसी तरह भी तू छिपा नही सकता।।२३।।

७ माधव—वयस्य क्यो नही कहूगा सुनो अवलोकिताके कौतूहल उत्पादित करनेक कारण मै कामदेवक मन्दिरमे गया। इधर-उधर घूमकर मै थका था। उल्लसित मधुर मददायक, प्रमोद-गधसे आकृष्ट, सारे इकट्ठे भ्रमरो से अस्त-व्यस्त कलियोका मनोहर आभरण

वलीमनोहराभरणस्य रमणीयागणभुवो बालबकुलस्यालवालपरिसरे स्थित । तस्य च यदृच्छया निरन्तरनिपतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय विदग्धरचनामनोहरा स्रजमभिनिर्मातुमारब्धवान् । अनन्तर च देवस्य सचारिणी मकरकेतनस्य जगद्विजयवैजयन्तिका निर्गत्य गर्भभवनादुज्ज्वलविदग्धमुग्धबालनेपथ्यविरचनाविर्भावितकुमारीभावा महानुभावप्रकृतिरत्युदारपरिजना कापि तत एवागतवती ।

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा,
सौन्दयसारसमुदायनिकेतन वा ।
तस्या सखे नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधा ॥२४॥

८ अथ प्रणयिनीभिरनुचरीभि कुसुमसञ्चयावचयलीलाभिलाषवतीभिरभ्यर्थ्यमाना तमेव बकुलपादपोद्देशमागतवती । तस्याश्च कस्मिंश्चिदपि महाभागधेयजन्मनि बहुदिवसोपचीयमानमिव मन्मथव्यथाविकारमुपलक्षितवानस्मि । यत —

परिमृदितमृणालीम्लानमगप्रवृत्ति,
कथमपि परिवारप्रार्थनाभि क्रियासु ।
कलयति च हिमाशोर्निष्कलकस्य लक्ष्मी-
मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्त कपोल ॥२५॥

सा मम दर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिरिव चक्षुषोर्निरतिशयमानन्दमुत्पादयन्त्ययस्कान्तमणिशलाकेव लोहधातुमन्त -करणमुपसहृतवती । कि बहुना—

सतापसततिमहाव्यसनाय तस्या,
आसक्तमेतदनपेक्षितहेतु चेत ।
प्राय शुभ च विदधात्यशुभ च जन्तो,
सर्वकषा भगवती भवितव्यतेव ॥२६॥

पहिले रमणीय आगनमें उत्पन्न तरुण मौलसरी वृक्षके थालके पास खडा था। और यों ही उसके बराबर टपकते फूलोको लेकर चतुर रचनामे एक मनोहर माला बना रहा था। फिर प्रकृति से बहुत से परिजनोके साथ, उदार समृद्ध कामदेवकी चलती फिरती विश्व विजयिनी पताका सी घरके भीतर आ निकली। जो (अपने) उज्ज्वल चतुर मुग्ध बालिकाके भेस की बनावटसे, कुमारीपनको प्रकट कर रही थी।
सौंदर्य-राशिकी वह अधिष्ठात्री देवता थी,
या सौंदर्य-सारके समूहका सदन थी।
सख निश्चय उसके निर्माण की सामग्री चद्रकला,
कमलनाल और चादनी थी और विधाता मदन था ॥२४॥

८ तब फूलके जमा करने और चुननेके खेलकी अभिलाषावाली स्नेही अनुचरियोके प्राथना करने पर वह उसी मौलसरीके वृक्षके स्थानमे आई। फिर किसी बडे भाग्यवानके ऊपर उसके बहुत दिनोसे जमा होते काम-व्यथाके विकार को मैंने देखा। क्योकि—
मसली हुई कमलिनीकी तरह (उसका) अग कुम्हालाया था
परिवारकी प्राथनाओ पर किसी तरह कार्यमे प्रवृत्त होती थी,
गजके तुरन्त कटे दातके जैसा कमनीय उसका कपोल
निष्कलक चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहा था ॥२५॥

देखते ही वह मेरी आखोको अमृतकी बत्तीकी तरह अत्यन्त आनन्दित करती लोहधातुको (जैसे) चुम्बककी शलाका (उसी) तरह वह मेरे हृदयको खीचने लगी। बहुत क्या—
कारणके बिना ही यह (मेरा) चित्त,
सतापोके महाव्यसनके लिये (उसमें) आसक्त हो गया।
सबपर प्रभुत्व रखनेवाली भगवती भवितव्यता ही,
प्राय प्राणियोके शुभ और अशुभ कराती है ॥२६॥

९ मकरन्द —स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्चेति विप्रतिषिद्ध-मेतत्। पश्य

व्यतिषजति पदार्थावान्तर कोऽपि हेतु
न खलु वहिरुपाधीन्प्रीतय सश्रयन्ते।
विकसति हि पतगस्योदये पुण्डरीक,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त ॥२७॥

ततस्तत ?

१० माधव —ततश्च तत्र—

सभ्रूविलासमथ सोऽयमितीव नाम,
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्या ।
अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन,
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुरा कटाक्षा ॥२८॥

मकरन्द —(स्वगतम्) कथ प्रत्यभिज्ञापि नाम।

११ माधव —अथ ता सलीलमुत्तालकरकमलतालिकात-रलवलयावलीकमुत्रस्तकलहसविभ्रमाभिरामचरणसचरण रणरणायमानमजुमजीररणितानुविद्धमेखलाकलापकि-किणीरणरणत्कारमुखर प्रतिनिवृत्य "भर्तृदारिके, दिष्टया वर्धामहे। यदत्रैव कोऽपि कस्या अपि वल्लभ-स्तिष्ठति" इति मामगुलीदलविलासेनाख्यातवत्य ।

मकरन्द —हन्त, महत प्रथमानुरागस्योद्भेद ।

कलहस —(स्वगत) अनयो सरसरमणीयानुबन्धिनी खलु स्त्रीकथा।

मकरन्द —ततस्तत ।

१२ माधव —

अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त,
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्या ।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्य ,
आचायक विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥२९॥

९ मकरंद—स्नेह और वह (अकारण) हो, यह उलटी बात है। देखो—
पदार्थोंको कोई आंतरिक हेतु जोड़ता है,
प्रेम बाहरके साधनोंका आश्रय नहीं लेता।
सूर्यके उगनेपर कमल फूलता है,
चंद्रके उदित होनेपर चंद्रकान्त (मणि) पिघलता है ॥२७॥
तो फिर?

१० माधव—और तब वहां
मुझे देखकर उसके भौंहोंके संकेतके साथ
"यही है वह" यह परिचय शब्द
आपसमें चतुर सखियोंने (कहा),
फिर मुस्कानकी सुधा से मधुर कटाक्ष छोड़े ॥२८॥
मकरंद—(अपने आपसे) क्यों परिचय भी?

११ माधव—तब, लीलापूर्वक ऊपर की कमल सी हथेलीकी चंच-लतासे चलित कंकणोंको कर, भयभीत कलहंसकी गति से सुन्दर चरण-संचारसे रुनझुन करते कोमल पाजबके शब्दोंमें मिश्रित कटि-मेखलाओंकी किंकिणियोंके झंकारको मुखरित करते, लौटकर उन्होंने अंगुलियोंके विलाससे 'स्वामिपुत्री धन्य बधाई, जो यहीं पर किसी का प्रिय मौजूद है' कहकर मेरे बारमें संकेत किया।
मकरंद—अहा, प्रथम अनुरागका भारी विस्फोट!
कलहंस—(अपने आपमें) और स्त्री-सम्बन्धी इनकी कथा सरस रमणीय है।
मकरंद—फिर फिर।

१२ माधव—
इसी बीच वाणीसे कहनेके परे,
दीर्घनयनीका विचित्र कुछ उल्लसित
बहुत सात्विक विकार युक्त धैर्य हारी-बर्ताव
कामदेवके विजयी कौशलसा प्रकट हुआ ॥२९॥

१३ ततश्च—

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलताना,
मसणमुकुलिताना प्रान्तविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयनविपाते किंचिदाकुंचिताना,
विविधमहमभूव पात्रमालोकितानाम ॥३०॥

१४ ततश्च—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै,
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारै ।
हृदयमशरण मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्षै,
रपहृतमपविद्ध पीतमुन्मूलित च ॥३१॥

अह तु तस्या सर्वाकारहृदयगमाया सभाव्यमानस्नेहरसेन सनिधिना विधेयीकृतोऽपि पारिप्लवत्वमात्मनो निह्नोतुकाम प्राक्प्रस्तुतस्य वकुलपुष्पदाम्नो यथाकथचिदवशेष ग्रथितवानेव। ततो मिलितवेत्रपाणिवषवरप्रायपुरुषपरिवारा गजवधूमारुह्य नगरगामिन मार्गमिन्दुवदनाऽलकृतवती-

यान्त्या मुहुर्वलितकधरमानन तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभ वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या,
गाढ निखात इव मे हृदये कटाक्ष ॥३२॥

१५ तत प्रभृति—

परिच्छेदातीत सकलवचनानामविषय
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथ यो न गतवान् ।
विवेकप्रध्वसादुपचितमहामोहगहनो
विकार कोऽप्यन्तर्जडयति च ताप च तनुते ॥३३॥

१६ अपि च—

परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरस्थेऽपि विषये
भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम् ।

१३ और तब—

स्थिर विकम्पित उल्लसित भ्रू लताओं
स्निग्ध मुकुलित कोर तक फैली,
प्रत्येक दृष्टिपातपर किंचित आकुंचित
दष्टिपाताका मै विविध प्रकारसे लक्ष्य हुआ ॥३०॥

१४ और तब—

मथर आकुंचित मुग्ध स्नेहयुक्त स्थिर मद
अधिक खिली आतरिक आश्चर्यमे मुस्काती पुतलियो
घनी पलकोयुक्त आखोवाले उसके कटाक्षोने मेरे बेबस हृदयको,
लूटा छेदा पिया और उन्मूलित किया ॥३१॥

सब तरहसे हृदयगम उसका मभाव्य स्नेहरस युक्त समीपता से कृतकृत्य होते भी मैने अपने हलकेपनको छिपानेकी इच्छासे पहलसे शुरूकी मौलसरीके फूलकी बाकी मालाको जैसे-तैसे गूथा। तब वेतधारी हिजडो जैसे ह। अकिनर पुरुषोवाली उस चन्द्रमुखी ने हथिनी पर चढ़कर नगरगामी मार्गको गोभित किया।

जाते घुमाये ढँपवाले कमल-समान
मुखको क्षण भर तिरछे कधके साथ धारण करती।
उस घनी पलकोवालीने अमृत और विषमे बुझे
कटाक्षको मेरे हृदयमे दृढतासे गाड सा दिया ॥३२॥

१५ तबसे—

इस जन्ममे फिर कभी न अनुभूत विवेकसे परे, सारी वाणी का अविषय विवेकके नष्ट होनेसे महामोह सचयसे गहन, कोई विकार (मेरे) हृदय को जड बना ताप दे रहा है ॥३३॥

१६ और भी—

सामने अवस्थित वस्तुमे भी भेद नहीं व्यक्त होता,
बहुत अभ्यस्त बात सबधी स्मृति भी उलटी हो जाती है।

न संतापच्छेदो हिमसरसि वा चन्द्रमसि वा
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥३४॥

१७ कलहंस —दृढं कयाप्यद्यापहृतः । अपि नाम **मालत्येव** सा भवेत् ।
मकरन्द —(स्वगतम्) अहो, अभिषङ्गः । तत्किं निषेधयामि प्रियसुहृदम् ?

अथवा—

मा मूमुहत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा,
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत् ।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्-
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च ॥३५॥
(प्रकाशम्) वयस्य, अपि विदिते तदन्वयनामनी ?

१८ माधव —श्रूयताम् । अथ तस्याः करेणुकाधिरोहणसमय एव ततः सखीकदम्बकादन्यतमो वारयोषिद्विलम्ब्य कुसुमापचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्तवती—"महाभाग, सुश्लिष्ठगुणतया रमणीयः एष संनिवेशः । कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिकास्मिन्वर्तते । तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषुव्यापारः । तद् भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य । फलतु निर्माणरमणीयता । समासादयतु सरसः एष भर्तृदारिकायाः कण्ठावलम्बनमहार्घताम्" इति ।
मकरन्द —अहो वैदग्ध्यम् ।

१९ माधव —तया मदनुयुक्तयाख्यातम्—"इयममात्य**भूरिवसो** प्रसूति**र्मालती** नाम । अहं च भर्तृदारिकायाः प्रसादभूमिर्धात्रेयिका **लवंगिका** नाम" इति ।
कलहंस —(सहर्षं) किं नाम मालतीति । दिष्ट्या विलसितं भगवता देवेन कुसुमायुधेन । जितमस्माभिः ।

शीतल सरोवर या चादनामे ताप नष्ट नहीं होता।
मरा मन निरतर घूमता कुछ चित्रित कर रहा है।।३४।।

१७ कलहस——किसीने बलपूवक आज आकृष्ट किया है। शायद वह **मालती** ही होगी।

मकरद——(अपने आपमे) अहा, आसक्ति! तो क्या प्रिय मित्रको मना करूँ? अथवा——

आपको कामदव मोहमे न डाले,
तुम्हारी बुद्धि मलिन बहुत विकारावाली न हो।
इत्यादि कहना (उसकेलिये) यहा निरथक ही है,
जिसके ऊपर कि कामदेव वाण और नवयौवन चढाये है।।३५।।
(प्रकट) वयस्य क्या उसक कुल और नामको मालूम किया?

१८ माधव——सुनो। तब उसके हथिनी पर चढनके समय उन सखियामे से एक सहली थम कर फूल चुनती चुनती पास आ प्रणाम करके कुसुममालाके बहानसे मुझसे बोली महाभाग, सुदर गठित गुण (सूत्र) के कारण यह रचना रमणीय है। हमारी स्वामिपुत्रीकी इसमे दिलचस्पी है। उसमे नया और विचित्र पुष्पवाणका व्यापार है। सो आपकी चतुराइ कृताथ, निमाणकी रमणीयता सफल होवे। यह (माला) स्वामिपुत्रीके कठमे धारण करनेकी सरस बहुमूल्यताको प्राप्त होव।
मकरद——अहो चतुराई।

१९ माधव——मेरे पूछनेपर उसने बतलाया 'यह मन्त्री **भूरिवसु**की कन्या मालती है। और मै स्वामिपुत्रीकी कृपापात्र धाईकी लडकी **लवगिका** हू।'

कलहस——(खुश होकर) क्या कहा मालती! धन्य, धन्य, भगवान् कामदवने (खूब) लीला दिखलाई। हमारी जय हुई।

२० मकरन्द —(स्वगतम्) अमात्यभूरिवसोरात्मजेत्यपर्याप्तिबहुमानस्य। अपि तु, मालनी मालतीति मोदते भगवती **कामन्दकी**। ता च राजा **नन्द**नाय याचत इति किवदन्ती श्रूयते। (प्रकाशम्) तत ?

२१ माधव —तया चानुबध्यमानस्ता बकुलमालामात्मन कण्ठादवताय दत्तवान्। असौ पुनरभिनिविष्टया दृशा मालतीमुखावलोकनविहस्ततया विषमरचितैकभागामपि तामेव मुहुर्मुहुबहुमन्यमाना "महानय प्रसाद" इति प्रतिगहीतवती। अनन्तर च यात्राभगप्रचलितस्य महत पौरनैगमजस्य सकुलेन विघटिताया तस्यामागतोऽस्मि।

२२ मकरन्द —वयस्य, माल्त्या अपि स्नेहदशनात्सुश्लिष्टमेतत्। यो हि कपोलपाण्डुतादिचिह्न सूचित प्रागनुरागस्तस्या कामाभिषग सोऽपि त्वन्निबन्धन इति व्यक्तमेतत्। एतत्तु न ज्ञायते क्व दष्टपूवस्तया वयस्य इति। न खलु नादृश्यो महाभागधेयजन्मानोऽन्यत्रासक्तचेतसो भूत्वा परत्र चक्षूरगिण्यो भवन्ति। अपि च—

अन्योन्यसभिन्नदृशा सखीना।
तस्यास्त्वयि प्रागनुरागचिह्नम्।
कस्यापि कोऽपीति निवेदित च

२३ माधव —कि चान्यत् ?

मकरन्द —

धात्रेयिकायाश्चतुर वचश्च ॥३६॥

२४ कलहस (उपसत्य)—एतच्च। (चित्र दशयति)-(उभौ पश्यत)

मकरन्द —**कलहसक**, केनेद **माधवस्य** रूपमभिलिखितम् ?

२५ कलहस —येनैवास्य हृदयमपहृतम्।

मकरन्द—अपि नाम मालत्या ?

२० मकरद—(अपन आपस) मत्र। भूरिवसुक। आमजा ह यह सम्मान पूण नही है। पर मानत। मालती कहती भगवत। कामदकी प्रसन्न हाती है। और इसे राजा नदनक लिय माग रहा ह यह किंवदन्ती सुनी जाती है। (प्रकट) तब ?

२१ माधव—उसक आग्रह करनपर उस बकुल मालाका अपने कठमे उतार कर मैंने द दिया। बहुत आदरयुक्त दष्टिम मालतीक मुखके अवलोकन के समय भूल कर एक भागमे उलटा गुथी मालाको लेकर भी बार-बार कृतज्ञता प्रकट करत 'यह भारी प्रमाद है कह कर उसने ले लिया। फिर मले के उठनेसे चलत नागरिक जनोकी भारी भीड में उस (तरुणी) क दूर होनेपर मैं चला आया।

२२ मकरद—मित्र, मालतीके स्नेहयुक्त दर्शनस यह अच्छा हुआ, जो कि मालाका पीलापन आदि चिह्नवाला, उसकी कामासक्ति पहलका अनुराग दिखलाइ पडा म। भ नर ह कारण यह स्पष्ट है। पर यह नही मालूम हुआ, कि उसन वयस्यका पहल कहा देखा ? वैसी बड-भागिनी एकमें चित्तासक्त हो दूसर पर नेत्राम प्रम करनवाली नही होती। और भी—

एक दूसरेसे आखे मिलाती उसकी सखियाका
'किसीका कोई यह कहना'
तेर विषयमे उसका पहलसे प्रेम-चिह्न

२३ माधव—और दूसरा क्या ?

मकरद—

धाईकी बेटीका चतुराई सहित बोलना ॥३६॥

२४ कलहस—(पास आकर) और यह। (चित्र दिखलाता है)

(दोनो देखते है)

मकरद—कलहसक किसने माधवका यह चित्र चित्रित किया ?

२५ कलहस—जिसने कि इनके हृदयको चुराया।

मकरद—क्या मालतीने ?

२६ कलहस —अथ किम् ?
माधव —वयस्य मकरन्द, प्रसन्नप्रायस्ते तक ।
मकरन्द —कुतोऽस्याधिगमस्ते ?

२७ कलहस —मम तावन्**मन्दारिका**हस्तात्। तस्या अपि **लवगिका**सकाशात्।
मकरन्द —कथय, किमाह मन्दारिका माधवालेख्य-प्रयोजन मालत्या ?

२८ कलहस —उत्कण्ठाविनोदनमिति।
मकरन्द —वयस्य, समाश्वसिहि—
या कौमुदी नयनयोभवत सुजन्मा,
तस्या भवानपि मनोरथबन्धबन्धु ।
तत्सगम प्रति सखे न हि सशयोऽस्ति,
यस्मिन्विधिश्च मदनश्च कृताभियोग ॥३७॥
द्रष्टव्यरूपा च भवतो विकारहेतुस्तदत्रैवालिख्यताम्।

२९ माधव —यदभिरुचित वयस्याय। (लिखन्) सखे मकरन्द,
वारवार तिरयति दृशावुद्गतो बाष्पपूरस्,
तत्सकल्पोपहितजडिमस्तम्भमभ्येति गात्रम्।
सद्य स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलागुलीक,
पाणिर्लेखाविधिषु न नितरा वतते कि करोमि॥३८॥
तथाप्यवहितोऽस्मि। (चिरादभिलिख्य दशयति)

३० मकरन्द —(चित्र निवण्य) उपपन्नस्तावदत्रभवतोऽभि-षग। (सकौतुकम्) कथमचिरेणैव निर्माय लिखित श्लोक ? (वाचयति)
जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादय,
प्रकृतिमधुरा सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।

२६ कलहस—और क्या ?

माधव—मित्र मकरद, तरा तक ठीक ही है।
मकरद—कहासे तुझ यह मिला ?

२७ कलहस—मुझे मदारिकाके हाथसे उसे भी लवगिकाके पाससे।
मकरद—बतला, मदारिकाने मालती को माधवके चित्रका क्या प्रयोजन बतलाया ?

२८ कलहस—उत्कठा हटाना।
मकरद—वयस्य निश्चित हो जाओ।
जो तुम्हारे नेत्रोकी सुजमी चादनी है,
आप ही उसके मनोरथमे बधे वधु है।
सखा, उसके मिलनमे सशय नही,
जिसके लिये विधाता और मदन (दोनो) कटिबद्ध हैं ।।३७।।
यही आपके मनोविकारका कारण है, सो यहा ही उस सुन्दरीको चित्रित करो।

२९ माधव—मित्र की जो मर्जी। (चित्रित करते) सख मकरद,
आखोमे निकलते आसू बार-बार ढाक देते है
उसके सकल्पसे आई जडता से शरीर स्तब्ध हो रहा है।
तुरन्त पसीजता कपनसे लगातार चचल अगुलियोंवाला यह,
हाथ चित्रण-कार्यमे बिल्कुल नही लगता, क्या करू ।।३८।।
तो भी लगा हू। (देरसे चित्रित करके दिखलाता है) '

३० मकरद—(चित्रको भली प्रकार देखकर) यहा आपकी आसक्ति बिल्कुल उचित है। (कौतूहलके साथ) क्या जल्दी ही रचकर श्लोक भी लिख दिया ? (बाचता है)—
ससारमे नवीन चद्रकला आदि पदार्थो की जय है, किन्तु स्वभावत
मधुर वह दूसरे ही है, जो कि मनको मस्त करते हैं।

मम तु यदिय याता लोके विलोचनचन्द्रिका,
नयनविषय जन्मन्येक स एव महोत्सव ॥३०॥

(प्रविश्य)

३१ मन्दारिका—कलहस कलहस, चोर चोर, पदानुसारेण लब्धोऽसि। (सलज्ज) कथ तावपि महानुभावावत्रैव ? (उपसृत्य) प्रणमामि।

उभौ—मन्दारिके, इत आगम्यताम्।

३२ मन्दारिका—कलहसक, उपनय चित्रफलकम्।

कलहस—गृहाणेदम्।

३३ मन्दारिका—केन किंनिमित्त वाऽत्र मालत्यभिलिखिता?

कलहस—य एव यन्निमित्त मालत्या।

३४ मन्दारिका—(सहषम्) दिष्टया उपदर्शितफल विज्ञान प्रजापते।

मकरन्द—सखि मन्दारिके, यदत्र वस्तुन्येष ते वल्लभ-कथयति, अपि तत्तथा?

३५ मन्दारिका—महाभाग, तत्तथा।

मकरन्द—क्व पुनर्मालती माधव प्राग्दृष्टवती ?

मन्दारिका—लवगिका भणति वातायनगतेति।

मकरन्द—नन्वमात्यभवनासन्नरथ्यैव बहुश सचरावहे, तदुपपन्नमेतत्।

३६ मन्दारिका—अनुमन्यता महाभाग, यावदिद भगवतो देवस्य मदनस्य सुचरित प्रियसख्यै **लवगिकायै** निवेदयिष्यामि।

मकरन्द—प्राप्तावसरमेतद् भवत्या।

मकरन्द—वयस्य, मध्याह्नोऽतिवर्तते। तदेहि। सस्त्यानमेव प्रविशाव।

(उत्थाय परिक्रामत)

मेरे लिये तो ससारमे जो यह नेत्र चद्रिका,
नयन गोचर हुई, इस जन्ममे (वस) वही एक महोत्सव है ॥३०॥

(प्रवेश करके)

३१ मदारिका—कलहस चोर चोर पैरोंके निशानसे तुझे पकड लिया। (लज्जित हो) क्या, वे दोनो महानुभाव भी यही है ? (पास जाकर) प्रणाम करती हू।

दोनो—मदारिके, यहा आइये।

३२ मदारिका—कलहसक ला चित्र।

कलहस—ले इसे।

३३ मदारिका—किसलिये किसने यहा मालती चित्रित की ?

कलहस—जिसके लिये, मालतीने चित्रित किया।

३४ मदारिका—(खुशीके साथ) धन्य ब्रह्माके विज्ञानका फल दिखला दिया।

मकरद—सखी मदारिके, इसके बारे मे जो यह तेरा प्रियतम कहता है, क्या वह वैसा ही है ?

३५ मदारिका—महाभाग, वह वैसा ही है।

मकरद—तो **मालती**ने कहा पहले **माधव**को देखा ?

मदारिका—**लवगिका** कहती है, खिडकी परसे ?

मकरद—हा, अमात्यके भवनके पास वाली इस सडकपर हम बहुधा आया जाया करते थे सो यह ठीक है।

३६ मदारिका—अनुमति दे महाभाग कि भगवान् कामदेवके इस सुन्दर कामको मैं प्रियसखी **लवगिका**से निवेदन करू।

मकरद—यह आपके लिये ठीक अवसर है।

(उठकर दोनो परिक्रमा करते है)

३७ माधव—एव हि मन्ये—
घर्माम्भोविसरविवतनैरिदानी,
मुग्धाक्ष्या परिजनवारसुन्दरीणाम्।
तत्प्रातर्विहितविचित्रपत्ररेखा-
वैदग्ध्य जहति कपोलकुकुमानि।।४०।।

३८ अपि च—
उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोश-
प्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो।
तामीषत्प्रचलविलोचना नतागी-
मालिगन्पवन मम स्पृशागमगम्।।४१।।

३९ मकरन्द—(स्वगतम्)
अभिहन्ति हन्त कथमेष माधव
सुकुमारकायमनवग्रह स्मर।
अचिरेण वैकृतविवतदारुण
कलभ कठोर इव कूटपाकल ।।४२।।
तदत्र भवती कामन्दकी न शरणम्।

४० माधव—(स्वगतम्)
पश्यामि तामित इत पुरतश्च पश्चाद्
अन्तबहि परित एव विवतमानाम्।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभ वहन्ती,
आसगतियक्प्रवर्तितदृष्टिवक्त्रम।।४३।।

४१ (प्रकाशम्) वयस्य, मम हि सप्रति—
प्रसरति परिमाथी कोऽप्यय देहदाहस्,
तिरयति करणाना ग्राहकत्व प्रमोह।
रणरणकविवृद्धि बिभ्रदावर्तमान,
ज्वलति हृदयमन्तस्तन्मयत्व च धत्ते।।४४।।
(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

३७ माधव—ऐसा समझता हूं—
अब (उस) मुग्ध नयनाकी परिजन-सुन्दरियो द्वारा
सबेरे बनाई वह अद्‌भुत पत्राकन चातुरी।
पसीनेकी बूंदोके फैलनसे
कपोलके केसरको छोडता होगा। ॥४०॥

३८ और भी,
खिली कलियोसे भयकर कुदके गभम,
गिरते घने केसरका गधके साथी हे पवन
उस किंचित् चलित नयना, झुके अगोवालीका,
आलिगन कर तुम मेरे अग-अगका स्पश करो ॥४१॥

३९ मकरद—(अपने आपस)
हत क्या यह अनियन्त्रित कामदव।
सुकुमार शरीरवाल **माधव**को (वैम ही) मार रहा है।
(जैसे) जल्दी ही दारुण परिणाम दनेवाला,
कूटपाकल (कठोर) रोग, तरुण गजको ॥४२॥
सो यहा **कामद**की जो ही हमारी रक्षा कर सकती है।

४० माधव—(अपने आपसे)
भीतर-बाहर चारो ओर ही घूमती,
फूले मुग्ध सुवणकमल समान,
तिरछी दष्टि युक्त मुखको धारण करती,
उसे वहा-यहा सामने और पीछे देखता हू ॥४३॥

४१ (प्रकट) वयस्य, मुझे तो इस समय—
यह कोई अति पीडक देह-दाह फैल रहा है,
भारी मोह इन्द्रियोको ग्रहण-शक्ति बिना कर रहा है।
बढती उत्कठा युक्त चक्कर काटता
हृदय भीतरसे जलता तन्मय हो रहा है ॥४४॥

(सब चले गये)

—अक १

(२) मालती-वियोग

४२ माधव —हा प्रियवयस्य सभावय। परिष्वजस्व माम्। प्रिया मालती प्रति तु निराश एव सवृत्तोऽस्मि।

४३ मकरन्द —एषोऽह सभावयामि जीवितेश्वरम्। (विलोक्य सकरुणम्) कष्टम्। कथमाविर्भूतमत्परिष्वगोत्कण्ठ एव निश्चेतन सवृत्त। तत्कृतमिदानी जीविताशाव्यसनेन। सवथा नास्ति मे प्रियवयस्य इति युक्त परिच्छेद। हा वयस्य—

४४ यत्स्नेहसज्वरवता हृदयेन नित्य
आबद्धवेपथु विनापि निमित्तयोगात्।
त्वय्यापदो गणयता भयमन्वभावि,
तत्सवमेकपद एव मम प्रणष्टम्॥३६॥
अथवा वर त एवातिक्रान्ता मुहुर्ता, येषु तथाविधमपि भवन्त चेतयमानमनुभूतवानस्मि। इदानी तु मम—

४५ भार कायो जीवत वज्रकील,
काष्ठा शून्या निष्फलानीन्द्रियाणि।
कष्ट कालो मा प्रति त्वत्प्रयाणे,
शान्तालोक सवतो जीवलोक॥३७॥

४६ (विचिन्त्य) तत्कि नु माधवास्तमयसाक्षिणा भवितव्यमित्यतो जीवामि? तदस्माद् गिरिशिखरात्पाटलावत्या निपत्य माधवस्य मरणाग्रेसरो भवामि। (सकरुण परिवृत्यावलोक्य च) कष्टम्।

४७ तदेतदसितोत्पलद्युति शरीरमस्मिन्नभूत्,
ममापि दृढपीडनैरपि न तृप्तिरालिंगने।
यदुल्लसितविभ्रमा बत निपीतवत्य पुरा
नवप्रणयविभ्रमाकुलितमालतीदृष्टय॥३८॥

२ मालती का वियोग

४२ माधव—हा प्रिय मित्र प्रम दिखा मुझे आलिंगन कर। प्रिया **मालती**के बारेमे तो मैं निराश हो गया हू।

४३ मकरद—यह मैं (अपन) जीवनके स्वामी को प्यार करता हू। (देखकर करुणोके साथ) हाय! मर आलिंगनकी उत्कठा होते ही बेहोश हो गया। ता अब जीवनकी आशाके लिय हैरान होना बेकार है। मेरा प्रिय मित्र (अब) बिल्कुल नही रहा, यही सोचना ठीक है। हा मित्र —

४४ जो कि स्नेह ज्वरयुक्त हृदयसे सदा,
बिना कारण ही कापते हुये,
तेरे विषयमे आपत्तियोका गिनते मैंने भय अनुभव किया,
सो सब मेरा एक क्षणमे ही नष्ट हो गया ॥३६॥
अथवा वह बीत हुए क्षण ही अच्छे, जिनमे कि वैसे भी (कम से कम) मैंने होश हवास रखते आपको साक्षात् तो किया था। अब तो मेरे लिये—

४५ शरीर भार है जीवन वज्रका काटा है।
दिशाये सूनी ह इद्रिया निष्फल ह।
मेरे लिये काल कष्टमय हैं तरे महाप्रयाण करनपर,
चारो ओर जीवलोक बुझे-प्रकाशसा है ॥३७॥

४६ (सोचकर) तो क्या माधवके अस्त होनेका साक्षी होनेके लिये (ही) म जी रहा हू? (नही), इस पवतशिखरसे **पाटलावती** नदीमें गिरकर माधवके मरणमें अग्रगामी होता हू। (करुणाके साथ घूमकर और देखकर) हाय—

४७ सो सावले रगके शरीरके दृढ दबावके,
अलिगनोसे मेरी तृप्ति नही हुई।

हन्त भो, एकस्या तनावेतावतो गुणसमाहारस्य सनिवेश कथमिवाभूत्? सखे माधव—

४८ आपूणश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुख,
सजातश्च घनाघनो जलधर शीर्णश्च वायोजवात्।
निर्वत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना,
त्व चूडामणिता गतश्च जगत प्राप्तश्च मृत्योवशम्॥३९॥

४९ तत्परिष्वजे तावदेव गतमपि प्रियवयस्यम्। अर्थितश्चानेन सप्रत्ययमेवाथ। (परिष्वज्य) हा वयस्य, विमलकलानिधे गुणगुरो, हा मालतीस्वयग्राहजीवितेश्वर, हा कामन्दकीमकरन्दानन्दजनक **माधव**, अयमत्र ते जन्मन्यपश्चिम पश्चिमावस्थाप्रार्थितो मकरन्दबाहुपरिष्वग। सखे, सप्रति मुहूतमपि मकरन्दो जीवतीति मैव मस्था। कुत —

५० आ जन्मन सह निवासितया मयैव,
मातु पयोधरपयोऽपि सम निपीय।
त्व पुण्डरीकमुखबन्धुतया निरस्त,
एको निवापसलिल पिबसीत्ययुक्तम्॥४०॥

(सकरुण विमुच्य, परिक्रम्य) इयमधस्तात्**पाटलावती**।

भगवत्यापगे—

५१ प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सभव।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसचर॥४१॥
(इति पतितुमिच्छति)

५२ सौदामिनी—(प्रविश्य सहसा वारयित्वा) वत्स, कृत साहसेन।

मकरन्द—(विलोक्य) अम्ब, कासि? किमर्थ त्वयाह प्रतिषिद्ध?

जिसे कि अभिनव प्रेमकी लीलासे आकुलित,
उल्लसित विलासयुक्त मालतीकी नजरोंने पहले पिया था ।।३८।।
हन्त हे, एक शरीरमें इतने गुणोंका समागम कैसे हुआ ? सखे माधव,

४८ कलाओंसे परिपूर्ण निर्मल इन्दु राहुके मुखमे चला गया
और घना हुआ मेघ वायुवगसे विशीर्ण हो गया।
फलदार श्रेष्ठ वृक्ष वनकी आगसे जल गया।
जगत्के चूडामणि तुम मृत्युके वशमे चले गये ।।३९।।

४९ तो ऐसे ही प्रिय मित्र का आलिंगन करता हूँ। अभी इसने ऐसा चाहा भी था। (आलिंगन करके) हा मित्र, निर्मल चन्द्र गुणोंमे गुरु, हा **मालती**के स्वयं बनाये जीवितेश्वर, हा **कामंदकी** और **मकरंद**के आनंददायक माधव यहा इस जन्ममे अन्तिम अवस्थामें तेरा प्रार्थित मकरंदका यह दुर्लभ बाहु-आलिंगन है। सखे, अब मुहूर्त भर भी मकरंद जीयेगा, यह न समझना। क्योंकि—

५० जन्मसे ही इकठ्ठा मेरे साथ रहते,
माताके स्तनका दूध भी एक साथ पीते,
तुम कमलमुखके सदश होते दूसरेके बिना,
अकेले तर्पणका जल पीयो, यह अनुचित है ।।४०।।
(करुणाके साथ छोडकर परिक्रमा करके) यह नीचे **पाटलावती** बह रही है। भगवती नदी,

५१ प्रिय मित्र जहा जन्मे वही मेरा भी जन्म हो।
मैं फिर भी इसका साथी होऊं ।।४१।।
(गिरना चाहता है)

५२ सौदामिनी—(प्रवेश करके एकाएक रोककर) वत्स रहने दे, यह साहस।
मकरंद—(देखकर) मा, तुम कौन हो ? किसलिये तुमने मुझे मना किया ?

५३ सौदामिनी—आयुष्मन्, कि त्व **मकरन्द** ?
मकरन्द —मुच। स एवास्मि मन्दभाग्य ।

५४ सौदामिनी—वत्स, योगिन्यस्मि। **मालती**प्रत्यभिज्ञान च धारयामि। (बकुलमाला दशयति)।
मकरन्द —(सोच्छ्वास सकरुणम्) अपि जीवति मालती ?

५५ सौदामिनी—अथ किम्। वत्स, किमत्याहित माधवस्य, यदनिष्ट व्यवसितोऽसीत्याकम्पितास्मि।
मकरन्द —आर्ये, तमह प्रमुग्धमेव वैराग्यात्परित्यज्यागत। तदेहि, तूर्ण सभावयाव ।

(त्वरित परिक्रामत)

मकरन्द —(विलोक्य) दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो वयस्य ।

५६ सौदामिनी—(स्वगत) सवदत्युभयोर्मालतीनिवेदित शरीराकार ।

५७ माधव —(आश्वस्य) अये, प्रतिबोधितवानस्मि केनापि (विचिन्त्य) नूनमस्याय नवजलधरप्रभजनस्यानवेक्षितास्मदवस्थो व्यापार। भगवन् पौरस्त्य वायो,

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातकान्,
कलय शिखिन केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान्।
विरहिणि जने मूर्च्छा लब्ध्वा विनोदयति व्यथा,
अकरुण पुन सज्ञाव्याधि विधाय किमीहसे ।।४२।।

५८ मकरन्द —सुविहितमनेनाखिलजन्तुजीवनेन मातरिश्वना।
अपि च—

एते केतकसूनसौरभजुष पौरप्रगल्भागना—
व्यालोलालकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्तानना ।

५३ सौदामिनी—आयुष्मान, क्या तू **मकरंद** है?
मकरंद—छोडो, मै वही अभागा हू।

५४ सौदामिनी—वत्स, मै योगिनी हू, **मालती** की खबर मेरे पास है।
(मौलसरीकी माला दिखलाती है)
मकरंद—(उसास ले करुणाके साथ) क्या **मालती** जीती है?

५५ सौदामिनी—और क्या? वत्स क्या माधवका अति अहित हो गया, जो कि तुम अनिष्ट करने पर उतारू हो। यह सोच मै काप रही हू।
मकरंद—आर्ये, उसे मै मूर्च्छित ही छोडकर निराश हो आ गया। सो आओ, जल्दी (उसे) सभाले।

(जल्दी जल्दी दोनो परिक्रमा करते)

मकरंद—(देखकर) धन्य, होशमे आ गया है मित्र।

५६ सौदामिनी—(अपने आपसे) मालती की बतलाई शरीर आकृति दोनो की मिलती है।

५७ माधव—(आश्वास लेकर) अये किसीने मुझे जगा दिया! (सोच कर) निश्चय ही हमारी अवस्थाका ध्यान न किये नवीन मेघवाले इस वायुका यह काम है। भगवान पूर्वी वायु—
जल लिये हुए मेघोको घुमाओ चातको को प्रमुदित करो,
मोरोको केकाके लिये उत्कठित करो, केवडोको कठोर बनाओ।
मूर्च्छित हो व्यथा दूर हुये विरही जनोको,
होशका रोग लगा, हे निष्ठुर, तुम क्या चाहते हो ॥४२॥

५८ मकरंद—समस्त प्राणियोके जीवन इस वायुने ठीक (ही) किया। और भी—
केवडेके पुष्पकी गधवाले, नगरकी ढीठ अगनाओके
कुचित अकलकलताओपर गिरनेके बहाने मुखका उपभोग करते,

किञ्चोन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पद—
व्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिण कर्षन्ति वर्षानिला ॥४३॥

५९ माधव —देव वायो, तथापि भवन्तमेव प्रार्थये—
विकसत्कदम्बनिकुरम्बपासुना,
सह जीवित घटय मे प्रिया यत ।
अथवा तदगपरिवासशीतल,
मयि किंचिदपय भवास्तु मे गति ॥४४॥
(कृताजलि प्रणमति)

६० सौदामिनी—सुसमाहित खल्वभिज्ञापणस्यावसर ।
(अजलौ बकुलमालामर्पयति) ।

६१ माधव —(साकूत सहर्ष सविस्मय च) कथमियमस्म-
द्विरचिता प्रियास्तनेनोन्नाहदुर्ललितमूर्तिरनगमन्दिरागणब-
कुलपादपकुसुममाला ? (सम्यड निरूप्य) क सदेह ?
तथा हि स एवायमस्या —

६२ मुग्धे दुसुन्दरतदीयमुखावलोक—
हेला विश्रृंखलकुतूहलनिह्नवाय ।
दुन्यस्तपुष्परचितोऽपि लवगिकायास्,
तोष ततान विषमग्रथितो विभाग ॥४५॥
(सहर्षोन्मादमुत्थाय) चण्डि मालति, इय विलोक्यसे ।
(सकोपमिव) अयि मदवस्थानभिज्ञे—

६३ प्रयान्तीव प्राणा सुतनु हृदय ध्वसत इव,
ज्वलन्तीवागानि प्रसरति समन्तादिव तम ।
त्वराप्रस्तावोऽय न खलु परिहासस्य विषयस्,
तदक्ष्णोरानन्द वितर मयि मा भूरकरुणा ॥४६॥
(सवतो दृष्ट्वा सनिर्वेदम्) कुतोऽत्र मालती ? (बकुल-
माला प्रति) अये प्रियाप्रणयिनी, परमोपकारिण्यसि—

और फूले कदम्बकी कलियोके पुटकी रजमे लोटते, भवरोके शब्दोसे मनोहर (ये) वर्षा वायु विरहियोका आकर्षण करते है ।।४३।।

५६ माधव—हे वायुदेव तो भी आपसे यह प्रार्थना करता हूँ—
फूलते कदम्बकी कलियो की धूलिसे
जहा मेरी प्रिया है उसका सहजीवी बनाओ
अथवा उसके अंगसे वासित कुछ शीतलता,
मेरे ऊपर डालो । आप ही तो मेरे सब कुछ है ।।४४।।
(हाथ जोडकर प्रणाम करता है)

६० सौदामिनी—चाहना देनेका (यह) बहुत अच्छा अवसर मिला।
(अंजलिमे मौलसरीकी माला डाल देती है) ।

६१ माधव—(जिज्ञासा, हर्ष और विस्मयके साथ) क्या यह प्रियाके उच्च स्तनसे खेलनेवाली मूर्ति कामदेव-मन्दिरके आगनमे हमारी बनाई बकुल वृक्षकी पुष्पमाला है। (अच्छी तरह देखकर) इसमें क्या संदेह क्योकि इसमे वही है—

६२ मुग्धचन्द्र से सुन्दर उसके मुखके अवलोकन
के भाव वाले (अपने) अस्त व्यस्त कुतूहलको छिपानेके लिये,
बिना क्रमके फूलोसे बुरा गुथा भी इसका भाग,
लवंगिका के संतोषको बढानेवाला हुआ ।।४५।।
(हर्ष और उन्मादके साथ उठकर)हे चडी मालती, यह तू दिखाई दे रही है। (कुपित सा) अरी, मेरी अवस्थासे अनभिज्ञ—

६३ हे सुशरीर, प्राण जा से रहे है, हृदय ध्वस्त सा हो रहा है।
अंग जल से रहे है, चारो ओर अंधकार फैल रहा है।
यह जल्दीका प्रस्ताव है मजाकका विषय नही है।
सो (आ) आखोको आनन्द दे मेरे प्रति निष्ठुर मत हो ।।४६।।
(चारो ओर देखकर खेदके साथ) यहा कहा है मालती ? (बकुल मालाके प्रति) अये, प्रियाकी प्रेमिका तू परमोपकारिणी है।

६४ हे प्रिय सखी, मोहके भीषण कष्टसे भारी, मन्मथके उन्मादका वेग
जब निराबाध हो दुस्सह हो उठे।
तब तुझ कमलाक्षीका आलिंगन अथवा
प्राण रक्षा मेरे आलिंगनके समान हितकर हुआ ॥४७॥

(करुणाके साथ उसास लेकर)

६५ आनन्ददायक कामज्वरदीपक,
गाढ अनुरागके रसोंसे युक्त और नव,
मेरी मृगाक्षीके कंठमें स्नेहसे, आकर
तेरे उस आने जानेको हाय मैं याद करता हूँ ॥४८॥

(हृदयमें रखकर मूर्च्छित हो जाता है)

६६ मकरंद–(पास आकर) सखे धीरज धरो।
माधव—(धीरज धरकर) मकरंद, क्या तू नहीं देखता, कहींसे एकाएक मालतीके स्नेहका (यह) अपना चिह्न आ गया। तो क्या समझते हो, यह क्या है?

६७ मकरंद—मालतीके इस चिह्न को ले आनेवाली यह आर्या योगिश्वरी है।
माधव—(करुणाके साथ हाथ जोडकर) आर्ये, दया करो। बताओ, क्या वह मेरी प्रिया जीती है?

६८ सौदामिनी—वत्स, धीरज धरो। वह कल्याणी जीती है।
माधव और मकरंद—(सांस लेकर) आर्ये, यदि ऐसा है, तो बताओ, यह क्या बात है?

६९ सौदामिनी—पहले करालाके मन्दिरमें हाथमें तलवार लिये **अघोरघंट** मारा गया।
माधव—(उद्विग्न हो) अये, ठहरो, बात जान गया।

७० मकरंद—मित्र, कैसे?
माधव—और क्या, **कपालकुंडलाका** मनोरथ सफल हुआ।

७१ मकरन्द —आर्ये, अप्येवम् ?
सौदामिनी—एव, यथा निवेदित वत्सेन।

७२ मकरन्द —भो, कष्टम्।
कुमुदाकरेण शरदिन्दुचन्द्रिका,
यदि रामणीयकगुणाय सगता।
सुकृत तदस्तु कतमस्त्वय विधिर्,
यदकालमेघविततिव्ययूयुजत् ॥४९॥

७३ माधव —हा प्रिये मालति, कष्टमतिवीभत्समापन्नासि—
कथमपि तदाभवस्त्व कमलमुखि कपालकुण्डलाग्रस्ता।
उत्पातधूमरेखाक्रान्तेव कला शशधरस्य ॥५०॥

७४ भगवति कपालकुण्डले,
निर्माणमेव हि तदा तव लालनीय,
मा पूतनात्वमुपगा शिवतातिरेव।
नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा,
मूध्नि स्थितिन मुसलैवत कुट्टनानि ॥५१॥

७५ सौदामिनी—वत्स, अलमावेगेन—
अकरिष्यदसौ पापमतिदुष्करुणैव सा।
नाभविष्यमह तत्र यदि तत्परिपन्थिनी ॥५२॥

७५ उभौ—(प्रणम्य) अतिप्रसन्नमार्यापादै। तत्कथय का पुनस्त्वमस्माकमेवविधो बन्धु ?

७७ सौदामिनी—ज्ञास्यथ खल्वेतत्। (उत्थाय) इयमिदानीमह—
गुरुचर्यातपस्तन्त्रमत्रयोगाभियोगजाम्।
इमामाकर्षिणी सिद्धिमातनोमि शिवाय व ॥५३॥

(समाधवा निष्क्रान्ता)

७१ मकरद—आर्ये, क्या एमा ही ?
सौदामिनी—ऐसा ह। जैमा कि बच्चने कहा।

७२ मकरद—भो, भो हाय।
यदि सरोवर के साथ शरतचद्रकी चादना
रमणीयताक गुणोक लिये इकट्ठी हुई,
तो वह काम अच्छा हुआ पर, यह कौन विधान हे
जो कि अकाल मेघकी घटा छिन्न भिन्न हो गई ।।४९।।

७३ माधव—हा प्रिय **मालती** अत्यत भीषण अवस्थाको तू प्राप्त हुई—
उत्पातक धूयकी रखास आक्रात चद्रमाकी कलाकी तरह,
ह कमलमुखी तब तू कैसे **कपालकुडलामे** ग्रसित हुई ? ।।५०।।

७४ ह भगवती कपालकुडला,
तब तेरा ही निमाण स्पहणीय था,
पूतना न वन तू मगलमयी ही हो।
सुगन्धित फूलोकी स्वाभाविक सिद्धि है
सिरपर चढना, न कि हाय, मूसलोसे कूटा जाना ।।५१।।

७५ सौदामिनी—वत्स मत उद्विग्न होओ। वह अत्यत निष्ठुर ही है।
उसन पाप किया होता
यदि वहा उसमे बाधा डालनेवाली मैं न होती ।।५२।।

७६ दोनो—(प्रणाम करके) आयाने बडी दया की। तो बतायें, तुम कौन हमारी ऐसी बन्धु है ?

७७ सौदामिनी—इसे तुम जरूर जानोग। (उठकर) अब यह मैं—
बडे तप, तत्र, योगके अभ्याससे उत्पन्न,
इस आकषणी सिद्धिको तुम्हारे कल्याणके लिये प्रयोगमें लाती हू ।।५३।।

(माधवको ले निकल गई)

७८ मकरन्द —आश्चयम्—
व्यतिकर इव भीमस्तामसोवैद्युतश्च,
क्षणमुपहृतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्त ।
(विलोक्य सभयम्)
कथमिव न वयस्यस्तत्किमेतत्किमन्यत्,
(विचिन्त्य)—
प्रभवति हि महिम्ना स्वेन योगीश्वरीयम् ॥५४॥

७९ (सवितकम्) किमयमनथ इति सप्रति मूढोऽस्मि।
अपि च—
अस्तोकविस्मयमविस्तृतपूववृत्त,
उदभूतनूतनभयज्वरजजर न ।
एक क्षणत्रुटितसघटितप्रमोह
आनन्दशोकशबल समुपैति चेत ॥५५॥

८० तदत्र कान्तारावसाने सहास्मद्वर्गेण प्रविष्टा भगवतीम-
नुसृत्य वृत्तान्तमेन कथयामि।
(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

२ उत्तररामचरितम

(१) प्रस्तावना—

८१ इद कविभ्य पूर्वेभ्यो नमोवाक प्रशास्महे।
वन्देमहि च ता वाणीममृतामात्मन कलाम् ॥१॥
(नान्द्यन्ते)

८२ सूत्रधार — अलमति विस्तरेण । अद्य खलु भगवत कालप्रियानाथस्य यात्रायामायमिश्रान्विज्ञापयामि— एवमत्र भवन्तो विदाकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्र भवान्काश्यप श्रीकण्ठपदलाछन पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्र —

७८ मकरद—अचरज,
अधकार और बिजलीके किसी भाषण (उपद्रव सा),
क्षणमे आखका चष्टाको नष्ट कर ऊपर उठ शात हो गया ।।
(देखकर भयके साथ)
क्या मित्र नहा तो यह दूसरा क्या है।
(सोच कर)
यह योगेश्वरी अपनी महिमासे सब करनमे समथ है ।।५४।।

७९ (तक वितक करते) क्या यह अनथ है यह सोच म इस समय मूढ हू,
और भी—
अधिक विस्मययुक्त पूव वृत्तान्तको न भूला,
नये उत्पन्न भयरूपी ज्वरस जजर,
एक क्षणमे टूटा जुडा भारी मोहयुक्त
हमारा चित्त आनन्द और शोक से मिश्रित बना है ।।५५।।

८० सो यहा जगलके छोरपर हमारे लोगोके साथ आई भगवती को ढूढकर यह वत्तात कहता हूँ।
(सब निकल गये)

—अक ६

२ उत्तररामचरित

१ प्रस्तावना—

८१ पुराने कवियोके लिये मैं यह नमस्कार वचन कह रहा हू।
और अमर आत्माकी उस वाणीकी वदना करता हू ।।१।।
(नादी पाठके बाद)

८२ सूत्रधार—बहुत विस्तारसे कहना छोडो। आज भगवान् महाकालके मेलेमें आर्यो से अज करता हू आप सब यह जाने। काश्यप **श्रीकठ** उपाधिधारी, व्याकरण मीमासादि के ज्ञाता **जातुकर्णी** के पुत्र जो **भवभूति** नामक है—

य ब्रह्माणमिय देवी वाग्वश्यैवान्ववतत।
उत्तर **रामचरित** तत्प्रणीत प्रयोक्ष्यते ॥२॥

एषोऽस्मि कविवशादायोध्यकस्तदानीतनश्च सवृत्त।
(समन्तादवलोक्य)—
भो, यदा तावदत्रभवत पौलत्यकुलधूमकेतोमहाराज**राम**स्याय पट्टाभिषेकसमयो रात्रिदिवमसहृतनान्दीक, तत्किमिदानी विश्रान्तचारचरणानि चत्वरस्थानानि?

(प्रविश्य)

८३ नट—भाव, प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लकासमरसुहृदो महात्मान प्लवगमराक्षसा सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मषयो राजषयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत्।
सूत्रधार—आ, अस्त्येतन्निमित्तम्।

८४ नट—अन्यच्च—

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातर।
अरुन्धती पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥३॥

सूत्रधार—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। क पुनर्जामाता?

८५ नट—

कन्या **दशरथो** राजा शान्ता नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिका राज्ञे रोमपादाय ता ददौ ॥४॥

विभाण्डकसुतस्तामृष्यश्रृग उपयेमे। तेन च साप्रत द्वादशवार्षिक सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकी विमुच्य गुरुजनस्तत्र यात।
सूत्रधार—तत्किमनेन? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठाव।

वशमे हुई सी यह वाणीदेवी जिस ब्रह्माका अनुगमन करती है—
उसके रचे उत्तर **रामचरित**का हम अभिनय करेगे ।।२।।
यह मै (अब) कविके अनुसार उस कालका **अयोध्या**वासी हो गया।
(चारो ओर देख कर) हे **रावण** वंशके धूमकेतू महाराज **रामजी**के
अभिषेक के इस समय मे रात दिन (कभी) नादी पाठ बन्द नही
हो सकता तो क्या इस समय चबूतराके स्थान गुप्तचरोके चरणोसे
रिक्त है?

(प्रवेश कर)

८३ नट—महानुभाव, महाराजने लंका युद्धके साथियो महात्मा वानर-
भालुओ राक्षसो सभाजनो सबको और नाना दिशाओके पवित्र
ब्रह्मर्षियो और राजर्षियोको अपने अपने घर भेज दिया, उन्हीकी
सेवाके लिये इतने दिनो तक आनन्द-मगल रहा।
सूत्रधार—हा हा, यह है (इसका) कारण।

८४ नट—और भी—
वसिष्ठके नेतृत्वमे रामकी माता देविया, अरुधतीको (साथ)
लेकर यज्ञमे जमाईके आश्रम चली गई ।।३।।
सूत्रधार—विदेशी हू नही जानता इसलिये पूछ रहा हू। कौन है
जमाई?

८५ नट—
राजा **दशरथ**ने (अपनी) सन्तान बनी **शान्ता** नामक कन्याको जन्म
दिया उसे राजा रोमपादकी सतान बनाकर दे दिया ।।४।।
उसे **विभाडक**के पुत्र **शृगी ऋषि**ने व्याहा। उन्हीने इस समय बारह
वर्षवाला यज्ञ आरभ किया है। उनके अनुरोधसे परिपक्वगर्भा
जानकीको छोड कर (घरके) बडे लोग वहा चले गये।
सूत्रधार—तो इससे क्या? आओ राजद्वारपर ही अपने खानदानी
ढगसे हम हाजिरी दें।

८६ नट —तेन हि निरूपयतु राज्ञ सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्र-
पद्धित भाव ।
सूत्रधार —मारिष !
सवथा व्यवहृतव्य कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणा तथा वाचा साधुत्वे दुजनो जन ॥५॥

८७ नट —अतिदुजन इति वक्तव्यम्—
देव्या अपि हि वैदेह्या सापवादो यतो जन ।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चय ॥६॥

सूत्रधार —यदि पुनरिय किवदन्ती महाराज प्रति स्यन्देत्,
तत कष्ट स्यात।

८८ नट —सवथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परि-
क्रम्य) भो भो, क्वेदानी महाराज ? (आकण्य) एव
जना कथयन्ति—
स्नेहौत्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनस परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद्विशति वासगृह नरेन्द्र ॥७॥

(इति निष्क्रान्तौ)

(२) वनवास-चित्रम्—

८९ (तत प्रविशत्यासनोपविष्टौ राम सीता च)
राम —देवि वैदेहि, विश्वसिहि। ते हि गुरवो न शक्नु-
वन्ति विहातुमस्मान्—
किंत्वनुष्ठाननित्यत्व स्वातन्त्र्यमपकषति।
सकटा ह्याहिताग्नीना प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥८॥

८६ नट—नो महानुभाव (आप) दरबारके प्रशसकाकी सुपरिशुद्ध पद्धतिका देखे।

सूत्रधार—यार—

सवथा वैसा व्यवहार करना चाहिय, चाहे क्यो न वचन मारा जाये
जैसे स्त्रियोकी भाति वाणियाकी साधुतामे दुजन जन (वाधक)
हाते है ॥५॥

८७ नट—अतिदुजन कहना चाहिये—

देवी वदेही पर भी जब अपवाद लगानवाल लाग है (उनका)
राक्षसक घरमे रहना पक्का है पर अग्निमे शुद्धि पर विश्वास
नही ॥६॥

सूत्रधार—अगर यह अफवाह महाराजक पास पहुची, तो बुरा होगा।

८८ नट—ऋषि और देवता सब तरह मगल करे। (परिक्रमा करके) हे हे इस समय महाराज कहा ह? (सुनकर) लोग ऐसा कह रहे है—

स्नेहके साथ पूजा करनेक लिये आये दिनो को उत्सवके साथ बिता
आज **जनक विदेह** देश चले गये। तब उदास हुई देवीकी सात्वना
के लिये सिंहासनसे उठकर नरेद्र वासगहमे प्रवेश कर रहे है ॥७॥

(दोनो बाहर चले गये)

२ वनवासका चित्र—

८९ (तब आसनपर बैठे राम और सीता प्रवश करते है)
राम—देवी वैदेहा, धीरज धरो गुरुजन हमे नही छोड सकते।
किंतु, स्वतत्रताको नित्य के कतव्य छीन लेत है। अग्नि-उपासकोकी
गहस्थी विघ्नके भयसे घिरी होती है ॥८॥

९० सीता—जानामि आयपुत्र, जानामि। किंतु सताप-
कारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।
राम—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिद ससारभावा, येभ्यो बीभत्समाना सत्यज्य सर्वा कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिण।

(प्रविश्य)

९१ कचुकी—रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशकम्) महाराज,
राम—(सस्मितम्) आय, ननु रामभद्र इत्येव मा प्रत्युपचार शोभते तातपरिजनस्य, तत् यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

९२ कचुकी—देव, ऋष्यश्रृगाश्रमादष्टावक्र सप्राप्त।
सीता—आय, तत किं विलम्ब्यते?
राम—त्वरित प्रवेशय।

(कचुकी निष्क्रान्त)

(प्रविश्य)

९३ अष्टावक्र—स्वस्ति वाम्।
राम—भगवन्, अभिवादये। इत आस्यताम्।

९४ सीता—भगवन्, नमस्ते। अपि कुशल सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्याया शान्तायाश्च?
राम—निर्विघ्न सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यश्रृग, आर्या च शान्ता?

९५ सीता—अस्मानपि स्मरति?
अष्टावक्र—(उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान्वसिष्ठस्त्वामिदमाह—

विश्वभरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनक पिता ते।
तेषा वधूस्त्वमसि नन्दिनि, पार्थिवाना,

६० माता—जानती हू, आयपुत्र जानता हू। किंतु बन्धुजनोका वियोग सताप दे रहा है।

राम—ऐसा ही है। ससारकी वस्तुये हृदय ममको छेदनवाली होती हैं, जिनसे ही डरकर मनीषी लोग सारे कामोको छोड वनमे विश्राम करते है।

(प्रवेश करके)

६१ कचुकी—रामभद्र (बीचमे ही रुक कर भयके साथ) महाराज।

राम—(मुस्कुराते हुये) आर्य मुझे 'रामभद्र' कहना ही बापूके परिजनोके लिये शोभता है, इसलिये जैसी आदत है वैसे ही कहे।

६२ कचुकी—देव **श्रृगी** ऋषि के आश्रमसे **अष्टावक्र** आये हैं।

सीता—आये तो क्या देर करते हो?

राम—जल्दी ले आये। (कचुकी बाहर चला गया)

(प्रवेश करके)

६३ अष्टावक्र—तुम दोनो की स्वस्ति।

राम—भगवन अभिवादन करता हू। यहा बैठिये।

६४ सीता—भगवन् नमस्ते। जामाता-सहित गुरुजनोका, आर्या शान्ताका कुशल तो है?

राम—सोमयाजी मेरे जीजा भगवान श्रृगी ऋषि और आर्या शान्ता निर्विघ्न तो है?

६५ सीता—हमें भी याद करते है?

अष्टावक्र—(बैठकर) और क्या। देवि, कुलगुरु भगवान **वसिष्ठने** तुम्हारे लिये यह कहा है—

विश्वका भरण करनेवाली भगवती पृथिवीने तुम्हें जन्म दिया। ब्रह्मा तुल्य राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। हे नंदिनि, उन राजाओकी

येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥९॥
तत्किमन्यदाशास्महे, केवलं वीरप्रसवा भूयाः ।

९६ रामः—अनुगृहीताः स्मः—
लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते ॥१०॥

९७ अष्टावक्रः—इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम् "यः कश्चिद् गर्भदोहदोदयो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्यः" इति ।
रामः—क्रियते यद्येषा कथयति ।

९८ अष्टावक्रः—ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्—"वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि । वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः । तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः" इति ।

रामः—(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता **वसिष्ठेन** न किंचिदादिष्टोऽस्मि ?

९९ अष्टावक्रः—श्रूयताम्,—
जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः ॥११॥

१०० रामः—यथा समादिशति भगवान्**मैत्रावरुणिः** ।
स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा **जानकीमपि** ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥१२॥

१०१ सीता—अत एव राघवधुरंधर आर्यपुत्र ।
रामः—कः कोऽत्र भोः ? विश्राम्यतामष्टावक्रः ।

१०२ अष्टावक्रः—(उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः । (इति निष्क्रान्तः)

तुम उनकी बहू हो जिनके कुलोके सूर्य और हम गुरु हैं।
सो और क्या आशा करे बस तुम वीरमाता होओ ॥९॥

९६ राम—(हम) अनुगहीत है—
ससारी सत्पुरुषोकी वाणी अथके पीछ चलती है। किन्तु अथ, आदिम ऋषियोके वचनके पीछे चलत है ॥१०॥

९७ अष्टावक्र—और भगवती अरुधती, देवियो और शान्ताने वार-बार यह सन्देश दिया हे इनका जो कोई भी गभका दोहद उत्पन्न हो, उसे अवश्य और जल्दी पूरा करना।
राम—किया जायगा, यदि यह कहेगा।

९८ अष्टावक्र—नन्दोईन देवी मीता को सन्देश दिया है 'बच्ची पूणगभा होन स तुम्हे हम नही लाय। बच्चा रामभद्रको भी तुम्हार मनबहलावके लिय ही वहा छोड दिया। सो (अब) पुत्रस भरी गोदवाली आयुष्मतीको हम दखेग।
राम—(हष लज्जा, मुस्कानक साथ) तथास्तु। भगवान् वसिष्ठने मुझे कुछ नही आदेश दिया?

९९ अष्टावक्र—मुनिय—
जमाईके यज्ञके कारण हम रोक लिय गये है, तुम बच्चे हो और नया राज्य है। प्रजाके अनुरजनमे तत्पर रहो क्योकि यश ही तुम्हारा परम धन है ॥११॥

१०० राम—जो आदेश देते है, भगवान मित्रावरुण-पुत्र।
प्रेम, दया सुख चाहे जानकीको भी, लोगोकी सेवाके लिये छोडते मुझे दुख नही है ॥१२॥

१०१ सीता—अतएव आयपुत्र रघुवश धुरधर है।
राम—कौन है हो यहा? अष्टावक्र विश्राम करे।

१०२ अष्टावक्र—(उठकर और परिक्रमा करके) अये कुमार लक्ष्मण आ गये? (अष्टावक्र बाहर चले गये)।

(प्रविश्य)

१०३ लक्ष्मण—जयति जयत्वाय। आय, **अर्जुनेन** चित्र-करेणास्मदुपदिष्टमायस्य चरितमस्या वीथ्यामभिलिखि-तम्। तत्पश्यत्वाय।

१०४ राम—जानासि वत्स, दुमनायमाना देवी विनोदयितुम्। तत्कियानवधि ?

लक्ष्मण—यावदार्याया हुताशनशुद्धि।

१०५ राम—शान्त पापम्। (ससान्त्ववचनम्)—

उत्पत्तिपरिपूताया किमस्या पावना तरै ?
तीर्थोदक च वह निश्च नान्यत शुद्धिमहत ॥१३॥

देवि देवयजनसभवे! प्रसीद। एष ते जीवितावधि प्रवाद —

क्लिष्टो जन किल जनैरनुरजनीयस्,
तन्नो यदुक्तमशुभ च न तत्क्षम ते।
नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिन चरणैरवताडनानि ॥१४॥

१०६ सीता—भवत्वायपुत्र, भवतु। एहि, प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।

लक्ष्मण—इद तदालेख्यम्।

१०७ सीता—क एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवाय-पुत्रम् ?

लक्ष्मण—देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भका-स्त्राणि, यानि भगवतो भृशाश्वात्कौशिकमुपसक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यायस्य।

१०८ राम—वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि—

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा पर सहस्र शरदा तपासि।

(प्रवेश करके)

१०३ लक्ष्मण—आयकी जय जय। आय अर्जुन चित्रकारने हमार बतलाये आयके चरितको इस गैलरीमे चित्रित किया है। आय उसे देखे।

१०४ राम—वत्स तुम उदास देवीका मन बहलाव करना जानते हो। तो कबसे लेकर कहा तक ?
लक्ष्मण—जब तक कि आर्याकी अग्नि द्वारा शुद्धि हुइ।

१०५ राम—शान्त पापम्। (सान्त्वनाके वचनके साथ)—
जन्म से ही अति पवित्र इसके लिये दूसरी शुद्धियोसे क्या (लेना) ?
तीर्थका जल और अग्नि दूसरमे शुद्ध नही हुआ करते ।।१३।।

देव यजनमे उत्पन्न देवि कृपा करो यह जीवन भरके लिये तुम्हारे सबन्ध की अफवाह हे।

क्लेश पाये जनका लोगो अनुनीय है, सो जो हमारे लिये बुरा कहा गया, वह तेरे लिये उचित नही है। सुगधित फूलकी स्वाभाविक बात है सिरपर चढना न कि चरणोंसे ताडित होना ।।१४।।

१०६ सीता—अच्छा आयपुत्र, अच्छा। आओ, हम तुम्हारे चरितको देखे।
लक्ष्मण—यह है वह चित्र।

१०७ सीता—कौन है यह ऊपर पास पास खडे आयपुत्र की स्तुति कर रहे ?

लक्ष्मण—देवि यह वे रहस्य-सहित जम्भक (रोकनेवाले) अस्त्र है, जो भगवान **भृशाश्वसे कौशिक** (विश्वामित्र) के पास आये और (जिन्हें) उन्होने **ताटकाके** बधके समय आयको भेट किया।

१०८ राम—देवि, वदना करो, दिव्य अस्त्रोकी—
ब्रह्मा आदि पुराने गुरुजनोने हजारोंसे अधिक वर्षो तक तप

एतान्यदर्शन्गुरव पुराणा स्वान्येव तेजासि तपोमयानि ॥१५॥

सीता—नम एतेभ्य ।

१०९ राम —सवथेदानी त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।
सीता—अनुगृहीतास्मि ।
लक्ष्मण —एष **मिथिलावृत्तान्त** ।

११० सीता—अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृण-शोभमानमासलदेहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्य-मानसौम्यसुदरश्रीरनादरत्रुटितशकरशरासन शिखण्ड मुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखित ।
लक्ष्मण —आर्ये, पश्य पश्य,—
सबन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति ।
गौतमश्च **शतानन्दो** जनकाना पुरोहित ॥१६॥

१११ राम —सुश्लिष्टमेतत्—
जनकाना रघूणा च सबन्ध कस्य न प्रिय ?
यत्र दाता ग्रहीता च स्वय **कुशिकनन्दन** ॥१७॥
सीता—एते खलु तत्कालकृतगोदानमगलाश्चत्वारो भ्रातर विवाहदीक्षिता यूयम् । अहो जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते !

११२ राम —

समय स वर्तत इवैष यत्र मा,
समनन्दयत्सुमुखि, गौतमार्पित ।
अयमागृहीतकमनीयकंकणस्,
तव मूर्तिमानिव महोत्सव कर ॥१८॥

११३ लक्ष्मण —इयमार्या । इयमप्यार्या माण्डवी । इयमपि वधू श्रुतकीर्ति ।
सीता—वत्स, इयमप्यपरा का ?

करके ब्रह्मके हिताथ अपन ही तपामय तेजाको इनके रूपमे देखा ॥१५॥

सीता—इनको नमस्कार।

१०९ राम—अब यह पूरी तौरसे तेरी सन्तान क पास जायेंग।

सीता—अनुगहीता हू।

लक्ष्मण—यह **मिथिला**का वत्तान्त है।

११० सीता—अहो, दलित नवीन नीलकमल से श्यामल, स्निग्ध चिक्कन शोभते, मासल देहके सौदयसे विस्मययुक्त निश्चल हो तात द्वारा देखे जाते सौम्य सुन्दर शोभावाले अप्रयास शकरके शर धनुष तोडन वाले शिखड-युक्त मुग्ध मुखमडलवाले आयपुत्र (यहा) चित्रित किये गये ह।

लक्ष्मण—आर्ये देखो-देखो—

वसिष्ठ आदि सम्बधियोका यह तुम्हारे बापू और जनकोक पुरोहित गौतम **शतानद** पूज रहे है॥१६॥

१११ राम—यह बिल्कुल ठीक है—

जनको और **रघुओ**का सम्बध किसको न प्रिय होता? जहा दाता और आदाता स्वय **कुशिकनदन** थे॥१७॥

सीता—यह तुरन्त गोदान मगल कर चुके चारो भाई है। तुम विवाह दीक्षा लिये हुए थे। अहो, जानती हू, उसी प्रदेश मे, उसी कालमें, ओह।

११२ राम—

हे सुमुखि, यह मानो वही समय वतमान है, **गौतम** द्वारा अर्पित कमनीय ककण धारण किय तेरे करन जब कि मुझे मूर्तिमान् महोत्सवकी तरह खूब आनदित किया॥१८॥

११३ लक्ष्मण—ये आर्या है यह भी आर्या **माडवी** है, यह भी बहू **श्रुत कीति** है।

सीता—वत्स, और यह कौन है?

११४ लक्ष्मण —(सलज्जास्मितम् अपवाय) अये, उर्मिला पृच्छत्यार्या। भवतु, अन्यत सचारयामि। (प्रकाशम्) आर्ये, दृश्यता, द्रष्टव्यमेतत्। अय च भगवान् भागव।

सीता—(ससभ्रमम्) कम्पितास्मि।

राम —ऋषे, नमस्ते।

११५ लक्ष्मण —आर्ये, पश्य। अयमार्येण (इत्यर्धोक्त)—

राम —(साक्षेपम्) अयि, बहुतर द्रष्टव्यम्। अन्यतो दशय।

सीता—(सस्नेहबहुमान निवण्य) सुष्ठु शोभसे आर्य-पुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन

११६ लक्ष्मण —एते वयमयोध्या प्राप्ता।

राम —(सास्रम्) स्मरामि हन्त स्मरामि।
जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसग्रहे।
भ्रातभिश्चिन्त्यमानाना ते ह्निो दिवसा गता ॥१९॥

११७ इयमपि तदा जानकी—

पतनविरलै प्रान्तोन्मील मनोहरकुड्मलैर्,
दशनकुसुमैर्मुग्धालोक शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैर्,
अकृत मधुरैरगाना मे कुतूहलमगकै ॥२०॥

११८ लक्ष्मण —एष मन्थरावृत्तान्त।

राम —(सत्वरमन्यतो दशयन्) देवि, वैदेहि,
इगुदीपादप सोऽय शृगवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागम ॥२१॥

११९ लक्ष्मण —(विहस्य, स्वगतम) अये, मध्यमाम्बावृत्ता-न्तमन्तरितमार्येण।

सीता—अहो, एष जटासयमनवृत्तान्त।

११४ लक्ष्मण—(लज्जा मुस्कानके साथ एकान्तमे) अय आर्या **उर्मिला** के वार मे पूछ रही ह । अच्छा, दूसरी ओर फिरता हू (प्रकट) आर्ये, न्खिय यह देखने लायक ह । आर यह भगवान **भार्गव** (परशुराम) ह ।

सीता—(डरकर) मै काप रही हूँ ।

राम—हे ऋषि, नमस्ते ।

११५ लक्ष्मण—आर्ये, दखो । यह आयन (आधा ही कहकर)

राम—(आक्षेपक साथ) अरे, बहुत देखना है । दूसरी ओर दिखाओ ।

सीता—(स्नेह और सम्मान क साथ दखकर) आयपुत्र, इस अति विनम्रतासे (तुम) खूब शोभते हो ।

११६ लक्ष्मण—यह हम **अयोध्या** आ गये ।

राम—(करुणाके साथ) याद है, याद है ।

बापूके जीते रहते नवीन विवाहक समय,

भाइयोके स्नेहवाले वे हमारे दिन चले गये ।।१९।।

११७ उस समय इसी **जानकी** ने—

छोरपर खिलते मनोहर गिरनेसे विरल कलियो जैसे दातरूपी फूलोसे प्रकाशमान मुग्धमुख धारण करती अतिललित बहुत चमकते अकृत्रिम सुदर मधुर (अपने) अगोसे मेरे अगाको कुतूहलित किया ।।२०।।

११८ लक्ष्मण—यह **मथरा**का वृत्तान्त है ।

राम—(जल्दीसे दूसरी ओर दिखलात) देवी **वदेहि**—

शृगवेरपुरमे यह वह इगुदीका वक्ष है । जहा स्नेही निषाद पति के साथ (हमारा) प्रथम समागम हुआ था ।।२१।।

११९ लक्ष्मण—(विहँसकर अपने आपसे) अये मझली अम्मा (**कैकेयी**) के वृत्तान्तको छोड गये आय !

सीता—अहो, यह जटा बाधनेका वृत्तान्त है ।

१२० लक्ष्मण —

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् ।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥२२॥

सीता—एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती **भागीरथी** ।

१२१ राम —रघुकुलदेवते, नमस्ते—

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान् ।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति, तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत् ॥२३॥

सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायाशिवानुध्याना भव ।

१२२ लक्ष्मण —एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः **कालिन्दी**तटे वटः श्यामो नाम ।

(राम सस्पृहमवलोकयति)

सीता—स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्र ?

१२३ राम —अयि, कथं विस्मयते ?

अलसललितमुग्धान्यध्वसंपातखेदाद्,
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

लक्ष्मण —एष **विन्ध्याटवी**मुखे **विराध**संवादः ।

१२४ सीता—अलं तावदेतेन । पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रमात्मनोऽत्याहितं **दक्षिणारण्य**पथिकत्वम् ।

१२५ राम —

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि ।

१२० लक्ष्मण—

पुत्रमे (राज) लक्ष्मीको स्थानातरित कर बद्ध **इक्ष्वाकु** जो व्रत धारण किया करते उस आरण्यक व्रतको आयने बचपन हीं मे धारण किया ॥२२॥

सीता—यह स्वच्छ पवित्र जलवाला भगवती **भागीरथी** है।

१२१ राम—रघुकुलकी देवता, नमस्त—

सगरके यज्ञमे घोडके ढूढनमे व्यग्र पथिवी खोद **कपिलके** तेजरूपी रोषमे जले, पिना और पितामहाका उद्धार, अगनित शरीरतापवाली तपस्याओंको करके भगीरथने, हे भगवति, तेरे जलसे छुआ कर किया ॥२३॥

मा अम्मा तू अपनी पुत्रवधू सीताको **अरुधतीसी** मगलकाक्षिणी हो

१२२ लक्ष्मण—यह **भरद्वाज** के बतलाये चित्रकूटके मार्गपर **जमुनाके** किनारे **श्याम** नामक बगदका वृक्ष है।

(राम लालसाके साथ देखते है)

सीता—आर्यपुत्र, को वह स्थान याद है ?

१२३ राम—अयि कैसे भूला जा सकता है? मसली मृणालसे दुबल अगको मार्गके चलनके खेदसे अलस ललित मुग्ध हो जार के आलिंगनो द्वारा दबा कर जहा मेरे वक्षपर रखकर तू सोई ॥२४॥

लक्ष्मण—यह **विन्ध्याके** वनमें प्रवेश होते समय **विराधकी** वार्ता है।

१२ सीता—इसे रहने दो। आर्यपुत्रको अपने हाथमे तालके पत्तेका छत्ता पकडे दक्षिणारण्यकी अति-अहित मुसाफिरीको देखती हू।

१२५ राम—

पर्वतीय नदियोके तटोपर ये है, वे मुनियोके रहनेके वृक्षोवाले तपोवन।

ये वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

१२६ लक्ष्मण —अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखकन्दर सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमो जनस्थानमध्यगो गिरि प्रस्रवणो नाम।

१२७ राम —

स्मरसि सुतनु, तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र **गोदावरीं** वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि? ॥२६॥

१२८ किं च,—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगाद्,
अविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोर्,
अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥२७॥
लक्ष्मण —एष **पञ्चवट्यां** शूर्पणखाविवादः।

१२९ सीता—हा आर्यपुत्र, एतावत्ते दर्शनम्।
राम —अयि वियोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

१३० सीता—यथा तथा भवतु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
राम —हन्त, वर्तमान इव मे **जनस्थान**वृत्तान्तः प्रतिभाति।

१३१ लक्ष्मण —

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैर्,
अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

जहा अतिथि-सेवा परायण संयमी, मुट्ठी भर तिन्नी पकानेवाले गृहस्थ गृहोंमें रहते हैं ॥२५॥

१२६ लक्ष्मण—यह है घन वृक्षोंकी लगातार स्निग्ध नील किनारेवाली वनमें बही **गोदावरी** के मुखकी कंदरा वाला, निरन्तर बहुत फैलते मेघछाया युक्त नीलिमावाला **जनस्थान**के मध्यमे अवस्थित **प्रस्रवण** नाम गिरि।

१२७ राम—

हे मुनिने उस पर्वतमें **लक्ष्मण** की सेवासे भले व भले दिन, **सरस** जलवाली वहा की **गोदावरी** याद है ? याद है उसके किनारे हमारे बर्ताव तुझे ?

१२८ और भी—

आसक्तिके साथ सटे कपोल, बिना क्रमके कुछ कुछ धीरे धीरे हम दोनोंके बात करते गाढ-आलिंगनमें एक एक बाहु लगे, पहर बीते बिना रात ही जाने समाप्त हो गई ॥२७॥

लक्ष्मण—यह **पंचवटी**मे **शूर्पणखा**के साथ का झगडा है।

१२९ सीता—हा आर्यपुत्र, इतना ही तक तुम्हारा दर्शन बदा है।

राम—अयि वियोग भीरु यह (तो) चित्र है।

१३० सीता—जो भी हो। दुर्जन असुख पैदा करता है।

राम—इन **जनस्थान**का वृत्तान्त मुझे वर्तमान जैसा जान पडता है।

१३१ लक्ष्मण—

अब यह सोनेके हरिनके छलसे पापी राक्षसोंने वह किया, जो कि प्रतिशोध ले लेने पर भी दुखी करता है। शून्य जनस्थानमें विह्वल-प्राण आर्यकी चेष्टाओंको देख पत्थर भी रोता था वज्रका हृदय भी मसला जाता था ॥२८॥

१३२ सीता—(सास्रमात्मगतम्) अहो, दिनकरकुलानन्दन एव-
मपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।

१३३ लक्ष्मण —(राम निवर्ण्य साकूतम्) आर्य, किमेतत् ?—
अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः ।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः ॥२९॥

१३४ राम —वत्स—
तत्कालप्रियजनविप्रयोगजन्मा,
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढः ।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ॥३०॥

१३५ सीता—हा धिक् हा धिक्, अहमप्यतिभूमिं गतेन रण-
रणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि ।

१३६ लक्ष्मण —(स्वगतम्) भवतु, आक्षिपामि । (चित्रं
विलोक्य प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य तत्र-
भवतस्तातजटायुपश्चरित्रविक्रमोदाहरणम् ।
सीता—हा तात, निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः ।

१३७ राम —हा तात काश्यप शकुन्तराज, क्व नु खलु पुन-
स्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः संभवः ?

१३८ लक्ष्मण —अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः **कुञ्जवा-
न्नाम** पर्वतो दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः ।
तदिदमृष्यमूकपरिसरे **मातङ्गाश्रम**पदम्। तत्र **श्रमणी** नाम
सिद्धा शबरतापसी । तदेतत्**पम्पा**भिधानं पद्मसरः ।
सीता—यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्त-
कण्ठं प्ररुदितमासीत् ।

१३२ सीता—(खेद सहित अपने आपसे) अहो मूयवशक आनद दायक मेरे कारण इतने दु खी हुये थे।

१३३ लक्ष्मण—(रामको देखकर चकित हो) आय, यह क्या—यह टूटा हुआ आसू मुक्ता-मणि की मालाकी तरह धाराओमे बहता जजर बिन्दु हो धरतीपर लुढक रहा है। फफराते ओठो और नथुनोसे आवेग भी रुध गया है। दरम धौकत हृदयवालेका दूसरे भी कठिनाईसे अनुमान कर सकते हैं ॥२९॥

१३४ राम—वत्स--

उस समय प्रियजनके वियोगसे उत्पन्न तीव्र दु खकी अग्नि फिरस मनमे जलती हृदयक मममे घावकी तरह वदना पैदा करती चित्रके ख्यालम सही गई ॥३०॥

१३५ सीता—हा धिक, मैं भी असीम उत्सुकतास अपनेका आयपुत्रसे रहित जान रही हू।

१३६ लक्ष्मण—(अपन आपस) अच्छा याद भुलवाता हू। (चित्रको दखकर प्रकट) सो यह युगोक बूढ **जटायुजी**क चरित्र ओर पराक्रमका दष्टात।

सीता—हा बापू सतानक स्नहका निर्वाह तुमन किया।

१३७ राम—हा तात काश्यप पक्षिराज तुम्हार जैसे महान् तीथ समान साधु कहा हो सकत ह?

१३८ लक्ष्मण—यह वह जनस्थानक पश्चिमवाला **कुजवान** नामक पवत दैत्य निवास, दडकारण्यका एक भाग है। इसक पास **मातग** ऋषिका आश्रम है। वहा **श्रवणो** नामकी सिद्ध शबर तपस्विनी है। सो यह **पपा** नामक कमलोका सरोवर है।

सीता—जहा कि आयपुत्र अपनी धीरता गम्भीरता छोडकर खुले कठसे रोये थे।

राम —देवि , पर रमणीयमेतत्सर —
एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष -
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीका ।
बाष्पाम्भ परिपतनोद्गमान्तराले,
सदष्टा कुवलयिनो मया विभागा ॥३१॥

१३९ लक्ष्मण —अयमार्यो हनूमान् ।
सीता—एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूप-
कारी महानुभावो **मारुति** ।

१४० राम —
दिष्ट्या सोऽय महाबाहुरजनानन्दवधन ।
यस्य वीर्येण कृतिनो वय च भुवनानि च ॥३२॥

१४१ सीता—वत्स, एष स कुसुमितकदम्बकतरुताण्डवित-
बर्हिण किनामधेयो गिरि यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरि-
शेपसुन्दरश्रीर्मूर्च्छंस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतल
आयपुत्र आलिखित ?

१४२ लक्ष्मण —
सोऽय शैल ककुभसुरभि**र्माल्यवान्नाम** यस्मिन्,
नील स्निग्ध श्रयति शिखर नूतनस्तोयवाह ॥
आर्येणास्मिन्—

१४३ राम —
विरमविरमात पर न क्षमोऽस्मि,
प्रत्यावत्त स पुनरिव मे जानकीविप्रयोग ॥३३॥

१४४ लक्ष्मण —अत परमायस्य तत्रभवता कपिराक्षसानां
चापरिसख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता
चेयमार्या, तद्विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति।
सीता—आयपुत्र, एतेन चित्रदशनेन प्रत्युत्पन्नदोहृ-
दाया मम विज्ञापनीयमस्ति ।

१३९ राम—देवि, यह सरोवर अत्यत रमणीय है,
इसमे मस्त सुन्दर हसोके पक्षोद्वारा कपित हिलते बडी नालके कमलो, उत्तम कुबलयवाले भागोको मैंने आसूके गिरने और उठनके बीचके समयमे देखा था ।।३१।।

१४० लक्ष्मण—यह आर्य हनूमान हैं।

सीता—यह वह चिरकालमे जीवलोकके उद्धारक महान उपकारी महानुभाव मारुति है।

१४१ राम—

धन्य, अजनाके आनदवर्द्धक यही वह महाबाहू हैं जिनके पराक्रमसे हम और ससार उपकृत है ।।३२।।

१४२ सीता—वत्स, यह वह फूल कदम्ब वृक्षपर नाचते मोरोवाला किस नामवाला पर्वत है, जहा प्रभाव और सौभाग्य मात्र बच रहे सुन्दर सुशोभन वृक्षका अवलम्ब लिये मूर्छा खाते रोते हुये आर्यपुत्र तुम्हारे साथ चित्रित है ?

१४३ लक्ष्मण—

मा यह दिशाओमे सुगन्ध फैलाता माल्यवान नामक पर्वत है, जहा चिकना नीला अभिनव मेघ शिखरका आश्रय ले रहा है।
यहा आयने—

ठहरो-ठहरो, इसके आगे मै नही सह सकता। मेरे लिये जानकीका वह वियोग फिर लौट सा आया ।।३३।।

१४४ लक्ष्मण—इसके बाद आर्यके और वानर राक्षस महानुभावोके एकके बाद एक असख्य अदभुत कर्म है। आर्या थक गई, सो अर्ज करता हू, विश्राम करें।

सीता—आर्यपुत्र, इस चित्रके दर्शनसे उत्पन्न हुये दोहदके बारेमें मुझे कुछ अर्ज करना है।

१४५ राम—नन्वाज्ञापय ।
सीता—जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं **भागीरथीं** अवगाहिष्ये इति ।

१४६ राम—वत्स लक्ष्मण ।
लक्ष्मण—एषोऽस्मि ।

१४७ राम—वत्स, अचिरादेव संपादनीयो दोहद इति स-प्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम् । तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय ।
सीता—आर्यपुत्र, युष्माभिरप्यागन्तव्यम् ।

१४८ राम—अतिकठिनहृदये, एतदपि वक्तव्यम् ?
सीता—तेन हि प्रियं मे प्रियं मे ।

१४९ लक्ष्मण—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तः)
राम—प्रिये, वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव ।

१५० सीता—एवं भवतु । अपहृतास्मि खलु परिश्रमनिद्रया ।

१५१ राम—तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामनुगमनाय—
जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥३४॥
(तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये, किमेतत् ?—

१५२ विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥३५॥

१५३ सीता—थीरप्रसादा यूयमित्यत्रेदानीमाश्चर्यम् ।

१५४ राम—
म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,

१४५ राम—तो आज्ञा दो।

सीता—मन करता है पुन स्वच्छ गम्भीर वनोमे बिहार करके पवित्र निमल शीतल जलवाली भगवती **भागीरथी**का अवगाहन करू।

१४६ राम—वत्स लक्ष्मण,

लक्ष्मण—यह हू।

१४७ राम—वत्स "जल्दी ही दोहद को पूरा करना", यह सन्देश अभी अभी गुरुजनोने भेजा है। सो बिना देर किये रथका तैयार करो। सीता—आयपुत्र तुम्हे भी आना होगा।

१४८ राम—हे अतिकठोरहृदये, यह भी क्या कहनको है ?

सीता—तो अच्छा मेरे लिये अच्छा।

१४९ लक्ष्मण—जो आय आज्ञा देते है। (बाहर चल गये)

राम—प्रिये, जगलेके पास बैठी हो जा।

१५० सीता—एवमस्तु, थकावट की निद्रा मुझ खीच ल गई।

१५१ राम—तो तरे अनुगमन के लिये बराबर मेरा सहारा है (इसे)ले। चद्रमाकी किरणो से चुबित जल बहाती चद्रमणि के हार जैसे सुन्दर भयके साथ पसीनेकी बूदोवाली, अपनी बाहुको जीवन देती सी मरे कठ मे डालो।।३४।।

(वैसा करते आनन्द के साथ) प्रिये, यह क्या ?

१५२ नही निश्चय कर पाता सुख है या दुख मूर्छा या निद्रा, विष फैल रहा है या नशा। तेरे एक एक स्पस से मेरी इद्रिया मुग्ध हो गइ। मनका विचार चेतना को घुमाता ढक रहा है।।३५।।

१५३ सीता—तुम धीर प्रसन्नप्रकृति हो (सो) इस समय यह आश्चय है

१५४ राम—

मुरझाये जीवन रूपी पुष्पके खिलाने, सतृप्त करनेवाले सारी इद्रि

सतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि,
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥३६॥
सीता—प्रियवद, एहि, सविशाव ।

१५५ राम —अपि सदेप्टव्यम्—
आ विवाहसमयाद् गहे वने,
शैशवे तदनु यौवने पुन ।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽयया,
रामबाहुरपधानमेष ते ॥३७॥

१५६ सीता—(निद्रा नाटयन्ती) अस्त्येतत्, आयपुत्र, अस्त्येतत् ।

१५७ राम —कथ प्रियवचनेनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता, (निवण्य)—
इय गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयोर्,
असावस्या स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस ।
अय बाहु कण्ठे शिशिरमसणो मौक्तिकसर,
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह ॥३८॥

(प्रविश्य)

१५८ प्रतीहारी—देव, उपस्थित ।
राम —अयि, क ?
प्रतीहारी—आसन्नपरिचारको देवस्य **दुर्मुख** ।

१५९ राम —(स्वगतम) शुद्धान्तचारी दुर्मुख, स मया पौर-जानपदेष्वपसप प्रहित । (प्रकाशम्) आगच्छतु ।

(प्रतिहारी निष्क्रान्ता)

योको मोहित करन वाल, यह तरे सुवचन, हे कमलाक्षि कानोके लिये अमत और मन के लिये रसायन ह ।।३६।।

मीता—प्रियभार्षा, आओ बैठें।

१५५ राम—(इसे) क्या कहना होगा—

विवाह के समय से लेकर घर मे ओर वन मे शैशवमें, उसके बाद फिर यौवन मे सान के लिए जिस (के बिना) दूसरेने अवलबित नही किया, वह राम का (यह) बाहु तरा तकिया मौजूद है ।।३७।।

१५६ साता—(निद्रा का अभिनय करती है) यह एसा ही है, आयपुत्र, यह ऐसा ही है।

१५७ राम—अरे, प्रिय वचन बोलते ही मरे वक्ष पर सो गई ? (निहार कर) घर के लिये यह लक्ष्मी, दोनो आखो के लिये अमत शलाका इसका यह स्पश शरीर के लिये बहुत चदन रस है और यह बाहू कठ मे चिकनी मोती की माला है। इसका क्या अत्यन्त प्रिय नही है, पर विरह अत्यन्त असह्य है ।।३८।।

(प्रवेश करके)

१५८ प्रतीहारी—देव आ गया।

राम—अरे कौन ?

प्रतीहारी—देवका घनिष्ट सेवक दुमुख।

१५९ राम—(अपने आप से) अन्तपुर मे (सवत्र) चल फिर सकने वाला **दुर्मुख** उसे मैंने नगर और देहात के लोगो में गुप्तचर बनाकर भेजा था। (प्रकट) आवे।

(प्रतीहारी चली गई)

(३) सीता परित्याग —

(प्रविश्य)

१६० दुर्मुख —(स्वगतम्) हा, कथमिदानी देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीय जनापवाद देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोग खलु मम मन्दभागधेयस्यैष ।

सीता—(उत्स्वप्नायते) आयपुत्र, कुत्रासि ?

१६१ राम —सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदशनाद्विरहभावना देव्या स्वप्नोद्योग करोति । (सस्नेहमगमस्या परामृशन्)—

अद्वैत सुखदु खयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थित,
भद्र तस्य सुमानुपस्य कथमप्येक हि तत्प्राध्यते ।।३९।।

१६२ दुर्मुख —(उपसत्य) जयतु देव ।

राम —ब्रूहि, यदुपलब्धम् ।

१६३ दुमुख —उपस्तुवन्ति देव पोरजानपदा यथा 'विस्मारिता वय महाराज दशरथ रामदेवेने' ति ।

राम —अथवाद एवैप । दोष तु मे कथचित्कथय येन स प्रतिविधीयते ।

१६४ दुर्मुख —(सास्रम्) शृणोतु महाराज । (कर्णे) एवमिव ।

राम —अहह, अतितीव्रोऽय वाग्वज्र । (इति मूर्च्छति)

१६५ दुर्मुख —आश्वसितु देव ।

३ सीताका परित्याग

(प्रवेश करके)

१६० दुर्मुख—(अपने आपसे) हा कैसे अब देवाके सबध मे ऐसी न साचने का भ। जन-निदाको देवसे कहूगा ? अथवा मुझ अभागे का यह कतय जो है।

माना—(सपना रही है) आर्यपुत्र कहा हो ?

१६१ राम—मो यह चित्रके देखने से उत्सुकता पैदा करने वाली विरह-भावना देवीको स्वप्न दिखा रही ह। स्नेहके साथ उसके अगको छूत हुए—

सुख और दु ख मे सारी अवस्थाआ मे भी जो एक सा रहा जहा हृदय को विश्राम, जिसमें जरासा भी न छीन जान वाला रस ह ब्याह से लेकर समय पा जा परिपक्व प्रेम सार(के रूप) मे स्थित हैं उस दाम्पत्य का भद्र हो जसे भी वह एक अभिलषित (वस्तु) है ॥३९॥

१६२ दुमुख—(पास आकर) जय देव ।

राम—बनला, जो पता पाया।

१६३ दुर्मुख—नगर-ग्राम के लोग देवकी तारीफ करते है, राम देव ने हमें महाराज दशरथ को भुलावा दिया।

राम—यह यो ही बात है। दोष तो मुझे कोई बतला, जिसमे उसका प्रतीकार किया जाय।

१६४ दुर्मुख—(खदके साथ) सुने महाराज कानमे ऐसा-ऐसा ।

राम—अहह अति तीव्र है यह वाणी रूपी वज्र (मुर्छित होते ह)

१६५ दुमुख—देव धैय धरे।

१६६ राम —(आश्वस्य)—

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकाद्,
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम् ॥४०॥

१६७ तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि ? (विमृश्य, सकरुणम्) अथवा किमेतत् ?—

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम् ।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥४१॥

१६८ संप्रत्येव च भगवता **वसिष्ठेन** संदिष्टम् । अपि च,—

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्-
लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम् ।
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम् ॥४२॥

१६९ हा देवि देवयजनसंभवे ! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रित-वसुन्धरे ! हा मुनिजनकनन्दिनि ! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि ! हा राममयजीविते ! हा महारण्यवासप्रियसखि ! हा तातप्रिये ! हा स्तोकवादिनि ! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

१७० (दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि—"लक्ष्मण, एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति ।" (कर्णे) एवमेव इति ।
दुर्मुखः—हा ! कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्रसंतानाया देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन ?

१७१ रामः—शान्तं पापम्, शान्तं पापम् । दुर्जना नाम पौरजानपदाः —

१६६ राम—(धैर्य धरके) हा हा धिक्कार, पर-गृहमे निवास के वैदेहीके जिस दोषको अद्भुत उपायों से शांत किया गया था, दैवके दुर्विपाक मे कुत्तेके विष की तरह वह फिर सर्वत्र फैल गया ।।४०।।

१६७ तो मैं अभागा अब क्या करूं ? (सोचकर करुणा के साथ) अथवा यह क्या ? किसी भी काय मे लोगो को खुश करना सत्पुरुषो के का लिये सबसे बडकर (बात) है । बापूने मुझे और अपने प्राणो को छोडते हुए उसी का पूरा किया ।।४१।।

१६८ अभी ही भगवान् **वसिष्ठने** सन्देश भेजा, और भी—
सूर्यवंशी लोकश्रेष्ठ राजाओ ने जिस विचित्र साधु चरित्र को प्रकाशित किया, इसमे मेरे सम्बन्ध की कलुषित अफवाह यदि हो तो, हन्त, मुझ अभागको धिक्कार है ।।४२।।

१६९ हा, यज्ञमे उत्पन्न देवि हा अपने जन्मसे अनुग्रह से पृथिवीको पवित्र करनेवाली, हा जनकमुनि की नन्दिनी, हा अग्नि वसिष्ठ अरु न्धती द्वारा प्रशंसित शीलवाली हा राम मात्र जीवनवाली, हा महा अरण्यवासकी प्रियसखी, हा बापूकी प्यारी, हा अल्पभाषिणी, एसी तेरा कैसे एसा परिणाम !
तेरे द्वारा ससार पवित्र हे, ओर तेरे विषयमे जनोका पाप कथन! तुझसे लोग नाथवाले हैं ओर तू अनाथा होकर विपदमें पडेगी ।।४३।।

१७० दुर्मुख कह लक्ष्मण नवीन राजा राम यह आज्ञा देता है। (कानमे ऐसे एसे)

दुर्मुख—हाय हाय अग्नि द्वारा परिशुद्ध गर्भमे पवित्र सतानधारिणी देवीके बारेमे दुर्जनोके वचनसे देवने यह क्या करनेका निश्चय किया ?

१७१ राम—शान्त पापम् । मेरे नागरिक तथा ग्रामवासी लोग और वह दुर्जन—

इक्ष्वाकुवशोऽभिमत प्रजाना,
जात च दैवाद्वचनीयबीजम् ।
यच्चाद्भुत कम विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवत्तम् ॥४४॥

१७२ तद् गच्छ ।

दुर्मुख —हा देवि ! (इति निष्क्रान्त)

१७३ राम —हा कष्टम्, अतिबीभत्सकर्मा नृशसोऽस्मि सवृत्त—
शैशवात्प्रभृति पोषिता प्रिया,
सोहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे,
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥४५॥

तत्किमस्पृश्य पातकी देवी दूषयामि । (इति सीताया शिर समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

१७४ अपूवकमचण्डालमयि मुग्धे, विमुच माम् ।
श्रिताऽसि चन्दनभ्रान्त्या दुविपाक विषद्रुमम् ॥४६॥

१७५ (उत्थाय) हन्त हन्त, सप्रति विपयस्तो जीवलोक । अद्यावसित जीवितप्रयोजन रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्य जगत् । असार ससार । काष्ठप्राय शरीरम् । **अशरणोऽस्मि । किं करोमि ? का गति ? अथवा,—**

दु खसवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभि प्राणैवज्रकीलायित हृदि ॥४७॥

१७६ हा अम्ब अरुन्धति ! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक ! हा देवि भूतधात्रि ! हा तात जनक ! हा मात ! हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव ! सौम्य हनूमन् ! महोपकारिन् लकाधिपते विभीषण ! हा सखि त्रिजटे ! परिमुषिता स्थ परिभूता स्थ रामहतकेन ।

इक्ष्वाकुओंका वंश प्रजाको प्रिय है। भाग्यसे वचनमारनेका उसके लिये बीज पैदा हुआ। (अग्नि) शुद्धिके समय जो अद्भुत क्रिया की गई, वह तो दूर स्थानमें हुई फिर उसे कौन पतियाये ।।४४।।

१७२ सो जा—

दुर्मुख—हा देवि। (बाहर चला गया)

१७३ राम—हा कष्टम मैं अत्यन्त बीभत्सकर्मा कमीना हो गया—बचपनमे लेकर सौहार्दसे पोषित, बिलग न रहनेवाली इस प्रियाको छलसे मैं मृत्युको दे रहा हूं। जैसे घरकी चिड़िया बहेलियाको ।।४५।। सो मैं पातकी अछूत देवीको छूकर क्यों दूषित कर रहा हूं।

(सीताके सिरको उठा हाथ खींचकर)—

१७४ हे मुग्ध, मुझ असाधारण कर्मचांडाल को छोड़, तू चन्दनके भ्रमसे अहितकारी विषवृक्षका आश्रय ले रही है ।।४६।।

१७५ (उठकर) हन्त हन्त, अब संसार उलट गया। आज रामके जीवन का प्रयोजन खतम हो गया। जगत अब सूना पुराना जंगल है, संसार असार है शरीर काठ सा है। मेरा कोई शरण नहीं। क्या करूं? मेरी क्या गति है? अथवा—

दुःखके अनुभवके लिये ही राममें चेतना है। मर्म-पीडक (मेरे) प्राण हृदयमें वज्रकील बन गये है ।।४७।।

१७६ हा अम्मा अरुंधती भगवान् **वसिष्ठ** और **विश्वामित्र**, भगवान् अग्नि हा देवी पृथिवी, हा तात जनक, हा माता, हा प्रिय मित्र महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमान महा उपकारी लंकेश्वर विभीषण, हा सखी **त्रिजटा**, नीच रामने तुम्हें लूट लिया, तुम्हें तिरस्कृत कर दिया।

अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने ?

तेहि मन्ये महात्मान कृतघ्नेन दुरात्मना।
मया गृहीतनामान स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥४८॥

१७७ योऽहम्,—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा,
उन्मुच्य प्रियगहिणी गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतकस्फुरितकठोरगभगुर्वीं
क्रव्याद् भूयो बलिमिव दारुण क्षिपामि ॥४९॥

१७८ (सीताया पादौ शिरसि कृत्वा)—अय पश्चिमस्ते राम-शिरसि पादपकजस्पश

(इति रोदिति)

(नेपथ्ये)

१७९ अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

राम —ज्ञायता भो, किमेतत् ?

(पुनर्नेपथ्ये)

ऋषीणामुग्रतपसा यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितस्तोमस्त्रातार त्वामुपस्थित ॥५०॥

१८० राम —कथमद्यापि राक्षसत्रास ? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्न प्रेषयामि (परिक्रम्य पुननिवर्त्य) हा देवि ! कथमेवविधा गमिष्यसि ? भगवति वसुन्धरे ! सुश्लाघ्या दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्—

जनकाना रघूणा च यत्कृत्स्न गोत्रमगलम्।
या देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजन ॥५१॥

१८१ (इति रुदन्निष्क्रान्त)

अथवा अब उन्हें पुकारनेवाला मैं कौन हूँ?

दुरात्मा कृतघ्न राम द्वारा नाम लिये जानेपर मैं समझता हूँ, व महात्मा पापसे छुये से हो जायेंगे ॥४८॥

१७७ जो कि मैं—

विश्वास करके छातीपर पड सोई आतंकसे कंपित परिपक्व गर्भसे भारी, (गृह) लक्ष्मी प्रिय गृहिणीको छोडकर मैं दारुण बलिकी तरह मांसभक्षी जन्तुओंके सामने फेंक रहा हूँ ॥४९॥

१७८ (सीताके दोनों पैरोंमें सिर रखकर) यह रामके सिरसे तेरे चरण-कमलका अंतिम स्पर्श है। (रोते हैं)

(नेपथ्यमें)

१७९ अब्रह्मण्यम, अब्रह्मण्यम महापाप हो गया।

राम—पता लगाओ हो यह क्या है?

(फिर नेपथ्यमें)

जमुनाके तीरके रहनेवाले उग्र तपस्यावाले ऋषि-समूह लवणासुरसे त्रासित हो रक्षक तुम्हारे पास उपस्थित हुआ है ॥५०॥

१८० राम—क्या आज भी राक्षसोंका त्रास है? तो फिर इस दुरात्मा **मथुरा** वाले **कुंभीनसी** पुत्रके उन्मूलनके लिये **शत्रुघ्न** को भेजता हूँ। (परिक्रमा करके फिर लौटकर) हा देवि, कैसे तू ऐसी जायेगी? भगवती पृथिवी सुप्रशसनीय अपनी पुत्री **जानकी** की खबर लेना। **जनकों** और **रघुओं**के गोत्रकी जो सम्पूर्ण-मंगला है, जिस पुण्य शीलाको तुमने यज्ञमें जन्म दिया ॥५१॥

१८१ (रोते हुये बाहर चले जाते हैं)

१८२ सीता—हा सौम्य आयपुत्र, कुत्रासि ? हा धिक् हा धिक्, दु स्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आयपुत्रशून्यमिवात्मान पश्यामि । हा धिक् हा धिक्, एकाकिनी प्रसुप्ता मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथ ? भवतु, तस्मै कोपिष्यामि यदि त प्रेक्षमाणा आत्मन प्रभविष्यामि । कोऽत्र परिजन ?

(प्रविश्य)

१८३ दुर्मुख—देवि, कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति—"सज्जो रथ । तदारोहतु देवी" इति ।
सीता—इयमारुढास्मि । (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति मे गभभार । शनैगच्छाम ।

१८४ दुर्मुख—इत इतो देवी ।
सीता—नमो रघुकुलदेवताभ्याम् ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

(४) **ऋषेरातिथ्यम्**—

(तत प्रविशतस्तापसौ)

१८५ एक—सौधातके, दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य । तथा हि,—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुर सद्य प्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिक तपोवनमृग पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसतो भक्तस्य सर्पिष्मत
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोद परिस्तीर्यते ॥१॥

१८२ सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, कहा हो? हा धिक्। दुःस्वप्नकी उत्सुकतामे छली। मै अपनेको आर्यपुत्रके बिना देख रही हू। हा धिक मुझे अकेली सोई छोडकर नाथ कहा गये! अच्छा, उन पर कोप करू यदि उन्हे देख अपने पर काबू पा सकू। यहा कोई परिजन है?

(प्रवेश करके)

१८३ दुर्मुख—देवि कुमार लक्ष्मण अर्ज करते है 'रथ तैयार है, सो देवी पधारे।"

सीता—(लो) यह चढने आई। (उठकर परिक्रमा करके) मेरा गर्भ डोल रहा है। धीरे चले।

१८४ दुर्मुख—इधरसे, इधरसे आइये।

सीता—रघुकुलके दोनो देवताओको नमस्कार।

(सब बाहर चले गये)

—अक १

४ ऋषिकी पहुनाई—

(तब दो तापस प्रवेश करते है)

१८५ एक—सौधातकि, देखो, आज बहुतसे आगत अतिथियोवाले भगवान वाल्मीकिके आश्रमकी अत्यधिक तैयारी कार्य व्यस्तताकी रमणीयताको जैसे कि—

नरत प्रसूता अपनी प्रियाके पीनेसे बचे तिन्नीके भातके गरम मीठे माडको तपोवनका मृग खूब पी रहा है। घीवाले भातके थोडा फैलते गंधका अनुगमन करती बैरके फलसे मिलाये साग पकानेकी खुशबू फैल रही है॥१॥

१८६ सौधातकि —स्वागतमनेकप्रकाराणा जीर्णकूर्चानामन - ध्यायकारणाना तपोधनानाम् ।

प्रथम —(विहस्य) अपूव खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधा- तके ।

१८७ सौधातकि —भो दण्डायन, किनामधेय इदानीमेष महत स्त्रीसाथस्य धुरधरोऽद्यातिथिरागत ?
दण्डायन —धिक्प्रहसनम् । नन्वयमृष्यश्रृगाश्रमाद- रुन्धती पुरस्कृत्य महाराज**दशरथस्य** दारानधिष्ठाय भगवा **वसिष्ठ** प्राप्त । तत्किमेव प्रलपसि ?

१८८ सौधातकि —हु वसिष्ठ ?
दण्डायन —अथ किम् ?

१८९ सौधातकि —मया पुनर्ज्ञात कोऽपि व्याघ्र इवैष इति ।
दण्डायन —आ, किमुक्त भवति ?

१९० सौधातकि —येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता ।
दण्डायन —समासो मधुपक इत्याम्नाय बहुमन्यमाना श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरी वा पचन्ति गृहमेधिन. त हि धर्म धमसूत्रकारा समामनन्ति ।

१९१ सौधातकि —भो निगहीतोऽसि ।
दण्डायन —कथमिव ?

१९२ सौधातकि —येनागतेषु **वसिष्ठ**मिश्रेष वत्सतरी विश- सिता । अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेजनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निवर्तितो मधुपक ,वत्सतरी पुनर्विसर्जिता ।

दण्डायन —अनिवृत्तमासानामेव कल्प व्याहरन्ति के- चित् । निवृत्तमासस्तु तत्र भवान् जनक ।

१८६ सौधातकि—स्वागत है अनेक प्रकारके अनध्याय (छुट्टी) के कारण, बढ़ी दाढ़ी वाले नाना मुनियोका।

पहला—(विहँस कर) **सौधातकि**, गुरुजनो के विषयमें सम्मान प्रकट करनेका तुम्हारा यह अदभुत ढग है।

१८७ सौधातकि—**दंडायन**, स्त्री कारवाका मुखिया अतिथि जो आज आया है, उसका क्या नाम है?

दडायन—धिक्कार है मजाकको, यह तो श्रृंगी ऋषिके आश्रमसे **अरुंधती** को लिये महाराज दशरथकी स्त्रियोको सभाले भगवान् **वसिष्ठ** आये है। सो क्यो ऐसी बकवास कर रहा है?

१८८ सौधातकि—हूँ वसिष्ठ?

दडायन—और क्या?

१८९ सौधातकि—मैंने तो समझा माना यह कोई बाघ है।

दडायन—आह क्या कहता है!

१९० सौधातकि—जिसने झपट्टा मारते उस बेचारी कल्याणी कपिलाको जबर्दस्ती मडमडा डाला।

दडायन—"मधुपर्क मास-सहित होना चाहिये" इस शास्त्र वचनका सम्मान करते श्रोत्रिय अभ्यागतके लिये गृहस्थ बछिया पकाते है। इसे धर्मसूत्रके रचयिता यम बतलाते है।

१९१ सौधातकि—भो तू **निग्रहस्थान** मे पकडा गया।

दडायन—कैसे?

१९२ सौधातकि—आगत वसिष्ठ आदिके लिये तो बछिया मारी गई, पर आज ही आये राजर्षि **जनक**के लिये भगवान **वाल्मीकिने** दही-मधुसे मधुपर्क तयार किया और बछिया छोड दी।

दडायन—वैसा विधान मास न त्यागे हुओके लिये कोई-कोई बतलाते है। जनकजी तो मासविरत है।

१९३ सौधातकि —किंनिमित्तम् ?
दण्डायन —यद् देव्या **सीतायास्तादृश** दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानस संवृत्त, तस्य कतिपयसंवत्सरश्**चन्द्रद्वी**पतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

१९४ सौधातकि —तत किमित्यागत ?
दण्डायन —संप्रति च प्रियसुहृद भगवन्त प्राचेतस द्रष्टुम्।

१९५ सौधातकि —अद्य सबन्धिनीभि सम निवृत्त दर्शनमस्य न ?
दण्डायन —संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्या **कौसल्याया** सकाश भगवत्य**रुन्धती** प्रहिता, यथा स्वयमुपेत्य स्नेहादय द्रष्टव्य इति।

१९६ सौधातकि —यथैते स्थविरा परस्परमेव मिलिता, तथाऽऽवामपि वटुभि सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सव खेलन्तौ मानयाव। अथ कुत्र स जनक ?

१९७ दण्डायन —तथाय प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एष —
हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अन्त प्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पति ॥२॥
(इति निष्क्रान्तौ)

(५) **गुरुजन-समागम –**

(तत प्रविशति जनक)

१९८ जनक —
अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता,
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ॥३॥

१९३ सौधातकि—किसलिये।

दडायन—देवी सीताके वैसे दैव दुर्विपाकको सुनकर, वह मुनि हो गये, चन्द्रदीप नामक तपोवनमे तप करते उन्हे कितने ही वर्ष बीत गये।

१९४ सौधातकि—वहासे क्या आये ?

दडायन—प्रियमित्र भगवान **वाल्मीकि**को देखनेके लिये, इस समय (आये)।

१९५ सौधातकि—आज सम्बन्धिनोके साथ इनकी भेट हो गई ना ?

दडायन—इसी समय भगवान वसिष्ठने कौसल्या देवीके पास भगवती अरुधतीको भेजा कि स्वय आकर स्नेहपूर्वक इनसे मिले।

१९६ सौधातकि—जैसे यह बूढे आपसमे मिले, तैसे हम विद्यार्थी भी एक साथ मिलकर छुट्टीके महत्वको खेलते हुये मनाये। अच्छा वह **जनक** कहा है ?

१९७ दडायन—वाल्मीकि और **वसिष्ठ**की इस तरह उपासना करके इस समय आश्रमके बाहर वृक्षके नीचे जो बैठे है, वही—

हृदयमे सदा लगे माताके शोकसे सतप्त है।
जैसे भीतर आग लगा वृक्ष जल रहा हो ।।२।।

(दोनो बाहर चले गये)

५ गुरुजनो का मिलन—

(तब जनक प्रवेश करते है)

१९८ जनक—

(माता) जैसी सतानपर जो विपद् पडी उस बडे
तीव्र घायल हृदयकी पीडासे लिप्त
चिरकालसे भी फिर नयेकी तरह प्रवाहित शोक
मेरे मर्मको आरेकी तरह छेदता, बद नही होता ।।३।।

१९९ कष्ट एव नाम जरया दु खेन च दुरासदेन भूय पराकसातपनप्रभतिभिस्तपोभि शोषितान्त शरीरधातोरवष्टम्भ एव महानद्यापि मम दग्धदेहो न पतति । अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका प्रेत्य तेभ्य प्रतिविधीयन्त य आत्मघातिन इत्येवमृषयो म यन्ते । अनेकसवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भास प्रत्यग्र इव न म दारुणो दु खसवेग प्रशाम्यति । अयि मात देवयजनसभवे सीते ! इदशस्ने निर्माणभाग परिणत, येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दित न शक्यते । हा पुत्रि!

२०० अनियतरुदितस्मित विराजत्,
कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलक शिशो स्मरामि,
स्खलदसमजसमजु जल्पित ते ।।४।।

२०१ भगवति वसुन्धरे, सत्यमतिदृढासि—
त्व बहूनिर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गगा च यस्या विदुर्,
माहात्म्य यदि वा रघो कुलगुरुर्देव स्वय भास्कर ।
विद्या वागिव यामसूत भवती शुद्धि गताया पुनस्,
तस्यास्त्वदुहितुस्तथा विशमन कि दारुणे मृष्यथा ।।५।।
इत इतो भगवती महादेव्यौ ।

२०२ जनक —अये, गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती (उत्थाय) का पुनर्महादेवीत्याह । (निरूप्य) हा हा कथमिय महाराजस्य **दशरथस्य** धमदारा प्रियसखी मे **कौसल्या** ? क एता प्रत्येति सैवेयमिति नाम ?—

२०३ आसीदिय दशरथस्य गृहे यथा श्री,
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्ट बतान्यदिव दैववशेन जाता,
दु खात्मक किमपि भूतमहो विकार ।।६।।

१९९ कष्टम्, इस तरह जरा असूया और दु खसे (पीडित) फिर पराक, मातपन (चाद्रायण) आदि तपस्याओसे सुखाये हृदयका महा अवलब, यह मेरा जला शरीर आज भी नही गिरता। ऋषि लोग मानते है, कि जो आत्म हत्यारे होते है, वह मर कर इस पापसे प्रकाशहीन अत्यत तिमिरवाले लोकोमे जाते है। अनेक वर्षके बीतने-पर भी अनुभव करनेसे प्रतिक्षण स्पष्ट दिखाई देता मेरा नया सा (होता), दारुण दु ख वेग शात नही हो रहा हे। अरी मैया, यज्ञसे उत्पन्न सीता तेरा जीवन ऐसी अवस्थामे परिणत हुआ कि लज्जाके कारण इच्छा भरकर रो भी नही सकता। हा पुत्री—

२०० अनियम पूर्वक रोने मुस्करानसे शोभा देते,
कुछ कोमल दतकलियोको आगे दिखाते,
तेरे शैशवके कमल वदनको याद करता हू,
और तेरे तुतलाने असबद्ध मजुल बोलनेको भी ॥४॥

२०१ भगवती वसुधरा, सचमुच ही तुम अति दृढ हो—
जिसके महात्म्यको तूने, अग्नि मुनियान वसिष्ठ-पत्नीने और गगाने जना तथा रघुके कुल-गुरु स्वय सूर्यदेवने जाना।
जिसे सरस्वतीकी तरह आपने जन्म दिया, तब शुद्ध हुई उस तुम्हारी पुत्रीकी ऐसी हिंसा करना, हे कठोर तू (इसे) कैसे सहती है ॥५॥
इधर इधर (आइये) भगवती और महादेवी।

२०२ जनक—अये, कचुकीके बतलाये मार्गसे भगवती **अरुधती** (उठकर) यह महादेवी कौन है। (अच्छी तरह देखकर) हा हा, महाराज **दशरथकी** धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी, क्या यह **कौसल्या** है? कौन विश्वास करेगा कि यह वही है।

२०३ यह दशरथ के घरमे लक्ष्मीकी तरह थी,
अथवा यह श्री ही थी, उपमाके पदके जोडनसे क्या ?
सो हाय, दैववश यह दूसरी सी ही हो गई।
अहो, कोई दु खाकार भूत है, विकार है ॥६॥

य एव मे जन पूवमासीन्मूर्तो महोत्सव ।
क्षते क्षारमिवासह्य जात तस्यैव दशनम् ।।७।।

(तत प्रविशत्यरून्धती कौसल्या कचुकी च)

२०४ अरुन्धती—ननु ब्रवीमि द्रष्टव्य स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येव व कुलगुरोरादेश । अत एव चाह प्रेषिता । तत्कोऽय पदे पदे महाननध्यवसाय ?

२०५ कचुकी—देवि , सस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो **वसिष्ठस्यादेशमिति** विज्ञापयामि ।

२०६ कौसल्या—इदशे काले **मिथिलाधिपो** मया द्रष्टव्य इति सममेव सवदु खान्यवतरन्ति । तस्मान्न शक्नोम्युद्वतमानमूलबन्धन हृदय पयवस्थापयितुम् ।

२०७ अरुन्धती—अत्र क सन्देह ?—

सतानवाहीन्यपि मानुषाणा
दु खानि सबन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दु सहानि
स्रोत सहस्रैरिव सप्लवन्ते ।।८।।

२०८ कौसल्या—कथ नु खलु वत्साया मे बध्वा वनगताया-स्तस्या पितु राजर्षेर्मुख दशयाम ?

२०९ अरुन्धती—

एष व श्लाघ्यसबन्धा जनकाना कुलोद्वह ।
याज्ञवल्क्यो मुनियस्मै ब्रह्मपारायण जगौ ।।९।।

२१० कौसल्या—एष स महाराजस्य हृदयनिविशेषो वत्साया मे बध्वा पिता विदेहराज **सीरध्वज** । स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान्दिवसान् । हा देव, सर्वं तन्नास्ति ।

जो ही व्यक्ति पहले मेरे लिये शरीरधारी महोत्सव था।
उसका ही दर्शन अब घावमें नमककी तरह असह्य हो गया ॥७॥

(तब अरुंधती **कौसल्या** और कंचुकी प्रवेश करते हैं)।

२०४ अरुंधती—हां मैं कहती हूं स्वयं ही पास जाकर **जनकका** दर्शन करो। यह तुम्हारे कुलगुरुका आदेश है। और इसीलिये मुझे भेजा है सो यह क्यों पद-पदपर भारी हिचकिचाहट है?

२०५ कंचुकी—देवि, अर्ज करता हूं अपनेको संभाल कर भगवान् **वसिष्ठ**-के आदेशका पालन करें।

२०६ कौसल्या—ऐसे समय मिथिलेशको मुंह देखना होगा, यह सोच एक साथ ही सारे दुःख एक साथ मुझपर टूट रहे हैं। इसीलिये उखड़ते बंधनवाले हृदयको शांत नहीं कर पाती।

२०७ अरुंधती—इसमें क्या संदेह है?—

संबंधियोंके वियोगसे उत्पन्न, प्रवाहसे बहुत मनुष्योंके दुःख, प्रिय जनके देखने पर सहस्र स्रोतोंसे दुस्सह होकर बहने लगते हैं ॥८॥

२०८ कौसल्या—मेरी बच्चीके वन जानेपर उसके पिता राजर्षिको कैसे मुंह दिखलावें।

२०९ अरुंधती—तुम्हारे यह प्रशंसनीय समधी जनकोंके वंशधर हैं, जिनके लिये **याज्ञवल्क्य** मुनिने ब्रह्मका उपदेश दिया था ॥९॥

२१० कौसल्या—यह महाराज (दशरथ) के अभिन्न हृदय, मेरी बच्ची बहूके पिता, विदेहोंके राजा **सीरध्वज** हैं। उन निर्द्वन्द्व रमणीय दिनोंकी याद आ रही है। हा देव, वह सब नहीं रहा।

२११ जनक —(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेह सीरध्वजोऽभिवादयते—

यया पूतमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महस,
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणा गुरुतम ।
त्रिलोकीमागल्यामवनितललीनेन शिरसा,
जगद्वन्द्या देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ।।१०।।

२१२ अरुन्धती—अक्षर ते ज्योति प्रकाश्यताम् । स त्वा पुनातु देव परो रजसा य एष तपति ।

जनक —आय गष्टे, अप्यनामयमस्या प्रजापालकस्य मातु ?

२१३ कचुकी—(स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धा स्म । (प्रकाशम्) राजर्षे, अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदशना नार्हसि दु खयितुमतिदु खिता देवीम् । रामभद्रस्यापि दैवदुर्योग कोऽपि, यत्किल समन्तत प्रवृत्तबीभत्सकिवदन्तीका पौरा न चाग्निशुद्धिमनल्पका प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठित देवेन ।

२१४ जनक —(सरोषम्) आ, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टमेववादिना जनेन **रामभद्र**परिभूता अपि पुन परिभूयामहे ।

२१५ अरुन्धती—(नि श्वस्य) एवमेतत । "अग्निरग्निरिति" वत्सा प्रति लघून्यक्षराणि, सीतेत्येव पर्याप्तम् । हा, वत्से—

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्ति द्रढयति ।
शिशुत्व स्त्रैण वा भवतु ननु वन्द्यासि जगता,
गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिग न च वय ।।११।।

२११ जनक—(पास आकर) भगवन। अरुन्ती। वैदही सीरध्वज अभिवादन करता है। जिस (तुम्हारे) द्वारा पवित्र तजकी निधि भी अपनको पवित्र मानती है।
जिस तुम्हारे पति पूत्र गुरुओके भी महान गुरु है।
उस त्रिलोक मगला उषा देवीकी तरह,
जगदवदनीया भगवनीको सिरसे वदना करता हू ॥१०॥

२१२ अरुधती—अविनाशी ज्योति (ब्रह्म) तुम्हे प्रकाशित हो। वह देव तुम्हे पवित्र करे जो यह दूर लोकोको भी प्रकाशित करते है।
जनक—आर्य गृष्टि (कचुकी) प्रजापालककी यह माता स्वस्थ तो है?

२१३ कचुकी—(अपन आपसे) हम पर पूरी तौरसे अत्यन्त निष्ठुर ताना मार गया। (प्रकट) राजर्षि इस कोप द्वारा दरसे रामको (मुह) देखना छोडे अनिदु खिनी देवीको दु खित नहीं करना चाहिये। रामचन्द्रको भी कोई दवका दुर्योग है जो कि चारो ओर फैली भीषण अफवाहोके कारण बहुतसे पुरवासी अग्नि शुद्धिको नहीं पतियाये इसलिये देव (राम) ने (वह) दारुण काम किया।

२१४ जनक—(रोष सहित) आह, मरी पुत्रीके शुद्ध करनमे यह अग्नि कोन होता है? हाय ऐसा कहनेवाला आदमी राम द्वारा अपमानित हमे फिरसे अपमानित कर रहा है।

२१५ अरुधती—(उसास लेकर) ऐसी ही है यह। अग्नि-अग्नि यह अक्षर बच्ची (सीता) के बारे में तुच्छ है। सीता यही पर्याप्त है। हा बच्ची—

मेरी शिशु हो या शिष्या इसे रहने दो।
शुद्धिका जो उत्कर्ष है वह तेरे विषयमे मेरी भक्ति दृढ करता है।
शिशुता हो चाहे स्त्रीत्व, तुम जगतकी वदनीया हो।
गुणियोमे पूजनीय गुण होते है लिंग और आयु नही ॥११॥

२१६ कौसल्या—अहो, समुन्मूलयन्तीव वेदना ।
जनक —हन्त, किमेतत् ?

२१७ अरुन्धती—राजर्षे, किमन्यत्—

स राजा तत्सौख्य स च शिशुजनस्ते च दिवसा ,
स्मृतावार्विभूत त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम् ।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी,
पुरध्रीणा चित्त कुसुमसुकुमार हि भवति ॥१२॥

२१८ जनक —हन्त, सवथा नृशसोऽस्मि । यश्चिरस्य दृष्टा-
न्प्रियसुहृद प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि—
स सबन्धी श्लाघ्य प्रियसुहृदसौ तच्च हृदय,
स चानन्द साक्षादपि च निखिल जीवितफलम् ।
शरीर जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतर
महाराज श्रीमान्किमपि मम नासीद् दशरथ ॥१३॥

२१९ कष्टमियमेव सा कौसल्या,—
यदस्या पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभूद्,
अभूव दम्पत्यो पृथगहमुपालम्भविषय ।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभूद्
अल वा तत्स्मत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम् ॥१४॥

२२० अरुन्धती—हा कष्टम् ! अतिचिरनिरुद्धनि श्वासनि-
ष्पन्द हृदयमस्या ।

जनक —हा प्रियसखि ! (इति कमण्डलूदकेन सिचति)

कचुकी—

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदा,
प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुण ,
परिशिनष्टि विधिमनसो रुजम् ॥१५॥

२१६ कौसल्या—अहो, पीडा जड सी उखाड रही ह।
जनक—हन्त, यह क्या ?

२१७ अरुधती—राजर्षि और दूसरा क्या ?—
वह राजा वह सुख वह बच्चे और वे दिन,
तुम जसे मित्रको देखने पर सब स्मतिमे प्रकट हो गये।
इस घोर विपाकमे तेरी सखी अमूढ नही रह सकती—
स्त्रियोका चित्त कुसुम सा सुकुमार हाता है ॥१२॥

२१८ जनक—हन्त, सवथा म नशस हू जो देर से देखे प्रिय मित्र की स्त्रिया का स्नेह बिना देख रहा हू—
वह समधी श्लाघनीय ह वह प्रिय सुहृत और वह हृदय (भी)
वह आनन्द सारे जीवन का साक्षात फल।
शरीर या जीव अथवा इससे अधिक दूसरा जो प्रिय ह (सभी थे)
श्रीमान महाराज दशरथ मेरे क्या नही थे ॥१३॥

२१९ ओह, यही वह कौसल्या ह।
इसने या पतिने रहस्य मे गुप्त जो सलाह की
प्रसन्नता या कोप मे दोनो पति-पत्नियो के उपालभका
मै अलग लक्ष्य हुआ था, उसके बाद भाग्य मेरे पक्षमें हुआ।
उसे याद करना बेकार है, जो कि हृदय को पीडित कर जलाता है ॥१४॥

२२० अरुधती—हा कष्टम, बहुत देरसे श्वास-गति रुका इसका हृदय है।
जनक—हा प्रियसखि, (कमडलूका जल छिडकते है)

कचुकी—
मित्रकी तरह पहले सुखप्रद,
एकरस अनकूलताको प्रकट करके
फिर एकाएक बदल कर दारुण हो,
दैव मनके रोगको बढाता है ॥१५॥

२२१ कौसल्या—(आश्वस्य) हा, वत्से जानकि ! कुत्रासि ? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमगल सफुल्लमुग्ध-मुखपुण्डरीकमारुहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम् । एहि मे पुनरपि जाते उदद्योतयोत्सगम् । सवदा महाराज एव भणति—"एषा रघुकुलमहत्तराणा वधूरस्माक तु जनकसुता दुहितैव ।"

२२२ कचुकी—यथाह देवी,—

पचप्रसूतेऽपि तस्य राज्ञ ,
प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रु ।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या,
प्रिया तनूजास्य यथैव सीता ॥१६॥

२२३ जनक—हा प्रियसख महाराज दशरथ, एवमसि सवप्रकारहृदयगम । कथ विस्मयसे ?

कन्याया किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्त जन,
सबन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधन ते मयि।
त्व कालेन तथाविधोऽप्यपहृत सबन्धबीज च तद,
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्
॥१७॥

२२४ कौसल्या—जाते जानकि ! कि करोमि ? दढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चल हतजीवित मा मन्दभागिनी न परित्यजति ।

अरुन्धती—आश्वसिहि राज्ञि, बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कतव्य एव। अन्यच्च, किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृगाश्रमे युष्माक कुलगुरुभवितव्य तथेत्युपजातमेव, किंतु कल्याणोदर्क भविष्यतीति ?

२२१ कौसल्या—(साम लेकर) हा बच्ची जानकी कहा हो ? याद आता है तेरे नवविवाहकी शोभाके परिग्रहके केवल मगलवाला उठने चद्रकी तरह सुदर फूला मुग्ध मुखकमल। पुत्री आ फिर मेरी गोदको उज्वल कर। सदा महाराज कहते थे यह जनक सुता तो रघुकुल महत्तरोकी बहू प- हमारे लिये तो बेटी ही है।

२२२ कचुकी—जो देवी कहती है वही बात है—

उस राजाकी पाच सतानोमे भी
सुवाहुके शत्रु (राम) विशेषकर प्रिय थे।
उसी तरह चारा बहुआमे दूसरी उननी,
नही प्रिय थी जैसी कि इनकी पुत्री सीता ॥१६॥

२२३ जनक—हा प्रिय मित्र, महाराज दशरथ इस प्रकार तुम सब प्रकार से हृदयमे समाये कैसे भूले जा सकते हो—

कन्याके पिता जमाईके पूज्य जनोको पूजते हैं।
सो मेरी आराधना करनेमे तुम्हारा मवध उलटा ही हुआ।
ऐसे तुम काल पाकर छीन लिये गये किंतु यह सबन्ध का बीज
इस मेरे घोर ससाररूपी नर्कमे ह, मुझ पापीका जीना धिक्कार
है॥१७॥

२२४ कौसल्या—पुत्री जानकी क्या करूँ ? मजबूत वज्रलेपसे जडा निश्चल हतभागा यह जीवन मुझ अभागिनी को नही छोड रहा ह।

अरुधती—रानी, धीरज धरो। बीचमे आसुओको रोकना चाहिये। और क्या तुम्हे नही याद है श्रृगी ऋषि के आश्रम मे तुम्हारे कुल गुरु ने क्या कहा था—जैसी भवितव्यता थी, वैसा ही हुआ, किंतु इसका परिणाम मगल होगा ?

२२५ कौसल्या—कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत् ?

२२६ अरुन्धती—तत्कि मन्यसे राजपत्नि ! मृषोद्य तदिति ? नहीद क्षत्रिये, मन्तव्यम्—

आविर्भूतज्योतिषा ब्राह्मणाना,
ये व्याहारास्तेषु मा सशयो भूत्।
भद्रा ह्येषा वाचि लक्ष्मीनिषक्ता,
नैते वाच विप्लुतार्था वदति ॥१८॥

(नेपथ्ये कलकल, सर्वे आकणयन्ति)

२२७ जनक—अये, अद्य खलु शिष्टानध्ययन इत्यस्खलित खेलता बटूना कोलाहल ।

कौसल्या—सुलभसौख्यमिदानी बालत्व भवति। (निरूप्य) अहो, एतेषा मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरगैर्दारकोऽस्माक लोचने शीतलयति ?

२२८ अरुन्धती—(स्वगतम् सहर्षोत्कण्ठम्) इद नाम भागीरथीनिवेदित रहस्यकर्णामृतम। न त्वेव विद्म कतरोऽयमायुष्मतो कुशलवयोरिति (प्रकाशम्)—

कुवलयदलस्निग्धश्याम शिखण्डकमण्डनो,
बटुपरिषद पुण्यश्रीक श्रियैव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूत्वा वत्स स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्ट कोऽय दृशोरमताजनम् ॥१९॥

२२९ कचुकी—नून क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।
जनक—एवमेतत्। अस्य हि,—

चूडाचुम्बितकक्कपत्रमभितस्तूणीद्वय पृष्ठतो,
भस्मस्तोकपवित्रलाछनमुरो धत्ते त्वच गौरवीम्।

२२५ कौसल्या—(सभी) मनोरथोंसे वंचित मेरे लिये यह कहा संभव है ?

२२६ अरुंधती—तो क्या राजपत्नी समझती हो वह कथन झूठा है ? हे क्षत्रियाणी ऐसा नहीं समझना चाहिये—

ज्योति जिनके सामने प्रकट है उन ब्राह्मणोंके
उन व्यवहारोंमें संशय न करो।
इनके वचनमें मंगल लक्ष्मी बसती है।
वे ऊटपटांग अथवाली वाणी नहीं बोलते ।।१८।।

(नेपथ्यमें हल्ला-गुल्ला सब सुन रहे हैं)

२२७ जनक—अये आज शिष्टोंके आनेका अनध्याय है इसलिये अचूक खेलते विद्यार्थियोंका (यह) कोलाहल है।

कौसल्या—इस समय बचपन सुख-सुलभ होता है। (देखकर) अहो इनके बीचमें कौन यह बालक है जो **रामचन्द्र**के बचपनकी शोभासे युक्त मुग्ध ललित अपने अंगो द्वारा हमारे लोचनको शीतल कर रहा है ?

२२८ अरुंधती—(अपने आपसे हर्ष और उत्कंठाके साथ) यह तो **भागीरथी**का बतलाया कानोंका गोपनीय अमृत है। पर यह नहीं जानती कि इनमें आयुष्मान कुश और लवमें कौन कौन हैं। (प्रकट)—

नील कमलदलसे स्निग्ध और श्याम खोपसे मंडित,
पुण्य शोभावाला बच्चोंकी सभाको शोभासे युक्त करते।
वही मेरा बच्चा रघुनंदन फिर शिशु होकर दीखता सा,
यह कौन तुरन्त नेत्रोंका अमृतांजन बन रहा है ।।१९।।

२२९ कंचुकी—यह बच्चा मुझे क्षत्रिय-ब्रह्मचारी जान पड़ता है।

जनक—यह ऐसा ही है। इसके तो—

चारों ओर चूड़ामें लगे कौवेके पंख और पीठका ओर दो तूणीर हैं छातीमें भस्मका थोड़ा सा पवित्र तिलक यह रुरुका मृगछाला धारण किये है।

मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवास च माञ्जिष्ठक,
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलय दण्डोऽपर पैप्पल ॥२०॥
भगवत्यरुन्धति, किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयमिति ?

२३० अरुन्धती—अद्यैव वयमागता ।

जनक —आय गप्टे, अतिकौतुक वतते। तद् भगवन्त वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इम च दारक ब्रूहि "वत्स ! केऽप्येते प्रवयसस्त्वा दिदृक्षव" इति।

२३१ कचुकी—यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्त)
कौसल्या—कि मन्यध्वे एव भणित आगमिष्यति वा न वेति ?

जनक —भिद्यते वा सद्वत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

२३२ कौसल्या—(निरूप्य) कथ सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेपसदृशदारक इतोऽभिमुखमपसरित एव स वत्स ?

२३३ जनक —(चिर निवण्य) भो, किमप्येतत,—

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो,
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशय ।
मनो मे समोहस्थिरमपि हरत्येष बलवान्,
अयोधातु यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकल ॥२१॥

२३४ लव —(प्रविश्य) अविज्ञातवय क्रमौचित्यात्पूज्यानपि सत कथमभिवादयिष्ये ? (विचिन्त्य) अय पुनरविरुद्ध प्रकार इति वृद्धेभ्य श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्याय ।
अरुन्धती जनकौ—कल्याणिन्, आयुष्मान्भूया ।

२३५ कौसल्या—जात, चिर जीव।
अरुन्धती—एहि वत्स, (लवमुत्सगे गृहीत्वा, आत्म-

(इसका) निचला भाग ज्या और मेखलासे बंधा है और वस्त्र का रंग लाल है। हाथमें धनुष रुद्राक्षकी मालाका कंकण और पीपलका दंड है ॥२०॥ भगवती अरुंधती आप क्या अनुमान कर रही है यह कहाका है ?

२३० अरुधती—आज ही हम आये हैं।

जनक—भाय गप्टि बड़ा कौतूहल हो रहा है। सो भगवान वाल्मीकि से हो जाकर पूछे और इस बालकको कहे वत्स यह वृद्ध तुम्हें देखना चाहते हैं।

२३१ कंचुकी—जैसे देव आज्ञा देते हैं। (बाहर चला गया)

कौसल्या—आप क्या समझ रहे हैं ऐसे बुलाने पर आयेगा या नहीं ?

जनक—अथवा एसी रूप रचनाके सदवृत्तमें भेद होता है।

२३२ कौसल्या—(अच्छी तरह देखकर) क्या विनयपूर्वक गष्टिका वचन सुन अपने जैसे सारे बच्चो को छोड़कर वह इधर ही आ रहा है ?

२३३ जनक—(देर तक अच्छी तरह देखकर) हे यह कोई—

महिमाओंका विनयसे शीतल मुग्धतामें चिक्कन पंडितो द्वारा पकड़ा जानेवाला पर अपंडितो द्वारा नहीं इसके भीतर यह अतिशय, मोहमें स्थिर मेरे मनको बलवान हो वैसे ही हरण कर रहा है जैसे अतिलघु चुम्बक खंड, लोहकी धातुसे ॥२१॥

२३४ लव—(प्रवेश करके) आयुके तारतम्यको बिना जाने पूज्य होने भी इनका कैसे उचित रीति से अभिवादन करूंगा। (सोचकर) किन्तु, वृद्धोसे यह अविरोधी ढंग सुना है। (विनयके साथ पास आकर) आप लोगोको यह लवका सिरसे प्रणाम है

अरुधती और जनक—आयुष्मान कल्याण युक्त होवो।

२३५ कौसल्या—पुत्र चिरंजीव।

अरुधती—आओ बच्चा। (लवको गोदमें ले अपने आपसे) धन्य

गतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्सगश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरित ।

२३६ कौसल्या—जात, इतोऽपि तावदेहि। अहो न केवल दरविस्पष्टकुवलयमासलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहसघोषघघरनादिना स्वरेणच्च रामभद्रमनुसरति। ननु कठोरकमलगभपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात, पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। राजर्षे, कि न पश्यसि निपुण निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि सवदत्येव ?

जनक—पश्यामि सखि, पश्यामि।

२३७ कौसल्या—अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदय कुतो मुख विलपति।

जनक—

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते,
सवृत्ति प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृति सा द्युति ।
सा वाणी विनय स एव सहज पुण्यानुभावोऽप्यसौ,
हा हा देवि ! किमुत्पथैमम मन पारिप्लव धावति ॥२२॥

२३८ कौसल्या—जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम् ?
लव—नहि।

२३९ कौसल्या—तत कस्य त्वम् ?
लव—भगवत सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीके ।

२४० कौसल्या—अयि जात, कथितव्य कथय।
लव—एतावदेव जानामि।

(नेपथ्ये)

भो भो सैनिका। एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति "न केनचिदाश्रमाभ्यणभूमय आक्रमितव्या" इति।

मेरा गोद ही नही चिरकालसे पापिन मेरा मनोरथ भी पूरा हो गया ।

२३६ कौसल्या—पुत्र इधर भी जरा आ। अहो, केवल फूले स्पष्ट नील कमलसे मासल उज्ज्वल देहके अगोसे ही नही, बल्कि कमल-केसरके कषायको खाये कठवाले हसके घोषकी तरह घर्-घर करनेवाले स्वरसे भी यह रामभद्रका अनुकरण कर रहा हे। हा कठोर कमल-केसरकी पलकोवाले (इसके) शरीरका स्पर्श भी वैसा ही है। पुत्र, तेरे मुख कमलको देख रही हू। राजर्षि क्या अच्छी तरह देखनेपर मेरी बछिया के मुख चद्र सा नही दीखता ?

जनक—देखता हू सखी, देखता हू।

२३७ कौसल्या—अहो उन्मत्त हुआ मेरा हृदय कहासे मुख विलाप कर रहा है ?

जनक—

बच्चा और रघुनदनकी समानता इस शिशुमे व्यक्त हो रही है।
वही आकृति वही सारी द्युति प्रतिबिम्बित सी है।
वही वाणी है, वही विनय और वही सहज पुण्य प्रभाव भी।
हा हा देवी क्यो मेरा मन विपथमे बतहासा दौड रहा है ।।२२।।

२३८ कौसल्या—पुत्र, तेरी माता है ? बापको जानता है ?

लव—नही ।

२३९ कौसल्या—तो तू किसका है ?

लव—सुन्दर नामधारी भगवान **वाल्मीकि**का ।

२४० कौसल्या—हे पुत्र कहना है सो कह ।

लव—मै इतना ही जानता हू ।

(नेपथ्यमें)

हे-हे सैनिको, यह कुमार **चन्द्रकेतु** आज्ञा दे रहे है, कि कोई आश्रमके पासकी भूमिको आक्रात न करे ।

२४१ अरुन्धतीजनकौ—अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसगादुपागतो वत्स-श्चन्द्रकेतु द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवस ।

२४२ कौसल्या—वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृत-बिन्दुसु दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते ।

लव—आय, क एष चन्द्रकेतुनामि ?

२४३ जनक—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?

लव—एतावेव रामायणकथापुरुषौ ।

२४४ जनक—अथ किम् ।

लव—तत् कथ न जानामि ?

२४५ जनक—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतु ।

लव—ऊर्मिलाया पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्र ।

अरुन्धती—आविष्कृत कथाप्रावीण्य वत्सेन ।

२४६ जनक—(विचिन्त्य) यदि त्वमीदश कथायामभिज्ञ-स्तद् ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषा दशरथस्य पुत्राणा कियन्ति किनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?

लव—नाय कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूव ।

२४७ जनक—कि न प्रणीत कविना ?

लव—प्रणीतो न प्रकाशित । तस्यैव कोऽप्येकदेश प्रब-न्धान्तरेण रसवानभिनेयाथ कृत । त च स्वहस्तलिखित मुनिभगवान्व्यसृजद् भगवतो भरतस्य तौयत्रिकसूत्रधा-रस्य ।

२४८ जनक—किमथम् ?

लव—स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभि प्रयोजयिष्य-तीति ।

२४९ जनक—सवमिदमाकूततरमस्माकम् ।

लव—महती पुनस्तस्मि भगवतो वाल्मीकेरास्था यत

२४१ अरुधती और जनक—अरे अश्वमेधके अश्वका रक्षाके प्रसगसे आये बच्चा **चन्द्रकेतु**को देखना हे ! अहा कितना अच्छा दिन है।

२४२ कौसल्या—बच्चा लक्ष्मणको पुनवा आज्ञा दे रहा है, यह अमनकी वूदकी तरहके सुन्दर अक्षर सुनाई दे रहे हे।

लव—कौन हे आये कौन है यह चन्द्रकेतु ?

२४३ जनक—जानते हो दशरथके पुत्र **राम लक्ष्मण**को ?

लव—यही तो दोनो **रामायण** कथाके पुरुष है।

२४४ जनक—और क्या ?

लव—तो कैसे नही जानूगा।

२४५ जनक—उसी लक्ष्मणका यह पुत्र चन्द्रकेतु हे।

लव—तो उर्मिला का पुत्र **मथिल** राजर्षिका नाती है।

अरुधती—बच्चेने बातमे अपनी चतुराई प्रकट कर दी।

२४६ जनक—(सोचकर) यदि तू कथासे इतना अभिज्ञ है, तो बतला, हम देखेगे, दशरथके पुत्रोके कितने, कौन से नामवाले किन किन पत्नियोमे उत्पन्न सताने है ?

लव—हमने या दूसरेने कथाका यह भाग पहले नही सुना।

२४७ जनक—क्या कविने बनाया नही ?

लव—बनाया, लेकिन प्रकाशित नही किया। उसीके किसी अशको दूसरे प्रबन्ध द्वारा रसयुक्त अभिनयके योग्य बनाया। और उसे अपने हाथसे लिख भगवान मुनिने भगवान् **भरत** नत्य-गीत-वादनके आचार्यको प्रदान किया।

२४८ जनक—किसलिये ?

लव—जिसमे भगवान भरत उसका अप्सराओसे अभिनय करायें।

२४९ जनक—यह सब हमारे लिये अति कौतूहलजनक है।

लव—भगवान् वाल्मीकिकी उनमे बडी आस्था है, इसीलिये किन्ही ऋषियोके हाथसे पुस्तक भरतके आश्रममे भेज दी। उनके साथ

केषाचिदन्तेवासिना हस्तेन तत्पुस्तक भरताश्रम प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणि प्रमादच्छेदनाथ-मस्मद्भ्राता प्रेषित ।

२५० कौसल्या—जात, भ्रातापि तेऽस्ति ?

लव —अस्त्याय कुशो नाम।

२५१ कौसल्या—ज्येष्ठ इति भणित भवति।

लव —एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

जनक —कि यमावायुष्मन्तौ ?

लव —अथ किम्।

२५२ जनक —वत्स, कथय कथाप्रपचस्य कियान् पयन्त ?

लव —अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासिता देवी देवयजनसभवा सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मण परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

२५३ कौसल्या—हा, वत्से मुग्धमुखि, क इदानी ते शरीर-कुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निप-तित !

जनक —हा वत्से !

नून त्वया परिभव च वन च घोर,
ता च व्यथा प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्यादगणेषु परित परिवारयत्सु,
सत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम् ।।२३।।

२५४—लव —अये कावेतौ ?

अरुधती—इय कौसल्या। अय जनक । (लव सबहु-मानखेदकौतुक पश्यति)

२५५ जनक —अहो, निदयता दुरात्मना पौराणाम्। अहो, रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता—

विघ्नको हटानके लिये हाथमें धनुष लिये हमारे भाई को भजा।

२५० कोसल्या—पुत्र तेरे भाई भी है ?

लव—है आय कुश नामक।

२५१ कौसल्या—जठा यह कह सक्ते है।

लव—एमा ह। है। जन्मके क्रमसे वह बड है।

जनक—क्या तुम आयुष्मान जुडवा हो ?

लव—और क्या ?

२५२ जनक—बच्चा बता तो कथा का विस्तार कितना समाप्त हुआ है।

लव—नागरिकाके झूठ लाछनमें उद्विग्न हो राजान जल्दा प्रसव वेदनावाली यज्ञसे उत्पन्न देवी सीताको निर्वासित कर दिया, और उन्हे एकाकिनी छोडकर **लक्ष्मण** लौट गये, (बस) इतना तक।

२५३ कौसल्या—हा बच्ची मुग्धमुखी, इस समय एकाकिनी तेरे शरीर-कुसुम पर दैवकी क्रूरताका परिणाम क्यो आ पडा ?

जनक—हा बच्ची—

निश्चय तूने तिरस्कार घोर वन,
और प्रसवकालकी उस व्यथाको पाकर,
चारो ओर हिंस्र जन्तुओसे घिरी
भयभीत हो शरणके लिये अनेक बार मुझे याद किया होगा।।२३।।

२५४ लव—आर्या, ये दोनो कौन है ?

अरुधती—यह कौसल्या, यह जनक है। (लव सम्मान खेद, कौतूहल सहित देखता है)

२५५ जनक—अहो दुष्ट पुरवासियोकी निदयता, अहो **रामभद्र**की जल्दबाजी—

एतद्वैशसवज्रघोरपतन शश्वन्ममोत्पश्यत,
क्रोधस्य ज्वलितु झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

२५६ कोसल्या—(सभयकम्पम) भगवति, परित्रायताम्,
प्रसादय कुपित राजर्षिम्।

लव —

एतद्धि परिभूताना प्रायश्चित्त मनस्विनाम्।

२५७ अरुन्धती—

राजन्नपत्य रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जना ॥२४॥

जनक —

शान्त वा रघुनन्दने तदुभय यत्पुत्रभाण्ड हि मे,
भूयिष्ठद्विजबालबृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जन ॥२५॥

(प्रविश्य सभ्रान्ता बटव)

२५८ कुमार, कुमार, अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जन-
पदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमुधुनाऽस्माभि स्वय प्रत्यक्षीकृत।

२५९ लव —अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये साग्रामिके च
पठ्यते, तद्ब्रत कीदृश ?

२६० बटव —अये, श्रयताम्,—

पश्चात्पुछ वहति विपुल तच्च धूनोत्यजस्र,
दीर्घग्रीव स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान,
कि व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्योहि याम ॥२६॥

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति)

२६१ लव —(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्या, पश्यत।
एभिर्नीतोऽस्मि। (इति त्वरित परिक्रामति)।
अरुन्धतीजनकौ—महत्कौतुक वत्सस्य।

मर देखन यह भयकर घार वज्रका बगबर गिरना
चाप य गपन क्षावके जल्दी जल उठनका अवसर है।

निरस्कृत मनस्वियाका यह। प्रायश्चित्त ह।

२५६ कौसल्या—(भयके साथ कापती) भगवती, रक्षा करे, कुपित राजर्षि को मनाय।

लव—

तिरस्कृत मनस्वियो का यही प्रायश्चित है।

२५७ अरुधन।—

हे राजन, राम तरी सन्तान है अभागे आदमियोकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ।।२४।।

जनक—

वह दोनो रघुनदनने शान्त कर दिया, क्योंकि वह मेरे पुत्र धन है।
अधिकाश पुरवासी जन ब्राह्मण, बाल, बृद्ध अपग, स्त्रिया है ।।२५।।

(प्रवेश करके घबराये हुये विद्यार्थी समह)

२५८ 'कुमार कुमार, घोडा घोडा'' ऐसा कोई भूत सा देशमे सुनाई दे रहा है। उमे हमने स्वय प्रत्यक्ष देखा।

२५९ लव— घोडा घोडा यह नाम तो (काशमे) पशुओके वर्गमें ओर सग्रामके सम्बन्धमे पढा जाता है सा बतलाओ कैसा है वह ?

२६० वटुगण—अरे सुनिये—

पाछे विपुल पूछ को धारण करता जो बराबर हिलती रहती है।
वह लम्बा गरदनवाला है, उसके चार ही खुर ह।
घास खाता है आमके बाराबरकी लेंडीवाला पाखाना बिखेरता है।
बहुत व्याख्या करनेसे क्या, वह दूर जा रहा है आओ चलें ।।२६।।

(यह कह मगछाला और हाथो को पकड लवको खीचते है)

२६१ लव—(कुतूहलक अनुरोध और विनयके साथ) आर्यो, आर्यो, देखो ये मुझ ले जा रहा है। (जल्दी चला जाता है)

अरुधती और जनक—बच्चेको बडा कौतूहल है।

२६२ कौसल्या—अरण्यगभरूपालापैर्यूय तोषिता वय च। भगवति, जानामि त प्रेक्ष्यन्ती वचितेव। तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमान दीर्घायुषम्।
अरुन्धती—अतिजवेन दूरमतिक्रान्त, स चपल कथ दश्यते।

कचुकी—(प्रविश्य) भगवान्वाल्मीकिराह "ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि" रिति।

२६३ जनक—अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति, सखि कौसल्ये, आय गृष्टे, स्वयमेव गत्वा भगवन्त प्राचेतस पश्याम।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवग)

(प्रविश्य)

(६) **लवपराक्रम—**

२६४ बटव—पश्यतु कुमारस्तावदाश्चयम्।
लव—दृष्टमवगत च, नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्व।

२६५ बटव—कथ ज्ञायते?

लव—ननु मूर्खा, पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। कि न पश्यथ प्रत्येक शतसरया कवचिनो दण्डिनो निषगिणश्च रक्षितार? तत्प्रायमेवा यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पच्छथ।

२६६ बटव—भो भो, किप्रयोजनोऽयमश्व परिवृत पर्यटति?
लव—(सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेध इति नाम विश्वजयिना क्षत्रियाणामूजस्वल सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकष।

२६२ कौसल्या—अन्यचारियो जैसे (उसके) भाषणसे तुम और हम तुष्ट हुये। भगवती, मै जानती हू उसे देखनी मैं वंचित सी हू। इसलिये यहासे अन्यत्र चलकर आगत हुये दीर्घायुको देखे।

अरुधती—बडे वेगसे दूर चला गया वह चचल कैसे दिखाई पडेगा।

कचुकी—(प्रवेश करके) भगवान वाल्मीकि कह रहे हैं "इसे समय पर आपको जानेंगे।"

२६३ जनक—यह कोई अतिगम्भीर बात है। भगवती अरुधती, सखी कौसल्या, आय गृष्टि, स्वय ही हम चलकर भगवान् वाल्मीकिको देखें।

(वृद्ध लोग चले गये)

(प्रवेश करके)

६ लवपराक्रम—

२६४ वटुगण—कुमार अचरज! देखे।

लव—देखा और जान भी लिया। निश्चय ही यह अश्वमेध का घोडा है।

२६५ बटुगण—कैसे मालूम हुआ?

लव—मूर्खो, तुमने भी उस काण्डको पढा ही है। देख नही रहे हो, प्रत्येकपर सौ सख्यामें कवचधारी दडधारी, तूणीरधारी रक्षक है? करीब उतना ही और भी दीखता है। यदि सदेह है, तो पूछ लो।

२६६ बटुगण—हे-हे, किसलिये लोगोसे घिरा यह घोडा घूम रहा है?
लव—(लालसाके साथ अपने आपसे) अश्वमेध तो विश्व-विजयी ओजस्वी सब क्षत्रियोका तिरस्कारक बडे वैभवकी कसौटी है।

(नेपथ्ये)

योऽयमश्व पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विष ॥२७॥

२६७ लव —(सगवमिति) अहो सदीपनान्यक्षराणि।
बटव —किमुच्यते ? प्राज्ञ खलु कुमार ।

२६८ लव —भो भो, तत्किमक्षत्रिया पथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?
(नेपथ्ये) रे रे महाराज प्रति कुत क्षत्रिया ?

२६९ लव —धिग्जाल्मान्,
यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ?
किमुक्तैरेभिरधुना ता पताका हरामि व ॥२८॥
हे बटव, परिवत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम्।
एष रोहिताना मध्येचरो भवतु।

(प्रविश्य सक्रोध)

२७० पुरुष —धिक्चपल, किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणय शिशोरपि दप्ता वाच न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्त, सोऽप्यपूर्वारण्यदशनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावत् त्वरितमनेन तरुगहनेनापसपत।

२७१ बटव —कुमार, कृत कृतमश्वेन। तजयन्ति विस्फारितशरासना कुमारमायुधीयश्रेणय। दूरे चाश्रमपदमित। तदेहि, हरिणप्लुतै पलायामहे।

२७२ लव —कि नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ? (इति धनुरारोपयन्)—
ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदष्ट्रम्,
उद्भूरिघोरघनघघरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्तयन्त्र-,
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्॥२९॥

(इति यथोचित परिक्रम्य निष्क्रान्ता सव)

—अक ४

(नपथ्यमे)

जो यह घोडा, यह पताका अथवा वीरोचित घोषणा है।
वह साता लोकाके अद्वितीय वीर रावण-वशक शत्रुकी है ।।२७।।

२६७ लव—(गवक साथ) अहो ये अक्षर उत्तजित कर रहे हैं।
बटुगण—क्या कहते है ? कुमार निश्चय बुद्धिमान है।

२६८ लव—हे-हे ता क्या पथ्वी क्षत्रिय विहीन है जो कि इस तरह घोषित किया जा रहा है ?

(नेपथ्यमें) रे रे, महाराजक सामने कहा है क्षत्रिय ?

२६९ लव—धिक दुष्टो।
यदि नही है ता है ही आज यह भय दिखलाना क्यो ?
इनक कहनसे क्या ? अब तुम्हारी उस पताकाको मै हरण करता हू ।।२८।।

ह बटुओ लौटकर डेलोसे मारते इस घोडको ल चलो। यह मृगोके बीचमे चरगा।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

२७० पुरुष—चपल धिक, तूने क्या कहा ? हथियारोकी अतितीक्ष्ण पातिया शिशुकी भी गर्वीली बातका नही सह सकती। राजपुत्र चद्रकेतु दुर्दान्त हैं वह अपूव अरण्यदशनसे आकृष्ट हो जब तक नही आते, तब तक जल्दी ही इस घने वक्षो मे से होकर भाग जाओ।

२७१ बटुगण—कुमार, रहन दो रहने दो घोडेको। शस्त्रधारियोकी पाती धनपको फैलाकर डरा रही ह और यहासे आश्रम दूर है। सो आओ, हरिनकुदान करत भाग चलें।

२७२ लव—क्या हथियार चमक रहे है ? (धनुषको चढा)—
प्रत्यचारूपी जिह्वा के साथ लपेटे उत्कट छोररूपी दाढ वाला,
अतिअधिक घोर घने घर घर घोषवाला,
ग्रसनेमे लगे हसत यमके मुख-यत्रकी जम्हाई जैसा
विकट उदरवाला यह (मेरा) चाप होवे ।।२९।।

(यथोचित परिक्रमा करके सब बाहर चले गय)

—अक ४

भाग ४

४. अपभ्रंश (२)

(उत्तर काल ७००—१२०० ई)

३७ भट्ट नारायण (७३० ई)

३८ मुरारि (८०० ई)

३९ त्रिविक्रम (९१५ ई)

४० क्षेमेन्द्र (१०६० ई)

४१ बिल्हण (१०८० ई)

४२ गोवर्धन (११०० ई)

४३ जयदेव (,,)

४४ मखक (११३० ई)

४५ वाग्भट्ट (११४० ई)

४६ मरुला (११५० ई)

४७ श्रीहर्ष (११६० ई)

३७ भट्ट नारायण (७३० इ०)

३७ भट्ट नारायण (७३० ई०)—किंवदन्तियोके अनुसार भट्ट नारायण उन ब्राम्हणोसे थे, जिन्हें आदिशूर राजा ने कान्यकुब्ज देशसे बगालमें बुलवाया था। आदिशूर ७१५ ई० में गौड देशके राजा बने। आदिशूर के वशका स्थान पीछे पाल-वशने लिया। यह भी कहा जाता ह, कि

वेणीसहार

(१) अश्वत्थाम्न -कोप —

१ (तत प्रविशत्याकृष्टखड्गै कलकलमाकणयन्नश्वत्थामा)

२ अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावतक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहु ।
रव श्रवणभैरव स्थगितरोदसीकन्दर,
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूव पुर ॥४॥

(विचिन्त्य) ध्रुव गाण्डीविना सात्यकिना वकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तात । यत समुल्लघ्य शिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते। तथा हि,—

यद्दुर्योधनपक्षपातसदश युक्त यदस्त्रग्रहे,
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीयस्य यत्साप्रतम् ।
लोकेसवधनुष्मतामधिपतेयच्चानुरूप रुष ,
प्रारब्ध रिपुघस्मरेण नियत तत्कम तातेन मे॥५॥

३ (पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र ? रथमुपनयतु। अथवाऽलमिदानी मम रथप्रतीक्षया। सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणामुना खड्गेन। यावत्समरभुवमवतरामि। (परिक्रम्य, वामा-

३७ भटट नारायण (७३० ई०)

मगधके गुप्तवशी राजा आदित्यसेन और आदिशूर एक ही ह। भट्ट नारायणकी एक ही कृति "वेणिसहार" (नाटक) मिलती ह। द्रौपदीको दु शासन बाल खींचकर सभामें लाया था। द्रौपदीने वेणीको दुर्योधनके रक्तसे धोकर बाधनेकी प्रतिज्ञावाली बातको यहा मुख्य बनाया गया ह। यह नाटक भी उ ही दोषोसे दूषित ह, जिनसे अपभ्र श कालके अ य काव्य और नाटक।

वेणीसहार

१ अश्वत्थामा का कोप—

१ (तब कल-कल् सुन तलवार खीच अश्वत्थामा प्रवश करते हैं)

२ अश्वत्थामा—

महाप्रलयकी वायुसे क्षु ध मेघके प्रचड घन-गजनकी
प्रतिध्वनिका अनुकरण करनवाला क्षण भर कानके लिय भयकर
आकाश-पथिवीकी कदराको भरता
किस समररूपी सागरसे आज यह अभूतपूव शब्द सामने (उठ रहा) है।।४।।

(सोचकर) निश्चय अर्जुन सात्यकि या भीमने यौवनके अभिमानसे मर्यादा छोड बापूको कुपित किया इसीलिये अपने प्रभाव में समान शिष्यकी अतिप्रियता को वह उल्लघन कर व्यवहार कर रहे ह। जो दुर्योधनके पक्षपात के अनुकूल है जो हथियार ग्रहण करनेमें उचित है परशुरामस मिले सार हथियारोवाले गुरु के पराक्रमके जो अनुकूल है।

ससारमे सारे धनुर्धारियोके स्वामीके कोपके जो अनुरूप है,
निश्चय वह काय मेरे शत्रु भक्षक बापूने आरभ किया है।।५।।

३ (पीठकी ओर देख कर) तो यह कौन है ? रथको नजदीक ले चलो। अथवा रथकी प्रतीक्षा करना मेरे लिये व्यथ है। जलयुक्त मेघकी प्रभा जैसे चमकते, सुन्दर रस्सीवाले विमल सुवणके मियानवाले इस खडग के साथ मै सशस्त्र ही हू। तो (अब) समरभूमिमे उतरता

क्षिस्पन्दन सूचयित्वा) अये ममापि नामाश्वत्थाम्न समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्या-निमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पादयन्ति। भवतु, गच्छामि। (सावष्टभ परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनाना विस्मृत-स्वामिसत्कारलघुचेतसाद्विरदतुरगमचरणचारिणामगणित-कुलयश सदशपराक्रमव्रताना रणभूमे समन्तादपक्रामता-मय महान्नादो बलानाम्? (निरूप्य) हा हा धिक्कष्टम्! कथमेते महारथा कर्णादयोऽपि समरात्पराङमुखा भवन्ति? कथ नु ताताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत्? भवतु, सस्तम्भयामि। भो भो कौरवसेनासमुद्रवेला-परिपालनमहामहीधरा नरपतय, कृत कृतममुना समर-परित्यागसाहसेन—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्,
भयमिति युक्तमितोऽन्यत प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तो,
किमिति मुधा मलिन यश कुरुध्वे॥६॥

४ अपि च

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे,
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्।
कर्णाल सभ्रमेण व्रज कृप समर मुञ्च हार्दिक्यशङ्का,
ताते चापद्वितीये वहति रणधुर को भयस्यावकाश॥७॥

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तात।

हू। (परिक्रमा करके बाई आखका फडकना जानकर) अये, समर-महोत्सवके प्रमोदमे लीन बापूके विक्रमक दशनेच्छुक मुझ अश्वत्थामा केलिये असगुन समरमे जानेमे विघ्न पैदा कर रहे है। अस्तु जाता हू। (दपपूवक परिक्रमा करके आगेकी ओर देखकर) क्षत्रियके धमको तिरस्कार किय, सत्पुरुषोके योग्य लज्जाक पर्देको छोड, स्वामीके सत्कारको भूली क्षुद्र हृदयवाले हाथी घोडे पर या पैदल चलनेवाली, अगणित कुलोके यशके अनुकूल पराक्रमका व्रत लेनवाली रणभूमि मे चारो ओरस आक्रमण करती सनाओका क्या यह महानाद है? (अच्छी तरह देखकर) हा-हा छि छि सेनाकी यह अवस्था होती है। अस्तु रोकता हू। हे ह कौरव-सनारूपी समुद्रके तटके रक्षक महापवत जैसे राजाओ समर छोडनेके इस प्रयासको छोडो छोडो—

यदि युद्ध छोडदेनेपर मृत्युका भय नही तो यहासे अन्यत्र प्रयाण करना, ठीक है। यदि प्राणीको मरना अवश्य है तो यशको क्यो व्यथ मलिन करते हो ॥६॥

४ और भी—

अस्त्ररूपी ज्वालासे ग्रसित शत्रु सेनारूपी सागरके भीतर बडवानल से होते, सारे धनुधरेश्वरोके गुरु मर पिताक सेनापति होते हे कण, भय छोड, कृप, समरमे जा हृदयकी शका छोड। धनुषके साथ रणकी धुराको बापूक धारण करते भयका अवकाश कहा ॥७॥

(नेपथ्यमें)

क्यो आज भी तुम्हारे बापू?

५ अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) कि ब्रूथ—"कुतोऽद्यापि ते तात" इति? (सरोषम्) आ क्षुद्रा भीरव, कथमेव प्रलपता व सहस्रधा न दीणमनया जिह्वया ?

दग्धु विश्व दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का,
वातावाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्ना ।
छन्न मेघैन गगनतल पुष्करावतकाद्यै ,
पाप पापा कथयत कथ शौयराशे पितुर्मे ॥८॥

(प्रविश्य सभ्रान्त सप्रहार)

६ सूत —परित्रायता परित्रायता कुमार । (इति पादयो पतति)

अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये, कथ तातस्य सारथिरश्वसेन ? आर्य, ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि। कि मत्त परित्राणमिच्छसि ?

७ सूत —(सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तात !

सूत —अथ किम ?

अश्वत्थामा—हा तात ! (इति मोहमुपगत) ।

सूत —कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

८ अश्वत्थामा—(लब्धसज्ञ सास्रम्) हा तात ! हा सुतवत्सल ! हा लोकत्रयैकधनुधर ! हा जामदग्न्यास्त्रसवस्वप्रतिग्रहप्रणयिन् ! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

सूत —कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचिता विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीय सुखी भव।

९ अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आय, कथय कथय कथ तादृग्भुजवीयसागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगत ?

५ अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कहते हो? "क्या आज भी तुम्हारे बापू"। (रोषके साथ) ओ क्षुद्र डरपोको ऐसा प्रलाप करत तुम्हारी यह जीभ हजार टुकडे क्या न हो गई?

दुष्टो, शौयकी राशि मेरे पिताकी बुराई मुहसे क्यो निकालने पर अपनी अग्नि किरणोसे विश्वको जलानके लिय बारह सूय उदित नही हो गय, उन्वास वायु दिशा-दिशामे फूट नही निकल। प्रलयके पुष्करावत आदि मेघो से आकाश ढक नही गया ॥८॥

(प्रवेश करक भय और प्रहार करते)

६ सूत—कुमार रक्षा करे रक्षा करे। (चरणो मे गिर पडता है)
अश्वत्थामा—(देखकर) अय, क्या बापूका सारथी अश्वसेन है? आय, तुम तो तीनो लोकोकी रक्षा करनमे समथ पुरुष के सारथी हो? क्या पागल हो (जो) रक्षा चाहते हो?

७ सूत—(करुणाके साथ) क्या आज भी तुम्हारे बापू हैं?
अश्वत्थामा—(आवेगक साथ) क्या बापू अस्त हो गये?
सूत—और क्या?
अश्वत्थामा—हा तात (मूर्छित हो गया)
सूत—कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो।

८ अश्वत्थामा—(होशमे आकर दु खक साथ) हा तात, हा पुत्र वत्सल हा तीनो लोकके सवश्रष्ठ धनुधर हा परशुरामके सारे हथियारोके स्वीकृत-प्रेमी, कहा हो? मुझे उत्तर दो।
सूत—कुमार, शोकके अत्यन्त आवेगको छोडो। पिताके वीर पुरुषो के योग्य, गति पाने पर तुम भी उन्हीके अनुरूप पराक्रम करते शोक-सागर पार हो सुखी होओ।

९ अश्वत्थामा—(आसुओको पोछकर) आय, बताओ, बताओ कैसे वसे भुज-पराक्रमके सागर बापू अस्त हुये।

कि शिष्याद् गुरुदक्षिणा गुरुगदा भीमप्रिय प्राप्तवान् ?
सूत —शा त पापम !
अश्वत्थामा—
अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ?

१० सूत —कथमेव भविष्यति ?
अश्वत्थामा—
गोविन्देन सुदशनस्य निशित धारापथ प्रापित ?
सूत —एतदपि नास्ति।

११ अश्वत्थामा—
शके नापदमन्यत खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥९॥

१२ सूत —कुमार,—
एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणे,
कि धूजटेरिव तुलामपयान्ति सरये ?
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्र,
त्यक्त तदास्य विहित रिपुणातिघोरम् ॥१०॥

१३ अश्वत्थामा—कि पुन कारण शोकस्यास्त्रपरित्यागस्य वा ?
सूत —ननु कुमार एव कारणम् !
अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ?

१४ सूत —श्रयताम्, (अश्रूणि विमुच्य)—
अश्वत्थामा हत इति पथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा,
स्वैर शेषे गज इति किल व्याहृत सत्यवाचा।
तच्छुत्वासौ दयिततनय प्रत्ययात्तस्य राज्ञ
शस्त्राण्याजौ नयनसलिल चापि तुल्य मुमोच ॥११॥

१५ अश्वत्थामा—हा नात, हा सुतवत्सल, हा वथामदथपरि-
त्यक्तजीवित, हा शौयराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिर-
पक्षपातिन् ! (इति रोदिति)।
सूत —कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवकापण्येन।

क्या भीमको प्यार करनेवाले (गुरुने) शिष्यसे गुरुदक्षिणाके रूपमे भारी गदा पाई ?

सूत—शान्त पाप।

अश्वत्थामा—

नीति छोडे अर्जुनने शिष्य पर दयालुको मारा ?

१० सूत—कैसे यह होगा ?

अश्वत्थामा—

गोविन्दने सुदर्शनकी तीक्ष्ण धारको (उन तक) पहुचाया ?

सूत—यह भी नही है।

११ अश्वत्थामा—

इनसे भिन्न चौथसे बापूके लिये मै आफतकी शका नही करता ।।९।।

१२ सूत—कुमार —

हाथमे महाअस्त्रोको लिये कुपित उनके सामने यह,
क्या शकरकी तरह युद्धमे समानता प्राप्त कर सकते है ?
शोकसे रुधे हृदयवाले हो जब उन्होने हथियार छोड दिया
तब उनके शत्रुने अति घोर कर्म किया ।।१०।।

१३ अश्वत्थामा—शोकका और हथियारके त्यागका क्या कारण था ?

सूत—कुमार ही तो कारण थे।

अश्वत्थामा—कैसे, मै ही ?

१४ सूत—सुनिये (आखोसे आसू छोडते) —

'अश्वत्थामा मारा गया', यह स्पष्ट कह, (फिर)
अन्तमें अपने मनमें "गज' यह युधिष्ठिर सत्यवादीने कहा।
सो सुनकर उस राजाके ऊपर विश्वास करके पुत्रप्रेमी उन्होने,
युद्धमें हथियारो और आसुओको एक ही साथ छोड दिया ।।११।।

१५ अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा मेरे लिये व्यर्थ जीवन छोडनेवाले हा शौर्य राशि, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरके पक्षपाती।

सूत—कुमार, रोनेकी अत्यन्त दीनता दिखलाना छोडे।

१६ अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वध मम मृषा सुतवत्सलेन,
तात, त्वया सह शरैरसवो विभुक्ता ।
जीवाम्यह पुनरहो भवता विनापि,
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपात ॥१२॥

(इति मोहमुपगत)

१७ सूत —समाश्वसितु समाश्वसितु कुमार ।

(तत प्रविशति कृप)

१८ कृप —(सोद्वेग नि श्वस्य)—

धिक्सानुज कुरुपति धिगजातशत्रु,
धिग्भूपतीविफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रह खलु तदा द्रुपदात्मजाया,
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यै ॥१३॥

तत्कथ नु खलु वत्समद्य द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् ? अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि ज्ञातलाकस्थितो तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशके। किंतु पितु परिभवमसदशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति ?

१९ अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽय दारुणो भुवि वतते ।
केशग्रहे द्वितीये स्मिन्नून नि शेषिता प्रजा ॥१४॥

(विलोक्य) तदय वत्सस्तिष्ठति। यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य ससभ्रमम्)वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

२० अश्वत्थामा—(सज्ञा लब्ध्वा, सास्रम्) हा तात, हा सकलभुवनैकगुरो, (आकाशे) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

१६ अश्वत्थामा—

मेरे झूठे बधको सुनकर हे बापू
सुत-वत्सल, तुमने वाणोके साथ प्राणोको भी छोड दिया।
अहो तुम्हारे बिना भी मै जी रहा हू, फिर तो मेरे जैसे क्रूर पर
तुम्हारा पक्षपात व्यथ है।।१२।।

(मूर्छित हो गये)

१७ सूत—धैय धरें, धैय धरे कुमार।

(तब कृपाचाय प्रवश करते हैं)

१८ कृप—(उद्वेगके साथ सास ले)—

अनुज-सहित दुर्योधनको धिक्कार, युधिष्ठिरको धिक्कार,
व्यस्त भूपतियोको धिक्कार व्यथ शस्त्र उठानेवाले हम लोगो को
धिक्कार। तब द्रौपदीक केशोका पकडना
और आज द्रोणकी यह (हत्या) जि होने चित्र बन जसे देखा।।१३।।

तो कैसे म आज वत्स अश्वत्थामाको देखूगा। अथवा हिमालयके-सार से महान चित्तवाल, ससारकी स्थितिके जानकार उसमे शोका-वेगकी आशका मै नही करता। लेकिन, पिताके अनुचित मरणको सुनकर वह न मालूम क्या कर डालगा?

१९ अथवा—

एक का परिणाम तो पथिवीपर यह दारुण (युद्ध) हो रहा है।
इस दूसरे केशग्रहपर निश्चय प्रजा उच्छिन्न हो जायेगी।।१४।।
(देखकर) तो यह वत्स खडा है। पास चलू। (पास जाकर भयसे)
वत्स, धैय धरो, धैय धरो।

२० अश्वत्थामा—(होशमे आकर खेदके साथ) हा तात, हा सकल भुवन के अद्वितीय गुरु। (आकाश की और) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर—

५४

आजन्मनो न वितथ भवता किलोक्त,
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रु ।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्,
सर्व तदेकपद एव कथ निरस्तम् ॥१५॥
सूत —कुमार, एष ते मातुल **शारद्वत** पार्श्वे तिष्ठति।

२१ अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य, सबाष्पम्) मातुल,—

गतो येनाद्य त्व सह रणभुव सैन्यपतिना,
य एक शूराणा गुरुसमरकण्डूनिकषण ।
परीहासाश्चित्रा सततमभवन्येन भवत,
स्वसु श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल, गत ॥१६॥

२२ कृप —परिगतपरिग तव्य ग्व भवान्। तदलमत्यन्त-शोकावेगन।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवितम्।
एषोऽह सुतवत्सल तातमेवानुगच्छामि।
कृप —वत्स, अनुपपन्नमीदृश व्यवसित भवद्विधानाम्।
सूत —कुमार, अलमतिसाहसेन।

२३ अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,—

मद्वियोगभयात्तात परलोकमितो गत ।
करोम्यविरह तस्य वत्सलस्य सदा पितु ॥१७॥

२४ कृप —वत्स, यावदय ससारस्तावत्प्रसिद्धैवेय लोकयात्रा
यत्पुत्रै पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति। पश्य,—
निवापाजलिदानेन केतनै श्राद्धकमभि ।
तस्योपकारे शक्तस्त्व किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूत —आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वत कथयति तत्तथा।

आप तो जन्मसे ही कभी झूठ नही बोले,
न द्वेष करते हो, क्योकि लोगोका मत है कि तुम अजातशत्रु हो।
मरे भाग्यके दोषसे तात, गुरु और ब्राह्मणश्रेष्ठके विषयमे—
वह सब (बात) एक क्षण हीमे कसे खडित हो गई ॥१५॥
सूत—कुमार, यह तुम्हार मामा शारद्वत बगलमें खडे हैं।

२१ अश्वत्थामा—(बगलमे दखकर आसू भर कर) मामा—
जिस सेनापतिके साथ तुम आज रणभूमिमे गये,
शरामे अद्वितीय जो महासमरकी खुजलाहटका निवारण करनेवाला
था जिसके साथ आपके बराबर विचित्र परिहास हुआ करते थे,
ह मामा वह तुम्हारी बहिनके श्लाघनीय पति कहा गय? ॥१६॥

२२ कृप—आप जाननेकी बातको जान गय। सो भारी शोकावेगको रहने दो।

अश्वत्थामा—मामा, मने रोना छोड दिया। (लो) म पुत्र वत्सल बापूका ही अनुगमन करता हू।
कृप—वत्स, आप जैसोका ऐसा प्रयास उचित नही है
सूत—कुमार, अतिसाहसको बस करो।

२३ अश्वत्थामा—आय शारद्वत—
मरे वियोगके भयसे बापू यहासे परलोक गये।
उस वत्सल पिताको म सदा के लिये विरहहीन करता हू॥१७॥

२४ कृप—वत्स, जब तक यह ससार है, तब तक यह कहावत प्रसिद्ध ही है, कि पुत्रोको पिताओका दोनो लोकमे अनुगमन करना चाहिये। देखो—
श्राद्धकी अजलिके दान, ध्वजो और श्राद्ध-कर्मों द्वारा,
उनके लिये उपकार करनेमें तुम समथ हो, जीने या दूसरी तरहसे क्या (लेना) ॥१८॥
सूत—आयुष्मान, तुम्हारे मामा शारद्वत जो कहते है, वैसा ही है।

२५ अश्वत्थामा—आय, सत्यमेवेदम्। कित्वतिदुर्वहत्वाच्छो-
कभारस्य न शक्नोमि तातविरहित क्षणमपि प्राणान्धार-
यितुम्। तद् गच्छामि तमेवोद्देश यत्र तथाविधमपि पितर
द्रक्ष्यामि। (उत्तिष्ठन् खड्गमालोक्य, विचिन्त्य) कृत-
मद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। भगवन् शस्त्र,—

गृहीत येनासी परिभवभयान्नोचितमपि,
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्नविषय।
परित्यक्त तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्,
विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यत स्वस्ति भवते ॥१९॥
(इत्युत्सृजति)

(नेपथ्ये)

२६ भो भो राजान, कथमिह भवन्त सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परि-
भवममुना नृशसेन प्रयुक्तमुपेक्ष ते ?

२७ अश्वत्थामा—(आकण्य शनै शनै शस्त्र स्पृशन्)।
कि गुरोर्भारद्वाजस्य परिभव ?

(पुनर्नेपथ्ये)

आचायस्य त्रिभुवनगुरोन्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्,
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य।
मौलो पाणि पलितधवले न्यस्य कृत्वा नशस,
धष्टद्युम्न स्वशिविरमय याति सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

२८ (सक्रोध सकम्प च कृपसूतौ दृष्ट्वा) कि नामेदम् ?
प्रत्यक्षमात्तधनुषा मनुजेश्वराणा,
प्रायोपवेशसदृश व्रतमास्थितस्य।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे,
व्यापारित शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणे ॥२१॥

२५ अश्वत्थामा—आय यह सच ही ह किन्तु अत्यन्त दुस्सह शोक-भारके कारण बापूके बिना क्षण भर भी म प्राणोको नही धारण कर सकता। इसलिये उसी स्थानमे जा रहा हू जहा वैसे पिता को देखूगा। (उठकर खडगको देख सोचकर) आज भी शस्त्र-ग्रहण करनेका ढोग बस। हे भगवन शस्त्र—

अपमानके भयसे अनुचित भी जिसन तुम्हे ग्रहण किया था।
जिसके प्रभावस तुम्हारे लिय कोई 'पहुच स बाहर' नही हुआ
उसने भयसे नही बल्कि पुत्रक शोकस तुम्हे छोड दिया।
इसलिये ह शस्त्र मै भी तुम्हे छोडूगा, तुम्हारी स्वस्ति होवे ॥१९॥
(छोड देता है)

(नेपथ्यमे)

२६ हे हे राजाओ क्या आप सब इस कमीने द्वारा गुरु भरद्वाज पर किये अपमानकी उपेक्षा करत हो ?

२७ अश्वत्थामा—(सुनकर धीरे धीरे शस्त्रको छूते) क्या गुरु भरद्वाजका अपमान ?

(फिर नेपथ्यमें)

शोकसे हथियार छोडे त्रिभुवनगुरु,
आसुओ द्वारा भीगे मुखवाले आचाय द्रोणके
सफेद केशोवाले सिरपर हाथ रखकर आततायीपन करक
यह धष्टद्युम्न अपने तम्बूमें जा रहा है तुम सब (इसे) सहो ॥२०॥

२८ (क्रोध सहित कापते हुये, कृप और सूतको देखकर) यह क्या है ?—
धनुष लिये राजाओ के सामने,
आजीवन उपवासके समान व्रतमें स्थिर,
शस्त्र-रहित मेरे बापूके पके केश वाले
शिरपर शस्त्रका प्रयोग किया ॥२१॥

कृप —वत्स, एव किल जन कथयति।

अश्वत्थामा—कि तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिर ?

सूत —(सभयम्) कुमार, आसीदय तस्य तेजोराशेर्देवस्य नव परिभवावतार ।

२९ अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मम मन्दभाग्यस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावित ।

अथवा,—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा,
शिर श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।
असख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपोर्,
ममैवाय पाद शिरसि निहितस्तस्य न कर ॥२२॥

३० आ दुरात्मन् पाचालापसद,—

तात शस्त्रग्रहणविमुख * निश्चयेनोपलभ्य,
त्यक्त्वा शका खलु विदधत पाणिमस्योत्तमागे।
अश्वत्थामा करधृतधनु पाडुपाचालसेना—
तूलोत्क्षेपप्रलयपवन कि न यात स्मृति ते ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम् ?

३१. अथवा किमनेनालीकप्रकृतिजिह्मचेतसा ? अर्जुन, सात्यके बाहुशालिन्वकोदर, माधव, युक्त नाम भवता सुरासुरमनुजलोकैकधनुधरस्य द्विजन्मन परिणतवयस सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलकेन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमागमुपेक्षितुम् ? अथ वा सर्व एवैते पापिन । किमेतै ?

कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरुपातक,
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधै ।

कृप—वत्स, लोग एसा ही कहते हैं।

अश्वत्थामा—क्या तातके सिरको दुष्टात्माने छुआ?

सूत—(भयके साथ) कुमार, उस तेजोराशि देवताका यह नया अपमान था।

२९ अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय मुच अभागके लिये शस्त्र छोड कर वैसे क्षुद्र (आदमी) द्वारा तुम अपमानित हुये। अथवा—

युद्धभूमिमें शोकसे अधे मन हुये तुम्हारे देह छोड देनेपर
सिरको कुत्ता कौवा या द्रुपदका लडका (चाहे जो) छूये।
असख्य अस्त्र-समुदायोक घनके मदसे मत्त रिपुके
सिर पर मेरा यह पैर न कि उसका हाथ पडे ॥२२॥

३० आह दुष्ट कमीने पचालके—

बापूको पूरी तौरसे शस्त्रग्रहणसे विमुख जानकर,
शका छोडकर उनके सिरपर हाथ रखत,
पाडवो और पाचालोकी सेनारूपी कपासको उडानेवाला,
प्रलयका पवन धनुष पाणि अश्वत्थामा क्या तुझे याद नही आया ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रु न-अमिथ्यावादी धमपुत्र, भाइयो सहित तेरा बापूने क्या अपकार किया था?

३१ अथवा इस झूठे स्वभावत कुटिल चित्तसे क्या (कहना)? **अर्जुन**, **सात्यकि**, बाहुशाली, **भीम**, **कृष्ण**, आपके लिये क्या उचित है, कि सरासर मनुज लोकोमें अद्वितीय धनुधर, ब्राह्मण, वद्ध, सर्वाचाय विशेषकर मेरे पिताके सिरपर, **द्रुपद**-कुल-कलक इस मनुज पशु के हाथ लगानेकी उपेक्षा करते? अथवा ये सभी पापी हैं। इनसे क्या (लेना)—

जिनने इस महान पातकको किया, अनुमति दी या देखा,
कृष्ण और **भीम**-अर्जुन सहित

नरकरिपुणासार्धं तेषा सभीमकिरीटिनाम्
अयमहमसृङ्मेदोमासैः करोमि दिशा बलिम् ॥२४॥

कृप —वत्स, कि न सभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि-दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ?

३२ अश्वत्थामा—भो भो पाण्डवमत्स्यसोमकमागधया क्षत्रियापसदा —

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना,
कृत यद्रामेण श्रुतिमुपगत तन्न भवताम् ।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघस
न कम क्रोधान्ध प्रभवति विधातु रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्व सर्वोपकरणै साग्रामिकै सर्वायुधैरुपेत महाहवलक्षण नामास्मत्स्यन्दनमुपनय ।

३३ सूत —यदाज्ञापयति कुमार । (इति निष्क्रान्त)

कृप —वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मि दारुणे विकाराग्नौ सर्वेपामस्माक कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्त प्रतिकर्तुम् ? किंतु,—

अश्वत्थामा—किमत परम् ?

कृप —सैनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुव-मवतारयितुम् ।

३४ अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्कर च ।

कृप —वत्स, न खलु परतन्त्र नाकिंचित्कर च । पश्य,—

भवेदभीष्मद्रोण धार्तराष्ट्रबल कथम् ।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षम परिपन्थी-भवितु कि पुनर्यौधिष्ठिरबलम् ? तदेव मन्ये परिकल्पिता-

मर्यादाहीन हथियारबन्द मनुज-पशु आप जिन लोगोने।
उनके खून, चर्बी और मामोस यह म दिशाओको बलि देता हू ।।२४।।

कृप—भारद्वाजके समान बाहुशाली दिव्यास्त्रसमूहोके पडित तुमसे क्या सभव नही है ?

३२ अश्वत्थामा—हे हे पाडव, **मत्स्य** दशियो **सोम**को, **मगध**वाले क्षत्रिय-कलको,—

जलती अग्नि जसे चमकते फर्सेवाले **परशुराम**ने पिताके सिरको छुआ था, यह आप लोगोके कानमे आया या नही।
उन शत्रुओके रुधिरकी सामग्री से रणागनमे क्रोधाध
अश्वत्थामा वह कम, क्या आज नही कर सकता ।।२५।।

सूत, जाओ सग्रामके सभी साधनो, सभी हथियारोमे युक्त **महाहव** (महायुद्ध) **लक्षण** नामक हमारे रथको ले आओ।

३३ सूत—जो कुमार आज्ञा देते है। (बाहर चला गया)

कृप—वत्स, इस दारुण अपमान-अग्निके अवश्य बदला लेनेमें तरे बिना कौन है जो यह प्रतिकार कर सकता है। किन्तु—
अश्वत्थामा—इससे आगे क्या ?

कृप—सेनापति पदपर अभिषेक करके आपको समरभूमिमे हम उतारना चाहते है।

३४ अश्वत्थामा—मामा यह (पद) परतत्र और तुच्छ है।

कृप—वत्स, नही यह परतत्र है और न तुच्छ। देखो—
भीष्म और **द्रोण**के बिना **कौरवो**की सना कैसी होगी,
यदि उनके समान आप इस धुरेमें नही जोडे जाते ।।२६।।

आप जैसेके तैयार होने पर तीनो लोक भी विरोधी नही हो सकता, **युधिष्ठिर**की सेनाकी तो बात ही क्या ? सो मै यह समझता हू, सारी

भिषेकोपकरण कौरवराजो न चिरात्त्वामेवाभ्युपेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

३५ अश्वत्थामा—यद्येव त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिद चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय । तदह गत्वा तातवधविषण्णमानस कुरुपतिं सैनापत्यस्वयग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसताप करोमि ।

कृप—वत्स, एवमिदम । अतस्तमेवोद्देश गच्छाव ।

। (इति परिक्रामत)

(२) कर्णेन विवाद —

३६ (तत प्रविशत कणदुर्योधनो)

दुर्योधन—अगराज,—

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदु खपार,
बाहुभ्या व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।
आचाय सुतनिधन निशम्य सख्ये,
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तै प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यत शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षत्रधमकाकश्य द्विजातिधमसुलभो दैन्यपरिग्रह कृत ।

३७ कण—राजन्, न खल्विदमेवम्

दुर्योधन—कथ तर्हि ?

३८ कण—एव किलास्याभिप्रायो यथाश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति । तस्याभावाद् वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान् ।

दुर्योधन—(सशिर कम्पम्) एवमिदम् ।

अभिषेक-सामग्री तैयार किय दुर्योधन जल्दी ही तुम्हारी प्रतीक्षा करते खडे है।

३५ अश्वत्थामा—अगर ऐसा है तो अपमानरूपी अग्निसे जलता हुआ यह मेरा चित्त उसके प्रतीकाररूपी जलमे अवगाहन करनेके लिये जल्दी कर रहा है। सो मै जाकर बापूके वधसे विषण्ण कुरु-पतिको स्वय सेनापति पद ग्रहण के प्रेम द्वारा धैय बधा (उनका) सताप कम करता हू।

कृप—वत्स, ऐसा ही। अत उसी स्थानपर हम दोनो चले।

(दोनो परिक्रमा करते ह)

२ कणसे विवाद—

३६ (तब कण और दुर्योधन प्रवेश करते है)

दुर्योधन—अगराज—

रिपुसे मारे गये बधुओके दुख-सागरमे,
हथियार पकडी बाहु रूपी नौका में चलते,
तेजस्वी आचाय युद्धमे पुत्रके मारनेकी बात सुनकर,
क्या हथियार पकडने के समय बेहथियार (हो गये) थे?॥२७॥

अथवा नीतिज्ञो ने ठीक ही कहा है, कि स्वभावका अतिक्रमण नही किया जा सकता, जिससे कि शोकाध मन हो उन्होने क्षत्रियके कठोर धमको छोड ब्राह्मणोकी धम सुलभ दीनता को अपनाया।

३७ कण—राजन, यह ऐसा नही है।

दुर्योधन—तो कैसा है?

३८ कण—उन (द्रोण) की यह मनशा थी, कि पथिवीके राज्यपर मैं अश्वत्थामाका अभिषेक करूगा। (अब) उसके अभावमे मुझ वद्ध ब्राह्मणका शस्त्र ग्रहण करना व्यथ है, यह सोचकर वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाकर) क्या ऐसा है?

३९ कर्ण —एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषबध उपेक्षा कृता।

दुर्योधन —उपपन्नमिदम्।

४० कर्ण —अन्यच्च राजन् द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रे वासो दत्तः।

दुर्योधन —साधु अंगराज, साधु। निपुणमभिहितम्।

कर्ण —न चायं ममैकस्याभिप्रायः। अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते।

४१ दुर्योधन —एवमेतत्। कः संदेहः ?—

दत्वा भयं सोऽतिरथो बध्यमानं किरीटिना।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

४२ कृप —(विलोक्य) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति। तदुपसर्पाव।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः।

४३ दुर्योधन —(दृष्ट्वा) अये, कथं कृपोऽश्वत्थामा च ? (आसनादवतीर्य कृपं प्रति) गुरो, अभिवादये। (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,—

एह्यस्मदर्थंहृततात परिष्वजस्व,
क्लान्तैरिमैर्मम निरन्तरमंगमंगैः।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते,
शोकेऽपि नो विकृतिमेति तनूरुहेषु ॥२९॥

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

३९ कर्ण—और इसीलिये कौरव और पाडवके पक्षपातसे महासग्राममें सम्मिलित राजाओके एक दूसरके हाथो नाश होनेकी प्रतीक्षा करते उन्होने प्रधान पुरुषोके वधकी उपेक्षा की।

दुर्योधन—यह ठीक है ?

४० कर्ण—और भी राजन्, बचपन से ही इनकी नीयत जाननेवाले द्रुपदने भी इन्हे अपने राज्यमें नही रहने दिया।

दुर्योधन—ठीक अँगराज, ठीक। तुमने ठीक कहा।

कर्ण—यह मेरी अकेले की राय नही है दूसरे नीतिज्ञ भी इसे अन्यथा नही, मानते।

४१ दुर्योधन—यह ऐसा ही। क्या समझ—
उस महारथीने अभय पाय अर्जुन द्वारा मार जात,
सिन्धुराजकी उपेक्षा की एसा नही तो और कैसे (यह) होता ।।२८।।

४२ कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूत-पुत्र (कर्ण) के साथ इस बरगदकी छायामे बैठा है। सो पास चले।

(वैसा करके)

दोनो—कौरवेश्वरकी विजय हो।

४३ दुर्योधन—(देखकर) अये, कृप और अश्वत्थामा! (आसनसे उतर कर कृप से) गुरु, अभिवादन करता हू। (अश्वत्थामाकी ओर) आचार्यपुत्र—
आओ हमारे लिये मत पिता हुने
मेरे थके पीडित अगोसे अगका गाढालिंगन करो।
तुम्हारे पिताके समान इन तुम्हारी भुजाओका यह स्पर्श,
शोकमे भी रोमोमे विकृत नही होता ।।२९।।

(आलिंगन करके पास बैठाता है)

(अश्वत्थामा आसू बहाता है)

४४ कर्ण —द्रौणायने, अलमत्यर्थमात्मान शोकानले प्रक्षेप्तुम् ।
दुर्योधन —आचार्यपुत्र, को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसन-
महार्णवे ? पश्य,—

तातस्तव प्रणयवान्स पितु सखा मे,
शस्त्रे यथा तव गुरु स तथा ममापि ।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दु ख,
जानीहि तद्गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥

कृप —वत्स, यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत् ।

४५ अश्वत्थामा—राजन, एव पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव
शोकभार लघूकर्तुम् । किंतु,—

मयि जीवति यत्तात केशग्रहमवाप्तवान् ।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्य पुत्रिण स्पृहाम् ॥३१॥

४६ कर्ण —द्रौणायने, किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभव-
परित्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीत ।

४७ अश्वत्थामा—अगराज, किमाह भवान्किमत्र क्रियत इति ?
श्रूयता यत्क्रियते,—

यो य शस्त्र विभर्ति स्वभुजगुरुमद पाण्डवीना चमूना,
यो य पाचालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्या गतो वा ।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्चयश्च प्रतीप,
क्रोधान्धस्तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्
॥३२॥

अपि च, भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण,—

देश सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदा पूरिता,
क्षात्रादेव तथाविध परिभवस्तातस्य केशग्रह ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे,
यद्रामेण कृत तदेव कुरुते द्रोणात्मज क्रोधन ॥३३॥

४४ कण—द्रौणायनि छोडो, अपनेको भारी शोकानलमे मे न डालो। दुर्योधन—आचाय पुत्र इस दु खसागरमे हम दोनोमे कौन विशेष (दु खी) है ? देखो—

तुम्हारे बाप, प्रेमी मेरे पिताके सखा थे।
शस्त्रमे जैसे वह तुम्हारे गुरु थे वैसे मेरे भी।
उनके देहके निधनके दु खको कैसे कहूँ,
(इस) उनके लिये शोकाकुल मनसे तुम ही समझ लो ॥३०॥

कृप—वत्स, जैसा कुरुपति कहते ह यह वैसा ही है।

४५ अश्वत्थामा—राजन तुम्हारे एसे प्रेम के होते शोकके भारको हलका करना ,उचित ही है। किन्तु—

मेरे जीते जी बापूका जो (यह) कश पकडा गया।
(उमे देखकर) दूसरे पिता कैसे पुत्रकी लालसा करेंगे ॥३१॥

४६ कण—द्रौणायनि, क्या किया जाये जबकि उन्होने भी सारे अपमानोसे परित्राण के हेतु हथियार छोड अपनको वैसी अवस्थामे पहुचा दिया ?

४७ अश्वत्थामा—अगराज, क्या आप कहते है, कि क्या किया जाय ? सुनिये जो किया जाये—

पाडवकी सेनामे अपनी भुजाका भारी अभिमानी जो जो शस्त्र धारी,
पचाल-वशमे जो जो शिशु वयस्क या गभस्थ है।
जो-जो उस कमका साक्षी हो विचर रहा है और जो रणमे मेरे विरुद्ध है। उसका और स्वय ससारके अन्त करनेवालेका भी मै क्रोधाध अन्तक हू ॥३२॥

और भी, हे परशुराम शिष्य कर्ण,—

यह वह देश है, जिसमें शत्रुओके रुधिररूपी जलसे जलाशय भरे गये।
क्षत्रियके बापूके केश पकडनेका ही वहा अपमान हुआ।
वही भक्षक चमकनेवाले महान हथियार मेरे पास है।
परशुराम ने जो किया, वही क्रोधी द्रोण-पुत्र (भी), करेगा ॥३३॥

४८ दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम् ?

कृप—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसित समरभर । तदहमेव मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तु लोकत्रयमपि समथ, कि पुनर्यौ धिष्ठिरबलम् ? अतोऽभिषिच्यता सैनापत्ये ।

४९ दुर्योधन—सुष्ठु युज्यमानमभिहित युष्माभि, किंतु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽगराजस्य ।

कृप—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमगराजस्यार्थे नैवोपेक्षितु युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अत किमस्य पीडा न भविष्यति ?

५० अश्वत्थामा—राजन् किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया?—
प्रयत्नपरिबोधित स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्,
अकेशवमपाण्डव भुवनमद्य नि सोमकम् ।
इय परिसमाप्यते रणकथाद्य दो शालिना,
अपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुव ॥३४॥

५१ कण—(विहस्य) वक्तु सुकरमिद दुष्करमध्यवसितुम् । बहव कौरवबलेऽस्य कर्मण शक्ता ।
अश्वत्थामा—अगराज, एवमिदम् । बहव कौरवबलेऽत्र शक्ता, किंतु दु खोपहत शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण ।

५२ कण—द्रौणायनि, दु खितस्याश्रुपात कुपितस्य चायुध - द्वितीयस्य सग्रामावतरणमुचित नैवविधा प्रलापा ।

५३ अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत, सूतापसद, ममापि नामाश्वत्थाम्नो दु खितस्याश्रुभि प्रति - क्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण ? पश्य,—

४८ दुर्योधन—आचाय-पुत्र तुम्हारे जसे असाधारण वीरतावाले के लिये उचित और क्या हो सकता है ?

कृप—राजन द्रोण पुत्रको समरके अतिमहान भार उठानके लिय तत्पर किया है। सो म समझता हू आपक तयार होने पर यह तीना लोकको उच्छिन्न करनमे समथ है, युधिष्ठिर-सेनाकी तो बात ही क्या ? इसलिय इनको सनपति-पद पर अभिपिक्त करे।

४९ दुर्योधन—तुमने ठीक और उचित ही कहा, लेकिन पहल ही यह पद अगराजको मिल चुका है।

कृप—राजन अगराजके लिय असाधारण अपमानक शोक सागरमे डूबत (इन्हे) उपक्षित नही करना चाहिये। इन्हे भी उसी शत्रुकुलको दडित करना है। अत क्या इनको दु ख नही होगा ?

५० अश्वत्थामा—राजन आज उचित-अनुचित के विचार करनेसे क्या ?
स्तुतियोस प्रयत्नपूवक जगाय तम आज रातको सोओ।
आज ससार बिना केशव, बिना पाडव और बिना सोमकका होगा
आज बाहुवालोकी यह रणकथा समाप्त हो रही है।
आज नपोरूपी वनका अति भारी भार पथिवी से दूर हटे ।।३४।।

५१ कण—(विहसकर) यह कहना आसान है करना कठिन है। कौरव-सनामे बहुतेरे यह काम करने मे समथ है।

अश्वत्थामा—अगराज यह एसा ही। कौरव-सेनामे बहुतसे इसमें समथ है, किन्तु मै दु ख का मारा शोकावेगके कारण (यह) कह रहा हू, वीर लोगोके तिरस्कार क लिय नही।

५२ कण—द्रौणायनि दु खितका आसू बहाना कुपितका हथियार ले सग्राममे उतरना उचित है न कि ऐसा प्रलाप करना।

५३ अश्वत्थामा—(क्रोधपूवक) अरे, रे, राधाके गभके भार, नीच सूत, मुझ दु खित अश्वत्थामाको आसुओसे प्रतिकार करनेका उपदेश देता है शस्त्रसे नही ? देख—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्कि मे तवैवायुध,
सप्रत्येव भयाद्विहाय समर प्राप्तोऽस्मि कि त्व यथा ?
जातोऽह स्तुतिवशकीतनविदा कि सारथीना कुले,
क्षुद्रारातिकृताप्रिय प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत् ।।३५।।

५४ कर्ण—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध, बटो,—

निर्वीर्यं वा सवीर्य वा मया नोत्सष्टमायुधम् ।
यथा पाचालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ।।३६।।

अपि च,—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम् ।।३७।।

५५ अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलक, अरे राधागर्भभारभूत, तातमप्यधिक्षिपसि ? अथवा,—

स भीरु शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने,
कृत यत्तेनाजौ प्रतिदिनमिय वेत्ति वसुधा ।
परित्यक्त शस्त्र कथमिति स सत्यव्रतधर,
पृथासूनु साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ।।३८।।

५६ कर्ण—(विहस्य) एव भीरुरहम् ? त्व पुनर्विक्रमैकरस स्वपितरमनुस्मत्य न जाने कि करिष्यसीति ? महान्मे सशयो जात । अपि च रे मूढ,—

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो,
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासित,
सुचिर स्त्रियेव नृपचक्रसनिधौ ।।३९।।

भारी शापके कथनक कारण क्या तरी तरह मेरा आयुध निर्वीय है ?
क्या तेरी तरह अभी ही मै भय स समर छोडकर आया हूँ ?
क्या मै वशकी प्रशसा करना जाननेवाले सारथियोके कुलमे पैदा हुआ जो कि छुद्र दुश्मनके लिये किय अप्रियका प्रतिकार मैं खून और हथियार से न करू ।।३५।।

५४ कण—(क्रोध-सहित) अरे-अरे बकवादी, झूठ ही शस्त्र पकडने मे दुष्पडित ब्राह्मण-पुत्र—
निर्वीय हो या सवीय मैने हथियार नही छोडा ।
जैसा कि पाचालसे डरकर बाहुशाली तेरे पिताने किया ।।३६।।
और भी—

सूत या सूत पुत्र, मै जो कोई भी हू ।
किसी कुलमे ज मना देवके अधीन है किन्तु पौरुष मेरे अधीन है ।।३७।।

५५ अश्वत्थामा—(क्रोध-सहित) अरे रे बढई कुलके कलक, राधाके गभके भार, बापूकी निन्दा करता है ? अथवा—

वह भीरु थे या शूर, (पर) त्रिलोकमे अपने भुजके पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थ। उ होने युद्धमें प्रतिदिन जो किया, उसे यह वसुधा जानती है। कसे उ होने शस्त्रको छोडा, इसके यह सत्यव्रतधारी, युधिष्ठिर साक्षी है, हे रणसे भीरु तब तुम कहा थे ।।३८।।

५६ कण—(विहसकर) इस प्रकार मै तो भीरु हू, और पराक्रमके एकमात्र सारभूत अपने पिताका अनुसरण करते न जाने तू क्या करेगा? मुझे और भी महासशय हो गया है, रे मूढ,

यदि हाथमे हथियार न लिये छोडे हथियार को
नही रोकते, तो हथियार लिये शत्रुओको क्या (करेग) ?
जो कि सिर दलन करनेमे उदासीन रहे ।
जसे नृप-सेनाके समीप स्त्री देरतक (उदास रहे) ।।३९।।

५७ अश्वत्थामा—(सक्रोध सकम्प च) दुरात्मन्, राजवल्लभ, प्रगल्भ, सूतापसद, असबद्धप्रलापिन्,—
कथमपि न निषिद्धो दु खिना भीरुणा वा,
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वाम ,
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ।।४०।।
(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति)

५८ कृपदुर्योधनौ—वत्स, मषय मषय। (इति निवारयत)
(अश्वत्थामा चरणप्रहार नाटयति)

कर्ण —(सक्रोधमुत्थाय, खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ,—
जात्या काममबध्योऽसि चरण त्विदमुद्धतम् ।
अनेन लून खड्गेन पतित द्रक्ष्यसि क्षितौ ।।४१।।

५९ अश्वत्थामा—अरे मूढ, जात्या काममवध्योऽहम्, इय सा जाति परित्यक्ता (इति यज्ञोपवीत छिनत्ति) । पुनश्च सक्रोधम्—
अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।
शस्त्र गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाजलिम् ।।४२।।
(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्य प्रहर्तुमुद्यतौ। कृपदुर्योधनौ निवारयत)

६० दुर्योधन —आचायपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।
कृप —वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

६१ अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, कि निवारयसि ? अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भ सूतापसदो **धृष्टद्युम्न**पक्षपात्येव ।
कर्ण —राजन्, न खल्वह निवारयितव्य —
उपेक्षिताना मन्दाना धीरसत्वैरवज्ञया ।
अत्रासिताना क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ।।४३।।

५७ अश्वत्थामा—(क्रोधसे कापते) दुरात्मा राजप्रिय, ढीठ नीच सूत
वेहूदी बकवास करनेवाले—
दु खी या भीरु मेरे पिताने।
द्रुपद-पुत्रके हाथको कैसे भी न रोका हो पर आज
भुजबलके दपका शोर मचाने वाले तरे सिरक ऊपर
मैं यह बाया चरण रख रहा हू इसे रोक ।।४०।।
(वैसा करनके लिये खडा हो जाते ह)।

५८ कृप और दुर्योधन—वत्स रुको रको (दोना निवारण करते हैं)
(अश्वत्थामा चरण प्रहार करने का अभिनय करता है)

कण—(क्रोधसहित उठकर खडग खीच कर)
अरे दुरात्मा, ब्रह्मब धु आत्मश्लाघी, जाति से चाह तू अबध्य है
ल्किन यह (तरा)चरण तो उठ चका है। (अब) इसे तू खडगसे
कटा पथिवी पर गिरा देखगा ।।४१।।

५९ अश्वत्थामा—अरे मूढ जाति से मै अवध्य हू तो ले यह मैंने उस
जाति को छोडा। (जनेऊ को तोड देता हूँ फिर क्रोध के साथ)—
आज उस अर्जुन को मै झूठी प्रतिज्ञावाला बनाता हू, हथियार को
उठा या उसे छोडकर सिर पर हाथ जोड ।।४२।।

(दोनो ही खड्ग खीचकर एक दूसरे पर प्रहार करने के लिए उद्यत
ह। कृप और दुर्योधन रोकते हैं)

६० दुर्योधन—आचाय-पुत्र, शस्त्र उठाने से रुको।
कृप—वत्स, सूत पुत्र शस्त्र उठानेसे रुको।

६१ अश्वत्थामा—मामा,मामा क्यो रोकते हो ? बापू की निन्दा करने
वाला यह ढीठ नीच सूत धष्टद्युम्नका पक्षपाती है।

कण—राजन मुझे न रोकिये—धीरो द्वारा उपेक्षित म दोकी
अवज्ञासे क्रोधाधो द्वारा निडर की ऐसी बकवास होती है ।।४३।।

६२ अश्वत्थामा—राजन्, मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेषमुलभमसृनामवसादनम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन वा कार्येण वा यत्त्वमेन ताताधिक्षेपकारिण दुरात्मान मत्त परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव ते । पश्य,—

पाप प्रियस्तव कथ गुणिन सखाय,
सूतान्वय शशधरान्वयसभवस्य ?
हन्ताकिरीटिनमहृ नप, मुञ्च कुर्या,
क्रोधादकणमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

६३ कण —(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट, ब्राह्मणाधम, अय न भवसि ? राजन्, मुञ्च मुञ्च । न खल्वहृ वारयितव्य । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयत)

६४ दुर्योधन —कण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोह ?

कृप —वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यात्रावेग इति कोऽय व्यामोह ? स्वबलव्यसन चेदमस्मि काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वाम पन्था ।

अश्वत्थामा—मातुल, न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलकस्य दप शातयितुम् ?

कृप —वत्स, अकाल खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

६५ अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम्,—

अय पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरै ,
परित्यक्त तावत्प्रियमपि मयास्त्र रणमुखे ।
बलाना नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये,
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबल वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सजति)

६२ अश्वत्थामा—राजन छोडे इसे। यह मेरी भुजाओं के बीच पीसा जाकर सुलभ प्राण नाशको प्राप्त करे। और भी, राजन यदि तुम स्नेह या कायवश बापूके निदक इस दुरात्माकी मुझसे रक्षा करना चाहत हो, तो वह दानो तुम्हारे लिय वथा ही है। देखिय—गुणी चद्रवशोत्पन्न तुम्हारा प्रिय सखा

यह सूतवशी पापी कैसे (हो सकता) ह। मै आज धरतीको अर्जुन बिना करूगा। राजन छोडो। क्रोधसे आज म ससार को विना कर्ण और बिना युधिष्ठिर का करूगा ।।४४।।

(प्रहार करना चाहता है)

६३ कर्ण—(खडग उठाकर) अरे बकवासी अधम ब्राह्मण, यह न है तू ? राजन छोडे छोडे मुझे न रोके। (मारना चाहता है)

(दुर्योधन और कृप रोकते ह)

६४ दुर्योधन—कर्ण, गुरुपुत्र, आप दोनाको आज यह क्या मूढता सूझी है ? कृप—वत्स, दूसरे का अवसर ह और दूसरे मे आवग! यह कौनसा व्यामोह है ? और इस कालमे इस राजवश की अपनी सेना पर तुमसे ही आफत आ रही है यह उलटा रास्ता है।

अश्वत्थामा—मामा, इस कूट प्रलाप करनेवाले बढई वशके कलक के दर्प को तोडना क्या नही मिलगा ?

कृप—वत्स, अपनी सेनाके प्रधान के विरोध का यह काल नही।

६५ अश्वत्थामा—मामा यदि यह ह तो—

यह पापी जब तक दुश्मन के बाणो से मर नही जाता तब तक के लिये मने युद्धमे प्रिय (अपने) अस्त्रको भी छोड दिया। कुपित भीम अर्जुन का भय उत्पन्न होने पर इसके सेनापति होनेके समय युद्धमे राजा अपने प्रिय मित्र (मेर) बलको देखें ।।४५।।

(खडग छोड देता ह)

६६ कर्ण —(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद् भवादृशां यदस्त्र - परित्यागो नाम।

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात्।

६७ कर्ण —अरे मूढ,—

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ?
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

(नेपथ्ये)

६८ आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्समुखीनमागतोऽसि। क्षुद्रपशो, क्वेदानीं गम्यते ? अपि च, भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः, शृण्वन्तु भवन्तः,—

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा,
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्,
सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति)

६९ अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अङ्गराज, सेनापते, जामदग्न्यशिष्य, द्रोणोपहासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक, "धृतायुध" (३।४६ इति पठित्वा) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम्। रक्षैनं साम्प्रतं भीमाद् दुःशासनम्।

७० कर्ण —आः, का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम् ? युवराज, न भेतव्यं न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि। (इति निष्क्रान्तः)

६६ कण—(विहस कर) अस्त्र छोडना तो आप जैमोकी कुल परपरा चली ही आई है।

अश्वत्थामा—तो रे आप जैसो द्वारा न छोडा हथियार भी निष्फल होनेसे चिरपरित्यक्त ही है।

६७ कण—अरे मूढ—

जब तक मै अस्त्रधारी हू, तब तक दूसरे हथियारोका क्या करना है?
जो (काम) मेरे अस्त्रसे सिद्ध नही होगा उसे कौन सिद्ध करेगा ।।४६।।

(नेपथ्यमे)

६८ आह दुरात्मा, **द्रौपदी**के केश और वस्त्रके खीचनेवाले महापातकी नीच धृतराष्ट्र-पुत्र, तू चिरकाल बाद मेरे सम्मुख आया है। क्षुद्र पशु अब कहा जायेगा? और भी हे हे **कण दुर्योधन**, सुबल पुत्र आदि पाण्डवद्वेषी धनुधर अभिमानियो आप सुने—

जिस नरपशु **पचाल** राजकी पुत्रीको केशोसे घसीटा
राजाओ और गुरुजनोके सामन जिसने इसके वस्त्रको छीना।
जिसकी छातीके रुधिर रूपी मदिराके पीनकी म प्रतिज्ञा कर चका हू
उस मेरे भुजारूपी पिजडेमे पडे इसकी **कौरव** रक्षा करे।।४७।।

(सब सुनते ह)

६९ अश्वत्थामा—(कुछ मुस्करा कर) परशुराम शिष्य, **द्रोण**के उपहास करनेवाले अपने भुजबलसे सकल लोकके रक्षक सेनापति **अगराज**, 'जब तक मै अस्त्रधारी हू' इसका (अवसर) बहुत जल्दी ही आ पहुचा। अब भीमसे इस **दु शासन**की रक्षा करो।

७० कण—आह मेरे जीते जीते भीमकी क्या शक्ति है, कि शासनकी छायाको भी लाघ सके। युवराज, न डरें, न डरे। यह मै आया।

(बाहर चला गया)

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोण सप्रति कौ-रवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम्। अत स्वयमेव भ्रातु प्रतीकारपरो भव।

७१ दुर्योधन —आ, शक्तिरस्ति दुरात्मन पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम्? वत्स, न भेतव्य न भेतव्यम्। क कोऽत्र भो? रथमुपनय। (इति निष्क्रान्त)

(नेपथ्ये कलकल)

७२ अश्वत्थामा—(ससभ्रमम्) मातुल, कष्ट कष्टम्! एष भ्रातु प्रतिज्ञाभगभीरु किरीटी सम दुर्योधनराधेयौ शर-वर्षैरभिद्रवति। सवथा पीत दु शासनशोणित भीमेन! न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैना विपत्तिमवलोकयितुम्! अनृतमनुमत नाम मातुल, शस्त्र शस्त्रम्,—

सत्यादप्यनृत श्रेयो धिक्स्वर्ग नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दु शासन त्रातु त्यक्तमत्यक्तमायुधम ॥४८॥

(इति खड्ग ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

७३ महात्मन् भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लघयितुम-र्हसि।

कृप —वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

७४ अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते सग्रामा-वतरण मम! सवथा पाण्डवपक्षपातिनो देवा। भो, कष्ट कष्टम्!—

अश्वत्थामा—राजन कौरवनाथ, कौरव सेनाको इस समय ढढत भीम और अजुन को भीष्म और द्रोणके बिना यह राधेय या दूसरा कोई नही रोक सकता। इसलिय स्वय ही भाईकी रक्षा के लिय तत्पर हो जाओ ।

७१ दुर्योधन—आह, हाथमे हथियार लिय मेरे जीत जी दुरात्मा भीम या और किसीकी मजाल हे कि बच्चेकी छाया भी लाघ सके? वत्स, न डरो। यहा कौन है? रथ ले आ। (बाहर चला गया)

(नपथ्यमे कोलाहल)

७२ (घबराहटमे) मामा, कष्टम। भाईकी प्रतिज्ञाके भगसे भयभीत यह **अजुन** तुरन्त **दुर्योधन** और **कण**की ओर बाण-वषा करते दौड रहा है। दु शासनके रक्तको भीमने अवश्य अब पिया। **दुर्योधन**के छोट भाईकी इस विपत्तिको मै देख नही सकता। चाहे प्रतिज्ञा झूठी हो मामा, हथियार हथियार—

सत्त्यसे भी झूठ बेहतर है स्वगको धिक्कार, मुझे नक (भले) होवे। भीमसे दु शासनकी रक्षा करने के लिये त्यागे आयुधको मैंने अत्यक्त कर दिया ।।४८।।

(खडग पकडना चाहता है।)

(नेपथ्यमें)

७३ महात्मा भारद्वाज पुत्र, तुम्हें शपथ उल्लघन नही करना चाहिये।
कृप—वत्स दैवी वाणी, तुम्हारी झूठसे रक्षा कर रही है।

७४ अश्वत्थामा—क्या यह अमानुषी वाणी मेरे युद्धमे उतरनेको नही पसन्द करती! जब (तो) देवता पाडवके पूरे पक्षपाती है। हा कष्टम् कष्टम—

दु शासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम् ।
दुर्योधनस्य कर्ताऽस्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४९॥

मातुल, राधेयक्रोधवशादनायमस्माभिराचरितम् । अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञ पाश्ववर्ती भव ।

७५ कृप —गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम् । भवानपि शिविरसनिवेशमेव प्रतिष्ठताम् ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

—अक ३

दु शासन का खून पिये जाते समय भी मैं उदासीन हू।
तो युद्धमे मै दुर्योधनका क्या प्रिय करुगा ।।४९।।
मामा कणके ऊपर आये क्रोधके कारण हमने अनुचित बात की,
इसलिये तुम राजाके ही साथी बनो ।

७५ कृप—म यहा प्रतिकार करनेके लिये जा रहा हू । आप भी तम्बुओके स्थानमे रहे।

(परिक्रमा करके दोनो बाहर चले गये)

—अक ३

३८ मुरारि (८०० इ०)

३८ मुरारि (८०० ई०)—यह मुदगल-गोत्री श्री वधमानक और ततुमतीके पुत्र, तथा माहिष्मती (वतमान महेश्वर, इदौर) के राजाके सभापडित थे। इनके जन्म देनेका सौभाग्य मालव भूमिको ह। इनकी सिफ

अनघराघव

१ विमानयात्रा—

१ सीता—(हसन्ती पुष्पक प्रति) विमानराज, गगनमाग-चक्रमणकौतूहलोल्लसितमानसास्मि। तदुन्नम तावत्।

२ राम —(सकौतुकस्मितम्) देवि, रत्नगर्भागभरत्नशलाके, पश्य पश्य—

यथा यथा पर व्योम विमानमधिरोहति।
तथा तथापसपन्ति परत परितो दिश ॥२४॥

३ कि च—

आसन्नतपनाश्यानत्वच पुष्पकपीडिता।
गगनाणवयादासि स्तिम्यन्ति स्तनयन्निव ॥२५॥

४ अपि च—

अमी ते गम्भीरस्तनितरवरौद्रा नयनयोर्,
अनायुष्य पुष्यन्त्यवतमसमुच्चैजलमुच।
विसपद्भिर्येषामुपरि परमिन्दो परिमलैर्,
असबाधज्योत्स्नातिमिरचयचित्र वियदभूत् ॥२६॥

५ सुग्रीव —(अधोऽवलोक्य सकौतुक राम प्रति) देव, दूरा-दवागवलोकय तावत्—

३८ मुरारि (८०० ई०)

एक रचना "अनघराघव" (नाटक) मिलता है, जो सात अंकोका है। अपभ्रंश-कालके कविताके दुगुण अपने चरम रूपमें इस नाटकमें प्रकट हुए ह। यदि मुरारिने नाटककी जगह काव्य लिखा होता, तो अच्छा होता।

अनघराघव

१ विमानयात्रा—

१ सीता—(हसती हुई पुष्पकसे) विमानराज आकाशमार्गकी यात्राके कौतूहलसे मेरा मन उल्लसित है, सो थोडा नीचेसे)

२ राम—(कौतुक और मुस्कानके साथ) रत्नगर्भा पथिवीके गर्भकी उत्तम रत्न देवि देख-देख—

जैसे-जसे विमान आकाशके ऊपर चढ रहा है।
वैसे-वैसे चारो ओर दिशाये दूर हट रही है ॥२४॥

३ और भी—

सूर्यके नजदीक सूखे चमडेवाली, गगनसागरकी बिजलिया
पुष्पकसे पीडित हो गरजती गीली सी हो रही है ॥२५॥

४ और भी—

ये वे गम्भीर बिजलीके शब्दसे भयकर मेघ,
ऊचे पुष्ट अंधकारको आयु-क्षीण करते हैं।
जिनके ऊपर चद्रसे परे फैलती गधोके कारण
विरल चादनीयुक्त आकाश अंधकार-समूहसे चितकबरा हो गया ॥२६॥

५ सुग्रीव—(नीचे देखकर कौतूहल-पूर्वक रामसे) जरा दूर नीचे देखें—

निह्नुतोन्नतनतप्रविभक्ति स्वस्ववर्णविनिविष्टपदार्था ।
अम्बुराशिपरिवेषवती भूश्चित्रकुट्टिममिव प्रतिभाति ॥२७॥

६ अपि च देव,—
अयमनेन महोदधिभोगिना वलयितो वसुधाफणमण्डल ।
जगदनघमवाप्य भवादृश किमपि रत्नमहङ्कुरुतेतराम् ॥२८॥

७ सीता—(पुरो दशयन्ती) क एष कल्पानलज्वालाकला-पक्वथ्यमानजलनिधिलवणस्तबकनिमलाभ्रलिहशिखरसह-स्रमधुरो महीधर प्रलोक्यते ?

८ विभीषण —देवि,
पुर प्रालेयशैलोऽय यस्मिन्मकरकेतवे ।
मृतसजीवनी दुर्गा महौषधिरजायत ॥२९॥

९ सीता—(सकौतुकम्) अपि इहैव चन्द्रशेखरनयनानले आहुतीभूतो भगवान्मन्मथ ?

१० विभीषण —आ देवि, आम् । इयमुत्तरेण देवदारुवन-लेखा विषमशरदुरन्तसाक्षिणी—
पुरा पुरा भेत्तुरिह त्रिनेत्रीशगाटकेऽतुल्यरुषि स्थितेऽपि ।
धग्धाग्धगित्यज्वलदेकमन्ये तद्धूमपीडामपि नासहेताम् ॥३०॥

११ राम —किमुच्यते—
नीललोहितललाटलाञ्छने लोचने जयति कोपपावक ।
रक्षितस्य जगदन्तहेतवे यस्य सज्वलनमात्मभूरभूत् ॥३१॥

१२ सीता—(राम प्रति) आर्यपुत्र, तथा निरनुक्रोश कथ पुन प्रतिनिवृत्तो महादेवो देव्यै ?"

ऊभड-खाभड भेदको छिपाये अपने-अपने रगोसे युक्त पदार्थोंयुक्त,
सागरके घिरावेवाली पथिवी विचित्र चौतरे सी जान पडती है ।।२७।।

६ और भी—

इस सागररूपी नागसे लपेटा यह वसुधारूपी फण-मडल,
जगतमें आप जैसे अनघ रत्नको पाकर अभिमान कर रहा है ।।२८।।

७ सीता—(सामने देखती) प्रलयकी अग्निज्वालाओसे उबलते समुद्रके नमकके गुच्छो जैसा निमल, आकाशचुम्बी सहस्र शिखरोसे, मधुर यह कौन सा पवत दिखाई दे रहा है ?

८ विभीषण—देवि,—

सामने यह हिमालय है, जिसमें कामदेवके लिये
मृतसजीवनी पावती जैसी महौषधि भी उत्पन्न हुई ।।२९।।

९ सीता—(कुतूहलपूवक) क्या यही महादेवकी नयनज्वालामे भगवान् कामदेव आहुति बने ?

१० विभीषण—हा, देवि, हा। यह उत्तरमे देवदारवनोकी रेखा कामदेव-के मत्युकी साक्षी है—

यहा पहले त्रिपुरारिके तीन नेत्रो रूपी सिंगाडेके अतुल रोषयुक्त होनेपर एक धक धक् जल गया, बाकी दो उस धूमकी पीडा भी नही सह सके ।।३०।।

११ राम—क्या कहते ह—

शकरके ललाटको अलकृत करनेवाले नेत्रमे (स्थित) कोपकी ज्वाला की जय हो। जगत् नाशके लिये रक्खी जिसका इधन कामदेव हुआ ।।३१।।

१२ सीता—(रामसे) आयपुत्र, ऐसे निष्ठुर महादेव फिर कैसे देवीकी ओर झुके ?

१३ राम —

स्मरपरिभवनि सहायदीर्घैरथ सुभगकरणैरिय तपोभि ।
तदकृत यदसौ निजेऽपि देहे जयति जगत्पतिरात्मना द्वितीय
॥३२॥

१४ विभीपण —(सपरिहासम)—

चिरमनया तपस्सित्वा कपालविषविषधरैकचित्तस्य ।
चक्रे हरस्य मूर्ति फलमर्ध फलदमर्ध च ॥३३॥

१५ सीता—(विहस्य त प्रति सकौतुकम्) कतरस्मिन्पुन सनिवेशे भगवत्या सवमगलाया पाणिग्रहणमगलमासीत् ।

१६ विभीषण —इद पुरस्तादोषधिप्रस्थ नाम नगराजनगरम् । अत्र हि—

सप्रदातरि महौषधीमये भूधरे सुखमुवाह पावतीम् ।
मूढककणफणीन्द्रनिभया तारकेश्वरकिशोरशेखर ॥३४॥

१७ राम —आ देवि, इहैव—

पितरि निजतुहिनसपत्नकल्पितहेमन्तविभ्रमे गौरी ।
निमदभुजगभूषणमभीषण प्रियकर भेजे ॥३५॥

१८ सीता—(सस्मितम्) आयपुत्र, अप्येतस्मिन्नेव मदनतनुदहनव्यतिकरनिरात्मीय स्फुटमविश्वसन्त्या गौर्या चन्द्रचूड सघटितो निजशरीरेण ?

१९ राम —(विहस्य) आ देवि—

एतस्या हि तुषारभूधरशिर सीम्नि प्रियार्धेन च,
स्वेनार्धेन च तादृशे पशुपतौ वृत्तेऽधनारीश्वरे ।
शेषेणाध्ययुगेन सप्रहसन गौरीसखीभिस्तदा,
चक्रेदक्षिणवामयोर्विनिमयादन्योऽधनारीश्वर ॥३६॥

१३ राम—

गौरीने कामदेवके पराजयपर एकाकिनी लम्बे सौभाग्यकारी तपस्याओ द्वारा ऐसा काम किया जो कि अपने लोकनाथ (उनके) साथ निज देहमे ही द्वितीय (हो) विराजते है ।।३२।।

१४ विभीपण—(परिहासके साथ)—

गौरीन चिरकाल तक तपस्या करके कपालमे विष और सापके एक मात्र चित्तवाले, शकरकी मूर्ति बन फलको आधा और फल देने वालेको आधा कर दिया ।।३३।।

१५ सीता—(विहसकर कौतूहलके साथ उससे) भगवती सवमगला (गौरी) का विवाहमगल कौन से स्थानमे हुआ था ?

१६ विभीषण—यह सामने पवतराज का नगर **ओषधिप्रस्त** नामक है। यही द्वितीयाके चद्रमाके शिरोभूषणवाले शकरने दाता महौषधिमय पवतपर मुग्ध ककणरूपी नागराजसे निभय पावतीको सुखसे व्याहा ।।३४।।

१७ राम—हा देवि, यही—

अपने हिमकी सम्पत्तिसे कल्पित हमन्त ऋतुकी शोभावाले पिताके पास गौरीने मद रहित भुजग के भूषणवाले अभयकर प्रियकरको प्राप्त किया ।।३५।।

१८ सीता—(मुस्कुरा कर) आयपुत्र, क्या यहीपर कामदेवके शरीरके दहनके व्यापारसे नि शरीर शिव साफ विश्वास न करती गौरीके साथ अपने शरीरसे एक हो गये ?

१९ राम—(विहसकर) हा देवि—

इसी **हिमालय**के सिरकी सीमापर प्रियाके आधे और
अपने आधेद्वारा इस प्रकार पशुपतिके अधनारीश्वर बननेपर,
बाकी दोनो आधोके साथ मजाक करते गौरीकी सखियोने,
दाहिने और बायेको बदलकर दूसरा **अधनारीश्वर** बनाया ।।३६।।

२० अपिच—

सभोगानतिरिच्यमानविभवो यद्विप्रलम्भो रसस्-,
तद्दिव्य मिथुन परस्परपरिस्यूत नमस्कुमहे।
एकस्या प्रतिबिम्बसभृतविपर्यासे मुहुदपणे,
सव्यागस्थितिकौतुक शमयति स्वामी स यत्रापर ॥३७॥

२१ विभीषण —देव,

स्वच्छन्दैकस्तनश्रीरुभयमतमिलन्मौलिचन्द्र फणीन्द्र-
प्राचीनावीतवाही सुखयतु भगवानधनारीश्वरो व ।
यस्याधे विश्वदाहव्यसनविसृमर ज्योतिरर्धे कृपोद्यद्-,
वाष्प चान्योन्यवेगप्रहृतिसिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयम्
॥३८॥

२२ अपि च—

स्वेदाद्रवामकुचमण्डलपत्रभग -
सशोषिदक्षिणकरागुलिभस्मरेणु ।
स्त्रीपुनपुसकपदव्यतिलघनी व
शभोस्तनु सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥३९॥

२३ अन्यतश्च दर्शयन्—

आधत्ते दनुसुनुसूदनभुजाकेयूरवज्राकुर-
व्यूहोल्लेखपदावलीवलिमयैरगैर्मुद मन्दर ।
आधारीकृतकमपृष्ठकषणप्रक्षीणमूलोऽधुना
जानीम परत पयोधिमथनादुच्चैस्तरोऽय गिरि ॥४०॥

२४ राम —(निर्वण्य सस्मितम्)—

तत्तादृक्फणिराजरज्जुकषण सरूढपक्षच्छिदा-
धातारुतुदमप्यहो कथमय मन्थाचल सोढवान् ?
एतेनैव दुरात्मना जलनिधेरुत्थाप्य पापामिमा,
लक्ष्मीमीश्वरदुगतव्यवहृतिव्यस्त जगन्निर्मितम् ॥४१॥

२० और भी—
सभोग से न अतिरेक विभववाला जिनका शृगाररस है,
उस परस्पर सम्मिलित दिव्य जोडेको हम नमस्कार करते है।
दपणमें एकके प्रतिबिम्बके जरा उलटे धारण करनेपर,
जहा वह दूसरा (स्वामी) बामागकी स्थितिके कौतूहलको शात करता
है ॥३७॥

२१ विभीषण—देव,
स्वच्छन्द एक स्तनकी शोभा युक्त (गौरी), उभय सम्मतिसे मिलते नागराजके यज्ञोपवीतधारी भगवान अधनारीश्वर चन्द्रशेखर, आपको सुखी करे, जिसके आधेमे विश्व जलानेकी आफत फैलानेवाली ज्योति है, और आधेमे, दयासे निकलता आसू और पारस्परिक वेगके प्रहारसे सिमसिमानेवाला तीसरा नेत्र ॥३८॥

२२ और भी—
पसीनेसे भीगे बाये कुचमण्डलके पत्राकनको
सुखानेवाली दाहिने हाथकी अगुलीमे भस्मकी धूलवाले
स्त्री-पुरुष नपुसक पदोसे परे
चौथी प्रकृति शम्भुका शरीर तुम्हें सुखी करे ॥३९॥

२३ और दूसरी ओर भी दिखाते—
यह अति उच्च पवत मन्दर, दानवनाशककी भुजाके केयूर वज्राकुर-
समूह के विदारणके पदोकी बलिवाले अगोसे आनदित है।
हम समझते है आधार भूत कूमकी पीठके घषणसे पतली जडवाला,
समुद्र मथनसे अधिक ऊचा हुआ यह पवत परे दीख रहा है ॥४०॥

२४ राम—(अच्छी तरह देखकर मस्कुराते)—
वैसे नागराजरूपी रस्सीके घषणयुक्त, जमे पखके छेदने के आघात
की चोटको अहो कैसे इस मथनेवाले पहाडने बर्दाश्त किया ?
इसी दुरात्माने जलसे इस पापिनी लक्ष्मीको उठाकर,
ईश्वरो (राजाओ) के बुरे व्यवहारोसे ससारको दुखित बनाया ॥४१॥

२५ सीता —(सोद्वेगम्) अनेनैव मस्तुशेषीकृतदुग्धसागरेण चन्द्रमुद्धृत्य प्रोषितभर्तृकस्य स्त्रीजनस्योपरि चारहली विस्तीर्णा।

(सर्वे हसन्ति)

२६ विभीषण —(तदेव रामसूक्त भावयन्) अहह—

प्रक्षेप्तुमुदधौ लक्ष्मी भयोऽपि चलते मन ।
किं तु प्रक्षिप्त एवाय पुनरायाति चन्द्रमा ।।४२।।

२७ (विमृश्य चाकाशे)—

कस्मैचित्कपटाय कैटभरिपूर पीठदीर्घालया,
देवि, त्वामभिवाद्य कुप्यसि न चेत्तत्किंचिदाचक्ष्महे।
यत्ते मन्दिरमम्बुजन्म किमिद विद्यागह यच्च ते
नीचान्नीचतरोपसपणमपामेतत्किमाचार्यकम् ।।४३।।

२८ लक्ष्मण —(सहासम्) हन्त,सुरासुरमल्लभटीतूयतालनतकी सकलराजकुलखलीकारखर्जूला साहसिकजनसहस्रान्धकार-खेलनखद्योती मधुमथनजीमूतविलासविद्युत्लता किमेव-मुपालभ्यते ? इय हि—

गुणवद्भि सह सगममुच्चै पदमाप्तुमुत्सुका लक्ष्मी ।
वीरकरवालवसतिध्रुवमसिधाराव्रत चरति ।।४४।।

२९ सीता —(साभ्यसूयमिव) निजदैवदुर्विलासविचारालसो लोको लक्ष्मीदेव्या दुयशो वचनानि गायति। (पुरो दश-यती) क एष दृश्यते दिवसकूटीकृतज्योत्सनाविच्छद-प्रतिरूपो गिरि ?

२५ सीता—(उद्वगके साथ) इसी मटठके रूपमे बचे क्षीर-सागरने चद्रमाको निकाल कर परदेशी प्रोषितपतिकाओके ऊपर अपना पौरुष जमाया।

(सब हसते है)

२६ विभीषण—(रामके सुवचनका ख्याल करत)—अहह
लक्ष्मीको फिर समद्रमे फेकनको मन मचलता है
किन्तु फेका हुआ भी यह (चद्र) लौट आता हे ।।४२।।

२७ (सोचकर आकाशकी ओर)—
हे देवि विष्णुके वक्षस्थलपर दीघकालसे बसन वाली तुझे अभिवादन कर यदि क्रुद्ध न हो, तो कपटके बारेमे कुछ कहता हू।
तेरा मदिर कमल है क्या यह तरा विद्यागह है ?
नीचसे नीचके पास पानीका जाना यह क्या (तेरी) निपुणता है ।।४३।।

२८ लक्ष्मण—(परिहासके साथ) हन्त, देवासुर मल्ल भटोके वाद्यके तालपर नाचनेवाली सारे राजवशोके निपातनकी खुजलीवाली हजारो साहसी जनोके शस्त्रोके अधकारमे खलनेवाली मुरारि रूपी मेघकी बिजलीको क्यो इस तरह ताना देते है ? यह—
गुणवानोके साथ सगम और उच्च पदके पानेमें उत्सुक,
वीरोकी तलवारपर बसनेवाली लक्ष्मी निश्चय ही असिधारा-व्रतका पालन करती है ।।४४।।

२९ सीता—(खिन्न सी) अपने भाग्यकी विडबनाका विचार न करते लोग लक्ष्मीदेवीका अपयश गाते है। (सामने दिखलाती) दिनका शिखर बना, प्रकाश समूहकी यह प्रतिमूर्ति कौन सा पहाड दिखाई देता है ?

३० विभीषण —देवि,

सोऽय कैलासशैल स्फटिकमणिभुवामशुजालैज्वलद्भिश्,
छाया पीतापि यत्र प्रतिकृतिभिरुपस्थाप्यते पादपानाम् ।
यत्रोपान्तोपसपत्तपनकरधृतस्यापि पद्मस्य मुद्रा,
उद्दामानो दिशन्ति त्रिपुरहरशिरश्चन्द्रलेखामयूखा ॥४५॥

३१ राम —हन्त, शतधा दृश्यमनोऽपि न चक्षुरकौतुक करोति ।
गिरि कैलासोऽय दशवदनकेयूरविलसन्,
मणिश्रेणी पत्राकुरमकरमुद्राकितशिल ।
अमुष्मिन्नारुह्य स्फटिकमयसर्वागविमले,
निरीक्षन्ते यक्षा फणिपतिपुरस्यापि चरितम् ॥४६॥

३२ अपि च—

दशमुखभुजमण्डलीना दृढपरिपीडितपीतमेखलोऽयम् ।
जलगृहकवितर्दिकासुखानि स्फटिकगिरिर्गिरिशस्य निर्मि-
मीते ॥४७॥

३३ विभीषण —(सीता प्रति) देवि, दृश्यन्साममी—

कैलासाद्रितटीषु धूर्जटिजटालकारचन्द्राकुर-
ज्योत्स्नाकन्दलिताभिरिन्दुदृषदामदभिनदीमातृका ।
गौरीहस्तगुणप्रवृद्धवपुष पुष्यन्ति धात्रेयक-
भ्रातृस्नेहसहोढषण्मुखशिशुक्रीडासुखा शाखिन ॥४८॥

३४ अपि चास्य नित्यमधित्यकावासी परमेश्वर—
सहस्राक्षैरगैनमसितरि नीलोत्पलमयीम्-,
इवात्मान मालामुपनयति पत्यौ मखभुजाम् ।

३० विभीषण—देवि,

सो यह **कैलास** पवत है, जहा स्फटिक मणिकी भूमियोकी धधकती किरणो द्वारा वक्षो की छिपी हुई छाया भी प्रतिमूर्तियो से उपस्थित की जाती है। जहा पासमें पहुची सूय किरणोसे धारित भी पद्मकी मुद्रा को, **त्रिपुरारि**के सिरके चद्रमाकी उद्दाम किरणे प्रकट करती है ॥४५॥

३१ राम—हन्त, सौ बार देखनेपर भी यह नेत्रको कौतूहलहीन नही बनाता।—

रावणके केयूरमे शोभते मणियोके पत्राकुरमे,
मकरकी मुद्रा से अकित शिलावाला यह **कलासपवत** है।
इस स्फटिकमय सर्वांग विमलके ऊपर चढकर,
यक्ष लोग नागराजके नगरकी बातोका निरीक्षण करते है ॥४६॥

३२ और भी—

रावणके भुज समूहोके द्वारा चारो ओर जोरसे दबाई पीली मेखलाओ-वाला, यह स्फटिकगिरि शकरके लिये जलगहकी वेदीके सुखका निर्माण करता है ॥४७॥

३३ विभीषण—(सीतासे) देवि, इन्हें देखें—

कलासपवतके किनारोपर शकरकी जटाके आभूषण चद्रलेखाकी,
ज्योत्स्नासे द्रवित चद्रकान्तके जलोकी नदीकी भूमिवाले
गौरीके हाथके गुणोसे बढे शरीरवाले,
दूधभाइके स्नेहके साथ कार्तिकेयकी बाल क्रीडा द्वारासे (ये) बढे वक्ष फूल रहे है ॥४८॥

३४ और भी, इस कैलासकी अधित्यकामे शकर नित्य रहते है—
जब देवेंद्र सहस्र आखो और अगोसे नमस्कार करते
अपने को नीलकमलमयी मालाकी तरह भेंट कर रहे थे,
और कुमार क्रीडाके आग्रहसे उसे पकडनेकी इच्छा कर रह थे,

जिघक्षौ च क्रीडारभसिनि कुमारे सह गणैर्-,
हसन्वो भद्राणि द्रढयतु मृडानीपरिवृढ ॥४९॥

३५ किं च—

यन्नाट्यभ्रमिघूर्णमानवसुधाचक्राधिरूढे भृश,
मेरौ पार्श्वनिविष्टवासरनिशाचक्रे परिभ्राम्यति।
तैजस्यस्तडितो भवन्तु शतशो दृष्टा हि जाता कथ,
तामस्योऽपि स व पुनातु जगतामन्तेऽप्टियज्वा विभु ॥५०॥

३६ लक्ष्मण —

जयति परिमुषितलक्ष्मा भयादनुपसपतेव हरिणेन।
इह केसरिकरजाकुरकुटिला हरमौलिविधुलेखा ॥५१॥

३७ सीता—(सपरिहासम्) एतस्य द्रदशूकनरकरोटिमुण्ड-
मालामण्डनस्य श्मशानवासिनो भूषणतेव रोहिणीव-
ल्लभस्य कलक ।

३८ विभीषण —(विहस्य) शके भगवानपि न मगाकमलका-
रकाम कलयति। तथा हि—

सहचरपिशाचपरिषत्प्रसत्तये कामचारतो रजनीम।
कारयितुमिव कपाली शिरसि निशाकरमय वहति ॥५२॥

(सर्वे हसन्ति)

३९ राम —(सबहुमानम)—

श्रीकण्ठस्य कपदबन्धनपरिश्रान्तोरगग्रामणी-
सदष्टा मुकुटावतसकलिका वन्दे कलामैन्दवीम्।
या बिम्बप्रतिपूरणाय परितो निष्पीड्य सदशिका-
यन्त्रेणेव ललाटलोचनशिखिज्वालाभिरावर्त्यते ॥५३॥

(पुष्पक प्रति) विमानराज, मनागुन्नम्यताम्। आलोकयतु
मैथिली सुमेरुशिखराणि।

उस समय गणोके साथ हसते गौरीको आलिगन करनेवाले शकर तुम्हारा मगल करें ।।४९।।

३५ और क्या—

जिसके नाटयके चक्करमे घूमती वसुधा मडल पर आरूढ
पास स्थापित रात दिनके चक्रवाले परिभ्रमण करते **मेरुपर,**
देखी शतश तेजोमयी बिजलिया हुई कैसे तामसी हुइ
वह ससारके अन्त्येष्टि यज्ञ करनेवाले शकर तुम्हें पवित्र करे ।।५०।।

३६ लक्ष्मण—

भयसे पास न आत हरिन द्वारा चुराय लक्षणवाली
केसरीके नखके अकुर जैसी कुटिल शकरके सिरकी निष्कलक चद्रलेखा की जय हो ।।५१।।

३७ सीता—(परिहासके साथ) सप नर-कपाल मुडमालाके मडनवाले इन श्मशानवासीका ही भूषण है चद्रमाका कलक ।

३८ विभीषण—(विहसकर) मुझे सन्देह है कि आभूषणकी इच्छासे भगवान चद्रमाको नही धारण करत क्यो कि—

साथी पिशाच परिषदकी प्रसन्नताके लिय स्वेच्छासे रात्रिके
बनानकेलिये मानो यह कपाली (शकर) सिरपर चद्रमा धारण करते है ।।५२।।

(सब हसत है)

३९ राम—(आदरके साथ)—

जटाके बाधनेसे दबी नागराज द्वारा डसी गई
कली सी शकरकी मुकुट भूषणरूपी चद्रकलाकी मै वदना करता हू ।
जो कि बिम्बको पूरा करनेकेलिय चारो ओरसे सडसी से
दबा कर ललाटके नेत्रकी अग्नि-ज्वालाओ द्वारा पलटाई जा रही है ।।५३।।

(पुष्पकसे) विमानराज जरा सा ऊपर हो जिसमे **मथिली सुमेरुके** शिखरोको देख सकें

४० विभीषण —(सीता प्रति) देवि, पश्य, पश्य-

मेरोर्मेदुरयति समदमघ सपातिभिर्ज्योतिषा,
आटोपैर्विटपो परिस्थिततरुच्छायाभृतोऽधित्यका ।
निष्पीतासु च मासि मासि विबुधैरिन्दो कलासु क्रमाद्,
उद्दामप्लवमानलाछनमृगच्छिन्नाग्रदर्भा कुरा ॥५४॥

४१ लक्ष्मण —(सीता प्रति)—

एतासु पवतनितम्बतटीषु पश्य,
मध्यंदिनेऽपि हरिचन्दवाटिकेयम् ।
पक्षस्थितद्युमणिबिम्बतयातिदीघ-
च्छयावितानमधुरा मुदमादधाति ॥५५॥

४२ अपि च—

भूमे स्वर्णतया फलोत्तरतरुस्मेरस्य मेरोस्तटी-
सीमन्तोऽयमनूरुसारथिरथप्रस्थानघण्टापथ ।
अस्मिन्नुद्ध्रियते कथचन हयैरुद्दामचडातप-
ज्वालाजालविलीनकाचनशिलाजम्बालमग्न प्रधि ॥५६॥

४३ (निरूप्य च सहषस्मितम्) कथमुपर्युपरि पुष्करावतका-
नभ्रमुबल्लभ ! (विमृश्य)—

अद्याय विबुधेन्द्रबान्धववधूसभुक्तसतानक-
स्रग्दाम्नीममरावती विहरते निर्वैरमैरावण ।
य दोर्मात्रपरिच्छदो युधि मुदोत्क्षिप्य प्रतीच्छन्मुहु,
सतेने दशभिर्निजैरपि मुखै साराविण रावण ॥५७॥

४४ सुग्रीव—सत्यमगोचरो गिरा दशकण्ठक्रीडितानि—

एकैके निवसन्ति ते भुजभृत कस्मै निगृहणामहे,
वीरक्षेत्रमिय पुनवसुमती पौलस्त्यमाविभ्रती ।

४० विभीषण—(सीतासे) देवि, देखो, देखो—

नीचे गिरते तेजके समूहोसे वक्षोके ऊपर स्थित वक्ष छायाको
धारण करनेवाली मेरुकी उच्चस्थलिया आनद बढा रही है।
जो कि महीन महीने देवताओ द्वारा पी जाती इन्दुकी कलाओमे क्रमसे,
तीव्र तिरते लाछन-मगके चरे कुशके अकुरोवाली है ।।५४।।

४१ लक्ष्मण—(सीतासे)—

देखो, पवत नितम्बके इन तटोपर
दोपहरको भी यह हरिचन्दनकी वाटिका,
पासमे स्थित सूयबिम्बके होनेसे अतिदीघ
छायारूपी वितानसे मधुर हो आनद पैदा कर रही है ।।५५।।

४२ और भी—

भूमिके सुनहली होनेसे फल प्रधान वक्षोसे हसते मेरुतट की रेखावाला
सूयके रथके चलनेका यह राजमाग ।
यहा अतितीव्र सूय ज्वालाके जालोमे विलीन सुवणशिलाकी
कीचडमे डूबे चक्कोको घोडे जैसे-तैसे कठिनाई से खीच रहे है ।।५६।।

४३ (देखकर और हष मुस्कानके साथ) क्या मेघोके ऊपर-ऊपर **ऐरावत**?
(सोचकर)—

आज यह ऐरावत इद्रके बाधवोकी बधुओके उपभोगके देव द्रुम
की मालावाली **अमरावती**मे निद्वन्द्व होकर बिहार कर रहा है।
जिसे बाहु-मात्र हथियारयुक्त **रावण** युद्धमे
अपने ऊपर फेक कर दसो मुहोसे खुशीसे चिल्लाता रहा ।।५७।।

४४ सुग्रीव—रावणके खेल सचमुच ही कहनेमे नही आ सकते—
वे एक एक बाहुधारी निवास करते है, हम किनको पकडें।
फिर वीरोका क्षेत्र यह धरती रावणको धारण करती है।
बाली के ललकारनेपर इसको जो किया, उसे नजर से

वाली स्वाह् वयमानमेनमपि यच्चक्रे कृते चक्षुषा,
पश्याम श्रवसी कृते च शृणुमस्तद्वक्तुमल्पे वयम् ।।५८।।

४५ राम —(सबहुमानम्)—

स कि वाच्यो वाली भुजकुलिशमूलेन दशतो
दशग्रीव यस्य प्रतिजलधि सध्याविधिरभूत् ।
कथ वा निर्वाच्य स च दशमुखो यस्य दमने,
मनागासीद्वालिव्ययचरितमेवोपकरणम् ।।५९।।

४६ सीता—(राम प्रति) आयपुत्र, कि पुनरेतद्दलितक-
र्पूरशलाकाखण्डगौर गगनागणे दृश्यते ?

४७ विभीषण —(सीता प्रति) देवि, चन्द्रलोकोपकण्ठम-
धिरूढो विमानराज । दृश्यता च भगवानयम्—

य प्राक्प्रत्यगवागुदञ्चि ककुभा नामानि सबिभ्रत,
ज्योत्स्नाजालझलझलाभिरभितो लुम्पन्तम ध तम ।
प्राचीनादचलादितस्त्रिजगतामालोकबीजाद्बहिर्,
निर्यान्त हरिणाकमकुरमिव द्रष्टु जनो जीवति ।।६०।।

४८ अपि च—

स श्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारप्रदीपाकुरो,
देव कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिभरि ।
सस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदशा,
गीर्वाणाधिपते सुधारसवतीपौरोगव प्रोदगात् ।।६१।।

४९ अपि च—

प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहवने यौवनौन्मादलीला-
गोष्ठीना पीठमदस्त्रिभुवनवनितानेत्रयो प्रातराश ।
कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुराग ,
शृगाराद्वैतवादी विभवति भगवानेष पीयूषभानु ।।६२।।

हम देखते और कानमे से सुनते ह पर थाडा कहनेमे भी असमथ ह ।।५८।।

४५ राम—(आदरके साथ)—

उम वालीके बारेमे क्या कहना जिसन बाहुके बज्र मूलसे दबाते **रावण**को इस समुद्रकी ओर फेक कर मध्या-वदन किया।
दशमुख के बारेमें भी कैसे कहा जाय जिसके दमनमे
बालीका मारना भी थोडा सा साधन था ।।५९।।

४६ सीता—(रामसे) आयपुत्र आकाशमे च्रा किय कपूरकी शलाकाके टुकड सा सफद यह क्या दिखलाई दे रहा है?

४७ विभीपण—(सीतासे) देवि विमानराज चद्रलोकके पास चढ गया है। और इन भगवानको देखे—

पूव पश्चिम उत्तर-दक्षिणकी दिशाओको धारण करत
प्रकाश जालसे जगमगात चारो ओर घोर अधकारको दूर करते,
तीनो लोकोके आलोकके बीज, इस उदयाचलसे
बाहर निकलते जिस चद्रको अकुरकी तरह देखते लोग जीत है ।।६०।।

४८ और भी—

वह शकरके किरीटके चौतरेकी सजावटके दीपककी टम
कमलिनीके प्रिय देव घोर अधकार रूपी पहाडको कोखमे धारण करनवाले, अपनी कान्तिरूपी मुक्ता-मणियो द्वारा मगनयनियोको सजानवाले इद्रके अमत भोजनालयका मुख्य रसोइया (चद्र) उग गये ।।६१।।

४९ और भी—

प्राणायामके उपदेष्टा, कमलवनोमे यौवनके उमादकी क्रीडा-गोष्टियोके विदूषक, तीनो लोकोकी बनिताओके नेत्रोके कलेवा
कामकी आयु यज्ञके यजमान, कुमुदिनीकी मौन मुद्राके हटाने के अनुरागी, शृगारके अद्वैतवादी यह भगवान सुधाकर शोभ रहे है ।।६२।।

५० लक्ष्मण —(विलोक्य सकौतुकम्)—
कर्णोत्तंसयवाङ्कुरं करतले कृत्वा हसित्वा मिथः,
सहूतं पुरुहूतपौरयुवतीवर्गेण कौतूहलात्।
ग्रासार्तिक्षुभितोऽयमङ्कहरिणः कुर्वीत किं किं कला-
कन्थामिन्दुमयीमजस्रघटनोद्घाटश्लथावस्थिताम्।।६३।।

३९ त्रिविक्रम (९१५ ई०)

गद्य-पद्य मिश्रित काव्यको चम्पू कहा जाता है। अपभ्रंश कालमें ही इस कविताकी शैलीका प्रचार बढा। बहुतसे चम्पू लिखे गये हैं, जिनमें सबसे उत्कृष्ट त्रिविक्रमका "नलचम्पू" है। राष्ट्रकूट-वंशके राजा द्वितीय कृष्णके पौत्र जगत्तुंगके पुत्र इन्द्रराजके दरबारी भट्ट त्रिविक्रम थे। कविके पिताका नाम देवादित्य और दादाका नाम श्रीधर था, जो शाण्डिल्यगोत्री

नलचम्पू[1]

(१) दक्षिणापथ—

१ अस्तिविस्तीर्णमेदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुर-
विहारारामरमणीयः, सीतासहायसञ्चरितरघुपतिपाद-
पद्मपवित्रारण्यः, पुण्यतरतरङ्गगङ्गागोदावरीवारिवारि-
तदुरितदावानलप्रसरः, मन्दर इव बलिराजजनितपरिवर्तनः
कैलास इव महेश्वरलोककृतवसतिः, मेरुरिव सुवर्णप्रकृ-
तिकमनीयो, यदुवंश इव दृष्टशूरपुरुषावतारः, सोमान्वय
इव बुधप्रधानो, वेदपाठ इवानेकैः सवनैरुपेतः, पर्वते
पर्वते स्थाणुभिः, पुरे पुरे पुराणपुरुषैः, जले जले कमलोद्-
भवैः, पदे पदे देवकुलैः, वने वने वरुणैः, स्थाने स्थाने नन्दनो-

१ काशी संस्कृत सिरीज, बनारस १९३२

५० लक्ष्मण—(देखकर कौतूहलके साथ)—
कणभूषणवाले जौके अकुरको हाथमें ले आपसमे हसकर,
इन्द्रके नगरकी युवतियो न कुतूहलके साथ जिसे बुलाया,
भूखसे क्षुभित यह मयक निन्तर घटने-वढनेसे
थकावटवाली इदुमयी किन-किन कलाओकी कथरी बनाये ।।६३।।
—अक ७

३९ त्रिविक्रम (९१५ ई०)

ब्रानें थे। इद्रराजने राज्याभिषेकके समय ब्राह्मणोको सुवण तुलादान दिया था, जिसका उल्लेख बरारके नौसारी ग्रामसे मिले ९१५ ई० के अभिलेखसे मिलता ह। इस अभिलेख (प्रशस्ति) के लेखक त्रिविक्रम भट्ट थे। नलचम्पू उत्कृष्ट काव्य ह। बाद के चम्पू लेखक त्रिविक्रमके पास तक नही पहुच सके। अपभ्रंशके अतिम कालके महाकवि श्रीहषने भी "नव-साहसाकचरित" के नामसे एक चम्पू लिखा था, जो अब प्राप्य नहीं ह।

नलचम्पू

१ दक्षिणापथ—

१ है विस्तत पथिवीमडलका आभूषणसा पवत नगर पुर-बिहार और आरामोसे रमणीय, सीताके साथ रघुपतिके चरणकमलके चलनेसे पवित्र अरण्यवाला, पवित्र तरगोवाली गगा-गोदावरीके जलसे निवा-रित पापरूपी दावानलके प्रसारवाला, **म दर**की तरह **बली** राजा द्वारा घुमाया, कैलासकी तरह शकरके लोगोकी बस्ती बना, मेरुकी तरह सुवणकी प्रकृति द्वारा कमनीय, यदुवशकी तरह शूर पुरुषोके अवतारको देखे सोमवशकी तरह बुध (ग्रह विद्वानो) जसे प्रधान पुरुषवाला, वेद-पाठकी तरह अनेक सवनो (सोम छाननो) से युक्त, पवत पवत में स्थाणुओ (शकरकी) मूर्तियो द्वारा, पुर-पुरमे पुराण-पुरुषो (वद्धजनो या विष्णु) द्वारा, जल-जलमें कमलोदभवो (रम्भा या कमलोकी उत्पत्ति) द्वारा, पद पदपर देवालयो, वन वनमें वरुणो,

द्यानै, अगल स्वगस्य, **तापी**प्रायोऽप्यनतपापो जनस्य, **विन्ध्याद्रि**मुद्रिताया दिशि देशानामुत्तरोऽपि **दक्षिणो देश** ।

२ यत्र, शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोक ।

३ यत्र, क्रुद्धधूजटिललाटलोचनानलज्वालाकवलनाकुल -, त्रासादपागावलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसा विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयो श्रृगारसवस्वम्, अधरपल्लवेषु मधु, भ्रूभगेषु, धनु, कटाक्षेषु पुष्पवाणान्निधाय निलीनोऽगेषु जघनस्थलस्थापितरतिमकरकेतन ।

४ यासा तारुण्यमेव सर्वागेषु शोभाथमाभरणम्, उत्तुगस्तनमण्डललावण्यमेव मुखकमलावलोकनाय दपण, तारतरनयनकान्तिरेव मुखमण्डलमण्डनाय च दनललाटिका, भ्रूभगा एव विभ्रमाय मृगमदपत्रभगा, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमकान्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणि, मुखकमलपरिमलागतमधुकरमधुरझकार एव विनोदाय वीणाध्वनि ।

५ कि बहुना—

ता एव निर्वृतिस्थानमह मन्ये मृगेक्षणा ।
मुक्तानामास्पदे येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥२६॥

(वक्षो या वरुण देवता) स्थान-स्थानपर नदनोद्यानो (आनददायक बगीचो या देवोद्याना) द्वारा स्वगके अगल (कपाट) की तरह, तापी (ताप्ती या तपानवाली) प्राय भी जनोके लिय तापरहित, **विध्य पवत** द्वारा आनदित, दिशामे देशोमे अनुपम उत्तम (उत्तर, उत्तम) **दक्षिणदेश।**

२ जहा शास्त्र, शस्त्र वेद वैद्य, भरत, भारत कल्प और शिल्पमे प्रमुख धनी धनधान्यवाले, बोलनेमे चतुर, मुखपर भोले, मनमे स्नहयुक्त, सदा शोकरहित लोग बसते हैं।

३ जहा, (कामदेव) रहता है (जो) क्रुद्ध शकरके ललाट लोचनकी ज्वाला के ग्रास करनेसे व्याकुल भयसे नत्रो द्वारा अवलोकन मात्रसे शकरके मनको जीतनेवाली रमणियोके उच्च स्तनकुभोके शृगारके सवस्व, अधर-ओष्ठ-पल्लवोमे मधु, तिरछी भौओमे धनुष कटाक्षोमें पुष्पवाणो (फूलरूपी वाण या कामदेव) को रखकर अगोमे विलीन, जघा स्थलमे स्थापित रतिवाला है।

४ जहा है स्त्रियोकी तरुणाई ही सारे अगोमें शोभाके लिये आभूषण, उच्च स्तनमडलका लावण्य ही मुखकमलके अवलोकनके लिये दपण, अधिक चचल नयनोकी कान्ति ही मुखमडलके मडनके लिये चन्दनका ललाट तिलक, भौहोका तिरछा होना ही शोभन कस्तूरीके खिचे पत्र-अकन, कटाक्ष ही तरुण जनोके जीतनेके लिये परम अस्त्र, अँडहुलके फूलकी कान्तिवाले ओठ ही लोगो के लोचन और मनको मोहनेवाली इद्रमणि (लाल) मुखकमलकी गधसे पास आये भ्रमरोकी मधुर झकार ही विनोदके लिये वीणा ध्वनि।

५ अधिक क्या—

मैं समझता हू, वही मृगनयनिया सुखका स्थान है,
इसलिये उनके ही स्तनोके बीच मोतियोका निवास-स्थान है ।।२६।।

६ मन्ये च, ताभिरेव विविधकलाकुम्भीभि कुम्भोद्भवोऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुचति दक्षिणा दिशमेव।

७ अथवा—

देशो भवेत्कस्य न वल्लभोऽसौ,
स्त्रीसकुल सुस्थितकामकोटि ।
दग्धैककाम त्रिदिव विहाय,
यस्मिन्कुमारोऽपि रति चकार ॥२७॥

(२) कुडिनपुरम्—

८ तस्यान्तर्भूत**वैदर्भ**मण्डलस्यालकारभूतमनाकुलममरपतिपुरप्रतिस्पर्धि परित परिखाप्रान्तरूढप्रौढहृद्योद्यानमालावलयितमदभ्रशुभ्राभ्रलिहप्रासादशिखरशिखाभोगभग्नरविरथतुरगवेगम्, एकत्राग्निहोत्रम त्रपवित्राहुतिहतसमस्त समस्तदिव्यान्तरिक्षभौमोत्पातसघातै कृतम युभिरपि मन्युशून्यै, उक्तसूक्तैरपि **निरुक्त**परै, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थै, सकलत्रैरपि ब्रह्मचारिभि, अभ्यस्ततिथिभिरप्यतिथिकुशलै, सामप्रयोगप्रधानैरपि दण्डावलम्बिभि, **शत-पथा**नुसारिभिरप्येकमार्गै, ब्राह्मणैरध्यासितम।' एकत्र **कुरु**भिरिव द्रोणपुर सरै, प्रासादैरिव तुलाधारिभि, **नैयायिकै**रिवानुमेयानुमाननिपुणै, **वैशेषिकै**रिव द्रव्यानुगुणकमविशेषपण्डितै, **वैयाकरणै**रिव रूपसिद्धिप्रधानै रुद्रैरिवानेकग्रन्थिबद्धकपदकै, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम् एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव कुचरूपलोभितलोकाभि कुकविकाव्यपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृत्ताभि, निशाचरीभिरिव रजनिरागिणीभि, सर्वतोमुखजघनचपलाभिरप्यनार्याभि, **कर्णाटचेटी**भिभरितम्। एकत्र बालकमिव

६ और मै समझता हू, विविध कलाओकी उन्ही कुभियो द्वारा भगवान कुभज (अगस्त्य) भी प्रलोभित है जो कि अभी भी (वह) दक्षिण दिशाको नही छोडते।

७ अथवा—

स्त्रीयुक्त सुन्दर स्थित काम कोटिवाला वह देश किसको नही प्रिय होगा, जहा अद्वितीय कामके जले स्थान मे स्वगको छोडकर कार्तिकेय भी रति करते है ॥२७॥

२ कुडिनपुर—

८ उस (दक्षिण) देशके भीतर है **विदभ**मडलका अलकार सा कुडिन पुर नगर अव्याकुल (जो कि) इद्रपुरसे स्पर्धा करनेवाला चारो तरफ परिखाओके किनारे उग प्रौढ मनोहर उद्यानमालासे वेष्ठित, अत्य धिक शुभ्र मेघचुबी, प्रासाद शिखरोकी शिखाकी ऊचाईयो से सूयके रथके तुरगोके वेगको भग्न किये। जहा (ऐसे ब्राह्मण बसते थे जो), एक जगह अग्निहोत्रके मन्त्र द्वारा पवित्र आहुतियोसे सारे दिव्य आकाश और भूमिके उत्पातको नष्ट करते क्रोध किये भी क्रोध (मन्यु क्रोध या यज्ञ) से शून्य वदोके सूक्तोके वाचक भी निरुक्त (बिना कहे या निरुक्तशास्त्र) मे निष्णात सन्माग (धम या सच्चे मार्गों) पर अवस्थित भी गहस्थ सकलत्र (सकलरक्षक या पत्नी-सहित) भी ब्रह्मचारी, तिथिके अभ्यस्त करनेवाले भी (अतिथि, मेहमान) की सेवामे चतुर **साम** (सामवेद या शान्तिकी नीति) के प्रयोगोमे प्रधान भी दड (राजनीतिक दड या सन्यासियोके दड) के अवलम्बन लनेवाले, **शतपथ** (सौ माग या शतपथ ब्राह्मण) के अनुगामी भी एक मागवाले, एक जगह **कुरुओ**की तरह **द्रोण** (द्रोणाचाय या नाप-तौल) को आग किये प्रासादोकी तरह तुला (तराजू) धारण करने वाल, **नैयायिको**की तरह अनुमेय और अनुमान मे निपुण, **वैशेषिको** की तरह द्रव्यके अनुसार गुण कम, विशेषमे पडित, **वैयाकरणो**की तरह रूप (रूप या प्रयोग) की सिद्धिमे प्रधान, रुद्रोकी तरह अनेक गाठोमे बधे कपदक (जटाजट या कौडी) वाले, बाजारके बनिया लोगोसे अधिष्ठित। एकत्र लम्पट वाममागके पाखडकी दीक्षाओ की तरह स्तनो और रूपसे लोभित लोगोको लुभानेवाली, कुकबि

कुलालाकीर्णम्। एकत्र वृद्धिमिव कुजराजितम्। एकत्र चित्रविद्ययेव प्रवर्धमानसकलशिशुशोभितया विन्यस्त-स्वस्तिकया सर्वतोभद्रभूषणया भवनमालयालङ्कृतम्। एकत्र नाटकैरिव पताकाङ्कसंधिसंगतैः, दुष्टकिरातैरिव दृष्टकूटकमभिः, शस्त्रैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैरप्युतलैर्देवकुलैः सकुलम। विशालमपि शाला-संपन्नम्, चतुश्चरणसंयुक्तमपि चरणरहितम्, विट्संभृ-तमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चत्वराधिकमपि स्थिरप्रकृति मज्जन्**महाराष्ट्र**कुटुम्बिनीमुखमण्डलविधीयमानोत्फुल्ल-कमलशोभायास्तुंगतरंगरंगत्तरुणार्जुनराजीवराजमान-राजहंसविराजितवारेर्**वरदायास्**तीरे रामणीयकरसकुण्डं **कुण्डिनं** नाम नगरम्।

९ यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनित-पातकभंगा गंगामुपहसन्ती स्वर्गमार्गश्रियनिश्रेणी पुण्य-पया **पयोष्णी** वहति।

१० यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरीचि-चञ्चरीकचक्रचुम्बितचरणाम्भोजस्य **भोजकट**कूपजन्मनो जरापातितययाते प्रचण्डदण्डदाण्डिक्यदण्डनाडम्बरितगण्ड-पाषाणविदलितवदभमण्डलस्य भगवतो **भार्गव**स्याश्रम।

की काव्य-पद्धतियोकी तरह यति गण-वत्त (छन्दके या यतियोके आचार) को भग्न करनवाली निशाचरियोकी तरह रातमे अनुराग करनेवाली, चारो ओर जघनचपला (छन्द या पुश्चली) अनार्याओ (आर्या छन्द रहित या दुष्टा) **कर्नाटकी** दासियोसे भरा। एक जगह बालककी तरह कुम्हारोसे आकीण। एक जगह बद्धिकी तरह वक्षोसे राजित (या बुरी जरास पराजित)। एक जगह चित्रविद्याकी तरह बढत हुय मारे शिशुओसे शोभित। स्वस्तिक लिखित सवतोभद्रके भूषणवाली भवन-पक्तियोसे अलकृत। एक जगह नाटकोकी तरह पताका अक-सन्धिसे युक्त (पताकाओके लाछन के सम्पक-सहित), दुष्ट **किरातो**की तरह दष्टकूट (देख पवत या कपटमे चतुर) कम चाल, शस्त्रोकी तरह सुन्दर धारावाले (या चूनेवाले), विचित्र भी सचित्र, तुला-सहित भी अतुल देवालयोसे सकुल। विशाल भी शाला-ओसे युक्त, चार चरणोसे युक्त भी चरण (सचार) रहित, विटो (लपटो) से युक्त भी पवित्र मागवाला सवत्र बहुतेरे चौतरोवाला भी स्थिर स्वभाववाला (अविक त्वरा), स्नान करती **महाराष्ट्री** स्त्रियोक मुखमडल द्वारा किय उत्फुल्ल कमल शोभावाली ऊची तरगोके रगसे तरुण अर्जुन (श्वेत कमल) से विराजमान, राजहसो से विराजित पानीवाली **वरदा** नदीके किनारे रमणीय रसोके कुड-प्रवाहसा वह कुडिन नगर था।

९ जिससे थोडी दूरपर दशनसे पापोके सकट बहाती पातक भग करनेवाली गगाका उपहास करती स्वग मागके आश्रयके लिये सीढी सी **पुण्यजला पयोष्णी** नदी बहती है।

१० जिसके पश्चिम मे प्रणाम करते सुर असुरके सिरोकी शिरोमणियो की किरणरूपी भवरो द्वारा चुबित चरणकमलवाले, **भोजकट**कूप-मे उत्पन्न, जरा द्वारा गिराये ययाति वाले प्रचण्ड दण्ड द्वारा दाडिक्य राजाके दडनके आडम्बरयुक्त गड पत्थरसे चूर करनेवाले **विदर्भ-मडल**के भगवान भागव (परशुराम) का आश्रम है।

११ यत्र च विपत्त्रा सन्ति साधवो न तु तरव, विजृम्भमाणकमलानि सरासि न जनमनासि, कुवलयालकारा क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्य, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि।

१२ किं बहुना—

देशाना दक्षिणो देशस्तत्र **वैदर्भ**मण्डलम्।
तत्रापि **वरदा**तीरमण्डल **कुण्डिन पुरम्** ॥२८॥

—उच्छ्वास २

(३) कुमारायोपदेश —

१३ अस्ति च तस्य नरपतिसूनो समानशीलवयो विद्यालकारकान्तिकलापपरिपूर्णदेह शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेक जीवितमपर उच्छ्वास **सालकायन**सूनु **श्रुतशीलो** नाम मन्त्री मित्र च।

१४ एकदा तु पूर्वदिग्वधूकुकुमपकपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्धतमसि सौगन्धिकबन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनागणमम्भोजमुकुलनिद्रामुषि रोचिषा चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरुराजिकर्णोत्पले निद्राविरामविधुतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककमण सभागणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञ प्रविष्टे, मन्त्रिणि सालकायने, प्रणामपयस्तकर्णोत्पलधवलितसभागणे यथासनमुपविष्टे प्रस्तुतसेवालोपरजितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे, श्रुतशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो **नल** सेवासुखमनुभवितुमागतवान्।

११ जहा विपत्र (बिना पत्र या विपद) से रक्षा पानेवाले वृक्ष होते ह, साधु नही, फूलत कमलोवाल (या फैलते मलवाले) सरोवर होत ह न कि लोगोंक मन, कुवलय (कमल या खराब बलय) भूषणवाली क्रीडा पुष्करणिया न कि महिलायें, पक्षियोके चरण (या विपत्ति से आक्रान्त) होते है नदियोक तट, न कि कुल।

१२ अधिक क्या —

देशोमे उत्तम है **दक्षिणदेश**, और वहा भी **बिदभमडल**।
वहा भी **वर्धा** नदीके तटक मडलवाला कुडिनपुर।।२८।।

—उच्छवास २

३ कुमार के लिए उपदेश—

१३ उस राजपुत्र का एक समान शील-आयु विद्यारूपी अलकार कातिके समूहोसे परिपूण देहवाला शरीर मात्रसे दूसरा भी अद्वितीय हृदयवाला, जीवनकी दूसरी स्वाम सा **सालकायन-पुत्र श्रुतशील** नामक मन्त्री और मित्र था।

१४ एक बार प्रात काल (था जबकि) आकाशके पूव दिशारूपी बधूका मुख केसर पकसे पत्राकित[1] (या), मुखसे अधकार निरुद्ध था, सौगधिक वधुवाला था और उसमें अडहुलके फूलके समान अतितरुण अरुण सूयमडल तैरसा रहा था। (जो सूय) कुसुमके फूलकी केसर बिखेरता आकाशके आगनको मडित करता, कमलकी कलियोकी निद्राकी चोर किरणोसे युक्त (था)। और जब उपवनकी तरुपक्तियोके कण कमलो जैसे निद्रा समाप्तकर **कपित** पख (कपात) पक्षी विचरणके लिये चल रह थे। (जब) प्रात कालीन कम समाप्त कर सभाके आगनके मडपमे वतमान, सेवाका अवसर देते राजा का मन्त्री **सालकायन** प्रविष्ट हुये। (जब) प्रणामके लिये फैले करक**मलोसे** सफेद हुये सभाके आगनमें अपने-अपने आसनके अनुसार सेवासे राजाको प्रसन्न किये राजन्य लोग बैठ गये। (जब) शास्त्रीय विनोद शुरू हो गये। (तब) श्रुतशील और दूसरे (बाल-) क्रीडाके मित्रो, अनुचरो को पीछे लिये **नल** सेव-सुखको अनुभव करनेके लिये (वहा) आये।

---

१ चदन से खोर बनाया

१५ आगत्य च क्षितितलमिलन्मौलिमण्डल प्रणम्य पितु पादारविन्दद्वयमदूरदत्तमासन भेजे।

१६ उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादनादुत्पन्नमन्युरीषत्कोपकम्पितकरपरामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरग्रणीमत्रिमण्डलस्य भ्रूभगभीषणया शोषणकोणान्तरतरत्तरलतारया दृशाऽभिमुखमस्य सालकायन प्रणयपरुषाक्षरमभाषत।

१७ कुमार, राजहसोऽपि अहसरूप इति मा स्म मोहवान्भू ।
अनुभवति च मूढ शस्त्रसघात इव कोशशून्यताम्।
अविभव पुरुषो मेष इव कम्बलस्योपयोग गच्छति।

१८ प्रद्युम्नजातोऽपि वाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सदोषया यौवनावस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ?

१९ तत् तात, सुविषमेघवर्त्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम्।

२० अविनीतोऽग्निरिव दहति । अजातनयश्छाग इव नाभिनन्द्यते जनेन ।

कि च ब्रूम —

२१ सुसहायशून्यस्य भवतो यस्यामीमासाभियोगा राक्षसा इव, अयाया पारदारिका इव, अयोगक्रिया लोकहारा इव, अश्रुतागमा शोकवेगा इव सहाया ।

२२ न च ते दु शिक्षितनृपकलभव्याकरणमार्गेषु निपुणानतकीव मित्रमण्डली ।

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजग इव भयाय लोकस्य उग्रसेन कसानुराग जनयेत्।

१५ आकर (नल) पथिवीतलस शिरोमुकुटको छू पिताके दोनो चरणारविवन्दोको प्रणाम कर पासमे दिये आसनपर विराजमान हुये।

१६ उनके बैठ जानेपर अभिवादन न करनसे थोडसे कुपितसे (हुय) कपित हाथस डाढीकी अगली गाठको छूत भौ तिरछी करनेसे भीषण लाल कोनेवाली भीतर तिरती चचल पुतलीवाली दष्टिसे उनके सामन मत्रिमडलके प्रमुख **सालकायनने** प्रेमसे कठोर अक्षरवाली (बात) कही।

१७ कुमार, राजहस भी अहस रूप होता है इसलिये मोहमे न पडो। मूढ (आदमी) शस्त्र समूहकी तरह कोश क खाला होन को अनुभव करता है।

विना विभववाला पुरुष मषकी तरह कम्बल वस्त्र (या किस बलके) उपयोगको प्राप्त होता है।

१८ **प्रद्युम्नसे** उत्पन्न (कामवश) भी **वाण** (असुर के) युद्धके क्लेशके करनेवाली दोषयुक्त यौवनावस्थासे **अनिरुद्धकी** तरह कौन नही क्लश को अनुभव करता?

१९ सो तात मेघमें रहनेवाली बिजलीकी चमककी तरह अस्थिर अति विषयुक्त तरुणाईमे, स्थित (तुम) उपहास करते विनयको न भूलो।

२० अविनीत (विनयहीन) अग्निकी तरह जलता है अजातनय (बकरी का बच्चा या विनयहीन) बकरे की तरह जनो द्वारा अभिनदित नही होता।

और क्या कहू —

२१ आप सुन्दर मित्रस रहित ह जिसक **अमीमासा** (अविचार या मीमासा मे अभिलाष) स योग राक्षसोकी तरह, **अन्याय** (न्याय रहित या अन्यस्त्रीगमन) परस्त्रीगामियोकी तरह, लोहारोकी तरह अयोग (लोहा-सम्बन्धी या योगरहित) क्रियाये, अश्रुत आगम (न सुन शास्त्र या आसुओका आना) शोकवेगकी तरह मित्र होते ह।

२२ तुम्हारी मित्रमडली निपुण नतकीकी तरह ठीकसे न सीखी, हे राज कुमार व्याकरणके मार्गोंमे निपुण नही है।

सो आयुष्मान् अहित प्रकृतिके द्वारा भुजगकी तरह लोकके भयके लिये **उग्रसेन** (राजा या क्रूर सेनावाला) कसानुराग (**कसका** अनुराग या किसका अनुराग) पैदा करेंगे।

अमृतमथनोद्यतहरिवाहुपजर इव मन्दरसानुगत को न घृष्यते ।
शुनीमिवास्थिरता परिहर ।
कुशीलताग्राही का स्म तैलिक इव केवल खलोपभोगाय भू ।
आवजय गुणान्,
निर्गुणे धनुषीव सुवश्येऽपि कस्याग्रहो भवति ?

२३ अभ्यस्व कला,
निष्कलो वीणाध्वनिरिव प्रशस्यते न पुरुष ।
त्यज जाडयम्,
जाड्ययोगेन हिमानी दूष्यता याति ।
मा स्म मुखरो भू,
कर्णाटचेटीमिव मुखरता न शसन्ति साधव ।

२४ भज माधुर्यम्,
धवलबलीवर्दपक्तिरिव समाधुयर्धा वाणी मनो हरति ।
वजय वैपगीत्यम्,
विपरीत शवमिव को न परिहरति ।
कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधीयसे—
मा गा स्त्रिया श्रियो वा विश्वासम्,
अधिकमलवसतिरनायसगता स्त्री श्रीश्च क न प्रतारयति ?

२५ या कालकूटद्वितीया नीरोत्थितापि नाद्रहृदया भवति, स्वीकृतापि विवाहेन कसानलघनचापलेनोद्वेजयति ।

२६ अस्या कारणेऽभ्रान्त समस्तो मन्दराग सदालोक, लोलनेत्रीकृता धृष्टा भुजगमण्डली, प्राप्तो जलधी राजकुमार पराभवम् ।

अमृत-मथनके लिये उद्यत विष्णुके बाहुरूपी पजरकी तरह मन्दरके शिखरपर अवस्थित (मन्द रससे युक्त) कौन नही घिसा जायेगा ?
अस्थिरताको कुतियाकी तरह छोडो।
तलीकी तरह कुशीलता (कुशकी लता) का ग्रहण करनेवाला केवल खल (दुष्ट या खली) के उपभोगके लिये मत बनो।
गुणोको प्राप्त करो
निर्गुण (प्रत्यचा रहित या गुण-रहित) धनुषकी तरह सुन्दर वश (बास या कुल) वाल क प्रति किसका आकषण होता है ?

२३ कलाका अभ्यास करो कलारहित (या अमधुर) पुरुष वीणाकी ध्वनिकी तरह प्रशसित नही होता।
जडताको छोडो,
जडता (सर्दी) के योगसे **हिमानी** दूषित होती है।
मुखर मत हो
कर्णाटकी दासीकी तरह मुखरताको साधु लोग अच्छा नही कहत।

२४ मधुरता का सेवन करो
मधुरता सहित (या समान धुरेवाली) वाणी सफेद बैलोकी पातीकी तरह मनको हरण करती है।
विपरीतताको छोडो।
विपरीतको मुर्देकी तरह कौन नही छोडता ?
हे कमलकी तरह बडी आखोवाले, इस शिक्षा क्रममे और भी तुम्हे हम बतलाते है—
स्त्री या श्रीपर विश्वास मत करो।
अधिक कमल (अधिक मलिनता या कमलमे) रहनेवाली अनार्यो (आर्या छन्द रहित) वाली स्त्री और श्री किसको नही वचित करती ?

२५ जो (लक्ष्मी) कालकूट विषसी दूसरी नीरोषित (न रोषित या जलमे बसी) भी आद्रहृदया नही होती, विवाह द्वारा स्वीकृत भी कसानु लघन (किसको या कस-असुरके न अमारण) रूपी चपलतासे उद्विग्न नही करती।

२६ इसके कारण समस्तमन्दराग (सारा दढानुराग, समस्त मन्दर पवत) सदालोक (सदा लोक या सुन्दर आलोक) अभ्रान्त है, चचल नेत्र बनाई (ढीठ घर्पित) भुजगो (सापो या लम्पटो) की मडली राज-कुमार, पराभाव प्राप्त समुद्र है।

२७ अनयावष्टब्ध को न गुरुवारणयोग्यो भवति ? को न वाजि-पृष्ठमा रोहति ? क ककणन्नवचनत प्रकटयति ? क कण्ठे हारावमोचन न कुरुते ? को न काचनशृखलामनुभवति ? कुरग इवान्धीभूत को वागुरावचन करोति, ? क कार्मुक-निर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्षमागच्छति ?

२८ कस्य न पराभूतिभवति ? कस्य नापूव यश समुच्छलति ?

२९ किमतोऽप्यस्या परमुच्यते ?

यादेव प्रिय शार्दूलमिव शूर, महत्तर भयान्नोपसपति । सुन-यनादेवर सिहमिव बलभद्र दृष्ट्वा प्रपलायते, न वसुदेवे-ऽपि चक्षु पातयति ।

३० केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरून्परपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे राग वध्नाति ।

३१ तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रभूरिव हृदयहरा श्रेयोऽ-र्थिना शरण न स्त्री श्रीर्वा ।

शृगारप्रधानास्तात, गाव इव विचारिता सरसा भवन्ति न स्त्रिय ।

३२ तदेता कन्दपकण्डूकषणविनोदमात्रोपकारिण्यो नात्यन्त-विश्वासयोग्या सवथा विश्वस्त विश्वासमिव नर कुवन्ति स्त्रिय ।

३३ श्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोग नयेत् । न लोभ कुर्यात् । बहुलाभोनुगत किरणकलापोऽपि सतापयति जनम् ।

२७ इस (स्त्री) द्वारा आश्रित कौन गुरुवरण (गुरुके द्वारा या भारी निषध करन) योग्य नही होता ? कौन नही समरभूमिमें पडता ? कौन वचनासे ककण (जलकण) को नही प्रकटित करता ? कौन कठमे हारबधन नही करता ? कौन नही सुवण शृखलाको नही अनुभव करता ? हरिन की तरह अधा हुआ कौन फदे (मगतष्णा) से वचना करता है ? कौन धनुषसे छूटे वाणकी तरह नही विरुद्ध लक्ष्य को नही प्राप्त होता ?

२८ किसका नही पराभव होता ? किसका नही अपूवयश पराभव (परम वभव) उछलता ?

२९ इससे भी अधिक इसके बारमे क्या कहा जाय ?
यादवके प्रिय (अथवा सतापप्रिय) शादूलकी तरह महत्तरके पास भयसे नही जाती। सुनयनादेवर (सुन्दर नीतिके नादसे वर या सुनयनाके देवर) को सिहकी तरह **बलभद्र**को देखकर पलायन करती, **वसुदेव** (धन दनवाले या **कृष्ण** पिता) पर भी नजर नही डालती।

३० केवल लगातार शिक्षा प्राप्त पाडित्य कलाके अपराधवाली लज्जा-परा हो गुणी गुरुओको छोडकर मायावी केशी बधक **म दर**राग (पवत या मन्द स्नेह) वालेमे राग करती है।

३१ सो आयुष्मान् भला चाहनेवालो के लिये अति गहरी गुहायुक्त महा-पवतकी भूमिकी तरह हृदय हरनेवाली स्त्री या श्री शरण नही है। हे तात, वाणियो, (गौओ, किरणो) की तरह विचार की गई (या चुराई गई) शृगारप्रधान स्त्रिया सरस नही होती।

३२ सो काम की खुजलाहट मिटाने (विनोद) मात्रमे उपकारिणी ये स्त्रिया अत्यन्त विश्वास-अयोग्य सब तरहसे विश्वस्त (पुरुष) को श्वास रहित सा करती है।

३३ पुरुषो को चाहिये श्री (लक्ष्मी) को भी दान और उपभोग द्वारा उपयोगमे लाये, लोभ न करे। बहुलोभानुगत (बहुत लोभी या बहुत सूयमें अवस्थित) किरण-समूह भी लोगोको सतप्त करता है।

३४ अत पुत्र, प्राप्स्यसि नचिरान्निजकुलकमलराजहसी राज्यश्रियम् । अनवरत कृतयशोदानन्देहि नारायण इव त्वयि चिर रस्यते खल्विय लक्ष्मी ।

३५ पाहि प्रजा । प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकै ।

मा च वृद्धि प्राप्य गुणेषु द्वेष कार्षी । व्याकरणे हि वृद्धिर्गुण बाधते, न सत्पुरुषेषु ।

३६ वत्स, मा चैव चेतसि कुथाश्छान्दसोऽयम् । छान्दसश्च गुरुवक्रस्वभाव एव भवति तत्किमनेनेति ? यस्माच्चतुरानन्दिपद पुण्यश्लोको भवान् । अतोऽगभाव यान्ति ते वक्रोक्तयोऽपि गुरव । सरलतया लघवोऽप्यन्तरगा भवन्ति, किंतु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दशयन्ति ।

३७ तत्कि बहुना—

तथा भव यथा तात, त्रैलोक्योदरदपणे ।
विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्नित्यमात्मानमीक्षसे ॥१७॥

३८ कि चान्यत्—

बिभति यो ह्यर्जुनवारि पौरुप,
करोति नम्रे च न वा रिपौ रुषम् ।
न तेन राज्ञा सहसागराजिता,
भवेन्मही कि सहसागरा जिता ॥१८॥

३९ अपि च—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ?
आरोहति न य स्वस्य वशस्याग्रे ध्वजो यथा" ॥१९॥

३४ इसलिय पुत्र जल्दी ही तुम अपन कुल कमलकी राजहमी राज्यलक्ष्मी को पाओग बराबर कृतयशोदानदहि (किये यशवाल दानको दो या यशोदाको आनन्द करनेवालमे) नारायणकी तरह तुम्हारे साथ यह लक्ष्मी चिरकाल तक रमण करगी।

३५ प्रजाओका पालन करो। (प्रजा पालन करनवाला, अधिक जपनेवाला) ब्राह्मणकी तरह क्षत्रिय भी पातकस लिप्त नही होता। और बुद्धि प्रानक गुणोसे द्वेष न करो। व्याकरणमे वद्धि गुणको बाधा देती हे सत्पुरुषोमे नही।

३६ और वत्स मनमे एसा न करो कि यह छन्द (इच्छा) से है। छान्दस (वदिक या छन्दशास्त्रवाला) गुरु (वहस्पति या गुरु वण)[1] वक्र-स्वभाववाला ही होता है। सो इसस क्या? क्योकि आप चार आनदी पदवाले पुण्य श्लोक (प्रशसित या शुद्ध श्लोक) है। इसलिये वे वक्रोक्तिवाले गुरु भी अगभाव (एकता) को प्राप्त होते है। सरलताक कारण लघु भी अन्तरग होते ह, किन्तु वे अवसान (अन्त) मे कुटिलता भी दिखलाते ह।

३७ सो अधिक कहनसे क्या —

हे तात, वैसा होओ कि त्रैलोक्य उदर (रूपी) दपणमें,
उन उन विशेषोसे भूषित हो नित्य आत्मा (अपने को) देखो ॥१७॥

३८ और दूसरा क्या?—

अजुनको रोकनेवाला जो पौरुषको और नम्र रिपुमे रोषको धारण नही करता उस राजाके साथ सागर सहित जीती पथिवी नही रहती सगर-पुत्रोके साथ जीती (हो) तो (भी) क्या ॥१८॥

३९ और भी—

माताके यौवनको अपरहण करनेवाले उस पुत्रसे क्या,
जो कि अपने वश (कुल या बास) के अग्र स्थानपर ध्वजाकी तरह नही चढता" ॥१९॥

---

१ यहाँ शास्त्रके लघु गुरुके श्लेषो का प्रयोग ह।

४० एवमुक्तवा विश्रान्तवाचि वाचस्पतिसमे मन्त्रिणि राजापि प्रेमाद्रया दृशा नलमवलोक्य वक्तुमारभत—

४१ तात, युक्तमुक्तो हि **सालकायनेन**। कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवंविधा पदे पदेऽथसमर्था मृद्वयो मृष्टा श्लिष्टाश्च वाच ?

—उच्छ्वास ४

(४) दमयन्ती-वार्ताहर —

४२ राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमाग्रहोपरोधिविस्मयहर्षरसै सम-कालमाप्लावितमना, प्रथममुत्फुल्लया दृशा, ततो मुग्ध-स्मिताघ्र्येण, तदनु सर्वाङ्गीणभूषणप्रदानेन, तमभ्यर्च्य, "पान्थ, कथय केयमुत्तुङ्गकल्लोलदोलाधिरूढानुच्चचञ्चू-त्क्षिप्तमृदुमृणालवलयात्कूजत कलहंसानक्षसूत्रिण प्रव-र्त्तितब्रह्मयशोद्गारमुखरमुखास्तीरतापसानिव दिवमा-रोपयितुमुद्वहन्ती सरित् ? तरुणतरुतलमलङ्कुर्वाण प्रसन्न-सरस्वतीक कश्च भवान् ?" इति सप्रणयमपृच्छत्।

४३ सोऽपि ? "सभ्रमरया कूलकीचकवेणुलतया सदृशी नावातर-णयोग्या किमियमप्रसिद्धा महानदी देवस्य" इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान्—

भानो सुता **सवरणस्य** भार्या तापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री
यस्या कुरु सूनुरभूत्स यस्य नाम्ना कुरुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥१५॥

४४ एतस्या सलिलावगाहसमये कुर्वन्ति नित्य नृणा,
नीरन्ध्रोन्नतकर्कशस्तनतटीसघट्टपिष्टोमय ।
भ्राम्यद्भृङ्गनिभालकै क्षणमिव व्यालोलनेत्रैर्मुखैर्,
उत्फुल्लोत्पलगर्भपङ्कजवनभ्रान्ति **महाराष्ट्रिका** ॥१६॥

४० बहस्पति समान मत्रीक एसा कहकर चुप हो जाने पर राजान भी प्रमाद्र दष्टिस **नल**को देखकर कहा शुरू किया—

४१ तात, **सालकायनन** तुम्हे ठीक कहा हे। दूसरे किसके मुख कमलसे इस प्रकार पद पदपर अथयुक्त मधुर, चिकन, श्लेषयुक्त वचन निकल सकते हैं।

४ दमयती का दूत—

४२ राजाने उसे सुनकरके क्षण भर आग्रहके अनुरोधसे विस्मय और हष के रसोसे एक साथ आप्लावित मन हो पहले उत्फुल्ल दष्टिसे फिर मुग्ध मुस्कानक अघ्यमे उमके बाद सर्वागीन भूषण-प्रदान द्वारा उसकी अचना करक प्रमपूवक पूछा— बटोही बतला यह उत्तुग लहरोके झूले पर चढ, ऊच चचुओसे ऊपर मदु मणालोके बलयो के फेकनेवाल कूजन करत अक्षशनधारी हसोकी मुखसे ब्रह्मकी कीर्तिके उदगारमे लग तीर निवासी तापसोकी सी स्वगमे रखने के लिये बहती कौन सी नदी है ? तरुण वक्षतलको अलकृत करते प्रसन्न वाणीवाल आप कौन हैं ?"

४३ उसने भी—'भवर (भ्रमर)-युक्त वेग वाली, किनारेकी कीचक बासोकी लता सहित समान नावसे पार होने लायक क्या यह महानदी देवको ज्ञात नही है, यह कहकर बात करनी शुरू की—

सूयकी पुत्री **सवरण**की पत्नी यही पाप नाशिनी **ताप्ती** नदी है।
जिसका पुत्र **कुरु** हुआ जिसक नामसे **कुरुक्षेत्र**को पुकारते हैं ।।१५।।

४४ इसके जलमे स्नान करनेके समय,
घने उन्नत ककश स्तनोके तटके घषण से उर्मियोको पीसती **मराठिनें**
घूमते हुये भ्रमरो जैसे अलकोवाले चचल नेत्रयुक्त (अपने) मुखोसे
क्षण भर फूले नीलकमल गभवाले कमलवनका भ्रम **पुरुषोके**, मनमे
नित्य पैदा करती है ।।१६।।

४५ अपि च—

यद्येतस्या सकृदपि मरन्नतिताम्भोजराजि–
प्रेखत्पत्रव्यजनविधुत वारि नीहारहारि।
राधोभाजा पिवति कुसुमैर्वासित पादपाना,
पीयूषाय स्पृहयति तत कि क्वचिन्नाकलोक ॥१७॥

मामपि **पुष्कराक्ष**नामान वातिकमवगच्छतु देव ।

४६ तथाहि—

स्थित्वा त्वदागमनमाग्मुखे गवाक्षे,
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताक्ष्या ।
सप्रेषितो निषधनाथ, तयास्मि यस्या,
क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥१८॥

४७ एष्यति च श्वस्तनेऽह्नि मागश्रमक्लान्तमितो नातिदूर इवोत्तुगतरसरलसालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलच्चटुल-चकोरमयूरहारीतहसकुलकोलाहलिनि **पयोष्णी**पुलिनपरि-सरे स्थित तया प्रहितमाप्त क्रीडाकिन्नरमिथुनम्, इय च वाच्यता तया स्वहस्तकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूज-पत्रिका इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिका व्यसृजत् ।

४८ राजापि पाश्वपरिजनेनोत्क्षिप्यापिता तामतिबहल-पुलकाकुरकण्टकितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमु-न्मुच्य सादरमवाचयत्—

"नलोऽपि मा प्रत्यनलोऽसि यत्तद् भवादशा नैषध नैष धम ।
तथावलाना बलवद् ग्रहीतु न मानस मानसमुद्र युक्तम् ।१९।

४५ और भी —

यदि वायु स नाचत कमलाकी पक्तियोक
चचल पत्रक व्यजन द्वारा हिल्ता हिम हारक,
वक्षोके फलोस वासित, इसकी धाराके जलको एक बार भी,
पीये तो क्या स्वगवासी (जन) कभी अमतकी लालसा करेंग? ॥१७॥

मुझ भी दव **पुष्कराक्ष** नामक मदशवाहक समझे।

४६ सो —

हे **निषध**राज, तुम्हारे आनके मागकी ओरके जगलेपर बैठी,
विशेष समाचार जाननेक लिय
उस दीघनयनीने विशेष समाचार जाननेके लिये,
मुझ यहा भजा, जिसके कि, मुग्ध चित्तरूपी मगके तुम क्रीडा पवत हो ॥१८॥

४७ कलक दिन और यहा स न अतिदर ऊचे आम-साखू-सज अजुन निचुलके समूहोके भीतर चचल मुखर चकोर-मोर हारिल हसोके कोलाहलवाली **पयोष्णीके** तटक पास अवस्थित उसका भेजा माग के श्रमसे थका विश्वसनीय पालतू किन्नरोका जोडा आयेगा। और उसके अपने हस्त पल्लवस लिखित अक्षरवाली इस चिटठी को भी पढिय।' यह कहकर उसने उनके सामने चिट्ठी रख दी।

४८ राजाने भी साथके परिजनोको अलग हटाकर दी गई उस पत्रिकाको अति अधिक रोमाचित बाहुवाले हाथसे स्वय खोलकर आदरके साथ पढा —

ह **नषध** तुम नल भी मेरे लिये अनल हो जो कि आप जैसोका यह धम नही (नैष धम) है। अबलाओको जबदस्ती पकडनेके लिये मानरूपी समुद्रसे युक्त मानस का होना ठीक नही ॥१९॥

४९ अपि च—

निपतति किल दुबलेषु दैव तदवितथ ननु येन कारणेन।
बलवति न यथा तथाबलाना प्रभवति कृष्टशरासनो मनो-
भ ॥२०॥

५० अपि च—

कदा किल भविष्यन्ति कुण्डिनोद्यानभूमय ।
उत्फुल्लस्थलपद्मा भवच्चरणभूषिता ॥२१॥" इति

५१ लेखलिखितप्रणयसुभाषितामतरसप्लवेनाप्लावितहृदय — "विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगमुड्डीय येन ता पश्यामि" इति चिन्तयन्नरपति पुरत स्थित त प्रिया-वातिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमाचनिचयेन , पिबन्निवा-भिलापतषितया दशा, स्नपयन्निव मधुरस्मितामतरसेन, पुन पुन सादरमभाषत—

५२ "पुष्कराक्ष, सा सवथा विजयते राजपुत्री, यस्या प्रसन्न-मुदारसत्कान्तिश्लिष्ट सुकुमारमनेकालकारभाजन वयो वचन च, सप्रश्रय प्रगल्भो विवेकवाविदग्धवुद्धिभवद्विध परिजनश्च ।

५३ तत्कथय, कथनीयकीति क्वास्ते ?कथमास्ते? क विनोद-मनुतिष्ठति ?केन व्यापारेण परिणामयति वासर वाऽसौ भवत्स्वामिसुता ?" इति ।

एवमुक्त स पुन पल्लवयन्ननुरागकन्दल नलमलपत्—
"त्वद्देशागतवायसाय ददती दध्योदन पिण्डित,
त्वन्नाम्न सदशे दश निदधती वन्येऽपि मुग्धा नले।
त्वत्सन्देशकथाथिनी मगयते तान्राजहसा पुन,
क्रीडोद्यानतरगिणीतरुतलच्छायासु वापीषु च ॥२२॥

४९ और भी—

दैव दुबलोके ऊपर झपटता है सो असत्य नही है क्योकि
खिंच धनुषवाला कामदेव बलवान पर वैसी प्रभुता नही दिखाता,
जितनी अबलाओपर।

५० और भी—

कब कुडिन नगरके उद्यानकी भूमिया फूले गुलाब
समान होती आपके चरण द्वारा भूषित होगी ।।२१।।

५१ पत्रमे लिख प्रेमक सुभाषितक अमतरसकी धारासे आप्लावित हृदय हो— हे विधि पक्षियोकी तरह मेरे दो पख बना दे जिसमे मैं उडकर उसे जा देखू। यह सोचते राजाने सामने खडे प्रियाके उस समाचारवाहक को आलिंगन करने से ऊचे रोमाचोस युक्त हो अभिलाषाकी प्यासी दृष्टि से प्रीत से मधुर मुस्कानक अमतरस द्वारा मानो उसे नहलाते स आदरपूवक बार बार बात की—

५२ 'पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सवथा विजयी है जिसके प्रसन्न वचन और आयु उदार-सच्ची कान्तिसे युक्त सुकुमार अनेक अलकारोका भाजन आप जसा प्रेम-युक्त प्रौढ विवेकी चतुर बुद्धिवाला परिजन है।

५३ सो बतलाओ, वह प्रशसनीय कीर्तिवाली कहा है कैसे है किस मनोविनोदमे लगी है किस व्यापारके द्वारा आपकी वह स्वामिपुत्री दिन बिताती हे।'

ऐसा कहने पर उसने अनुरागक कदको पल्लवित करते नलसे कहा—
तुम्हारे देशसे आये कौवेको पिंड बनाकर दही भात देती
तुम्हारे नामाराशि जगली अनल पर भी नजर डालती वह मुग्धा
तुम्हारे सन्देशकी कथाकी इच्छुक उन राजहसोको
क्रीडा उद्यानकी पुष्करणीके वक्षोकी छायाओमे और बावडियोमे
ढूढती है।।२२।।

५४ अपि च, साप्रत तया—

त्वद्देशागतमारुतेन मदुना मजातरोमाचया,
त्वद्रूपाचितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दशम् ।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मागवातायने,
नीचै पचमगीतिगभितगिरा नक्तदिन स्थीयते" ॥२३॥

५५ एवमनुगुणमनुरागस्य, सदृश शृगारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रिय प्रेमप्रपचस्य, प्रोत्साहनमनगस्य, अनुकूलमुत्कण्ठाया, समुचितमभिनिवेशस्य, कौतुकजनन जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलिनि विस्मतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानु - भवति भूभुजि, जरठीभवत्सु पूर्वाह्णवेलालवेषु, गगन-मध्यासन्नवतिनि व्रजति तीव्रता व्रघ्नमण्डले, स्खलयति पथि पथिकानसह्योमिणि घमजाले, जलाशयाननुसरत्सु पिपासाकुलतरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पकिल-कूलकदमविमर्दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवरा-हमहिषमण्डल्येषु, विटपिकोटरकुटीरनीडनिलयनिलीय - मानेषु सपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलायकोणकूणितको-कूयमानकुक्कुहेषु, गिरिसरित्सुरगागणेषु, रगत्कुरगच-वितखवदूर्वानिलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारण्डवशिखण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवाछ्या कूज-त्सु करजनिकुजपुजितकपिजलकपोतपोतकेषु वहति मनाडम्लानकोमलकुसुमकाशकोष्णामन्दमकरन्दविन्दूद् - गारिणि **तापी**तीरतरगस्पशसेव्ये मध्याह्नमरुति, श्रम-वशविलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु बहलतरुतलच्छायामा-श्रयन्तीषु सीदत्सैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठक पपाठ—

५४ और भी इस वक्त वह—

तुम्हारे दशसे आये कोमल वायु द्वारा रोमाचित
तुम्हारे रूपस अकित सुन्दर चित्रपट से दष्टिको सुखी करती
तुम्हारे नाम-अमतसे सिंचे कणपुटो युक्त तुम्हार मागकी ओग्के जगले
पर, एकान्तमे पचमगीतोसे गर्भित वाणी के साथ रात दिन रहती
है ॥३२॥

५५ इस प्रकार पुष्कराक्षसे अनुरागके अनुरूप शृगार (रस) के उपयुक्त, आदर योग्य, प्रियप्रेम कथा अनग प्रोत्साहक उत्कठाके अनुकूल आग्रह उचित कुतूहलजनक बात करत कानको कुतूहलित करनेवाले राजा अ य व्यापारोको छोड, (जब) त मयता अनुभव कर रहे थे जब मध्याह्न बलाके क्षण बूढे हो रहे थ सूयमण्डल आकाश-मध्यक पास हो तीव्र हो रहा था, पथपर घामकी असह्य तरगें गिर रही थी प्यासे व्याकुल चचल पुतलियो युक्त सास लते हिस्र जन्तु जलाशयोका अनुसरण कर रह थ, नदीके पासक वन में बिहार करने वाले गज सूअर भैंसे पकवाल तटोक कीचडको भुर्ता कर रहे थ, पक्षी वक्षोके कोटरोके कुटीरो नीडोक घरोमे पख बटोर छिपे थ तटके घोसलोक कोनमे सिमटे कुक्कुह पक्षी कू-कू कर रहे थे नदीक सुरगो के आगनमें कारडव और मोराकी मडलियो चल रही थी हरिन चर्बित छोटी दूबकी नलीक निम्न हरियालीवाले स्थलोमे रहनेके लिये घूम रहे थे करजके कुजामे एकत्र हो कपिजल और कबूतरके बच्चेके ठडे निवास की इच्छासे कूज रहे थे स्पर्शो सुखद स थोडे मुर्झाये कोमल कुसुम काशके उष्ण तीव्र मकरन्द बिदुओ क उगलनेवाला ताप्ती-तीरकी तरगके स्पशसे सुखद मध्याह्न वायु बह रहा था, परिश्रमके कारण चचल मदती नयनरूपी नीलकमलोवाली घने वृक्षोके नीचेकी छायामे आश्रय ले सैनिक स्त्रिया बैठी थी तब स्तुति पाठकने पढा—

(५) सेनावास —

५६ विचित्रा पत्रालीदलयति गलत्स्वेदसलिलैर्,
अमन्दं मृद्नाति प्रमदकरिकुम्भस्तनतटी ।
प्रबन्धेनाक्राम जनजघनजघोरुयुगल,
श्रम सेनागेषु प्रसरति शनै कामुक इव ॥२४॥

५७ अपि च—

कूजत्क्रौंच चटुलकुररद्वन्द्वमुन्नादिहस,
क्रीडत्क्रोड निपतितलतापुष्पकिंजल्कहारि ।
अस्या सान्द्रद्रुमवनतलश्रान्तसप्ताध्वनीन,
रोध सिन्धो स्थगयति भवत्सैनिकाना प्रयाणम् ॥२५॥"

५८ राजा तु तदाकर्ण्य 'बाहुक, बहूना बहुमतो बाहुल्यादिहैव वास, तद्वद सैनिकान्—अवतरत **तापी**तीरतरुलताश्रयान्, आश्रयत श्रमच्छिदच्छाया, कुरुत पटकुटी, कारयत कायमानानि, मुचताम दमदुशाद्वलेष्ववलान्वलीबदकान्, कूदयत कदमे महिषान, खादयत वेसरीभिर्वशकरीराकुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाहावसाने पृष्टावकीणपुलिनपकपासवो विहरतु स्ववश वशस्तम्बेषु स्तम्बेरमा, तम्बध्नेषु बध्नीत तीव्रवेगावेगसरान्, अवतरन्तु तापीतीरतरगेषु तुरगा, शिशिरतरगानिलान्दोलितविविधविकचमजरीजालजटिलेषूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु किनरमिथुनानि" इति सेनापतिमादिदेश ।

—उच्छ्वास ६

५ सेनाका पडाव—

५६ चूत पसीनेके जल द्वारा विचित्र पत्र-पक्तियोको दलन करता,
मस्त गजके कुभरूपी स्तनतटोको तीव्रताके साथ मदन करता,
लोगोके जघना जघो और दाना उरुओपर जोरसे आक्रमण करता,
कामुक की तरह यह श्रम धीरे धीरे सनाओ मे फैल रहा है ।।२४।।

५७ और भी —

कूजत क्रौचो मुखरित कुरर जोडियो उमत्त हसो
खेलते सूअरोवाली गिर लता-पुष्पोकी केसर-हारिका,
घने वक्षा वनलतामे शान्त सात मार्गोवाली
इस नदी की धार आपक सैनिकोक प्रयाणको स्थगित कर रही है ।।२५।।

५८ राजाने उसे सुनकर सेनापति को आदश दिया—हे बाहुक बहुलताके कारण बहुतोको पसद यहा ही निवास हो सो सैनिकोको कहो, कि ताप्तीके तीर के वक्षोके आश्रयोमें उतरा श्रम दूर करनवाली छायाआ का आश्रय लो तम्बुओको लगावो, झोपडियोको कराओ, निबल बैलोको हरियालियोमे छोडो कीचडमे भसोको कुदाओ, बेसरियोको बासके करीरोके अकुर खिलाओ क्रमसे ऊटोको चराओ नहानेके बाद पीठपर तटक पक धूलियोको बिखेरते हाथी स्वतत्रता-पूवक बासके जगलो मे बिहार करे, तीव्र गतिवाले घोडोको पेडोमे बाध दो। ताप्तीतीरके तरगोमे तुरग उतरे । किन्नर-जोडे ठडी तरगयुक्त वायु चालित फूली विविध मजरियोके जालोसे जटिल उत्फुल्ल लता वनोके मडपोमे मध्याह्न काल बितावे ।

—उच्छ्वास ६

४० क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

इनके पिताका नाम प्रकाशेन्द्र और दादाका नाम सिन्धु था। अभिनव गुप्त इनके साहित्य गुरु थे। यह कश्मीरके राजा अनन्त (१०२८ १०६३ ई०) और राजा कलश (१०७३ ८९ ई०) के कालमें हुए। "दशावतार चरित"को इन्होने लौकिक सवत्सर ४१ (१०६६ ई०) में समाप्त किया था। यह एक बडे ही धनाढच कुलमें पदा हुए थे, और बहुत ही उदार तथा विनोदप्रिय थे। यह सस्कृतके उन कवियोमें ह, जिन्होने अनेको बडे-बडे ग्रथ लिखे ह। इनके ग्रथ ह—(१) "रामायणमजरी", (२) "भारत मजरी", (३) "बृहत्कथामजरी", (४) "दशावतारचरित", (५)

१ सेव्यसेवकोपदेश

(१) सेवावृत्ति —

१ दर्पादेक परो लोभाद् द्वावन्धौ सेव्यसेवकौ ।
धनोष्मदन्यविकृती मुखे क कस्य पश्यति ॥२॥
२ दुर्वारमोहलोभान्धो यदि न स्यादय जन ।
क क्रूरक्रोधविधुर सहेत धनिना मुखम् ॥४॥
३ य पृथ्वीमपि दर्पान्धो न पश्यति पुर स्थिताम् ।
स दैन्यलघुता यात कथ सेवकमीक्षते ॥५॥
४ अगति वाहयत्येको बधिर स्तौति चापर ।
अहो जगति हास्याय निलज्जौ सेव्यसेवकौ ॥६॥
५ दूर हुकारमात्रेण विसृष्टो मागण सदा ।
गुणभ्रष्ट क्रियाहीनो नोद्वेग याति सेवक ॥७॥
६ मन्ये सुकृतिना तेन भागीरथ्या कृत तप ।
वैराग्यभागी रथ्या य सेवासु न विगाहते ॥८॥
७ कथितक्लेशवापेन शापेनेव विपाकिना ।
सेवातापेन पच्यन्ते न ह्यदुष्कृतिनो नरा ॥९॥

४० क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

"बोधिसत्वावदानकल्पलता", (६) "कलाविलास", (७) "चतुवर्गसंग्रह", (८) "चारुचर्या", (९) "नीतिकल्पतरू", (१०) "समयमातका", (११) "सेव्यसेवकोपदेश", (१२) "देशोपदेश"। पहले पाचो ग्रंथ बड़े-बड़े ह। "दशावतारचरित" काव्यकी दष्टिसे उत्कृष्ट ह। इनकी "बोधिसत्वावदानकल्पलता" का अनुवाद तिब्बती भाषामें मौजूद ह, और यही एक ऐसा काव्य ग्रंथ ह, जिसके संस्कृत मूलको भी वहा अनुवादके साथ सुरक्षित रक्खा गया ह। इन्हीको संस्कृतका एकमात्र विनोदी कवि कहा जा सकता ह। इन्होने क्लिष्ट भाषाका प्रयोग नहीं किया ह।

१ सेव्य-सेवकोपदेश

१ नौकरी—

१ एक दर्पस दूसरा लोभसे, दोनो स्वामी और सेवक अन्धे हैं।
किसके मुहपर धनकी गर्मी और दीनताका विकार वह नही देखता ॥२॥

२ दुर्निवार मोह और लोभसे अधा यदि यह जन नही होता,
तो कौन क्रूर क्रोधसे बिगड धनियोंके मुहको सहता ? ॥४॥

३ जो धनी दर्पसे अधा हो सामने अवस्थित पथिवीको भी नही देखता,
वह गरीबीकी तुच्छताको प्राप्त सेवकको कैसे देखेगा ॥५॥

४ एक अगति को ले जाता है और दूसरा बहरेकी तारीफ करता है।
अहो निर्लज्ज स्वामी और सेवक ससारमे हास्यके लिय हैं ॥६॥

५ दूरसे ही हुँकार करने मात्रस सदा मागण (मगता या वाण) छोडा जाता है। गुण (या प्रत्यचा) से भ्रष्ट क्रियाहीन सेवक उद्विग्न नही होता ॥७॥

६ म समझता हू उस पुण्यात्माने **भागीरथी**के किनारे तप किया है,
जो वह वैराग्यभागी हो रथ्या (सडक) पर सेवामें नही लगता ॥८॥

७ कहनेके क्लेशसे बोये शापकी तरह विपाक देनेवाले,
निष्पाप लोग सेवारूपी सतापमे नही मरते-पचते ॥९॥

८ अदैन्यपुण्यमनसा यशस्तेषा विराजते ।
सेवापककलकाना यैन पात्रीकृत शिर ॥१०॥
९ प्रभुप्रणामे जठर दैन्यमूल विलोकयन् ।
प्रवेष्टु सेवक पृथ्वी विलक्ष क्षितिमीक्षते ॥११॥
१० सेवाध्वजोऽजलिर्मूर्ध्नि हृदि दैन्य मुखे स्तुति ।
आशाग्रहगृहीताना कियतीय विडम्बना ॥१२॥
११ अकालागमनक्रोधविधुरेश्वरचक्षुषा ।
क्षिप्र स्मर इवायाति सेवको दग्धमूतिताम् ॥१३॥
१२ पुन सेवावमानाना तेन दत्त तिलोदकम् ।
प्रविश्य वाहिनी येन खड्गपात्रीकृत वपु ॥१४॥
१३ कणवृत्तिपरिक्लिष्ट क ट सेवकचातक ।
घनाशानिरतो नित्यमुद्ग्रीव परिशुष्यति ॥१५॥
१४ नि सन्तोष परित्यज्य भ्रमर पुष्पित वनम ।
सेवते दानलोभेन मातगमपि सेवक ॥१६॥
१५ जडसेवापरिक्लिष्टस्तीव्रदम्भवकव्रत ।
कृच्छ्रेण क्षणिका प्रीतिमासादयति सेवक ॥१७॥
१६ नित्यमुन्नतिकामोऽपि मानभगादधोमुख ।
यत् सत्यमुभयभ्रष्टस्त्रिशकुरिव सेवक ॥१८॥
१७ स्वमासविक्रयासक्त प्रभुवेतालघट्टित ।
नि सत्त्व प्रलय याति रात्रिसेवासु सेवक ॥१९॥
१८ भूमिशायी निराहार शीतवातातपक्षत ।
मुनिव्रतोऽपि नरकक्लेशमश्नाति सेवक ॥२०॥

८ अदरिद्रतारूपी पुण्यके मनवाले उन (पुरुषो) का यश विराजता है जिन्होने कि अपने सिरको सेवारूपी कीचडके कलकका पात्र नही बनाया ॥१०॥

९ प्रभुको प्रणाम करते समय दीनताका कारण पेटको समझ लज्जित हो सेवक पृथिवीमे घुस जानेके लिये पृथिवीको देखता है ॥११॥

१० सिरपर सेवारूपी पताका, जुडे हाथो हृदयपर मुखपर दीनता स्तुति आशारूपी भूत से पकडे हुये लोगोकी यह कितनी विडम्बना है ॥१२॥

११ असमय आये क्रोधसे बिगडी स्वामीकी आखोसे,
सेवक तुरन्त ही कामदेवकी तरह दग्ध-शरीर हो जाता है ॥१३॥

१२ फिर से सेवारूपी अपमानाको उसने तिलाजलि देदी
जिसने कि सेनामे प्रवेश करके अपने शरीरको तलवारका पात्र बनाया ॥१४॥

१३ दान दान की जीविकासे अतिदुखित सेवकरूपी चातक कष्ट से,
घनो की आशामे नित्य निरत हो ऊपर मुह उठाये सूखता है ॥१५॥

१४ सतोष-रहित हो भवरा फूले वनको छोडकर सेवक
मातग (गज या चाण्डाल) की भी दान (मद) के लोभसे सेवा करता है ॥१६॥

१५ जडोकी सेवासे दुखित, तीव्र दम्भ वाला बगला भगत
सेवक कठिनाईसे क्षण भरकी कृपा प्राप्त करता है ॥१७॥

१६ नित्य उन्नतिका इच्छुक भी मानके भयसे मुह नीचा किये
जो सचमुच ही त्रिशकुकी तरह सेवक दोनो ओर से भ्रष्ट है ॥१८॥

१७ अपने मासके बेचनेमे लगा, प्रभुरूपी पिशाच द्वारा पिटता,
सेवक निर्जीव हो रातकी सेवकाइयोमे नष्ट होता है ॥१९॥

१८ भूमिपर सोनेवाला, भूखा, सर्दी-गर्मी और हवासे पीडित,
मुनिके व्रतवाला भी सेवक नर्कके क्लेश भोगता है ॥२०॥

१९ करोति सेवक सेवा तावदाशामिवायताम् ।
यावद् भोगरसज्ञेन यौवनेन वियुज्जते ॥२१॥

२० चक्षुर्द्वार्यंजलौ पाणि स्तुतौ जिह्वा नतौ शिर ।
अहो नु सेवकै काय परोपकरणीकृत ॥२२॥

२१ हन्त, याचावमानेन सेवको लघुता गत ।
सेवापकपदे मग्नो यदन्विष्टो न लभ्यते ॥२३॥

२२ अविश्रान्त्या विरक्तस्य दीर्घोच्छ्वासेन शुष्यत ।
जरेव दु सहा जन्तो सेवा सकोचकारिणी ॥२४॥

२३ त्रुट्यति क्लिन्नतन्त्रीव मालेव म्लायति क्षणात् ।
सेवा नारञ्चयत्येव दिनच्छेदेन नश्यति ॥२५॥

२४ सेवासक्षपितागाना राजरथ्यासु शुष्यताम् ।
तीव्रतृष्णाविषार्ताना शरण शमवारिद ॥२६॥

२ कलाविलास

(१)वणिक्—

२५ लोभ सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्य सवतो भय दष्टम् ।
कार्याकायविचारो लोभाकृष्टस्य नास्त्येव ॥१॥

२६ मायाविनिमयविभ्रमनिह्नववैचित्र्यकूटकपटानाम् ।
सचयदुगपिशाच सवहरो मूलकारण लोभ ॥२॥

२७ सत्त्वप्रशमतपोभि सत्वधनै शास्त्रवेदिभिर्विजित ।
लोभो वटप्रविष्ट कुटिल हृदय किराटानाम् ॥३॥

२८ क्रयविक्रयकूटतुलालाघवनिक्षेपरक्षणव्याजै ।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति मुदा जन वणिज ॥४॥

१९ सेवक तब तक लम्बी आशासे सवा करता है
जब तक कि भोग-रसकी जानकार तरुणाईस वह वियुक्त नही हो जाता ।।२१।।

२० आखे दरवाजेपर हाथ अजुलियोमे जिह्वा स्तुतिमें सिर नमस्कारमें लगा। अहो सवकोने अपनी कायाको परोपकारके लिये बना दिया ।।२२।।

२१ हन्त मागनक अपमानस सवक हलका बन
सवारूपी कीचडमें (ऐसा) डूबा है कि खोजनेपर भी नही मिलता ।।२३।।

२२ विश्राम न लनेस विरक्त, लम्बी साससे सूखता
बुढापेकी तरह प्राणियोके लिये सकोच करनवाली सेवा दुस्सह है ।।२४।।

२३ सेवा गीली वीणाकी तरह टूटती है क्षण भरमे मालाकी तरह मुरझा जाती है। वह जुडती नही, दिनके बीतने से नष्ट हो जाती है ।।२५।।

२४ सेवामे क्षीण अगवाला सडक पर सूखतो
तष्णारूपी तीव्र विषस पीडितोक लिय शान्तिरूपी मेघ शरण है ।।२६।।

२ कला-विलास

१ बनिया——

२५ लोभका सदा ख्याल रखना चाहिये लोभियो से सब तरफ से भय दीखता है। लोभमे पडेको कतव्य अकतव्यका विचार नही होता ।।१।।

२६ मायारूपी विनिमयका भ्रम छिपाना, विमनस्कता-कूट और कपटोका मूल कारण, सचयरूपी दुगका पिशाच सबका हरणकर्त्ता लोभ है ।।२।।

२७ शान्ति और तपस्यावाले सत्वक धनी शास्त्रज्ञोस पराजित,
लोभ, कजूसोके कुटिल हृदयरूपी बरगदमे घुस गया है ।।३।।

२८ खरीद बेच, झूठी तराजू चालाकी जोगाना, रक्षण और सूद द्वारा
दिनके चोर ये बनिये खुश हो लोगोको लूटते हैं ।।४।।

२९ हृत्वा धन जनाना दिनमखिल विविधकूटमायाभि ।
वितरति गृहे किराट कष्टेन वराटकत्रितयम् ॥५॥

३० आर्यायिकानुरागी ब्रजति सदा पुण्यपुस्तक श्रोतुम् ।
दष्ट इव कृष्णसर्पै पलायते दानधर्मेभ्य ॥६॥

३१ द्वादश्या पितृदिवसे सक्रमणे सोमसूर्ययोग्रहणे ।
सुचिर स्नान कुरते न ददाति कर्पदिकामेकाम् ॥७॥

३२ दत्वा दिशि दिशि दृष्टि याचकचकितोऽवगुण्ठन कृत्वा ।
चौर इव कुटिलचारी पलायते विकटरथ्याभि ॥८॥

३३ न ददाति प्रतिवचन विक्रयकाले शठो वणिग् मनी ।
नि क्षेपपाणिपुरुष दृष्ट्वा सभाषण कुरुते ॥९॥

३४ उत्तिष्ठति नमति वणिक्पृच्छति कुशल ददाति च स्थानम् ।
नि क्षेपपाणि पुरुष दृष्ट्वा धर्म्या कथा कुरुत ॥१०॥

३५ कश्चिद्वदति तमेत्य द्रविण नि क्षिप्य "हन्त, ग तास्मि" ।
"भ्रात, पर प्रभाते विष्टिदिन कि करोम्यद्य ॥११॥

३६ तच्छ्रुत्वा विकसितदग्वदति स मिथ्यैव नाटयखेदम् ।
कार्ये प्रसारिताक्ष पुन पुन पार्श्वमवलोक्य ॥१२॥

३७ "त्वदधीन स्थानमिद कि तु चिर न्यासपालन कठिनम् ।
विषमौ च देशकालौ साधोस्तव तदपि दासोऽहम् ॥१३॥

३८ भद्रा न दूषितैषा नि क्षेपक्षेमकारिणी शस्ता ।
इत्यनुभूत बहुश कायज्ञैस्त्व तु जानासि ॥१४॥

३९ विष्टिदिने किमपि पुरा न्यस्त केनापि मित्रेण ।
तूर्ण पुनश्च शनकैर्नीत क्षेमेण कुशलेन ॥१५॥

२९ सार दिन नाना प्रकारकी धोखा धडियोसे लोगोके धनको हरण कर
कजूस घरमे मुश्किलस तीन कौडी खच करता हे ।।५।।।

३० वह कहानीक प्रेम स सदा वम पुस्तक सुननेके लिय जाता है, (पर)
काल साप स डम की तरह दान और धमसे भागता है ।।६।।

३१ वह द्वादशीको श्राद्धक दिन सक्रान्ति और च द्र-सूयके ग्रहणोमें
देर तक स्नान करता है पर दान एक कौडी नही देता ।।७।।

३२ कुटिल-आचारी (बनिया) हरक दिशा की ओर नजर डालकर याचकस
मुह छिपा चकित हो चोरकी तरह विकट सडकसे भागता है ।।८।

३३ बचनक समय शठ मौन बनिया जवाब नही दता।
दनके लिय हाथ उठाय पुरुषको दखकर वह बातचीत करता है ।।९।।

३४ बनिया आदराथ उठता नमस्कार करता कुशल पूछता बैठने
क लिय स्थान दता है। धरोहर सहित हाथवाल पुरुषको देखकर
धार्मिक कथा कहता है ।।१०।।

३५ कोई उसके पास आकर धन धरोहर रखकर कहता है "जाऊगा ।
'हे भाई सबर बगारका दिन है आज क्या करू ।।११।।

३६ सो सुनकर प्रफुल्लित आखवाला झूठ ही खेदका अभिनय करते
काममे आखोको फैलाय बार बार बगल झाकत बनिया बोलता है।
।।१२।।

३७ "यह स्थान तुम्हारा है लकिन धरोहरको देर तक रखना कठिन है।
हे साधु देश और काल बुरा है, तो भी मैं तेरा दास हू" ।।१३।।

३८ यह भद्रा (नक्षत्र) दोषयुक्त नही, बल्कि धरोहरके लिये क्षेमकारिणी
कही गई है। कामके जानकारोने यह बहुत बार देखा है, तुम नही
जानते ।।१४।।

३९ पहले किसी मित्रने ही विशिष्ट दिन कुछ धरोहर रक्खी।
और जल्दी फिर चुपके (उसे) क्षेम-कुशलक साथ ले गया ।।१५।।

४० इत्यादि मुग्धबुद्धेरसमजसवणन रह कृत्वा।
गृह्णाति कनकनिकर नृत्यस्तत्तन्मनोरथै पाप ।।१६।।
४१ तत्सचूर्णनजातै क्रयविक्रयलाभराशिभिरनन्तै ।
भाण्डप्रतिभाण्डचयैरुपहसति धनाधिनाथ स ।।१७।।
४२ पूर्णा कदयवणिजा नि सभोगा निधानधनकुम्भा ।
सीदन्ति कुचतटा इव दु खफला बालविधवानाम् ।।१८।।
४३ दानोपभोगविरहितहिरण्यरक्षाकृतक्षणा सततम् ।
ससारजीणमन्दिरविषममहामूषका वणिज ।।१९।।
—सर्ग २

(२) **कायस्थ —**

४४ मोहो नाम जनाना सवहरो हरति बुद्धिमेवादौ।
गूढतर स च निवसति कायस्थाना मुखे च लेखे च ।।१।।
४५ चन्द्रकला इव पूर्णा निष्पन्ना सस्यसपत्ति ।
ग्रस्ता क्षणेन दृष्ट्वा नि शेषा दिविरराहुकलयैव ।।२।।
४६ ज्ञाता ससारकला योगिभिरपयातसमोहै
ज्ञाता दिविरकला न केनापि बहुप्रयत्नेन ।।३।।
४७ कूटकलाशतशिबिरैजनधनविवरै क्षयक्षपातिमिरै ।
दिविरैरेव समस्ता ग्रस्ता जनता न कालेन ।।४।।
४८ एते हि कालपुरुषा पृथुदण्डनिपातहतलोका ।
गणनागणनपिशाचाश्चरन्ति भूजध्वजा लोके ।।५।।
४९ कस्तेषा विश्वास यममहिषविषाणकोटिकुटिलानाम् ।
व्रजति न यस्य विषाक्त कण्ठे पाश कृतान्तस्य ।।६।।

४० इत्यादि मूढ बुद्धिवालेसे एकान्त मे असबद्ध बाते करते,
पापी बनिया नाना मनोरथाक साथ नाचता सुवण-समूहको हरता हे ।।१६।।
४१ उनके पीसनेस उत्पन्न क्रय विक्रयके लाभ की राशिसे
और क्रेय विक्रय अनत वस्तु-समूहोम वह कुबेरका भी उपहास करता है ।।१७।।
४२ कजूस बनियोक बिना भोगे खजानोक धनोसे भरे घडे,
बाल विधवाओके दु खदायक स्तन-तटोकी तरह (यो ही) पडे रहत है ।।१८।।
४३ दान और उपभोगस रहित सुवणकी रक्षाथ समय दिय
बनिये सदा ससाररूपी पुरान मन्दिरक दुष्ट चूह हैं ।।१९।।

२ कायस्थ—

४४ लोगोका सर्वापहारक मोह पहले बुद्धिको ही हरता है
पर वह कायस्थोके मुह और लखमे छिपकर रहता है ।।१।।
४५ चन्द्रमाकी कलाकी तरह पूण खेती तैयार हुई पर वह
सारी देखकर क्षण भरमे कायस्थरूपी राहुकी कलासे ग्रस ली गई ।।२ ।।
४६ मोह रहित योगियाने ससारकी कलाये जान ली
लेकिन किसीन बहुत प्रयत्न करके भी **कायस्थ**की कलाको नही जाना ।।३।।
४७ जालसाजीकी सैकडो कलाके शिविरवाले, जनोक धनके गडढे,नाशकी
रातके अधकार कायस्थोने ही सारी जनताको ग्रसा कालने नही ।।४।।
४८ ये ही मोटे डडसे पीट लोगोको मार डालनवाल काल पुरुप है,
जो हिसाबी भोजपत्र (पुर्जी) की पताका लिये ये किसानोके बीच विचरते हैं ।।५।।
४९ यमराजके भैंसके सिरकी नोककी तरह कुटिल इन कायस्थोका क्या
विश्वास है जिनके कठमे मत्यु देवताका फदा नही पडता ।।६।।

५० कलमाग्रनिगतमसीबिन्दुव्याजेन साजनाश्रुकणै ।
कायस्थैर्लुण्ठ्यमाना रोदिति खिन्नेव राज्यश्री ॥७॥

५१ अकन्यासैर्विषमैर्मायावनितालकावलीकुटिलै ।
को नाम जगति चरितै कायस्थैर्मोहितो न जन ॥८॥

५२ मायाप्रपचसचयवचितविश्वैर्विनाशित सततम ।
विषयग्रामग्रासै कायस्थैरिन्द्रियैर्लोक ॥९॥

५३ कुटिला लिपिविन्यासा दृश्यन्ते कालपाशसकाशा ।
कायस्थभूजशिखरे मण्डललीना इव व्याला ॥१०॥

५४ एते हि चित्रगुप्ताश्चित्रधियो गुप्तकारिणो दिविरा ।
रेखामात्रविनाशात्सहित कुर्वन्ति ये रहितम् ॥११॥

५५ लोके कला प्रसिद्धा स्वल्पतरा सचरन्ति दिविराणाम् ।
गूढकला किल तेषा जानाति कलि कृतान्तो वा ॥१२॥

५६ वक्रलिपि यासकला सकलाकनिमीलनकला च ।
सततप्रवेशसग्रहलोककला व्ययविवधनकला च ॥१३॥

५७ ग्राह्यपरिच्छेदकला देयधनादानकारणकला च ।
शेषस्य विवेककला सकलितराशिसवभक्षणकला च ॥१४॥

५८ उत्पन्नगोपनकला नष्टविशीणप्रदशनकला च ।
क्रयमाणैभरणकला योजनचर्यादिभि क्षयकला च ॥१५॥

५९ नि शेषभूजदाहादागमनाशश्च पयन्ते ।
येन विना धनहारी भूजग्रहणे निरालोक ॥१६॥

६० सकलकस्य क्षयिणो नवनवरूपस्य वृद्धिभाजश्च ।
दिविरस्य कला कुटिला षोडश दोषाकरस्यैता ॥१७॥

५० कमलके कोरसे निकली स्याहीके बिंदुक बहाने अजनयुक्त (अपने) अश्रुबिन्दुओसे कायस्थो द्वारा लूटी जाती राजलक्ष्मी मानो खिन्न होकर रो रही ॥७॥

५१ मायारूपी बनिताकी अलकोकी तरह कुटिल बुर अकोक रखनेसे, कौन आदमी जगत मे **कायस्थोक** आचरणस मोहित नही हुआ ॥८॥

५२ माया प्रपचसे-सचयस ससारको वचित करनेवाल विषय-समूहके ग्रासको कायस्थो (शरीरस्थ इन्द्रिया) न लोकका नाश किया ॥९॥

५३ कालक फदेक सदश कुटिल अक्षरोका लखन दिखाइ दता है। कायस्थके पुर्जे क शिखरपर मानो कुडली मार साप वैठे है ॥१०॥

५४ य दिविर (कायस्थ) गुप्तकर्मा विचित्र बुद्धिवाले **चित्रगुप्त** है जो रेखाक मिटान मात्रस सहित को रहित कर दत है ॥११॥

५५ कायस्थोकी कलाये ससारमे अति अल्प ही प्रसिद्ध हो चालू है उनकी गुप्त कलाओका **कलियुग** जानता ह या **यमराज** ॥१२॥

५६ कुटिल लिपि लिखनेकी कला और सार अकोक पोछनकी कला, निरतर प्रवश और सग्रहकी लोक-कला और खच बढानेकी कला॥१३॥

५७ ग्राह्य वस्तुके काटनेकी कला देह-धनके लेनेकी कला बाकीके विवककी कला, जमा की राशिक बिल्कुल खा जानेकी कला और ॥१४॥

५८ पैदाइशक छिपानकी कला नष्टको बिखर दिखलानेकी कला, खरीदे के भरनेकी कला जोडनके काम आदि मे घटानेकी कला और ॥१५॥

५९ सारी चिटठियो के जलानेसे अन्तमे आमदनी का नाश कर देना और जिसके बिना धन हरने वाल भूज (चिटठी) के अधेरे मे लेना ॥१६॥

६० कलकयुक्त क्षीण होत नये-नय रूप की और बढनेवाली, चन्द्रमा की यह सोलह कुटिल कलाये कायस्थ होती है ॥१७॥

६१ कूटस्था कायस्था सवनकारेण सिद्धमन्त्रेण।
गुरव इव विदितमाया वत्तिच्छेद क्षणेन कुर्वन्ति ॥१८॥
—सर्ग ६

(३) **गायना —**

६२ अर्थो नाम जनाना जीवितमखिलक्रियाकलापस्य।
तमपि हरन्त्यतिधूर्ता श्लक्ष्णगला गायना लोके ॥१॥
६३ नि शेष कमलाकरकोष जग्ध्वापि कुमुदमास्व।
क्षीणा गायनभृगा मातगप्रणयता यान्ति ॥२॥
६४ घटपटशकटस्कन्धा बहुडिम्भा मुक्तकेशककलापा।
एते योनिपिशाचा भूपभुजो गायना लोके ॥३॥
६५ तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति सत्रस्त।
गायनचौर प्रकट हाहाकृत्वैव हरति सवस्वम् ॥४॥
६६ पापाधधर्निनिगमसा धाधामामासमासगाधामा।
कृत्वा स्वरपदपाली गायनधूर्ताश्चरन्त्येते ॥५॥
६७ कुटिलावतभ्रान्तैर्वेषविकारैश्च मुखविकारैश्च।
गायति गायनसघो मदलहस्तश्चिर मौनी ॥६॥
६८ आमन्त्रणजयशब्दै प्रतिपदहुकारघघरारावै।
स्वयमुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ॥७॥
६९ जलपतिते सक्तुकणे मत्स्यैर्भुक्तेऽस्ति कापि धर्माप्ति।
गायनदत्तासु पर कोटिष्वपि नास्ति फललेश ॥८॥
७० मुग्धधनाना विधिना रुद्धानामन्धकूपकोषेषु।
विहितो विवृतमहास्यो गायननामा प्रणालौघ ॥९॥

६१ जाल्साज कायस्थ सवत्र नकार रूपी सिद्ध-मत्र से माया जानने वाल गुरुओ की तरह क्षणमे जीविका नाश कर देते है ॥१८॥

—सग ६

३ गायन उस्ताद—

६२ लोगोके सारे क्रिया-कलापा का प्राण धन है। उसे ससार मे अच्छे गलवाल महा धूत गायक हर लेते है ॥१॥

६३ सारे कमलाकर (कमल या लक्ष्मी समूह) कुमुद (बुरे आमोद) को खाकर भी क्षीण हुए गायक रूपी भवरे मातगो (मतवालो) का प्रम पात है ॥२॥

६४ घडा-वस्त्र गाडियो बहु न बच्चो खुले केश कलापो वाले, ये जन्म से पिशाच गायक ससार मे राजाओ के भक्षक है ॥३॥

६५ अधकार मे वेचारा चोर हाहाकार के साथ डरता हुआ चुराने जाता है। गायक रूपी चोर खुल्लमखुल्ला हा हा करके ही सवस्व हरण करता ह ॥४॥

६६ पा पा-ध ध नी नी ग म-सा धा ध मा मा स मा गा धा-मा स्वर पदोकी पक्ति कहते य धूत गायक विचर रहे है ॥५॥

६७ कुटिल चक्कर से घूमत भेस और मुहके विकारोके साथ मादल हाथमें लिए मौन हो गायक-सघ देर तक गाता है ॥६॥

६८ सम्बोधन मे 'जय शब्द एक एक पद पर हॅकार और घर घर ध्वनियोसे अपने कहे साधुवादो द्वारा गीतको गायक व्यवधानित करता ह ॥७॥

६९ जलमे गिराये सत्तूके कनके मे मछलियो के खानेसे कुछ धम मिल सकता ह लेकिन गायको को दिये करोडो का भी लेश मात्र फल नही है ॥८॥

७० अधरे कूयके खजानो मे मूढो के छिपाये धनोके लिये ब्रह्माने खुले महामुहवाला गायक नामक भारी पनाला बना दिया ॥९॥

७१ नैतत्प्रकटितदशना गायनधूर्ता सदैव गायन्ति।
एते गतानुगतिकान्हसन्ति धूर्ता गृहीतार्थान् ॥१०॥

७२ प्रातर्गायनधूर्ता भवन्ति धीरा सहारकेयूरा।
मध्याह्ने द्यूतजिता नग्ना भग्ना निराधारा ॥११॥

७३ स्तुतिवागुरा निबद्धैर्वचनशरै कपटकूटरचनाभि।
गीतैर्गायनलुब्धा मुग्धमगाणा हरन्ति सवस्वम् ॥१२॥

७४ नष्टस्वरपदगीतै क्षणेन लक्षाणि गायनो लब्ध्वा।
"दास्या सुतेन दत्त किमिति" वदन्दु खितो याति ॥१३॥

७५ वर्जितसाधुद्विजवरवृद्धाया सकलशोककलिताया।
शापोऽयमेव लक्ष्म्या गायनभोज्यैव यत्सततम् ॥१४॥

७६ देव पुरा सुराणामधिनाथो नारद चिरायातम्।
पप्रच्छ लोकवृत्त महीतले भूमिपालानाम् ॥१५॥

७७ सोऽवदद‌वनिपतीना जयिना बहुदानधमयज्ञानाम्।
चरता मया नृलोके सुरपतियोग्या श्रियो दष्टा ॥१६॥

७८ ते तु त्वा स्पधन्ते विभववरुण धनाधिनाथ च।
शतमखसज्ञामसकृद्बहुतरयज्ञा हसन्त्येव ॥१७॥

७९ श्रुत्वा तन्मुनिवचन जातद्वेष शतक्रतु कोपात्।
हर्तुं धन पिशाचान्विससज भुव नरेन्द्राणाम् ॥१८॥

८० ते गीतनाममन्त्रा सुरपतिदिष्टा पिशाचसघाता।
हर्तुं सकलनपाणा धनमखिल भूतल प्रययु ॥१९॥

८१ मायादास प्रथम डम्बरदासश्च वज्रदासश्च।
क्षयदासलुण्ठदासौ स्वरहरदास प्रसिद्धदासश्च ॥२०॥

७१ य गायक दात दिखलाते मदा गाते नही है वल्कि ये धूत गता-नुगतिक धन देने वालो का उपहास करत ह ।।१०।।

७२ धूत गायक सवेरे हार और केयूर के सहित धीर बने रहते है दोपहर को जूय मे (सब) हार नग्न भग्न और निराधार होते है ।।११।।

७३ स्तुतिरूपी जालमे बधी वचन बाणोवाली कपट और कूट की रच नाआ युक्त गीतोसे गायक शिकारी मूढ रूपी मगोके सवस्व को हरण करत है ।।१२।।

७४ नष्ट स्वर पदोवाली गीतासे क्षण भरमे लाखो पाकर 'दामीके बटने क्या दिया यह कहते दुखित हो वहा से जाते है ।।१३।।

७५ साधु द्विजवरो और वद्धो को त्यागनेवाली सारे शोकोसे युक्त लक्ष्मी के लिय यही शाप है जो कि वह निरन्तर गायकोके उपभोग के लिय है ।।१४।।

७६ देवताओ के नाथ इद्र देवने देर से आय नारद से ससार मे भूपति योके लोक-वत्तान्त के बारे मे पूछा ।।१५।।

७७ उन्होन कहा— मैने मनुष्य लोक मे विचरते बहुत दान धम यज्ञवाले विजयी भूमिपतियो की इद्र योग्य लक्ष्मियोको देखा ।।१६।।

७८ व वैभव मे तुम्हारी वरुण और कुबेर की स्पर्धा करते है शतक्रतु (इद्र) के नाम पर अनेक बार बहुत से यज्ञ करने वालो पर हँसते है' ।।१७।।

७९ मुनिके उस वचन को सुनकर द्वष उत्पन्न कर कुपित हो इद्रने नरेद्रो के धनको हरने के लिय पथिवी पर पिशाचोको भेज दिया ।।१८।।

८० वे (ही) गीत नामक मत्रवाले पिशाचोके समूह इद्रके आदेश से सारे राजाओके सब धन को हरने के लिये भूतलपर गये ।।१९।।

८१ जिनके नाम है पहले मायादास और डम्बरदास और वज्रदास क्षयदास और लठदास स्वरहरदास और प्रसिद्धदास ।।२०।।

८२ वाडवदासश्चाष्टौ ते गत्वा मर्त्यलोकमतिभयदा ।
विवृतास्यघोरकुहरा गायनसृष्टिं ससर्जुरतिविकटाम् ।२१।

८३ यैरेतैर्हृतविभवा दिशि दिशि हृतसकललोकसर्वस्वा ।
यज्ञादिषु भूपतयो जाता शिथिलोद्यमा सर्वे ॥२२॥

८४ एतेऽपि कर्णविवरैः प्रविश्य गीतच्छलेन भूपानाम् ।
सहसा हरन्ति हृदयं कणपिशाचा महाघोरा ॥२३॥

८५ तस्मादेषां राष्ट्रे न ददाति विकारिणां प्रवेशं यः ।
तस्य सकलार्थसंपद्यज्ञवती भूमिराधीना ॥२४॥

८६ नटनर्तकचक्रचरा कुशीलवाश्चारणा विटाश्चैव ।
ऐश्वर्यशालिशल्भाश्चरन्ति तेभ्यः श्रियं रक्षेत् ॥२५॥

८७ गायनसंघस्यैक्यादुत्तिष्ठति गीतनिःस्वनः सुमहान् ।
अस्थाने दत्ताया लक्ष्म्या इव संभ्रमाक्रन्दः ॥२६॥

—सर्ग ७

३ देशोपदेश

८८ देवो जयति हेरम्बः स्वदन्तबिसखेलनैः ।
यस्योच्चैस्तत्प्रभाः शुभ्रा हसन्तीव दिशो दश ॥१॥

८९ जयन्ति वेश्या व्यसनाभ्रविद्युतो,
जयन्ति कौटिल्यकला नटा विटाः ।
जयत्यजस्रं जनवक्षपातिनी
प्रकृष्टमायातटिनी च कुट्टनी ॥२॥

९० ये दम्भमायामयदोषलेश-
लिप्ता न मे तान्प्रति कोऽपि यत्नः ।

८२ बाडवदास—वे आठो मत्यु लोकमे जाकर अत्यन्त भयदायक हुये। खुले मुहरूपी घोर गडढेवाले गायकोकी अति विकट सष्टि उ होन बनाई ।।२१।।

८३ इनके द्वारा विभव लुटे सारे लोकके सवस्वहारे हरेक दिशामे, सभी भूपति यज्ञ आदि के करनेमे शिथिल हुय ।।२२।।

८४ गीतके बहानेसे राजाओके कण विवरमे घुसकर
ये महाघोर कण पिशाच तुरन्त हृदयको हर लेते ह ।।२३।।

८५ इसलिये इन बिगाडुओको जो राष्ट्रमे प्रविष्ट होन नही देता
उसके अधीन सारी अथ-सपत्ति यज्ञवाली भूमि होती है ।।२४।।

८६ नट, नतक चक्रचर अभिनेता बदीजन और भडये (ये)
एश्यशाली टिड्डी विचर रही है, उनसे लक्ष्मीकी रक्षा करे ।।२५।।

८७ गायन-समूहोकी एकतासे गीतकी (जो) अति महान ध्वनि उठती है,
अयुक्त स्थानमे दी गई लक्ष्मीका मानो वह भयसे क्रन्दन है ।।२६।।

—सग ७

३ देशोपदेश

८८ अपने दत रूपी भसीडके साथ खेलनेवाले खलोके साथ गणेशदेवकी जय है जिसकी वह (शुभ्र) प्रभाये मानो दसो दिशाओको अट्टहास कर रही है ।।१।।

८९ व्यसनरूपी मेघकी बिजलियो-वेश्याओकी जय है।
कौटिल्यकी कलाके अभिनय करनेवाले वेश्या लपटोकी जय है।
निरन्तर जनरूपी वक्षोको गिरानेवाले
भारी मायारूपी नदी और कुटनीकी जय है ।।२।।

९० जो दभ मायामय दोषोसे अत्यन्त लिप्त ह,
उनके लिये मेरा कोई प्रयास नही है।

किन्त्वेष हासव्यपदेशयुक्तया,
देशोपदेश क्रियते मयाद्य ॥३॥

९१ उपहासेन लज्जितोऽत्यन्त न दोषेषु प्रवतते।
जनस्तदुपकाराय ममाय स्वयमुद्यम ॥४॥

(१) खल –

९२ सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥५॥

९३ सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
वृत्तिच्छेदकृताभ्यास खलो निर्वाणदीक्षित ॥६॥

९४ खल सुजनपैशुन्ये सवतोऽक्षिशिरोमुख
सवत श्रुतिमान लोके सवमावृत्य तिष्ठति ॥९॥

९५ खलो वक्त्येव सवस्य दोष वक्ति खलस्य क ।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ॥१५॥

९६ खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे, क्व गमिष्यसि ॥१७॥

९७ गुणान् स्तौतीत्यसम्बद्ध स्निह्यतीत्यसमजसम्।
ददातीति विरुद्धार्थ खलो हन्तीति नानृतम् ॥२१॥

—उपदेश १

(२) कदय –

९८ थूत्कृतस्य जनैर्नित्य निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दशनम् ॥४॥

यह व्यग कथनके बहाने
मैं आज देशके ल्यिे उपदेश कर रहा हू ।।३।।

९१ परिहाससे अत्यत लज्जित होकर आदमी दोपमे प्रवत्त नही होता,
उमी उपकारके लिय यह मेरा अपना परिश्रम हे ।।४।।

१ खल-वणन—

९२ हमेशा खडनके योग्य और भूसा भरे अतरवाले
वहुत बीजवाले खल (या खलिहान) और ओखलका नमस्कार हो ।।५।।

९३ शत्रु और मित्रमे एक समान और वसे ही मान-अपमानमे भी,
निराहार मे अभ्यस्त खल निर्वाणकी दीक्षा ले चुका है ।।६।।

९४ सुजनोकी चुगली करनेमे सवत्र आख सिर-मुखवाला सवत्र
कानोवाला खल लोकमे सबको व्याप्न कर स्थित है ।।१०।।

९५ खल सबके दोषको कहता है खलका कौन कहता है ?
मलिन वस्त्रवालेके दोषको कब कोई विचारता है ।।१५।।

९६ धनमत्त, नीच प्रभावशाली अधिकारप्राप्त
चुगलखोर खलसे भाग कर हा जनता, तू कहा जायगी ।।१७।।

९७ गुणाकी तारीफ करता है यह गलत है स्नह करता है यह हो नही सकता देता है यह उलटी बात है। (हा) खल मारता है यह झूठ नही है ।।२१।।

—उपदेश १

२ कजूस—

९८ लोग सदा उसे थूकते है, रातको भी उसे नीद नही।
उल्लू जसे कजूसका दशन मगलकारक नही होता ।।४।।

९९ धन भूमिगृह दारा सवथा जन्मसचितम्।
पराथमेव पयन्ते कदयस्य जिनस्य च ॥६॥

१०० सहस्राक्षस्तृणतुषे वज्रहस्तो गृहव्यये।
अशनाच्छादनच्छेदात्कदय पाकशासन ॥७॥

१०१ नीरसस्य कदयस्य माधुर्य वचने कथम्।
गृहे लवणहीनस्य लावण्य वदने कुत ॥८॥

१०२ कदयश्चर्मवसनो रुक्षोऽस्नानात्सदा जटी।
मलेन श्यामलगल शूली विलवणाशनात् ॥९॥

१०३ कोऽन्य कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
नाश्नात्यदत्वा योऽर्थिभ्यो गले हस्त गहेऽगलम् ॥१२॥

१०४ पटी पितामहक्रीता तत्पर्वाप्तिश्च शाटक ।
दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य क्षीयते न युगैरपि ॥१४॥

१०५ दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य त्यक्तपुण्यदिनस्थिते ।
अदृष्टलवणा भार्या प्रातिवेश्यैर्निमन्त्र्यते ॥१५॥

१०६ मुष्टिमानेन दत्वापि लुब्धो धान्य गृहव्यये।
मृतो मुष्टि समादाय क्लेशमूल्य न गच्छति ॥१६॥

१०७ कदय स्वजन दृष्ट्वा यदृच्छोपनत गृहे।
करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ॥१८॥

१०८ कदय कुशलप्रश्न न करोति शृणोति वा।
अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद् भोजनशकया ॥१९॥

१०९ जीवत सञ्चिताद्यस्य न निर्याति कपर्दिका।
म्रियमाणस्य तस्यैव सकृत्सर्व प्रयाति च ॥२२॥

९९ धन भूमि, घर स्त्री जन्म भरका संचित सब कुछ
कंजूस और वृद्धका अन्तमे दूसरेके लिय ही है ।।६।।

१०० घास भूसेके खर्चेमे हजार आंखोवाला घरके खर्चेमें मुट्ठीबांधे,
और असन वसनके छेदन करनेमे कंजूस इन्द्र समान है ।।७।।

१०१ नीरस कंजूसके वचनमे मधुरता कैसे हो सकती है ?
लवणहीनके घरमे मुखमे लावण्य कहासे ।।८।।

१०२ कंजूस, चमडा पहननेवाला रूखा, न-नहानेसे सदा जटाधारी,
मैलसे काले कंठवाला बिना लवणके खानेसे शंकर है ।।९।।

१०३ संसारमे कंजूसके समान कौन दूसरा दाता पैदा हुआ,
जो कि याचकोके गलेमे हाथ और घरमे अगला दिये बिना खाना
नही खाता ।।१२।।

१०४ दादाकी खरीदी धोती और उससे भी पहले मिला शाटक,
दिव्य वस्त्रधारी कंजूसके लिये युगो तक भी क्षीण नही होता ।।१४।।

१०५ उत्सव रहित त्योहार छोड कंजूसकी,
आंखसे नमक न देख पत्नीको पडोसी न्योतते है ।।१५।।

१०६ कंजूस घरके खर्चेके लिये अनाजको मुट्ठीसे नापके देकर भी,
मुट्ठी के लिय मरकर हुये क्लेशके मूल्यको नही पाता ।।१६।।

१०७ कंजूस अकस्मात घरपर आय स्वजनको देखकर,
गृहिणीसे कलहके बहाने अनशन व्रत कर लेता है ।।१८।।

१०८ पीछे भोजन देनेके डरसे कंजूस शामको अभ्यागतसे
न कुशल प्रश्न करता, न सुनता है ।।१९।।

१०९ जीते जी जिसके संचित धनमेंसे एक कौडी नही बाहर जाती,
मरते हुये उसीका सब एक ही बार चला जाता है ।।२२।।

११० नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्य च शाठय क्रौयमनाजवम् ।
कृतविस्मरण यच्च तत्कदयस्य लक्षणम् ॥२६॥

१११ अचुल्लीपाकमस्मेरमसुख निजनञ्च यत् ।
यदुत्सवकथाहीन तत्कदयगह विदु ॥२८॥

११२ नृत्यत्यवृष्टिषु पुरा ह्यतिवष्टिषु नृत्यति ।
दुर्भिक्षोपप्लवाकाक्षी कदर्यो धान्यगौरवात् ॥३४॥

११३ विरमति मतिहीनो लाभलोभेन वित्त,
जरयति यतिरूप मयमादिन्द्रियेच्छाम् ।
चरति च रतिविघ्न सव्ययत्वाद् गहिण्या,
स्वधननिधनरक्षाचायवय कदय ॥३६॥

—उपदेश २

४१ विल्हण (१०८० ई०)

यह कश्मीरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ज्येष्ठकलश, दादाका नाम राजकलश और परदादाका नाम मुक्तिकलश था। मा नागदेवी थीं। इष्टराय और आनद इनके दो भाई थे। अपने ऐतिहासिक महाकाव्य "विक्रमाकदेवचरित" में इन्होने अपने बारेमें बहुत सी बातें लिखी ह। विद्या समाप्तिके बाद तरुण विल्हणने अनुकूल दरबार ढूढनेके लिए प्रस्थान किया। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और दूसरे स्थानोमे होते वह कल्याण नगरमें पहुचे, जहा चालुक्य-वशके राजा छठें विक्रमादित्य (१०७६ ११२७ ई०)

११० निष्ठुरता, निरपेक्षता शठता, क्रूरता, कुटिलता
और उपकारका विस्मरण—यह है कजूमका लक्षण ।।२६।।

१११ जहा बिना पाक चूल्हा न मुस्कुराता मुख है और जो निजन है,
उत्सवकी जहा कथा नही उसे कजूसका घर जानते ह ।।२८।।

११२ वष्टि न होने पर पहले जो नाचता अतिवष्टिपर जो नाचता है
अनाजके दामके बढनके ख्यालसे कजूस सूखे और बाढको चाहता
है ।।३४।।

११३ लाभके लोभसे वह मतिहीन धन नही भोगता (और)
सयम के कारण यतिकी तरह इद्रियोकी इच्छाओको नष्ट करता है।
खर्चीलेपनके कारण गहिणीकी रतिमे विघ्न करता है
कजूस अपने धनके नाशकी रक्षामे बडा आचाय है।

—उपदेश २

४१ विल्हण (१०८० इ०)

का शासन था। इन्हींके बारेमें १८ सर्गोमें विल्हणने उक्त काव्य लिखा। इनका दूसरा ग्रथ "विल्हण चरित' ह, जिसमें गुजरातके राजा वीरसिंहकी कन्या शशिकलासे कवि के प्रेमका वणन ह। सभवत कल्याणसे वह गुजरात गये, और वही बस गये। विल्हणने कल्पना और पौराणिक आख्यानोको छोडकर वास्तविक जीवनको चित्रित करनेका एक नया माग दिखलाया, लेकिन सस्कृतके कवियोने उनका अनुसरण नहीं किया।

विल्हणचरितम्[1]

(१) विल्हण-शिष्या—

१ स्वर्गावनीविमलमण्डलखण्डतुल्ये,
भूमण्डले महिलपत्तननामधेये।
वारागगुर्जरजनै परिसेव्यमाने
भोगी बभूव नृपति किल वीरसिह ॥२॥

२ चत्वार एव निजधर्मरता सदैव,
वर्णाश्च यस्य नगरे रजनीकरस्य।
चच्चद्गवाक्षपथि वीक्षणदृश्यवक्त्रै –
बिम्बोदय प्रकटयन्ति दिनेऽपि नाय ॥३॥

३ यो वैरिवीरवरवारणदर्पसिंहो,
विद्याविनोदविविधाभिरस कलावान्।
गाम्भीर्यधैर्यगुरुदानगुणै स लोक,
पाति स्म वीरनृपतिर्निजराजधर्मै ॥४॥

४ इत्थ नृपेण रजनीकरवक्त्रबिम्बा,
राज्ञोऽप्यवन्तिनपतेरतुलस्य पुत्री।
पाणिग्रहेण विधिना विहिता सुनारा
मुख्या बभूव सकलासु वरागनासु ॥५॥

५ कालक्रमेण विमला कमलासमाना,
चन्द्रानना नयननिर्जितपद्मपत्राम्।
चन्द्रोदयेऽथ नृपते किल पट्टराज्ञी,
जज्ञे कला शशिकलामिति सत्यनाम्नीम् ॥६॥

---

१ काव्यमाला १३, निर्णय सागर प्रेस, बबई

विल्हण-चरित

१ विल्हण की शिष्या—

१ स्वगभूमिके निमल मडलके खडके समान
महिलपत्तन[१] (अणहिल पाटन) नामवाले भूमिपर,
सुन्दर शरीर गुजर जना द्वारा सेवित
वीरसिंह नामक भोगी नपति था ।।२।।

२ जिस च द्रमाके नगरमे चारो
वण सदा अपने धममे रत रहत थ ।
और दिनमे भी सुन्दर गवाक्षोसे देखनमे दश्य मुखोसे,
स्त्रिया (चद्र-)विम्बके उदयको प्रकट करती थी ।।३।।

३ जो शत्रु-वीरोके श्रष्ठ गजोके दपके लिये सिंह
विद्या विनोदमें विविध प्रकार रस लेनवाला, कलावान था ।
वह गाम्भीय धैय, बडे दान गुणोवाला
वीर सिंह नपति राजधर्मोसे प्रजा पालन करता था ।।४।।

४ इस प्रकार राजाने च द्रमासी मुख बिम्बवाली
अतुल नपति **अवन्ति** राजकी पुत्री को,
विधिपूवक व्याह कर सुपत्नी बनाया
(वह) सारी सुन्दरियोमे प्रधाना थी ।।५।।

५ काल पाकर राजाकी पटरानीन
विमल लक्ष्मी समान च द्रमुखी,
नयनसे पद्मपत्रको जीतनेवाली,
शशिकला सच्चे नामवाली कलाको ज म दिया ।।६।।

६ सा वर्धते शशिकला शशिन कलेव,
राज्ञो विशिष्टतनया ह्यधिकैकभाग्या।
अल्पैर्दिनै कतिपयैरपि राजधानी,
आगत्य वाक्यसुधया जनक तुतोष ॥७॥

७ राजीवपत्रनयना नरराजकन्या,
यल्लीलयापि वचन मधुर बभाषे।
तद्वीरसिंहनृपतेरमृतोपमान,
चित्ते बभूव सुखदायि दिवा निशायाम् ॥९॥

८ श्रीराजहसनमितेन पुरोहितेन,
राज्ञे निवेद्य विजिताखिलतत्कथेन।
"काश्मीरक कविरसौ गुणिन दिदृक्षु,
त्वामागत क्षितिप, बिल्हणनामधेय ॥११॥

९ मुक्तेन्दुकुन्दकुसुमस्फटिकावदाता,
सर्वामरेन्द्रभुजगेन्द्रनरेन्द्रवन्द्या।
मन्त्राथतन्त्रजननी जननी श्रुतीना,
श्रीशारदास्ति विषय तत आगतोऽयम्" ॥१२॥

१० कृत्वा नति विषयपूवमथाशिष ता,
जग्राह वीरनपति कविराजतोऽपि।
मायाप्रपचजगदणवभीतभीत,
सिद्धोपदेशमिव धमपरश्च लोक ॥१३॥

११ तस्मै विहस्य कविराजमथ क्षितीश,
प्रीत्या सुताध्ययनकारककोविदार्थी।
दत्त्वा निकाममुदिताय मनोरथश्री,
श्रीवीरसिंहनृपतिर्मुदमाससाद ॥१५॥

६ वह **शशिकला** शशिकी कलाकी तरह् बढती,
अधिकाधिक भाग्यशालिनी राजाकी विशिष्ट कन्या,
थोडे ही दिनोमे राजधानीमे
आकर (अपने) वचनामतसे पिताको सतुष्ट करने लगी ।।७।।

७ कमल पत्र जसे नत्रोवाली नरराजकी कन्या
लीलासे ही जो मधुर वचन बोलती थी।
सो **वीरसिंह** राजाके चित्तको अमत-समान
दिन रात सुखदायक होता था ।।९।।

८ श्री राजहससे नमस्कृत उसके कथनसे जीतनेवाले
पुरोहितने राजासे निवदन किया—
'हे क्षितिपति, यह कश्मीरी **बिल्हण** नामक कवि
गुणीके देखनका इच्छुक (तुम्हारे पास) आया है ।।११।।

९ मुक्ता-चन्द्र कुन्दकुसम-स्फटिककी तरह श्वेत,
सारे अमरेन्द्रो, भुजगेन्द्रो नरेन्द्रो द्वारा वदनीया,
मन्त्र-अथतत्रकी उत्पादिका, श्रुतियोकी जननी,
श्री **शारदा** का जो एक(मात्रा) देश हे, वहासे यह आया है ।।१२।।

१० पहिले नमस्कार करके फिर कविराजसे आशीर्वाद,
वीर नपतिने (ऐसे) ग्रहण किया,
जैसे माया प्रपचरूपी भवसागरसे भयभीत
धमपरायण आदमी सिद्धोपदेशको ग्रहण करता है ।।१३।।

११ कविको विहसकर मनोवाछित लक्ष्मी दी।
फिर राजाकी प्रसन्नतासे
पडित को खोजनेवाले श्रीवीरसिंह नपतिने
अति मुदित हो पुत्री को पढाने के लिये दिया ।।१५।।

१२ स्नानानुलेपनमनोरमभोजनानि,
दिव्यावराणि बहुमानपुर सराणि ।
काश्मीरक कविवरोऽथ निशम्य रात्रौ
प्रात पुरोहितयुतो नृपति ददर्श ॥१६॥

१३ सद्य प्रबन्धविधिना गुरुणा कवित्व,
यद्रम्यपद्यरचनामधुना कवीन्द्र ।
विद्यापगागहनवासपयोनिधित्व,
धीर तुतोष स यथा न तथान्य एव ॥१७॥

१४ एव विलोक्य लसिताथपद कवीन्द्र-
मामन्त्र्य तत्र तनया कवये निवेद्य ।
"अध्यापय प्रमुदितो भगवन्निमा त्व
कृत्वा प्रसादम"थ चन्द्रकलामुवाच ॥१८॥

१५ उन्निद्रबुद्धिकुसुम कविशेखरोऽय,
काश्मीरक शशिकले कुरु पादपूजाम् ।
क्रीडा विहाय सुकसारिगता सखीना,
शास्त्र गृहाण वचन कविबिल्हणस्य" ॥१९॥

१६ राज्ञा विमृश्य गुणिनो गुरुभावभक्ति,
व्यक्ताक्षरक्रमवतीमपि राजपुत्रीम् ।
दृष्ट्वा व्यपाठयदतिप्रयत कवीन्द्र,
स्तोकैर्दिनै शशिकला विदुषी बभूव ॥२०॥

१७ सा प्राकृतानि विमलानि च सस्कृतानि
शास्त्राण्यधीत्य किल चन्द्रकला सुशीला ।
श्रीबिल्हण निजगुरु प्रणिपत्य साक्षात्,
त हर्षया नृपतिमास सरस्वती च ॥२१॥

१२ स्नान अनुलेपन मनोरम भोजन,
बहुमानके साथ दिव्य वस्त्र को।
कश्मीरी कविवरने रातको सुनकर
प्रात पुरोहितके साथ नपतिका दशन किया ॥१६॥

१३ तुरन्त **बडे** प्रबध क। रचना कवित्व
और रम्य-पद्य निर्माण के द्वारा
विद्यारूपी नदीके बहन निवास-सागरत्वसे
कवीद्रने वीर को जैसा तुष्ट किया वसा अन्य नही ॥१७॥

१४ इस प्रकार उल्लसित अथ पदवाल कवीद्रको देख
अपनी पुत्रीको वहा बुला राजाने कविस निवेदन किया—
"हे भगवन तुम खुशीसे कृपाकर इस पढाओ'
फिर उसने **शशिकलासे** कहा—॥१८॥

१५ 'हे शशिकला यह फूले बुद्धि रूपी पुप्पवाले,
कश्मीरी कविश्रेष्ठ है, इनकी पाद-पूजा कर,
सखियोके तोते मैनोके खेलको छोड
कवि **विल्हणके** वचन शास्त्रको ग्रहण कर ॥१९॥

१६ राजाके साथ विचार कर गुणीके प्रति बडी भावभक्तिवाली,
अक्षर क्रम जाननेवाली राजकन्याको
देखकर कवीद्रने अत्यन्त तत्परतासे पढाया,
(और) थोडे ही दिनोमे शशिकला विदुषी हो गई ॥२०॥

१७ उस सुशीला शशिकलाने **प्राकत** और
निमल **सस्कृत** शास्त्रोको पढकर।
अपने गुरु श्रीविल्हणको प्रणाम करके,
उन्हें, नृपति और सरस्वतीको (भी) हर्षित किया ॥२१॥

(२) राजकन्या प्रेम—

१८ तस्या गृहे प्रवरकुकुमपुष्पवासि-
कर्पूरगौरसरसागरुच दनाढ्ये ।
श्रृगारसारगहन किल कामशास्त्र-
मध्यापयत्यमलचन्द्रकला कदाचित् ॥२२॥

१९ विज्ञातमन्मथकला स्मरबाणविद्धा,
तस्यान्यज मरमणी नरनाथपुत्री ।
भाव्यथभावितमनोभवतुल्यकान्ते,
कान्ते रसान्विदधति स्म दृशोर्विकारान् ॥२३॥

२० प्रेमादरात्तरलितेन विलोचनेन,
वक्त्रेण चारुहसितेन सुधाधरेण ।
इषद्विजम्भितकुचद्वितयेन बाला,
विद्वासमाशु वशिन च वशीचकार ॥२४॥

२१ श्रीपद्मपत्रनयना वरपद्महस्ता,
पद्मप्रकृष्टचरणा शुचिपद्मगन्धाम ।
ता पद्मिनीमिव सुपद्मनिकेतना च,
मेने कवि शशिकलामिव कामवल्लीम् ॥२५॥

२२ सा प्राह त कविमवेक्ष्य मनोऽनुराग,
"स्वामिन्, द्वय भवति सवजनानुशान्त्यै ।
तत्त्व शिवस्य शिवदायि च कामतत्व,
त्व सप्रति स्मरगुरु स्मरयोग्यमत्र" ॥२६॥

२३ इत्युक्त एव विजने स विचाय सर्व,
गान्धवराजविधिना जगृहेऽथ पाणिम् ।
कामी युवा स्मरकलाकुशला च बाला,
दैवात्तयोरघटित घटित बभूव ॥२७॥

२ राजकन्यासे प्रेम—

१८ उसके श्रेष्ठ केसर-पुष्पके गधवाले
कपूरसे गौर सरस अगर-चदनयुक्त घरमे,
किसी समय पर शृगार-सारवाला गहन कामशास्त्र
निमल शशिकलाको पढात ।।२२।।

१९ दूसरे ज मकी कविकी पत्नी राजपुत्रीने,
कामकलाको जान कामवाणस बिद्धा हो
भावी अर्थों द्वारा प्रभावित काम-तुल्य कमनीय,
प्रियतममे (अपने) नेत्रोस रस विकार पैदा किये ।।२३।।

२० प्रेम-आदरसे तरल नेत्रो द्वारा,
सुन्दर हास और अमत-अधरवाले मुख तथा
थोडे उदबुद्ध दोनो स्तनो द्वारा उस बालाने,
(उस) सयमी और विद्वान्को जल्दी अपने वशमे कर लिया ।।२४।।

२१ लक्ष्मी के कमल-पत्र सी आखावाली श्रेष्ठ पद्मसे हाथोवाली,
पद्म स उत्तम चरणोवाली, पवित्र पद्म सी गधवाली,
पद्मिनी (लक्ष्मी) की तरह ही सुन्दर पद्मके गहवाली
काम लतासी शशिकलाको कविने समझा ।।२५।।

२२ उसने कविको देखकर अपने मनके अनुरागक बारे मे कहा
हे स्वामी सभी जनोकी शान्तिके लिये दो बाते होती है
शिवका तत्वज्ञान और शिव (कल्याण) दायक कामतत्व।
इस समय तुम यहा काम जसे योग्य कामगुरु है" ।।२६।।

२३ एकान्तमे ऐसा कहनेपर उस कविन सब विचार कर,
गधव विवाह विधिसे उसका पाणिग्रहण किया।
कामी तरुण था और बाला काम-कलामें कुशल थी
दैवसे उन दोनोके लिये अघटित (घटना) घटित हो गई ।।२७।।

२४ सा कामशास्त्रविधिना किल कामकेली-
लीलाविलासनिलय चकमे कवीशम्।
अ योन्यनूतनसुयौवनमोहिता च,
वाक्यै सुधारससमै स ररज बालाम् ॥२८॥

२५ राजप्रियोऽपि विविधागमपारगोऽपि,
भुक्ते स गूढचरितो नरराजपुत्रीम।
शास्त्रोदितान्यनुदितानि च मोहनानि,
पश्यन्नहर्निशमतीव निगूढचेता ॥२९॥

(३) रहस्यभेद --

२६ आ कस्य साप्रतमहो कुपितो विधाता,
कृत्वेति ते हृदि तत प्रणिपत्य भूपम्।
"देवाभय शशिकला पुरुषोपभुक्ता,
सत्याय ते स गुरुरीक्षित एव नूनम्" ॥४६।

२७ रक्षाजनेन कविनामनिवेदितेन,
भूपो बभूव किल दोल्तिचित्तवत्ति ।
"कि सत्यमस्ति कथित वितथ तु किवा,
जीवप्रिय द्वितयमेव कवि सुता मे" ॥४७॥

२८ निर्वासन स्वनगरात्खरपष्ठयान,
नाश करस्य वधवन्धनक समस्तम्।
अगीचकार कुसुमेषुनिपीडिताग,
काश्मीरको नृपसुतारमणानुगूढ ॥५५॥

२९ अलमतिचपलत्वात्स्वप्नमायोपमत्वात्,
परिणतिविरसत्वात्सगमेनागनाया ।
इति यदि शतकृत्वस्तत्त्वमालोकयामस्
तदपि न हरिणाक्षी विस्मरत्यन्तरात्मा ॥५८॥

२४ उसने काम-शास्त्रकी विधिसे काम-क्रीडा के
लीला-विलासके भवन कवीशको प्यार किया।
और परस्पर (अपने) सुन्दर नवयौवन से मोहित उस बाला रजन
का, सुधारस-तुल्य (अपने) वचनोसे कविने किया ।।२८।।

२५ राजाका प्रिय, विविध शास्त्रोमे पारगत,
शास्त्रमे कही-न-कही मोहन बातोको,
देखते रात दिन छिपकर,
वह कवि राजकन्याका उपभोग करता ।।२९।।

३ रहस्यका प्रकट होना—

२६ 'इस समय आह, किसके ऊपर विधाता कुपित हुआ।
यह मनमे करके राजाको प्रमाण कर (पहरदार ने कहा)—
'हे देव, अभय दे शशिकलाको पुरुषने उपभोग किया है।
तुम्हे सच (बतानेके) लिये, निश्चित उस गुरुको ही देखा है' ।।४६।।

२७ रक्षक पुरुषके कविका नाम कहने पर,
भूपका चित्त चचल हो गया
'क्या सत्य है अथवा असत्य,
कवि और पुत्री दोनो ही मेरे लिय प्राणोसे प्रिय ह" ।।४७।।

८ गदहेकी पीठपर चढन अपने नगरस निर्वासनके दण्ड,
हाथ काटने सारे बध-बधनको,
नप-सुताके रमणमे रत
काम-पीडित कश्मीरीने स्वीकार किया ।।५५।।

२९ अगनाके सगममे अति-चपलता स्वप्न मायाकी समानता,
अन्तमें विरसता के कारण
यदि सौ बार तत्त्व पर विचार करते है,
तो भी मेरी अतरामा मृगनयनीको नही भूलना चाहती ।।५८।।

३० के वा न सन्ति भुवि वारिधरावतसा,
हसावलीवलयिनो जलसनिवेशा ।
किं चातक फलमवेक्ष्य स वज्रधारा,
पौरदरी कलयते नववारिधाराम ।।५९।।

३१ 'श्रीवीरसिंह नपवीर विपक्षवीर
मत्तेभसिंह नरसिंह नरेन्द्रसिंह ।
वैदेशिक स्वकुललाछनता विधत्ते,
तद्वीक्ष्य कि क्षमसि कि श्रुतमेव नास्ति" ।।६१।।

३२ वशार्चितेन कथिते वचने नृवीरो
जज्वाल वह्निरिव वातविवृद्धवग ।
आनीय तद्गृहसखीश्चरित च पृष्ट्वा
ताभ्य समस्तमपि भूपतिराससाद ।।६२।।

(४) शूलारोहणदण्ड —

३३ ज्ञात्वा स्वय सकलमर्थमनथमूल,
प्रोवाच रोषवशग शुभमन्त्रिणस्तान् ।
"चौरस्य कि भवति" मन्त्रिभिरवमुक्त—
"शूलाधिरोहणमिति", "क्रियता च तस्य" ।।६३।।

३४ भूपाज्ञया सपदि वधधरैर्विगाढ,
त नीयमानमुपलक्ष्य जनस्त्ववाचत् ।—
"चौर किमेष सुकवि प्रभुरत्नहारी"
लोकोक्तिरेवमभवन्नगरे समस्ते ।।६४।।

३५ द्वारस्थितामथ निरीक्ष्य नरेन्द्रपुत्री
नेत्रच्छटा प्रदधती स उवाच कान्ताम् ।
"बालेऽधुना सुरवधूरमणाय यामि,
तन्नागमिष्यति पुन कवि बिल्हणस्त्वाम्" ।।६५।।

३० ससारमे मेघोके आभूषणवाल,
हस पक्तिके ककणवाले जल शरीरयुक्त कौन नही है।
क्या चातक फलको सोचकर पुरन्दरकी
नवीन जलधारावाली वज्र धाराको ग्रहण करता है' ॥५९॥

३१ 'हे वीरसिंह वीर नपति शत्रु वीर रूपी
मस्त गजके सिंह ह नरसिह हे नरद्रसिह
वैदेशिक विल्हण अपने कुलको लाछित कर रहा है।
उसे दखकर क्यो क्षमा करते हो ? क्या सुना हो नही' ॥६१॥

३२ कुलपूज्य पुरोहित के कहे वचनसे वीरसिंह
वायुसे प्रबल हुय अग्निकी तरह भभक उठा।
शशिकला क. गह सखियोको बुला उसक चरित्रके बारेमे पूछकर
उनसे सब बाते भूपतिने जान ली ॥६२॥

४ सूली का दड—

३३ अनथकी जड सभी बातोको स्वय जानकर
रुष्ट हो उसने अपने भले मत्रियोसे कहा—
चोरका क्या दड होता है?' तब मत्रियाने कहा—
"सूलीपर चढाना', "तो कविको यह करो' ॥६३॥

३४ राजाकी आज्ञासे तुरन्त हिजडोने उसे जोरसे पकड लिया।
उसे ले जाये जाते देखकर लोगोने कहा—
"यह सुकवि क्या प्रभुके रत्नका हरन वाला चोर है?"
इस प्रकार सारे नगरमें लोगो मे बात फैली ॥६४॥

३५ तब उस कविने द्वारपर अवस्थित नेत्र-शोभा धारिणी
प्रिया नरेंद्र-कन्या से कहा
"बाले, देवागनाओके साथ रमण करनेके लिये मैं जा रहा हू।
सो कवि विल्हण अब फिर तेरे पास नही आयेगा" ॥६५॥

३६ वध्यावनीमथ निरोपितशूलरौद्रा,
नीत्वा कवि तु वधका कथयाबभूवु —
"स्नान विधेहि परिचिन्तय देवमाद्य-
मन्ते मतिभवति या सुकवे गति सा" ॥७२॥

(५) प्रियास्मरणम्—

३७ "अद्यापि ता कनकचम्पकदामगौरो,
फुल्लारविन्दवदना नवरोमराजीम।
सुप्तोत्थिता मदनविह्वलसालसागी
विद्या प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥७५॥

३८ अद्यापि तद्विकसिताम्बुजमध्यगौर,
गोरोचनातिलकपाण्डुरमध्यदेशम्।
ईषन्मदालसविघूर्णितदृष्टिपात,
कान्तामुख पथि मया सह गच्छतो च ॥७६॥

३९ अद्यापि तद्विकचकुन्दसमानदन्त,
तियग्विवर्तितविलोलविलोचनान्तम।
तस्या मुख मयि मनागपि विस्मरामि,
चित्तात्कृतज्ञ इव हन्त कृतोपकारम्॥८२॥

४० अद्यापि तत्सरलमजुलतुगभास,
किञ्चिन्स्मितोच्छ्वसितपाण्डुरगण्डभागम्।
पश्यामि पूणशरदिन्दुसमानकान्ति,
कान्तानन विकचपकजपत्रनेत्रम्॥८३॥

४१ अद्यापि तन्मदनकार्मुकभगुरभ्रु,
दन्तद्युतिप्रकरकर्बुरिताधरोष्ठम्।
कर्णावसक्तपुलकोज्वलदन्तपत्र,
तस्या पुन पुनरपीह मुख स्मरामि॥८४॥

३६ सूली देनेके भयकर वध्यस्थान मे
कविको ल जाकर वधकान कहा —
हे सुकवि स्नान करो पहल दवताका ध्यान करो।
अन्तमे जो मति सो गति होती है ॥७२॥

५ प्रिया की याद—

३७ "अब भी म सुवण चम्पक माला सी गोरी,
फुल्ल कमलमुखवाली नवीनरोमपक्तिवाली,
सोयेसे उठी, कामसे विह्वल-अलस अगवाली,
प्रमाद से गिरी विद्याधरी की तरह मै उसी को सोचता हू ॥७५॥

३८ अब भी उस फूले कमल के गभ जैसे गौर,
गोरोचनके तिलकसे पाडुवण मध्यदशवाले,
मदके खुमारसे थोडी चकराती दष्टिपातवाले,
कान्ता मुख और मेरे साथ पथसे जाती उसको सोचता हू ॥७६॥

३९ आज भी उस फुल्ल कुद समान दातवाले,
तिरछ घूमे चचल नेत्रक कोरोवाल
उसके मुहको, मेरे ऊपर किय उपकारको
हन्त चित्तस कृतज्ञकी तरह जरा भी नही भूलता हू ॥८२॥

४० आज भी उस सरल मजुल उच्च प्रभा-युक्त
कुछ मुस्करात उच्छवसित गुलाबी कपोलवाली
पूण शरदचद्रमाक समान कान्तिवाली,
फुल्ल पकज नत्र जैसे नयनवाली का ताक मुखका मै देख रहा हू ॥८३॥

४१ आज भी मदन क धनुषसे कुटिल भौहोवाल
दातोके प्रकाशोसे प्रतिबिबित अधरोष्ठवाल,
कानोमे लगे पुलक उज्ज्वल खौरके दन्त पत्रवाले
उसके मुखको फिर फिर यहा याद करता हू ॥८४॥

४२ अद्यापि ता मयि कृतागसि धष्टभाव,
सभावयत्यपि मुहुर्निगहीतवाचम् ।
अन्तर्निरुद्धगुरुकोपसबाष्पकण्ठी,
नि श्वासशुष्यदधरा रुदती स्मरामि ॥८९॥

४३ अद्यापि तामितरतश्च पुरश्च पश्चा-
दन्तबहि परित एव परिभ्रमन्तीम् ।
पश्यामि फुल्लकनकाम्बुजसनिभेन,
वक्त्रेण चारुपरिवर्तितलोचनेन ॥९३॥

४४ अद्यापि तानि मम चेतसि विस्फुरन्ति,
बिम्बोष्ठमष्टपरिकीणशुचिस्मितानि ।
पीयूषपूरमधुराणि त्वदुत्तराणि,
वाक्यानि मन्मथभवानि मृदूनि यस्या ॥९८॥

४५ अद्यापि तामरुणयत्यरुणेन्तरिक्ष-
मापृच्छमानमपि नाम विधारयन्तीम् ।
उत्थाप्य निश्चलदृशो मम नि श्वसन्ती
चिन्ताकुला किमपि नम्रमुखी स्मरामि ॥१०६॥

४६ अद्यापि ता विलुलिताकुलकेशपाशा
किचित्समुन्मिषितघूर्णितजिह्मनेत्राम् ।
सुप्तोत्थिता विदधती मुहुरगभग,
पश्यामि चारुमधुर बहुश स्मरन्तीम ॥११०॥

४७ अद्यापि ता सुवदना वलभीनिषण्णा,
तद्गेहसन्मुखमहो खलु दृष्टमत्र ।
मर्मोत्तर प्रियसखीषु कृतस्मितासु,
लज्जा विलक्ष्य हसिता हृदि चिन्तयामि ॥१११॥

४२ आज भी मुख ढीठ अपराधीके प्रति
क्षण भर वचन रोकनवाली
भीतर रुधे भारी कोपके कारण अश्रु सहित कण्ठवाली
साससे सूखत अधराके म.य रोती उम मैं याद करता हू ।।८९।।

४३ आज भी उसे दूसरी जगह आगे पीछ
भीतर, बाहर चारो ओर
फुल्ल सुवण कमल सदश मुख और,
सुन्दर तिरछ लोचनोके साथ घूमती देखता हू ।।९३।।

४४ आज भी बिम्बाधरसे मिश्रित विकीण शुभ्र मुस्कान
अमृतधारासे मधुर तर व उत्तर
जिसके काम प्रसूत मदु वाक्य ह
मेरे चित्तमे उठ रह हैं ।।९८।।

४५ आज भी उम पूछत, आकाशके अरुणसे
लाल हात समय धारण करती,
मर निश्चल नत्रोको उठा लम्बी साम लती
चिन्ताकुल कुछ फीके मुखवाली मैं याद करता हूँ ।।१०६।।

४६ आज भी चचल-व्याकुल केशपाशो
कुछ खुल चकरात तिरछे ननोवाली
सोकर उठ जरा अगडाई लती
सुन्दर मधुर बहुत बार याद करती उसे म दखता हू ।।११०।।

४७ आज भी अटारीपर बैठी,
यहा उसके घरके सामन अहो देखा।
मुस्कराते प्रिय सखिया को गुप्त उत्तर (दे)
लज्जा करके सुखी हसते उसे हृदयमे सोचता हू ।।१११।।

४८ अद्यापि तामुपवने परिवारयुक्ता,
मच्चिन्तयाम्युपगता च महोत्सवाय।
मा पार्श्वसंनिहितलोकभयात्ससशंक,
व्यावर्तितेक्षणमनुक्षणमीक्षमाणाम्" ॥११८॥

४९ 'त्वं विद्वन्गुरुरेव वाडवजनैः पूज्यः सतां सर्वदा
किं कुर्मः कथयाम संप्रति वयं लज्जान्विताधोमुखा।
राजाज्ञां न करोति पण्डितवराधीनो यतः सेवकः,
कः कोपं सहते पराभवपदं प्राप्नोति को मानवः" ॥१२६॥

५० "भवत्कृते चाजनमंजुलाक्षि, शिरो मदीयं यदि याति यातु।
नीतानि नाशं जनकात्मजायै दशाननेनापि दशाननानि"
॥१३१॥

५१ "प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा,
पर्यंके सा दिशि विदिशि सा चोर्ध्वतः सा ह्यधः सा।
हृद्यन्तः सा बहिरपि च सा नास्ति दृश्यं द्वितीयं,
सा सा सा सा त्रिभुवनगता तन्मयं विश्वमेतत् ॥१३२॥

५२ मम यदि सुकृतं स्यात्पूर्वजन्मार्जितं चेद्,
यदि सकलसुराणामर्चनं मेऽस्ति किंचित्।
यजनहवनवेदाध्यासनं यन्ममास्ति,
तदपि शशिकला मे प्राणनाथ्या तदास्तु" ॥१३५॥

× × ×

५३ इत्थं विज्ञाप्य देवेभ्यस्तूष्णीं तस्थौ कवीश्वरः।
अत्रान्तरे चन्द्रलेखा चिन्तां चक्रे तदोचिताम् ॥१३७॥

× × ×

५४ इत्थं विचार्य हृदये मरणाय बुद्धिं,
मुक्त्वा सुहर्म्यमवरुह्य सुसप्तभूमिम्।
बद्ध्वा दृढं नृपसुता परिधानवस्त्रं,
तस्थौ मनो निजगुरोश्च निराशयन्ती ॥१४१॥

४८ बगलमे पास लोगा क भयस शका कर
दष्टि घुमाय मुझ क्षण-क्षण दखती
आज महोत्सवक लिय परिवारक साथ
उपवनमे गई उसको याद करता हू ।।११८।।

४९ 'ह विद्वान तुम गुरु बाडवजनो सता द्वारा सदा पूजनीय हो।
क्या करे लज्जास अधोमुख हो इस वक्त हम कहत हैं।
पडितवरक अधीन सवक यदि राजाज्ञा नही पूरा कर,
तो कौन (राजाक) कोप को सहेगा कौन मनुष्य पराभवके स्थानको
पायगा' ।।१२६।।

५० "ह काली कोमल आखोवाली आपके लिय यदि मेरा सिर जाता है तो
जाव । सीताके लिय दशाननन भी अपन दशो आनन नष्ट किय
।।१३१।।

५१ प्रासाद पर वह प्रत्यक रास्तपर वह पीछ वह, आग वह
पलगपर वह दिशा विदिशाओमे वह ऊपर वह, नीच वह
हृदयके भीतर वह और बाहर भी वह, मर लिय दूसरा दश्य नही है।
वह वह-वह वह त्रिभुवन (उससे) व्याप्त है, यह विश्व तन्मय है।।१३२।।

५२ यदि पूव जन्मका अर्जित मरा पुण्य है
यदि सार देवताओकी कुछ पूजा की है
मेरा यज्ञ हवन, वदपाठ है
तो **शशिकला** मरे प्राणोको प्राप्त हो ।।१३५।।

५३ इस प्रकार देवताओसे प्राथना करके कवीश्वर चुप हो गय।
तब इसी बीच शशिकलान उचित (उपाय) सोचा ।।१३७।।

५४ हृदयमे यह विचार मरणका सकल्प कर,
सुन्दर सातमजिले प्रासादको छोड उतर
राजकन्या पहननेके वस्त्रको दढतास बाधकर
निज गुरुके मनको निराश करती खडी हुई ।।१४१।।

(६) मातृहृदयम्—

५५ एतस्मिन्नन्तरे नायस्तदा तद्भुवमागता ।
पराक्षेपेण धावन्त्यो कुर्वन्त्यश्चाश्रुपातनम् ॥१४२॥
सुतारान्त पुरे ताश्च प्रविष्टा साश्रुलोचना ।
विह्वला विश्वसत्यश्च त्राहि त्राहि पुन पुन ॥१४३॥

५६ या नाय समुपागता द्विजवर द्रष्टु समेत्याथ ता,
शोकादात्मभुवो यथा सुवचनै सपीडिता सत्कवे ।
सचिन्त्याशु गता नवीरनपतेरन्त पुर सुप्रभ,
विज्ञाता महिषी तदेव वचन सरया समक्ष तदा ॥१४५॥

५७ स्त्रीणा वाक्य तदा श्रुत्वा सत्य सरया उदाहृतम ।
मुतारा विह्वलागी सा मूच्छिता पतिता भुवि ॥१४६॥

५८ ज्ञात देवि यदद्य शोकजनन विप्राय मा धा भश
भाव्य तद् भविता सगोप्यवचन धर्मस्तथा श्रूयताम् ।
पुत्री ब्रह्मवधे प्रणश्यति ध्रुव लोकापवाद महज्,
ज्ञात्वेत्थ नपवीरसिहनपति विज्ञापयाशु स्फुटम् ॥१४८॥

५९ नरवर दुहिता ते मत्युमेप्यत्यदूर,
कविवरनिहते सा सत्यमेतत्समक्षम ।
द्वयमिह समुपेत ब्रह्महत्या सुताया,
निगमजनविरुद्ध सवथा नैव कायम ॥१४९॥

६० दुखेन दीनवदना सुतायाश्चरितेन सा ।
मद मद तथोत्थाय निरुत्साह गता नपम् ॥१५०॥

(७) प्रिया-प्राणयोर्लाभ —

६१ इत्थ निशम्य वचन नपपटटराज्ञी,
स्त्रीणा वच सुनयज कलिकल्मषघ्नम् ।
गत्वा जग नपवर सहसाश्रुपूर्णा,
स्त्रीणा तदेव वचन चरित सुताया ॥१५१॥

६ माताका हृदय

५५ इसी बीच उस भूमिमे दूसरोको हटाती
अश्रुपात करती दौडती नारिया आ गइ ।।१४२।।
वह सुताराके अन्त पुरमे अश्रुलोचना विह्वल
सास लेती फिर फिर "त्राहि त्राहि' करती प्रवि'ट हुई ।।१४३।।

५६ जो स्त्रिया द्विजवरको दखन आई थी वह
सत्कविके स्व निर्मित सुवचनास मानो शोकस पीडित
सोचकर तुरन्त **वीरसिंह** राजाके सुप्रकाशित अन्त पुरमे गई।
सखियोके सामन उस वचनको तब राजमहिषीन जाना ।।१४५।।

५७ तब स्त्रियोके सत्य वचनको सखियो से सुनकर
रानी **सुतारा** विह्वल मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडी ।।१४६।।

५८ "ह दवि, आज शोक उत्पादक (बात) जानी यदि ब्राह्मणका तुरन्त न बचाया (तो) होनवाला हो जायेगा, सो तुम धमके वैसे गुह्य वचनको सुनो—ब्राह्मणके मारे जानेपर (तुम्हारी) पुत्री अवश्य मरेगी। इस तरह भारी लोकापवादको जानकर वीरसिह नपतिको तुम जल्दी साफ निवदन करो ।।१४८।।

५९ नरवर तुम्हारी बेटी अति दूर मत्युको प्राप्त होगी।
कविवर के मारे जान पर वह यह सच सामन है।
यहा दोनो मौजूद है ब्रह्महत्या और पुत्रीकी हत्या
जो पुरवासी जनोके विरुद्ध सवथा अ-करणीय हे ।।१४९।।

६० दु खसे और पुत्रीके आचरणसे भी वह दीनमुखी (रानी)
धीरेसे उठकर उत्साह रहित राजाक पास गई ।।१५०।।

७ प्रिया और प्राण मिले—

६१ राजाकी पटरानीने इस प्रकार
सुनीतियुक्त कलिक पाप-नाशक वचनको सुन,
जाकर जगतके श्रेष्ठ राजास एक एक आसू भर,
स्त्रियो के उस वचन और पुत्रीके आचरणको सुनाया ।।१५१।।

६२ तदामात्यादय सर्व पुरोहितसम जना ।
श्रीनृवीर नमस्कृत्य प्रोचु प्राजलयो वच ॥१५३॥

६३ "स्त्रीहत्या ब्रह्महत्या द्वे त्याज्या सद्भि सदा प्रभो ।
गर्हित सर्वशास्त्रेषु जनाय वचन महत्" ॥१५४॥

६४ एव विचार्य बहुधा नृपवीरसिह,
पथ्य वचस्तदनु धर्मवती च मेने ।
आदिष्टवान्वरकवेर्मरणे निषेध,
तस्थौ तदागमनमेव निरीक्षमाण ॥१५९॥

६५ त भूपति कविवर च विमोचयित्वा,
दत्वा सुतामपि वरिष्ठगुणाय तस्मै ।
देश तथा पुरशताधिकमेकरम्य,
वासासि हस्तितुरगाश्च रथाश्च पत्तीन् ॥१६०॥

६६ इत्थ भूमिपते परात्परतर लब्ध्वा प्रसाद पर,
काश्मीर कविशेखरो मुदमगाच्छ्रीबिल्हण सत्कवि ॥
आदिष्टो नृपवीरसिहप्रभुणा नेष्ट निज मन्दिर,
सप्राप्तो वरपचशब्दनिनदैर्मार्गेऽतिथीन्पूजयन् ॥१६२॥

—विल्हणकाव्यम्

४२ आचार्यो गोवर्धन (११०० ई०)

बगालके अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन (१११६ ई०) के यह दरबारी कवि थे। इनकी एक ही कृति "आर्यासप्तशती" मिलती ह, जिसे उन्होंने प्राकृतकी "गाथासप्तशती" से प्रेरणा पाकर लिखा था। अपभ्रंश कालके सस्कृत कवियोकी कटीली झाडियो या रेगिस्तानोमें घसिटनेके बाद गोवर्धनके पास

६२ तब अमात्य आदि पुरोहितक साथ सभी लोगोने
श्रीनरवीरको हाथ जोडकर नमस्कार कर वचन कहा ।।१५३।।

६३ "ह प्रभु स्त्री हत्या और ब्रह्म हत्या दोनो भलोक लिय त्याज्य है।
सार शास्त्रोमे निंदित और लोगो क लिय बडी (बुरी) बात है
।।१५४।।

६४ इस प्रकार **वीरसिंह** राजान बहुत तरहसे विचार कर फिर उस पथ्य वचनको धमयुक्त भी माना (और) कविवरक मरणके निषधकी आज्ञा दी और उनके आगमनकी प्रतीक्षामे वह खडा रहा ।।१५९।।।

६५ भूपतिने कविवरको मुक्त कर
उस श्रेष्ठ गुणीको सुता भी देकर,
सौसे अधिक गाववाल एक रमणीय प्रदेश
वस्त्र हाथी घोड रथ और पदल-सैनिकोको प्रदान किया ।।१६०।।

६६ इस प्रकार भूपतिकी उत्तम श्रष्ठ कृपाको पा
कश्मीरी कविशखर सत्कवि श्री**विल्हण** प्रसन्न हुय।
राजा **वीरसिंह** प्रभुका आदेश पाकर रास्तमे अतिथियोका पूजत
पाचो श्रेष्ठ बाजोके साथ वह अपन सुन्दर मन्दिरमे गय ।।१६२।।

—विल्हण काव्य

४२ आचार्य गोवधन (११०० ई०)

आकर बडी सान्त्वना मिलती ह। इनकी एक एक आर्या गागरमें सागर है। भाषा भी दुरूह नहीं और भाव भी हृदयग्राही ह। प० बलदेव उपाध्यायके अनुसार यह "मानव हृदयकी प्रवत्तियोका सच्चा पारखी ह।" इनकी कविताको हम बिहारीकी "सतसई" से तुलना कर सकते ह।

आर्या सप्तशती

१ व्यासगिरा निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्किता भारती वहति ॥३१॥

२ सति काकुत्स्थकुलोन्नतिकारिणि रामायणे किमन्येन ।
रोहति कुल्या गङ्गापूरे किं बहुरसे वहति ॥३२॥

३ अतिदीर्घजीविदोषाद्व्यासेन यशो पहारितं हन्त ।
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥३३॥

४ साकूतमधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला कालिदासोक्तिः ॥३५॥

५ भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥३६॥

६ जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी वाणो बभूवेति ॥३७॥

७ यं गणयन्ति गुरोरनु यस्यास्ते धर्मकर्म संकुचितम् ।
कविमहमुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥३८॥

८ सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुदबन्धोश्च ।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राकाप्रदोषश्च ॥३९॥

—ग्रन्थारम्भव्रज्या

९ अयि कूलनिचुलमूलोच्छेदनदुःशीलवीचिवाचाले ।
बकविघसपङ्कसारा न चिरात्कावेरि भवितासि ॥३॥

१० अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः ।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः ॥१३॥

१ **व्यास**की वाणीकी गोद विश्वक सार **भारत**की वदना करता हूँ
जिसमे अकित नाम को सरस्वती भूषणक तौरपर धारण करती है
।।३१।।

२ रघुवश कुलके उन्नत करनेवाल **रामायण**के रहत औरसे क्या काम ?
वहुत रसवाली **गगा**की धाराक बहत नहरिया क्या बढायेगी ।।३२।।

३ अहो अत्यन्त दीघजीवी होनके दोपस **व्यास**ने यश हर लिया ।
कौन नही कहेंग कि वही दूसरा ज म ले **गुणाढच** हुये ।।३३।।

४ कौतूहल्युक्त मधुर कोमल हाव भावोवाली अनुरक्त लीलाकी
शिक्षाके समय कठमे प्राय पूजित होती **कालिदास**की उक्तिया आनद-
के लिय ह ।।३५।।

५ **भवभूति**के सम्ब धस, भारती पहाडी भूमि भी शोभा दती,
अधिक प्रौढता पानेके लिये वाणी **वाण** हो गई ।।३७।।

७ जिसको वहस्पति सा लोग गिनत है जिसका पथिवीमें धम कम है।
कविके तजमें शुभ्र समान उन बापू **नीलावर**की वदना करता हू
।।३८।।

८ प्रब ध और च द्रमाकी सारी कलाओके कल्पित करनेमें समथ,
सेन-कुलके तिलक एक राजा (**लक्ष्मणसेन**) ह और एक पूणमासीकी
स ध्या ।।३९।।

—ग्रथारभ

९ तटके वक्षोके मूलोच्छेद करनेकी दुराचारिणी लहरोसे युक्त बकवासी
हे कावेरि, अचिर ही बगलो के भोजन रूपी पक तेरा सार होके
रहेगा ।।३।।

१० दूसरेके मुहमे जो बुरी बात है वही प्रियके मुखमे परिहास है।
दूसरे इधनसे उत्पन्न जो धुआ है वह अगरसे उत्पन्न धूप है ।।१३।।

११ अतिपूजिततारेयं दृष्टिं श्रुतिलघनक्षमा सुतनु।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना क न मोहयति ॥२१॥

१२ अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन ॥५०॥

—आकारव्रज्या

१३ आरोपिता शिलायामश्मेव त्व स्थिरा भवेति मन्त्रेण।
मग्नापि परिणयापदि जारमुख वीक्ष्य हसितैव ॥८०॥

१४ उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघा।
कुसुमायुधविधतधनुनिगतमकरदबिन्दुनिभा ॥१३६॥

१५ ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि, निखिलनागराचारम्।
इह डाकिनीति पल्लीपति कटाक्षेऽपि दण्डयति ॥१४०॥

१६ एकेन चूणकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन्।
पश्यामि बाष्पधौतुश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ॥१४६॥

१७ कुत इह कुरगशावक केदारे कलममजरी त्यजसि।
तृणवाणस्तृणधन्वा तणघटित कपटपुरषोऽयम ॥१९२॥

१८ गृहिणीगुणेषु गणिता विनय सेवा विधेयतेति गुणा।
मान प्रभुता वाम्य विभूषण वामनयनानाम ॥२०३॥

१९ ग्रन्थिलतया किमिक्षो किमप्रभ्रशेन भवति गीतस्य।
किमनाजवेन शशिन कि दारिद्र्येण दयितस्य ॥२१५॥

२० चिरपथिकद्राघिममिलदलकलताशैवलावलिग्रथिता।
करतोयेव मृगाक्ष्या दष्टिरिदानी सदानीरा ॥२२४॥

११ हे सुतनु सपूजित पुतली (तारा)-युक्त यह दष्टि (नेत्र) श्रुति (वेद) का लघन कर सकती है। वृद्धके सिद्धान्तोकी स्थितिसी वासनायुक्त (वह) किस नही मोहित करती ॥२१॥

१२ निद्राके बहानेस प्रिया द्वारा तिरस्कृत, बडाई स स्नहयुक्त मुझ चपलको आसूसे भीगे बिस्तरने जगा दिया ॥५०॥

— आकार पगडडी

१३ "पत्थरकी तरह तू स्थिर हो' इस मत्रके साथ शिलापर पैर रखवा, विवाहरूपी आफतमे फसाई वह जारक मुखको दखकर हस पडी ॥८१॥

१४ उल्लास करती चद्रमाकी कलाओक पास तार जगमगात ह, जैसे कामदेवके चढाये धनुषसे निकले मधुके बिन्दु ॥१३६॥

१५ हे सखि सीधसे कदम रख नगरकी सारी रीति छोड दे। 'डाकिनी है' कह यहाका ग्रामपति नजर डालनपर भी दड देता है ॥१४०॥

१६ नगरके दरवाजेपर एक हाथसे अलकको और दूसरस ठुड्डीको उठाते, आसूसे धुले कानोवाले उसके मुखको देखता हू ॥१४६॥

१७ हे हरिनके बच्चे, इस खतमे धान मजरीको तू क्यो छोडता है यह (तो) तिनके के वाण तिनके के धनुषवाला तिनकेका बनाया झूठा पुतला है ॥१९२॥

१८ गहिणीक गुणोमे नम्रता, सवा और आज्ञाकारिता गुण गिने गये ह। सुनयनाओके तो मान प्रभुता और सौदयको भूषण कहा गया है ॥२०३॥

१९ गाठवाली होनेस ऊखका, अपभ्रश भाषा होनेस गीतका क्या बिगडता है? कुटिल होनेसे चद्रमाका, और दरिद्रतासे प्रमीका क्या बिगडता है ॥२१५॥

२० चिरकालीन पथिककी लम्बी मिलती अलकरूपी लताकी सेवारोस गुथी करतोया नदी सी मृगनयनीकी दृष्टि इस समय सदा नीलवाली है ॥२२४॥

२१ जलबिन्दव कतिपये नयनाद गमनोद्यमे तव स्खलिता ।
कान्ते, मम गन्तव्या भूरेतग्वे पिच्छिलिता ।।२३५।।

२२ ज्योत्स्नागर्भितसैकतमध्यगत स्फुरितयामुन पूर ।
दुग्धनिधौ नागाधिपतल्पतले सुप्त इव कृष्ण ।।२४५।।

२३ त्वमसूर्यंपश्या सखि पदमपि न विनापवारण भ्रमसि ।
छाये, किमिह विधय मुचन्ति न मूतिमन्तस्त्वाम् ।।२५४।।

२४ निष्कारणापराध निष्कारणकलहरोषपरितोषम् ।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःख जयति दापत्यम् ।।३३४।।

२५ "नाथे"ति परुषमुचित "प्रिये"ति "दासेत्य"नुग्रहो यत्र ।
तद् दापत्यमितोऽन्यन्नारी रज्जु पशु पुरुष ।।३३६।।

२६ न सवर्णा न च रूप न सस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृति ।
बाला त्वद्विरहापदि जातापभ्रशभाषेव ।।३४२।।

२७ बौद्धस्येव क्षणिको यद्यपि बहुवल्लभस्य तव भाव ।
भग्ना भग्ना भूरिव न तु तस्या विघटते मैत्री ।।४०८।।

२८ मूलानि च निचुलाना हृदयानि च कूलवसतिकुलटानाम् ।
मुदिरमदिरा प्रमत्ता गोदावरि कि विदारयसि ।।४२९।।

२९ मग्नोऽसि नमदाया रसे हृतो वीचिलोचनक्षेपै ।
यद्युच्यसे तरुवर, भ्रष्टो भ्रशोऽपि ते श्लाघ्य ।।४४०।।

३० विन्ध्यमहीधरशिखरे मुदिरश्रेणीकृपाणमयर्मानिल ।
उद्यद्विद्युज्ज्योति पथिकवधायव शातयति ।।५५९।।

२१ गमनके प्रयत्न करनेके समय तरे नयनसे कुछ जलकी बूंदे गिरी इन्हीसे हे प्यारी, मेरे जानकी भूमि पिच्छिल हो गई ।।२३५।।

२२ चादनीके भीतरवाली बालूके बीच अवस्थित जमुनाकी धारा जगमगा रही है, मानो क्षीरसागरमे शषशय्याके ऊपर कृष्ण सोये है ।।२४५।।

२३ हे छायासखि, तू कभी सूयको न देखनेवाली बिना छत्तेके एक पद भी नही चलती। यहा क्या करना है, कि सारे मूर्ति (आकार) वाले तुझे नही छोडते ।।२५४।।

२४ अकारण अपराध, अकारण कलह रोष और परितोषवाले, एक साथ मरण-जीवन सुख दुखवाले दापत्यजीवनकी जय हो ।।२२४।।

२५ 'नाथ' कहना कठोर है 'प्रिय', 'दास' जिसमे अनुग्रह है,
वह दाम्पत्य ठीक' है, इससे भिन्न नारी रस्सी है और पुरुष पशु ।।३३६।।

२६ न सवण है और न रूप है, न कोई काय है न ही वह प्रकृति है।
तेरे विरह की आफतमे पडी वह बाला अपभ्रंश भाषा सी हो गई है ।।३४२।।

२७ यद्यपि बहुत प्रियतमाओवाले तेरे भाव **बौद्ध** सिद्धान्तकी तरह **क्षणिक** है। लेकिन तिरछी तिरछी (टूटी) भौंहोकी तरह उसके साथकी मित्रता नष्ट नही होती ।।४०८।।

२८ मोददायक मदिरास मस्त हे **गोदावरि**, वक्षोकी जडोको और किनारेकी बस्तियोकी कुलटाओके हृदयको, तू क्यो विदारित करती है ।।४२९।।

२९ हे तरुवर **नमदा**के जलमें डूबे, तरगरूपी लोचनोके आघातसे तुम वचित हो रहे हो। यदि कहत हो, कि म भ्रष्ट हू, तो तुम्हारा ध्वस (भ्रश) भी श्लाघनीय है ।।४४०।।

३० **विध्याचल**क शिखरपर मेघ पक्ति रूपी कृपाणको उठाये,
उगती बिजलीकी ज्योतिवाला यह वायु प्रिया वियुक्त पथिकोके मारनेके लिये ही है ।।५५९।।

३१ सा विच्छाया निशि निशि सुतनुबहुतुहिनशीतले तल्पे ।
ज्वलति त्वदीयविरहादौषधिरिव हिमवत पृष्ठे ॥६३८॥

३२ सव वन तृणाल्या पिहित पीता सिताशुरवितारा ॥
प्रध्वस्ता पन्थानो मलिनेनादृगम्य मेघेन ॥६६८॥

३३ पूर्वविभिन्नवृत्ता गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारै ।
वाग्देवी भजतो मम सन्त पश्यन्तु को दोष ॥६९७॥

३४ उदयनबलभद्राभ्या सप्तशती शिष्यसोदराभ्या मे ।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्या प्रकाशिता निमलीकृत्य ॥७०१॥

४३ जयदेव (११०० ई०)

जयदेव भी राजा लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि तथा गोवधनके समकालीन थे। इनका जन्म किन्दुबिल्व स्थानमें हुआ था, जिसे कुछ लोग बगालमें और कुछ उडीसामें बतलाते ह। राधाकृष्णके रास विलासको इन्होंने अपनी सरस गीतोंमें बाधा है। इनका यही एकमात्र ग्रथ प्राप्य है। राधाकृष्णके प्रेमके नग्न वणन करनेमें इन्होंने हमारी आजकी भाषाओके

गीतगोविन्दम

(१) मङ्गलाचरणम्—

“मेघैर्मेदुरमबर वनभुव श्यामास्तमालद्रुमैर,
नक्त भीरुरय त्वमेव तदिम राधे गह प्रापय ।”
इत्थ नदननिदेशतश्चलितयो प्रत्यध्वकुजद्रुम,
राधामाधवयोजयन्ति यमुनाकूले रह केलय ॥१॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा,
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ॥

३१ वह मलिना सुतनु रात रात अत्यन्त हिम जैसी शीतल शय्यापर
तुम्हारे विरहमें **हिमालय**के पष्ठपर औषधिकी तरह जल रही है ॥६३८॥

३२ मलिन मेघने उत्पन्न होकर सारे वनको तणोसे ढँक दिया
चन्द्र-सूय और ताराओको पी लिया रास्तोको ध्वस्त कर दिया ॥६६८॥

३३ **गुणाढ्य, भवभूति, वाण, कालिदास** जैस पहलाके नाना विभिन्न वत्तोवाली वाणी देवीकी सेवा करते मेरा कौन दोष है इसे सतजन देखे ॥६९७॥

३४ मेरे शिष्य और सहोदर **उदयन** और **बलभद्रने**
सूय-चन्द्र द्वारा आकाशकी तरह निमल करक यह **सप्तशती** प्रकाशित की ॥७०१॥

४३ जयदेव (११०० इ०)

कवियोके लिये माग प्रशस्त किया। "गीतगोविन्द" की लोकप्रियता इसीसे मालूम होगी, कि मध्यदेशमें अनपढ ग्रामीण तक गीतगोविन्द सुननेके लालायित रहते ह, चाहे वह उसे कुछ भी न समझते हो। सस्कृतमें गीतोंके न रचे जानेका कारण यही था, कि गीतोके लिए लोकभाषाका लोहा माना जाता था, (प ९७२।१९,) और वह उसीमें लिखी और गाई जाती थी। "गीत-गोविन्द"ने ललित गीतोके निर्माणकी परम्परा चलाई, लेकिन वह आगे नही बढी।

गीतगोविन्द

१ **मगलाचरण—**

"मेघोसे आकाश ढका है वनभूमिया तमालक वृक्षोसे श्यामल है।
रात है, यह **कृष्ण** भीरु है सो **राधे**, इस तू ही घर पहुचा। —
इस प्रकार **नन्दके** आदशसे चले मागके कुजके वृक्षो में
यमुनाके तटक एकान्तमे राधा और माधवकी होती क्रीडाओ की जय।१।
वाणीदेवी के चरित्रसे चित्रित चित्तभवनवाला,
पद्मावतीके चरणके चलानेमे चक्रवर्ती,

श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत,
मेत करोति जयदेवकवि प्रबन्धम् ॥२॥

(२) वसत[1]—

र्ललितलवगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ॥
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुजकुटीरे ॥१॥
विहरति हरिरिह सरसवसते ।
नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरते ॥ध्रुव०॥
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥२॥
मृगमदसौरभरभसवशवदनवदलमालतमाले ॥
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरचिकिंशुकजाले ॥३॥
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ॥
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥
विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥५॥
माधविकापरिमलललिते वनमालिकयाऽतिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥६॥
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ॥
वृन्दावनविपिन परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥
श्री जयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ॥
सरसवसन्तसमयवनवणनमनुगतमदनविकारम्[1] ॥८॥

---

१ रूपक ताल, अष्टपदी

श्रीकष्णकी रति क्रीडाकी कथासे युक्त
इस प्रबन्धको जयदव कवि बनाता है ॥२॥

२ वसन्त—

ललित लवगोकी लतामे लिप्त कोमल दक्षिण पवनवाले,
भ्रमर समूहोसे दतुरित कोकिल-कूजनके कुजोक कुटीरवाले ॥१॥
इस सरस वसतमे कृष्ण यहा बिहार कर रहे है
हे सखि विरही जनोके अपार गम्य वसतमे युवतियोके साथ वह नाच रह है ॥ध्रुव ॥
(जिस वसन्तमें) मस्त मदनके मनोरथस प्रोषितपतिकाये विलाप करती है कुसुमो पर भ्रमरो की भीड और मौलसरीके गुच्छोपर नही भीड रहती है ॥२॥
कस्तूरीकी गधमें खूब अधीन नवपत्रोकी मालाये तमालोपर रहती है,
तरुणोक हृदय विदारणके लिये कामके नख जैसे टेसू होते है ॥३॥
काम नपतिके सुवणदडसे चमकते केसरके फूल फूलते है
भवरोसे मिली पाटलियोके, काम-तूणीर बनते है ॥४॥
विगलित हो लज्जित ससारको देख तरुण जब करुण हास करते है,
विरहियोके छदनेके लिये भाल की नोकके आकारवाले केवडे चारो ओर फूलते ह ॥५॥
जब बेलाकी गधसे ललित वनमालिकासे, अत्यन्त सुगधित,
मुनियोके मनोके भी मोहक तरुणोके अकारण बन्धु ॥६॥
फूले मोतियोकी लताके आलिंगनसे आम मुकुलित और पुलकित होत है,
वन्दाबनके उद्यानमे, यमुनाजलसे पवित्र पास-पडोस मे वसत है ॥७॥
सरस वसन्तके समयके वनका वणन काम विकारसे युक्त
श्री जयदेव द्वारा कथित यह पद हरि चरणोमे भक्ति उत्पन्न करता है।८।

—सग १

(३) विरहिणी[1]—

निदति चन्दनमिंदुकिरणमनुविदति खेदमधीरम् ।।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम ।।
सा विरहे तव दीना ।
माधव, मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ।।ध्रु०।।
अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।।
स्वहृदयममणि वम करोति सजलनलिनदलजालम् ।।
सा विर० ।।२।।
कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरभसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ।।
सा विर० ।।३।।
वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।।
विधुमिव विकटविधुतुददन्तदलनगलितामृतधारम् ।
सा विरहे० ।।४।।
विलिखति रहसि कुरगमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ।।
प्रणमति मकरमधा विनिधाय करे च शर नवचूतम् ।।
सा विर० ।।५।।
प्रतिपदमिदमपि निगदति "माधव तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ।।
सा विरहे० ।।६।।
ध्यानलयेन पुर परिकल्प्य भवतमतीव दुरापम् ।।"
विलपति हसति विषीदति रोदिति चचति मुचति तापम् ।
सा विरहे० ।।७।।
श्रीजयदेवभणितमिदमधिक यदि मनसा नटनीयम ।।
हरिविरहाकुलबल्लवयुवतिसखीवचन पठनीयम् ।।
सा विरहे० ।।८।। —सग ४

---

१ राग कर्नाट, ताल एकताला, अष्टपदी

३ विरहिणी—

चन्दनकी निन्दा करती है, चन्द्र किरणो से अधीर हो खेद पाती है। सप भवनसे मिलने के कारण मलय (दक्षिण) पवनको गरल सी समझती है। वह **राधा** तुम्हारे विरह मे दीना है। हे माधव कामवाणो के भय से तुम्हारी भावनासे तुममे लीन सी है॥ ध्रु० ॥१॥
लगातार (ऊपर) गिरते कामवासना वाण से रक्षाके लिय अपने हृदय-मम पर आद्र कमलदलो का विशाल कवच बनाती है ॥२॥

शृगार-कलाओ से बहुत सुन्दर कुसुमरूपी बाण की शर शय्या के कुसुम पर तुम्हारे आलिंगनके सुख के लिय सोकर मानो व्रत करती है ॥३॥

चचल नेत्ररूपी मेघसे मुख महाकमल को तिरस्कृत करने वाले दन्तोके काटनेसे बहती अमतधारवाले, चन्द्रमा को वहन करती एकान्त मे कस्तूरी से कामदेव समान आपको चित्रित करती है नीचे मकरको बना हाथ में नवआम्र पल्लव रूपी शरको रख प्रणाम करती है ॥५॥

वह क्षण-क्षण यह भी कहती है—हे माधव मै तेरे चरणो मे पडी हू। तेरे विमुख होने पर चन्द्रमा भी मेरे लिये तुरन्त देह-दाह करता है ॥६॥

ध्यान मे निमग्न होने से सामने भी आपको अत्यन्त दुलभ समझकर विलाप करती है, हसती है दुखित होती है, रोती ह, पूजा करती है तृप्त होती है ॥७॥

श्रीजयदेव का यह कथन यदि मनसे अधिक अभिनय करना है, तो कृष्ण के विरह से व्याकुल सखी गोपी-युवती के वचन को पढना चाहिये ॥८॥

—सग ४

(४) अभिसारिका[1]—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ।।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर त हृदयेशम् ।।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।।
गोपीपीनपयोधरमदनचचलकरयुगशाली ।।ध्रु०।।१।।
नामसमेत कृतसकत वादयते मृदुवेणुम् ।।
बहु मनुते तनुते तनुसगतपवनचलितमपि रेणुम् ।।धीरस०२।।
पतति पतत्रे विचलति पत्रे शकितभवदुपयानम् ।।
रचयति शयन सचकितनयन पश्यति तव पथानम् ।।
धीरसमीरे० ।।३।।
मुखरमधीर त्यज मजीर रिपुमिव केलिसु लोलुम् ।।
चल सखि कुज सतिमिरपुज शीलय नीलनिचोलम् ।।
धीरसमीरे० ।।४।।
उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ।।
धीरसमीरे० ।।५।।
विगलितवसन परिहृतरशन घटय जघनमपिधानम् ।।
किसलयशयन पकजनयन निधिमिव हर्षनिधानम् ।।
धीरसमीरे ० ।।६।।
हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।।
कुरु मम वचन सत्वररचन पूरयमधुरिपुकामम् ।।
धीरसमीरे० ।।७।।
श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ।।
प्रमुदितहृदय हरिमतिसदय नमत सुकृतकमनीयम् ।
धीरसमीरे यमुना० ।।८।।

—सग ५

---

१ राग गुजर, ताल एकताला, अष्टपदी

४ अभिसारिका—

रति-सुख के सार अभिसार मे गये मदन जसे मनोहर वेषवाले, उस हृदय को ह नितम्बिनी, अनुसरण कर, गमनमे विलम्ब न कर। मन्द समीरवाल **जमुना** तीर के वनमे **वनमाली** वसत है गोपियो के पीन पयोधर का मदन करन मे जिनके कर युगल चचल है ।।१।।

(तेरे) नाम का सकेत करते मधुर बशी बजाते तनमे लगी पवन द्वारा चलित धूलिको भी बहुत बढाकर मानते ह ।।२।।

पक्षी के गिरने पत्रके चलने पर आपके आने की शका करते चकित दृष्टिसे सेज बनाते और तेरी बाट जोहते है ।।३।।

रिपुकी तरह क्रीडा के अत्यन्त लोभी अधीर, मुखर (इस) पाजेब को छोड दे। सखी चल अधकार पुज वाले नीले निचोल कुजका सेवन कर ।।४।।

चचल वक पक्तिवाले मेघ जैसे **मुरारि**के हारयुक्त बिजलीसे पीले सुकमके भोग वाले विपरीत रति से वक्षस्थल पर तू सोयेगी ।।५।।

हे कमलनेत्र नव पल्लवकी सेज पर निधिकी तरह हषके आनन्द के निधान खसके वस्त्रवाले कटि भूषण रहित जघन को ढाक ले ।।६।।

कृष्ण अभिमानी है, यह रात भी बीती जारही ह, मेरी बात मान, जल्दी सज जा और **कृष्ण** की कामना को पूरी कर ।।७।।
हरिके सेवक **श्रीजयदेव** के परम रमणीय (इस) कथन पर, प्रमुदित हृदय अत्यन्त दयावान् सुकमसे कमनीय हरिको नमस्कार करो ।।८।।

—सग ५

(५) राधामाधवलीला[1]—

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभगम् ॥
जलनिधिमिव विधुमण्डलदशनतरलिततुगतरगम् ॥
हरिमेकरस चिरमभिलषितविलासम् ॥
सदर्श गुम्हषवशवदवदनमनगविकारम् ॥ध्रु०॥१॥
हारममलतरतारमुरसि दधत परिरम्य विदूरम् ॥
स्फुटतरफेनकदम्बकरबितमिव यमुनाजलपूरम् ॥
हरिमेकरस० ॥२॥
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ॥
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥
हरिमेकरस० ॥३॥
तरलदगचलचलनमनोहरमदनजनितमतिरागम् ॥
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥
हरिमेकरस० ॥४॥
वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम ॥
स्मितरुचिरचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतिरतिलोभम् ॥
हरिमेकरस० ॥५॥
शशिकिरणोच्छुरितोदरजलधरसु दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिमलमलयजतिलकनिवेशम् ॥
हरिमेकरस० ॥६॥
विपुलपुलकभरदन्तुरित रतिकेलिकलाभिरधीरम् ॥
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम ॥
हरिमेकरस० ॥७॥
श्रीजयदेवभणितविभवे द्विगुणीकृतभूषणभारम् ॥
प्रणमत हृदि विनिधाय हरि भवजलसुकृतोदयसारम् ॥
हरिमेकरस[1]० ॥८॥ —सग ११

---

१ राग बराडी, एकताला, अष्टपदी

५ राधामाधव लीला—

उसने भारी हर्षसे लिप्त मुख हो काम विकारवाले हरिको देर तक देखा ॥ध्रु० ॥१॥

(जो कि) राधाके मुखके देखनसे नाना भाव भंगियोवाले
चन्द्रमण्डलके दर्शनसे चंचल ऊंची तरंगोवाले सागर जैसे
अभिलषित शोभायुक्त (और) एक रस (है)।
(जो) दूरसे आलिंगन करके अति निर्मल तारयुक्त हार धारण
किये है ॥२॥

मानो अति स्पष्ट फेनोसे लिप्त जमुनाजलकी धारा जैसे
श्यामल मृदुल शरीर मंडल पर श्वेत रेशम पहने है।
मानो पीले केसरोसे वेष्टित जडवाला नीलकमल हो ॥३॥

चंचल नेत्रकोण चलनेमे मनोहर कामसे उत्पन्न अति रागवाले,
मानो शरदकाल मे फूले कमलके उदरमे खेलते दो खंजनोवाला
तडाग हो ॥४॥

मुखकमलके ससर्गसे मिले मुदे सूर्य कुंडल की शोभायुक्त
मुस्कुराहटकी चमकसे समुल्लसित अधर पल्लवके लिये अत्यंत लोभ
वाले ॥५॥—

चन्द्रकिरणोसे अंकित उदरवाले मेघ जैसे सुन्दर कुसुम केशवाले,
अन्धकारमे उगे चन्द्रमंडलसे निर्मल चन्दनकी तिलक लगाये ॥६॥

भारी रोमाचोसे दंतुरित रति-क्रीडाकी कलामें अधीर
मणियोके किरणोसे उज्ज्वल भूषणो द्वारा सुंदर शरीरवाले ॥७॥

श्रीजयदेवके कथनके वैभवसे दूना भूषण धरे,
भवजलके सुकर्मोके फलके सार, हरिको हृदयमें रखकर प्रणाम करो
॥८॥

—सर्ग ११

४४ मखक (११३० इ०)

कश्मीरके यह महाकवि, राजा जयसिह (११२९ ५० ई०) के सभा पडित थे। इन्होने अपने बारेमें "श्रीकठचरित" महाकाव्यमें काफी बातें दी ह। इससे उस समयके कितने ही व्यक्तियो और कवियोका भी पता लगता ह। कान्यकुब्जके महाराज गोविन्दचन्दके एक दरबारी पडितका भी इन्होने उल्लेख किया है। कश्मीर जसा प्रकृतिकी सुषमाका भण्डार देश इन्हें वणन करनेके लिए मिला था, लेकिन इन्हें सस्कृतके दूसरे कवियोका

श्रीकण्ठचरितम्

(१) पूर्वे कवय —

१ मधुकणमुचो वाचो येषा विसारि रस कम-
प्युरुतरपरीपाकोद्रेका पिका इव बिभ्रति।
त इह कवयो मन्ये नान्ये पुनर्दुरतिक्रम-
क्रमकठिनतायोगाद्येषा विमुह्यति शेमुषी ॥५०॥

२ परश्लोकान् स्तोकान् प्रतिदिवसमभ्यस्य ननु ये,
चतुष्पादी कुर्युर्बहव इव ते सन्ति कवय।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृद ,
सुहृदया वैशद्य दधति किल केषाञ्चन गिर ॥५१॥

३ दिव्ये वाक्प्रसरक्रमे सुकवितु प्रत्यक्षवाचस्पते,
श्रोतृस्तोतकथासु क खलु पटु स्याच्चमचक्षुजन।
लभ्य शेषफणी कुतोऽत्र स तु यश्चक्षु सहस्रद्वये-
नाकर्ण्यैनमथ स्तुतौ वितनुयाज्जिह्वासहस्रद्वयीम् ॥५२॥

४४ मखक (११४० ई०)

अनुकरण करते आमो और आम्र मजरियोके वणनमें आनद आता था, चाहे कश्मीरमें हिमपातके कारण आम एक साल भी न ठहर सकता हो। इनके वशके लोग राज्यके बडे-बडे पदोपर रहते आये थे, इसका उल्लेख इ होने अपने काव्यमें किया ह। इनका परिवार शिवका अन य भक्त था, इसी से शिवको ही लेकर "श्रीकठचरित" काव्यको लिखा, जिसमें २५ सग ह। अपभ्रंश कालके अ य कवियोके दोष-गुण इसमें भी देखे जाते ह।

श्रीकण्ठचरित

१ पहलेके कवि—

१ दुस्तर क्रमकी दुर्बोधताके सम्ब धसे श्रोताओकी बुद्धिको जो विरक्त करते ह उ हें नही बल्कि मै उ हे कवि यहा समझता हू जिनकी वाणिया मधुकण छोडनेवाली किसी विस्तृत रस को अधिक विशाल परिपाकके उत्कषवाले पिकोकी तरह धारण करती है ।।५०।।

२ थोडेसे दूसरोके श्लोकोको प्रतिदिन रट कर,
जो चौपाई बनाते है, ऐसे बहुतेरे कवि ह ।
किन्तु अविच्छिन्न उठती समुद्र-लहरियोकी रीतियुक्त सुहृद,
कि ही कि हीकी (ही) सुमनोहर वाणी विशद होती है ।।५१।।

३ प्रत्यक्ष वहस्पति जैसे सुकविकी वाणीके दिव्य प्रसारमें
श्रोता और स्तुतिकर्ताकी बातोमे कौन चम चक्षु मनुष्य निपुण हो सकता है ? यहा वह शेषोके फण कहा मिल सकते है, जो कि दो हजार आखोसे, सुनकर फिर दो हजार जिह्वाओसे इसकी प्रशसा करग ।।५२।।

४ मेण्ठे स्वद्विरदाधिरोहिणि वश याते सुबन्धौ विधे ,
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते वाणे विषादस्पृश ।
वाग्देव्या विरमन्तु मन्तुविधुरा द्राग्दृष्टयश्चेष्टते,
शिष्ट कश्चन स प्रसादयति ता यद्वाणिसद्वाणिनी ।।५३।।

५ त्रयस्त्रिशत्कोटयो दधतु विबुधा द्वेषकलुषा,
धिय नित्य काव्ये त्रिदशचरिते के वयममी ।
भुव खण्डेऽप्यस्मिन्वत स विधिनैकोऽपि विबुधौ,
न सृष्टो य काव्य धतविमलबुद्धि कलयते ।।५४।।
—सग २

(२) **कश्मीरदेश —**

६ कुवेरसख्या ककुभो ललाटिका यदेति कश्मीरपदाभिधेयताम्
सतीसरोनाम तदस्ति मण्डल विचित्रसर्गाविभृथ प्रजापते
।।१।।

७ विभान्ति यत्रानघदैघ्यसौहृदादहयुभिर्यूपपरिग्रहैदिश ।
कले प्रवेशानवकाशसिद्धये स्वय मुखेष्वकुरितागला इव
।।२।।

८ विभाव्यते सान्द्रहिमाद्रमूतिभि प्रवतिताट्टालकमुद्रमद्रिभि
मणिव्रजैश्वयजितेनसूत्रितप्रदक्षिणक्षीरसरस्वतीव यत् ।।३।।

९ स्थलाधिदेवी कुरुविन्दशेखरप्रभाकुरै कुकुमगभकेसरै ।
करोति यस्य क्षितिरक्षतायुष जगत्रयस्त्रैणविशेषकक्रियाम्
।।६।।

१० वितस्तया यत्र लुठत्तटद्रुमप्रसूनसौहार्दभृतोऽलिसंपद ।
पुरस्क्रियन्ते हठमज्जनोत्सवभ्रमत्सुरस्त्रीकबरीसनाभय
॥७॥

११ रसायनैयत्र पुरंध्रिविभ्रमक्रियामयैरात्तनवीनयौवन ।
पतत्तुषारच्छलतस्तप क्षणे जहाति मूर्तं पलित रतिप्रिय
॥८॥

१२ विवृण्वती कौतुकतन्तुसततिं भुव यदीयामधिगम्य शारदा ।
घनै रजोभिश्चरणारविन्दजै करोति सारस्वतदृक्प्रसादनम्
॥१०॥

१३ स यत्र भग कपटेश्वराख्यया निरस्तलोकत्रयकल्मषक्लम ।
दधद्वपु काष्ठमय जले स्वपित्यनुद्गमायेव दगग्नितेजस
॥१४॥

१४ बिभर्ति मातण्डवपुयदन्तिके पद प्रभुध्वान्तगदैकभेषजम् ।
उपेत्य पौरप्रमदामुखेन्दुभि स्वकान्तिपूरैमसणीकृतातप
॥१५॥

१५ गुणैमयूखैरिव शुद्धिमत्तरैनिकाममुत्तसितसवदिङमुखम् ।
धृतप्रसिद्धि प्रवराख्यया पुर विगाहते यस्य किरीटरत्नताम्
॥२१॥

१६ जयन्ति ते यत्र चकोरचक्षुषा पर विलासा रतितन्त्रसूरय ।
विवृण्वते मान्मथशौयकत्थनप्रथासु ये तथ्यतया समथनाम् ॥
॥२२॥

१७ पयोनिधिप्रेमभुवोमहासरिद्वितस्तयोयत्र चकास्ति सगम ।
वन घनावतनिभेन योजयन्नवालवालैरिव धमगर्मुताम् ॥२४॥

१० जहा **वितस्ता** के पास झरते तटके वृक्षोके फलोर्में मित्रता धारे भवरोके झुड स्नानोत्सवके लिये भ्रमण करती देवागनाओकी चोटियोके समान है ॥७॥

११ जहा रमणियोके विलास क्रियारूपी रसायना द्वारा नवीन यौवन प्राप्त कर **कानदेव** तपके समय गिरते हिमके व्याजसे साकार श्वेत केश छोडता है ॥८॥

१२ जिमकी भूमिमे आकर **शारदा** अपने कौतूहलरूपी बागोको सुलभाती, अपने चरणारविंदोमे उत्पन्न घने रजा द्वारा ज्ञान-दष्टि प्रदान करती है ॥१०॥

१३ जहा तीनो लोककी पापरूपी थकावटको निरस्त किये **कपटेश्वर** नामक शकर, नेत्र-अग्निके तेजको न उठाने के लिय काष्ठमय शरीर धारण कर जलमें सोते है ॥१४॥

१४ निज कान्तिकी धाराओवाले नागरिक प्रमदाओके मुखकमलो द्वारा आतप को नरम किय, **मार्तण्ड** अज्ञान-रोगके एक मात्र औषध जिसके पास मूर्ति धारण करते ह ॥१५॥

१५ अति शुद्ध किरणो जैसे गुणो द्वारा सारी दिशाओको अत्यन्त अलकृत करता, **प्रवरपुर** (श्रीनगर) नामसे प्रसिद्ध जिसका मुकुट-मणि है ॥२१॥

१६ जहा चकोर नयनियोके काम-तन्त्रमे निपुण सुन्दर विलास विजयी है, जो तथ्यनाके तौरपर कामदेवके शौयकी श्लाघाकी प्रथाओका समथन करते है ॥२२॥

१७ घने (जल) भवरो सदृश, नये आलवालोके साथ पुण्यलताको जोडते, जहा सागरके प्रेमकी भूमि (**डल**) और महानदी **वितस्ताका** सगम शोभा देता है ॥२४॥

१८ इतस्तत कुकुमरेणुधोरणीवियोगिनीवध्यपटानिव क्षिपन् ।
न यत्र वायु सहते नतभ्रुवामकाण्डमानग्रहकीतिडिण्डिमम्
॥२६॥

१९ हिमागमे यत्र गहेषु योषिता ज्वलद्वहुच्छिद्रसखी हसन्तिका ।
विभाति जेतु मदनेन शूलिन धृता ततिवह्निमयीव चक्षुषाम्
॥२९॥

२० अनुक्षणानेकनिपीतशात्रवप्रतापवह्निप्रतिवषणादिव ।
असह्यता कस्य न नाम निष्पतज्,
जगाम यद्वामविलोचनाचलम् ॥४९॥

(३) **कविवश —**

२१ वितीय पुष्पस्रजमु मदालिभि पुरस्कृता दैवगुभाक्षरैरिव ।
असूत्रयद्यस्य स सुस्सलक्ष्मापतिवहत्तन्त्रपतित्वकल्पनम् ।
॥५०॥

२२ निवेशिते सुस्सलभूबिडौजसा स्वय गरीयस्यपि सधिविग्रहे ।
विधाय चक्रे स्वयशोमयी लिपि
स लेखवगस्य विमुद्रमाननम् ॥६२॥

२३ अथोदभूतस्य कनिष्ठसोदर स मखको यस्य शिशोरतन्वत ।
शिरस्युपोढा गुरुपादरेणव सरस्वतीकामणचूणनैपुणम्
॥६३॥

२४ अधीतवैदग्ध्यविशेषमक्रमात्कलासु शास्त्रे व्यवहारकमसु ।
विशेषवात्सल्यवतीव य सुत मुखैरचुम्बद्वहुभि सरस्वती
॥६५॥

२५ अनन्तर सुस्सलदेवनन्दनो यमादगच्छ्रीजयसिहभूपति ।
व्यधात्प्रजापालनकायपूरुष रुष वितन्वन्नविनीतजन्तुषु ।६६।

१८ केसर धूलिकी पक्तिवाला, वियोगिनियोके वध-सम्बधी लाल वस्त्रोको सा इधर उधर फेकता वायु जहा तिरछी भौहोवालियोके असमय मान करन के कीर्तिनगाडेको नही सहता ।।२६।।

१९ जाडोमे जहापर स्त्रियोके घरोमे बहुत छिद्रोवाली जलती कागडिया, शकरको जीतनेके लिये कामकी अग्निमय नेत्र-पक्तियोसी सोहती है ।।२९।।

२० तुरत अनेक शत्रुओके प्रताप-अग्निको बराबर पीकर वमन करता सा, जिसकी सुदरियोका गिरता अचल किसको सह्य हो सकता था ।।४९।।

३ कवि का वश—

२१ देवके शुभ अक्षरो जैसे मस्त भ्रमरोसे युक्त पुष्पमालाको प्रदान कर, **सुस्सल** राजाने जिसे धर्माधिकारी पद प्रदान किया था ।।५०।।

२२ पथिवीन्द्र **सुस्सल** द्वारा स्वय बडे सधि विग्रह मत्रीके पदपर स्थापित किये जाने पर, जिसन अपनी यशोमयी लिपि लिखकर लेखक-वगके मुहको मूद दिया ।।६२।।

२३ फिर उसका छोटा सहोदर मखक हुआ, जिस शिशुको सिर पर रक्खी गुरुकी चरण-धूलिया सरस्वतीके वशीकरण-चूणकी निपुणता को प्राप्त हुइ ।।६३।।

२४ कलाओमें, शास्त्रमे, न्यायालयकममे एक साथ पढकर विदग्ध हुआ देख, जिस पुत्रको सरस्वतीने विशेष वात्सल्यसा मानो बहुत मुखोसे चूमा ।।६५।।

२५ पीछे **सुस्सलदेव**के पुत्र राजा **श्रीजयसिंह** ने आदरके साथ (मखकको), दुष्ट प्राणियोपर रोष करते प्रजा पालन-कारी पुरुष बनाया ।।६६।।

२६ लीलामुक्तमनुष्यविग्रहमयग्रन्थिग्रह शाङ गिणस्,
तीर्थे सोऽथ तिथौ वहत्ववनिभत्पुत्रीपतेरभ्यगात् ।
वामाधध्वजराजदण्डपतितत्रस्तापराधस्खलत् ,
केलीककणदन्दशूकबहुलोत्फालावचूले वपु ॥७०॥

२७ इत्थ याते पितरि झगिति ब्रह्मभूय य आसीद् ,
अन्तस्तेषा विषमविषमाहकृति शोकशकु ।
चेतोभित्तेरनुपधिबृहद्वन्धुरेको विवेको,
लब्धोद्रेको निभृतनिभृत्त त शनैरुच्चखान ॥७१॥

२८ एकादश्या व्रतनियमवानेकदा तत्कनीया-
नेकाकी सन् भवनवलभी मखक सोऽधिशिश्ये ।
वागीश्वर्या वदनवसते केवल वाहहस-
व्यजन्गण्डस्थलपरिणमच्चन्द्रबिम्बच्छलेन ॥७२॥

२९ स्वप्ने तत्र ददश स स्वपितर देह वह त मिल-
त्तापिच्छच्छदकेतकच्छविवपुष्खण्डद्वयीकल्पितम् ।
एकाधे न वमन्तमग्रचरणद्वारेण मन्दाकिनी-
मन्यार्धेन च विभ्रत पटुरटद्वीचि जटावत्मनि ॥७३॥

३० द्वैराज्यकारि सुमनोनिवहस्य कण-
पूरश्रिय किमपि वाङमयमध्यगोष्ठा ।
तत्कि पुनासि न सुत, क्षणदाकुटुम्ब-
लेखावचूलचटुयुक्तिभिरुक्तिदेवीम् ॥७५॥

३१ पितृभारतीविवृतपौष्टिकक्रियाक्रममाण-
भक्तिसहवासि मानस ।

इति स प्रबन्धयति मखको गिर
विरचय्य शकरचरित्रकिंकरीम् ॥७८॥

२६ फिर पावती पतिकी तिथि (शिवरात्रि) को
विष्णुतीथमे **मखक** ने मनुष्य-शरीरके बधनसे अप्रयास मुक्त हो,
वाये अर्धांगमे ध्वज राज दड से गिरे सत्रस्त दाहिने अध भागसे गिरत
क्रीडा-ककणरूपी सपको उठा शरीर प्राप्त किया ।।७०।।

२७ इस प्रकार पिताके तुरन्त ब्रह्मरूप हो जानेपर जो उनके
भीतर अति विषम अहकार शोकका काटा था
उसे अकारण महाबधु विवेक ने चित्त भित्तिसे
प्रकषता प्राप्त कर चुपके चुपके धीरेसे उखाड दिया ।।७१।।

२८ एकादशीको एक बार व्रत नियम रक्ख भाइयोमे सब से छोटा, **मखक**
एकाकी मकानकी अटारीपर सरस्वतीके मुख-बसतीके केवल
वाहन हसको कपोलके पूण चद्रमडलके बहाने व्यक्त करता
सो गया ।।७२।।

२९ वहा स्वप्नमे उसने अपने पिताको देखा एक आधेसे शरीरका
मिलते तापिच्छ पत्र केवडेके शोभावाले दो खडोसे निर्मित, अगले
चरणसे वमन करते दूसरे आधेसे जटा-मागमें लहरोवाली घरघराती
गगाको धारण करते ।।७३।।

३० दो राज्य करनेवाले कण-भूषणयुक्त श्रीसे पुष्प-समूहसे कुछ
वाङमयको तुमने पढा है। सो हे पुत्र, क्यो नही तू शकरका महात्म्य
वणन करनेवाली युक्तियोसे वाणीदेवीको पवित्र करता ।।७५।।

३१ पिताकी वाणीसे खुली पौष्टिक क्रियाको बढाती भक्तिसे युक्त
मनवाला, **मखक** शकर चरित्रकी दासी वाणी की रचना करता
है ।।७८।।

—सग ३

(४) मदनाभियानम्—

३३ तद्वपष्युपहित विरराज क्रीडया कदलिपत्रतनुत्रम् ।
नीलिमाद्वयनयान्न कथचित्तत्र यस्य घटते परभाग ॥१॥

३४ कामिसततिहृदन्तरवासक्रान्तरागलहरीसमरीति ।
पाटलापटलमभ्युदगच्छद्वीरपट्टघटनाधिललाटम् ॥२॥

३५ माधवग्रथितया कृतरोध गोधया विकचचम्पकमय्या ।
उज्झितेऽपि वलये कृतकेलिस्वणककणमिवास्त भुजाग्रम्
॥३॥

३६ चापमाप करपकरुहाक पाटल दलदशोककुलेन ।
सवत परिणताधररागे चुम्बनादिव जगज्जयलक्ष्म्या ॥४॥

३७ तद्धनुर्गुणलताग्रनिषण्णै क्षोभयत्रिजगदप्यशिलावै ।
साजनैविरहिणीनयनाम्भ सीकरैरिव करालितमासीत् ॥५॥

३८ सोऽस्त्रपुष्पनिवहैर्भृतगभ पृष्ठवत्मनि ररग निषग ।
यत्र सौरभहृतभ्रमरौघे मज्जति स्म शिथिल कचभार ॥६॥

३९ अन्वरोधि दधता गुरुरह सैहलेन रथता पवनेन ।
सौरभादुपनतैरलिचक्रैर्योऽग्रसगतरथाग इवासीत् ॥७॥

४० आतपत्रपदवीमधिशिश्ये मण्डलो रजनिभर्तुरखण्ड ॥
चित्रमध्वगसरोजमुखीना योन्तरातपविशेषमपुष्यत् ॥८॥

४१ आकुलन्कलकलाननबध्नन्नग्रत परभृतोऽजनि बन्दी ।
य पृषत्कसहकारपरागैरप्यनीयत पर परितोषम् ॥९॥

४ मदनका आक्रमण

३३ वह शरीरपर केलेके पत्तोका कवच रक्खे लीलाके साथ विराज रहा था। नीलिमाके दो नयनोके कारण वहा उसमे कुछ भी भेद नही होता था ॥१॥

३४ कामी जनोके हृदयके भीतरक वस्त्रमे लगी अनुरागकी लहरीके समान पाटला पुष्पके समूहोका वीरो-पट्ट ललाटपर बधा था ॥२॥

३५ युद्धके समय क्रीडाके सुवण-ककणधारी भुजकी हथलीकी तरह ककण छोडनेपर भी, चैत्रकी गुथी फूले चम्पकोवाली प्रत्यचा द्वारा वह आच्छादित था ॥३॥

३६ फूले अशोकोस हस्त पद्मयुक्त लाल धनुपको पकड मानो जगत्-विजयरूपी लक्ष्मीके चुम्बनस गहरा अधर राग सवत्र (लगा) ॥४॥

३७ उस धनुषकी ज्या-लताकी नोकपर बैठ भ्रमर-बच्चो द्वारा तीनो लोकको भी शोभित करते विरहिणी के अजनयुक्त नेत्रोके अश्रु कणो द्वारा (वह) मानो प्रकाशित हो रहा था ॥५॥

३८ अस्त्ररूपी पुष्पोसे भरा तूणीर उसकी पीठपर सोह रहा था, जहा सुगधसे आकृष्ट भवरोमे (उसका) शिथिल केश डूब रहा था ॥६॥

३९ भारी वेग धारी सिंहलकी ओरसे आये (दखिना) वायुको किसने रोक दिया सुगधके कारण आय भ्रमरो द्वारा जो आगे लगे चक्केसा था ॥७॥

४० रजनी पति (चद्र) के पूण मण्डलने छत्रका रूप धारण किया, जिसने बटोहियोकी कमलमुखियोकी अतर्ज्वालाको विचित्र तौरसे विशेष बढा दिया ॥८॥

४१ व्याकुल कलरव करती कोयले आग आगे बन्दीजन बनी, जो कि वाणरूपी आमोके परागो से बहुत परितुष्ट थी ॥९॥

४२ आवहन् प्रविशदुद्धतमानन्यक्कृति युवतिहृद्भवनेषु ।
दृप्तता दधदधिप्रतिहार पचमोऽप्युपययौ प्रथमत्वम् ।।१०।।

४३ उन्नतस्य झगिति स्वयमग्र केतनस्य तिमिरमध्यशयिष्ट ।
वाहिनीविरहिणीक्षणवाभिय प्रपचयति वासधियेव ।।११।।

४४ कौतुकादिति जगत्त्रयलक्ष्मीमुद्यतो रतिपति परिणेतुम् ।
सननाह दयितापितनेत्रप्रान्तकान्तिपुनरुक्ततनुत्र ।।१२।।

(५) रतिवारणा—

४५ "प्रिय खण्डयितु वियोगिनी कतरस्तेऽयमियान्परिश्रम ?
अबलादलनात् क्व वाद्यते वद वीरव्रतकीर्तिडिण्डिम ।।१३।।

४६ स्वयमेव कथ प्रवतसे त्रिजगज्जेतुमपोढरकट ।
घटते मधुनेन्दुनाथवा न तदेकेन पदातिनापि ते ।।१४।।

४७ स निहत्य बभूव राघव स्त्रियमेकामपि दुयशोनिधि ।
तव नाथ कथ नु कीतन त्रिजगत्स्त्रैणबधात्प्रवत्स्यति ।।१५।।

४८ शमिनामथ धैयलुप्तये यतसे बिभ्रदाशुग धनु ।
अधिक वद कि त्वयेप्सित स्वशरीरव्ययतोऽपि सत्फलम् ।।१६

४९ तव दुमदता कियत्यहो हरनेत्राग्निशिखाकुरै शितै ।
घटनादधुनापि यस्य नो भुजकण्डूरुपशान्तिमश्नुते ।।१७।।

५० विजहीहि मुधा तपोधनानवजेतु स्मर चापचापलम् ।
पुरत पुनरप्यह सहे नहि वैधव्यविषादविक्रियाम् ।।१८।।

४२ प्रवेश करते तीव्र मानके तिरस्कारको युवतियोके हृदय भवनमे लाते, प्रतीहारोक दप धारण करने मे पचम (राग) भी प्रथम हो गया ॥१०॥

४३ ऊचे ध्वजके अग्रभागपर तुरत स्वय तिमि (मत्स्य) लेट गई जो (अपन) निवासके विचार मे विरहिणियोके नेत्र-जलकी नदिया बहाता है ॥११॥

४४ तीनो लोककी लक्ष्मीको व्याहनके लिये उद्यत प्रियाक ऊपर डाली दष्टिक कोनोकी कान्तिके समान कवचवाला कामदेव कौतुक पूवक सन्नद्ध हुआ ॥१२॥

५ रतिका रोकना—

४५ 'हे प्रिय वियोगिनियोके दलन के लिये तेरा यह कौन सा प्रयास है? बतला अबलाओके दलन करनेसे वीर व्रतवालोकी कीर्तिका कहा नगाडा बजता है ॥१३॥

४६ कवचबद्ध हो तीनो लोकको जीतनेके लिय स्वय ही तुम क्यो प्रस्थान करते हो? क्या वह एक वसतसे या चद्रमारूपी प्यादेसे नही हो सकता ॥१४॥

४७ राम एक ही स्त्रीको मारकर अपयशके निधान बने। हे नाथ तीनो जगतकी स्त्रियोके वध करनेसे कैसे तुम्हारा यश होगा ॥१५॥

४८ यदि यतियोके धयको लुप्त करनेके लिये धनुष बाण धारी हो प्रयत्न करते हो, तो अपन शरीरके नाशसे भी बताओ तुमने कौनसा अधिक अच्छा फल पाया ॥१६॥

४९ अहो तुम कितने दुमद है, जिसकी भुजाकी खुजलाहट शकरके नेत्र-अग्निकी ज्वालाके तीक्ष्ण अकुरोके ससगसे आज भी शान्त नही होती ॥१७॥

५० हे काम, तपस्वियोको जीतनेके लिये धनुषकी व्यथ चपलताको छोडो। पहले ही से वैधव्य (पाये) दु खके विकारको फिरसे मै नही सह सकती ॥१८॥

५१ शमिषु त्यज तजनोद्यम सफलानुग्रहनिग्रहा हि ते ।
ननु निश्चितनिष्फलश्रमो व्यवसायोऽयमनर्थसश्रय ॥१९॥

५२ त्रिजगद्विजये स्म सभृत ललना एव तवैकसाधनम् ।
कतरेण पथाथ जेष्यसि प्रथम ता यदि हस्यनागस ॥२०॥

५३ भवतोज्झित एव विग्रह सुमनोमागणपूरणैषिणा ।
तव नाथ, तथाप्यय कथ परबाधाय मुधैव दुग्रह ॥२१॥

५४ अधुनाऽप्यनुभूयते त्वया स्मर शापात्फलमब्जजन्मन ।
किमय क्रियते तदप्यहो बहुमन्वन्तरशापसग्रह ॥२२॥

५५ कुसुमैनिहता कथ व्यथामुपयान्तीति वृथैव मन्यसे ।
मणिमन्त्रपथातिवर्तिना विषमेषा हि पुरोऽमृतायते" ॥२३॥

५६ सनयै सभयैश्च विस्तरैर्वचसामित्यरुणत्स्मर रति ।
स तु तत्करतोऽशुकाचल द्रुतमाकृष्य मदेन निययौ ॥२४॥

५७ विलोचनाम्भ सरितो व्यनक्ति सा मुखेन मीनाकपथानु -
बन्धिनी ।
ह्रदेषु यासा प्रतिबिम्बिताश्चिर व्रजन्ति सरयो जलमानुषी-
लिपिम् ॥२५॥

५८ भुजग, तस्या विरहापचारित प्रवर्धमानोऽभ्यधिक मधावपि ।
त्वदाप्तिसकल्पचमत्क्रियौषधैर्निशीथिनीना श्वयथुवि-
लुप्यते ॥२६॥

५९ ससौरभश्वासहृतैर्मधुव्रतै स्मरोप्तहालाहलबीजबन्धुभि ।
निपत्य तस्या पुरतोऽश्रुसारणीभृता हलोल्लेखरुजेव
जन्यते ॥२७॥

५१ यतियोकी तजनाका प्रयत्न छोडो, वे अनुग्रह और निग्रह करनेमें समश होते है। तुम्हारा यह प्रयत्न निश्चय निष्फल-श्रम अनथकर है॥१९॥

५२ तीनो जगतके विजयमे लगे तेरे पास ललना एक ही साधन है। यदि पहले उन्ही निरपराधिनियोको मारता है, तो कौन उपायसे तू जीतगा ॥२०॥

५३ विद्वानो (फूलो) के मागण (मागने या बास) के पूरनेके इच्छुक हो आपने विग्रह छोडा ही है। हे नाथ तो भी दूसरेको व्यथ पीडित करनेके लिये यह दुराग्रह क्यो॥२१॥

५४ हे काम ब्रह्माके शापका फल अब भी तू भोग रहा है। तो भी हाय, दूसरे बहुतसे मुनियोके शापोको यह क्यो जमा कर रहा है॥२२॥

५५ 'फूलोके मारे क्या दुखी होते ह', यह तू वृथा ही सोचता है। मणि और मत्रकी पहुचके बाहर (तेरे) इन वाणोस विष भी अच्छा है'॥२३॥

५६ रतिने नययुक्त भययुक्त विस्तत वचनोसे कामको रोका, किन्तु वह उसके हाथसे वस्त्रक छोरको खीचकर मदके साथ जल्दीसे निकल गया॥२४॥

५७ रतिने कामदेवके पथका अनुगमन करनेवाली आसूकी नदियोको अपने मुखसे प्रकट किया। जिन (नदियो) के दहोमे प्रतिबिम्बित सखिया चिर कालसे जलमानुषियोकी लेखा बन रही है॥२५॥

५८ हे लम्पट, रतिके विरह द्वारा अपचारित हुआ मधुमासमें अत्यधिक बढता, तुझे पानेके सकल्पकी चमत्कारिक औषधियो द्वारा रात्रियोका बढना रुकता है॥२६॥

५९ सुगधित साससे आकृष्ट कामके बोये हलाहल-बीजके प्रेमी भ्रमरो द्वारा सामने गिरकर रतिके आसूकी नहर धारण करनेवाली हलकी जुदाईकी पीडा सी पैदा हुई॥२७॥

६० कुचस्थले सा बिसकाण्डतन्तुभिविवृण्वती हारलतापरिग्रहम्।
व्यनक्ति लब्ध मदनादबध्यता धृतोपवीतामिव देहकन्द -
लीम् ।।२७।।

६१ अनल्पसकल्पवशेन मन्यते दिशस्त्वदाकारकृतावगूहना ।
ततश्च सा तासु मुहुविमुग्धधीविमुचतीर्ष्याकलुषे विलो-
चने ।।२९।।

६२ शशाककान्तोपलकुट्टिमेषु सा विभाति सक्रान्तवपु प्रति-
क्षपम् ।
रसातले कर्तुमिवोद्यता शशिच्छविच्छटासगभयेन मज्जनम्
।।३०।।

६३ वियोगवत्या शबले कुचस्थले सकज्जलप्रोच्छलदश्रुचक्रकै
कथचनोच्छ्वासधुते विभाव्यते, निवेश्यमानाम्बुजिनीदला-।
वलि ।।३१।।

६४ व्यनक्त्युपान्ते श्रवसोवलत्तनु सकज्जला सा नयनाम्बु-
पद्धतिम् ।
स्वका स्वसार रविजेन निम्नगा, पुरो विसृष्टामिव दूत्य-
सिद्धये ।।३२।।

६५ स्तनाग्ररम्भादलडम्बरेषु सा पतद्भिरात्ताजनमश्रुण कर्णै ।
यियासता दूरमनगशासनाल्लिखत्यसूना पथि पट्टकानिव
।।३३।।

६६ तत किमन्यद्वहुनाधुनापि चेदपैषि चातुयवशवदै पदै ।
न जायते ते तदकीर्तिकल्मषप्ररोहकल्माषनिवेशन
यश ।।३४।।

६७ निपीय दूतीवदनात्तजन्मन क्षण श्रुतिभ्यामिव वाक्य
विप्रुष ।
जवाद्युवानो दधत पदात्पद ययु प्रियाणा नयनोच्चु-
लुम्प्यताम् ।।३५।।

६० केश-स्तनस्थानमे कमलततुओ द्वारा हार धारण करनेको प्रकट करती रति मदनसे अबध्यता पानेका यज्ञोपवीत धारण करती देह लताको प्रकट कर रही थी ।।२८।।

६१ बहुत सकल्पोके कारण दिशाओको तेरे आकारसे ढाकनेवाली मानती, और इसलिये उनमें बार-बार विमोहित, वह ईर्ष्यालु-नेत्रा हो नजर डालती थी ।।२९।।

६२ चद्रकान्त पत्थरक चबूतरोपर अपने शरीरको प्रतिबिम्बित करती प्रतिरात्रि शोभा देती, वह मानो चादनीकी छटाके ससगके भयसे रसातलमे डूबने के लिये तैयार थी ।।३०।।

६३ उस वियोगिनीके मलिन स्तन-स्थलपर कज्जलसहित गिरते आसुओ द्वारा रक्खी हुई कमलिनियोके पत्रोकी पक्तिया सासके कपनसे किसी तरह जान पडती थी ।।३१।।

६४ छटपटाते शरीरवाली वह कज्जलयुक्त आसुओके रास्तेको दोनो कानोके पास प्रकट कर रही थी। मानो यमने दूती के कामकेलिए अपनी बहिन जमुना नदीको वहा छोडा हो ।।३२।।

६५ वह स्तनके ऊपरके कदलीपत्रोके ऊपर कज्जलयुक्त गिरते आसुओके कणो द्वारा, कामदेवकी आज्ञासे दूर जानेके इच्छुक प्राणोके लिय मागपत्र लिख रही थी ।।३३।।

६६ फिर अब बहुत कहनेसे क्या जल्दी करते पैरोसे यदि तू जारहा है तो उस अपयशरूपी पापके उत्पादक मलस्थानीय यश मुझे नही प्राप्त होगा ।।३४।।

६७ दूतिके मुखोसे जन्म लेनेवाले (काम) के वाणी रूपी बूदोको मानो कानोसे क्षण भर पीकर, वेगसे पैरके बाद पैर रखते तरुण (लोग) प्रियतमाओके नयनोके पान बने ।।३५।।

६८ अभ्रलिहोल्लोलकुले कुचेपु क्षिप्र क्षिपत्यक्षतमौक्तिकाली ।
बभूव वैमानिककामिनीनामयत्नतो हारलतानिवेश ॥३६॥

६९ इन्दौ सुदूरोच्छलदूर्मिमुक्तैर्मुक्ताफलैरात्तनवावगूहे ।
दक्षस्य कन्याश्चुकुपु प्रसगमाशक्य तस्येतरता रकाभि ॥३७॥

७० तुगोर्मिभगेषु सुरर्षिलोक प्रसगतोऽप्यग्रमवाप्तवत्सु ।
आचान्तये प्रोद्धृतसीधुशेषभयेन पस्पश न तत्पयासि ॥३८॥

७१ छन्नेऽम्बरेऽनगलवीचिचक्रादुत्थाय मीनैमकरैरनेकै ।
मौहूर्तिकाना प्रबभूव दृष्टिर्न राशिसचारविनिश्चयेषु ॥३९॥

७२ दूरोच्छलल्लोहितकाशुजालैरालम्बमाना नवमगरागम् ।
खे सौम्यकाव्यागिरसादयोऽपिते,
न कस्य भौमभ्रममेव चक्रु ॥४०॥

—सग १२

(६) कविगण —

७३ बाणोपम प्रबन्धो लकक, तव पत्रलब्धदूरगति ।
विध्यति कस्य न हृदय विविधसमज्यानिवेशेन ॥४६॥

७४ एक श्रीजयसिहपार्थिवपति काश्मीरमीनध्वज,
तस्योपासितसधिविग्रहमलकार द्वितीय स्तुम ।
भूभार प्रथमेन पन्नगपते क्ष्मा रक्षता वारितो,
नीतोऽन्येन कृतार्थता प्रवचनैर्भाष्योपदेशश्रम ॥६१॥

७५ प्रक्रमैहठवक्रिम्णो मुरारिमनुधावत ।
श्रीराजशेखरगिरो नीवि यस्योक्तिसपदाम् ॥७४॥

६८ स्तनोपर अक्षतरूपी मोतियोको जल्दी फेंकता वह मेघचुम्बी चचल स्थलोपर वैमानिक कामिनियोक लिये बिना प्रयत्नके हार, लता वन गया।।३६।।

६९ सुदूर उछलती लहरोसे छोडी मोतियो द्वारा नव-आलिंगन प्राप्त चद्र पर दूसरी ताराओके ससगकी आशका करती दक्षकी कन्यायें कुपित हुइ।।३७।।

७० प्रसगसे अग्रता प्राप्त उत्तुग लहरियोमे दर्वार्षियोने, तलछट मदिराके भयसे आचमनक लिये उसके जलको नही छुआ।।३८।।

७१ निराबाध लहरोसे उठ अनेक मीनो और मकरो द्वारा आकाशके ढक जानेपर, ज्योतिषियोकी दष्टि राशियोक सचारके निश्चयमें समथ नही हुइ।।३९।।

७२ दूरसे उछलत लाल किरण-जालो द्वारा नय अगरागको लगाये आकाशमे लटकते बुध-बहस्पति शुक्र आदि ने भी किसीको मगलका भ्रम नही पैदा किया।।४०।।

—सग १२

८ कविगण—

७३ हे **लकक** **वाणके** समान तेरा ग्रथ (और) पत्र द्वारा प्राप्त (तेरी) दूर गति, विविध सभाओमे (अपनी) प्रतिष्ठा द्वारा किसके हृदयको नही बेधती।।४६।।

७४ एक श्री**जयसिंह** राजारूपी **कश्मीरके** कामदेवको दूसरे उसके सधि-विग्रह मन्त्री **अलकारकी** हम स्तुति करते है। प्रथम (जयसिंह) ने पृथिवीकी रक्षा करते शेषके भूभारको हटाया। दूसरेने अपने प्रवचनो द्वारा महाभाष्यके उपदशके परिश्रमको कृताथ किया।।६१।।

८५ अपने प्रक्रमो द्वारा वक्रोक्तिमे **मुरारिका** अनुकरण करते श्री **राजशेखरकी** वाणी जिसकी वचन-सम्पदाकी (अक्षय) निधि है।।७४।।

७६ श्रीमद्राजपरीसंधिविग्रहस्य नियोगिनम् ।
अथानच वचोभिस्त जल्हण विनयाञ्चितै ।।७५।।

७७ यो रजयति सद्वगरससचारणोज्ज्वलै ।
न कस्य स्वप्रबन्धोक्तिवण पूर्णैरिवाननम् ।।७६।।

७८ पुनानमाभिजन्येन कृत्य पाण्डित्यपद्धते ।
निसर्गात्तमसदिग्ध श्रीगोविन्दमविन्दत ।।७७।।

७९ श्रीमानलकदत्तोऽयमनल्प काव्यशिल्पिषु ।
स्वपरश्रमसवस्वन्याससभ्यममन्यत ।।७८।।

८० तमापचस्करे येन निजवाड मयदपण ।
बिल्हणप्रौढिसक्रान्तौ यथा योग्यत्वमग्रहीत् ।।७९।।

८१ तत्ततद्बहुकथाकेलिपरिश्रमनिरकुशम् ।
त प्रश्रयप्रयत्नेन कल्याण सममीमनत् ।।८०।।

८२ व्यनक्ति पृथु सामथ्यमारयाया एव योऽक्षरै ।
जयेऽभिनवगुप्तस्य प्रकट प्रथमो गुरु ।।९४।।

८३ पाणिनीयातपत्रेण पवित्र यस्य तन्मुखम् ।
सग स्वप्नेऽप्यवाप्नोति नापशब्दरज कर्णै ।।१००।।

८४ स्वस्येश्वरस्य यो ब्यजन्मण्डले मन्त्रसस्क्रियाम् ।
धत्ते सदागमप्रीतिं दैशिकाना धुरि स्थितम् ।।१०१।।

८५ अन्य स सुहलस्तेन ततोऽवद्यत पण्डित ।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुज ।।१०२।।

—सग २५

७६ श्री राजसंधि-विग्रहके अधिकारी उस **जल्हणको** विनययुक्त वाणियोस पूजा।

७७ जो सत्पुरुषोके वर्गका मे रसके सचारसे उज्ज्वल अपने ग्रथ कथित पूर्ण वर्णोसे किसके मुखको नही रंजित करता ॥७४॥

७८ उत्कृष्टतासे पांडित्य-पद्धतिके कार्यको पवित्र करते, स्वभावत ही असदिग्ध **गोविन्दको** श्री प्राप्त हुई ॥७७॥

७९ इस श्रीमान् अलकदत्तने काव्यशिल्पियोमे, अपने पराये श्रमकी सम्पत्तिकी भारी धरोहरको माना ॥७८॥

८० जिसने **बिल्हण** जैसी प्रौढतामें पहुंचनेमे, जिसके द्वारा योग्यता पाई ॥७८॥

८१ उन उन बहुत सी कथाओकी क्रीडामें निरकुश उसे प्रश्रय दे प्रयत्न पूर्वक कल्याणकर माना ॥८०॥

८२ नामके ही अक्षरो द्वारा जो (अपनी) बडी सामर्थ्यको प्रकट करता है जो **अभिनवगुप्तके** विजयमें प्रथम गुरु प्रकट हुआ ॥९४॥

८३ **पाणिनीय** (व्याकरण) के छत्रसे जिसका वह मुख पवित्र है स्वप्नमें भी (जो) अशुद्ध शब्दरूपी मलसे लिप्त नही होता ॥१००॥

८४ जो अपने स्वामीके मंडलमें मंत्र-संस्कारको व्यक्त करते, आचार्योका धुरीण होते सदा आगमो मे प्रेम रखता है ॥१०१॥

८५ वह दूसरा सुहल है तिससे **कान्यकुब्जके** राजा **गोविन्दचन्द्रके** दूत पंडित ने वंदना की ॥१०२॥

४५ वाग्भट्ट (११४० इ०)

यह कलिकाल सवज्ञ हेमचद्रके समकालीन जन कवि थे, जिहोने १५ सर्गोंमें तीथकर नेमिनाथके सम्बधमें "नेमिनिर्माण काव्य" लिखा ह। बौद्धोने प्राकृतके आरभिक युगमें ही सस्कृत कवितासे नाता तोड लिया, केवल वैयाकरण चद्रगोमी अपवाद थे, जिहोने "लोकानद" नाटक लिखा, जो अब तिब्बती अनुवादमें ही मिलता ह। बौद्धो और जनो दोनोने सस्कृत कविताकी ओरसे दृष्टि हटाकर दशनकी ओर ध्यान दिया, और कविताका क्षेत्र ब्राह्मणोके लिए छोड दिया। वाग्भट्ट जैसे कुछ और जन कवियोने भी

नेमिनिर्वाणम

वसन्त —

१ अथ विकासिकुशेशयलोचनस्तमवलोकयितु कुतुकादिव।
उपययौ मधुर्रपितकामिनीस्मरवशो रवशोभितकोकिल ॥१७॥

२ पथिकमानसकाननपावकस्मरमिव प्रतिबोधयितु दधे।
यमदिशा शिशिरात्ययत स्फुरत्कमलयामलया मलया-
निल ॥१८॥

३ कुसुमचापनृपायुधहम्यताप्रवहति स्म भृश कतरद्वनम्।
मिथुनपानघटी सुभगीभवत्तरुतल रुतलम्पटषट्पदम् ॥१९॥

४ अपतुषारतया विमलत्विषा हिमकरेण सहेलमनीयत।
मलयशैलभुवा मरुताभितो विचरता च रताकुलता जगत्
॥२०॥

५ अपि तरुस्तिलक पुलक दलन्मुकुलराजिमिषादपुषत्तनौ।
मृगदृशीभिरवेक्षित एव तत्किमुदितो मुदितो न युवा जन
॥२१॥

४५ वाग्भट्ट (११४० ई०)

कविताके क्षेत्रमें हाथ बढाया, लेकिन उन्हे सफलता नहीं हुई। बौद्धोने तो शायद इसी ख्यालसे इधर प्रयास भी नहीं किया। लेकिन, इन दोनो धर्मोंने लोकभाषा साहित्यको समृद्ध करनेकी कोशिश की। बौद्धोके काव्य अपभ्रंशमें मिलते ह।

वाग्भट्टकी कृति शब्दाडम्बरपूर्ण ह, जो उस समयके दरबारी पडितोका ही अनुरजन कर सकती थी।

नेमिनिर्वाण

वसन्त-वर्णन—

१ तब कामिनियोको कामके वशमे करनेवाले कोकिलके कलरवसे शोभित, फुल्ल-कमललोचन मधुमास मानो उन्हे देखनेके कौतूहलसे, आया ॥१७॥

२ शिशिर ऋतुकी समाप्ति पर फूलते निमल कमलवाला दक्षिण दिशासे मलयानिल (आ), पथिकोके मानस-दावानलरूपी कामको मानो जगान लगा ॥१८॥

३ कामदव नपकी आयुधगारताको कौनसा वन अधिक धारण करता था। गुजनमे रत भ्रमरोवाला वक्षतल-युगल मद्य घटकी सुदर जोडी हो रहा था ॥१९॥

४ धुधक न होनेसे निमल प्रकाश चन्द्रमाने मलयपवतके वायुके साथ विचरते जगतको रागस व्याकुल कर दिया ॥२०॥

५ तिलक-वक्ष भी खिलती कलिके बहाने शरीरमें पुलकित हुआ, मृगनयनियो द्वारा देखे जाने पर क्यो न तरुण जन मुदित होवे ॥२१॥

६ रुचिरचन्दनराजिमृगीदशा
कमपि लास्यविधि दिशति स्म य ।
अनिलमुज्ज्वलसौरभमाकुला
स्तमलयो मलयोत्थितमन्वयु ॥२२॥

७ मृदुसमीरणघूर्णितविग्रह किशलयारुणकान्तिमतकयत् ।
मदिरयेव वधूमुखदत्तया युवकुल बकुल मदविह्वलम् ॥२३

८ वहति शैत्यममन्दगतिश्च खे विरहिदेहविदारणदारुण ।
कुसुमचापनृपस्य जगज्जये विधुरितो धुरि तोमरता ययौ
॥२४॥

९ अमरधोरणिदर्शिततोरणैर्मधुमहोत्सववेश्मतुला गतै ।
प्रणयिन प्रमदासु वितेनिरे कुरवकैरवकैतवमानसा ॥२५॥

१० निजकलत्रकुचाननमण्डलस्मृतिभवस्मरसज्वरमध्वगै ।
समभवन्सरित पथि दुस्तरा सरसकोकसुकोकनदश्रिय
॥२६॥

११ कुसुमबाणसितातपवारणाद्विचिकिलात्सुरभित्वजयश्रियम् ।
किमपि नो कुसुमेषु समाददे विदलितादलितानमनोहृत
॥२७॥

१२ गिरिषु कन्दरकिन्नरकामिनीजनितगीतरवश्रवणादभूत् ।
हरिणधोरणिरुन्मदमानसा धृतिमिता तमितायतलोचना
॥२८॥

१३ विशदचन्द्ररुच स्फुटचम्पकप्रकरचारुदिशो मधुवासरा ।
विदधुरुन्मनस न कमुत्कटस्मरबला रवलालसकोकिला
॥२९॥

१४ मुहुरुदस्तपतद्वलयावलि प्रवसता रमणेन तनुर्भृशम् ।
अभिललाप समागममगना न सह का सहकारविलोकिनी
॥३०॥

६ रुचिर चन्दन-पंक्तियोमे स्थित मगनैनियोको जो किसी नृत्यका ढग सिखलाता था, उज्ज्वल सुगधवाले फले (उस) मलयानिलका आकुल भ्रमरोने अनुगमन किया ।।२२।।

७ मदु वायु से हिलते शरीरवाले, नवपल्लवसे अरुण कान्तिवाल बकुल-वक्षको मद्यसे विह्वल तरुणोन वधूक मुखसे मिली मदिरा जैसा समझा ।।२३।।

८ विरहियोके देहके विदारण करनवाला दारुण वायु तीव्र गतिसे आकाशमे सर्दी ला रहा था काम-नपके दिगविजयके लिये चन्द्र निश्चय तोमर बन गया था ।।२४।।

९ मधु महोत्सवक गह-समान अमरोकी पुरीमे दिखाय तोरणो द्वार। निश्चल मनसे प्रमियोन कामिनियापर कुरबक सजाये ।।२५।।

१० अपनी पत्नीके स्तन-मुखमडलके स्मरणसे उत्पन्न कामज्वर द्वारा पीडित बटोहियोके लिये, रास्तेकी सरस कायले और सुन्दर कमलसे शोभित नदिया दुस्तर हो गइ ।।२६।।

११ विदलित भ्रमरोके तानसे आकृष्ट मनवालोने पुष्पोसे, कामके भीगे श्वेत छत्रसे सुगधरूपी जयश्रीको नही लिया ।।२७।।

१२ पवत कन्दराओकी किन्नर कामिनियोके गाये गीतोके शब्दोके सुननेसे, मुद्रित विस्तत आखोवाली मगनैनिया उन्मत्त मानस हो सीमित धैयवाली हुइ ।।२८।।

१३ स्वच्छ चद्रकी चादनीयुक्त फूले चम्पकके समूहसे सुन्दर दिशाओवाले, शब्दकी लालसावाली कोयलो जैसे उत्कट कामसेनावाले मधुमासके दिन किसे नही उत्सुक करते ।।२९।।

१४ प्रवासी कान्तके कारण दुबली, ऊपर उठानेसे गिरती बलयोवाली आमको देखती कौन सी अगना समागमके लिये विलाप नही करती थी ।।३०।।

१५ किशलयै कुसुमैश्च निरन्तरै प्रतिदिगन्तमशोकमहीरुह ।
परिवृत सहसा कमलेक्षणाक्रमहतो महतोग्णसनिभै
॥३१॥

१६ उपहृतै स्वयमग्रिमसल्लकीकिशलयप्रमुखैरनुनिन्यिरे ।
अनुनदीतटमुत्कटमन्मथैर्द्विरदनैरदनैर्निजवल्लभा ॥३२॥

१७ शशिनि कौसुमतल्पतले जलेऽप्यनुपशान्तवपुदवथुव्यथा ।
अरतिमिष्टतमेन वधूश्चिर विरहिता रहितारपिकीरवे
॥३३॥

१८ अनुनयैन हृद प्रमदामद रहयति स्म मनागपि या पुरा।
स्वयमगामि मधौ प्रियसनिधाविह तया हतया मदनेषुभि
॥३४॥

१९ मकरकेतुकलत्रमुखश्रिय यदवहत्सरसीषु सरोरुहम् ।
अगमयन्मणिकुण्डलता स्त्रियस्तदलस दलसगिशिलीमुखम्
॥३५॥

२० मधुरकूजितसूचितवल्लभागममहाय मुहुबलिभोजिने ।
करतलेन बलिददतेतमामवलया वलयावलिवर्षिणा ॥३६॥

२१ मृदुसमीरचलालकसचया रणझुणन्मणिकिकिणिका मुहु ।
ललितकेलिमसेवत दोलया रसमये समये च न का वधू ॥३७।

२२ बहलकिशुकवीथिकया मधुस्त्रिय इवाधरपल्लवलीलया ।
तनुरनीयत खेदमनिद्रिता रुचिरया चिरयातपतेर्भशम् ।३८।

२३ अनुवन मधुरध्वनिकोकिलाकलकले सति कणपथातिथौ ।
न पथिक प्रमदा कतमस्तदा स्मरति ना रतिनायकनोदित
॥३९॥

२४ उदितनिमलमण्डलचन्द्रम करैरसायनसेकगुणादिव ।
क्षितिरुह कुसुमैब्रभुरुद्गतै शवलिता वलितात्मतनश्रिय
॥४०॥

१५ उत्सवक तोरणके समान प्रत्यक दिशामे घने नव-पल्लवा और कुसुमोसे ढका अशोकवक्ष कमलनैनियोंके पैरो से सहसा पीटा गया ।।३१।।

१६ नदीके तटपर अत्यधिक कामात गजोने अपनी प्रियाको लाये सल्लकी-की फुनगीके नव-पत्रो आदि द्वारा स्वय मनाया ।।३२।।

१७ कुसुम शय्यावाले जलमे चन्द्रमाके होत भी तापकी पीडा शरीरमे अन उपशात न रुकनेवाली कोयलके शब्दो से (वसत मे) विरहिणी वधुओकी इष्टतमक साथ चिर विरति (की) ।।३३।।

१८ जो पहल अनुनयो द्वारा हृदयस प्रमदाक मानको जरा भी नही हटी वह इस मधुमासमे मदन वाणोसे निहता स्वय प्रियके पास आई ।।३४।।

१९ सरोवरमे जो कमल रतिके मुखकी शोभा धारण करता था वह भ्रमरोयुक्त पत्रोके साथ अलस हो स्त्रियोका मणिकुडल बना ।।३५।।

२० मधुर कूजनसे प्रियके आगमनके मित्र बलि भोजी कौवेको, चूडियो की पाती हिलत करतलोसे अबलाने बलि प्रदान किया ।।३६।।

२१ मदु वायुके चलनेस हिलते अलको तथा रुनझुन करती मणि किंकिणियोवाली किस तरुणीने इस रसमय समयमे क्षणभर झूले की ललित क्रीडाका सेवन नही किया ।।३७।।

२२ मधुकी स्त्रियोकी तरह बहुत टेसुओकी बीथियो जसी अधर-पल्लवकी रुचिर लीलाके साथ, चिरसे गय पति वाली बालाने अनिद्रित रह शरीरमे बहुत खेद पाया ।।३८।।

२३ वनोमें मधुर ध्वनिवाले कोयलोके कलकलके कानोमें आनेपर कौन सा पथिक पुरुष काम द्वारा प्रेरित हो प्रमदाको नही याद करता ।।३९।।

२४ उग निमल मडलयुक्त चन्द्रमाके किरणरूपी रसायनके सीचनके गुणसे मानो, (नारिया) वृक्षोके फूले फूलो द्वारा निज शरीर को शोभासे सयुक्त दीखने लगी ।।४०।।

२५. नवकुसुम्भकरम्बितमम्बर समदना दधतीव निरैक्ष्यत ।
विकचकिशुकवीथिकयोल्लसत्तरुणयारुणया वनमेदिनी ॥४१॥

२६ मधुरसातिशय दधदुच्चकैरकृत चूततरुमधुपावलिम् ।
सततमात्मनि निश्चलसौहृदा भ्रमवतीमवतीणनवध्वनिम् ॥४२॥

२७ कृतकुशेशयकोशविकाशया समदकोकिलयाथ मधुश्रिया ।
धवलपक्षविहगतते पतत्कुमुदया मुदयाप्यत चेतस ॥४३॥

२८ धवलधामनि निमलमतिता स्वरविकस्वरता पिकयोषित ।
कृतवता मधुना विकृतिदधे प्रथयताथ यनात्मसु मन्मथम् ॥४४॥

२९. तुहिनतानवमातपतीव्रता विदधत सुतरा मधुवासरा ।
विरहिणामतिदु सहता गता सुगुरवो गुरवोऽपचय क्षपा ॥४५॥

—सग ६

४६ मरुला (११५० इ०)

सस्कृतकी इन महिला कवयित्रीके बहुत थोडे ही पद्य मिलते ह। इनके देश-कालके बारेमें कुछ नही ज्ञात ह। धुनद्रदेव नामके एक कविने सुसीला, विज्जा और मोरिकाके साथ मारुलाकी कविताकी भी बडी प्रशसा

२५ आकाश नवीन कुसुमोसे फूले वस्त्र वाला वनभूमि मदनयुक्त सी, फूले टेसूकी बीथियोसे उल्लसित हो तेज ललाईसे शोभित थी ।।४१।।

२६ आमका वक्ष मधुके रसमे अधिक लिप्त भ्रमर-पक्तियोको ऊचे धारण करता, अपनेमे निश्चल मित्रतावालोकी भ्रमयुक्त नई ध्वनिको निरन्तर धारण करता था ।।४२।।

२७ कमलके कोशोको उत्फुल्ल करती, मस्त कोकिलवाली मधुमासकी सफेद पक्षवाले विहगोके गिरनेकी कुमुद वाली शोभाने चित्तको मोदस भर दिया ।।४३।।

२८ चादनीमें कोयलोकी निमल-मूर्तिता और स्वरकी मधुरताको (प्रकट कर), मधुमासने यतियोमें काम बढा विकार पैदा किया ।।४४।।

२९ चैतके दिन सर्दीकी कमी और धूपकी तीव्रताको अत्यधिक करते, विरहियोके लिये अति दुस्सह और लबी रातें अति भारी हुइ ।।४५।।

—सग ६

४६ मल्ला (११५० ई०)

की ह। शृगार प्रधान कविता बतलाती ह, कि इनका सम्बन्ध किसी सामन्ती दरबारसे था।

विरह —

१ गोपायन्ती विरह-जनित दु खमग्रे गुरूणा,
कि त्व मुग्धे नयन-विसृत बाष्प-पूर रुणत्सि ?
नक्त नक्त नयन-सलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते,
शय्योपान्त कथयति दशामातपे शोष्यमाण [1] ॥१॥

२ कृशा केनासि त्व ? प्रकृतिरियमगस्य ननु मे,
मलाधूम्रा कस्माद्? गुरु-जन-गृहे पाचकतया ।
स्मरस्यस्मान् कच्चित् ? नहि नहीत्येवमगमत्,
स्मरोत्कम्प बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ॥२॥

४७ श्रीहर्ष (११६० इ०)

श्रीहर्ष अन्तिम कान्यकुब्ज नृपति जयचन्द (मृत्यु ११९३ ई०) के दरबारी पडित थे। वह अभिमान के साथ अपने बारेमें कहते ह कि "मुझे कान्यकुब्जेश्वर दो पान और आसन देते ह।" उनका यह भी दावा ह, कि म समाधिमें ब्रह्म-साक्षातकार करता हूँ। इनके पिताका नाम हीर और माताका नाम मामल्ल देवी था। श्रीहर्ष कविसे अधिक दार्शनिक थे। शाकर वेदान्तपर इनका लिखा ग्रथ "खडनखडखाद्य" अब भी सर्वश्रेष्ठ माना जाता ह। मेरे प्रतिभाशाली दिवगत तरुण मित्र विज्ञानमार्तण्डने एक बार एक बडे पडितके सामने वाद रोप दिया था, कि खडनखडखाद्य वेदान्तक नहीं बौद्ध-दर्शनका ग्रथ ह। बेचारे पडितने जब आरम्भके रामकी महिमा-वाले मगलाचरणको उद्धृत किया, तो विज्ञानमार्तण्डने कहा--उसका

---

१ मन्दाक्रान्ता, २ शिखरिणी।

४३ मरुला

विरह—

१ गुरुओके सामने विरहसे उत्पन्न दु खको छिपाती, हे मुग्धे, क्यो तू आखमे फले आसुओकी धारको रोक रही है। रात-रातको अश्रुजलसे भीगा हुआ तेरे बिस्तरेका यह धूपमे सूखता छोर तेरी दशाको बतला रहा है ।।१।।

२ क्यो तू दुबली है? यही मेरे अगकी प्रकृति है। मलिन धूमिल क्यो है? गुरुजनोके घरमे रसोईदारिन होनेस। क्या हमे याद करती है? नही नही' यह कहकर बाला मेरी छातीपर गिरकर कामसे कापती रोन लगी ।।२।।

४७ श्रीहष (११६० ई०)

ग्रथके विषयसे सम्ब ध नही ह। कविके तौरपर उ हाने लुटिया डुबो दी ह। हि दीके महाकवि केशवदाससे ही इनकी तुलना की जा सकती ह। नषधके थोडे ही अश ह, जि हें उत्कृष्ट कविता कहा जा सकता ह। लेकिन, श्रीहष भी क्या करते, जब कविताकी तुला उस समय दूसरी ही मानी जाती थी। "नषधीयचरित" इनका महाकाव्य २२ सर्गो और २८३० श्लोकोमें समाप्त हुआ ह। इनके दूसरे ग्रथ थे (२) "स्थयविचारणप्रकरण", (३) "विजय-प्रशस्ति", (४) "खडनखडखाद्य", (५) "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति", (६) "अणववणन", (७) "छ द प्रशस्ति", (८) "शिवशक्तिसिद्धि", (९) "नवसाहसाकचरितचम्पू"। इन नौ ग्रथोमें सिफ दो ही मिलते ह। "छ द-प्रशस्ति" और "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति" लिखनेसे मालूम होता ह कि प डितराज जगन्नाथकी तरह इ हें भी कई दरबारोकी खाक छाननी पडी थी।

नषध

(१) हसविलाप —

१ पतत्रिणा तद्रुचिरेण वञ्चित,
श्रिय प्रयान्त्या प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपरोपमा चुकूज कूले कलहसमण्डली
॥१२७॥

२ "न वासयोग्या बसुधेयमीदृशस्
त्वमग यस्या पतिरुज्झितस्थिति" ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ
खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ॥१२८॥

३ न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुव मुहु ।
अवादि तेनाथ स मानसौकसा
जनाधिनाथ करपजर-स्पशा ॥१२९॥

४ "धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन
समीक्ष्य पक्षा मम हेम जन्मन ।
तवाणवस्यैव तुषारसीकरै
भवेदमीभि कमलोदय कियान् ॥१३०॥

५ न केवल प्राणिवधो वधो मम
त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मन ।
विगहित धमधनैनिबहण
विशिष्य विश्वासजुषा द्विषा-मपि ॥१३१॥

६ पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिसारस एष पूयते ।
धिगीदृश ते नृपते कुविक्रम कृपाश्रये य कृपणे पतत्रिणि
॥१३२॥

नैषध

१ हंसका विलाप—

१ उस रुचिर पक्षीसे वंचित, डबरेको छोडकर प्रयाण करती हंसोकी मंडली लक्ष्मीके चल चरणकमलके नूपुरसी किनारेपर कूजन करने लगी ॥१२७॥

२ 'मित्र, जिस पथिवीका तू मर्यादा छोडा पति है, वह बसने योग्य नही" यह कहते मानो पथिवीको छोड आकाशमे आश्रय ले पक्षियोन कलरव करते निंदा की ॥१२८॥

३ 'सोनेके पक्षसे सुंदर ऐसे पक्षीको नही देखा"—बारबार प्रशंसा करते राजाको हाथके पिंजडेमे फंसे मानसवासी (हंस) ने तब कहा ॥१२९॥

४ "मेरे सुनहले पखोको देखकर लोभसे चचल हुये आपके मनको धिक्कार है। हिमक फुहारोसे समुद्रकी तरह इनसे कितनी तेरी लक्ष्मी वद्धि होगी ॥१३०॥

५ तुझे देखकर हृदयमें विश्वास किये मेरा वध केवल प्राणिवध नही होगा, विश्वास किये शत्रुओके हनन को खास कर धमधनी लोग निंदते है ॥१३१॥

६ स्थान-स्थानमे रणमे उदभट योद्धा ह, उनसे (लडनेमे) तेरी यह हिंसाकी भूख पूरी नही होती ? हे नृपति, कृपापात्र बेचारे पक्षीके विषयमे तरे एसे बुरे साहसको धिक्कार ॥१३२॥

७　फलेन मूलेन च वारिभूरुहा मुनेरिवेत्थं मम यस्य वर्त्तनम् ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते" ॥१३३॥

८　इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः ।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः ॥१३४॥

९　"मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्,
अहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न ॥१३५॥

१०　मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः सुतशोकसागरः ॥१३६॥

११　मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः
प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥१३७॥

१२　कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्
तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः ।
वियोक्ष्यते वल्लभयेति निर्गता
लिपिर्ललाटंतपनिष्ठुराक्षरा ॥१३८॥

१३　अयि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपमं ममाद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता ।
मुखानि लोलाक्षि दिशामसंशयं
दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥१३९॥

१४　ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा
त्वया विचित्राङ्गि विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः
स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः ॥१४०॥

७ जिस मेरी जीविका मुनिकी तरह पथिवी और जलमे उगनेवाले फल और मूलस है, उस पर भी आज तूने दड प्रहार किया है, एसे स्वामीस पथिवी क्यो ना लज्जित हो ॥१३३॥

८ एसे वचनास पक्षीने राजाको विचित्र लज्जा और कृपायुक्त बनाकर, उसक दया-समुद्र हृदयमे कारुण्यरसकी नदी जैसी वाणी प्रवशित की ॥१३४॥

९ बुढापसे पीडित माताका मै ही एक पुत्र हू। बेचारी मेरी तरुणहसी नई प्रसूता हे। उन दोनोका यही जन अवलम्ब है। उसे मारते हा दव तुझे करुणा नही रोकती ॥१३५॥

१० मेरे दयालु सखा आसू बहा मुहूतभर ससारकी निन्दा करके चुप हो जायेगे, परन्तु हे माता, पुत्र-सम्बन्धी शोक-सागर तो तेरे ही लिये दुस्तर होगा ॥१३६॥

११ मेरे लिये सन्देश और कमलनाल को लाता मन्द गति (से आता) प्रिय कितनी दूर है' तेरे यह कहनेपर रोत पक्षियोको दखकर हे प्रिये, तेरा वह क्षण कसा होगा ॥१३७॥

१२ प्रिय-अशीतलता मदुताके रचयिता हे विधाता, तेरे हस्तकमलसे 'प्रिया से वियुक्त होगा' मेरे विषयमें ललाटको तपानवाले निष्ठुर अक्षरोकी यह लिपि कैस निकली ॥१३८॥

१३ अरी चचल नेत्रोवाली, वज्र प्रहारसे मेरे आजक इस वत्तान्तको अपने साथियो द्वारा कहे जानेपर दसो दिशाओके मुखोको शून्य सा तू निश्चय देखेगी ॥१३९॥

१४ हे विचित्रअगोवाली यदि मेरे शोकसे छाती फटकर तू मरी, तो हाय दैवका मारा मै फिर मारा गया क्योकि (तब) अवश्य तेरे बच्चे निष्प्राण हो जायेगे ॥१४०॥

१५ तवापि हाहा विरहात्क्षुधाकुला
कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिमनोरथै
गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ।।१४१।।

१६ सुता, कमाहूय चिराय चूकृतै
विधाय कम्प्राणि मुखानि क प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमि"ति प्रमील्य स
स्नुतस्य सेकाद्बुबुधे नृपाश्रुण ।।१४२।।
—सग १

(२) स्वयवरसभा—

१७ प्रियाह्रियालम्ब्य विलम्बमाविला
विलासिन कुण्डिन-मण्डनायितम् ।
समाजमाजग्मुरथो रथोत्तमास्तमा समुद्रादपरे परे नृपा
।।१।।

१८ तत स भैम्या ववृते वते नपैर्
विनि श्वसदभि सदसि स्वय वर ।
चिरागतैस्तकिततद्गिरागितै
स्फुरद्भिरानन्दमहाण वैनवै ।।२।।

१९ चलत्पदस्तत्पदयन्त्रणेगितस्फुटाशयामासयतिस्म राजके ।
'श्रम गता यानगतावपीयमि'
त्युदीय धुय कपटाज्जनी जन ।।३।।

२० नृपानुपक्रम्य विभूषितासनान्सनातनी सा सुषुवे सरस्वती ।
विहारमारभ्य सरस्वती सुधासर स्वतीवाद्रतनूरनत्थिता
।।४।।

२१ "वृणीष्व वर्णेन सुवणकेतकीप्रसूनवर्णादृतुपर्णमादतम् ।
निजामयोध्यामपि पावनीमय भवन्मयो ध्यायति नाव-
नीपति ।।५।।

१५ हा-हा तेर भी न रहनसे व शिशु क्षुधाकुल हो घोसलेके किनारोसे लुढककर, बहुत लालसाओके बाद देरसे मिले, न खुली आखोवाले मेरे (बच्चे) गत हो जायेगे ।।१४१।।

१६ हे बच्चो किसको देर तक चुचकारते बुलाते किसके लिये मुखोको कम्पित करते, तुम कथा-शष (मत) हो जाओगे' यह कह मूर्छित हो राजाके गिरे आसुआ से भीगकर वह हस होशमे आया ।।१४२।।

२ स्वयवरकी सभा—

१७ तब प्रियतमाकी लज्जाके कारण विलम्ब करक व्याकुल हृदय विलासी उत्तम रथी, समुद्रव वारपारवाले राजा कुडित नगरके श्रेष्ठ समाजमें आये ।।१।।

१८ तब देरसे आये अपनेमे उसकी विरक्तिस उसास लेते राजाओसे घिरी उद्वेलित नवीन आनद-सागरोसी सभामे दमयन्तीने स्वयबर चुना ।।२।।

१९ पैदल ढोनवालोने राजसमूहमे 'यानमें स्थित भी यह थक गई है" यह कहकर इस बहानेसे मानो पदकी चापके सकत से भाव स्पष्ट करनेवाली दमयती को (वहा) रख दिया ।।३।।

२० वह सुधा सरोवरोमे विहार करके अत्यत भीग शरीर हो निकली सनातन सरस्वती आसनको भूषित करनेवाले राजाओके पास जा बोली ।।४।।

२१ "रगमें सुनहले केतकीके फूलके रगवाल, जी उस आदरणीय ऋतुपणको चुनो, जो यह पृथिवीपति तेरेमे तन्मय अपनी पावनी अयोध्याको भी नही याद करता ।।५।।

२२ न पीश्यिता नाम चकोरजिह्वया कथचिदेतन्मुखचन्द्र-
चन्द्रिका ।
इमा किमाचामयसे न चक्षुषी
चिर चकोरस्य भवन्मुख स्पशी ॥६॥

२३ अपा विहारे तव हारविभ्रम करोतु नीरे पषदुत्करस्तरन् ।
कठोरपीनोच्चकुचद्वयीतटत्रुटत्तर सारवसावोमिज
॥७॥

२४ अखानि सिन्धु समपूरि गगया
कुले किलास्य प्रसभ स भ त्स्यते ।
विलघ्यते चास्य यश शतैरहो सता
महत्समुखधावि पौरुषम ॥८॥

२५ एतद्यश क्षीरधिपूरगाहि पतत्यगाधे वचन कवीनाम् ।
एतदगुणाना गणनाकपात
प्रत्यथिकीती खटिका क्षिणोति ॥९॥

२६ भास्वद्वशकरीरता दधदय वीर कथ कथ्यता,
अध्युष्टापि हि कोटिरस्य समरे रोमाणि सत्वाकुरा ।
नीत सयति बन्दिभि श्रुतिपथ यन्नामवर्णावली -
मन्त्र स्तम्भयति प्रतिक्षितिभता दोस्तम्भकुम्भीनसान्
॥१०॥

२७ तादृग्दीघविरिचिवासरविधौ जानामि यत्कर्तृता,
शर्क यत्प्रतिबिम्बमम्बुधिपय पूरोदरै वाडव ।
व्योमव्यापिविपक्षराजकयशस्तारा पराभावुक,
कासामस्य न स प्रतापतपन पार गिरा गाहते ॥११॥

२८ द्वेष्याकीतिकलिन्दशैलसुतया नद्यास्य यद्दोद्वयी
कीतिश्रेणिमयी समागममगाद् गगा रणप्रागणे ।
तत्तस्मिन्विनिमज्ज्य बाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी-
रम्भानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्बर" ॥१२॥

२२ चाहे इसक मुखचद्रकी चादनीको चकार सी (अपनी) जिह्वाद्वारा न पियो पर चिरसे तुम्हारे मुखपर लगी (इसकी) चकोर सी दोना आखाको क्यो न पिलाओ? ।।६।।

२३ जलविहारमे पानीपर तिरता शब्द करता सरयूकी लहरोस उत्पन्न (तेरे) कठोर स्थूल उच्च स्तनोके पास अधिक टूटता, बिदुसमूह तुम्हारी हार शोभा बनै।।७।।

२४ इसके कुलमे समुद्र खोदा जा गगा द्वारा भरा (आगे) गया, बलपूवक बाधा जायेगा, और इसकी सैकडो कीर्तियोसे लघित होगा। अहो सत्पुरुषोका पौरुष बडोके आगे आगे दौडता हे।।८।।

२५ इसक यशरूपी क्षीरसागरके प्रवाहमे अवगाहन करनेवाले कवियोके वचन अथाहमे पड जाते है। इसके गुणोके गिननेके अकका लिखना दुश्मनोके यशोको घटाता है।।९।।

२६ सूयवशी अकुरको धारण करते इस वीरक बारेमे क्या कहा जाये, इसके करोडो रोम प्रसिद्ध युद्धमें वीरताके अकुर है।
सग्राममें बन्दियोसे उच्चारित जिसके नामाक्षरोकी पक्तिका मत्र सुने जानेपर शत्रु-राजाओके भुजस्तम्भ रूपी सर्पोका स्तम्भन कर देता है।।१०।।

२७ वैसे लम्बे ब्रह्मदिनके निर्माणमे जिसके कतत्वको मै जानती शका करती हू कि इसके प्रतिबिम्बके सागर जलके प्रवाहके उदरमें बडवानल है। शत्रु राजाओके आकाशव्यापी यशरूपी ताराओका (यह) तिरस्कारक है इसका एसा प्रताप-सूय किनको वचनातीत न होगा।।११।।

२८ इसकी दोनो भुजाओके कीर्ति समूहोकी गगाने जो रणक्षेत्रमे, शत्रुके अयशरूपी कलिन्द-पवतकन्या (जमुना) के साथ सगम किया। उसमे डुबकी लगा क्षत्रिय योद्धाओने रम्भाके आलिंगनके आनन्द भवनवाले नन्दनवनकी क्रीडाकी मुहब्बतका आडम्बर शुरू किया" ।।१२।।

२९ इति श्रुतिस्वादिततद्गुणस्तुति
सरस्वतीवाङमयविस्मयोत्थया ।
शिरस्तिर कम्पनयैव भीमजा न त मनोरन्वयमन्वमन्यत
॥१३॥

३० युवान्तर सा वचसामधीश्वरा
स्वरामृतन्यक्कृतमत्तकोकिला ।
शशस ससक्तकरैव तद्दिशा
निशापतिज्ञातिमुखीमिमा प्रति ॥१४॥

३१ "न पाण्ड्यभूमण्डनमैणलोचने
विलोचनेनापि नप पिपाससि ।
शशिप्रकाशाननमेनमीक्षितु तरगयापागदिशा दशोस्त्विष
॥१५॥

३२ भुवि भ्रमित्वानवलम्बमम्बरे विहर्तुमभ्यासपरम्परापरा ।
अहो महावशमम् समाश्रिता
सकौतुक नृत्यति कीतिनतकी ॥१६॥

३३ इतो भिया भूपतिभिवन
वनादटद्भिरुच्चैरटवीत्वमीयुषी ।
निजापि सा वापि चिरात्पुन
पुरी पुन स्वमध्यासि विलासमन्दिरम् ॥१७॥

३४ आसीदासीमभूमीवलयमलयजालेपनेपथ्यकीति ,
सप्ताकूपारपारीसदनजनघनोद्गीतचापप्रताप ।
वीरादस्मात्पर क पदयुगयुगपत्पातिभूपातिभूयश् ,
चूडारत्नोडुपत्नीकरपरिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दु ॥१८॥

३५ भगाकीतिमषीमलीमसतमप्रत्यथिसेनाभट -
श्रेणीतिन्दुककाननेषु विलसत्यस्य प्रतापानल ।
तस्मादुत्पतिता स्फुरन्ति जगदुत्सगे स्फुलिंगा स्फुट,
भालोद्भूतभवाक्षिभानुहुतभुग्जम्भारिदम्भोलय ॥१९॥

२९ इस प्रकार **सरस्वतीके** वचनसे विस्मय उत्पादनके साथ उसके गुणोकी प्रशसाको कानोसे अस्वादित करनेवाली **दमय**ती उस **मनु** वशजको सिरके तिरछे कपन द्वारा अस्वीकार किया ।।१३।।

३० अपनी स्वर-सुधासे मत्त कोयलको तिरस्कार करती वाणियोकी स्वामिनीने इधर हाथ कर इस चद्रमुखीके सामने दूसरे युवाकी प्रशसा की ।।१४।।

३१ हे हरिणाक्षी, **पाड्य** देशके मडन इस राजाको नेत्रोसे भी क्यो नही पान करना चाहती ? इस चन्द्र प्रकाशसे मुखवालेको देखनेके लिये अपने नेत्रोके प्रकाशको तरगित कर ।।१५।।

३२ अहो! पृथिवीपर घूमकर आकाशमे निरालम्ब विहार करनेके अभ्यासकी परपरामें उत्तम कीर्ति नर्तकी, इस महाकुलीनके आश्रित हो खुशीके साथ नाचती है ।।१६।।

३३ इसके भयसे वन-वन भटकते भूपति लोग जगलवनी अपनी नगरी मे देरसे फिर कर अपने विलास-मदिरमे बसे ।।१७।।

३४ भूमण्डलके छोर तक चन्दन लेपके भूषण जैसी कीर्तिवाले, सात समुद्र पारके घरवाले जनो द्वारा गाया जाते अपने धनुषके प्रतापयुक्त, इस वीरसे दूसरा कौन है, जिसके चरण-युगलमे एक साथ गिरनेयुक्त राजाओके बहुत से चूडारत्नरूपी नक्षत्रोकी किरणोकी सेवासे नख-चन्द्र अधिक हर्षित हो ।।१८।।

३५ पराजयके अपयशरूपी स्याहीसे अत्यन्त मलिन शत्रुओकी सेनाके योद्धाओकी पक्तिरूपी तिन्दुकके वनोमे इसकी प्रताप-अग्नि विलास करती है। उससे उडती **शकरके** ललाटकी आखकी सूर्य-अग्नि इन्द्र-वज्र सी ज्वालाये ससारकी गोदमे साफ चमक रही है ।।१९।।

३६ एतद्दन्तिवलैर्विलोक्य निखिलामालिगितागी भुव,
सग्रामागणसीम्नि जगमगिरिस्तोमभ्रमाधायिभि ।
पथ्वीन्द्र पृथुरेतदुग्रसमरप्रेक्षोपनम्रामर -
श्रेणीमध्यचर पुन क्षितिधरक्षेपाय धत्ते धियम् ।।२०।।

३७ शशस दासीगितविद्विदभजा
"मितो ननु स्वामिनि पश्य कौतुकम् ।
यदेप सौधाग्रनटे पटाचले चलेऽपि काकस्य पदापणग्रह"
।।२१।।

३८ ततस्तदप्रस्तुतभाषितोत्थितै
सदस्तदश्वेति हसै सद सदाम् ।
स्फुटाजनि म्लानिरतोऽस्य भूपते
सिते हि जायेत शिते सुल्क्ष्यता' ।।२२।।

३९ ततो नु देव्या जगदे महेन्द्रभूपुरदर सा जगदेकवन्द्यया ।
तदाजवावजिततजनीकया जनी कयाचित्परचित्स्वरूपया
।।२३।।

४० "स्वयवरोद्वाहमहे वृणीष्व हे महेन्द्रशैलस्य महेद्रमागतम् ।
कलिगजाना स्वकुचद्वयश्रिया
कलि गजाना शणु नत्र कुम्भयो ।।२४।।

४१ "अय किलायात" इतीरिपौरवाग-
भयादयादस्य रिपुर्वृथा वनम् ।
श्रुतास्तदुत्स्वापगिरस्तदक्षरा
पटद्भिरत्रासि शुकैवनेऽपि स ।।२५।।

४२ इनस्त्रसद्विद्रुतभूभदुज्झिता प्रियाथ दृष्टा वनमानवीजनै ।
शशस पृष्टाद्भुतमात्मदेशज
"शशित्विष शीतलशीलता किल" ।।२६।।

४३ इतोऽपि कि वीरयसे न कुवतो नपान्धनर्बाणगुणैवशवदान् ।
गुणेन शुद्धेन विधाय निभर तमेनमुर्वी वलयोवशी वशम्
।।२७।।

३६ युद्धक्षेत्रकी सीमामे जगम पवताका भ्रम पैदा करनेवाले,
इसके गजोकी सेनाओसे सारी पथिवीको ढका देखकर
इसके उग्र समरके देखनेके लिये झुके देवताओकी पक्तिके मध्यमे हो
राजा **पथु** फिर पवतको फेकनेकी सोचते थ ॥२०॥

३७ सकेत समझनेवाली दासीन **दमयतीसे** कहा—'स्वामिनी, जरा इधर तमाशा देखें—यह महलके शिखरपर नाचते चचल ध्वजपर कौवा पैर रखनकी कोशिश कर रहा है ॥२१॥

३८ तब उस अप्रासगिक कथनसे उत्पन्न सभासदोकी हसीसे वह सभा उज्ज्वल हो गई। इससे इस राजा पर स्पष्ट मलिनता छा गई—सफद पर काला अच्छी तरह प्रकाशित होता है (ना) ॥२२॥

३९ इसके बाद जगत्की एक मात्र वदनीया परम चेतन-स्वरूपा देवी (सरस्वती) ने अपनी ऋजुतामे तजनी को खीच **दमयती** से **महेद्र** के राजा का बखान किया ॥२३॥

४० ह तुम स्वयवर-व्याहके उत्सवमे आये **महेद्रगिरिके** महाराजको चुनो। वहा **कलिग** कन्याओके अपन दो स्तनोकी शोभाके साथ गजोके कुम्भोकी होडको सुनो ॥२४॥

४१ यह आ गया' इस प्रेरक नागरिक वचनके भयसे इसका शत्रु व्यथ -ी वनमे भाग गया। फिर वनमे भी स्वप्नमे उसके अक्षरोके वचनको तोतासे पढे जाते सुन वह भयभीत हो गया ॥२५॥

४२ इस तरह भीत हो भागे राजाकी छोडी प्रियाने देखकर व-य स्त्रियो द्वारा अपने देशकी अदभुत बात पूछनेपर कहा 'चद्रमाकी किरणे (वहा) शीतल स्वभाव की हो गई है" ॥२६॥

४३ धनुष वाण और गुणो द्वारा राजाओको वशवद करते इसे भी शुद्ध गुणसे अधीन कर इसे भूमण्डलकी **उवशीके** अधीन कर क्या वीर नही बनोगी ॥२७॥

४४ एतद्भीतारिनारी गिरिबिलविगलद्वासरा नि सरन्ती,
स्वक्रीडाहसमोहग्रहिलशिशुभृशप्रार्थितोन्निद्रचद्रा ।
आक्रदद्भूरि यत्तन्नयनजलमिलच्चन्द्रहसानुबिम्ब -
प्रत्यासत्तिप्रहृष्यत्तनयविहसितैराश्वसीन्न्यश्वसीच्च ॥२८।

४५ अस्मिन्दिग्विजयोद्यते 'पतिरय मे स्ता'दिति ध्यायिनी
कम्प सात्त्विकभावमञ्चति रिपुक्षोणीन्द्रदारा धरा ।
अस्यैवाभिमुख निपत्य समरे यास्यद्भिरूर्ध्वं निज
पथा भास्वति दश्यते बिलमय प्रत्यर्थिभि पार्थिवै ॥२९॥

४६ विद्राणे रणचत्वरादरिगणे त्रस्ते समस्ते पुन,
कोपात्कोऽपि निवतते यदि भट कीत्या जगत्युद्भट ।
आगच्छन्नपि समुख विमुखतामेवाधिगच्छत्यसौ,
द्रागेतच्छुरिकारयेण ठर्णाति च्छिन्नापसर्पाच्छिरा" ॥३०॥

४७ ततस्तदुर्वीन्द्रगुणाद्भुतादिवस्ववक्त्रपद्मेऽगुलिनालदायिनी।
विधीयतामाननमुद्रेणेति सा
जगाद वैदग्ध्यमयेगितैव ताम् ॥३१॥

४८ अनन्तर तामवदन्नपान्तग तदध्वदक्तारतरगग्गणा ।
तृणाभवत्पुष्पशर सरस्वती स्वतीव्रतेज परिभूतभूतलम्
॥३२॥

४९ "तदेव कि न क्रियते नु का क्षतियदेष तदद्भुतमुखेन काक्षति
प्रसीद काचीमयमाच्छिनत्तु ते
प्रसह्य काचीपुरभूपुरदर ॥३३॥

५० मयि स्थितिनम्रतयैव लभ्यते दिगेव तु स्तब्धतया विलघ्यते
इतीव चाप दधदाशुग
क्षिपन्नय नय सम्यगुपादिशद्द्विषाम् ॥३४॥

४४ इससे भयभीत गिरि-गुहामे दिन बिताकर निकलती
खिलौने हसके मोह के लिये हठीले अपने बच्चे द्वारा उग चद्रके लेनेके लिये बहुत प्राथिता शत्रुनारी बहुत रोई जिससे उसके नयनजलसे लिप्त चन्द्र और हसके प्रतिबिंब की समीपतासे खुश हुय पुत्रकी हसीसे उसन धीरज धरा और उसास लिया ।।२८।।

४५ इसके दिग्विजयके लिये उद्यत होनेपर रिपु राजाकी स्त्री पथिवी
यह मेरा पति होव यह सोचती सात्विक भावसे कपित हुई ।
इसके सामने समर मे गिरकर ऊपर जानेवाले शत्रुराजा
सूयमें छिद्रके रूपमें अपना (गमन) माग दखत है ।।२९।।

४६ युद्धक्षेत्रसे सारे रिपुओके भगे और भयभीत होनेपर
यदि अपनी कीर्तिसे ससार मे उदभट कोई योद्धा कोप करके लौटता है, तो सन्मुख आनपर भी उसे विमुख ही होना पडता है, (क्योकि) जल्दी ही इसके छुरके वेगसे उसका सिर ठन ठन करता काट फेका जाता है" ।।३०।।

४७ तब उस पथिवीपालके अदभुत गुणोसे ही अपने मुखकमलमे अगुली रूपी नालको देती **दमयती** चतुरतापूण सकेतसे मानो सरस्वतीसे बोली 'मुख बन्द करो" ।।३१।।

४८ फिर सरस्वती न उसकी ओर आखकी पुतलीके तरगोको चलाती दमयतीसे कामदेवको तण सा बनानेवाले अपन तीव्र प्रतापसे भूतलको जीतनेवाले दूसरे राजाके बारेमे कहा ।।३२।।

४९ 'क्या हानि, वही क्यो न करो, जो कि यह दूत द्वारा चाहता है ।
कृपया यह **काचीपुरी**का राजा बलपूवक तेरी कधनीको तोडे ।।३३।।

५० "मेरे प्रति नम्रतासे ही रहना (ठीक) होगा घष्टता करनसे दिशाओ मे भागना पडेगा' यही कहते मानो धनुष पकड बाण फेंकते इसने दुश्मनो को उचित नीतिका उपदेश किया ।।३४।।

५१ अद समित्समुखवीरयौवतत्रुटद्भुजाकम्बुमृणालहारिणी।
द्विषद्गणस्त्रैणदृगम्बुनिझरे यशोमरालावलिरस्य खेलति
॥३५॥

५२ सिन्दूरद्युतिमुग्धमूर्धनि धृतस्कन्धावधिश्यामिके,
व्योमान्तस्पृशि सिन्धुरेऽस्य समरारम्भोद्धुरे धावति।
जानीमो नु यदि प्रदोषतिमिरव्यामिश्रसध्याधिये-
वास्त याति समस्तबाहुजभुजातेज सहस्राशव ॥३६॥

५३ हित्वा दैत्यरिपोरर स्वभवन शून्यत्वदोषस्फुटा -
सीदन्मर्कटकीटकृत्रिमसितच्छत्रीभवत्कौस्तुभम्।
उज्झित्वा निजसद्मपद्म पिहि तद्युक्तावनद्धीकृत,
लूतातन्तुभिरन्तरद्य भुजयो श्रीरस्य विश्राम्यति ॥३७॥

५४ सिन्धोजत्रमय पवित्रमसजत्तत्कीर्तिपूर्तादद्भुत,
यत्र स्नान्ति जगन्ति सन्ति कवय के वा न वाचयमा।
यद्विन्दुश्रियमिन्दुरचति जल चाविश्य दश्येतरो,
यस्यासौ जलदेवतास्फटिकभूर्जागर्ति योगेश्वर ॥३८॥

५५ अन्त सतोषबाष्पै स्थगयति न दृशस्ताभिराकणयिष्यन्
अगे नानस्तिरोमा रचयति पुलकश्रेणिमानन्दक दाम्।
न क्षोणीभगभीरु कलयति च शिर कम्पन तन्न विद्म,
शृण्वन्नेतस्य कीर्ति कथमुरगपति प्रीतिमाविष्करोति।३९।

५६ आचूडाग्रममज्जय न्नति पटुयच्छल्यदण्डानय,
सरम्भे रिपुराजकुजरघटाकुम्भस्थलेषु स्थिरान्।
सा सेवास्य पथु प्रसीदति तया नास्मै कुतस्त्वत्कुच -
स्पर्धागर्धिषु तेषु तान्धृतवते दण्डान्प्रदण्डानपि" ॥४०॥

—सर्ग १२

५१ सग्राममे सामन आय वीरोकी युवतियोकी बाहकी टूटती चूडी रूपी मणालको हरनवाली इसकी यशरूपी हसावली शत्रु-स्त्रियोके नत्र-अश्रुके निझरमे खेलती है ।।३५।।

५२ सिन्दूरके प्रकाशसे सुन्दर सिरवाले कधे तक कालिमा धारण किये आकाशके छोरको छूनवाले लडनमे चतुर इसके गजोके दौडते समय हम जानते है, कि गोधूलिके अधकारसे मिश्रित सध्या रागके ख्याल से ही सारे क्षत्रियोकी भुजाओके तेजरूपी सूय अस्त हो जाते है ।।३६।।

५३ शून्यतादोषसे मकडी कीड द्वारा निर्मित स्पष्ट स्थिर श्वत छत्रसे कौस्तुभ सहित विष्णुकी छातीरूपी मकडीके तन्तुओसे साथ बधे हुये अपने निज घररूपी पद्मको भी छोडकर लक्ष्मी, आज इसकी भुजाओके भीतर विश्राम करती है ।।३७।।

५४ इसने सागरको जीतनेवाले अपन अदभुत पवित्र-कीर्ति-सरोवरको बनाया जहा नहात उज्ज्वल होते कौन से कवि वाणीपर सयम करनवाले नही होते। द्रष्टव्यसे परे चद्रमा भी जलमे प्रवश कर जिसकी बिन्दुकी शोभा पाता है, जिसका स्फटिकमय जलदेवता **जागेश्वर** जागता है ।।३८।।

५५ इसकी कीर्तियोको सुनने शष कसी प्रसन्नता प्रकट करता है (कि) उनसे सुनता आखोको भीतरी सन्तोषके आसुओसे नही ढाकता, अगमे बिना रोमके आनन्द कन्दवाली रोमाच परम्परा नही रचता, पथिवीके टूटनेके डरसे शिर कम्प नही करता, सो हम नही जानते ।३९।

५६ विजयमे चतुर इसने सग्राममे शत्रुराजाओके गजोके कुम्भोमे
दढ भालाके फलोको छोर तक धसा दिया,
सो इसकी बडी सेवा है । तरे स्तनके प्रतिस्पधा
उन गजकुम्भोमे दण्डो प्रदडोको डालनेवाले इस पर क्यो नही **प्रसन्न**
होती ।।४०।।

(३) सन्ध्या—

५७ उपास्य सान्ध्य विधिमन्तिमाशा
रागेण कान्ताधरचुबिचेता ।
अवाप्तवान्सप्तमभूमिभागे भैमीधर सौधमसो धरेन्द्र ॥१॥

५८ प्रत्युद्व्रजन्त्या प्रियया विमुक्त पर्यंकमकस्थितसज्जशय्यम् ।
अध्यास्य तामप्यधिवास्य सोऽय
सध्यामुपश्लोकयति स्म सायम् ॥२॥

५९ "विलोकनेनानुगृहाण तावद्दिश जलानामधिपस्य दारान्
अक्षालि लाक्षापयसेव येयमपूरि पकैरिव कुकुमस्य ॥३॥

६० उच्चैस्तरादम्बरशैलमौलेश्च्युतो रविर्गैरिकगण्डशैल ।
तस्यैव पातेन विचूर्णितस्य सध्यारजोराजिरिहोज्जिहीते
॥४॥

६१ अस्ताद्रिचूडालयपक्वणालिच्छेकस्य कि कुक्कुटपेटकस्य ।
यामा तकूजाल्लसितै शिखोघै
र्दिग्वारुणी द्रागरुणीकृतेयम् ॥५॥

६२ पश्य द्रुतास्तगतसूर्यनियत्करावलीहगुलवेत्रयात्रम् ।
निर्षिध्यमानाह्नि सध्ययापि रात्रिप्रतीहारपदेऽधिकारम्
॥६॥

६३ महानट कि नु सभानुरागे
सध्याय्य सव्या कुनटीभपीशाम् ।
तनोति तन्वावियतापि नारश्रेणिस्रजा साप्रतमग्रहारम्
॥७॥

६४ भूषास्थिदाम्नस्त्रुटितस्य नाट्या
त्पश्योडुकोटीकपटवहद्भि ।
दिग्मण्डल मण्डयतीह खण्डै सायनटस्तारकराट्किरीट
॥८॥

३ सध्या—

५७ सन्ध्याविधिकी उपासना कर पश्चिम दिशाके लाल होते समय प्रियाके अधरके चुम्बनके इच्छुक राजा (नल) दमयतीके निवास के सातवे मजिलमें पहुचे ।।१।।

५८ सत्कारके लिये उठकर सन्मुख आती प्रियाके छोडे सज्जित सेजवाले पलगपर बैठकर, उसे भी बैठा नल शामको सन्ध्याकी प्रशसा करने लग ।।२।।

५९ 'वरुणकी स्त्री (इस) पश्चिम दिशाको देखनकी कृपा करो, जो यह लाक्षाके पानीसे धोइ सी केसरके पकसे भरी सी है ।।३।।

६० सूय अति उच्च आकाशगिरिके शिखरसे गिरा गरूका छोटा शैलसा है उसीके गिरनेसे चूर चूर हुई सन्ध्याके रजकी पक्ति यहा फैल रही है ।।४।।

६१ अस्ताचल शिखरके घरकी कुटियोकी पक्ति पर बैठे पहरके अन्तवाले कुक्कुटोके कूजनसे उल्लसित शिखाओवाली यह वारुणी दिशा शीघ्र लाल बन गई ।।५।।

६२ देखो, यहा जल्दी अस्त हुये सूयसे निकलते किरणरूपी इगुरके बेंत द्वारा सन्ध्या रातके द्वारपालके पदके अधिकारको दिनमे निषध कर रही हे ।।६।।

६३ सखि क्या महानट आकाश सभाके अनुरागमे सन्ध्या रूपी मन शिलाको सोचकर सूक्ष्म ताराओकी माला द्वारा अङ्गहार तो नही बना रहा है ।।७।।

६४ मुकुटधारी तारका पति सन्ध्यारूपी नट नत्यसे टूटे हड्डीके माला भूषणको कोटि-कोटि ताराओ सा धारण करत उसके खडोसे यहा दिशाओको मडित कर रहा है ।।८।।

६५ कालं किरातः स्फुटपद्मकस्य बधं व्यधाद्यस्य दिनद्विपस्य।
तस्यैव संध्या रुचिरास्रधारा
ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ॥९॥

६६ संध्यासरागः ककुभो विभागः शिवाविवाहे विभुनायमेव।
दिग्वाससा पूर्वमवैमि पुष्पसिन्दूरिकापर्वणि पर्यधायि
॥१०॥

६७ सतीमुमामुद्वहता च पुष्पसिन्दूरिकार्थं वसने सुनेत्रे।
दिशौ द्विसंधीमभिरागशोभे
दिग्वाससोभे किमलम्भिषाताम् ॥११॥

६८ आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु
योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं
संध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥१२॥

६९ अस्ताचलेऽस्मिन्निकषोपलाभे
संध्याकषोल्लेखपरीक्षितो यः।
विक्रीय तं हेलिहिरण्यपिण्डं तारावराटानियमादित द्यौः
॥१३॥

७० पचेलिमं दाडिममर्कबिम्बमुत्ताय संध्या त्वगिवोज्झितास्य।
तारामयं बीजभुजादसीयं
कालेन निष्ठ्यूतमिवास्थियूथम् ॥१४॥

७१ तारातर्तिर्बीजमिवादमादमियं निरष्ठेवि यदस्थियूथम्।
तन्निष्कुलाकृत्य रविं त्वगेषा
संध्योज्झिता पाकिमदाडिमवा ॥१५॥

७२ संध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपतेः पत्पतनाभिघातात्।
कैलासशैलस्फटिकाश्मखण्डैरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौः”
॥१६॥

६५ (सन्ध्या) कालरूपी किरात ने जिस फूले पद्मवाले दिनरूपी गजका वध किया उसीकी रुचिर रक्तधारा सध्या है और कुभस्थानके मोती तारागण ह ॥९॥

६६ म समझता हू, सध्यासे दिशाए लाल है, मानो पार्वतीके व्याहमें दिगबर प्रभुने पहले पुष्प सिदूरिकाके अवसरपर यही उसे पहनाया, ॥१०॥

६७ हे सुनयना पार्वतीका व्याह करते शकरने पुष्पसिदूरिकाके लिये, दो सधियोके पास रागसे शोभित दिशारूपी दोनो वस्त्रोको प्रदान किया ॥११॥

६८ जो यह सूर्यरूपी भिक्षु, दड ग्रहण कर सभी दिशाओमे घूम रहा है, (सो) यह तपस्वी शामको समुद्रमे डूबता सा सध्याके बादलरूपी काषायको धारण किये है ॥१२॥

६९ जो कि, कसौटीके पत्थर सदश इस अस्ताचलमे सन्ध्याके घर्षणके चिह्नसे परीक्षा कर, उस सूर्यके सुनहरे पिंडको बेचकर द्युलोकने तारारूपी कौडियोको लिया ॥१३॥

७० इस पके अनाररूपी सूर्यबिम्बका निकाला चमडा सध्या है। बीज खानेवाले कालने इसकी तारामय गुठलिया थूक सी दी है ॥१४॥

७१ अथवा इसने बीजको खा-खाकर जो गुठलियोका पुज थूका, सो यह तारासमूह है। सूर्यका बीज निकाल कर या पके अनारको छील कर (जो) चमडा छोडा यह सन्ध्या है ॥१५॥

७२ देखो, सन्ध्याके अन्तमे ताण्डव करते शकरके गिरते पैरोके प्रहारसे, कैलासपर्वतके ऊपर उठते स्फटिक पाषाण खडो द्वारा द्युलोक भूषित है" ॥१६॥

(४) **चन्द्रिका—**

७३ इत्थं ह्रिया वर्णनजन्मनेव संध्यामपक्रान्तवतीं प्रतीत्य ।
तारातमोदन्तुरमन्तरिक्षं निरीक्षमाणः स पुनर्बभाषे ॥१७॥

७४ "रामेषुमर्मव्रणनातिवेगाद्रत्नाकरः प्रागयमुत्पपात ।
ग्राहौघकिर्मीरितमीनकम्बु नभो न भो कामशरासनभ्रु
॥१८॥

७५ मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्तारा शराः पुष्पशरेण शङ्के ।
पंचास्यवत्पंचशरस्य नाम्नि प्रपंचवाची खलु पंचशब्दः
॥१९॥

७६ नभोनदीकूलकुलायचक्रीकुलस्य नक्तं विरहाकुलस्य ।
दृशोरपां सन्ति पृषन्ति तारा पतन्ति तत्संक्रमणानि धारा
॥२०॥

७७ अमूनि मन्येऽमरनिर्झरिण्या यादांसि गोधा मकरः कुलीरः ।
तत्पूरखेलत्सुरभीतिदूरो मग्नान्यधः स्पष्टमितः प्रतीमः
॥२१॥

७८ स्मरस्य कम्बुः किमयं चकास्ति
दिवि त्रिलोकीजयवादनीयः ।
कस्यापरस्योडुमयैः प्रसूनर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ॥२२॥

७९ किं योगिनीयं रजनी रतीशं याजीविषत्पद्ममुमूमुहच्च ।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिदं वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु
॥२३॥

८० प्रबोधकालेऽह्नि बाधितानि ताराखपुष्पाणि निदर्शयन्ती ।
निशा हि शून्याध्वनि योगिनीयं
मृषा जगद्दृष्टमपि स्फुटाभम् ॥२४॥

४ चाँदनी—

७३ इस प्रकार वर्णनद्वारा उत्पन्न लज्जासे सध्याका हट गई जानकर, मानो ताराओ और अधकारसे मिश्रित आकाशको देखते नल ने फिर कहा ॥१७॥

७४ "मकरसमूह सहित मत्स्य और शखवाला आकाश नही, कामदेवकी धनुषरूपी भौह है। बल्कि रामके वाणसे हृदयमे (लगे) घावके दु खके वेगसे उछलता समुद्र है॥१८॥

७५ युद्धमे कामदेवने देवो अप्सराओके मोहनेके लिये तारारूपी वाण छोडे, मै समझता हू, पचमुख (सिंह) की तरह पचशर (कामदेव) के नाममे पाचका शब्द बहुतका वाचक है॥१९॥

७६ रातको विरहाकुल आकाशगगाके तटके घोसलेके चक्रवाकोकी दोनो आखोके जल बिंदु उससे लग्न तारे है, जो धाराओके रूपमे गिरते है॥२०॥

७७ मै समझता हू यह आकाशगगाके जल जन्तु गोह-मगर-नाके उस आकाशगगाकी धारामे खेलते देवोको डरसे दूर नीचे टूटे यहा हम स्पष्ट देखते है॥२१॥

७८ तीनो लोकोके विजयमे बजाया जानेवाला क्या यह कामदेवका शख आकाशमे चमक रहा है ? कौनसे दूसरे योद्धाकी बाजेकी शक्ति तारामय फूलो द्वारा बनती है॥२२॥

७९ क्या यह (वही) रात्रि योगिनी है, जिसने रति पतिको जिलाया, और पद्मको मूर्छित किया। इसकी बडी अ लग्न योगशक्तिको यह आकाशचुम्बी शख बतला रहा है॥२३॥

८० प्रबोधके समय दिनमे तिरस्कृत आकाश-पुष्प तारोके शून्यमागमे झूठे जगतको यह रात्रियोगिनी भी साफ दिखलाती है॥२४॥

८१ एण स्मरेणाकमय स पत्राकृतो भवद्भ्रूयुगधन्वना य ।
मुखे तवेन्दौ लसता स तारा पुष्पालिबाणानुगतो गतोऽयम्
॥२५॥

८२ लोकाश्रयो मण्डपमादिसृष्टिब्रह्माण्डमाभात्यनुकाष्ठमस्य ।
स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमन्ति घुणव्रणद्वारनिभानि भानि
॥२६॥

८३ शचीसपत्न्या दिशि पश्य भैमी शक्रेभदानद्रवनिझरस्य ।
पोप्लूयते वासरसेतुनाशादुच्छृखल पूर इवान्धकार ॥२७॥

८४ रामालिरोमावलिदिग्विगाहि ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य ।
यद्वीक्ष्य दूरादिव बिभ्यत
स्वानश्वान्गृहीत्वापसतो विवस्वान् ॥२७॥

८५ पक्व महाकालफल किलासीत्,
प्रत्यग्गिरे सानुनि भानुबिम्बम् ।
भिन्नस्य तस्यैव दषन्निपाता
द्वीजानि जानामितमा तमासि ॥२९॥

८६ पत्युगिरीणामयश सुमेरुप्रदक्षिणाद भास्वदनादतस्य ।
दिशस्तमश्चैत्ररथान्यनामपत्रच्छटाया मगनाभिशोभि ॥
॥३०॥

८७ ऊध्व धत व्योम सहस्ररश्मेदिवा सहस्रेण करैरिवासीत ।
पतत्तदेवाशुमता विनेद नेदिष्ठतामेति कुतस्तमिस्रम् ॥३१

८८ ऊर्ध्वार्पितन्युजकटाहकल्पे यद् व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन ।
न्यधायि तद्भूममिलद्गुरुत्व
भूमौ तम कज्जलमस्खलत्किम् ॥३२॥

८९ ध्वान्तैणनाभ्या शितिनाम्बरेण
दिश शरै सूनशरस्य तारै ।
मन्दाक्षलक्ष्या निशि मामनिन्दौ
सेर्ष्या भवायान्त्यभिसारिकाभा ॥३३॥

८१ तेर मुखचन्द्रमें प्रकाशमान दोनो भौहोरूपी धनुपवाले कामदेवने जो कलकमय मग बनाया, सो (मग) तारापुष्पोकी वाणसहित पक्ति हो गया ।।२५।।

८२ लोकाधारभूत आदि-सष्टिकी ब्रह्माडरूपी मडपसे अपनी कान्तिरूपी धूलिसमूहके वमनरूप नक्षत्र काप्टमे घुनके काट द्वारस दीखते हैं ।।२६।।

८३ **दमयन्ती**, देखो पश्चिम दिशामे **ऐरावतके** बहते मदके चश्मेकी धाराकी तरह, दिनक बाधके नाशसे अधकार मुक्त धाराकी तरह खूब बह रहा है ।।२७।।

८४ **रामके** सेतुकी रोमावलिसा दिशाओमे फैलता अन्धकार यमराजका वाहन बन रहा है जिसको देखकर सूय दूरसे ही मानो डरते हुये अपने घोडोको पकडकर भाग चला ।।२८।।

८५ अस्ताचलके पादमें पके महाकालके फल सा सूयबिम्ब था, पत्थरके गिरनेस उसीके टूटे बीजोको मै अन्धकार समझता हू ।।२९।।

८६ **चत्ररथ** (बन) के दूसरे नामको पत्राकनवाली दिशाका कस्तूरीसा काला अन्धकार, **सुमेरुकी** प्रदक्षिणा करते सूय द्वारा अनादत गिरिपति (**हिमालय**) की अकीर्ति है ।।३०।।

८७ काले नभको दिनमे माना सूयकी हजार किरणोने ऊपर पकडा था। सूयके बिना वही गिरता हुआ क्या अधकारसे समीपता पा रहा है ।।३१।।

८८ दीपकरूपी सूयने ऊपर रक्खे उलटे कडाहसे आकाशमे जो काजल पारा, सो उसकी बहुतायतसे भारी बना अन्धकार क्या पथिवीपर गिर रहा है ।।३२।।

८९ अधकाररूपी कस्तूरी जैसे काले आकाशने, दिशाओको कामदेवके तारे रूपी वाणोसे युक्त किया वे (हो) चन्द्रहीन रात्रिमें लज्जिता अभिसारिकाओसे 'ईर्ष्यालु होओ, कह मेरे पास आते हैं ।।३३।।

९० भास्वन्मयी मीलयतो दृश द्राड
मिथोमिलत्यचलमादिपुस ।
आचक्ष्महे तन्वि तमासि पक्ष्म
श्यामत्वलक्ष्मीविजितेन्दुलक्ष्म ॥३४॥

९१ विवस्वतानायिषतेव मिश्रा स्वगोसहस्रेण सम जनानाम् ॥
गावोऽपि नेत्रापरनामधेया-
स्तेनेदमान्ध्य खलु नान्धकारै ॥३५॥

९२ ध्वान्तस्य वामोरु विचारणाया वैशेषिक चारु मत मत मे ।
ओलूकमाहु खलु दशन तत्क्षम तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥३६॥

९३ म्लानिस्पृश स्पशनिषेधभूमे सेय त्रिशकोरिव सपदस्य ।
न किचिदन्यत्प्रति कौशिकीये दशौ विहाय प्रियमातनोति
॥३७॥

९४ मूर्धाभिषिक्त खलु यो ग्रहाणा
तद्भासमास्कन्दत ऋक्षशोभम् ।
दिवान्धकार स्फुटलब्धरूपमालोकतालोकमुलूकलोक
॥३८॥

९५ 'दिने मम द्वेषिणि कीदृगेषा प्रचार' इत्याकलनाय चारी ।
छाया विधाय प्रतिवस्तुलग्ना
प्रावेशयत्प्रष्टुमिवान्धकार ॥३९॥

९६ ध्वान्तस्य तेन क्रियमाणयेत्थ
द्विष शशी वणनयाऽथरुष्ट ।
उद्यन्नुपाश्लोकि जपारुणश्रीनराधिपेनानुनयेच्छयेव
॥४०॥

९७ "पश्यन्वृतोऽप्येष निमेषमद्रेरधित्यकाभूमितिरस्करिण्या ।
प्रवषति प्रेयसि चन्द्रिकाभिश्चकोरचचूचुलुकप्रमिन्दु
॥४१॥

९० हे कृशागी, सूयरूपी आखको मीचते विष्णुके, शीघ्र मिलती दोना अचल वाली श्यामताकी शोभास चन्द्र कलक जीतनवाली पलकको मै अन्धकार कहता हू ।।३४।।

९१ सूयने अपनी हजार गोवो (किरणो) क साथ मिली नेत्र पर्यायवाची लोगोकी गायोको भी ले लिया उससे ही यह अधता है अधकारसे नही ।।३५।।

९२ हे सुजघे अधकारपर विचार करते वशेषिकका मत मेर विचारमे सुन्दर है, तमकी वास्तविकताके निरूपणमे वह दशन समथ है, इसीलिये उसे उल्लूवाला दशन कहा गया ।।३६।।

९३ इस अन्धकारकी यह सम्पत्ति त्रिशकुकी तरह कालिमायुक्त स्पश हीन स्थानवाली है, इसे छोडकर उल्लूकी आखोमे और कुछ भी प्रिय नही लगता ।।३७।।

९४ नक्षत्रोका जो राजा (था), उसके प्रकाशवाली नक्षत्र-शोभाको हटाया उल्लू लोगोने स्पष्ट दीखते रूपको दिनका अन्धकार देखा ।।३८।।

९५ 'मेरे शत्रु दिनमें, इनका कैसे प्रचार है' यह जाननेके लिये अधकारने चलती छाया को प्रतिवस्तुमे पता लगानेके लिए प्रवेश कर दिया ।।३९।।

९६ इस प्रकार उसके द्वारा की गई शत्रु अन्धकारकी इस प्रशसासे रुष्ट हो, मनानेकी इच्छासे ही मानो नलने जपाकुसुमसे लाल शोभावाले उगते चद्रमाकी प्रशसा की ।।४०।।

९७ "हे प्रिये, देख, पहाडकी ऊपरी भूमिरूपी पर्देसे क्षण भर ढका हुआ यह चन्द्र चकोरोके चोचोके चिल्लुओमे भर खूब अपनी चादनी बरस रहा है ।।४१।।

९८ ध्वान्ते द्रुमान्तानभिसारिकास्त्व
शकस्व सकेतनिकेतमाप्ता ।
छायाच्छलादुज्झितनीलचेला
ज्योत्स्नानुकूलैश्चरितादुकूलै ॥४२॥

९९ त्वदास्यलक्ष्मीमुकुर चकोरै स्वकौमुदीमादयमानमिन्दुम् ।
दृशा निशेन्दीवरचारुभासा पिबोरु रम्भातरुपीवरोरु
॥४३॥

१०० असशय सागरभागुदस्थात्पृथ्वीधरादेव मथ पुरायम्
अमुष्य यस्मादधुनापि सिन्धौ स्थितस्य शैलादुदय
प्रतीम ॥४४॥

१०१ निजानुजेनातिथितामुपेत प्राचीपतेर्वाहनवारणेन ।
सिन्दूरसान्द्रे किमकारि मूर्ध्नि तेनारुणश्रीरयमुज्जिहीते
॥४५॥

१०२ यत्प्रीतिमदभिवदनै स्वसाम्या-
दचुम्बि नाकाधिपनायिकानाम् ।
ततस्तदीयाधरयावयोगादुदेति बिम्बारुणबिम्ब एष ।४६।

१०३ विलोमिताकोत्किरणाद्दुरूहदृगादिना दृश्यविलोचनादि ।
विधिर्विधत्ते विधुना वधूना किमानन काचनसचकेन
॥४७॥

१०४ अनेन वेधा विपरीतरूपविनिर्मिताकोत्किरणाकनेन ।
त्वदानन दृश्यदृगाद्यलक्ष्यदृगादिनेवाकृत सचकेन ॥४८॥

१०५ अस्या सुराधीशदिश पुरासीद्यदम्बर पीतमिद रजन्या ।
चन्द्रांशुचणव्यतिचुम्बितेन तेनाधुना नूनमलोहितायि
॥४९॥

१०६ तानीव गत्वा पितलोकमेनमरजयन्यानि स जामदग्न्य ।
छित्त्वा शिरोस्त्राणि सहस्रबाहो-
र्विस्राणि विश्राणितवा न्पितृभ्य" ॥५०॥

९८ अन्धकारमें छायाके व्याजसे नीले वस्त्रोको छोड चादनीके अनुकूल वस्त्रोसे युक्त अभिसारिकाओको वक्षोके नीचे सकेत-स्थानमे पहुची तू समझ ।।४२।।

९९ हे कदलीसी मोटीजाघवाली चकोरोसे अपनी चादनीको मस्त बनाते तेरे मुखकी शोभाके दपण जैसे चद्र निशाके कमलकी सुदर प्रभावाली आखसे पान कर रहे है ।।४३।।

१०० निस्सन्देह पूव समयमें सागरस्थ यह पवत ही मथानी हो उठा, क्योकि आज भी समुद्रमे स्थित पवतसे हम उसका उदय समझते है ।।४४।।

१०१ क्या अपने अनुज इद्रके वाहन ऐरावतने अतिथि बने (चद्र) के सिरपर सिन्दूर लगाया, जो कि वह लाल शोभायुक्त उग रहा है ।।४५।।

१०२ अपनी समानता के कारण जो कि इद्रकी नायिकाओके प्रेमयुक्त वदनोसे चूमा गया, उसीसे उनके अधर रागसे युक्त होनेसे यह लाल बिम्बवाला होकर उग रहा है ।।४६।।

१०३ क्या ब्रह्मा चन्द्रके सुनहले साचेमे बधुओ के कलक उलटाये उत्तम किरणोसे दुरूह आखो आदि द्वारा दृश्य नेत्र आदि युक्त मुखको बनाता है ।।४७।।

१०४ ब्रह्माने उलटे रूपसे निर्मित अकको किरणोके अकन द्वारा तेरे मुखको दश्य-दृष्टि आदिसे अलक्ष्य आखो आदिवाले साचेसे बनाया ।।४८।।

१०५ इस पश्चिम दिशाका जो पहले अम्बर था, उसे रात्रिने पी लिया। चद्रकिरणोके चूर्णों से परस्पर चुम्बित उसके द्वारा निश्चय अब वह लाल हुआ ।।४९।।

१०६ परशुरामने सहस्रबाहुके सिरको काटकर गधयुक्त रक्तसे पितरोको तर्पित किया, वही रक्त था, जिसने पितलोकमें जाकर इस चद्रको रग दिया ।।५०।।

(५) गर्वोक्ति —

१०७ श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकारहीर सुत
श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम् ।

१०८ यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी,
कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तमदयति सुधीभूय सुधिय ,
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै ।।१।।

१०९ दिशि दिशि गिरिग्रावाण स्वा वमन्तु सरस्वती,
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम् ।
स परमपर क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते,
मथितुरमत खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम् ।।२।।

११० ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञम यमना हठेन पठिती मास्मिन्खल खेलतु ।

त्वेतत्काव्यरसोमिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन ।।३।।

१११ ताम्बूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वराद्,
य साक्षात्कुरुते समाधिषु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्य मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय ,
श्री श्रीहर्षकवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ।।४।।
—सर्ग २२

५ आत्म-प्रशसा—

१०७ कविराजोके मुकुटालकार श्रीहीरन और मामल्लदेवीने जिस इद्रिय विजेता श्रीहर्ष पुत्रको जन्माया ।

१०८ परम रमणीय रमणी भी जैसे जवानको, वसे बच्चोके हृदयको हरण नही करती। मेरी रचना अमत बनकर पडितोको भीतरस जब मस्त करती है तो अरसिक पुरुषोके अना दरसे इसको क्या ॥१॥

१०९ दिशा-दिशामें पवत पाषाण अपनी वाणी वमन करें, सामान्यत निकली ध्वनिके आडबरका उससे परस्पर तुलना करे। किन्तु वह दूसरा ही क्षीरसागर है, जिससे यह मथनेवालेके खेदका नाशक प्रमोददाता अमतरूपी भोजन उपजता है ॥२॥

११० मैंने यहा कही-कही प्रयत्नके साथ ग्रथकी गाठ रख छोडी है जिसमे झूठे पडित खल पढाकू हठसे न खुल खेल। जिन्होने श्रद्धासे गुरुकी सेवा की दढ गाठोको ढीला किया वे सज्जन इस काव्यकी रसल-हरीमे डूबने के सुखमे अवस्थान करे ॥३॥

१११ जो कान्यकुब्ज ईश्वरसे दो पान और आसन पाता है, जो समा-धियोमे आनदसागर परब्रह्मका साक्षात्कार करता है, जिसका काव्य मधुवर्षी और जिसकी उक्तिया तकमे दूसरोको पराजित करनेवाली है, उस श्री श्रीहर्ष कविकी यह कृति पडितोके आनदके लिये उग ॥४॥

—सग २२

भाग ६

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

४८ पद्मावती (१६०० ई०)

४९ पंडितराज जगन्नाथ (६४० ई०)

५० गौरी (१६५० ई०)

५ आधुनिक काल (१६०० ई०)

अपभ्रंश काल और भारतमें हिन्दू शासनका अन्त एक साथ होता है। श्रीहर्ष और कान्यकुब्ज-अधिपति जयचन्द्रके बाद अब भारतमें भाषा, और संस्कृतिसे भिन्न ही नहीं, बल्कि विरोधी शासक दिल्लीको राजधानी बना कर शासन करने लगे। भारत के सबसे बड़े बड़े सांस्कृतिक केन्द्र अब उन तुर्कोंके आधीन थे, जो काफिरोंकी भाषा, संस्कृति और साहित्यको कोई भी सम्मान या संरक्षण देनेके लिये तैयार नहीं थे। उनसे कोई संस्कृतका कवि अब सत्कार और सहायताकी आशा नहीं रख सकता था। जब तक हिन्दू-धर्म देशमें था, तब तक संस्कृतकी अवश्यकता थी, इसलिए संस्कृतका पठन पाठन उन्होंने नहीं छोड़ा, किन्तु उसकी उत्कृष्ट कलाकी ओर उनका ध्यान नहीं जा सकता था। मुस्लिम प्रहारसे हिन्दू धर्मकी धज्जियां उड़ने लगी उसके पूजा-स्थान नष्ट हो गये, उसके तीर्थ अनेक बार अपवित्र किये गये, यात्रियोंपर विशेष कर (जज़िया) लगाये गये। ऐसे समयमें संस्कृत कविताके उत्कर्षके लिए प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो सकता था? इसीलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुस्लिम शासनकी प्रथम शताब्दियोंमें संस्कृतका कोई उच्च कवि नहीं मिलता।

जर्जर होते हिन्दू धर्ममें पुनः प्राण-संचार करनेके लिये इसी आरम्भिक कालमें वैष्णव सन्त पैदा होते हैं, जिन्होंने हिन्दू धर्मको ऐसे रूपमें लोगोंके सामने रखना चाहा, जिसे जन-मन सुगमतासे ग्रहण कर सके और उसपर चलनेकी कोशिश करे। ये सुधारक यद्यपि हिन्दू सामन्तोंके भी श्रद्धाभाजन थे, लेकिन अब केवल उनके ही ऊपर रहना ठीक नहीं था, जन शक्ति ही हिन्दू धर्म और संस्कृतिका संरक्षण कर सकती थी। इसलिए सूर, तुलसी जैसे कवि पैदा हुए, जो लोक भाषाको अपनानेके लिये मजबूर थे। हिन्दू सामन्त भी लोक भाषामें लिखी कविताओंका ही रसास्वादन कर सकते थे, इसलिये भी लोक भाषाके कवियोंको सुभीता था।

लेकिन, इस सारे कालमें संस्कृतका साहित्य जीवित रहा। हमारे

महाकवियोकी कृतियोको बडी आदरसे पढा जाता था। वाराणसी (बनारस) गहडवारोके समयसे ही सस्कृतके अध्ययनका विशाल केन्द्र बन चुकी थी। शताब्दिया बीतनेके साथ तीथके तौरपर ही नहीं, बल्कि विद्या-केन्द्रके तौरपर भी उसकी ख्याति बढी। सारे भारतके विद्वानोकी नजर उसकी तरफ लगी रहती थी। पूव पश्चिम उत्तर-दक्षिणके श्रेष्ठ विद्वान काशीमें रहना अपने सौभाग्यकी बात समझते थे। इसी कारण आन्ध्रसे आये ब्राम्हण पेद्दु भट्ट थे, जिनके यशस्वी पुत्र जगन्नाथ थे। उनके रूपमें सस्कृत कविताने फिर एक बार अपना चमत्कार दिखलाया। जगन्नाथकी जीवनीसे पता लगता ह, कि उस समय उनके जसोको कितने कष्ट उठाने पडते थे। वह नवाब आसफ खाको रिझाकर उन्हें कुछ सहायता मिली। फिर कामरूप (आसाम) के राजा प्राणनारायणकी तारीफमें लगे। पर उससे भी उन्हे इतनी प्राप्ति नहीं हुई, कि अपना जीवन निश्चिन्त बिता सकते। अन्तमें उनका भाग्य खुला, जब शाहजहाका पुत्र दाराशिकोह सस्कृत साहित्य ओर तत्वज्ञानकी तरफ झुका। वह काशीसे दिल्ली वल्लभके दरबारमें गये और वहा सुखी जीवन बिताकर अन्तमें वृन्दावन सेवन करने लगे। पडितराजके समयके आसपास दो कवित्रिया भी ह। इन तीनोकी कवितायें अपभ्रशकालीन कविताके दोषोंसे मुक्त ह। उत्कृष्ट कविताकी अतिम झलक हमें इनकी सूक्तियोमें मिलती ह।

४८ पद्मावती (१६०० ई०)

पद्मावतीके समय और जन्मस्थानके बारेमें कुछ कहना मुश्किल है। इनके पद्योसे भी देश या स्थानका कोई पता नहीं लगता। गुजराती स्त्रियोका

४८ पद्मावती

१ हरिण्यस्त्वरण्येऽग्रगण्य शरण्य,
नृपाणा यमालोक्य लोलाक्षिगोला ।
करे चारुचाप गले नीलचोल,
मृगानुव्रजन्त स्मर भावयन्ति[१] ॥१॥

(२) कृपण —

२ कोषे निषण्णस्य च बद्धमुष्टेर्,
मलिम्लुचाकारविभीषणस्य ।
आकारत केवलमस्ति भेद
कृपाणकस्यापि धनाणकस्य[२] ॥२॥

(३) खल —

३ स्वभावसिद्ध वक्रत्व खलस्य च हलस्य च ।
मुखाक्षेप तयो सोढुमलमेकैव सा क्षमा[३] ॥३॥

(४) शरीरावयवा —

४ किं चारुचन्दनलताकलिता भुजग्य ?
किं पत्रपद्ममधुसवलिता नु भृग्य ?
किं वाननेन्दुजितराहुरुचो विषाल्य ?
किं भान्ति गुर्जरवरप्रमदाकचाल्य[४] ॥४॥

---

१ छन्द भजगप्रयात, २ उपजाति, ३ अनुष्टप, ४ वसन्ततिलक

४८ पद्मावती (१६०० ई०)

विशेष पक्षपात होनेसे जान पडता ह, यह गुजराती थीं। एक पद्यमें किसी राजाका वणन और कई नख शिखके ललित पद्य इनका सबध साम ती दरबारसे बतलाते ह।

४८ पद्मावती

(१) राजा—

१ राजाओमें से जिसे अग्रगण्य शरण जानकर चचल नत्रोवाली हरिनिया जगलमे गइ, वह हाथमें सुन्दर चाप, गलेमे नीले चोगे, मगके पीछे जाते (उसे) कामदेव समझती है।।१।।

(२) कँजूस—

२ मलिन आकारके कारण भयकर, मुटठी बाधे खजानेमे बैठे, कजूस और पैसेके आनेमें केवल आकार का ही भेद है।।२।।

(३) खल—

३ खल और हलका टेढापन स्वभावसिद्ध है। उन दोनोके मुखके आक्षेपको एकही क्षमा (पृथिवी) सह सकती है।।३।।

(४) नख-शिख—

४ क्या (वह) सुन्दर चन्दनलतामें लिपटी नागिनें है ? क्या पद्मके मधुमें लिपटी भ्रमरिया है ? अथवा मुखचद्र को हरानेवाले राहु सी विषपक्तिया है। अथवा गुजरातकी वर महिलाओकी चोटिया हैं।।४।।

५ तव रुचिरमुखेन्दो कान्तिपीयूषधारा,
चतुरतरचकोरीचक्रमास्वाद्य सद्य ।
अनुगतबहुमाध्वीचचुजाड्यापनुत्यै
कलयति शशिबिम्बे काजिकभ्रान्तिमेतत् ॥५॥

६ दन्तालिदाडिमीबीजभक्षणोत्कण्ठितात्मन ।
मन्ये मारशुकस्येय नासाचचुर्विजायते[1] ॥६॥

७ कस्तूरीतिलक तस्या जनयति शोभा भ्रुवोरन्त ।
कोदण्डमध्यलग्न फलमिव पचेषुबाणस्य ॥७॥

८ न भाति कण्ठ किमु काम-भूपतेर्
विभाति जैत्र किल कम्बुरेव ।
अद्यापि सभाति यतस्तदीया
रेखामिषादगुलियन्त्रणेयम्[2] ॥८॥

९ कि श्रृगारसमुद्रकल्पलतिके कि वा मृणालीलते
कि वक्षोजमहीध्रचन्दनलते कि मारपाशीलते ।
कि लावण्यसुधाब्धिविद्रुमलते पत्रागुलीसयुते
भात कि कलगुजरीसुललिते वाहूलते मन्मते[3] ॥९॥

(५) सिह —

१० मान्योऽसि मानमजुल सिह मगेन्द्र प्रचण्डभुजदण्ड ।
य प्रौढदिग्गजोद्भवपललरतो हसि नो हरिणान्[4] ॥१०॥

(६) अश्व —

११ वारित प्रस्फुरत्येव समुदचितकेसर ।
अत्यन्त भ्रमरीकीर्णो वाजी राजीवसन्निभ[5] ॥११॥

---

१ मालिनी, २ उपगीति ३ शार्दूलविक्रीडित, ४ आर्या, अनुष्टुप,
५ वसन्ततिलक ।

५ तेरे रुचिर मुखचन्द्रकी शोभाकी अमतधाराको अति चतुर चकोरिया आस्वादन कर बहुत मिठाई पाय चाचकी जडताको तुरत हटानेके लिय वह च द्रमडलमे काजीका भ्रम करती ह ॥५॥

६ दत-पक्तियोरूपी अनार-दानके भक्षणक लिय उत्कठित म समझती हू, कामदेवरूपी तात का यह नासाचचु है ॥६॥

७ उसका दोनो भौहोक बीचमे कस्तूरीका तिल्क ऐसी शोभा पैदा करता है, मानो चापके बीचमे लगा कामदवके वाणका फल है ॥७॥

८ क्या काम नपतिका कठ नही शोभता राजाका विजय-शख शोभा दे रहा है आज भी जो कि उसकी रेखाक बहान, अगुलीकी दाब यह दिखाई देती है ॥८॥

९ क्या शृगार-समुद्रकी दो कल्पलताये अथवा मणालियोकी लतायें ह ? क्या स्तनगिरि की चन्दनलता या कामपाशरूपी लता है ? क्या लावण्यामत-सागरकी मूगेकी लता पनरूपी अगुलियोसे युक्त है ? मेरी रायसे तो सुन्दर गुजरातिनोकी दो ललित बाहुलताये शोभ रही हैं ॥९॥

५ सिह—

१० हे मानमें मजुल, प्रचण्ड भुजदण्डवाले मगेन्द्रसिह तुम माननीय हो, जो कि प्रौढ दिग्गजोके मासके प्रेमी बन हरिनोको नही मारते ॥१०॥

६ अश्व—

११ भवरियोसे आकीण कमल जैसा अश्व रोकनेपर अयाल उठाये अत्यत चचल हो उठता है ॥११॥

(७) **अन्योक्ति —**

१२ मा काक कोकिलशतानुगत प्रसर्पद्-
दर्पाविमत्य खगराजमितो व्रजेथा ।
ज्ञास्यन्ति चेत् करटक तु भवन्तमेते,
हास्यन्ति ककरवदुज्ज्वलरत्नसघात्[1] ॥१२॥

(८) **प्रभात—**

१३ प्रभातवेला स्मरराजपुत्री,
नीराजनाभाजनमकबिम्बम् ।
आयाति नीराजितुमब्धिपुत्री
पाणौ गृहीत्वाऽकुरिताशुभालम्[2] ॥१४॥

(९) **तारा-गण —**

१४ त्रिलोकीजयप्रस्थितस्यात्मयोने -
लसत्कुकुमारात्रिपात्र दधाना ।
स्फुरत्कान्तिताराक्षतान् भावयन्ती
पुरन्ध्री निशा याति त मगलाय[3] ॥१५॥

(१०) **ग्रीष्म —**

१५ तुषाराकराक्लेशितामुष्णरोचि ,
समाज्ञाय जाया प्रिया पद्मिनी च ।
सखाय निज ग्रीष्मकाल विधाय ,
ज्वलज्ज्योतिरुद्द्योतते तज्जयैषी ॥१६॥

१६ धूली-ककरिण प्रचण्ड-तपन-ज्वालालि-माला-धरा ,
स्पर्शादेव सरिज्जल तरु-दल सशोषयन्त क्षणात् ।
पीतोन्मुक्त— फणीश-फूत्कृति-विष -ज्वालालि-युक्ता इव
स्वच्छन्द परितो भ्रमन्ति बहुशो ग्रीष्मस्य वाता अमी[1] ॥१७॥

---

१ उपजाति, २ भुजगप्रयात, ३ मन्दाक्रान्ता ।

७ अन्योक्ति—

१२ सैकडो कोयलोको पीछे लिय चलते हे कौवे दपसे तिरस्कार करके
यहासे पक्षिराजके पास मत जा। यदि य आपको कौआ जानेगे,
तो उज्ज्वल रत्नोमेस ककडीकी तरह तुम्हे निकाल फकेग ॥१२॥

८ प्रात —

१३ प्रभात वेला कामराजा की पु्त्री अकुरित किरण मालावाले सूय-
बिम्बक आरती पात्रको हाथमे लेकर, सागर-पुत्री (लक्ष्मी)
की आरती उतारन आ रही है॥१४॥

९ तारागण—

१४ तीनो लोकोके जय के लिये प्रस्थान करते कामदवके लिय, सोहते
कुमकुमका आरती पात्र लिये झिलमिलाती कातिवाल तारारूपी
अक्षतोकी भावना करती, निशारूपी महिला उसके मगलाचारके
लिये जा रही है ॥१५॥

१० ग्रीष्म—

१५ प्रिया-पत्नी पद्मिनीको चन्द्र द्वारा क्लेशित जानकर उष्ण किरणवाला
सूय ग्रीष्मकालको अपना मित्र बना, उसकी जयकी इच्छासे जलती
ज्योतिवाला हो प्रकाशता है॥१६॥

१६ धूलि से ककराते प्रचण्ड सूयकी ज्वालाओकी माला धारे, स्पशसे ही
नदीके जल वक्षके पत्रको क्षणमे सुखानेवाले पीकर छोडे नागराजके
फुफकार-युक्त विषकी ज्वालाओसे युक्त, ग्रीष्मकी ये हवाये चारो
ओर स्वच्छन्द घूम रही है॥१७॥

(११) वर्षा—

१७ नाय गज , किमुत ? मदन-प्रौढ-निसाण-शब्दो
नैते मेघा , किमुत? मदनस्योद्धुरा सिन्धुरास्ते ।
नैषा विद्युत्, किमुत? जयिनी तत्-करे कापि शुक्तिर्,
नैन्द्रश्चाप , किमुत? जगता मोहनास्त्र स्मरस्य ॥१८॥

४९ पण्डितराज जगन्नाथ (१६४० ई०)

यह आन्ध्रसे बनारसमे आकर बसे पेरम भट्टके पुत्र और अपने समयके प्रकाण्ड पडित थे। साहित्य, व्याकरण और दर्शनपर इनका अनदभुत [?] अधिकार था। कविता करनेमे इन्होने अपभ्रंशकालीन जटिल शब्दोकी परम्पराको नही, बल्कि कालिदासको अपना गुरु बनाया। शाहजहाके पुत्र दाराशिकोहको सस्कृत पढनेका बहुत शौक था। उसीको पढानेके लिए यह काशीसे दिल्ली आये। इस समय यह तरुण थे, इसीलिए लिखा ह "दिल्ली वल्लभपाणिपल्लवतले नीत नवीन वय "। यह सस्कृतके महान पडित होते भी कूपमडुकतासे बिल्कुल मुक्त थे । मुगल दरबारमें एक मुसलमान तरुणीसे प्रेम हो गया, और उसे इन्होने पत्नीके तौरपर स्वीकार कर लिया। चारो ओरसे उन्हें हिन्दू धमसे भगानेकी कोशिश की गई, लेकिन जगन्नाथ अपने स्थानपर अडिग रहे। परवर्ती लोगोको जगन्नाथके पूण धर्मात्मा होनेपर पूरा विश्वास था। वह कहते ह, "गगालहरी" को इन्होने अन्तिम समयमें अपनी धमनिष्ठताको सिद्ध करनेके लिए बनाया। अपनी मुसल्मान पत्नीके साथ काशीमें गगाकी सीढियोपर जा बठे, और लहरीके एक एक

११ वर्षा—

१७ यह गरज नही है, तो क्या ? मदनके जबदस्त नगाडाके शब्द है।
यह मघ नही है, तो क्या ? मदनक धुरोवाले घोडे हाथी ह । यह विजली
नही है ता क्या ? उसक हाथ मे कोई विजयिनी शक्ति है। यह चाप
नही है, तो क्या ? जगतके लिये कामदेवका माहनास्त्र है ।।१८।।

४९ जगन्नाथ (१६४०) इ०

पद्यके गानेके साथ गगा एक एक सीढी ऊपर चढती आई, और लहराके समाप्त होनेके साथ दोनोको गगा अपनी गोदमें लेकर चली गई। बादशाहने इन्हे "पडितराज" की उपाधि दी थी।

दिल्ली जानेसे पहले इन्हे और दरबारोमें भी भटकना पडा था। असम (कामरूप) के राजा प्राणनारायणके दरबारमें जाकर इन्होने "प्राणाभरण" काव्य लिखा था। मुगल सामन्त नवाब आसफ खाकी प्रशसामें "आसफविलास" (गद्यकाव्य) और दाराशिकोहकी प्रशसामें "जगदाभरण" लिखा। इन्होंने प्रौढ मीमासक अप्पयदीक्षितके ग्रथ "चित्रमीमासा" का खडन "चित्रमीमासाखडन" द्वारा किया। अपने समयके महान वैयाकरण भट्टोजिदीक्षितकी "मनोरमा" का खडन "मनोरमाकुचमदन" द्वारा किया। "रसगगाधर" इनका अलकारका बहुत प्रौढ ग्रथ है, जो दुर्भाग्यसे अपूण ही रह गया। इनकी पाच लहरिया—(१) "करुणा लहरी", (२) "गगा लहरी", (३) "अमृतलहरी", (४) "लक्ष्मीलहरी" और (५) "सुधा लहरी" प्रसिद्ध ह। पिछले सात सौ वर्षोंमें इतनी सवतोमुखीन प्रतिभावाला महान और विचारोसे अति उदार पडित भारतमें नहीं हुआ।

१ लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीस्तुति —

१ समुन्मीलत्वन्त करणकरुणोद्गारचतुर ,
करिप्राणत्राणप्रणयिनि द्वगन्तस्तव मयि।
यमासाद्योन्माद्यद्द्विपनियुतगण्डस्थलगलन्,
मदक्लिन्नद्वारो भवति सुखसारो नरपति ॥२॥

२ समीपे सगीतस्वरमधुरभगी मृगदृशा
विदूरे दानान्धद्विरदकलभोद्दामनिनद ।
बहिर्द्वार तेषा भवति हयहेषाकलकलो
दृगेषा ते येषामुपरि कमला देवि सदया ॥४॥

३ प्रभातप्रोन्मीलत्कमलवनसचारसमये,
शिखा किजल्काना विदधति रुज यत्र मदुला ।
तदेतन्मातस्ते चरणमरुणश्लाघ्यकरुण
कठोरा मद्वाणी कथमियमिदानी प्रविशतु ॥८॥

—काव्यमाला २

२ अमृतलहरी

यमुनास्तुति —

४ दानान्धीकृतगन्धसिन्धुरघटागण्डप्रणालीमिलद् -
भृङ्गालीमुखरीकृताय नृपतिद्वाराय बद्धोऽजलि ।
त्वत्कूले फलमूलशालिनि मम श्लाघ्यामुरीकुर्वतो
वृन्ति हन्त मुने प्रयान्तु यमुने वीतज्वरा वासरा ॥३॥

५ अन्तर्मौक्तिकपुजमजिम बहि स्निग्धेन्द्रनीलप्रभ,
मातर्मे मुदमनातनोतु करुणावत्या भवत्या पय ।

१ लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीकी स्तुति—

१ हे गज प्राणरक्षक (विष्णु) की प्रमिके, हृदयसे करुणाक उदगारमे निपुण तेरा नयनकोर मेरे ऊपर खुले। जिसे पाकर राजा मस्त दसो हजार गजोक कपोलोके मदस भीग द्वार और सुखसारवाला होता है ॥२॥

२ हे कमलादेवि उनके समीपमे मगननियोक सगीतस्वरकी मधुर लहर, दूर मदस अधे तरुणगजोकी उद्दीप्त चिघाड, बाहर द्वारपर घोडेक हिनहिनानका कल कल हाता है जिनक ऊपर तेरी यह दयायुक्त दष्टि पडती है ॥४॥

३ सवरक खिलते कमलवनोमे घूमनक समय किजल्कोकी मृदुल शिखा जब (तुझ) व्यथा करती है, तो हे माता, इस अरुण और प्रशसनीय करुणावाले तेरे चरणमे यह मेरी कठोर वाणी कसे प्रवेश पायेगी ॥८॥

—काव्यमाला, गुच्छ २

२ अमृतलहरी

यमुनाकी महिमा—

४ दानसे अधे बने गधगजोके कपोलोमे लग भवरोसे मुखरित राजाके द्वारको मैंने हाथ जोड लिया। हे यमुने, फल-मूलवाले तेरे तटपर श्लाघनीय मुनिवत्तिको स्वीकार कर, अहो मेरे दुःख-रहित दिन बीते ॥३॥

५ हे माता, भीतर मुक्ता-पुजसे सुन्दर स्निग्ध इन्द्रनील-मणिकी प्रभावाला करुणावती आपका जल मुझे आनद प्रदान करे। दो रूपोके धारण

यद्रूपद्वयधारणादिव नृणामाचूडमामज्जता ,
तत्काल तनुतेतरा हरिहराकारामुदारा तनुम् ॥४॥

६ मातर्वारिणि पापहारिणि तव प्राणप्रयाणोत्सव,
सप्राप्तेन कृता नरेण सहतेऽवज्ञा कृतान्तोऽपि यत् ।
यद्वा मण्डलभेदनादुदयिनीश्चण्डद्युतिर्वेदना
ञ्चित्र तत्र किमप्रमेयमहिमा प्रेमा यदौत्पत्तिक ॥९॥

३ सुधालहरी

सूयस्तुति —

७ उल्लास फुल्लपकेरुहपटलपतन्मत्तपुष्पधयाना,
निस्तार शोकदावानलविकलहृदा कोकसीमन्तिनीनाम् । ।
उत्पातस्तामसानामुपहतमहसा चक्षुषा पक्षपात ,
सघात कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्तत प्रादुरासीत् ॥१

८ निर्भिद्य क्ष्मारुहाणामतिघनमुदर येषु गोत्रा गतेषु,
द्राघिष्ठस्वर्णदण्डभ्रमभृतमनस सनिधित्सन्ति पादान् ।
यै सभिन्मे दलाग्रप्रचलहिमकणे दाडिमीबीजबुद्ध्या
चचूचाचल्यमचन्ति च शुकशिशवस्,
तेऽशव पान्तु भानो ॥५॥

९ शीते शोक, शशाके कृशतमरुचितामाशुनाश निशाया
धिक्कार ध्वान्तवर्गे , कुमुदपरिषदि प्रोद्गम दीनताया ।
पाण्डित्य पुण्डरीकेष्वनुदिनमधिका कान्तिमाशासु तन्वन्,
नन्वचत्यन्वह द्यामुषसि करुणया विश्ववन्द्यो विवस्वान्
॥११॥

करनसे वह मानो सिरस डुबकी लगाये आदमियाका तत्काल हरि और हरके उत्तम शरीरका प्रदान करता हे।।४।।

६ हे मा तरे पापहारी जलमे (मेर) प्राण प्रयाण उत्मव पाये नर द्वारा की गई अवज्ञाको जब कि यमराज भी नही सहन करता। अथवा सूयमण्डलके भदनसे उत्पन्न वडप्रकाशवाली वदनाये है जिसमे उत्पन्न होता वहा कोई अदभुत अचित्य महिमा प्रम।।९।।

—काव्यमाला १

३ सुधालहरी

सूर्यकी महिमा—

७ फूले कमल पत्रोपर पड मस्त भ्रमरोका उल्लास हे, शोकरूपी दावानलसे विकल हृदयवाली चक्रवाक पत्नियोका निस्तार है। अन्धकारोक लिये उत्पात नष्ट तजवाले नत्रोका पक्षपात हे यह कोई प्रकाशका समूह उदयाचलक किनारसे प्रकट हो रहा है।।१।।

८ वृक्षोक अति घने उदरको भेदकर जिनके पृथिवीपर आनेपर, अति लम्ब सुवणदण्डके भ्रमसे वारण किये मतवाल किरणोको जोडनेकी इच्छा करती है जिनसे खिले पत्रके अग्रभागपर चचल ओस कणोमे अनारका बीज समझकर, तोतोके बच्चे चोचोकी चचलता दिखाते ह व भानुकी किरणे रक्षा करे।।५।।

९ सर्दी पर शोक, च द्रमामे क्षीण रोशनी रातमे तुरन्त नाश अ धकारोमे धिक्कार, कमल समूहोमे दीनता पैदा कर१ पुडरीकोमें प्रतिदिन निपुणता, दिशाओमे अधिक कान्तिको विस्तारित करते, विश्ववद्य सूय प्रतिदिन आकाश और उषाको करुणामे भरते है।।१।।

—काव्यमाला १

४ प्राणाभरणम्

कामरूपनृपस्तुति —

१० "विद्राणैव गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभर,
कालोऽय कलिराजगाम जगतीलावण्यकुक्षिर्भरि" ।
एव भावनया मदीयकविते मौन किमालम्बसे,
जागर्तु क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वर" ॥२॥

११ कि ब्रूमस्तव वीरता वयममी यस्मिन्धराखण्डल -
क्रीडाकुण्डलितभ्रु शोणनयन दोर्मण्डल पश्यति ।
माणिक्यावलिकान्तिदन्तुरतरैर्भूषासहस्रोत्करैर्,
विन्ध्यारण्यगुहागृहावनिरुहास्तत्कालमुल्लासिता ॥४॥

१२ माहात्म्यस्य पगेऽवधिर्निजगृह गम्भीरताया पिता,
रत्नानामहमेक एव भुवने को वापरो मादश ।
इत्येव परिचिन्त्य मा स्म सहसा गर्वान्धकार गमो,
दुग्धाब्धे भवता समो विजयते श्रीप्राणनारायण ॥५॥

१३ आस्वादेन रसो, रसेन कविता, काव्येन वाणी तया,
लोकान्त करणानुरागरसिक सभ्य, सभा चामुना ।
दरिद्र्यानलदह्यमानजगतीपीयूषधाराधर ,-
क्षोणीनाथ तथा भवाश्च भवता भूमण्डल भासते ॥११॥

१४ सष्ट सष्टिभवा पुरा किल परित्रातु जगन्मण्डल,
त्व चण्डातपानिदय तपसि यज्ज्वालाजटालै करै ।
सरम्भारुणलोचनो रणभुवि प्रस्थातुकामोऽधुना,
जानीमो भवता न हन्त विदित श्रीकामरूपेश्वर ॥१५॥

१५ मयि त्वदुपमाविधौ वसुमतीश वाचयमे ,
"न वणयति मामय कवि"रिति क्रुध मा कृथा ।
चराचरमिद जगज्जनयतो विधेर्मानसे,
पद न विदधेतरा तव समो द्वितीयो नर ॥१९॥

४ प्राणाभरण

असम-राजाकी प्रशसा—

१० 'मानो गुणज्ञता भाग गई ईर्ष्याका अधिक भार जमा हो गया। ससारके सौदयको खा जानवाला यह कलि आ गया यह सोचकर हे मरी कविता तू क्यो मौन धारण कर रही है। यहा पथिवीमण्डलपर श्रीकामरूपेश्वर जाग जो रहे ह ।।२।।

११ हम तेरी वीरताक बार मे क्या कहे जिस पथिवीचद्रकी क्रीडासे तिरछी भौहो लाल नयनो, भुजमण्डलका देखत मणियाकी कान्तिसे उछलते हजारो भूषणोसे विध्र पवतक गुहागहोवाल वृक्ष तत्काल उल्लसित हो गये ।।४।।

१२ जो बडप्पनकी अन्तिम सीमा गम्भीरताका निजगह है भुवनमें रत्नोका मै ही एक रक्षक हू मेरे समान दूसरा कौन है ' इस प्रकार सोचते, हे क्षीरसागर एकाएक गवके अधकारमे मत पड, (राजा) आपके समान **श्रीप्राण**की विजय है ।।५।।

१३ (जैसे) आस्वादसे रस रसस कविता, कवितासे वाणी उससे लोगोके मनक अनुरागका रसिक सभ्य और उससे सभा, दरिद्रतारूपी अग्निसे जलते ससारके लिये अमृत मेघ ह वैसे ही हे पृथिवीनाथ, आप उस सभासे और आपसे भूमडल प्रकाशित है ।।११।।

१४ हे सूय, पुराने समयमे ब्रह्माने ससारमडलकी रक्षाके लिय तुम्हें बनाया। तुम ज्वालाकी जटाओवाली किरणोसे प्रचड धूपस निष्ठुर तप रहे हो । मै समझता हू रणभूमिमे क्रोधसे लाल आखोवाले प्रस्थानके इच्छुक, तुम्हे हन्त ! **श्रीकामरूपेश्वर**का ज्ञान नही है ।।१५।।

१५ ह पथिवीश्वर, तुम्हारी उपमा दनेमें जबानपर सकोच करते देख "यह कवि मेरी प्रशसा नही करता ' यह कह मेरे ऊपर क्रोध मत करो। इस चराचर जगतके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माके मनमे, तेरे समान दूसरे नरने पद (स्थान) नही पाया ।।१९।।

१६ भुजभ्रमितपट्टिशोद्दलितदृप्तदन्तावल ,
भवन्तमरिमण्डलक्रथन पश्यत सगरे।
करालकुलिशाहतिस्फुटविभिन्नविन्ध्याचल ,
न कस्य हृदय झटित्यधिरोह जम्भाहित ॥२०॥

१७ प्राचीसव्यासमुद्यन्महिमदिनमणेर्मानमाणिक्यकान्तिर् ,—
ज्वालामाला-कराला-कवलितजगत क्रोधकालानलस्य ।
आशाकान्तापदाम्भोरुहतलविगलन्मजुलाक्षारसाभा,
सा भाति क्षोणिशोभाकरण तव दृशो सगरे शोणिमश्री ॥२५॥

१८ स तु वपतु वारि वारिदस्त्वमुदाराशय रत्नवषण ।
स कुहूरजनीमलीमसस्त्वमिहान्तबहिरेव निमल ॥३१॥

१९ तलगान्वयमगलालयमहालक्ष्मीदयालालित ,
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिश विद्वल्ललाटतप ।
सतुष्ट कमताधिपस्य कवितामाकण्य तद्वणन,
श्रीमत्पण्डितराजपण्डितजगन्नाथो व्यधासोदिदम् ॥५२॥

५ भामिनीविलास

(१) अन्योक्तय —

२० तावत्काकिल विरसान् यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन् ।
यावन्मिलदलिमाल कोऽपि रसाल समुल्लसति ॥७॥

२१ कमलिनि मलिनीकरोपि चेत ,
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञै ॥
परिणतकरदमार्मिकास्ते,
जगति भवत् चिरायुषो मिलिदा ॥८॥

२२ नितरा नीचोऽस्मीति त्व खेद कूप मा कदापि कृथा ।
अत्यन्तसरसहृदयो यत परेषा गुणगहोतासि ॥९॥

१६ हे शत्रुमडलके नाशक युद्धम आपके मस्त गजाको भुजके पट्टिशसे दलित किये देख, दाढमे स्थित कराल वज्र के प्रहारसे फूटा **विध्याचल** किसके हृदयमे जल्दी नही आरूढ होगा ॥२०॥

१७ हे पथिवीके शोभा करनेवाले युद्धम तुम्हारी आखाकी लाल शोभा पूवमे उषाकालमे उगत महिमावाल मूयकी मणिकी कान्तिवाल जगतको कवलित करनेवाल क्रोधरूपी कालाग्निकी कराल ज्वालाय-दिशारूपी कान्ताके चरण कमल तल्से गिरते मजु महावरके रसम। प्रकाशमान ह ॥२५॥

१८ वह मेघ तो जल बरसाता ह उदार हृदयवाल तुम रत्न बरसानवाल हो । मेघ अमावस्याकी रातकी तरह काला है, और यहा तुम भीतर और बाहरस निमल हो ॥३१॥

१९ **तैलग** वशके **मगल** भवनकी महालक्ष्मीकी दयासे लालित विद्वानोके ललाटको रात-दिन तपानेवाल श्रीमान **पेरमभट्ट**के पुत्रने **काम रूपाधीश**की प्रशसावाली कविता सुनकर सतुष्ट हो इसे रचा ॥५२॥

—काव्यमाला १

५ भामिनीविलास

१ अन्योक्ति—

२० हे कोयल, तब तक वनातरामे रहती नीरस दिनाको बिताओ, जब तक भवरोकी मालावाला कोई आम नही उल्लसित होता ॥७॥

२१ हे कमलिनि, अनभिज्ञ बगलो द्वारा तिरस्कृत हो क्यो चित्तको खिन्न करती हो ? परिपक्व केसरके ममज्ञ ससारमे वे भ्रमर दीघ जीवी होवे ॥८॥

२२ हे कूये "म अत्यत नीच हू' ऐसा खद तुम कभी मत करो क्योकि तम दूसरोके गुण (रस्मा) के ग्राहक अत्यत सरस हृदयवाले हो ॥९॥

२३ नीरक्षीरविवेके हंसालस्य त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्य कुलव्रत पालयिष्यति क ॥१३॥

२४ गाहितमखिल गहन परितो दृष्टाश्च विटपिन सर्वे ।
सहकार, न प्रपेदे मधुपेन भवत्सम जगति ॥२१॥

२५ दवदहनजटालज्वालजालाहताना,
परिगलितलताना म्लायता भूरुहाणाम् ॥
अपि जलधर, शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोय,
वितरसि बहु कोय श्रीमदस्तावकीन ॥३६॥

२६ शृण्वन् पुर परुषगर्जितमस्य हत,
रे पाथ, विस्मितमना न मनागपि स्या ॥
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीवितोऽय,
नार्कणित किमु सख भवताऽम्बुवाह ॥३७॥

२७ लून मत्तमतगजै कियदपि च्छिन्न तुपारार्दितै ,
शिष्ट ग्रीष्मजभानुतीक्ष्णकिरणैभस्मीकृत काननम् ॥
एषा कोणगता मुहु परिमलैरामोदयन्ती दिशो ,
हा कष्ट ललिता लवगलतिका दावाग्निना दह्यते ॥५६॥

२८ युक्त सभाया खलु मर्कटाना शाखास्तरूणा मदुलाऽऽसनानि।
सुभाषित चीत्कृतिरातिथेयी दतैनखाग्रैश्च विपाटनानि ॥८५॥
—विलास १

(२) शृङ्गार —

२९ न मनागपि राहुरोधशका न कलकानुगमो न पाण्डुभाव ॥
उपचीयत एव कापि शोभा
परितो भामिनि ते मुखस्य नित्यम् ॥१॥

३० त मजुमदहसित श्वसितानि तानि
सा वै कलकविधुरा मधुराननश्री ॥
अद्यापि मे हृदयमुन्मुदयन्ति हत
सायतनाम्बुजसहोदरलोचनाया ॥५॥

२३ हे हस, दूध-पानी के भेद करनमे यदि तुम ही आलस्य करोग तो आज ससारमे अ य कौन कुलक व्रतका पालन करेगा ।।१३।।

२४ हे आम भवरेने सारे वनोको ढूढ डाला चारो ओर सारे वक्ष दख डाले, पर तुम्हार समान जगतमे किसीको उसने नही पाया ।।२१।।

२५ हे मेघ वनकी अग्निकी भारी लपटोसे आहत गलित लताओवाले म्रुरझात वक्षोके (और) पवतश्रणियोके शिखरोपर वहुत जल बाट रहे हो कौन सा है जो कि तुम्हारा यह लक्ष्मीरूपी मद है ।।३६।।

२६ हे पथिक सामने इसक परुप गजनको सुनते हुन्त, तुम जरा भी चकित न हो । मित्र, ससारकी पीडाओके निवारणक लिय जीवन सर्मापत किय इस मेघके वारेमे क्या तुमने नही सना ।।३७।।

२७ मस्त हाथियोने (उसे) कितना ही नोचा पालमे पीडित हो वह कितना छिन्न भिन्न गर्मीके मूयकी तज किरणोसे भस्म करक छोडा (यह) कानन है । जहा कोनेमे स्थित क्षण भर सुगधिसे दिशाओको यह खुशबूदार करती हाय, सुदर लवगकी लता वनकी आगसे जल रही है ।।५६।।

२८ वानरोकी सभामे वक्षोकी शाखाका कोमल आसन होना उचित है। चिल्लाना उनका सुभाषित है और दातो और नखोसे खरोचना अतिथि-सत्कार ।।८५।।

—विलास १

२ शृगार—

२९ राहुके ग्रसनेकी जरा भी शका नही है, न कलकका सम्पक और न पीलेपन का । हे भामिनि, त रे मुहके चारो ओर सदा ही कोई शोभा बढती जा रही है ।।१।।

३० सायकालीन कमल जैसे नेत्रोवालीकी वह कोमल मन्द हास, वह उसास और वह कलकरहित मधुर मुखशोभा आज भी हन्त मेरे हृदयको पागल बनाते रहे ।।५।।

३१ कथय कथमिवाशा जायता जीविते मे
मलयभुजगवान्ता वाति वाता कृतान्ता ॥
अयमपि खलु गुजन्मुजु माकदमौलौ
चुलुकयति मदीया चेतना चचरीक ॥२८॥

३२ उपनिषद परिपीता गीतापि च हृत मतिपथ नीता ॥
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ॥३९॥

३३ प्राणापहरणेनासि तुल्यो हालाहलेन मे ॥
शशाक केन मुग्धेन सुधाशुरिति भाषित ॥४३॥

३४ प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिन (यदा) बभूव नभ ।
रक्त च पथिकहृदय कपोलपाली मृगीदृश पाडु ॥८६॥

३५ श्याम सित च सुदृशो न दृशो स्वरूप,
कि तु स्फुट गरलमेतदथामत च ॥
नो चेत्कथ निपतनादनयोस्तदैव ,
मोह मुद च नितरा दधते युवान ॥९२॥

३६ स्तनाभोगे पतन् भाति कपोलात्कुटिलोऽलक ॥
शशाकबिम्बतो मेरो लबमान इवोरग ॥१०६॥

३७ मीनवती नयनाभ्या करचरणाभ्या प्रफुल्लकमलवती ॥
शैवालिनी च केशै सुरसेय सुन्दरी सरसी ॥१११॥

—विलास २

(३) करुणो रस —

३८ चिता शशाम सकलाऽपि सरोरुहाणा-
मिदोश्च बिबमसमा सुषमामयासीत् ॥
अभ्युद्गत कलकल किल कोकिलाना
प्राणप्रिये यदवधि त्वमितो गताऽसि ॥७॥

—विलास ३

३१ बता कैसे मुझे जीवनकी आशा हो मलयाचलके सांपोंके वमन किये यमराज जैसे वायु चल रहे हैं। आमके शिखरपर मधुर गूंजता यह भंवर भी मेरी चेतनाको पी रहा है ॥२८॥

३२ उपनिषद सब पी डाली हन्त गीताको भी समझ लिया। तो भी हाय, चन्द्रमुखी (मेरे) हृदय-मंदिरसे बाहर नहीं जाती ॥३९॥

३३ हे चन्द्र प्राणके कारण अपहरण मेरे लिये तुम हलाहलके तुल्य हो फिर किस मूढने तुम्हें अमृत-किरण कहा ॥४३॥

३४ मेघके प्रकट होनेपर आकाश काजल सा मलिन पथिकका हृदय लाल और मृगनयनीका कपोल पीला हो गया ॥८६॥

३५ सुनैनी की आंखोंका रूप श्याम और श्वेत नहीं, बल्कि स्पष्ट यह गरल अथवा अमृत है, नहीं तो इनके पड़नेमें उसी समय क्यों तरुण अत्यंत मोह और आनंदको प्राप्त होते हैं ॥९२॥

३६ कपोलसे वक्षस्थलपर गिरता कुंचित अलक चन्द्रबिम्बसे मेरुपर लटकते सांप सा मालूम होता है॥१०६॥

३७ दोनों नयनोंसे मछलीवाली, हाथा-पैरोंसे फूल कमलवाली और केशोंसे सेवारवाली यह सुंदरी सुरस पुष्करिणी है ॥१११॥

—विलास २

३ करुणा रस—

३८ हे प्राणप्रिय, जबसे तुम यहांसे गये, और चन्द्रबिम्ब भी अद्वितीय सुषमाको प्राप्त हुआ, (तबसे) कमलोंकी सारी चिन्ता शांत हो गई, कोयलोंका कलकल उठ गया है ॥७॥

—विलास ३

(४) शान्तो रस —

३९ मद्वाणि मा कुरु विषादमनादरेण
मात्सर्यमग्नमनसा सहसा खलानाम् ॥
काव्यारविन्दमकरन्दमधुव्रताना
मास्येषु धास्यतितमा कियतो विलासान ॥४२॥

४० धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ॥
वद्यैव माधुरीय पण्डितराजस्य कविताया ॥४४॥

४१ शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधय सर्वेऽपि सभाविता,
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीत नवीन वय ॥
सप्रत्युज्झितवासन मधुपुरीमध्ये हरि सेव्यते,
सव पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाधिकम ॥४५॥

४२ दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यतीति शकया ॥
मदीयपद्यरत्नाना मजूषैषा मया कृता ॥४६॥
—विलास ४

५० गौरी (१६४० इ०)

अन्य स्त्री कवयित्रियोकी तरह गौरीके भी काल और देशके बारेमें मालूम नहीं ह। यह किसी राजाकी प्रशसा करती ह, जिससे जान पडता

(१) शिव —

१ उत्फुल्लगल्लपरिफुल्लमुखारविन्द -
सौगन्ध्यलुब्धमधुपाकुलया रताते,
अत्युग्रपीनकुचचूचकयाऽतिगाढ -
मालिंगितो गिरिजया गिरिश पुनातु ॥१॥

---

१ छन्द वसन्ततिलक

४ शान्त रस—

३९ हे मेरी वाणी, ईर्ष्या मग्न मनवाले खलाके तुरत अनादरसे विषाद मत कर, काव्यरूपी कमल मधुक भ्रमरोके मुखोमें (जा) तू कितना भारी आनन्द पायेगी ।।४२।।

४० पडितराजकी कविताकी मधुरता, अगूर, क्षीर, ईख, मधु आदिकी श्रेष्ठ मधुरताओसे भी बढकर है।।४४।।

४१ पडितराजोके तिलक (जगन्नाथ) ने शास्त्रोको पढा, सारे नित्य नियम पालन किये, दिल्लीके स्वामीके पाणिपल्लवके नीचे जवानी बिताई, अब वासनाओको छोडकर मथुरामें हरिका सेवन कर रहे है। पडित राजोके तिलकने सब काम लोकोत्तर किया।।४५।।

४२ दुराचारी जार-पुत्र चुरायेगे, इस शकासे मैने अपने पद्मरत्नोकी यह पिटारी बनाई।।४६।।

५० गौरी (१६४० ई०)

ह, कि इनका दरबारसे सम्बध था। सस्कृतमें शायद पहलेपहल इन्होंने बदूक (भुशुडी) की तारीफ की ह। गौरीकी कविता बहुत सरस और सरल ह।

१ शकर—

१ उत्फुल्ल गलेवाले फूले मुखारविन्दकी सुगधिको पा लुब्ध भ्रमरोसे आकुल, अत्युच्च पीन स्तनके चूचुकवाली पावती द्वारा रतिके अन्तमें अतिगाढालिंगित शकर तुम्हे पवित्र करें।।१।।

(२) द्विषदकीर्ति —

२ कालिन्दीयति कज्जलीयति कलानाथाकमालीयति,
व्यालीयत्यहिमण्डलीयति मुहु श्रीकण्ठकण्ठीयति ।
शैवालीयति कोकिलीयति महानीलाभ्रजालीयति,
ब्रह्माण्डे रिपुदुयशस्तव नृपालकारचूडामणे[१] ॥३॥

(३) भुशुण्डी—

३ महाचण्डीव सभाति भुशुण्डी भवत करे।
प्रतापज्वरसभ्रातगोलिका जीवहारिणी[२] ॥४॥

४ वह्निचूणपरिपूणनिजान्तर्-
र्गोलिका गरलवक्त्रविकाशा।
बाहुभीषणभुजगधृतेय
भाति दुष्टभुजगीव भुशुण्डी[३] ॥५॥

(४) प्रताप —

६ नो चापाकलन न पत्रिधरण नो ज्यासमाकषण,
नो बाहुस्फुरण न वाणगमन सन्दृश्यते ते रणे।
किन्तु प्रौढकरीन्द्रकुम्भविगलन्मुक्तागणप्रस्फुरत्-
प्रत्यथिक्षितिपालमौलिमणिभिविद्योतते भूरियम्[४] ॥६॥

(५) अरि-नार्य —

७ चन्द्रानना चन्द्रकचारुगात्री ,
सा कोपवित्रस्तचकोरनेत्रा ।
शैलेयभुग्भि स्मरभाववद्भि
ससेव्यतेऽद्रावरिभामिनी ते[५] ॥७॥

---

१ शार्दूलविक्रीडित, २ अनुष्टुप, ३ स्वागता ४ शार्दूलविक्रीडित,
५ इन्द्रवज्रा,

२ शत्रुका अपयश—

२ हे नृप भूपण चूडामणि, ब्रह्माडमे तुम्हारे शत्रुओका अपयश जमुना बन रहा है, कज्जल बन रहा है, चन्द्रमाकी कलकमाला बन रहा है, व्याल बन सपकुण्डली बन रहा है, बार बार शिवका कठ बन रहा है। सेवार-कोयल महानील मेघजाल सा बन रहा है ।।२।।

३ बन्दूक—

३ प्रतापरूपी ज्वरस घूमती गोलीवाली, और प्राणहारिणी बन्दूक आपके हाथमे महाचडी सी दीख पडती है ।।४।।

४ बारूदसे अपने भीतर भरी गोलीवाली, विप मुखका विकास करनेवाली यह बन्दूक बाहुरूपी भीषण सापसे पकडी दुष्ट सर्पिणी सी जान पडती है ।।५।।

४ प्रताप—

६ तुम्हारा रण मे न धनुष चढाना, न बाण पकडना, न प्रत्यचा खीचना, न बाहुका हिलना, न बाणका जाना दीखता है। लेकिन, यह भूमि प्रौढ गजराजके कुभस्थलसे गिरती मोतियोसी चमचमाती शत्रु राजाओकी शिखामणियोसे प्रकाशित हो रही है ।।६।।

५ शत्रुकी नारियाँ—

७ चन्द्रमुखी, मोर जैसी सुन्दर गात्रवाली, कोपसे डरे चकोर जैसे नेत्रोवाली, तुम्हारे शत्रुकी स्त्रीकी कामभावाविष्ट मधुमक्खिया पहाडमे सेवा कर रही है ।।७।।

(६) **जल-क्रीडा—**

९ विनि सरन्ती रतिजित्वरागी,
नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्री ।
आलोकि लोकै स्वरुचा स्फुरन्ती
जलाधिदेवीव जलेशवन्द्या ॥९॥

९ वेधाश्चकोरखजनमीनमृगाणा च गजनात्तुष्ट ।
अपितवान् भूमिषतो मारकत छत्रयुग्मक सुदृशो ॥१०॥

(७) **शरीरम्—**

१० मुखे शृङ्गाररसरसि लावण्यामृतपूरिते ।
कामक्रीडाहित भाति नयन शफरी युगम् ॥११॥

११ अपागस्तव तन्वगि विचित्रोऽय भुजगम ।
दृष्टमात्र सुमनसामपि मूर्छाविधायक ॥१२॥

१२ सुधाविद्रुमसत्सारैर्धात्राऽस्यारचितोऽधर ,
यतोऽनगभुजगेन दष्ट जीवयति क्षणात् ॥१३॥

१३ विद्रुम विद्रुम कमल कमल पुन ।
इति सचित्य विधिना कुकुमारुणितौ पदौ ॥१४॥

१४ विभाति बाला चरणागुलीना
नखावलीरागविमिश्रितश्री ।
शृङ्गारकल्पद्रुमकोरकाणा
दलान्तरे पक्तिरिव प्रसन्ना [१] ॥१५॥

(८) **वायु —**

१५ परिमलबहुला सुपल्लवागी ,
कुसुमयुता परिरभ्य हेमवल्लीम् ।
विरचितसरसीसु मज्जनोऽसौ,
रसिक इवैति शनै शनै समीर [३] ॥१६॥

॥ इति ॥

---

१ उपजाति, २ गोति, ३ अनुष्टप, पुष्पिताग्रा ।

६ जल-विहार—

८ रति जीतनवाले अगोवाली, लाल कमल जसी लोचनशोभावली, अपनी आभासे चमकती जलस (बाहर) निकल्ती लोगोको वह (सुदरी) वरुणसे वदनीय जलकी दवी सी दीख पडी ॥९॥

९ विधाताने चकोर-खजन मीन ओर मगोको पराजित करनेसे तुष्ट होकर (उस) सुनयनीको भौहोके बहानेसे पन्नेक दो छत्र प्रदान किये ॥१०॥

७ नखशिख—

१ लावण्यरूपी अमतसे भर श्रृगारके सरोवर मुखमे, काम क्रीडाके लिये नयनरूपी दो मछलिया शोभित हो रही है ॥११॥

११ हे पतली शरीरवाली, यह तेरी दृप्टि विचित्र सप है, जो कि दखने मात्रसे दवताओको भी मूर्छित कर देती है ॥१२॥

१२ अमृत और मूगेके अच्छे सारोस विधाताने उसके अधरको रचा जो कि वह काम भुजगसे डसेको क्षणभरमे पुनरुज्जीवित कर देती है ॥१३॥

१३ चूकि मूगासे मूगा, फिर कमलसे कमल है, यह सोचकर विधाताने उसके पैरोको कुमकुमसे लाल कर दिया ॥१४॥

१४ चरणकी अगुलियोकी नख-पक्तिके रगसे मिश्रित शोभावाली बाला, श्रृगारके कल्पवृक्षकी कलियोकी पखुडियोके भीतर स्वच्छ पाती की तरह शोभित है ॥१५॥

८ वायु—

१५ बहुत सुगन्धित सुन्दर पल्लवसे युक्त अगोवाली, फूली स्रुवण लताका आलिंगन कर, सरोवरोमे स्नान किये यह, वायु रसिककी तरह धीरे-धीरे आ रहा है ॥१६॥

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट

१ नामानुक्रमणी

२ विशेषशब्दानुक्रमणी